निर्णय के तट पर

(शास्त्रार्थ संग्रह)

पांचवा भाग

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण कमांक 5504
दयानन्द महिला मह

सम्पादक एवं संग्रहकर्त्ता
अमर स्वामी सरस्वती
लाजपत राय अग्रवाल

प्रकाशक
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१ (उ०प्र०)
भारत

चतुर्थ संस्करण
मार्च सन २००२ ई०

★

मूल्य : भारत में - पांच सौ रूपये
विदेशों में - सत्तर पौण्ड

सर्वाधिकार सुरक्षित : © अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाजियाबाद (उ०प्र०)

प्रकाशक : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

सम्पादक एवं संकलनकर्त्ता : (१) अमर स्वामी सरस्वती (२) लाजपत राय अग्रवाल

मूल्य : भारत में पाँचसौ रूपये (विदेशों में पचास पौंड)

मुद्रक : **श्री पी०एस० अग्रवाल** (प्रोपराईटर)
मै० तायल ऑफसैट प्रिंटिंग प्रैस, ३३५, अम्बेडकर रोड, गाजियाबाद (उ०प्र०)
मोबाइल : ९८१०५०८०५७

लेजर टाइपसैटिंग : अग्रवाल कम्प्यूटर्स, ३३५, अम्बेडकर रोड, गाजियाबाद (उ०प्र०)

संस्करण : प्रथम बार प्रकाशित (दिसम्बर सन् २००१ ई०)

प्रूफरीडर : **श्रीमती अजीता मुरली** (कार्यालय सहायक) "राजभवनम्" वेल्लमकुलंगरा
पो० हरीपाड़, जि० आल्लपुरा (केरल) टेलीफोन : (०४७९) ४१४२३२

जिल्दसाज : (१) नईम बुक बाइंडिंग हाऊस—गाजियाबाद (फोन : ४७३१३९८)
(२) मलिक बुक बाईन्डर—गाजियाबाद (फोन : ४७४८९९३)

पुस्तक प्राप्ती स्थान : १. अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, १०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)
२. विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली—६
३. राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली—६
४. चौखम्बा ओरियेन्टला, बैंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली—६
५. चौखम्बा विद्याभवन, चौक वाराणसी (उ०प्र०)
६. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा, दयानन्दभवन रामलीला मैदान नईदिल्ली—२
७. मोतीलाल, बनारसीदास, बैंग्लोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली—७
८. आर्य प्रकाशन, ८१४, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली—६
९. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली—१
१०. आर्यसमाज बड़ा बाजार, पुस्तक विक्रय विभाग, १, मुंशी सद्दरूद्दीन लैन कलकत्ता—७
११. आर्य समाज, १९, विधानसरणी (पुस्तक विक्रय विभाग) कलकत्ता—६
१२. हिन्दी बुक सैन्टर, ४/५, आसफ अली रोड, नई दिल्ली—२
१३. हिन्दी साहित्य सदन, १८/२८, पूर्वी पंजाबी बाग, नई दिल्ली—२६
१४. साहित्य केन्द्र प्रकाशन, डी—४३२, गली नं०—६, भजनपुरा—दिल्ली—५३

NIRNAY KE TAT PER (Vol. 5)

Published by:-

LAJPAT RAI AGGARWAL (Proprietor)

M/S. AMAR SWAMI PRAKASHAN VIBHAG

1058, VIVEKANAND NAGAR, GHAZIABAD-201001 (U.P.) INDIA

PHONE : 0120-4701095

Forth Edition : 2002 ☆ Price : { in India - Rs.500/- only
Other Countries - 70 Pounds

सम्पादकीय

पाठक वृन्द !

परम् पिता परमात्मा की असीम कृपा से निर्णय के तट पर ग्रन्थ का पांचवा भाग छप कर आपके हाथों में है, हमारे पूर्ण प्रयास करने के बावजूद भी सारी शास्त्रार्थ सामग्री इस भाग में नहीं आ पाई, परिणाम स्वरूप इस श्रृंखला का छटा भाग छापना आवश्यक हो गया है, जिसमें उपलब्ध बकाया सभी शास्त्रार्थों का समावेश करने का प्रयास किया जायेगा। **"पूज्य श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा थी कि सभी प्रकाशित अथवा अप्रकाशित शास्त्रार्थों का प्रकाशन इस श्रृंखला के अन्तर्गत एक बार अवश्य हो जाना चाहिये।** हमें इस बात की खुशी है कि हम उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ति में सफल हो रहे हैं। इस कार्य में अनेकों कठिनाईयां हैं, मुझे ग्रन्थ छपाने में कोई परेशानी नहीं है। परेशानी अगर है तो इस बात की है कि कोई भी विद्वान अनुवाद एवं सम्पादन कार्य के लिए नहीं मिल पाता, जबकि मैं उचित पारिश्रमिक भी देने को तैयार हूँ। तथा दूसरी समस्या है कि ग्रन्थ छपवा कर कहाँ रक्खूं ? पुस्तकें जितनी मात्रा में बिकनी चाहिये उतनी मात्रा में बिकती ही नहीं हैं, जबकि मैं नाम मात्र लाभ पर ही प्रचारार्थ साहित्य वितरण करना चाहता हूँ। लाखों रूपया इस प्रकाशन में लगा हुआ है तथा लग रहा है। पैसा लगता ही चला जाये और उसकी वापसी न हो तो समस्या ही है, अतः मेरा अनुरोध है कि सभी आर्य भाई–बहन इन अनुपम एवं अनुपलब्ध ग्रन्थों को मंगा–२ कर अवश्य अध्ययन करें।

मुझे आर्थिक रूप से कोई चिन्ता नहीं है, अतः कोई भी विद्वान उपरोक्त कार्य में सहयोग देने हेतु अगर तैयार हो तो मुझसे सम्पर्क करे, मैं यथाशक्ति हर सम्भव उनकी सेवा करूंगा जिससे इस प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। मैं चाहता हूं कि हमारा जो भी प्राचीन मूल साहित्य निरन्तर समाप्त होता जा रहा है उसे प्रकाशित कर पुनः प्रकाश में ला सकूं, मेरा यह संकल्प आप लोगों के सहयोग पर ही आधारित है। यह मेरा सौभाग्य ही है कि इस संस्था द्वारा प्रकाशित साहित्य देश–विदेश के कौने–२ में पहुँच रहा है, जिस निमित्त इस संस्था को स्थापित् किया गया था उसके लिए यह संस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सफल हो रही है।

पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज द्वारा दी गई प्रेरणा आज भी मेरे मस्तिष्क में कार्य कर रही है, तथा जीवन भर करती रहेगी, मैं उनके ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकता, परमेश्वर से प्रार्थना है कि मेरी यह भावना सदा बनी रहे, और जितना भी अधिक से अधिक हो इस तरह के सामाजिक कार्यों में, तथा साहित्य के प्रचार एवं प्रसार करने में मेरा योगदान सदा बना रहे।

किमधिकम् लेखेन् !!

विदुषामनुचर :–

"लाजपत राय अग्रवाल"

(प्रतिष्ठाता)

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

गाजियाबाद

समर्पण

आर्य जगत के महान सन्यासी महर्षि दयानन्द की सेना के महान सेनानी, ब्राह्मण समाज
के पूज्य, क्षत्रिय समाज में अग्रणी, महात्मा, स्वनामधन्य जिन्होंने अपना सर्वस्व
आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार में समर्पित कर दिया।
प्रमाण महार्णव, रामायण, गीता, महाभारत, के महान व्याख्याता
वेद शास्त्र - उपनिषद मर्मज्ञ, पुराण, कुरान आदि अवैदिक
मतों के मानमर्दन करने वाले, अद्वितीय वक्ता शास्त्रार्थ
केशरी, जिन्होंने दिग्दिगान्तरों में शास्त्रार्थों
द्वारा वैदिक सिद्धान्तों की विजय
वैजन्ती फहराई।
उन

महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के प्रति

जिस दिव्य गुरु ने "अग्निना अग्नि समिध्यते"को जीवन में चरितार्थ कर सैंकड़ों
शिष्यों को व्याख्याता, संगीतज्ञ, राजनीतिज्ञ, प्रोफेसर, डाक्टर, और न जाने
क्या-क्या उच्च पदों के योग्य बना उन्हें दलित व पीड़ितजनों के लिए
उनमें हितैषी भावना भर कर समाज को समर्पित किया। इसी
"अजेय योद्धा"जिन्होंने ४ सितम्बर सन् १९८७ ई० को
सांय पांच बजे अपने जीवन के ९६ वर्ष पूरे कर
इस नश्वर देह का त्याग किया,
उनकी पुण्य स्मृति में यह ग्रन्थ
"सादर समर्पित"है।

समर्पणकर्त्ता-
"लाजपत राय अग्रवाल"

प्रस्तुत खण्ड नं०-५ में निम्न शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थ संग्रहीत हैं-

(१) आर्य समाज की ओर से-

(१)-सर्वश्री महात्मा मुन्शीराम जी, (२)- महात्मा हंसराज जी, (३)- आचार्य राजकुमार शास्त्री, (४)- आचार्य डॉ० श्रीराम आर्य, (५)- स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, (६)- तर्करत्न लक्ष्मीनारायण शास्त्री, (७)- पण्डित अखिलेश कुमार लखनवी, (८)-पण्डित जे०पी० चौधरी काव्यतीर्थ, (९)- स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, (१०)- पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री, विद्याभास्कर, (११)- महाशय रहतु लाल जी आर्य, (१२)-डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, (१३)- ब्रजमोहन झा तार्किक शिरोमणि, (१४)- तार्किक शिरोमणि पण्डित व्यासदेव जी शास्त्री, (१५)- महाशय प्रभुदयाल जी आर्य, (१६)-स्वामी दयानन्द सरस्वती, (१७)- पण्डित वेद भूषण जी "हैदराबाद" (१८)- अमर स्वामी सरस्वती, (१९)- रईसुल मनाज़रीन पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर, (२०)- मुन्शी इन्द्रमणी !

(२) सनातन धर्म की ओर से-

(१)- सर्वश्री आचार्य भवानी शंकर जी, (२)- पण्डित गोपीनाथ कश्मीरी, (३)- महन्त सीताराम दास शास्त्री, (४)- पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्र "मुरादाबादी" (५)- पण्डित अयोध्यादास व्याकरणाचार्य, (६)- पण्डित मुक्तिनाथ झा ज्योतिषाचार्य, (७)- पण्डित नवनन्दाचार्य, (८)-पण्डित गंगासहाय जी, (९)-पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री, (१०)- महन्त रलियाराम अमृतसरी, (११)- पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, (१२)- पण्डित कालूराम शास्त्री, (१३)- पण्डित माधवाचार्य शास्त्री (१४)- पण्डित मायादत्त जी पाण्डेय, (१५)-पण्डित हनुमतदत्त त्रिवेदी, (१६)- पण्डित ताराचन्द जी तर्क रत्न, (१७)- राव साहब बहादुर सिंह !

(३) ईसाईयों की ओर से -

(१)- सर्वश्री पादरी टी०जी० स्काट साहब, (२)- पादरी नोबिल साहब, (३)- पादरी ग्रे साहब, (४)- बाबु बिहारी लाल ईसाई !

(४) मुसलमानों की ओर से-

(१)- सर्वश्री मौलवी अहसान उल्ला साहब, (२)- मौलवी मोहम्मद कासिम साहब, (३)- मौलवी अहमद हुसैन साहब, (४)- मौलवी अब्दुर्रहमान साहब, सुपरिटैन्डैन्ट पुलिस, (५)- मौलवी अब्दुल मजीद साहब, (६)- मौलाना अब्दुल समद साहब, (७)- मुन्शी अब्दुल अजीज उर्फ जगदम्बा प्रसाद, (८)- शेख अब्दुल अजीज साहब, (९)- मौलवी अहमद अली साहब मेरठी, (१०)- मौलवी अहमद हसन साहब, (११)- मौलवी अब्दुल हक़ साहब देहलवी, (१२)- इमाम अबू मौहम्मद साहब, (१३)- मौलवी महमूद हसन साहब देवबन्दी, (१४)- मौलाना अब्दुल मौहम्मद हसन साहब अरबी फ़ाजिल, (१५) मशहूर मनाजरकर्त्ता हकीम इरतज़ा अली साहब !

(५) जैनियों की ओर से-

(१)- सर्वश्री साधु सिद्धकरण जी !

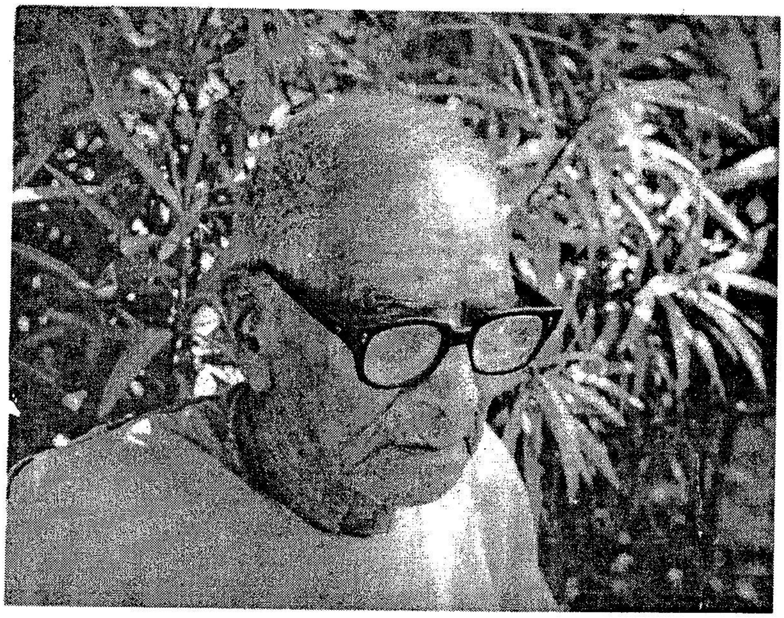

निगाहें कामिलों पर अक्सर पड़ ही जाती हैं जमाने की।
कहीं छिपता है ''अकबर'' फूल पत्तों में निहां होकर।।

परिचय-भारत की उर्वर वसुन्धरा ने विश्व को ज्ञान और ज्ञानी दिये हैं, कर्मवीर देश-भक्त दिये है। आदिकाल से अब तक विद्वानों और सद्विवेकियों की परम्परा ने अपने ज्ञान के आलोक से अविद्या अन्धकार को छिन्न-भिन्न किया। आर्य समाज ने अक्षपाद, गौतम न्यायदर्शनकार के विद्यालय में दीक्षित रूढ़िग्रस्त धारणाओं पर कठोर प्रहार करने वाले तार्किक एवं शास्त्रार्थ महारथी उत्पन्न किये। स्वनामधन्य स्वामी दर्शनानन्द, पण्डित प्रवर गणपति शर्मा, आर्यपथिक पण्डित लेखराम, पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी जैसे शास्त्रार्थ महारथियों की श्रृंखला में आर्यजगत के विख्यातनामा ''श्री अमर स्वामी जी महाराज हैं''। आपका जन्म विक्रम सम्वत् १९५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ग्राम , जिला बुलन्दशहर (उ०प्र०) में हुआ था, आपके पिता का नाम श्री ठाकुर टीकम सिंह जी तथा माता का नाम श्रीमति राजकुमारी देवी था। आपने अनेकों सम्प्रदायों से विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ किये। शास्त्रार्थसमर में आपकी चहुँमुखी तलवार चलती है। आपकी प्रतिभा की प्रशंसा विरोधी भी करते हैं। यह कम गौरव की बात नहीं है। आपने अपने जीवन में सैकड़ों युवक प्रचारक के रूप में तैयार किये जो आज देश के कोने-कोने में वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार कर रहे हैं। इस ६२ वर्ष की आयु में अब भी वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न हैं। वर्तमान समय में आर्य समाज के अन्दर आपकी सानी (उच्च मिसाल) का अन्य कोई सन्यासी नहीं है। स्वामी जी में प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा पैनी तर्कशक्ति के दर्शन आज भी किये जा सकते हैं। स्वामी जी के बारे में कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखलाने के समान है।

''शिवकुमार शास्त्री''
(भू० पू० संसद सदस्य)

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक एवं संग्रहकर्ता व सम्पादक –

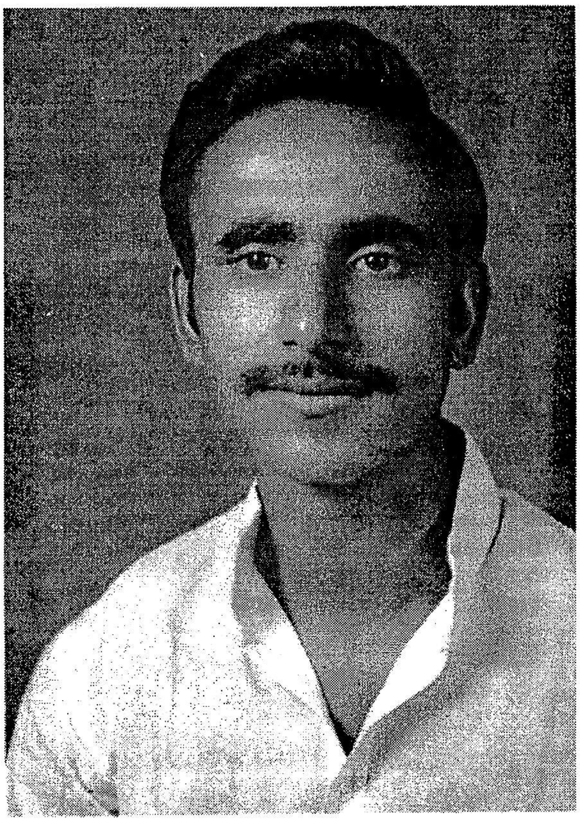

"LAJPAT RAI AGGARWAL" (Govt. Contractor)

परिचय - प्रिय लाजपतराय जी एक अच्छे योग्य एवं होनहार युवक हैं । इनकी कार्य करने की लगन अद्भुत है, यह बच्चा एक प्रसिद्ध सम्पन्न अग्रवाल वंश में उत्पन्न हुआ एवं अपने पूर्वजों की भांति रात–दिन वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न है । इनके परिवार को मैं अच्छी तरह जानता हूं । इनके परिवार में से ही इनके तायरे भाई **''श्री कृष्ण चन्द जी''** दिल्ली राज्य के उप–राज्यपाल भी रहे । जिला सहारनपुर में इनके यहां अच्छी–खासी जमींदारी है । श्री लाजपत राय जी के बाबा श्री लाला महताब राय जी आदि कट्टर ऋषि भक्त थे । बड़े–बड़े विद्वानों का इनके यहाँ आना–जाना रहता था ।

आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान श्री अमर स्वामी जी ने सैकड़ों इतने बड़े–बड़े विद्वान, अपने सानिध्य में तैयार किये हैं जो सारे देश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं, श्री लाजपत राय जी भी उन्हीं में से एक हैं।

श्री लाजपतराय जी के स्तूत्य प्रयास से ही यह शास्त्रार्थो का संग्रह तैयार हो सका, परमेश्वर इस बच्चे को दीर्घायु प्रदान करें एवं यह हमेशा अपने कार्यो में सफलता प्रदान करें । इसके साथ–साथ श्री अमर स्वामी जी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अपने कठिन तप व त्याग से ऐसे अद्भुत लगनशील रत्न तैयार किए हैं ।

अब लाजपत राय जी एक उच्च श्रेणी में राजकीय ठेकेदार हैं। विद्युत विभाग व अन्य अनेकों सरकारी विभागों में सिविल से सम्बन्धित सभी कार्यो का इनको एक अच्छा अनुभव है । बल्कि यों कहिए कि जो एक अच्छे कान्ट्रेक्टर (ठेकेदार) के अन्दर प्रतिभा होनी चाहिए, वो इनमें मौजूद है । इतने व्यस्त कार्यो में से भी समय निकाल कर वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु प्रकाशन विभाग को चलाना, इनकी लग्न का एक नमूना ही कहा जा सकता है ।

वैदिक धर्म का –
बिहारी लाल शास्त्री ''काव्यतीर्थ''
(बरेली)

आये कोई माई का लाल मैदान में :-

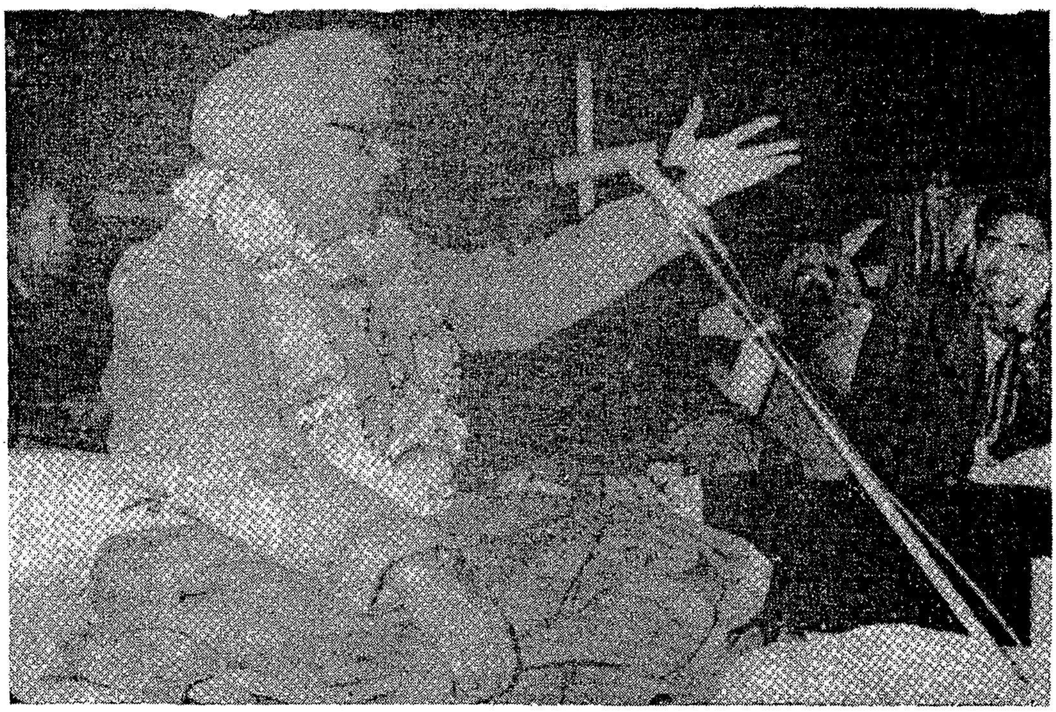

यह विरक्त, यह वीर पुरुष, यह अमर स्वामी सन्यासी। पाखंडों का सदा सदा विद्रोही, ईश विश्वासी।।
जीवन भर जो रहा पूजता वैदिक आदर्शो को। सदा सदा आमन्त्रित करता आया संघर्षो को।।
वेद ज्योति से अपने जीवन को ज्योतित कर डाला। निज वाणी व लेखनी से, जग अलौकिक कर डाला।।
शास्त्र समर में यह योद्धा जिस जां पर अड़ जाता है। कौन हिला पाये अंगद का पांव गड़ जाता है।।
दयानन्द का सैनिक यह, सेनानी यह आर्य सेना का। बढ़ा जिधर को ॐ ध्वजा ले, फहरी विजय पताका।।
तर्क बाण, जब यह, प्रमाणों का वेत्ता बरसाता है। पाखंडों का दुर्ग धराशायी हो गिर जाता है।।
क्या साहस ले, साम्प्रदायवादी विवाद की ठाने। हैं पुराण, कुरआन, बाईबिल, सब जाने पहचाने।।
इसी मनस्वी, ज्ञान वारिधि का यह अभिनन्दन है। इस विरक्त के स्वागत में पुलकित हर्षित जन मन है।।
जुग-जुग जिये, सदा चमके तेजस्वी ! तेरा जीवन। यही कामना है ईश्वर से, ''शरर'' यही अभिनन्दन।।

निवेदक-

''प्रोफेसर उत्तमचन्द शरर एम०ए०''

(पानीपत)

।। ओ३म् ।।

पोल खुलते ही पुराणों का, महातम घट गया।
"बुद्ध" की बुद्धि बंध गई, मद जैन मत का घट गया।।

दम घुटा तौरेत का, छल बल जबूरी कट गया।
जी जला इंञ्जील का, दिल बाईबिल का फट गया।।

सामने कुरआन के, ले वेद चारों अड़ गये।
मार, मन्त्रों की पड़ी, पर आयतों के झड़ गये।।

डूब कर गहरे दलायल में, गपोड़े सड़ गये।
कुल हदीसों के हवाले भी, भंवर में पड़ गये।।

महाकवि श्री पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा "शंकर"

।। ओ३म् ।।

भारत के शुभ नभ मण्डल में,
हुए अनेकों पथगामी।
एक उन्हीं में थे उज्जवल तारा,
श्री श्रद्धेय 'अमर स्वामी' ।।

"सम्पादक"

आर्य समाज की पुकार आधुनिक आर्य समाजियों से

हो चुकी आपस की, बस ! तकरार रहने दीजिये।
आये दिन की जूतियों पैज़ार रहने दीजिये।।

क्यों पड़े हो हाथ धोकर जान के पीछे मेरी।
मुझको जिन्दा ऐ मेरी सरकार रहने दीजिये।।

हो चुकी हिकमत तुम्हारी बस करो रहने भी दो।
हज़रते ईसा मुझे बीमार रहने दीजिये।।

अपने घर में तो हज़ारों तीर तुम बरसा चुके।
दुश्मनों के लिए भी दो चार रहने दीजिये।।

आपकी हालत पे दुश्मन हँस रहे हैं देख लो।
कुछ तो नीचा ही सरे अग़यार रहने दीजिये।।

वह "अमर" पद पा गया जिसने दिया मुझको फ़रोग।
इसलिए किस्मत मेरी बेदार ही रहने दीजिये।।

"अमर स्वामी सरस्वती"

नोट- प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ संख्या ५५६ पर अमर स्वामी जी महाराज कृत- "अमर सूत्र" अवश्य पढ़ें !

शास्त्रार्थकर्त्ताओं के लिए आवश्यक नियम व निर्देश

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री, काव्यतीर्थ, शास्त्रार्थ महारथी

यद्यपि अब तो शास्त्रार्थ समाप्त से ही हो गये हैं, परन्तु अब से चालीस वर्ष पहले शास्त्रार्थों की धूम मची रहती थी। तर्क और बुद्धि से बैर रखने वाले कुछ राजनैतिक नेताओं ने प्रचार किया कि–"**शास्त्रार्थों से मजहबी झगड़े पैदा होते ह अतः शास्त्रार्थ बन्द होने चाहिये**" परन्तु यह बात निर्मूल थी, जब शास्त्रार्थ होते थे तब रात के बारह–बारह बजे तक मस्जिदों में शास्त्रार्थ हुए हैं और मौलवी तथा पण्डित हाथ मिलाकर बिदा होते थे। बाज–बाज दफा तो एक ही स्थान में दोनों ठहरते और शास्त्रार्थ करते थे। शास्त्रार्थों के कारण एक पक्ष दूसरे पक्ष के ग्रन्थ पढ़ता था और विचार करता था। इससे बुद्धिवाद और सहिष्णुता (Tolerance) बढ़ते थे, जब से शास्त्रार्थ बन्द हुये तब से मजहबी संकीर्णता तंग दिली और असहिष्णुता (Intolerance) बढ़ गई। स्वराज्य मिलने के बाद तो मुसलमानों ने आर्य समाज में आना ही बन्द कर दिया, और इन २८ वर्षों में २५ या २६ साम्प्रदायिक दंगे हुये। विचार के स्थान को मानसिक विद्रोह ने ले लिया। शास्त्रार्थ से पहले नियम निर्धारित करने आवश्यक हैं, और पक्ष प्रतिपक्ष निश्चित हो जाना चाहिये, शास्त्रार्थ का अध्यक्ष जनता पर प्रभाव रखने वाला व्यक्ति हो, और समझदार भी। शास्त्रार्थ में जय–पराजय का निर्णय सदा जनता के अधिकार में रहना चाहिए क्योंकि जनता के विचार बदलने को ही शास्त्रार्थ होता है। जनता में लिखित शास्त्रार्थों की बात समय की बरबादी के अतिरिक्त कुछ नहीं है, शास्त्रार्थ मौखिक ही होने चाहिये, दोनों पक्ष समय का पालन करें। और अध्यक्ष समय का निर्देश करें, तथा जनता को शान्त रखें। जनता को हर्ष या खेद प्रकट करने के लिए ताली बजाना या शोर करना ये न होने दिया जाये, केवल मनों में ही जनता विचार करे, पक्ष तथा प्रतिपक्ष के नियम न्यायदर्शन में दिये हुए हैं। उनसे बाहर होने वाले वक्ता को रोकना अध्यक्ष का कर्त्तव्य है, शास्त्रार्थ तीन प्रकार का होता है, १. वाद, २. जल्प, ३. वितण्डा।

(१) वाद-

"**प्रमाण, तर्क, साधनोपालम्भः सिद्धांताविरूद्धः पंच पंचावयबोपपन्नः पक्ष प्रतिपक्ष परिग्रहो वादः।**" (न्याय दर्शन, १–२–१) अर्थात्–उचित प्रमाण और तर्कों से अपने पक्ष को सिद्ध करना और विपक्ष का उपालभ्य (खण्डन) करना, सिद्धांत के विरूद्ध न होना, पांच अवयवों से युक्त पक्ष और प्रतिपक्षों का ग्रहण करके जो कथोपकथन हो वह "**वाद**" **हैं।** "**प्रतिज्ञा हेतूदांहरणोपनयन, निगमान्यवयवाः**"।। (न्याय दर्शन, १–१–३२) अर्थात्–१. प्रतिज्ञा (साध्य) २. हेतु (साधना) ३. उदाहरण ४. उपनय (इन्हें युक्त करना) ५. निगमन (पूरी संगति के साथ मेल करा देना) ये पांच "**अवयव**" हैं, शास्त्रार्थ (वाद) के।

(२) जल्प-

"**यथोक्तोपपन्नश्छल जाति निग्रह स्थान साध्नोपालम्भे जल्पः**"। (न्यायदर्शन १–२–२) अर्थात्–प्रतिज्ञा आदि से युक्त छल जाति और निग्रह स्थानों से खण्डन मण्डन "**जल्प**" है। "**छल**" ?-"**वचन**

विधातोऽर्थेपपत्याछलम्"। (न्यायदर्शन, १–२–५१) अर्थात् वक्ता के भावों के विरूद्ध कल्पना करके वक्ता के पक्ष पर आक्षेप करना भूल है, यह वाक् छल, उपचार छल, आदि कई प्रकार का होता है जैसे **"जातिः"-साधर्म्य वैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः**। (न्यायदर्शन, १–२–५६) अर्थात् विवाद करना और सब नियमों की उपेक्षा करना **"जाति"** कहाता है। **"निग्रह-स्थान"-विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रह स्थानम्**। (न्यायदर्शन, १–२–६०) अर्थात् वक्ता के कहे हुए को उल्टा समझना और विवाद करना **"निग्रह"** स्थान है, जाति और निग्रह स्थान कई प्रकार के हैं। **"हेत्वाभासः"** ? –जो हेतु सा लगे, परन्तु साध्य पर ठीक न बैठे, वह **हेत्वाभास है**। यथा–**"सव्यभिचार, विरूद्ध, प्रकरणसम साध्यसम, कालतीता हेत्वाभासः"**। (न्यायदर्शन, १–२–४५) अर्थात्–सव्यभिचार अर्थात् अनैकान्तिक, अतिव्याप्ति, विरुद्ध प्रकरणसम, साध्यसम, अतीत काल ये **"हेत्वाभास"** है।

(३) वितण्डा–

"स प्रतिपक्षस्थापना हीनो वितण्डा"। (न्यायदर्शन, १–२–४४) प्रतिपक्ष, पक्ष स्थापना के बिना ही विवाद करने लगना **वितण्डा** है। शास्त्रार्थ की ये मोटी–मोटी बातें स्मरण रखना चाहिये, शास्त्रार्थ दो प्रकार के होते हैं। (१)–सत्यासत्य के निर्णय के लिए। (२)–केवल हार जीत के लिए। हमने पौराणिक पण्डितों के साथ हमेशा यही देखा है कि छल से, दुंद–दपाड़े से, हुल्लड़ से, शास्त्रार्थों में अपनी जीत कराना। वाराणसी में ऋषि दयानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ में श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी ने तथा अन्य पौराणिक पण्डितों ने यही किया था। विषयान्तर कर देना, हुल्लड़ मचाना और आज तक भी उनका यह व्यवहार बदला नहीं है। मौलवियों तथा पादरियों से जितने भी शास्त्रार्थ आज तक होते रहे हैं, वे सभी मन्तक के अनुसार ही होते रहे हैं।

शास्त्रार्थों में ऐसे हुल्लड़बाजों से रक्षा के लिए मजबूत स्वयं सेवकों का एक दल तैयार रखना चाहिए, शास्त्रार्थ में उत्तेजित भी कभी न होना चाहिये उत्तेजित होने वाला शास्त्रार्थकर्त्ता पराजित हो जाता है। प्रमाण सही होने चाहिये, और अपने स्वयं देखे ग्रन्थों के ही हों, न कि दूसरों के बताये हुए। दूसरों पर निर्भर रहना भी शास्त्रार्थ में हार का कारण बन जाता है। झूठे प्रणाणों से छल कपट से नैतिकता नष्ट हो जाती है। धर्मोपदेशकों को कभी कचहरी के वकीलों की नकल नहीं करनी चाहिए, हार हो या जीत ! नैतिकता और सत्य का नाश न होने पावे यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए। पौराणिकों के शास्त्रार्थ हमने देखे हैं। नैतिकता, सभ्यता और सत्य का गला, ये लोग घोट डालते हैं। विशेषकर श्री माधवाचार्य का तो आधार ही कुतर्क, छल, और असत्य रहते हैं। मुसलमान–ईसाई विद्वान् लज्जायुक्त होते हैं पर ये माधवाचार्य आदि पौराणिक पण्डित लज्जा को दूर भगा देते हैं।

"अध्यक्ष"–

शास्त्रार्थ में एक उत्तम अध्यक्ष होना चाहिए, जिसका जनता पर प्रभाव हो, प्रबन्ध में निपुण हो, पक्षपात रहित हो, परन्तु उसे निर्णय देने का अधिकार नहीं है। निर्णय तो जनता खुद अपने मन में करेगी। जनता भी प्रत्यक्ष निर्णय नहीं दे सकती जनता के विचार बदलने के लिए ही शास्त्रार्थ किये जाते हैं। हार जीत के

लिए नहीं। जनता का ज्ञान बढ़े, तर्कों को समझें, पर यह काम शास्त्रार्थों में शान्ति रखने से होता है। अध्यक्ष महोदय समय का निर्देश करेंगे। और वक्ता को बदजुबानी करने से रोकेंगे। कोई भी पक्ष दुराग्रह करे तो अध्यक्ष उसे न माने। स्वयंसेवक बलशाली व चौकन्ने और सावधान होने चाहिये, जो हुल्लड़ करने वालों एवं झगड़ा उठाने वालों को बाहर निकाल सकें, पुलिस का प्रबन्ध भी रहे तो अच्छा है।

''प्रमाण''–

शास्त्रार्थ में प्रमाण उन ग्रन्थों के होने चाहिये जिनको दूसरा पक्ष स्वीकार करता हो तथा बुद्धि और तर्क संकत हो।

''ग्रन्थ''–

शास्त्रार्थ जिस विषय पर भी हो उस विषय से सम्बद्ध प्रमाणिक ग्रन्थ अपने साथ रखने चाहिये।

''लिखित शास्त्रार्थ''–

यह घरों पर बैठे–बैठे भी हो सकते हैं। इसके लिए सभा की आवश्यकता नहीं है। परन्तु समय नष्ट करने के लिए पौराणिकों ने यह निराला ढंग निकाल रक्खा है कि–**''शास्त्रार्थलिखित हो'' और ''संस्कृत में ही हो''** इससे जनता के पल्ले कुछ नहीं पड़ता, संस्कृत जानने वा व्याकरण अथवा दर्शन पर शास्त्रार्थ होना विद्या पर शास्त्रार्थ है, धार्मिक शास्त्रार्थ के लिए संस्कृत बोलने की आवश्यकता नहीं है। सम्भव हो तो शास्त्रार्थ के कथोप–कथन को **''टेप रिकार्ड''** पर लिया जावे।

असंगति और प्रकरण विरुद्धता–

शास्त्रार्थ को मुख्य पक्ष से हटाकर अन्यथा मोड़ देना **''असंगति और प्रकरण विरुद्धता''** कहना कहाता है। यह काम धूर्त्त, बेईमान, शास्त्रार्थकर्त्ता करते हैं, हमारे शास्त्रार्थ कर्त्ताओं को इस विषय में सावधान रहना चाहिये।

शास्त्रार्थ भारत की पुरानी परम्परा है, महाराजा जनक की सभा में शास्त्रार्थ होते रहते थे, जैन, बौद्ध, चार्वाक, और वैदिक ब्राह्मणों में शास्त्रार्थ चलते रहे। शास्त्रार्थ करने से स्वाध्याय की रूचि बढ़ती है ईसाई और पौराणिक तो शास्त्रार्थों में अक्सर भाग लेते रहते हैं। हमें मुसलमानों एवं अन्य मतावलम्बियों को भी सप्रेम समझा कर शास्त्रार्थों में आगे लाना चाहिये।

निवेदक–
''बिहारीलाल शास्त्री'' ''काव्यतीर्थ''
(बरेली)

शास्त्रार्थ करने व कराने के सामान्य नियम

सर्व पाठकों को सूचित करना है कि "**शास्त्रार्थ के सामान्य नियम**" जिन्हें अमर स्वामी जी महाराज ने संक्षेप में "**निर्णय के तट पर भाग प्रथम**" के पृष्ठ संख्या १३ से १७ में उद्धृत किया है। पाठकों से निवेदन है कि उपरोक्त विषयक स्वामीजी महाराज का लेख अवश्य पढ़ें जिससे शास्त्रार्थ करने व कराने सम्बन्धी पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।

"सम्पादक"

सूचना

सभी पाठकों को सूचित किया जाता है कि प्रस्तुत श्रृंखला के ग्रन्थ "**निर्णय के तट पर**" के पांच भाग प्रकाशित हो चुके हैं। छटा भाग तैयारी में चल रहा है। जिन सज्जनों के पास उक्त ग्रन्थ का कोई भी भाग न हो वह प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित् करें। धन्यवाद !!

"कार्यालय सहायक"
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
गाजियाबाद

विषयानुक्रमणिका

शास्त्रार्थ संख्या	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या

नोट - एक सौ बारह शास्त्रार्थ पूर्व प्रकाशित **निर्णय के तट पर "चौथे भाग"** में आ चुके हैं।

११३.	**"नागलिया शहजादपुर"** जिला–अलवर (राजस्थान)	आचार्य राजकुमार शास्त्री तथा आचार्य भवानी शंकर जी	१९९१ ई०	अद्वैतवाद या त्रैतवाद ?	२१
११४.	**"लाहौर"** (वर्तमान पाकिस्तान)	महात्मा हंसराज जी व महात्मा मुन्शीराम जी तथा पण्डित गोपीनाथ कश्मीरी	१८९८ ई०	कितने शास्त्रों का नाम वेद है ?	२९
११५.	**"कासगंज व टोंक"** के बीच पत्राचार के माध्यम से	आचार्य डॉ० श्रीराम आर्य (कासगंज निवासी) तथा महन्त सीताराम दास शास्त्री (टोंक–राजस्थान निवासी)	१९६५-१९६६ ई०	क्या ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ वेदानुकूल हैं ?	३२
११६.	**"गोहावर"** जिला–बिजनौर (उत्तर प्रदेश)	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती तथा पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र मुरादाबादी	१९०४ ई०	क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?	८४
११७.	**"तुलसीपुर"** जिला–गौण्डा (उत्तर प्रदेश)	तर्करत्न लक्ष्मीनारायण शास्त्री तथा मौलवी अहसान उल्ला साहब	१९८७ ई०	इस्लाम की तालीम	९९
११८.	**"लखनऊ"** (उत्तर प्रदेश)	पण्डित अखिलेश कुमार लखनवी तथा पण्डित वेद भूषण जी हैदराबाद	१९८८ ई०	क्या प्रत्येक वेद मन्त्र के आरम्भ में **"ओ३म"** बोलना चाहिये ?	१०३
११९.	**"शाहपुर-अल्लिपुर"** जिला–मुजफ्फरपुर (बिहार)	पं० जे०पी० चौधरी, काव्यतीर्थ तथा पण्डित अयोध्यादास, व्याकरणाचार्य	१९५५ ई०	क्या मृतक श्राद्ध वेद विरूद्ध है ?	११२

शास्त्रार्थ संख्या	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
१२०.	**"गढ़ सिसई"** जिला–समस्तीपुर (बिहार)	पण्डित जे०पी० चौधरी, काव्यतीर्थ तथा पण्डित मुक्तिनाथ झा, ज्योतिषाचार्य	१६५८ ई०	क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?	११७
१२१.	**"बून्दी"** जिला–कोटा (राजस्थान)	स्वामी नित्यानन्द जी, व स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, तथा पण्डित नवनन्दाचार्य व पण्डित गंगा सहाय जी एवं अन्य दो पण्डित	१८८८ ई०	क्या ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद हैं ?	१२३
१२२.	**"चरखी दादरी"** जिला–भिवानी (हरियाणा)	पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर तथा पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री	१६८६ ई०	परमेश्वर निराकार है या साकार ?	१६२
१२३.	**"शास्त्रार्थ प्रदीप"** प्राचीन ग्रन्थ से उद्धृत	महाशय रहतुलाल जी आर्य तथा महन्त रलियाराम अमृतसरी	१६४८ ई०	आर्य समाज की मान्यताएं	१७१
१२४.	**"लुधियाना"** (पंजाब)	डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार तथा मौलाना ....साहब	१६१५ ई०	क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है ?	१६१
१२५.	**"कानपुर"** (उत्तर प्रदेश)	तार्किक शिरोमणि ब्रजमोहन झा तथा पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	१६१८ ई०	पुराण वैदिक है या अवैदिक ?	१६६
१२६.	**"कानपुर"** (उत्तर प्रदेश)	तार्किक शिरोमणी ब्रजमोहन झा तथा पण्डित कालूराम शास्त्री	१६१८ ई०	क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?	२१४
१२७.	**"कानपुर"** (उत्तर प्रदेश)	तार्किक शिरोमणी ब्रजमोहन झा तथा पण्डित कालूराम शास्त्री	१६१८ ई०	क्या मूर्ति पूजा वेदानुकूल है ?	२२२

शास्त्रार्थ संख्या	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
१२८.	**"धर्मनगर"** यमुना तट (देहली)	तार्किक शिरोमणी व्यासदेवजी शास्त्री तथा पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री पण्डित मायादत्त जी पाण्डेय	१६४४ ई०	क्या यज्ञों में पशुहिंसा करना वैदिक है ?	२३४
१२६.	**"फाफामऊ"** इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)	महाशय प्रभुदयाल आर्य तथा पण्डित हनुमतदत्त त्रिवेदी	१६३४ ई०	क्या "शिवलिंग" शिवजी की मूत्रेन्द्रिय नहीं है ?	३१४
१३०.	**"हुगली"** जिला—चौबिस परगना (पश्चिम बंगाल)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पण्डित ताराचन्द जी तर्करत्न	१८७३ ई०	प्रतिमा पूजन विचार	३२६
१३१.	**"मेला-चांदापुर"** जिला—शाहजहांपुर (उत्तर प्रदेश)	स्वामी दयानन्द सरस्वती व मुन्शी इन्द्रमणी तथा मौलवी मौहम्मद कासिम साहब व पादरी स्काट साहब	१८७७ ई०	जगत रचना तथा मुक्ति विषय	३४५
१३२.	**"जालन्धर"** (पंजाब)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा मौलवी अहमद हुसैन साहब	१८७७ ई०	चमत्कारों की सत्यता	३६६
१३३.	**"जालन्धर"** (पंजाब)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा मौलवी अहमद हुसैन साहब	१८७७ ई०	पुनर्जन्म की वास्तविकता	३७६
१३४.	**"अजमेर"** (राजस्थान)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पादरी ग्रे साहब	१८७८ ई०	क्या तौरेत और इन्जील ईश्वरीयकृत पुस्तकें हो सकती हैं ?	३८१
१३५.	**"बरेली"** (उत्तर प्रदेश)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पादरी टी०जी० स्काट साहब	१८७६ ई०	पुनर्जन्म होता है अथवा नहीं ?	३६२
१३६.	**"बरेली"** (उत्तर प्रदेश)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पादरी टी०जी० स्काट साहब	१८७६ ई०	क्या ईश्वर देह धारण करता है ?	४०२

शास्त्रार्थ संख्या	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
१३७.	"बरेली" (उत्तर प्रदेश)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा पादरी टी०जी० स्काट साहब	१८७६ ई०	क्या ईश्वर पाप क्षमा भी करता है ?	४१२
१३८.	"मसूदा" जिला–अजमेर (राजस्थान)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा जैन साधु सिद्धकरण जी	१८८१ ई०	जैन सम्प्रदाय की मान्यताएं	४२२
१३९.	"मसूदा" जिला–अजमेर (राजस्थान)	राव साहब बहादुर सिंह जी तथा बाबु बिहारी लाल ईसाई	१८८१ ई०	ईसाई मत की तालीम	४३३
१४०.	"मसूदा" जिला–अजमेर (राजस्थान)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा कबीर पन्थी साधु	१८८१ ई०	कबीर पन्थ की मान्यताएं	४३७
१४१.	"उदयपुर" मेवाड़ राज्य (राजस्थान)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिटैन्डेन्ट पुलिस	१८८२ ई०	१. इस्लामी पुस्तक कौन सी है ? २. संसार के सब मनुष्य एक ही जाति है वा कई जातियों के ? ३. मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?	४४०
१४२.	"उदयपुर" मेवाड़ राज्य (राजस्थान)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिटैन्डेन्ट पुलिस	१८८२ ई०	१. वेद किसकी रचना है ? २. पुराण मत की पुस्तक है या विद्या की ?	४५०
१४३.	"उदयपुर" मेवाड़ राज्य (राजस्थान)	स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिटैन्डेन्ट पुलिस	१८८२ ई०	वेद में अन्य धर्मों की पुस्तकों से अलग क्या विशेषता है ?	४५५
१४४.	"हापुड़" जिला–गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)	अमर स्वामी सरस्वती तथा पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	१९६३ ई०	वैदिक मान्यताओं की सत्यता ?	४५६

शास्त्रार्थ संख्या	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
१४५.	"टपरी" जिला–सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)	रईसुल मनाज़िरीन पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर तथा १. मशहूर मनाज़िर मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब २. मौलवी अब्दुल समद साहब ३. मुंशी अब्दुल अजीज साहब उर्फ "जगदम्बा प्रसाद" ४. शेख अब्दुल अजीज साहब ५. मौलवी अहमद अली साहब, मेरठी ६. मौलवी अहमद हसन साहब ७. मौलवी अब्दुल हक़ साहब देहलवी ८. मौलाना अबु मौहम्मद साहब, इमाम ९. मौलवी महमूद हसन साहब, देवबन्दी १०. मौलाना अब्दुल मौहम्मद हसन साहब अरबी–फ़ाज़िल ११. मशहूर मनाज़रकर्त्ता हकीम इरतज़ा अली साहब	१९०६ ई०	**इस्लाम की ओर से आर्य समाज पर निर्धारित विषय–** १. जीव और प्रकृति का अनादित्व २. क्या कानूने कुदरत के खिलाफ खुदा अमल नहीं करा सकता ? ३. क्या बिना कारण के कार्य का इज़हार नहीं हो सकता ? ४. खुदा को त्रिकालदर्शी कहना ज़हालत है। **आर्य समाज की ओर से इस्लाम पर निर्धारित विषय–** १. अल्लाह साकार है या निराकार ? २. कुरान शरीफ में वर्णित चमत्कार कानूने कुदरत व फ़ितरत के खिलाफ है या मुवाफ़िक ? ३. प्रकृति और जीव के नई पैदा होने वाली वस्तु का सबूत कुरान शरीफ़ से साबित करना। ४. क्या कुरान शरीफ़ इलहामी किताब है ?	४६३

नोट- उपरोक्त एक सौ पैंतालीसवें शास्त्रार्थ के साथ ही इस शास्त्रार्थ श्रृंखला का यह पांचवाँ भाग समाप्त होता है। शेष शात्रार्थ अगले छटे भाग में आयेंगें ?

☆ **प्रस्तुत ग्रन्थ पर प्राप्त सम्मतियाँ** ५३८

☆ **अमर स्वामी जी महाराज कृत "अमर सूत्र"** ५५९

☆ **हमारे कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशनों की संक्षिप्त सूची** ५६०

------------ : o : ------------

निर्णय के तट पर

(शास्त्रार्थ संग्रह – भाग ५)

एक सौ तेरहवें शास्त्रार्थ से आरम्भ

☆

☆

☆

एक सौ तेरहवां शास्त्रार्थ–

स्थान : ब्रह्मचारी लाल चन्द जी का आश्रम, ग्राम–नांगलिया–शहजादपुर, जिला अलवर (राजस्थान)

दिनांक : २६–१–१६६१ ई०

विषय : अद्वैतवाद या त्रैतवाद?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री आचार्य राजकुमार जी यादव शास्त्री

सहायक : श्री स्वामी देवानन्द जी,
श्री राधेश्याम जी शास्त्री
श्री प्यारे लाल जी आर्य

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित भवानी शंकर जी आचार्य
(शिष्य श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री)

सहायक : श्री पण्डित देवदत्त जी वेदाचार्य
श्री रामस्वरूप जी यादव
श्री वंशीधर जी,

शास्त्रार्थ के निर्णायक के रूप में "अध्यक्ष" : श्री आदित्य ब्रह्मचारी घनश्याम जी शास्त्री

उपाध्यक्ष : श्री ज्ञान चन्द जी,

सयोंजक : श्री ब्रह्मचारी लाल चन्द जी (आश्रम के व्यवस्थापक)

नोट :

१. यह शास्त्रार्थ रात्रि साढ़े ग्यारह बजे से प्रारम्भ होकर रात्रि ढ़ाई बजे तक चला, यह तीन घंटे का शास्त्रार्थ अपने आपमें बहुत ही महत्वपूर्ण है।

२. यह शास्त्रार्थ सामग्री "**श्री फूलचन्द शर्मा निडर**" भिवानी (हरियाणा) द्वारा प्राप्त हुई, हम उनके हृदय से आभारी हैं।

"लाजपतराय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

मैं परम तपोनिष्ठ, परम तेजपुन्ज, परमादरणीय, श्री आदित्य ब्रह्मचारी घनश्याम जी शास्त्री के पास उनके अपने आश्रम, ग्राम–बालावास, तहसील, बानसूर, जिला अलवर (राजस्थान) गया हुआ था। इन्होंने बताया कि दिनांक २६–१–१९८९ ई० को ग्राम–नांगलिया शहजादपुर, तहसील–बहरोड़ में रात्रि को सत्संग है उसमें मुझे जाना है क्योंकि ब्रह्मचारी लालचन्द जी के अनेक निमन्त्रण आ चुके हैं। तुम भी चलो। तो मैने कहा कि–मेरा स्वास्थ्य खराब चल रहा है तथा हमारी परिक्षाएं भी निकट हैं, पाठशाला में जाना है, उन दिनों मैं हरियाणा संस्कृत विद्यापीठ बघौला, पलवल, जिला फरीदाबाद (हरियाणा) में आचार्य के अन्तिम वर्ष में पढ़ता था। उनके पुनः विशेष आग्रह पर चल पड़ा वे ग्यारह वर्ष से निरान्न व्रत पर थे।

रात्रि आठ बजे सत्संग प्रारम्भ हुआ और वक्ताओं में मेरा नाम भी लिख लिया गया, वहां दूर–२ से पधारे विद्वान साधु–सन्यासी, त्यागी–तपस्वी, तथा शास्त्री एवं आचार्य–भजनोपदेशक आदि सभी मत मतान्तरों के एकत्रित होते हैं, यह स्थान विशेषकर नवीन वेदान्तियों से घिरा हुआ है। जब मेरी बारी भी व्याख्यान देने के लिए आई तो मैंने त्रेतवाद परक व्याख्यान दिया तदोपरान्त एक सज्जन जो बहुत ही कम पढ़े–लिखे थे, केवल अन्धश्रद्धा के वशीभूत नवीन वेदान्ती बने हुए थे, उन्होंने खड़े होकर अपनी अनर्गल युक्तियों से त्रैतवाद का खण्डन व अद्वैतवाद का मण्डन करने लगे, मेरी कुछ युक्तियों व तर्कों से वह निरुत्तर होकर मौन बैठ गये।

अगले वर्ष अर्थात् दिनांक २६–१–१९९० ई० को मुझे पुनः आमन्त्रित किया गया। यहां पर गत ग्यारह वर्षों से प्रतिवर्ष २६ जनवरी की रात्रि को यह सत्संग होता चला आ रहा है। गतवर्ष वाले नामधारी वेदान्ती जिनको वेदान्त का–क, ख, ग, भी नहीं आता था, वह दूसरे अपने साथियों को लेकर आये तथा रात्रि में सत्संग के समय पुनः इसी विषय पर अपनी मूर्खता दर्शाते हुए नुक्ता–चीनी करने लगे, मैंने सभी को यथोचित्त उत्तर देकर निरुत्तर कर दिया तथा मैंने कहा कि–ये लोग अद्वैतवाद में बुरी तरह फंसे हुए हैं। कोई अन्य नवीन वेदान्ती अपने पक्ष की पुष्टी में आना चाहे तो सादर आमन्त्रित है। तब पण्डित देवदत्त जी वेदाचार्य सामने आये, और संस्कृत में वेदों के नाम पर पुराणों के श्लोक बोलने लगे जो अद्वैतवाद को सिद्ध करने के पक्ष में थे। मैंने उसी वक्त संस्कृत में ही उनको झाड़ा तथा कहा कि– **"आप जैसे वयोवृद्ध व विद्वान व्यक्ति को वेदों के नाम से पुराणों के श्लोक बोलना शोभा नहीं देता।"** इतना कहते ही वह निरुत्तर होकर अपने स्थान पर चले गये, परिणाम स्वरूप नवीन वेदान्तियों का जन–जन पर से इनकी योग्यता का पर्दाफाश हो गया।

इस वर्ष दिनांक २६–१–१९९१ ई० को भारी मोर्चाबन्दी के साथ पण्डित भवानी शंकर आचार्य जो **"पौराणिक विद्वान शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री"** के अनेक शास्त्रार्थों में सहयोगी एवं उनके शिष्य रहे हैं। बहरौड़ निवासी जो इन नवीन वेदान्तियों की दृष्टि में महाविद्वान समझे जाते थे, उनको सामने लाये। मुझे भी पत्र पर पत्र देकर विशेष आग्रह के साथ निमन्त्रित किया गया। क्योंकि ये लोग अपनी पिछली कसक को मिटाना चाहते थे, परन्तु उनकी आशा निराशा में बदल गई। वैसे पण्डित भवानी

शंकर जी बहुत अच्छे विद्वान व्यक्ति हैं, बहुत सरल हृदय तथा व्यवहार कुशल भी हैं परन्तु न जाने ऐसे व्यक्तियों के बहकावे में वह कैसे आ गये ?

गत वर्ष वाले नवीन वेदान्तियों में से ही एक नवीन वेदान्ती इनका शिष्य भी था तथा उनका पत्रवाहक बन कर आया, उसको पण्डित भवानी शंकर जी ने शास्त्रार्थ के आरम्भ में कुछ बोलने को कहा तथा कुछ भजनोपदेश हुए व लगभग ३० मिनट तक अन्य कुछ विद्वानों के उपदेश हुए तदोपरान्त शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। इसका क्या परिणाम हुआ, वहां पर उपस्थित श्रोताओं पर क्या असर पड़ा ? जिसमें इन नवीन वेदान्तियों को कहीं मुह छिपाने को भी जगह नहीं मिली तथा पण्डित भवानी शंकर जी भी अपनी भूल पर पश्चाताप करते रहे तथा सदा करते रहेंगे, आप भी इस मात्र तीन घंटे के शास्त्रार्थ को पढ़िये और लाभ उठाईये।

निवेदक–

"आचार्य राजकुमार यादव शास्त्री"

ग्राम एवं पत्रालय – पत्थर्वा (निकट–सतनाली)

जिला–महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)

स्व. विरजानन्द दण्डी
मन्दर्भ पु
ग्रहण क्रमांक 5504
न्द महिला म

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित देवदत्त जी वेदाचार्य–

प्यारे सज्जनों ! उपनिषदों में अनेक स्थानों पर अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। श्री मान ने अभी अपने व्याख्यान में, ईश्वर, जीव, प्रकृति ये तीन अनादि तत्व बताये हैं। प्रकृति को **"सत्"**, जीव को **"सत्चित्"** तथा ईश्वर को **"सत्चित् आनन्द"** बताया है। अर्थात् प्रकृति भी सत् है, जीव भी सत् है, और ईश्वर भी सत् है। तो ये तीन सत् हुए, तब तो श्री मान जी बतायें कि– सत् तीन प्रकार का होता है या एक प्रकार का ? *यह सारा संसार मिथ्या है। और भ्रम से भासता है एक ब्रह्म के सिवाय कुछ भी नहीं है, जिस प्रकार मकड़ी जाला बनाती है उसका निमित्त एवं उपादान कारण मकड़ी ही है, इसी भाँति ब्रह्म भी संसार का कारण है।* निमित्त कारण व्यापक कैसे हो सकता है ? कृपया श्री मान जी बतायें ?

श्री आचार्य राजकुमार जी यादव शास्त्री–

सज्जनों उपनिषदों में अद्वैत का अर्थ सब कुछ ब्रह्म ही नहीं है। अद्वैत शब्द संख्यावाचक है अर्थात् ईश्वर एक है। दो, तीन या चार नहीं, जैसे अथर्ववेद में कहा है– **"न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थोनाप्युच्यते नाष्टमो न नवमों दशमो नाप्युच्यते स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणिति यच्च न तमिदं निगतं सहः स एष एक एक वृदेक एव......"** वाक्यार्थ बोध में चार कारण होते हैं। आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य, जैसे किसी बोर्ड पर लिखा है कि– **"यहां पर देशी घी मिलता है"** यदि पर शब्द को देशी शब्द के साथ लगा कर बोला या लिखा जायेगा तो अर्थ बनेगा कि– **"यहां परदेशी घी मिलता है"**। अर्थात् डालडा घी मिलता है। और यहां के साथ पर को लगाया तो अर्थ बनेगा **"यहां पर देशी घी मिलता है"**। अर्थात्–शुद्ध देशी घी से तात्पर्य है। **"मञ्चाःक्रोशन्ति"** का शाब्दिक अर्थ **"मचान पुकार रहे हैं,"** बनता है। मचान जड़ है, उनमें पुकारने का सामर्थ्य नहीं है, इसलिए भावार्थ लिया जायेगा कि– मञ्चस्थ मनुष्य पुकार रहे हैं। इसी तरह– **"गंगायां घोषः"** का अर्थ बनता है– **"गंगा में झोपड़ी है।"** परन्तु गंगा में पानी का तीव्र वेग है। और झोपड़ी हल्की–फुल्की होती है इसलिए तीव्र वेग में ठहर नहीं सकती, अतः भावार्थ लिया जायेगा कि– गंगा के तट पर झोपड़ी है। *इसलिए कहने का तात्पर्य यह है कि, उपनिषदों का अभिप्राय सब कुछ ब्रह्म ही नहीं है।*

और आगे सुनिये ये संसार को मिथ्या बताते हैं, और कहते हैं कि ये संसार भ्रम से भासता है तो सज्जनों ! यह जो शास्त्रार्थ हो रहा है ये सब कुछ मिथ्या व भ्रम में ही हो रहा है ? आप लोग यहां मिथ्या बैठे सुन रहे हो ? और भ्रम में ही सुन रहे हो। ब्रह्मचारी लाल चन्द जी ने इसका आयोजन कराया तो क्या यह सब मिथ्या ही कराया, और यह सब क्या भ्रम के वशीभूत ही करा रहे हैं,? यहां माईक व शामियाना जो लगा हुआ है यह सब मिथ्या और भ्रम में लगा हुआ है ? श्री मान जी की जिव्हा शरीर में है और शरीर जगत में है। इससे जो कुछ कहा जा रहा गया है सब मिथ्या व भ्रम में कहा जा रहा है। अतः सिद्ध हुआ कि ये अद्वैत को सिद्ध करते हैं, त्रैत का खण्डन करते हैं, इनकी वाणी से कहा गया मिथ्या है तो अद्वैत मिथ्या हुआ त्रैतवाद सत्य सिद्ध हुआ।

आगे इन्होनें सत् के सम्बन्ध में पूछा तो सत् एक ही प्रकार का होता है। तीन प्रकार का नही। सत् सदैव रहने वाली वस्तु को कहते हैं, जिसका कभी भी विनाश या अभाव न हो और अनादि भी हो अर्थात् ईश्वर भी है, जीव भी है तथा प्रकृति भी है। तीनो अनादि नित्य हैं। निमित्त कारण ब्रह्म सर्वव्यापक है, यह सर्वतन्त्र

सिद्धान्त है आपके मतानुसार भी तो ईश्वर जगत का निमित्त कारण है, आप उपादान भी उसी को मानते हैं। हम उपादान ईश्वर को न मानकर प्रकृति को मानते हैं। इसलिए आपका प्रश्न ही गलत है, पहले अच्छी प्रकार पढ़कर आइये, आपको अपनी ही मान्यताओं की जानकारी नहीं है। बन गये वेदान्ती ! और देखो, मकड़ी के दृष्टान्त से इन्होंने बताया कि जिस भाँति मकड़ी अपने अन्दर से ही जाला बनाती है उसी प्रकार ईश्वर भी जगत को बनाता है, यहां पर भी इनका अद्वैत सिद्ध नहीं होता, अपितु त्रैतवाद ही सिद्ध होता है। जैसे जाले को बनाने के लिए निमित्त कारण मकड़ी का जीव उपादान कारण मकड़ी का जड़ शरीर और जाला अर्थात् संसार के किसी भी कार्य को बनाने के लिए तीन कारणों की आवश्यकता होती है, एक–निमित्त कारण, दूसरा उपादान कारण, तीसरा साधारण कारण,। निमित्त कारण चेतन होता है। उपादान कारण जड़ होता है, साधारण कारण साधन होता है, उदाहरण के तौर पर मान लो हमें एक घड़ा बनाना है, तो उसके बनाने के लिए निमित्त कारण कर्त्ता अर्थात् कुम्हार की, उपादान कारण मिट्टी–पानी अर्थात् मैटर की और साधारण कारण कुम्हार के यन्त्र अर्थात् चाक आदि की आवश्यकता होती है, यदि कुम्हार न हो, मिट्टी–पानी और औजार हों, तब भी घड़ा नहीं बन सकता और कुम्हार और मिट्टी हो परन्तु औजार न हों तब भी घड़ा नहीं बन सकता ! इन तीनों में किसी एक के अभाव में घड़ा नहीं बन सकता। बन्धुओं ! इसी प्रकार संसार को बनाने के लिए तीन अनादि कारणों की आवश्यकता है। इन तीनों में से किसी एक के अभाव में जगत नहीं बन सकता। अर्थात् निमित्त कारण चेतन कर्त्ता **"ईश्वर"**, उपादान कारण जड़–**"प्रकृति"** और साधारण कारण **"जीव"**। अब देखो इनकी बुद्धि का नमूना ! ये कहते हैं कि निमित्त कारण व्यापक कैसे हो सकता है ? निमित्त कारण ईश्वर सर्वव्यापक है। यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है जो युक्ति व प्रमाणों से सिद्ध है। यदि चाहो तो मैं युक्ति व प्रमाणों से सिद्ध कर दूंगा। परन्तु मेरा बोलने का समय समाप्त होने को है अगली बारी में देखूंगा। अन्त में मैं आपसे ही पूछना चाहता हूँ यदि निमित्त कारण चेतन ईश्वर व्यापक नही तो क्या जड़ प्रकृति व्यापक है? यदि ये व्यापक है तो क्या ईश्वर व्याप्य है? और आपका अद्वैत किसकी अपेक्षा से है ?

श्री आचार्य पण्डित भवानीशंकर जी–

"बोलो सनातन धर्म की जय".................... देखो श्री मान ने तीन अनादि तत्व बताये हैं, तीन अनादि तत्व नहीं होते। **"लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धि न तु प्रतिज्ञामात्रेण................"** इस न्याय के अनुसार श्री मान तीन अनादि पदार्थों का पृथक्–पृथक् लक्षण व प्रमाण दें, कहां पर उनको अनादि बताया गया है ?

श्री आचार्य राजकुमार जी यादव शास्त्री–

मान्यवर, आचार्य जी ! इन तीन तत्वों को मैं ही क्या समस्त वेदादि सत्य शास्त्र अनादि बता रहे हैं, आपने तीनों के बारे में लक्षण व प्रमाण देने को कहा तो लीजिये लक्षण व प्रमाण ! **"क्लेशकर्म–विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः"** यह योग दर्शन का सूत्र है। **(समाधिपाद सूत्र–२४)** अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक, वासनाओं से रहित व अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र सृष्टिकर्त्ता, भर्त्ता, संहर्त्ता अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामि, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सर्वज्ञादि गुणों से युक्त ईश्वर है। आगे देखिये– **"इच्छा द्वेष, प्रयत्न, सुख दुखज्ञानान्यात्मनोलिंगम्"** इस न्याय दर्शन के सूत्र में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख, और ज्ञानादि लक्षणों से युक्त अल्पज्ञ, एकदेशी, कर्त्ता व भोक्ता जीव है। **"सत्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति"** सांख्यानुसार सतोगुण व रजोगुण की साम्यावस्था व परिणामी जड़ प्रकृति है। ये तो सार संक्षेप में तीनों के लक्षण शास्त्रोक्त बता दिये हैं, अब इनका प्रमाण भी लीजिये– **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। त्योरन्यः पिप्पलं स्वाइत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।** यह अथर्ववेद के आठवें मण्डल के

तीसरे काण्ड का अन्तिम मन्त्र है। इसमें अलंकार रूप में कहा है कि, एक वृक्ष है उस पर दो पक्षी बैठे हैं, एक पक्षी उसके फलों को खाता है, तथा दूसरा पक्षी साक्षी रूप में देखता है, प्रकृति को वृक्ष की उपमा दी है। क्योंकि वृक्ष भी जड़ है, तथा प्रकृति भी जड़ है, दोनों ईश्वर व जीव को पक्षियों की उपमा देते हुए तीनों को अनादि बताया है।

श्री आचार्य पण्डित भवानीशंकर जी–

देखो श्रीमान जी ने "**द्वा सुपर्णासयुजा......**" में तीन अनादि तत्वों का वर्णन बताया, इसमें दो पक्षियों का वर्णन है, और यह कोई प्रमाण भी नहीं, क्योंकि यह आधुनिक है, सुनो छः अनादि पदार्थ होते हैं, शुद्ध ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, अविधा, और इनका सम्बन्ध, ये सारे शास्त्रों में अनादि बताये गये हैं।

श्री आचार्य राजकुमार जी यादव शास्त्री–

प्यारे सज्जनों ! मान्यवर आचार्य जी ने कहा कि "**द्वा सुपर्णा........**" यह मन्त्र आधुनिक है और प्रमाण भी नहीं, बलिहारी जाँऊ आपकी बुद्धि पर ! आपकी बुद्धि तो अजायबघर में रखने योग्य है। आपको लोग आचार्य जी कहते हैं, परन्तु मालूम होता है आप शास्त्री भी नहीं हैं। वेद मन्त्रों को आप आधुनिक मानते हैं, और प्रमाणिक भी नहीं मानते। तो आप वैदिक सभ्यता और संस्कृति के जो दुश्मन हो चुके हैं, उनकी अग्रगण्य श्रेणी में गिनने लायक हैं, इससे आपकी अयोग्यता पर पक्की मोहर लग चुकी है, और– "**द्वा सुपर्णा सयुजा. ......**" वेद मन्त्र है वेद का वचन है। "**आन्ते सन्तं न जहात्यान्ति सन्तं न पश्यति। देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।**। अथर्व वेद की इस ऋचा के अनुसार, जो न कभी मरता है, न कभी पुराना अर्थात् जीर्ण होता है, ईश्वर का वेद अमर काव्य है, वेद रूपी ज्ञान उसका गुण है, ईश्वर उसका गुणी है, गुण और गुणी का समवाय सम्बन्ध होता है, अर्थात् अविनाशी, नित्य, शाश्वत सत्ता परमात्मा का "**द्वासुपर्णा...........**" रूपी ज्ञान कैसे आधुनिक व अप्रमाण हो सकता है ? अब इनके छः अनादि पदार्थों की बात देखो– शुद्ध ब्रह्म+माया के संयोग से ईश्वर बना। ब्रह्म+अविद्या के संयोग से जीव बना, जहां संयोग है वह अनादि कैसे हो सकता है ? इनके ब्रह्म और अविद्या ये दो बचते हैं, इससे अनेक अद्वैत की हानी होती है और इनके छः अनादि पदार्थे को ये जिस रूप में मानते हैं किसी भी सत्य शास्त्रों में प्रमाण नहीं हैं, ये तो निश्चल दासादि के बताये हुए हैं, इन्होंने कहा था कि, इनका सारे शास्त्रों में प्रमाण है तो आचार्य जी शास्त्रों के प्रमाण देकर सिद्ध करें।

श्री आचार्य पण्डित भवानीशंकर जी–

सज्जनो ! ब्रह्म जगत का अभिन्न मित्तोपादान कारण है। श्रीमान ने हमारे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। न ईश्वर, जीव, प्रकृति का लक्षण बताया, और न ही प्रमाण प्रस्तुत किया, केवल इधर उधर की बातों में समय गवां रहे हैं, सब बाह्य बातें की जा रही हैं, विषय से सम्बन्धित कोई नहीं हैं।

श्री आचार्य राजकुमार जी यादव शास्त्री–

वाह ! आचार्य जी वाह !! खूब कही, सारी कमी पूरी कर दी "**चौबे जी छब्बे जी बनने को चले थे परन्तु दूबे जी बन बैठे**" बन्धुओं आदरणीय आचार्य जी ने कहा कि श्री मान इधर–उधर की बातों में समय गवां रहे हैं। हमारे प्रश्नों को कोई उत्तर व प्रमाण नहीं दिया। मैं आपसे ही (यहां उपस्थित सभी लोगों से) पूछता हूँ कि क्या मैंने ईश्वर, जीव और प्रकृति का लक्षण नहीं बताया ? क्या "**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया. ....**" आदि वेद का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया ?

उपस्थित श्रौतागण–

हां ! हां !! दिया है, तथा वेद का प्रमाण भी प्रस्तुत किया था।

श्री आचार्य राजकुमार जी यादव शास्त्री–

फिर आचार्य जी यह कहते हैं, समय बरबाद करने के बारे में तो ये दोष तो आचार्य जी में ही है, आचार्य जी कहते हैं कि, मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया, मैं आप सभी यहां बैठे हुए भाइयों से पूछना चाहता हूँ कि क्या मैंने उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया था? सभा में से.......उत्तर दिया जा चुका है, ब्लकि आचार्य जी ने शास्त्री जी के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया..... चारों ओर हर्ष ध्वनि.......... भाइयों, शान्त हो जाओ, और सुनो, इन्होंने (आचार्य जी ने) ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीन अनादि तत्वों के लक्षण व प्रमाण पूछे थे, वो मैंने बतला दिये थे। परन्तु मैं पुनः बताये देता हूँ आचार्य जी भी कान खोल कर सुन लें, **"क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरूष विशेष ईश्वरः"** यह योग दर्शन का सूत्र है, क्लेश कर्म, विपाक और वासनाओं से रहित अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र सृष्टिकर्त्ता, भर्त्ता, संहर्त्ता, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामि, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव सर्वज्ञादि गुणों से युक्त ईश्वर है। **"इच्छाद्वेष प्रयत्न सुख दुःखज्ञानान्यात्मनोलिगंम्"** इस न्याय दर्शन के सूत्र के अनुसार इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञानादि लक्षणों से युक्त अल्पज्ञ एकदेशी कर्त्ता, भोक्ता जीव है। **"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृति"** इस साख्यं सूत्र के अनुसार–सतोगुण, तमोगुण, और रजोगुण की साम्यवस्था का नाम प्रकृति है। परिणामी, जड़तादि गुणों से युक्त तीनों अनादि तत्वों के संक्षेप में लक्षण बता दिये अब इनका प्रमाण भी सुनिये– **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिष स्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नजन्यो अभिचाकशीति।**। यह अथर्ववेद के अष्ठम् मण्डल के तृतीय काण्ड का अन्तिम मन्त्र है, इसमें अलंकार रूप में बताया है कि एक वृक्ष है, और उस पर दो पक्षी बैठे हैं, एक पक्षी उस वृक्ष के फलों को खाता है, दूसरा पक्षी साक्षी रूप में देखता है, यहां प्रकृति को वृक्ष की उपमा और दोनों ईश्वर व जीव को पक्षियों की उपमा दी गई है। इस मन्त्र में ईश्वर जीव व प्रकृति तीनों को अनादि बताया गया है। और भी अनेकानेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, आगे आचार्य जी ईश्वर को जगत का अभिन्निमित्तोपादान कारण बताते हैं, जगत् जड़ है, ईश्वर चेतन है, चेतन में जड़ का अभाव है। **"नासतो विद्यते भावःनाभावो विद्यते सतः"** इस न्याय सूत्र के अनुसार अभाव से भाव कैसे बन जायेगा अर्थात् चेतन, जड़ कैसे बन जायेगा? और वेदान्त के इस सूत्र का अर्थ बतायें– **"भोगमात्रसाम्येलिंगात् च"**!

नोट :–

श्री पण्डित भवानी शंकर आचार्य जी को कम सुनाई पड़ता था इसलिए उन्होंने अपने पास बैठे स्वामी देवानन्द जी से पूछा कि इस बार क्या–२ पूछा है? तो स्वामी देवानन्द जी ने आचार्य जी को बताया कि– इस बार पूछा गया कि– **चेतन ब्रह्म में जड़ का अभाव है तो अभाव से भाव कैसे बन जायेगा ?** और वेदान्त सूत्र– **"भोग मात्र साम्यलिंगात् च"** का अर्थ पूछा गया है। यह सुनकर पण्डित भवानी शंकर जी चुप्पी साध गये, तथा अध्यक्ष महोदय के प्रार्थना करने पर भी आचार्य जी उत्तर देने को खड़े नहीं हुए। अतः विवश होकर शास्त्रार्थ समाप्त करना पड़ा, तत्पश्चात निर्णायक महोदय ने अपना निर्णय सभा में सुनाया।

निर्णायक महोदय का निर्णय–

प्रिय बन्धुओं ! आज आपने शरद् ऋतु में शास्त्रार्थ सुनने के लिए जो कष्ट उठाया उसके लिए आप

लोगों को बार–२ धन्यवाद ! गत वर्षों में भी त्रैतवाद व अद्वैतवाद पर न्यूनाधिक चर्चायें चली किन्तु बिना किसी निर्णय के ही विषय से अलग हो गये, परन्तु आज विशाल सभा के समक्ष वही भूतपूर्व प्रश्न त्रैतवाद व अद्वैतवाद पर गवेषणात्मक ढंग से प्रमाणिक शास्त्रार्थ हुआ। जिसमें त्रैतवाद का पक्ष आचार्य राजकुमार जी शास्त्री की प्रतिज्ञा थी। "**विपक्षी पण्डित भवानी शंकर जी अद्वैतवाद को सिद्ध करने में पूर्णतः असफल रहे**", जिसको सारी सभा ने हर्ष ध्वनि के साथ अद्वैतवाद गलत है ! गलत है !! ऐसा कहकर स्वीकार किया, अपनी अयोग्यता को छुपाने के लिए– "**द्वासुपर्णासयुजा सखाया समानं वृक्षंपरिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वादृत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।**" इस वेद मन्त्र को आधुनिक बताया, व्याप्य, व्यापक को टच भी नही कर सके। भवानीशंकर जी को आकांक्षा, आसत्ति, तात्पर्य और योग्यता का पता भी नहीं, इसको जाना भी नहीं, मकड़ी का दृष्टान्त अधूरा व लचर था, क्योंकि इसमें त्रैतवाद ही सिद्ध है, ईश्वर, जीव, तथा प्रकृति तीनों हैं, जो प्रश्न त्रैतवाद पक्ष की ओर से किये गये थे उनका कोई उत्तर नहीं दिया गया। अतः श्रौताओं को पुनः ध्यान दिलाया जाता है कि, सारांश– "**त्रैतवाद सिद्ध है**"। महर्षि चाणक्य के अनुसार– "**यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्। लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।।** धन्यवाद।।

निवेदक–

"आदित्य ब्रह्मचारी घनश्याम शास्त्री"

एक सौ चौदहवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान	:	लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान)
दिनांक	:	अप्रैल १८९८ ई०
विषय	:	कितने शास्त्रों का नाम "**वेद**" है?
शास्त्रार्थकर्त्ता आर्य समाज की ओर से	:	(१) श्री महात्मा हंसराज जी,
	:	(२) श्री महात्मा मुन्शीराम जी, (स्वामी श्रद्धानन्द)
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री पण्डित गोपीनाथ कश्मीरी

नोट :–

यह शास्त्रार्थ सामग्री भी हमें "**महात्मा हंसराज ग्रंथावली**" के सौजन्य से ही प्राप्त हुई है।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

श्री पण्डित गोपीनाथ कश्मीरी सनातन धर्म सभा के मन्त्री थे। आप पौराणिक आरती **"ओ३म जय जगदीश हरे....."** के रचयिता **"पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी"** जी के चेले थे। पण्डित गोपीनाथ वही व्यक्ति हैं, जिन्होंने महात्मा मुन्शीराम जी पर मान–हानि का अभियोग चलाया था, परन्तु उस ऐतिहासिक अभियोग में महात्मा जी ने पण्डित जी को व्यभिचारी तथा गो–मांस का व्यापारी सिद्ध कर दिया। इस अभियोग का निर्णय दो सितम्बर १९०१ ई० को Jst. Calvert (न्यायाधीश श्री काल्वर्ट) ने सुनाया था। इन्हीं पण्डित गोपीनाथ ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान पर एक भावपूर्ण लेख में उनके गुणों वा सेवाओं की भूरि–भूरि प्रशंसा भी की थी[१]।

पण्डित जी के दो पत्र निकलते थे– एक का नाम था **"सनातन धर्म गजट" (उर्दू)**, तथा दूसरा **"मित्र विलास"** हिन्दी में निकलता था। पण्डित जी ने अपने उर्दू पत्र के अप्रैल १८९८ ई० के अंक में लाहौर तथा जालंधर में आर्यसमाज को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। इस चुनौती वाले लेख की भाषा अश्लील तथा आपत्तिजनक थी, यथा–जालंधरी आर्गन **"सद्धर्म प्रचारक"** पत्रिका पर **"लाख लाख लानत"** (धिक्कार) !

"सद्धर्म प्रचारक" के मुखपृष्ठ पर जो वेदमन्त्र अंकित होता था, उसके सम्बन्ध में पण्डित जी ने लिखा, "जो आपने काले–काले भैंस के अच्छरों (अक्षरों) में अपनी पत्रिका पर माटो लिखा हुआ है[२]।" अस्पृश्यता–निवारण के लिए शीश तली पर धरकर संघर्ष करने वाले धर्मवीर सोमनाथ रोपड़वालों को **"लौंडा"** तक लिखा। तथापि आर्यों ने शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार की। महात्मा मुन्शीराम तथा महात्मा हंसराज दोनों ने गालियों का उत्तर देने में तो असमर्थता प्रकट की, परन्तु धर्म–चर्चा के लिए पण्डित जी को कहीं भी शास्त्रार्थ करने के लिए अपनी सहमति दी। शास्त्रार्थ का मुख्य विषय पण्डित जी ने स्वयं ही अपने पत्र में दिया है– **"कितने शास्त्रों का नाम वेद है?"** पण्डित जी ब्राह्मण–ग्रन्थों, उपनिषदों तथा पुराणों को भी वेद कहते (मानते) थे।

महात्मा जी का जो शास्त्रार्थ पण्डित जी से हुआ था, ऐसा लगता है कि वह मौखिक था, लिखित नहीं था। महात्मा मुन्शीराम जी ने कहा था कि अच्छा होगा अगर शास्त्रार्थ लिखित हो। गोपीनाथ इसे अपने गजट में छापता था। **"आर्यगजट"** में आर्यसमाज ने भी छापा होगा, परन्तु वह अंक हमें नहीं मिला; तथापि, देहली से छपनेवाले **"वैदिक मैग्जीन"** (सम्पादक पण्डित कृपाराम) में इसका कुछ अंश छपा था। वहीं से हम यहां मुख्य–मुख्य बातें दे रहे हैं।

टिप्पणी–

[१] यह दुर्लभ लेख स्वामी श्रद्धानन्दकृत **"बन्दीघर के विचित्र अनुभव"** के साथ अनूदित करके दिया गया है।

[२] यह प्रसिद्ध ऋचा **"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे.........."** (यजुर्वेद ३६–१८) थी आश्चर्य वा दुःख की बात है कि किसी भी पौराणिक को वेद का यह उपहास वा निन्दा न चुभी।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

महात्मा हंसराज ने वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने तथा पुराण आदि के ईश्वरकृत न होने के प्रमाण में **"अत्रि स्मृति"** का यह श्लोक पढ़ा था।

वेदैर्विहीनाः पठन्ति शास्त्रं, शास्त्रैर्विहीनाः पुराणपाठाः।
पुराणहीनाः कृषयो भवन्ति, भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति।।

"जो लोग वेद नहीं जानते अथवा वेद जानने में असमर्थ हैं, वे शास्त्र पढ़ते हैं तथा जो शास्त्रों के भी योग्य नहीं, वे पुराण पढ़ते हैं। जो इसके भी अयोग्य हैं वे कृषि करते हैं, तथा जो कृषि के भी योग्य नहीं, वे भागवत पढ़ते हैं।"

"वेद ईश्वरीय ज्ञान है" इसके प्रमाण के लिए महात्मा जी ने यह ऋचा प्रस्तुत की–

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः, सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्, यजुस्तस्मादजायत।। (ऋग्वेद १०/९०/९)

उस पूजनीय प्रभु से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा छन्द अर्थात् अथर्ववेद उत्पन्न हुए।

इस पर पंडित गोपीनाथ ने कहा कि– "इस मन्त्र में सब वेद आदि शास्त्र जिनमें उपनिषद् पुराण; इतिहास आदि सम्मिलित हैं, उस प्रभु से उत्पन्न हुए बताए गए हैं, तथा इसमें अथर्ववेद का नाम नहीं। वह भी तो वेद है !"

इस वेदमन्त्र के अर्थों को तोड़–मरोड़कर आर्य सिद्धान्तों का प्रतिवाद करते हुए पंडित गोपीनाथ पौराणिक मान्यताओं का खण्डन कर गए।

महात्मा जी ने इस आक्षेप का क्या उत्तर दिया, वह विदित नहीं।

परन्तु पण्डित कृपाराम जी ने पंडित गोपीनाथ जी से पूछा कि **"यदि पुराण परमेश्वरकृत हैं"** तो पौराणिकों के इस श्लोक का क्या बनेगा?– **"अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः मिथ्याः............।"** अर्थात् "अठारह पुराणों के बनानेवाले सत्यवति के पुत्र व्यास जी थे।" भागवत में पुराणों को व्यासकृत बताया गया है[1]। यहां यह भी लिख दें कि महात्मा मुन्शीराम जी ने पंडित गोपीनाथ के प्रतिवाद में लिखा था कि उनके गुरू पंडित श्रद्धाराम की पुस्तक **"सत्यामृत प्रवाह"** का उर्दू–अनुवाद गोपीनाथ जी के मुद्रणालय से छपा था। उसमें पंडित गोपीनाथ ने स्वीकार किया है कि ब्राह्मण–ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण आदि वेद नहीं। पुराण व्यासकृत भी नहीं। फलित ज्योतिष को भी मिथ्या माना। मरणोपरान्त छपे पंडित जी के इस ग्रन्थ से पता चला कि यह सनातनी नेता १६ वर्ष से नास्तिक था, परन्तु उसे अपनी नास्तिकता प्रकट करने का साहस न हुआ।

हमने यहाँ महात्मा जी से पंडित गोपीनाथ के इस शास्त्रार्थ का आवश्यक अंश दे दिया है। कभी पूरा विवरण प्राप्त हुआ तो फिर प्रकाशित करवा दिया जावेगा।

टिप्पणी–

[1] आर्यसमाज आधुनिक पुराणों को व्यास ऋषि की रचना नहीं मानता। पंडित गोपीनाथ के गुरू श्रद्धाराम भी आर्यसमाज से इस विषय में सहमत थे।

"सम्पादक"

एक सौ पन्द्रहवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : पत्राचार के माध्यम से (लिखित शास्त्रार्थ)

दिनांक : २१-७-१९९५ ई० से १९-४-१९९६ ई० तक,

विषय : क्या ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ वेदानुकूल हैं?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री आचार्य डा० श्रीराम आर्य (कासगंज निवासी)

पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री महन्त सीताराम दास जी शास्त्री (टोंक निवासी)

नोट :–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "श्री आचार्य डा० श्रीराम आर्य" (कासगंज निवासी) द्वारा प्राप्त हुई है, उनके हम हृदय से आभारी हैं!

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

मई सन् १९९५ ई० में टोंक (राजस्थान) से एक व्यक्ति ने हमको पत्र लिखा था कि वहां के चार भुजा वाले मन्दिर के महन्त **"श्री सीताराम दास जी शास्त्री"** आपकी पुराण सम्बन्धी पुस्तकों को गलत बताते हैं, हमने उत्तर में उनको लिखा कि हमारी सभी पुस्तकें सत्य हैं, महन्त जी को हमारी पुस्तकों के जिस स्थल पर आपत्ति होगी हम उस पर अपने पक्ष का समर्थन कर सकेंगे। उस व्यक्ति ने हमारी एक पुस्तक के एक स्थल पर महन्त जी की आलोचना हमको लिख कर भेज दी। हमने प्रत्युत्तर लिख कर उनको भेज दिया। यह चर्चा कुछ आगे चली कि इसी बीच में महन्त जी के सात प्रश्न हमको उत्तर देने के लिए प्राप्त हुए, हमने भी उनको नौ प्रश्न उत्तर देने के लिए लिख कर उन्ही मध्यस्थ महाशय जी के माध्यम से भिजवा दिये। और साथ ही साथ महन्त जी के सात प्रश्नों का उत्तर भी दे दिया। महन्त जी ने हमारे एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, तथा केवल अपने ही द्वारा भेजे गये प्रश्नों पर शास्त्रार्थ की तीन–तीन टर्न निश्चित करके उन्हीं पर लेखबद्ध शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिया, इस प्रकार प्रथम अनियमित एवं अपूर्ण चर्चा के मध्य में ही यह विधिवत शास्त्रार्थ महन्त जी के प्रश्नों पर आगे जारी हो गया। महन्त जी के प्रश्न कोई नये प्रश्न नहीं थे, यही प्रश्न प्रायः सभी पौराणिक, आर्य समाज के समक्ष सदैव पेश करके यथोचित उत्तर पाते रहे हैं, और पाते हैं, फिर भी वे बार–२ उन्हीं प्रश्नों को पेश किया करते हैं, हमने उनमें से कई प्रश्नों के उत्तर दिल्ली के मिस्टर माधवाचार्य जी को **"माधवाचार्य को डबल उत्तर"** तथा **"सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था"** नामक पुस्तक में दिये थे, अतः इन दोनों पुस्तकों की एक–एक प्रति महन्त जी की सेवा में भिजवा दी ताकि उनके प्रश्नों का उत्तर उनको सविस्तार मिल जावे और उनका समाधान हो जावे। महन्त जी से उत्तर तो न बन सका, बल्कि उन्होंने अश्लील भाषा में गाली गलौच पूर्ण लेख हमको अपने दूसरे टर्न में लिख भेजा, हमने जब देखा कि विपक्षी **"दयानन्द के मुह पर तमाचा"** जैसी अति निम्नस्तरीय भाषा लिखने पर उतर आया है तो हमने भी पौराणिक देवताओं के निन्दापरक कुछ वाक्य महन्त जी का दिमाग सही करने को अपने दूसरे टर्न में लिख भेजे, उसपर विपक्षी बिल्कुल उन्मत (पागल) हो गया, और अति असभ्य भाषा में लगभग साठ गालियां उसने अपने तीसरे टर्न में हमको लिखी तथा महर्षि दयानन्द जी महाराज के पावन चरित्र पर उसने आक्रमण किया, जब हमने देखा कि हमारी तीखी चुटकी पर विपक्षी शास्त्रार्थ की मर्यादा को त्याग कर निरर्थक बकवास व गाली गलौच पर उतर आया है तो हमने अपने अन्तिम टर्न में उनके समस्त आक्षेपों का निराकरण करते हुए शास्त्रार्थ का उपसंहार किया, और महन्त जी को लिख भेजा कि अब उनके साथ आगे कोई भी पत्र व्यवहार नहीं किया जावेगा, और यदि कोई पत्र आदि उनकी ओर से आवेगा तो उसे प्राप्त नहीं किया जावेगा। हमने अपना अन्तिम पत्र यू० पी०सी० (अन्डर पोस्टल सर्टीफिकेट) द्वारा उनको भिजवा दिया, और यह शास्त्रार्थ विधिवत् तीन–तीन टर्न में पूरा हो गया।

इस शास्त्रार्थ के मध्य में हमें विपक्षी के मित्र मध्यस्थ की ओर से एक पत्र ता० ९-११-९५ को मिला जिसमें लिखा था कि आपने ता० ३०-८-९५ के पत्र में **"शिवोऽपि पर्वते नित्य कामिनी पाश संयुतः"** श्लोकार्थ का पता देवी भागवत १–११–२८ जो लिखा है वह गलत है। आप उक्त स्थल पर उक्त श्लोक लिखा दिखावें अन्यथा अपनी पराजय स्वीकार करें। हमने चैलेञ्ज स्वीकार कर लिया और लिखा कि क्योंकि श्लोक के पते का ही सही या गलत होना विपक्षी की ओर से शास्त्रार्थ में हमारी जय–पराजय का निर्णायक बिन्दु होगा अतः हमें चैलेञ्ज सर्वथा स्वीकार है। इस शास्त्रार्थ में हमारी विजय का प्रमाण पत्र तथा महन्त जी की पराजय का पत्र अविलम्ब आना चाहिये, क्योंकि हमने उक्त श्लोक का पता अपने लेख में देवी भागवत

१–१०–६८ लिखा था और वह श्लोक इस पते पर इस पुराण के सभी संस्करणों में विद्यमान है। हमने पता १–११–२८ लिखा ही नहीं था और न उस पते पर उसे दिखाने का हम पर कोई उत्तरदायित्व है। हमारे पास लेख की कार्बन कापी मौजूद है। हमने यह उत्तर ता० १३–११–६५ को भेजा था पर कोई उत्तर नहीं आया। पुनः ता० २४–११–६५ को महन्त जी की पराजय पत्र भेजने को पत्र लिखा, फिर भी जवाब नहीं आया। यह बात शास्त्रार्थ मर्यादा के विपरीत थी। अपनी ही शर्त पर पराजित होने पर अपनी पराजय का पत्र हमारे पास महन्त जी को ईमानदारी से भेज देना चाहिये था। पर शायद पराजित होने पर इतनी लज्जा उनके मित्र मध्यस्थ को तथा उनको आई होगी कि उत्तर का साहस भी वे न कर सके। यह इस शास्त्रार्थ में महन्त जी की प्रथम घोर पराजय हुई। सभ्यता की मर्यादा को छोड़ कर असभ्य भाषा तथा गालियों पर उतर आना उनकी दूसरी डबल पराजय थी और शास्त्रार्थ में अपने ही प्रश्नों पर समुचित उत्तर मिल जाने पर उनकी तीसरी जबर्दस्त पराजय हुई। उसके साथ ही हमारे द्वारा प्रस्तुत नौ प्रश्नों में से एक को भी स्पर्श न करने पर उनकी चौथी भयंकर पराजय थी। महन्त जी के प्रश्न छिछोरी भाषा में थे तथा लेख गाली गलोज पूर्ण भाषा में हैं। यदि हम उन सबको ज्यों के त्यों प्रकाशित कर देवें तो पाठकों को पढ़ने में भी घृणा होगी। इसलिये हम महन्त जी के सभी लेखों में से उनके पक्ष की सार की बातों को उनकी ओर से प्रकाशित कर रहे हैं ताकि सभी को शास्त्रार्थ को पढ़ने में रुचि हो, सभी की ज्ञान वृद्धि हो तथा सभी यह समझ सकें कि इस प्रकार के प्रश्न विपक्षियों की ओर से उपस्थित होने पर उनका समाधान किस प्रकार किया जाना चाहिये?

हमारे पास अयोध्या से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पौराणिक पत्र "**विरक्त**" की एक प्रति एक सज्जन ने भेजी थी जिसके ता० १६–४–६६ के अंक में महन्त जी ने हमसे हुए लेखबद्ध शास्त्रार्थ की सूचना प्रकाशित कराई थी और उसमें भारत भर के पौराणिक पंडितों से शास्त्रार्थ में मदद करने की अपील की थी तथा धन भेजने को भी लिखा था। हम उसे ज्यों की त्यों अन्त में प्रकाशित कर रहे हैं। यह अपील ही यह प्रगट करने को पर्याप्त है कि महन्त जी हमारे साथ शास्त्रार्थ में बुरी तरह पराजित हुए हैं। पांण्डित्य की मदद सदैव हारे हुए लोग ही दूसरों से मांगते है यह सभी समझते हैं। धन की अपील करके शास्त्रार्थ की आड़ में पैसा पैदा करना यह महन्त जी के लिये अशोभनीय बात थी। शास्त्रार्थ के पत्र व्यवहार में ४६ रुपये तो महन्त जी को टोंक के आर्य समाजियों से भी भिक्षा पात्र हाथ में लेकर भिक्षा मांगने पर सुगमता से मिल सकते थे। उसके लिये अखबार में अपील करने की आवश्यकता नहीं थी।

आशा है यह "**लेखबद्ध शास्त्रार्थ**" सभी के लिये ज्ञानवर्धक होगा। इसी आशा से हम इसे प्रकाशित कर रहे हैं।

कासगंज (एटा) उ० प्र० भारतवर्ष
तारीख – १/१/१९६९ ई०

निवेदक–
"आचार्य डा० श्रीराम आर्य"
(कासगंज)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री आचार्य डा० श्री राम आर्य–

(प्रथम पत्र)

दिनांक – २१–७–१९६५ ई०
कासगंज (उत्तर प्रदेश)

नोट– (हमने महन्त जी से निम्न ९ प्रश्न, प्रथम पत्र में किये थे, जिनका उत्तर दिनांक २१–७–१९६५ ई० के शास्त्रार्थ के अन्त तक भी वे न दे सके) !

प्रश्न १.– जब आप १८ पुराणों के विभिन्न रचयिता मानते हैं तो उन विभिन्न व्यक्तियों के नाम बतावें कि किसने कौन–२ सा पुराण बनाया है? देवी भागवत का यह दावा "**अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः मिथ्या.......................**" है?

प्रश्न २.– भविष्य पुराण में निम्न ६ पुराणों को तामस पुराण बताया है मार्कण्डेय, वाराह, अग्नि, लिंग, ब्रह्माण्ड तथा भविष्य। पद्म पुराण में तामस पुराणों को निम्न प्रकार गिनाया है,–

"**पुराणानि च वक्ष्यामि तामसानि यथा क्रमात्। मात्स्यं, कौर्मं तथा लैगं, शैवं स्कन्दं तथैव च। आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे।।**

अर्थात् मतस्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द तथा अग्नि यह छः तामस पुराण हैं। आगे लिखा है–

"**तथैव तामसा देवि निरय प्राप्ति हेतवे, तामसा नरकायेव वर्जयेतानि विचक्षणः।**"

(पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय २३६ कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भविष्य तथा पद्म पुराणों में कुल मिलाकर दस पुराण घोर नरक में ले जाने वाले माने गये हैं। मार्कण्डेय, वाराह, अग्नि, लिंग, ब्रह्माण्ड, भविष्य, मत्स्य, कूर्म, शिव तथा स्कन्द पुराण की घोषणा व आदेश है कि इन नरक में ले जाने वाले पुराणों का विद्वानों को सर्वथा बहिष्कार कर देना चाहिये। अर्थात् इनको देखना, छूना, पढ़ना, सुनना सभी पाप होगा। तब बतावें कि आपके व्यासावतार ने भोले सनातनी लोगों को पतित करने वाले इन खराब पुराणों की रचना ही क्योंकि थी? इनमें ऐसी कौन सी गन्दी बातें लिखी हैं जिससे इन दस महापुराणों का बहिष्कार किया गया ? तथा शेष ८ पुराणों में वे कौन सी बातें हैं जो इनमें नहीं है जिनसे उन्हें उत्तम माना गया है? आप इन दस नारकीय पुराणों को घृणित व बहिष्कार योग्य क्यों नहीं मानते हैं?

प्रश्न ३.– बतावें कि अत्रि स्मृतिकार ने सारे ही पुराणों को अति भ्रष्ट ग्रन्थ मानकर निम्न व्यवस्था क्यों दी है ?

"**ज्योतिर्दोहाथर्वाणः कीरा पौराण पाठक :, श्राद्धे यज्ञे महादानेन वरणीयाः कदाचन।**
श्राद्धेय पितरो घोरं दानं चैबनु निष्फलम्, यज्ञे फल हानिः स्थात् तस्मातान् परिवर्जयेत्।।

(अत्रि स्मृति ३८३–३८४)।।

इन श्लोकों में पुराण पढ़ने वालों का यज्ञ दान व श्राद्ध आदि में सर्वथा अछूतवत बहिष्कार करने की

घोषणा की है। स्पष्ट है कि पुराण अति भ्रष्ट ग्रन्थ हैं। वे नरक में ले जाने वाले हैं, उनका स्पर्श भी पाप है। आप स्मृतिकार तथा पुराणकारों की व्यवस्था को मिथ्या क्यों मानते हैं?

प्रश्न ४.– देवी भागवत में स्कन्द अध्याय १५ श्लोक ६२ से ६७ तक में कलियुग के ब्राह्मणों की निन्दा में लिखा है कि वे कुम्भी पाक नामी नरक में से आकर कलियुग में जन्में हैं सभी दुराचार परायण हैं तथा लम्पट हैं। स्कन्द ६ के श्लोक ११ से ४७ में कलियुग के ब्राह्मणों को राक्षसों का अवतार लिखा है। क्या पुराणों को व्यासोक्त मानने वाले आप पुराण की उक्त घोषणा से सहमत हैं?

प्रश्न ५– **"इन्द्रोऽग्निश्चन्द्रमा वेधा पर दाराभिः लम्पटाः...............**" (देवी भागवत ४–१३–१३) तब क्या वास्तव में सनातन धर्म के सारे ही देवता परनारी, लम्पट तथा राक्षसों के गुण्डागर्दी में पड़ापड़ दादा लगते थे? बतावें कि आप पुराण की उक्त व्यवस्था से क्यों सहमत नहीं है? ये चरित्रहीन व्यभिचारी लोग राक्षस न मानकर देवता क्यों माने जाते हैं?

प्रश्न ६– आप ११२७ शाखात्मक वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं और उनको निजी पक्ष में प्रस्तुत करना चाहते है। तो शास्त्रार्थ क्षेत्र में उतरने से पहिले यह परमावश्यक है कि आप अपने उन स्वतः प्रमाण ११२७ वेदों की पूर्ण एवं सत्य नामावली हमको बता देवें ताकि हम आपके मान्य ११२७ वेदों की स्थिति जान सके। यदि आप उनके नाम नहीं बता सकेंगे तो हमें यह मानना पड़ेगा कि आपने न तो ११२७ वेदों को देखा है और न उनको पढ़ा है। केवल हमको गुमरहा करने के लिये आप ११२७ वेदों का नाम ले रहे हैं? जब आपको उनके नाम तक नहीं मालूम होंगे तो आपके पास स्वपक्ष में प्रमाण देने को कोई ग्रन्थ वेद नाम का नहीं माना जावेगा। जहां तक हमारा सम्बन्ध है हमारे मान्य वेद तो **"ऋग्–यजु–साम तथा अथर्व" (चार संहिता) मात्र हैं जो स्वतः प्रमाण हैं**। आशा है आप अपने सम्पूर्ण वेदों की सूची शीघ्र पेश करेंगे ताकि शास्त्रार्थ आरम्भ हो सके।

प्रश्न ७– सर्व पुराण सम्मत व्यास कृत अष्टादश पुराणों की नामावली पेश करें ताकि हम देख सकें कि आपको पुराणों की जानकारी कहां तक है? शास्त्रार्थ से पूर्व यह सूची भी आनी आवश्यक है।

प्रश्न ८– विष्णु–शिव–पार्वती ये तीनों पृथक–पृथक अस्तित्व वाले व्यक्ति थे, यह पुराणों से सिद्ध है। महाभागवत पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्ण जी पारवती के साक्षात् अवतार थे। अर्थात् वे विष्णु के अवतार नहीं थे। जब कि देवी भागवतादि पुराणों में राम व कृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना है। पुराणों के इस परस्पर विरोधी दावे के सिद्धान्त से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण जी विष्णु के अवतार नहीं थे। क्या आप की निगाह में व्यास जी कृत महाभागवत तथा देवीभागवतादि पुराण मिथ्या हैं?

प्रश्न ९– शिवजी व्यभिचार के देवता हैं, यह बात शिव पुराण उमासंहिता अध्याय ४ में शिव माया के चमत्कार (प्रभाव) दिखाते हुए सिद्ध की गई है। हमने उसे अपनी पुस्तक **"शिवलिंग पूजा क्यों?"*** के अन्त में छाप भी दिया है। आप बतावें कि क्या इस पुराणोक्त वर्णन से शिवजी साक्षात् दुराचार प्रसारक सिद्ध नहीं होते हैं? जब देवता और ऋषि लोग जो उनके भक्त थे वे भी शिव माया के प्रभाव से व्यभिचारी बनने से न बच सके तो साधारण मनुष्य शिवभक्त होने से महाव्यभिचारी न हो ? यह कैसे माना जा सकता है? आशा है इन चन्द प्रश्नों पर आप विचार कर समुचित उत्तर देकर अनुग्रहीत करेंगे।

(कासगंज) भवदीय–

तारीख – २१–७–१९६५ " **"डा० श्रीराम आर्य"**

नोट– *प्रस्तुत पुस्तक "**शिवलिंग पूजा क्यों ?**" अमर स्वामी प्रकाशन विभाग (गाजियाबाद) से प्राप्त कर सकते हैं।

"**सम्पादक**"

महन्त श्री सीताराम दास जी शास्त्री–

(प्रथम पत्र)

दिनांक– २४–७–१६६५
टोंक (राजस्थान)

ड़ाक्टर साहब से सात प्रश्न–

प्रश्न १– ऋग्वेद (१०–१०–१६) में एक मंत्र आता है–

"आघांता गच्छानुत्तरायुगानि यत्र जामयः कृष्वन्नजामि, ।
उप वर्वृहिबृषभाय बहुन्यामिच्छस्व सुभगे पतिंमत्।।

अर्थात्– यम अपनी बहिन यमी से कहता है कि आगे चलकर ऐसे युग आयेंगे जब बहिन और भाई अनुचित कार्य करेंगे। परन्तु हे बहिन! अब तू मेरे अतिरिक्त अन्य (गोत्रोत्पन्न) पति की इच्छा कर इत्यादि। परन्तु स्वामी जी ने यहां तीन पादों को छुपा लिया और केवल चौदा पाद "**अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्**" रखकर अर्थ कर दिया कि पति जब सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो जाय तो अपनी स्त्री से कहदे कि "**हे सौभाग्य की इच्छा करने हारी! तू मेरे अतिरिक्त अन्य किसी पुरूष से नियोग कर सन्तान उत्पन्न कर ले**"। यह कितना अनर्थ है। उपर्युक्त मन्त्र में भी सभी श्रोत सूत्रकार और भाष्यकारों ने "**भाई बहिन का संवाद**" स्वीकार किया है। परन्तु स्वामी जी इसमें "**पति पत्नी का संवाद**" बताकर नियोग अर्थात् खुले व्यभिचार की छूट दे रहे हैं। यदि स्वामी जी को उक्त संवाद में नियोग का भ्रम हुआ था तो यह भ्रम उनके वेद विषयक पिछले ज्ञान का भंडाफोड़ कर देते हैं। और यदि जान बूझकर आपने अपने चेलों को गुमराह किया तो आप जैसे एक सुधारक को यह शोभा नहीं देता। भारत में ईश्वरचन्द विद्यासागर, राजाराममोहनराय प्रभूतिक कतिपय समाज सुधारक हुए पर इन लोगों ने भूल कर भी नियोग का नाम तक नहीं लिया। वर्तमान काल में किसी भी सभ्य मान्य देश में नियोग दिखाई नहीं पड़ता। अतः आप बतावें कि स्वामी जी को इस पशु धर्म में इतनी दिलचस्पी क्यों हुई? उक्त मन्त्र में पति शब्द आया है और पति के साथ नियोग नहीं हुआ करता।

प्रश्न २– सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास ४ में लिखा है कि– "**पुरूष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति के समय अपान वायु को ऊपर खींचे, योनि का संकोचन कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थिर करें**"।

प्रश्न ३– सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ४ पर ही लिखा है– "**स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसा करने से स्त्री दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है**"– (स्त्री योनि संकोचन करे) हमारा प्रश्न है कि उपर्युक्त अश्लील वर्णन किसी वेद मंत्र के आधार पर लिखा है या स्वामी जी ने स्वयं अपने अनुभव के आधार पर? भला एक सन्यासी को घर गृहस्थियों की स्त्रियों की चूचियें कड़ी हैं या ढीली इसकी क्या चिन्ता? और योनि को संकुचित बनाने की भी इतनी चिन्ता क्यों? क्या वेद में कर्म उपासना ज्ञान को छोड़कर ऐसी–ऐसी अश्लीन बातें भी भरी पड़ी हैं?

प्रश्न ४– सत्यार्थ प्रकाश सम्मुल्लास ४ में लिखा है– "**प्रसूता छः दिन तक ही बालक को अपना**

दूध पिलावे। पश्चात् धायी पिलाया करे, प्रसूता स्त्री न पिलावे।" यह आज्ञा वेद के किस मंत्र में दी गई है ? डाक्टर साहब तो क्या संसार भर के आर्य समाजियों से भी इसका उत्तर नहीं बन सकता। क्योंकि ऐसा किसी वेद में नहीं लिखा है। अतः वे कालत्रय में भी ऐसा वेद का प्रमाण नहीं दे सकते जिसमें कि छः दिन तक ही प्रसूता के दूध पिलाने की आज्ञा हो। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे, स्वामी जी का यह आदेश न केवल अवैदिक है, प्रत्युत अयुक्त भी है। गृहस्थियों के घरेलू मामले में सन्यासी को मदाखलत बेजा नहीं करनी चाहिये बालक को कब कौन दूध पिलावे? यह व्यवस्था बालक के माता पिता और अभिभावकों पर छोड़ देनी चाहिये। कुचकाठिन्य विधायक लेप और योनि संकोच कारक दवा दारू का भार भी सम्बन्धित व्यक्तियों पर ही रहने देना चाहिये। वेद का झूठा चोला पहिना कर अभारतीय प्रथाओं को कृपया हिन्दुओं पर थोपने की चेष्टा मत कीजिये। डाक्टर साहब या अन्य कोई आर्य समाजी आज या कल कभी भी कोई दयानन्दी यदि **"छः दिन दूध पिलाने का वेद प्रमाण"** अथवा कोई युक्ति, या अन्य कोई समाधान लिखने में सफल होगा तो हम उसे धन्यवाद देंगे।

प्रश्न ५– यह सर्व विदित है कि हिन्दुओं का सबसे बड़ा धार्मिक चिन्ह **'शिखा'** है। वेदादि शास्त्रों में सन्यास आश्रमियों के अतिरिक्त शेष सब हिन्दु मात्र के लिये सदैव शिखा रखना परमावश्यक है यथा– **"यश से श्रियै शिखा"** (यजु० १६–१२), तथा **"सदयोपवीता भाव्यं सदा बद्ध शिखेन च"** (स्मृति) अर्थात् सदा शिखा बंधी रहनी चाहिये। इतिहास भी इस बात की साक्षी देता है कि मुसलमानी काल में शिखा कि रक्षा के लिये हमारे लाखों पूर्वजों ने हल्दीघाटी और पानीपत के मैदानों में अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर दिया था। विदेशी आक्रमणकारी छल से बल से और लाखों तरह से प्रलोभन देकर हमारे इस विगत शताब्दियों में रक्त रंजित इतिहास कानों में अंगुली डालकर पुकार–पुकार कर कह रहा है कि हमें मस्तक कटाना पसन्द था परन्तु जीतेजी अपनी शिखा के चार बालों को शत्रु के हवाले करना गवारा न था। अस्तु !! जिस शिखा का इतना बड़ा महत्व है उसी शिखा के विषय में स्वामी दयानन्द जी वेदाभिमानी होने का व्यर्थ हुक्म देते हैं कि– **"उष्ण देश-हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये। क्योंकि शिर पर बाल रखने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कमज़ोर हो जाती है"**। कृपया बतलाइये कि स्वामीजी का यह आदेश किस वेद मंत्र के अनुकूल है,? तथा यह भी प्रकट कीजिये कि गर्मी सर्दी का असर तो स्त्री पुरूष दोनों पर समान रूप से पड़ता है। भारत उष्णदेश में से एक है खास कर बंगाल मद्रास आदि। ऐसी दशा में स्वामी जी की आज्ञानुसार एतद् प्रान्तीय न सिर्फ पुरूष समाजियों को ही बल्कि उनकी श्रीमतियों को भी मुण्डन करना आवश्यक है। उन मुण्डित मस्तक आर्य समाजन महिला समुदाय के कल्पित चित्र का जरा ध्यान तो कीजिये कि यह दृश्य कितना भयंकर दीख पड़ेगा ?

प्रश्न ६– आर्य समाजिक संस्कार विधि के आज्ञानुसार कन्या के विवाह की तिथि पूर्व से निश्चित नहीं की जा सकती क्योंकि स्वामी जी फरमाते हैं कि–**"जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाये तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उसमें विवाह करने के लिये प्रथम ही सामग्री जोड रखनी चाहिये"**। (संस्कार विधि पृष्ठ १२६)–सो रजस्वला होने के बाद ठीक विथि पहिले से ही नहीं जानी जा सकती उसमें दो चार दिन आगे पीछे हो जाने की प्रायः संभावना हो सकती है। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने विवाहसंस्कार समाप्त होते ही तत्काल श्वसुर के घर में अथवा जनवासे में गर्भाधान कर डालने की लज्जापूर्वक आज्ञा दी है। कृपया बतलाइये ये बातें किस वेद मंत्र के अनुकूल हैं ? हमारा दावा है ? कि ये बातें जहां वेद के विरूद्ध हैं वहां सभ्यता के भी खिलाफ हैं।

प्रश्न ७– संस्कार विधि (पृष्ठ ५५) पर लिखा है कि– **"खिचड़ी में पुष्कल घृत डालकर गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे"**। उस समय पति स्त्री से पूछे– **"किं पश्यसि"** स्त्री उत्तर देवे **"प्रजां पश्यामि"** तत्पश्चात्त **"उस खिचड़ी को खावे"**। यह छाया दान को खा जाने की पोप लीला किस वेद मंत्र के अनुसार है? इसके अतिरिक्त अपने मुंह की परछांही देखते हुए भी ऐसा झूठ बोलने का विधान करना **"मैं इसमें औलाद देखती हूं"** स्वामी जी का नैतिक पतन है।

क्या मैं डाक्टर साहब से यह आशा करूं कि जिस तरह हमने उनके पौराणिक आक्षेपों का समाधान वेद मंत्रों से किया है, ठीक इसी तरह वे भी हमारे आक्षेपों का समाधान वेद मंत्रों द्वारा ही करने की कृपा करेंगे।

टोंक (राजस्थान) भवदीय–

तारीख– २४–७–६५ **"महन्त सीतारामदास शास्त्री"**

श्री आचार्य डा० श्री राम आर्य–

दिनांक– ३०–७–६५

"कासगंज" (उ० प्र०)

"श्री महन्त जी की सेवा में प्रथम पत्र" (उत्तर रूप में)

आदरणीय महन्त जी नमस्ते।

आपके ता० २१–७–६५ के सात प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार है–

उत्तर, प्रश्न १ का– ऋग्वेद के १०–१०–१० के मंत्र **"आघात गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयेः कृण्वन्त जाति उपवर्वहि वृषभाय बहुमन्थ च्छस्व सुभगेपतिं मत।।११।।** इस मंत्र का अर्थ आप तो क्या सारे सनातनी (पौराणिक) पंडित लोग नहीं समझ सकते हैं। इस सूक्त में यम यमी भाई बहिन नहीं है। यह प्राकृतिक जगत का पति पत्नी के रूप में सम्वाद है। ऋषि दयानन्द जी ने इस मन्त्र का विनियोग नियोगपरक सत्य ही किया है मंत्रार्थ निम्न प्रकार होगा। हे रात्रेः **(ता)** वे **(युगा)** युग अवसर **(घा)** तो **(उत्तरा)** प्रलय कालीन **(आगच्छन्)** आवेंगे जब कियें **(जामयः)** असमान जातीय व्यवधायक = मेल में रुकावट डालने वाले **(आजमि)** असमान जातिय रहित कर्म = अविरुद्ध कर्म **(करिष्यन्ति)** करेंगे। परन्तु हे राजे! तब तक तुम पुत्राभिलाषिणी से बिना गार्हस्थ के ठहरना दुष्कर है। इसलिये मैं पुत्रोत्पत्ति में असमर्थ होता हुआ तुझे आदेश देता हूं कि **(सुभगे)** हे प्रिये! **(वृषभाय)** वीर्य प्रदान करने में समर्थ होने के लिए अपनी भुजा को **(उपबृहि)** फैला और **(इच्छस्व)** इच्छा कर उस दिन से **(अन्यम् पति)** अन्य पति को स्वीकार कर। इसमें स्पष्ट शिक्षा है कि सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ व्यक्ति अपनी भार्या को अन्य योग्य समर्थ पुरूष से सन्तान नियोग द्वारा उत्पन्न करने का आदेश दे। **"अन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मत्"**।। नियोग तो आपके समुदाय में चिरकाल से व्यवहार में चालू है। आप शर्माते क्यों हैं? आप हमारी पुस्तक– **"सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था"** पढ़ कर अपना अज्ञान दूर कर लेवें। आपको नियोग की मिसालें व आपके शास्त्रीय प्रमाण भरपूर मात्रा में उसमें मिल जावेंगे। हमला करने से पहिले अपना घर भी तो देख लिया करें?

उत्तर, प्रश्न २ का– वेद के **"रेतोमूत्र....** 'यजुर्वेद १६–७६" गर्भाधान का प्रकार विधायक मन्त्र प्रमाण स्वरूप उपस्थित है। बिना पढ़े पशु पक्षी भी गर्भाधान इसी विधि से करते हैं। शायद आप मुख मैथुन व नाक

में वीर्याधान करने के पक्षपाती हैं। अथवा अन्य प्रकार से करते होंगे। शायद आप वीर्य को संभोग के समय प्राणायाम द्वारा ऊपर को खींचते होंगे, तथा आपकी पत्नी गर्भाधान के समय शरीर को सख्त कर योनि संकोचन कर योनी को कड़ी कर लेती होगी? क्या ऐसे भी गर्भाधान होता है? ऊँट का प्रकार आपके साथियों ने आजमा रक्खा हो तो दूसरी बात है।

उत्तर, प्रश्न ३ का– यह प्रश्न तथा आगे के प्रश्न ४ व ५ आपने अपने गुरूदेव पण्डित माधवाचार्य जी के छपे ६ प्रश्नों में से नकल कर दिये हैं। यह नकल आपकी विद्वता की परिचायक नहीं है। इनका उत्तर आप हमारी पुस्तक **"माधवाचार्य को डबल उत्तर"** से पढ़ें तो आपका समाधान हो जावेगा। आपकी योग्यता की परीक्षा हो गई कि आपका स्वाध्याय कितना है ? आप केवल दीनानाथ माधवाचार्य की पुस्तकों का ज्ञान रखते हैं, उनके उत्तर कई बार दिए जा चुके हैं और उनकी बोलती भी बन्द की जा चुकी है। यदि पण्डित हैं तो अपनी नई खोज के प्रश्न करने थे। औरों की झूठनबटोर कर पेश करना कोई पांडित्य नहीं होता है। हम **"माधवाचार्य को डबल उत्तर"** तथा **"सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था"** की एक–एक प्रति आपको भेज रहे हैं। क्या इसी बल पर दूसरों के सामने चेलेंज देने बैठे थे? आपकी योग्यता का पता चल गया। हमारा शास्त्रीय ज्ञान कितना है ? यह आपको स्वयं ही पता चल जावेगा जरा चर्चा को आगे बढ़ने दीजिए।

उत्तर, प्रश्न ६ का– स्त्रियाँ जिनको कोई रोग नहीं होता है निश्चित तिथि पर ऋतु धर्म को बैठती है। यह बात यदि आपका विवाह हुआ हो तो अपनी पत्नी से या किसी भी चिकित्सक से मालूम कर लें। कन्या की माता जानती है कि पुत्री कब ऋतुवती होगी ? अतः विवाह की तिथि ठीक २ निश्चित की जा सकती है। श्वसुर गृह पर गर्भाधान की अनिवार्यता नहीं लिखी है पर जब युवा वर वधू परस्पर मिलन की उग्र इच्छायें विवाह पर रखते हों तो इनका उसी उद्वेगावस्था में विवाह संस्कार के बाद चौथे दिन चतुर्थी कर्म, गर्भाधान संस्कार हो जाना उचित होगा और उस प्रथम मिलन के गर्भ से जो सन्तान बनेगी वह भी अत्युत्तम बनेगी। ब्रह्मचर्य अवस्था में अवरुद्ध एवं परिपक्व रज वीर्य का उत्तम उपयोग होगा। विवाह का मुख्य उद्देश्य ही जब गर्भाधान से सन्तान प्राप्ति है तो उस संस्कार को विधि पूर्वक जब पति पत्नी में तीव्र मिलन की इच्छा लगे तभी होना चाहिए। आपके यहां तो कोई नियम व मर्यादा ही नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश का लेख है कि मासिक स्नान के बाद चौथे दिन गर्भाधारण करे। अगर अड़चन आ जावे तो उचित समय पर निज गृह पर हो। जनमासे में या मोटर में गर्भाधान कराने की आप लोगों की परम्परा है देखिये– घुड़साल में चन्द्र राजा की पुत्री के साथ जबरदस्ती इन्द्र ने गर्भाधान कर दिया था। सूर्य ने कुन्ती पर सवारी करके बलात्कार से कर्ण को पैदा किया था। यह भी श्वसुर गृह (कन्या के पितृ गृह) पर ही हुआ था। सूर्य ने भतीजी से मुँह में गर्भाधान जबरदस्ती कर डाला था। ब्रह्मा ने अपनी अकामा पुत्री के साथ बलात्कार किया था। त्रिदेवों ने अनसुया पर जबरदस्ती सवारी कसी थी। इत्यादि सैकड़ों मिसालें आपके यहाँ स्त्री के ही घर पर बलात्कार या राजी से ही गर्भाधान की हैं। तब आपको संस्कार विधि पर ही शंका क्यों हुई जो कि एक शुद्ध पवित्र मर्यादा है। आशा है अब आप संस्कार विधि के लेख का रहस्य समझ गए होंगे। कि जब वधू को देखकर वर व वर को देखकर वधू काम की उग्र इच्छायें रखते हों तो उनको विधि पूर्वक शीघ्र अवसर देना उचित व्यवस्था है।

उत्तर, प्रश्न ७ का– आपने मनोविज्ञान बिल्कुल नहीं समझा या पढ़ा है यह इस प्रश्न से प्रकट है। नाखून पर तेल युक्त स्याही लगाकर जब बालक को कोई वस्तु साधक दिखाता है तो बालक का मनोबल केन्द्रित होने से उसे वही वस्तु नाखून पर प्रतिबिंब में दीखती है। इसी प्रकार घृत से स्निग्ध खिचड़ी के घी में गर्भिणी स्त्री, चित्त को एकाग्र करके जब गर्भस्थ बालक की आकृति देखना चाहती है तो पति के आदेश

पर उसे वहीं उसमें दीखती है। उसका गर्भस्थ बालक को स्वस्थ बनाने में प्रभाव उसकी संकल्प शक्ति से पड़ता है। सीमन्तोंनयन का यह संस्कार गर्भ की रक्षा व उसे पुष्ट बनाने के लिए होता है। आपके गोभिलगृह्यसूत्रकार ने विधि के मंत्र भी लिखे हैं जो संस्कार विधि में उक्त स्थल पर लिखे हैं तब आपको हमसे प्रश्न करने की इच्छा क्यों हुई? क्या गोभिलगृह्यसूत्र आपको मान्य नहीं है? ऋषि के लेख को समझने के लिए मनोविज्ञान का विस्त्रित अध्ययन पहिले कीजिए तब शास्त्रार्थ के लिए आप मैदान में उतरने की बात सोचें।

भवदीय–

"डा० श्रीराम आर्य"

श्री महन्त सीतारामदास जी शास्त्री :–

दिनांक– १७–८–१९६५ ई०

स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों की वेदानुकूलता, जिसमें प्रतिवादी सनातन धर्म तथा वादी आर्यसमाज है। (केवल वेद प्रमाण ही लिये और दिये जायेंगे)– तदनुसार सप्त प्रश्नों की आलोचना आज प्रथमबार प्रस्तुत कर रहे हैं। आप एक बार पुनः समाधान कीजिये और फिर हम भी पुनः विस्तार पूर्वक समालोचना कर देंगे। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त होगा। न तो मैं कोई पौराणिक पंडित हूँ व न आर्य समाज का द्रोही ही हूँ। किन्तु साक्षर हूँ, थोड़ा शास्त्रार्थ विषयक ज्ञान है, आपकी शंकाओं का समाधान मैं खूब कर सकता हूँ।– साधु सन्यासियों के प्रति जो हमारी अटूट श्रद्धा भक्ति है, आपकी इन हरकतों से आज हमें उन परम श्रद्धेय विश्वमान स्वामी दयानन्द जी के प्रति बुरा भला लिखने के लिये बाध्य होना पड़ रहा है। इसका पाप भी आप पर ही निश्चित है। अब आप अपने कथन के बारे में देखिये–

१– आपने लिखा है कि–ऋग्वेद १०–१०–१९ के मंत्र का अर्थ आप तो क्या आपके सारे सनातनी पं० लोग भी नहीं समझ सके हैं। इस सूक्त में यम यमी बहिन भाई नहीं है। ये प्रकृति जगत का पति पत्नी के रूप में सम्वाद है। इस पर आपसे पूछना यह है कि इस यम यमी का पति पत्नी के रूप में संवाद सिद्ध करने वाला आपके पास क्या प्रमाण है? ऐसी कोई युक्ति या प्रमाण आप पेश नहीं कर सके हैं जिससे आपकी यह बात सिद्ध हो सके। वैदिक यन्त्रालय (अजमेर) से प्रकाशित मूल ऋग्वेद संहिता में इस यम यमी सूक्त के ऋषि देवता वैवस्वती यमी तथा वैवस्वतो यमः कहे गये है। विवस्वान की पुत्री यमी और विवस्वान का पुत्र यम था। तब एक पिता वाले यम यमी का आपस में भाई बहिनपना होगा वा पति पत्नीत्व ? इस विषय में निरूक्त का निम्न प्रमाण जरा खुले आंखों अवलोकन करें– **"त्वष्टी सरण्यू: विवस्वत आदित्याद यमौ मिथनौ (यम च यमी च) जनयांचकार (निरूक्त १२–१०–२)"** यहां विवस्वान से यम और यमी का इकट्ठा पैदा होना कहा है। क्या यह पति पत्नी इकट्ठे ही पैदा किये गये ?...आपका तो जिक्र ही क्या हमारे सप्त प्रश्नों का यथार्थ उत्तर संसार भर के सारे ही आर्य समाजी मिलकर सात जन्मों में भी नहीं दे सकते। यदि इन्हें स्त्री प्रत्यवश पति–पत्नी माना जावे तो कुमार–कुमारी, पुत्र–पुत्री यह भी क्या पति–पत्नी माने जावेंगे?

२– यजुर्वेद १९–७६ के **"रेतोमूत्र"** प्रमाण जो आपने उपस्थित किया है, इससे हमारे प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं, इस मन्त्र का अर्थ भी तो लिखा होता........। वेद कोई कोकशास्त्र थोड़े ही हैं जो उसमें ऐसी ऐसीं गन्दी बातें लिखी हों। स्वामी की कपोल कल्पित मनगड़न्त बातों को सिद्ध करने के लिये ही वेद मन्त्रों को बदनाम करने का यत्न करना क्या यही वेद भक्ति है? क्या वेद मन्त्रों में कर्म उपासना ज्ञान को छोड़कर कोकशास्त्र को भी मात देने वाली ऐसी ही अश्लील बातें उसमें भरी पड़ी हैं? याद रहे स्वामी जी ने साफ २

लिखा है कि "**पुरूष अपने शरीर को ढीला छोड़ें और स्त्री वीर्य प्राप्ति के समय अपना वायु को ऊपर खींचे और जब वीर्य गर्भाशय में गिरने का समय आवे...स्त्री योनि का संकोचन कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करे।**" इस पर हमारा प्रश्न था और है कि यह अश्लील वर्णन किस वेद मंत्र के आधार पर है या स्वामी जीं के अनुभव के आधार पर ! इसके उत्तर में आपने यजुर्वेद १६–७६ मंत्र पेश किया है। सो क्या उक्त मंत्र में स्वामी जी द्वारा कथित बातें आप सात जन्म में भी हमें दिखा सकते हैं? आप फरमाते हैं कि बिना वेद पढ़े पशु पक्षी–स्त्री–पुरूष भी गर्भाधान इसी विधि से करते हैं। अब ऐसी बात है तो स्वामीजी को ऐसा वेद विरुद्ध निरर्थक बातें लिखने की क्या जरूरत पड़ गई जो उन्होंने ऐसा लिखकर वेदों को कलंकित किया ?

३– हमारा तीसरा प्रश्न था और है कि "**दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसा करने से स्त्री दूसरे महीने ही पुनरपि युवती हो जाती?**......भला स्वामी जी को गृहस्थियों की पत्नियों के स्तन दृढ़ करने और उनकी बच्चेदानी तंग करने की या योनि को संकुचित करने की ऐसी कौन सी चिन्ता आ पड़ी थी? स्तन पर औषधि का लेप करने से जब दूध स्राव बन्द हो जायेगा तो स्तन कड़े होंगे या ढीले ही रहेंगे? स्त्री "**योनि संकोचन करे**" जो किसी औषधि के लेप से या पोटली रखने से या डूस क्रिया आदि से ही संभव है......? रंग रंगीले रसिक स्वामी जी ने इन दोषों की निवृत्ति के लिये औषधोपचार का आदेश दिया है। कौन २ औषधि कूट पीसकर कुचाओं पर कैसे लेप करे तथा यौनि संकोचन किन २ दवाओं से कैसे किया जाय यह रहस्य छिपा रहने दिया है....। केवल शुष्ठी पाक से स्त्री योनि संकोचन कर सकती है क्या? स्वामीजी ने जो बात लिखी हैं उन सब बातों की पूर्ति केवल शुष्ठी पाक से कैसे हो जावेगी? स्तन कड़ा करने और योनि संकोचन करने के लिये आयुर्वेद में शुष्ठीपाक का उल्लेख कहाँ है?

४– आप फरमाते हैं– यूरोपियन देशों में सभी समर्थ लोग धाया रखते हैं, धाया ही बालक को दूध पिलाती है। हम भी तो यही कहते हैं कि दयानन्द ने यूरोपियन लोगों से प्रभावित होकर यह अभारतीय विधान सत्यार्थ प्रकाश में लिख दिया है। वेदों से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।......आप लिखते हैं कि भगवान राम को भी तो धाया ने पाला था...आपने आज राम को भगवान तो माना, दूसरे दयानन्दी तो उन्हें मूर्खता वश पुरूष कोटि में ही गिनते हैं.....जरा यह तो बताइये राम ने केवल ६ दिन तक कौशिल्या का स्तन पान किया फिर धाय का दूध पीकर पले, यह आप कौन सी रामायण में ढूंढ़ निकाले?.... । आपने ऐसा कोई वेद मंत्र नहीं दिया जिससे कि छः दिन तक ही प्रसूता दूध पिलावें फिर न पिलावें, ऐसी आज्ञा दी हो? आपने जो "**नक्तोषासा**" मंत्र उत्तर में लिखा है वह तो उल्टा आपके पक्ष का खण्डन और सनातन धर्म के पक्ष का समर्थन करता है।. ...आर्य समाज का तो पक्ष है कि– "**प्रसूता केवल छः दिन तक बालक को दूध पिलावें, पश्चात् धायी पिलाया करे,**" माता न पिलावे। माता के दूध पिलाने के अवसर में धाय नहीं पिला सकती है। जब माता पिलाना बन्द कर देती है तब धाय की पारी आती है अर्थात् एक ही काल में दोनों नहीं पिला सकती हैं..... ..परन्तु "**नक्तोषासा**" मंत्र में.....ऊषा और सन्ध्या दोनों युगपद अहोरात्र नामक पुत्र को परिपुष्ट करती है। आप इसमें सफल न हो सके..... । आप लिखते हैं कि समान जातिवाली नीचे चान्डाल कुलों से भिन्न कुल की धाय होनी चाहिये....स्वामी जी तो जन्मना जाति का खण्डन करते हैं परन्तु आप चरक की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए चाण्डाल कुलों में उत्पन्न मात्र होने के कारण तदुत्पन्न व्यक्ति को नीच बता रहे हैं... । आपके इस प्रमाण से कर्मणावर्ण व्यवस्था की धज्जियां उड़ी कि नहीं ?... । स्वामी जी लिखते हैं कि छठे दिन के बाद प्रसूता दूध न पिलावे और आप स्वामीजी के मुख पर करारा तमाचा लगाते हुए लिखते हैं कि दो चार दिन

बाद पिलाने में कोई पुण्य या पाप नहीं है। किसकी बात सत्य मानी जाऐ ? स्वामीजी की या उनके मुँह पर थप्पड़ जड़ने वाले आप जैसे चेला महाराज जी की ?

५– **"उष्ण देश में शिखा सहित छेदन कराना..."** किस वेद में है ? इसमें भी आप सफल नहीं हो सके। **"यश से श्रिये शिखा"** (यजुर्वेद १६–१२) तथा **"सदोपबीतिना भाव्यं सदा बद्ध शिखेन। चिशेखो व्युपलीतश्च यत्करोति न तत्कृतम"।। (कात्यायन स्मृति)** अर्थात् शास्त्र कहता है कि शिखा काटने में महा दोष है, आप कहते हैं कोई दोष नहीं ?.....दोष तो एक मात्र शास्त्र वचन से निर्दिष्ट होता है सो शिखा के अभाव में दोष है यह उपर्युक्त वेद शास्त्र के प्रमाणों से प्रसिद्ध है। इसके समाधान में जो यजुर्वेद १७–४८ **"विशिखा"** प्रमाण आपने दिए हैं वह गलत है। इसी तरह आपने (पारस्कर ग्रह्य सूत्र तथा पाराशर स्मृति एवं गोभिलगृह्यसूत्र) आदि के जितने भी प्रमाणों का गलत अर्थ करके धोका देना चाहा है (वह सभी गलत है)।......सनातन धर्म में सन्यासिनी, विधवाहों के लिए ही मुन्डन विधान है, कहीं २ दण्ड स्वरूप में अपराधी की भी शिखा छेदन बताया गया है।....आगे जो व्यर्थ की उछल कूद करते हुए यजुर्वेद १७–४८ **"विशिखा इव"** का **"विगत शिखा"** या **"शिखाहीनाः"** अर्थ करके जो अज्ञानता का परिचय दिया हैं वह ठीक नहीं क्योंकि इस मंत्र में ग्रीष्म मूलक उष्णता के कारण शिखा कटाना अथवा शीत होने से रखवाना नहीं कहा है।

६– महाशय जी। प्रकृति विषय– **"कन्याओं का विवाह रजस्वला होने से पूर्व हो जाना चाहिए अथवा रजस्वला होने के पश्चात्"**– यह नहीं है। – प्रश्न तो यह है कि स्वामी जी ने विवाह का दिन वही नियत्त करना लिखा है। जिस दिन रजस्वला कन्या स्नान कर चुकी हो। सो पूर्व से ही सुनिश्चित वह दिन नहीं जाना जा सकता है।

७– यहां आपके मनोविज्ञान के अनुभव पर तो शास्त्रार्थ हो नहीं रहा है किन्तु दयानन्द कृत ग्रन्थों की वैदिकता का परिक्षण हो रहा है किसी भी उत्तर से वेद मंत्र का उदाहरण देने की हिम्मत दिखाते।...**"किं पश्यसि"** और **"प्रजां पश्यामि"** वाक्यों की संगति बैठाने के लिए क्या खासी इन्द्र जाल एवं मौलवी साहब की हाजरात के वैज्ञानिक रचना कर डाली है....यह सारी कल्पना अलिफ लैला से अधिक वजनदार नहीं है।

हस्ताक्षर– **"सीताराम"** टोंक (राजस्थान)

श्री आचार्य डा० श्रीराम आर्य–

कासगंज (उ० प्र०)
तारीख– ३०–८–६५

श्री महन्त जी नमस्ते– आपका तारीख १७–८–६५ का पत्र मिला जो आपने हमारे तारीख ३०–७–६५ के पत्र के उत्तर में भेजा है। उसका प्रत्युत्तर हमारा निम्न प्रकार है–

१– ऋग्वेद के १०–१०–१० के मंत्र **"आघाता गच्छानुत्तरा............"** का जो अर्थ हमने गत पत्र में दिया था उस पर आपने कोई आपत्ति नहीं की है। केवल आपने हमसे यह जानना चाहा है कि हमने उस मंत्र को **"यमयमी"** का भाई बहिन संवाद न मान कर पति पत्नी का संवाद क्यों माना है ? हमारा उत्तर है कि वैदिक धर्म के आदेशों में भाई बहिन का सम्बन्ध इतना पवित्र होता है कि बहिन अपने भाई के साथ संभोग की इच्छा कर ही नहीं सकती है। किसी भी वेद मंत्र में इस प्रकार चर्चा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हां, आपके पौराणिक मत में इस प्रकार बहिन भाई का व्यवहार असम्भव नहीं है इसी के लिए सायण ने

यम यमी को भाई बहिन माना है, जो कि अशुद्ध कल्पना है। आर्य समाज ने यम यमी को पति पत्नी माना है। हमारे मतानुसार (यमी, याम्या, याम्य)=रात्रि के अर्थो में निघण्टु १–७ से आया है। और यम=दिन है। विवस्वान सूर्य से दिन की उत्पत्ति होती है। रात और दिन दोनों की शास्त्रकार **"तयोरेतौ वत्सावहो रात्रे पृथिव्या अहः। ता अवस्रटौ दम्पति अभवतः"**।। तैतरिय आरण्यक १–१०।। इस प्रमाण से दम्पति अर्थात पति पत्नी मानते हैं। ऋग्वेद १०–१७–१ में **"यमस्यमाता पस्त्रयुंह्यमाना"** में सरण्यू (ऊषा से केवल यम (दिन) की उत्पत्ति मानी है तथा यम यमी दोनों की नहीं मानी है। वैदिक यन्त्रालय अजमेर के छपे जिस ऋग्वेद सं० का आपने उल्लेख किया है, इसमें १७ सूक्त के प्रथम व दूसरे मंत्र **"तवष्टा दुहित्रे..."** इनका देवता सरण्यू लिखा है....। जैसा पंडित पंडितानी और राजा रानी, पति पत्नी कहे जाते है इसी प्रकार यम और उसकी पत्नी यमी कहे जाते है। पति पत्नी के संवाद के रूप में यह मंत्र दिया है जिसमें नियोग का समर्थन **"अन्य मिच्छस्व सुभगेपतिः मत्...."** के वाक्य में ऋषि दयानन्द जी महाराज ने किया है। हमारा पक्ष सत्य सिद्ध है। आपको ज्ञान तो कुछ है नहीं औरों के लेखों की नकलें कर–करके शास्त्रार्थ चला रहे हैं। पर अहंकार बहुत है....।

२– वेद समस्त सत्य विद्याओं का भण्डार है। उसमें ज्ञान विज्ञान की सभी बातों का बीज नीहित है। गृहस्थाश्रम चार आश्रमों में मुख्य आश्रम है, जिसका वेदों में विधान है गृहस्थ आश्रम का मुख्य उद्देश्य प्रजा की वृद्धि करना है तथा सन्तानोंत्पत्ति की प्रक्रिया का भी वेद में बीज रूप से **"रेतो मूत्र"** यजुर्वेद १९–७६ में वर्णन होना यह एक आवश्यक प्रजनन विज्ञान का निर्देशक है जो कि आवश्यक है। इस विज्ञान का विधायक मंत्र वेद से मिलने पर कोई कुपढ़ पौराणिक पत्थर पूजक ही वेद की उपमा कोक शास्त्र से देकर वेद का अपमान कर सकता है क्योंकि आप भी उसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं, अतः वेद को कोक शास्त्र बताना आपके लिए असम्भव नहीं संसार के सारे प्राणी हर आवश्यक बात का स्वाभाविक ज्ञान रखते हैं, जो उसके जीवन में जरूरी होता है। पर मानव का ज्ञान नैमित्तक होता है। अतः इसके लिए वेद भगवान का प्रजनन विज्ञान का मुख्य रूप में उपदेश आवश्यक था। आपको स्वामी दयानन्द के वैज्ञानिक सृष्टि नियमानुकूल भाष्य को देखकर परेशानी होती है, पर अपने आका महीधर के भाष्य पर शर्म नहीं आती जिसने लिखा है **"महिषी अश्वशिश्नं स्वयं मेवा कृष्ण स्वमोनी स्थापयति"** (यजुर्वेद २३–२० पर महीधर भाष्य) अर्थात्– स्त्री घोड़े के लिंग को स्वयं खींचकर अपनी योनि में स्थापित् कर लेवे। हम आपको यहाँ यह बताना आवश्यक समझते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में ग्रहस्थाश्रम प्रकरण में इस वैज्ञानिक गर्भाधान विधि का उपदेश क्यों किया गया है ?– स्वामी दयानन्द जी के युग से पूर्व हिन्दू पौराणिक समाज में पुराणकारों ने गर्भाधान की अनेकानेक उलटी–सीधी विधियाँ चालू कर रखी थी, जिनसे सारा समाज परेशान था। देखिये हम कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत करते हैं–

"गुदाधान"–

(क) ब्रह्माजी से राक्षसों ने संभोग किया था। देखिये– (भागवत पुराण ३२–५६)

(ख) शिवजी ने लिंग पर वज्र रखकर अन्धक दैत्य के पुत्र आदि के साथ संभोग कर डाला और उसी अप्राकृतिक व्यभिचार से वह बालक मर गया। देखिये– मत्स्य पुराण अध्याय १५५ का श्लोक देखें–**मेढ़े वज्रांस्त्रमादाय दानवन्तं शातयत्। अवुध्यद्वीर कौनेव दानवेन्द्र निष्दितम्।। ३७।। "मुखाधान व नासिकाधान"– "अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समासदत्। सा संवैवस्वतं शुक्र नासाभ्यां समधारयन"।।**

(भविष्य पुराण ब्रह्म पर्व अध्याय ७६–५५–५६) अर्थात्– सूर्य देव ने अपनी खास भतीजी के मुँह में मैथुन कर डाला और नाक में वीर्याधान कर दिया था।

"कर्णाधान"–

"तद्वीर्य स्थापयामास पत्रे सप्तर्ष यश्चते। प्रेरिता मनसा तेन राम कार्थार्थ मादरात।। तै गौतम सुतायां तद्वीर्य शम्भोर्महर्षिभिः। कर्ण द्वारा तथाञ्जन्या राम कार्यार्थ माहितम्।। ततश्च समये तस्मात् हनूमा–निति नामभाक।। (शिव पुराण शतरूद्र संहिता अध्याय २०)। अर्थ–शिवजी का पतित वीर्य सप्तर्षियों ने पत्तों के दोने में बटोर लिया और अंजनी के कान में घुसेड़ दिया। उसी से हनुमान जी पैदा हो पड़े थे।

"मुर्दाधान"–

राजा व्युषिताश्व की लाश के साथ रानी भद्रा ने संभोग करके सात लड़के पैदा कर लिये थे। देखिये– महाभारत आदि पर्व अध्याय १२० श्लोक ३४–३६, देखिये– गोरखपुर द्वारा प्रकाशित।।

"घोड़ाधान"–

"पतत्रिणां तदा सार्ध सुस्थेन च चेतसा। अवसद्रजनी मेकां कौशल्या धर्म काम्यया।। होता ध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समनियोजयन।। (बाल्मीकि रामायण बाल काण्ड सर्ग १४–३५)। अर्थात्–कौशल्या देवी (रामावतार की माताजी) एक रात घोड़े के पास धर्म की कामना से रही और वहीं पौराणिक पंडितों ने घोड़े से उनका नियोग करा दिया। उसकी विधि महीधर ने बता दी है कि– **"रानी अश्वलिंग को खींचकर स्वयोनि में स्थापित कर लेवे"।।**

"वीर्य पान से गर्भाधान"–

"योऽयं देवाधि देवः नीललोहितः। तस्यरेतः सुराः पीत्वासगर्भा विष्णुना सह"।। (सौर पुराण अध्याय ५३–३६) अर्थात्– शिवजी ने अपना वीर्य भूमि पर छोड़ दिया और विष्णु के सहित सारे ही देवता उसे जायके से पी गये और उससे उन सभी को गर्भ रह गये।

"उपस्थेन्द्रिय चाटकर गर्भाधान"–

दीर्घतमा की उपस्थेन्द्रिय को चाटने से रानी सुदेषणा ने दीर्घ लिंगी बालक को जन्म दिया था। (देखिये– मतस्य पुराण अध्याय ४८)

गैयाधान"–

या रूपार्द्धवती पत्नी ब्राह्मणा काम रूपिणी। सुरभिः सहिता भूत्वा ब्राह्मार्ण समुपस्थितः।। ततस्तामागमद ब्रह्मा मैथुनं लोक पूजितः।। (मत्स्य पुराण अध्याय १६७–३४–३५) अर्थात्– ब्रह्मा की रूपवती पत्नी गैया बन गई और ब्रह्मा जी ने उससे घोर मैथुन करके उसके गर्भाधान कर डाला।

"रामाधान"–

"पुरामहर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः। द्रष्ट्वा रामंहरि तत्र भोक्तं मैच्छन्स विग्रहम्।। १६६।। ते सर्वे स्त्री तवमापन्ना समुदभूतास्य, गोकुले। हरिं सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्तवा भवार्णवात्।। देखिये– पदम

पुराण उत्तर खण्ड अध्याय ५७२ कलकत्ता द्वारा प्रकाशित) अर्थात्–दण्डक वन के सारे ऋषिमुनियों ने राम को देखकर उनसे भोग की इच्छा प्रकट की। द्वापर में रामचन्द्र जी कृष्ण बने और वे ऋषि मुनि गोपियां बनी। तब राम ने उनकी कामेच्छा पूर्ण करके उनको भवसागर से पार कर दिया। (संभोग से मुक्ति का कितना सुन्दर नुस्खा हैं ? आप भी भवसागर से तर जावें) तात्पर्य यह है कि पुराणों के मानने वाले आप लोगों के धर्म में गर्भाधान के अनेक तरीके उस युग में चालू हो रहे थे तथा देवताओं के व्यभिचार को देखकर आपके धर्म वाले उन पर चल रहे थे। घोड़े व गधों आदि से औरतों के गर्भाधान कराने की प्रथा चालू थी। कौशल्या का भी घोड़े से गर्भाधान कराया गया था, ब्रह्मा जी का पशुओं से मैथुन, सूर्य का भतीजी से मुख मैथुन, शिवजी का दैत्य पुत्र आदि से पुरूष मैथुन, अंजनी के कान में वीर्य का आधान करना अर्थात् स्त्रियों व पुरूषों के आगे पीछे, ऊपर नीचे सभी ओर से गर्भाधान किये जाते थे। वीर्य पीने की प्रथा जारी थी। शिवजी का वीर्य पान करके विष्णु आदि सभी देवताओं के गर्भाधान होते थे। पुराण इसमें साक्षी है तो ऋषिवर दयानन्द जी ने आयुर्वेदिक ग्रन्थों एवं वेदादि शास्त्रों के आधार पर भारत के सनातनियों को बताया कि तुम्हारे सारे पुराणादि ग्रन्थ तथा सारे संस्कार मूर्खता पूर्ण हैं। गृहस्थ को प्रजा की उत्पत्ति का वास्तविक प्रकार वेद मन्त्र के आधार पर एवं आयुर्वेद की पद्धति से बतला कर पौराणिकों का सही मार्ग दर्शन एवं उन पर महान उपकार किया। चरक ने स्पष्ट लिखा है–

(क) "न च न्युब्जां पार्श्वगातां वा संसेवेत। न्युब्जाय वातो वातो बलवान् स योनिं पीडयति पार्श्व गतायां दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा संच्युतोअपि दधाति गर्भाशयं वामे पित्तं पार्श्वे। तस्याः पीडितं विदहति रक्त शुक्रम्। तस्मादुत्तानां सती बीजं गृहणीयात्। तस्या हि यथा स्थान भवः तिष्ठन्ते दोषाः।।

(चरक शारीरिक स्थान ८–६)

अर्थात्– नीचे मुख की हुई औंधी लेटी हुई स्त्री के साथ संभोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि अधोमुख स्थिति में वायु बलवान होता है यह वायु योनि को पीड़ित करता है। दक्षिण पार्श्व लेटने से कफ स्रवित होकर गर्भाशय को ढांक लेता है। वाम पार्श्व में लेटने से पित्त कुपित होकर रक्त और शुक्र को दूषित कर देता है तथा उसे गर्म कर देता है। इस लिये स्त्री उत्तानपाद (चित्त) पीठ के बल लेट कर बीज (वीर्य) को योनि में ग्रहण करे। इस स्थिति में दोष वातादि अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहते हैं।

(ख) खड़े होकर सम्भोग करने से शुक्राश्मरी रोग हो जाता है। **(भाव प्रकाश निघण्टु)**

(ग) सिवाय चित्त होकर संयोग करने के अन्य सभी प्रकारों में वात, पित्त और कफ उत्पन्न होकर बाधा पहुंचाते हैं व रोग उत्पन्न करते हैं। **(श० क०)**

आयुर्वेद के प्रधान ग्रन्थ चरक में भी चित्त लेटकर स्त्री को गर्भाधान करने का विधान किया है। चित्त लेटने पर जब पुरूष स्त्री के ऊपर लेटेगा तो दोनों के नाक मुँह आंखे–नाभि–हृदय आदि सब सामने के अंग परस्पर मिल ही जावेंगे। कामोद्वेग में यह स्वाभाविक प्रकार है। वेद ने **"रेतो मूत्र बिजहाति योनिम्"** मन्त्र के द्वारा योनि में गर्भाधान करने का आदेश दिया है तो चरक ने उसकी व्याख्या कर दी है। महर्षि दयानन्द जी ने चरक को वैसे का वैसा ही अपने मान्य ग्रन्थों में स्थान दिया है जैसे कि मनुस्मृति को दिया है। इस प्रकार आपका आक्षेप निर्मूल हो जाता है जो कि द्वेषवश किया गया है। आप क्या इससे भिन्न प्रकार से खड़े होकर या पीछे से गर्भाधान ऊंट की तरह से करते हैं, ? या शिवजी के बालक आदि के साथ करने की तरह गुदाधान करने कराने के अभ्यासी हैं ? अथवा स्वयं न करके महीधराचार्य की बताई विधि से घोड़ों के साथ

सम्भोग कराया करते हैं ? आखिर कोई बात ऐसी ही अवश्य है जिससे आपको सत्यार्थ प्रकाश का बताया हुआ तरीका पसन्द नहीं है। ऋषि दयानन्द जी व आर्य समाज को केवल वेद ही मान्य नहीं हैं, वरन वेदानुकूल, सृष्टि नियमानुकूल सत्य बात के प्रतिपादक सभी अन्य ग्रन्थ मान्य होते हैं। परन्तु अप्राकृतिक व्यभिचार अर्थात् घोड़ों से–गधों से, मुख मैथुन, गुदाधान, कर्णाधान, पशु आधान आदि के प्रचारक पुराणादि भ्रष्ट ग्रंथ हम लोगों को मान्य नहीं हैं, जिनके आप हिमायती बनकर गन्दी बातों का समर्थन करते हैं। श्री स्वामी जी महाराज को इस विषय की जानकारी उसी प्रकार हुई जैसे आयुर्वेद शास्त्रकारों को समस्त मांस, सारे विष उपविषों मूत्र तथा मलों के गुणों की जानकारी बिना स्वयं चखे या खाये लोक तथा शास्त्रानुभव से हुई थी। अतः स्वामी जी महाराज पर आपका इस सम्बन्ध में आक्षेप अज्ञानता पूर्ण है। इस सन्तानोत्पत्ति विज्ञान का मूल हम वेद में दिखा चुके हैं। अतः स्पष्टतया सत्यार्थ प्रकाश की सन्तानोत्पत्ति क्रिया विधान वेद तथा आयुर्वेद से सर्वथा अनुकूल है। यदि आप या संसार के किसी सनातनी में दम हो तो गुदाधान आदि बेहूदी मूर्खता पूर्ण पौराणिक गर्भाधान की विधियों को वेदशास्त्र–आयुर्वेद या सभ्य संसार की मान्यताओं से समर्थन करके दिखाने का साहस करे। आप जैसे वाम मार्गीय उपरोक्त पुराणानुसारिणी पद्यतियों के साक्षात् अनुयायी लोग यदि हमारी सभ्य वैज्ञानिक शास्त्रीय विधान से समर्थित पद्धतियों पर आक्षेप द्वेष वश न करेंगे तो और कौन करेगा? क्या वात्स्यायन मुनि ने सारे **"काम शास्त्र"** का स्वयं अनुभव करके उसकी रचना की थी ? क्या डाक्टर या वैद्य लोग सभी विषयुक्त दवाओं को स्वयं चखकर देते हैं ? विपक्षी तो स्वयं वैद्य बनता है। उसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि हर बात स्वयं अनुभव मात्र से जान कर विद्वान लोग उसे संसार के उपकार को बताया करते हैं। महर्षि दयानन्द जी को चरक–सुश्रुत ग्रन्थ मान्य थे हम सुश्रुत के प्रमाण से बालक को केवल छः दिन तक माता का दूध पिलाने का प्रमाण उपस्थित करते है देखिये–

"धमनीनां हृदिस्थानां विवृत्वादनन्तरम् चतुः रात्रात्रिरात्रांद्वा स्त्रीणां स्तन्य प्रवर्तते। तस्तात्प्रथमेऽन्हि मधु सर्पि रनन्ता मिश्र मंत्रपूतं त्रिकाल पाययेद। द्वितीये लक्ष्मणा सिद्धिमर्पि स्तृतीये च। ततः प्रड् निवारित स्तन्य मधु सर्पिः स्वपाणिल्ल सम्मितं द्विकालं पाययेत्।।"

अर्थात्– बालक उत्पन्न होने के तीन चार दिन पीछे हृदय की धमनियां खुल जाती हैं तब उनमें दूध बढ़ने लगता है। इसलिये पहिले दिन घी, शहद और अनन्ता मिलाकर पवित्र करके तीन समय पिलावे। फिर चौथे दिन के तीसरे काल से बालक को दूध पिलावें। आगे देखिये सुश्रुत का वचन–

"ततो दशमे हनि माता पितरौ कृत मंगल कौतुकी स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्र न ाम वा। ततो यथा वर्ण धात्री मुपे यान्मध्यम् इत्यादि।

३७/३८ (सुश्रुत शारीरिक स्थान)

अर्थात्–फिर दशवें दिन माता पिता मंगल कार्य स्वस्तिवाचनादि का पाठ करके बालक का नामकरणसंस्कार करके बालक धायी को दे देवें। इस प्रकार माता को चौथे दिन के बाद से प्रारम्भ करके दसवें दिन तक दूध पिलाने का अर्थात् केवल छः दिन का ही विधान सुश्रुत का स्पष्ट है यही सत्यार्थ प्रकाश की तदनुकूल व्यवस्था है, जो कि वेद के उपांग आयुर्वेद से समर्थित है। धाय के दूध पिलाने का प्रमाण हम **"माधवाचार्य को डबल उत्तर"** में दे चुके हैं। यह हमारी शास्त्रीय परम्परा है। जिसे विदेशियों ने अपना लिया है और पुराणों के घासलेटी साहित्य के चक्कर में पडकर इस देश के निवासी उसे भूल चुके हैं तथा उसे विदेशी मानते हैं। **"स्तन पर लेप"** व **"योनि संकोचन"** के विषय में हम **"माधवाचार्य को डबल उत्तर"** में

पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं, जिसे न तो वे काट सके हैं और न आप से कट सका है। क्या आप बतावेंगे कि आपके रंग–रंगीले अवतार वेद व्यास जी ने निम्न नुस्खे स्वयं अनुभव करके लिखे हैं ? साथ ही इनको लिखने का उद्देश्य भी प्रकट करें। देखिये हम यहां प्रमाण सहित उदधृत करते हैं–

खञ्जरीटस्य मांसंतु मधुना सहयेषयेत्। 'ऋतु काले योनि लेपात् पुरुषो दास तामियात्।।५।। दुरालभा वचा कुष्टं कुङमं च शतावरो। तिल तैलेन संयुक्तं योनि लेपाद्वशो नरः ।।२१।। निम्बकाष्ठस्य धूमेन धूपयित्वा भगं स्त्रियाः। सुभगा स्यात्सति रुद्ध पतिर्दासो भविष्यति।।२२।। (गरुड़ पुराण अध्याय १७८)।। पाठालङ्ल्य पामार्गे स्तथा च कुटजै पृथक। नाभि वास्तिभगालेपात् सुखं नारि प्रसूयते।।१०।। (गरुड पुराण १७२) गुटिकां शोधिता कृत्वा नारी योन्यां प्रवेशयेत्। दशवारं प्रसूतापि पुनः कन्या भविष्यति ८।। कर्पूर मदनफल मधुकैः पूरितः शिव। यान्तिः शुभस्यात् वृद्धाया युवस्या किं पुत्रर्हरः।। गरुडपुराण १८१।। विडंगभृंगराजाविभावितं सर्वरोगुनुत्। चूर्ण विदार्यामध्वाज्यं लीढव। दस स्त्रियो व्रजेत्।। २८।। गरुडपुराण १७२।। ब्रह्मदण्डीवचा कुष्टं प्रयंगु नाग केशरम्। दद्यात्ताम्बूलं संयुक्त स्त्रीणां मन्त्रेणतद्वशम्।। १।। गरुडपुराण १७८।। निज शुक्रं गृहीत्व तु वाम हस्तेन यः पुमान् कामिनी चरणं वामं लिप्येत स्यात् स्त्रियः प्रियः।।१५।। गरुड़पुराण १८५।। पुष्पाणि पंचरक्तानि गृहीत्वा यानि कानि च। तत्तुल्यंच प्रयंगश्च पेययेदेक योगतः अनेन लिप्तलिंगस्य कामिनीं वशता मियात्।। १७।। गरुड़पुराण १८५।। अर्थात् अब आप बतावें कि आपके महा रंगीले तथा अय्याश अवतार व्यास जी को क्या सूझा था जो औरतों को योनि (संकुचित) तंग करने, भग के ऊपर लेप कराने, धुआं देने, पराई औरतों को व्यभिचारार्थ वश में करने के स्वानुभूत नुस्खे गरुड़ पुराण में आप लोगों के लिए लिख गये हैं। आखिर व्यभिचार प्रसारक पर नारी वशीकरण के नुस्खे उन्होंने किस उद्देश्य से पुराणों में लिखे हैं ? बतावें कि क्या व्यास जी व्यभिचारी थे ? यह भी बतावें कि ये नुसखे उनके स्वानुभूति थे या दूसरों के अनुभव सिद्ध योग थे ?

सत्यार्थ प्रकाश में नारी के लिये प्रसवोपरान्त दूध स्रवित होने से रोकने व उसके स्वास्थ्य सुधार के लिये "**शूष्ठीपाकादि**" का विधान है, वह सदुद्देश्य से है। उस पर आपकी आपत्ति को स्थान नहीं है। पर व्यासजी के उक्त प्रयोग अवश्य व्यभिचार प्रचारार्थ हैं। उन व्यासोक्त नुस्खों पर आप स्वानुभव लिखें। यहां पर मुख के सामने मुख करके गर्भाधान के प्रमाण के समर्थन में हम एक अन्य प्रमाण और देते हैं देखिये– "**अथयामिच्छेद्धीतेति तस्यामर्थ निष्ठाय मुखेन मुखं संधामापान्यामि प्राण्यादिन्द्रियेण ते रेतसा आदधामीति गर्मिण्येव भवति।**" (बृहदारण्यकोपनिषद ६/४/११) **अर्थ–** पुरूष यदि स्त्री के गर्भ धारण करना चाहे तो स्त्री की योनि में अपनी प्रजनेन्द्रिय को रखकर मुख से मुख को मिलाकर मैथुन करे तो उसको अवश्य ही गर्भ रहेगा। उपनिषदकार की बात सत्यार्थप्रकाश से ज्यों की त्यों मिल गई। अब आप बतावें कि आप लोग क्या स्त्री के पीठ की ओर मुंह करके गुदाधान से गर्भाधान करते हैं जो उन्हें सत्यार्थप्रकाश की विधि पर ऐतराज है ? प्रसूता के लिए सौभाग्य शुण्ठीपाक का विधान भी सत्यार्थप्रकाश में ठीक है। आप पूछते हैं कि आयुर्वेद में उसका विधान कहां है? देखिये भैषज्य रत्नावली में यह योग दिया है। उसकी उपयोगिता में लिखा है कि– "**आमवातं निहन्ताशु कासं श्वास समीनसम्। ग्रहणी अम्ल पित्तंक्षत क्षयन्।। स्त्री रोगं विंशति चैव तत्क्षणाद्देव नाशयेत्। अहन्यानि च स्त्रीणां स्तनदाढ्यकर परम्।। सौभाग्य जननं स्त्रीणां पुष्ठिदं धातु वर्धनम्।। १।। तद्वर्ण बल्यमायुष्य वलीपलित नाशनम्। वयसः स्थापनं प्रोक्तभग्नि दीप्ति करं परम्।। विषति व्यापदो योनेः प्रदरं पञ्जधाऽपिच। यानि दोष हर स्त्रीणां रजो दोष हरं तथा। पाप ससगंजं दौषं नाशयेन्नात्र संशय।। हन्ति सर्व गदानेषां शुष्ठी सौभाग्य दायिनी स्त्रीणामतः सौभाग्य शुष्ठीपाक।**

अर्थात्– यह सौभाग्य शुण्ठीपाक–आमवात–श्वास, काम, पीनस–ग्रहणी रोग अम्लपित्त, रक्त पित्त, क्षत क्षय, और सभी रोगों को नष्ट करता है। उसके सेवन से स्त्रियों के स्तन दृढ़ होते हैं, सौभाग्य की वृद्धि होती है। यह पाक धातु वर्धक, प्रसूता स्त्री के लिए हितकर है। इससे योनि रोग, अग्नि प्रदीपक है। यह विशेषतः प्रसूता स्त्री के लिए हितकर है। इससे योनिरोग, सभी प्रदर समस्त योनिदोष, आर्तवदोष आमवात आदि सम्पूर्ण दोष मिट जाते है। यह सौभाग्य शुण्ठीपाक स्त्रियों के सौभाग्य को बढ़ाने वाला है।

सौभाग्य शुण्ठीपाक का विधान सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि दयानन्द के महान आयुर्वेद ज्ञाता होने का प्रमाण है। आपको तो यह ही पता नहीं कि इस नाम का कोई पाक भी आयुर्वेद में है या नहीं। न जाने कैसे आप जैसे कुपढ़ व्यक्ति को टोंक जिला वैद्य सभा का प्रधान बना दिया गया है ? अब थोड़ा सोचकर हमें यह भी बतावें कि व्यास जी ने यह नीचे लिखा नुस्खा लिखकर विधवा की योनि की खुजली मिटाने हेतु बताने का कष्ट क्यों किया है–

"योनि कंडू समासादय दिवांवा यदिवा निशि। एकान्त स्थान मभ्येत्य निवृत्तम वौसनभगम्।। शिश्नस्य अथवा पापं यत्वदन्तर वेशनात्। अतोऽपि कंडू सम्भू त प्रवेशयेद थागुलीम्।। मर्दयित्वा कराभ्यां तत्सन्ताञ्च च विवृत्यतु। अस कृणुन्वती पादौ विबृतास्यापि दुःखिता। खढवा काष्टमथा लिंग्यं चस्तन पीर्ड यथा प्रियम्। अज्ञातं गृह गत्वा रमये देव निश्चितम्।। (पद्म पुराण पाताल खंड अध्याय ११२)।। अर्थात्– विधवा के गुप्तांग में यदि खुजली होने लगे तो वह कपड़ा हटाकर (नंगी होकर) अंगुली डालकर हाथ से, लकड़ी से, या लिंग से खूब मर्दन करे। अथवा चुपचाप किसी के घर जाकर विषय भोग कराकर उसे मिटवा ले छाती को खूब मसले, इत्यादि।। श्रीमान् विष्णु के अवतार व्यास जी को विधवाओं के गुप्तांग की खुजली मिटवाने व स्तन मसलवाने (पड़ोसी के घर जाकर विषय भोग कराने) की विधि बताने की आवश्यकता अपने सनातनी भक्तों को क्यों हुई ?....हमने राम को भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम राम लिखा था वह ठीक था हमारे ख्याल से। पर आप उन्हें नहीं समझ सके हैं। भगवान का अर्थ हम ऐश्वर्यवान मानते हैं और आप सनातनी होने से पुराणों के रंग में रंगे होने से भग+वान का अर्थ भगवाली मानते हैं। जैसे धनवान का अर्थ धनवाला होता है। आपके हमारे दृष्टि कोण में अन्तर है। हम राम को ऐश्वर्यवान मानते हैं आप उनको अपने अर्थो में भगवान मानते होंगे। बधाई है। भगवान का अर्थ सर्वत्र परमात्मा नहीं होता है। कुछ संस्कृत भाषा का भी बोध हैं या यों ही महन्त जी बन बैठे हो ? **"भग"** शब्द के छः अर्थ होते हैं। निरुक्त पढ़कर देखिए. ... **"नक्तोषसामा"** वेद मंत्र के द्वारा हमने माता व धाय दोनों के द्वारा बालक का दुग्धादि से पोषण होने का प्रमाण दिया था। सुश्रुत व चरक के मतानुसार केवल छः दिन तक माता व बाद को धाय का दूध पिलाने का विधान है, जो वेद सम्मत है। यह हम पीछे दे चुके है। चरक व सुश्रुतकार ने ठीक लिखा है धाय स्ववर्ण की शुद्ध स्त्री होनी चाहिए। इसमें सवर्णा से आर्य समाज के सिद्धान्त का विरोध नहीं है। नीच कुल की गन्दी स्त्री धाय नहीं होनी चाहिए। नीच कुल तो हर पौराणिक जाति में हो सकता है, हर वर्ण में होता है। यहाँ नीच कुल से चाँडालादि परिवारों से तात्पर्य है, न कि पौराणिक मतानुसार मानी जाने वाली जाति बिरादरी से ! आप तो जरा २ सी बात भी नहीं समझ पाते हैं। दूसरों के लेखों की नकलें करके लेख लिखते हैं। खुद की भी कुछ योग्यता है या कोरे पत्थर पूजक महन्त जी हैं। आपने लिखा है कि– **"स्वामी जी के मुँह पर करारा तमाचा लगाते हो।"** इस जंगलीपन वाक्य का उत्तर यह है कि हम लोग तो महर्षि के भक्त होने से उनकी प्रत्येक बात का आदर करते हैं, पर आपके पुराणकारों ने किस २ पर गिन २ कर निन्दात्मक बे सिर–पैर के उड़ाये है उसके चन्द नमूने उत्तर में हमसे यहां सुन लेवें। ताकि आपका दिमाग दुरुस्त हो जावे। ताकि

आपको लिखने की तमीज कुछ आ जावे।

"रामअवतार पर प्रहार"– "रामो विरह सन्तप्तो रुरोद भ्रश मातुर। योऽपृच्छत पादयान मूढक्व गताजनकात्मजा" सीता के विरह में मूर्ख राम रोता फिरा और पूछता फिरा कि मेरी सीता कहां गई बता दो?– इसमें रामचन्द्र जी महाराज को मूर्ख बताकर उनके मुँह पर पुराणकार ने करारा....मारा है। देखिये– **(देवी भागवत ४–२०–४६)। पुराणों का व्यास जी पर प्रहार–"धूर्ते पुराण चतुरैः हरि शंकराणाम्ः सेवा पराश्च विहिता स्तव निर्मितानाम्।। (देवी भागवत ५–१८–११)** इसमें पुराणकार ने पुराण बनाने वाले (व्यास जी) को महा धूर्त बताकर उन पर कस कर....प्रहार किया है।

"श्री कृष्ण अवतार पर प्रहार"– "गोपालामिनी जारश्च, चौर जार शिखामणि" (गोपाल सहस्त्र नाम नं. १३७) इसमें श्री कृष्ण को स्त्रियों का लम्पट व चोर और भी व्यभिचारियों का शिरोमणि बताकर उन पर कसकर गन्दा प्रहार किया है।

"पुराणों का ब्रह्मा व इन्द्रादि पर प्रहार"– "इन्द्रोऽग्निश्चन्द्र मावेधापार द्वारा भिः लम्पटाः।" इसमें इन्द्र अग्नि–चन्द्रमा–ब्रह्मा आदि को–पर नारी लम्पट बताकर उनपर कस २ कर निन्दात्मक डन्डे जमाये गए है। **"विष्णु भगवान पर तमा–का खुला प्रहार"। "तथापि पर नारीणाँ लम्पटो नित्यमेहि।" (धर्म संहिता अध्याय १०)** इसमें विष्णु भगवान को भी व्यभिचारी शिरोमणि बताकर उन पर पुराणकार ने गिन २ कर करारे तमाचे लगाये हैं। **"शिवजी पर....प्रहार"। "शिवोऽपि पर्वते नित्यं कामिनी पाश संयुतः" (देवी भागवत १–१०–२८)** तथा **"एष स्त्री लम्पटो देवो" (मतस्य पुराण १५४–३१)** इनमें बताया है कि शिवजी हिमालय पर हर समय औरतों की बाहों में फँसे रहते हैं तथा पर नारी लम्पट (व्याभिचारी) हैं। **"सदा चाक्ष प्रियो धूर्तोगणाध्यक्षो गणाधिपः" (महाभारत शान्ति पर्व अध्याय १८४–१४२)।।** अर्थात्–शिवजी जुआ खेलने वाला, परनारीलम्पट तथा एक नम्बरी धूर्त है। वह गणों का अध्यक्ष भी है। इन प्रमाणों में शिवजी पर गिन–गिन कर व्यास जी ने निदात्मक.....उड़ाये हैं। नोट करलें।

महन्त जी आप पर भी करारे.....का प्रहार– "गा नृग, ब्राह्मणों भवति न वाणिग न कुशीलवः न शूद्र प्रेषणे कुर्वन्नत्तेन न चिकित्सकः'।। (वसिष्ठ स्मृति ३/४) अर्थवेद न जानने वाले, व्योपारी, राजा आदि की मिथ्या प्रशंसा करने वाले, वैद्य चिकित्सक ये सभी महापतित होते हैं।। तब टोंक के वैद्यों की सभा के प्रधान आप स्वयं अत्यन्त पतित (घृणित) होने ही चाहिए। और देखिये– **"ज्योतिर्विदों ह्यथर्वाणः कीरा पौराण पाठकाः श्राद्धे यज्ञे महादाने वरणीया कदाचन।। ३८३।।" "श्राद्धे पितरो घोरं दान चैवतु निष्फलम्। यज्ञे च फल हानि स्यात् तस्मात्तान परिवर्जयेत"।। ३८४।। (अत्रि स्मृति)** इसमें पुराण बांचने वाले तथा ज्योतिषी लोगों को महा पतित माना गया है। उनको बुलाने पर यज्ञ का फल नष्ट, श्राद्ध आदि नष्ट हो जाता है। आप ज्योतिषी, पुराण पाठक तथा वैद्य हैं। अतः स्मृति कार ने आपकी खोपड़ी पर भी खूब कसकर....के प्रहार किए है। इस प्रकार पौराणिक शास्त्रों में आपके देवताओं तथा आप पर जो निन्दात्मक शाब्दिक गालियों के डन्डे अथवा थप्पड़ कस २ कर उड़ाये हैं, हमने उनके चन्द नमूने ऊपर दिए हैं। आशा है आपने जो मूर्खतापूर्ण वाक्य हमारे व महर्षि दयानन्द जी के लिये गत लेख में लिखे थे, उसका समुचित उत्तर आपको सप्रमाण आपके ही मान्य शास्त्रों से मिल गया होगा। भविष्य में सावधानी से कलम उठाना सीख लेवें तो आपके लिए ही हितकर होगा। हम ईंट का जबाव पत्थर से देना भी जानते हैं। यहां हम ऋषि दयानन्द जी की मान्यता का एक और प्रमाण देना चाहते हैं कि ऋषि को चरक–सुश्रुत–निघण्टु ये आयुर्वेद के ग्रन्थ मान्य

थे। वे ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ग्रन्थ प्रमाण्याप्रमाण्य प्रकरण में लिखते हैं....."**तत्र चरक सुश्रुत निघण्टु वाद्य आयुर्वेद ग्राह्या**" अर्थात् आयुर्वेद जो वेद का उपांग है उसमें ये ग्रन्थ (प्रक्षिप्तांश छोड़कर) मान्य हैं अतः ऋषि के सिद्धान्तों के समर्थन में इनके प्रमाण देना हमारे पक्ष में सर्वदा उचित हैं। विपक्षी इसका ध्यान रखें। इसीलिये यथा स्थान हमने इनसे अपने पक्ष का समर्थन किया है। इसके बाद आपने शिखा छेदन का प्रकरण उठाया है। इस विषय पर हमने जितने तर्क तथा प्रमाण "**शल्यो जेष्यति पाण्डवान**" पुस्तक के जवाब में "**माध्वाचार्य को डबल उत्तर**" नामक पुस्तक में दिये हैं आप उनमें से एक को भी नहीं काट सकते हैं। व्यर्थ में बकवास करने बैठ गए हैं। आप लिखते हैं कि हम भी शिखा धारण करना उचित मानते हैं। पर विशेष अवस्था में शिखा छेदन कराने में कोई दोष नहीं है। हमने अनेक प्रमाण "**डबल उत्तर**" में दिए है आप में साहस होता तो उनका खण्डन करते। कात्यायन स्मृति में "**सशिख वपनं कार्य सा स्नानाद ब्रह्मचारिणा**" २५/१४ में ब्रह्मचारी को शिखा सहित बाल कटवा देने का आदेश भी तो दिया है। तो उसे विपक्षी क्यों नहीं देखते हैं। देखिये—"**कात्यायन स्मृति के अध्याय २९ में गौ को काटकर १४ टुकड़े करके उनसे यज्ञ करने का भी तो आदेश है**"। क्या विपक्षी महन्त जी इसे धर्म मानकर अमल करते हैं या कभी गौ काटकर तदनुसार गौमेध यज्ञ किया है ? जब आप स्वयं कात्यायन स्मृति को पूरी तरह से नहीं मानते हैं तो उसके प्रमाणों को मानने से हमें कैसे विवश कर सकते हैं ? "**शल्यो जेष्यति पाण्डवान**" नामक पुस्तक का मुंह तोड़ उत्तर जब हम दे चुके हैं और उसका प्रत्युत्तर उसके लेखक से नहीं बन सका है तो फिर उसी के प्रमाण देना यह आपका पाखण्ड नहीं तो और क्या है ? यदि कुछ दम था तो नए प्रमाण हमारे विपक्ष में पेश करके जवाब हमसे माँगना था। व्यर्थ बकवास करने की जरूरत शास्त्रार्थ में नहीं है। यदि कुछ पाण्डित्य हो तो दिखाइए। अन्त में फिर आप रजस्वला का प्रश्न उठाते है जिसका समाधान हम पूर्व ही कर चुके हैं। फिर सुन लीजिए—बारात लड़की वाले के यहां उस दिन पहुंचेगी जब उसकी माता कन्या के रजोदर्शन से निवृत्ति का दिन समझेगी। यदि देव योग से कन्या के स्नान में एक दिन अधिक लग जावेगा तो संस्कार एक दिन बाद हो जावेगा। गर्भाधान का समय रजोदर्शन से १६ दिन तक होता है। प्रारम्भ के ४ दिन निकालकर १२ दिन मिलते हैं। आर्य समाज पौराणिकों की तरह घड़ी मुहर्त आदि पत्रा में देखकर दिन निश्चित करना नहीं मानता है। यहां तो दोनों पक्ष जो भी दिन या समय ठीक समझकर सुविधानुसार निश्चित कर लेते हैं, वही शुभ समय संस्कार का होता है। इस प्रकार चतुर्थी कर्म व संस्कार में हमारे सिद्धान्त से कोई गड़बड़ी नहीं होगी। आप अपने यहां का सा पोल खाता न समझें जैसा कि आधी रात को मकर लगन (मक्कारों की लगन) में आप लोग शुभ को अशुभ संस्कार बना डालते हैं। गर्भिणी स्त्री को घृतयुक्त पात्र में अपना मुँह देखने का जो समाधान वैज्ञानिक ढंग पर हमने दिया था उस पर आपके सारे होश गायब हो गये। आपने कुछ पढ़ा लिखा तो है नहीं कोरी टन्ट घन्ट सीखकर महन्त जी बन बैठे हो, संस्कार जिस उद्देश्य से किए जाते हैं उनका सम्बन्ध ही मनोविज्ञान तथा आयुर्वेद के साथ होता है। वेद के तथा सूत्र ग्रन्थों के प्रमाण तो पद्धति निर्माण के लिए सहायक होते हैं। अतः हमारा पूर्व उत्तर पूर्ण तथा सत्य था। विपक्षी ने दो—एक विलक्षण बातें लिखी है, जो उसकी नासमझी का प्रमाण है। हमने वेद का मंत्र "**कुमारा विशिखा इव**" दिखाकर बालकों के चोटी रहित होने का उदाहरण मात्र दिया था, जिसका तात्पर्य केवल यह दिखाना था कि चोटी न भी रक्खी जावे तो भी वह शास्त्र विरुद्ध नहीं है। इसी प्रकार के अनेक प्रमाण हमने "**डबल उत्तर**" में दिये हैं, जिन पर विपक्षी की बोलती बन्द हो चुकी है। विपक्षी समझ लेवे कि उक्त वेद मंत्र हमारे पक्ष का पोषक है, उसका खण्डन विपक्षी से नहीं बन सका है। **ताण्ड्र महाब्राह्मण में ४—१०—२५** का निम्न प्रमाण शिखा काटने का समर्थन करता है "**शिखा अनुप्रवर्तन्ते पाप्मान मेव ताप मध्नते लघी यासः स्वर्ग लोक मपामेति**" अर्थात् बड़े यज्ञों में दीक्षा के साथ ही साथ शिखा

सहित सर मुंडवा देवे तो उससे शरीर हल्का हो जाता है जिससे स्वर्ग में जाने में सहूलियत रहती है। इस पौराणिक शास्त्र के प्रमाण में भी आवश्यकतावश चोटी सहित सर मुंडा देने का समर्थन किया गया है। इस प्रकार ऋषि दयानन्द की व्यवस्था **"आवश्यकता पड़ने पर चोटी सहित सर मुंडाने की"** उक्त व्यवस्थाओं के अनुकूल होने से वेदानुकूल है और ठीक है। यज्ञ के समय चोटी कटाना दण्ड नहीं है वरन् व्यवस्था है। आप में तो इतनी भी अकल नहीं है जो दण्ड और व्यवस्था में भेद भी समझ सके। कात्यायन के पीछे दिये प्रमाण में भी व्यवस्था है, दण्ड में चोटी कटाने से क्या बनेगा ? इससे तो सनातनियों की नाक, कान, हाथ, पैर काटने से ठीक रह सकता है। चोटी के बाल तो फिर शीघ्र पैदा हो जाते हैं, साथ ही उसे काटने से कोई कष्ट भी नहीं होता है। विश्वास न हो तो अपनी चोटी और नाक कटा के देख लेवे और बतावे कि कष्ट किसके कटने से होता है ? इस प्रकार हमने आपके सभी प्रश्नों का युक्तियुक्त सप्रमाण उत्तर दे दिया है। आशा है वितण्डावाद (बकवास) त्यागकर आप हमारे समक्ष अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करेंगे, जिससे शास्त्रार्थ देखने वालों को कुछ ज्ञान की सामग्री मिले। जिस तरह की बकवास आपने गत पत्रों में की है वह आपकी विद्वान विचारक के स्थान पर छिछोरा व्यक्ति सिद्ध करती है। आशा है आपके **"तमाचा"** शब्द पर जो हमने डन्डे व....लगाने के पुराणों से विवशता में प्रमाण दिये हैं उनका शास्त्रों से ही समाधान करने की योग्यता दिखावेंगे और उचित सफाई पेश करेंगे। आपको विद्वान समझते थे पर अपने लेखों से आपने स्वयं को कुछ और सिद्ध किया है। ऊपर हमने ऋषि के ग्रन्थों को वैदिक सिद्ध किया है। विपक्षी इनमें से एक को भी मिथ्या सिद्ध नहीं कर सके हैं। विपक्षी को प्रश्न करने का तरीका भी नहीं आता है, उसे ढंग बताने के लिये तथा यह बताने के लिये कि विपक्षी के मान्य पुराण वेद विरुद्ध हैं। हम चन्द नमूने प्रश्नों के करके आपको यहां दिखाना उचित समझते हैं। देखिये ऋग्वेद मण्डल १०–१–५–६ में लिखा है **"सप्त मर्यादा कवयस्ततक्षु। तासा मेकामिदभ्यं पुरोगात्। आर्योह स्कम्भ मुपमस्य नीले यथां बिसर्गे धरुणेषु तस्थो"**। इस पर निरुक्तकार ने भाष्य में सात मर्यादायें निश्चित की है जिनका उलंघन करने वाला पापी होता है। वे यह हैं, चोरी, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, बार–बार बुरे काम करना, शराब पीना; झूठ बोलना। पुराणों में यह कुकर्म सर्वत्र पाये जाते है। अतः पुराण वेद विरूद्ध हैं। **भविष्य पुराण ब्रह्म पर्व अध्याय ७३** में लिखा है कि– **"श्रीकृष्ण जी अपनी पत्नियों के साथ शराब पी रहे थे"** तथा **भागवत पुराण** १०–६७–१० में लिखा है कि– **"गायन्तं वारूणीं पीत्वा मद विह्वल लोचनम्"**। अर्थात् बलराम अवतार शराब पीकर मतवाले हो रहे थे।। शराब पीने का क्रियात्मक विधान होने से पुराण वेद विरुद्ध हैं। **शिव पुराण रुद्र संहिता सती खंड २ अध्याय ३३** में लिखा है कि– **"वीरभद्र ने सैकड़ों ऋषियों का वध किया"** इससे पुराणों में ब्रह्म हत्या का समर्थन होता है इसलिए शिव पुराण वेद विरुद्ध है। शिव पुराण में उसी कथा में यह भी लिखा है कि–**"वीरभद्र ने यज्ञ कुन्ड में पाखाना डाला था"**। ब्रह्मा का पुत्री गमन, त्रिदेवों का सती अनसूया से व्यभिचार, इन्द्र का राजा चन्द्र की पुत्री से धुड़साल में बलात्कार आदि अनेक कथायें, विष्णु का वृन्दा तथा तुलसी सतियों से व्यभिचार यह सब वेद विरूद्ध कथायें पुराणों में होने से पुराण वेद विरूद्ध हैं। **ऋग्वेद १०–७–३४–१३** में **"अक्षैर्मा दीव्यः"** अर्थात्–वेद में जुआ खेलना निषेध है। परन्तु **पद्मपुराण उत्तर खंड अध्याय १२२** कलकत्ता का प्रकाशन, उसमें लिखा है **"शंकरश्चभवानी च क्रीडयाद्यूत मास्थितौ। भवान्याभ्यर्चिता लक्ष्मीर्धेनु रूपेण संस्थिता। पराजये विरूद्ध स्यात्प्रतिपद्यु दितेरवौ। प्रातगोवर्धनः पूर्ज्यो द्यूर्त रात्रौ समाचरेत"**। २५–२६–२६।। अर्थात् शिवजी और पार्वती ने जुआ खेला था। उसमें शिवजी हार गये, पार्वती जीत गई। इसी से शिवजी सदा दुःखी और पार्वती सुखी रहती है। प्रतिपदा के दिन सूर्योदय होने पर पराजय विरूद्ध पड़ता है। अतः प्रातः काल गोवर्धन की पूजा करें और रात को जुआ खेला करो। वेद विरूद्ध जुआ खेलने की व्यवस्था व आदेश होने

से पुराण वेद विरूद्ध है। **शिव पुराण कोटि रूद्र संहिता ११**, में शिवजी हाथ में लिंग (मूत्रेन्द्रिय) पकड़े भृगु ऋषि के आश्रम पर गये और वहां ऋषि पत्नियों को व्यभिचार से भ्रष्ट कर डाला। इस कार्य को देखकर ऋषियों ने "**विरूद्ध**" वेद विरूद्ध बतलाया था। वेद विरूद्ध कार्यों का वर्णन होने से पुराण वेद विरूद्ध हैं। ऋषियों ने शिव से कहा था "**त्वया विरूद्धं क्रियते वेद मार्ग विलोपियत्**" अर्थात् तूने वेद के मार्ग को लुप्त करने वाला विरूद्ध कार्य किया है। इसी प्रकार की सैकड़ों बातें पुराणों में वेद विरूद्ध भरी पड़ी हैं। जिनसे पुराण सारे के सारे किसी दृष्टि से भी मान्य नहीं हो सकते हैं। वे सर्वथा वेद विरूद्ध ग्रन्थ है। जब कि महर्षि दयानन्द जी के सभी सिद्धान्त वेद तथा वेद सम्मत शास्त्रों के सृष्टि नियम, आयुर्वेदादि के सत्य सिद्धान्तों से समर्पित हैं। हमारा पक्ष इस प्रकार पूर्णतः वैदिक व सत्य है, पौराणिक पक्ष सर्वथा मिथ्या तथा भ्रष्ट सिद्ध है। अब शिखा सहित सर मुंडाने के चन्द प्रमाण भी देखें–

यथा–"**गोत्र कुल कल्यम्**"। (**गोभिलगृह्यसूत्र २८/३५**) इस पर सामश्रमी जी का भाष्य इस प्रकार है। (**गोत्रकुलानुरूपं सशिखं शून्य वा पंच चूडं वा**) आदि अर्थात् गोत्र कुल के अनुसार पांच या तीन शिखा या शिखा रहित अथवा शिखा सहित मुंडन करावें। महाभाष्य में देखिये– "**इह मुंडोभव, जटिलो भव, शिखीभव यलिंल्लगो यत्रोच्येत्**"।। अर्थात् तू यहां शिखा रहित हो, जटाधारी हो, शिखाधारी हो, जिसका चिन्ह यहां कहा जाता है। और भी "**व्युप्त केशाय च नमः**"। (**यजु० १६–२९**) इस पर महीधर भाष्य इस प्रकार है "**व्युत्तो मुन्डिताः केशायस्य से व्युप्त केशस्त स्मैनमं**"।। इसमें महीधर ने शिखा सहित सम्पूर्ण केश मुडाने की बात कही है।....."**यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव। तन्न इन्द्रो बृहस्पति रदितिः शर्म यच्छतु विश्वहा शर्म यच्छतु**"– (यजुर्वेद १७–४८) देखिये इस पर महीधर भाष्य– "**कुमारा विशिखा इव विगत शिखा येषां ते विशिखा शिखा रहिते। मुन्डित मुन्डा विकीर्ण कवचा वा अति वालाश्चपलाः सन्तो यथा इतस्ततो गच्छन्ति तद्पत्**"। इस पर उब्वट भाष्य इस प्रकार है– "**यथा कुमारा अदृष्ट परिकरिणः विगत शिखा सर्व, मुन्ड तत्तमर्थ सनिपतेयुरेवं सम्पतन्ति तन्त्रे त्यर्थः।**" इन दोनों पौराणिक भाष्यों से वेद में "**विशिखा**" चोटी कटाने का उल्लेख है। अतः महर्षि दयानन्द जी की अत्युष्ण प्रदेश में आवश्यकतावश चोटी सहित सर मुंडाने की व्यवस्था पूर्णतः उचित तथा वेद व शास्त्रानुकूल है। साथ ही आपके पौराणिक मत को भी मान्य है। आपके सारे आक्षेप द्वेष पूर्ण तथा निःसार सिद्ध हो चुके हैं।

निवेदक–

तारीख ३०–८–६५ **"डा० श्रीराम आर्य"**

(कासगंज)

श्री महन्त सीताराम दास जी शास्त्री

(महन्त जी का तीसरा व अन्तिम पत्र)

"टोंक" (राजस्थान)

तारीख १–११–६५

महाशय श्रीराम जी डाक्टर साहिब हरिस्मण ! आपका ता० ३०–८–६५ का पत्र मिल गया था–जो आपने हमारे सात प्रश्नों के उत्तर में भेजा था। जिसका प्रत्यालोचन निम्न प्रकार से है–

(१) ऋग्वेद १०–१०–१९ के मंत्र का जो आपने स्वामी जी की झूठी वकालत करते हुए भाई बहिन के स्थान पर पति पत्नी परक अर्थ स्व कपोलकल्पित लिखे हैं वह सर्वथा अयुक्त एवं अशुद्ध है। क्योंकि उक्त मंत्र

में केवल चतुर्थ पाद को लेकर स्वामी जी ने व्यभिचार मूलक नियोग को उपस्थान करने की कुचेष्टा की है।. ...सभी जानते हैं कि सायणादि सभी प्राचीन भाष्यकारों ने उक्त यम यमी सूक्त को विवस्वान के युग्म सन्तान यम और यमी नामक सहोदर भाई और बहिन का सम्वाद माना है.......इस मंत्र के अर्थ की उत्पत्ति के लिये भी भाष्यकारों ने लिखा है कि किसी वर वधू का विवाह होते देख कर बाल क्रीड़ा रत अबोध बालिका यमी जब अपने सहोदर भ्राता यम को मिलकर विवाह का अभिनय करने की बात कहती है तो यह उसे समझाता है :– आगे कलिकाल में ऐसे युग आयेंगे। इस लिये तू मेरे अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को पति बनाने की इच्छा कर। यह मंत्र का भावार्थ है। स्वामी दयानन्द का महा अज्ञान है कि जो भाई बहिन के सम्वाद को पति पत्नी का सम्वाद बना डाला है।....यहां तो वेद ने उन्हीं एक घर में रहने वाले भाई बहिन कहीं आपस में मैथु में प्रवृत्त न हो जावें, वहाँ रोक के लिये ऐसा सम्वाद उपस्थित किया है। यदि यह सम्वाद न होता तो आज भाई बहिनों के विवाह हो रहे होते। "...**जायेव पत्ये**"–**ऋग्वेद १०–१०–७** यह प्रकृति सूक्त में कही उपमा भी यम यमी के दम्पति भाव को निराकृत करती है, क्योंकि "**साधर्म्यमुपमाभेदे**" इस नियम से उपमान उपमेय भिन्न हुआ करता है।...यम कहता है "**अन्येन मद आहनः याहि**"– (**अथर्ववेद १८–१–६**) अर्थात् तू मुझ भ्राता से भिन्न (दूसरे) से सम्बन्ध कर। यम की उपर्युक्त बात सुनकर यमी कहती है कि– "**वतो बतासि यमः नैवतो मनो हृदयं च अविदाम। अन्याँ किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्व जातै लिबु जेव वृक्षम**"– (**अथर्ववेद १८–१–१५**) अन्य स्त्री तेरा आलिंगन करेगी; क्योंकि तू मेरे साथ विवाह नहीं करना चाहता। आज तक मैं तेरे मन को न जान सकी। अब यहाँ कासगंजी कुछ विचार करे कि यदि यहाँ दयानन्द के कथनानुसार "**यम**" बृद्धत्व आदि से अशक्त होता तो उसका अन्य स्त्री से संयोग कैसे दिलाती ? "**आघाता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कण्वन्नजामि। उप बबर्हि वृष माय वाहु**"– (**ऋग्वेद १०–१०–१०**) मंत्र के तीन पदों को छिपा कर केवल चतुर्थ पाद–"**अन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मत्**"। को लेकर दयानन्द ने लिख डाला है कि नियोग तो पति के जीते जी ही होता है जबकि सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास चार में लिखा है कि–"**पति के मर जाने पर उसकी लाश अभी घर में पड़ी है तब आर्यसमाजी उस विधवा स्त्री को कहे कि– "उदीर्ष्व नारी अभि जीवलोकम्"–हे विधवे। तू इस मरे हुए पति की आशा को छोड़कर हम जीवितों में से किसी एक आर्य समाजी को प्राप्त होकर सन्तान उत्पन्न करले**"। यहाँ तो मरे पीछे नियोग लिखा है और यह भी लिख दिया कि नियोग पति के जीते जी भी हो सकता है....। वस्तुतः यम यमी सुक्त–भ्रातृ, भगिनी सूक्त है। हमारे पक्ष का खण्डन प्रति पक्षी नहीं कर सका है। निरुक्तकार भी इसे भ्रातृ भगिनी सम्वाद मानते हैं। जैसा कि– "**यमी यमं प्रचक्रमे ताँ प्रत्याचचक्षे**" यमी ने गर्भ में सह निवास वश उसे पति मान कर उसकी कामना की, पर यम ने यमी का वचन तिरस्कृत कर दिया उसे नहीं माना। एक जोर दार प्रमाण हम और भी पेश किए देते हैं, ध्यान पूर्वक अवलोकन करें–हमने **निरुक्त १२–१०–२**–"**त्वष्ठी सरण्यू विवस्वत आदित्यादि यमौ मिथुनौ (यमं च यमी च) जनयांचकारं**" उद्धृत करके यह बतलाया था कि यहाँ विवस्वान से यम और यमी का इकट्ठा पैदा होना कहा है। क्या यह पति पत्नी इकटठे पैदा किए गए है ?......यम यमी का भाई बहिन पाना जहां वेद की ऋष्यादि अनुक्रमणिका से, व्यवहार से, व्याकरण से, इतिहास से, पुराण से तथा निरुक्तादि से सिद्ध है वहां इस पक्ष में वेद भगवान का भी अनुग्रह है यथा–"**असंयतेतन्मनसोहृदो में भ्राता स्वसः शयने यत् शवीय**" (**अथर्ववेद १८–१–१४**) यहां यम अपना पतित्व कर प्रार्थित रही बहिन यम के प्रति खेद प्रकाशित करता है कि (**भ्राता ऽहं यमः**) मैं भ्राता यम (**स्वसुः**) बहिन तुझ यमी की, (**शयेन यत् शयीय**) शैया में सोऊँ (**एतद में मन सो हृदो असंयत्**) यह मेरे मन एवं हृदय के प्रतिकूल है। (**न ते भ्राता सुभगे? भगिनी) वाष्टि एतत्**' (**ऋग्वेद १०–१०–१२**) हे बहिन यमी ! तेरा भ्राता ! यह नहीं चाहता। "**पापमाहुर्यः**"

(भ्राता) "**स्वसारं**" (भगिनी) "**निगच्छात्**" (**ऋग्वेद १०–१०–१२**) जो भ्राता व भगिनी आपस में गमन करता है, उसे पापी कहते हैं। इत्यादि मंचों में यम यमी का भाई और यमी यम की भगिनी सिद्ध है। कासगंजी बलात् भगिनी भ्राता को पति पत्नी बना कर संसार में व्यभिचार फैलाना चाहता है। वेद भगवद् वाणी है। उनके तीन कांड हैं– कर्म कॉंड, उपासना कॉंड और ज्ञान कॉंड। ११३१ शाखात्मक वेद चतुष्टय के कुल मंत्र एक लक्ष है। उनमें से ८००० मंत्र केवल यज्ञ यागादि नाना विधि कर्मो का उपदेश देते हैं और १६००० मंत्र प्रतिमा पुजनादि उपासना (भक्ति) उपदेश देते हैं। और ४००० मंत्र जड़ चेतन विश्लेषण की अक्षमता रूप आवरण दोष को दूर करने के लिए ज्ञान का सन्देश देते हैं। वेदों में कर्म उपासना तथा ज्ञान की ही बातें बताई गई हैं। दयानन्द सन्यासी थे उन्हें गृहस्थ औरतों की चूचियों के दृढ़ या ढीली....इसकी क्यों चिन्ता थी ?....हमने आपसे पूछा था कि– नारी से प्रसंग की गर्भाधान की विधि का सत्यार्थ प्रकाशोक्त अश्लील वर्णन किसी वेद मंत्र के आधार पर लिखा है या स्वामी जी ने निज अनुभव के आधार पर ?....यदि किसी वेद मंत्र के आधार पर उक्त बातें लिखी हों तो उस मंत्र को आप प्रस्तुत करें।..जिसके उत्तर में आपकी लेखनी बन्द है और सदा रहेगी। ता० ३०–७–६५ के पत्र में आपने लिखा था कि वेद में –"**रेतोमूत्र विजहाति**" मंत्र है।.....हम कहते हैं कि मैथुन स्वाभाविक है अतः बिना वेद पढ़े लोग भी कर लिया करते हैं। अतः वेद में ऐसी बातों की क्या जरूरत है ? ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के प्रणेता स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य की कसोटी शतपथ ब्राह्मण को बना गए हैं हम शतपथ ब्राह्मण का वह पाठ उद्घृत करते हैं जिनके अनुसार श्री महीधराचार्य ने लिखा है–"**अश्वशिश्न पस्थे कुरुते वृषा वाजीर्ति**" (**यजुर्वेद २३–२०**) यह अंग कल्प कात्यायन श्रोत सूत्र २०–६–१६ में *लिखा है अब स्वामी दयानन्द जी के मान्य शतपथ ब्राह्मण १३–५–२–२ में भी वही वर्णन इस* प्रकार है–"**अश्वस्य शिश्नं महिषी उपस्थे निधत्ते, वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधात्**"। तब दोनों स्थान का अर्थ बराबर होगा। तब महीधरआचार्य पर दोष क्यों ?......तुम दो दयानन्दी बातों का प्रदर्शन करते हुए पुराणों पर भली बुरी कहने पर उतर आये.....हमसे उल्टे प्रश्न करने लगे....ब्रह्माजी से राक्षसों का संभोग तो आपके ही गन्दी खोपड़ी की खुराफात है। भागवत में ऐसा कहीं नहीं लिखा है। वहां तो रूपकालंकार द्वारा अन्धकार विज्ञान के निरुपण के साथ २ आसुरी वृत्ति का चित्र खींचा गया है।.....अन्धक दैत्य के पुत्र आदि ने तपस्या द्वारा यह वरदान मांगा था कि यदि मैं रूप बदलूं तो मेरी मृत्यु हो, अन्यथा अमर रहूँ। जो जब वह स्त्री रूप में पारवती बनकर शिव के पास गया तब शिवजी ने दैत्य की माया जान ली और उन्होंने "**इन्द्र जहि पुमांसं**" (**अथर्ववेद ८–४–२४**) इस वैदिक राजनीतिवश "**मेद्रे वज्रां स्त्रमादाय दानवं शातयत्**" अपने मेद्र (लिंग) पर वज्र चढ़ाकर मायावी दैत्य को मार डाला। शिवजी को पुराण तो कलंकित नहीं करते परन्तु आपने बलात् उन्हें कलंकित किया है।....जो दोगला नंदी का ही प्रदर्शन आपने कर दिखाया है। दयानन्द चरित्र दर्पण में जियालाल जैनी ने लोमहर्षण खोज व्यक्त किया है कि स्वामी दयानन्द कापड़ी जाति के थे इत्यादि....। आगे आपने मद्य की बहक में जो शिव वीर्य से देवताओं का सगर्भा होना तथा अंजनी के कान में वीर्य छोड़ने की बात लिखी है सो सुनो सनातन धर्म के वैदिक कोष में तो वीर्य शब्द के अर्थ तेज पराक्रम–बल–ओज–शक्ति, सामर्थ्य आदि हैं अतः इधर तो उचित संगति लग जायेगी.....परन्तु आर्याभिविनय में–"**वीर्य मसि वीर्य मयि धेहि,**" **यजुर्वेद १९–९** में "**हे ईश्वर तू वीर्य स्वरूप है मुझे भी वीर्य दे**" की संगति कैसे लगेगी ?.....आपने ओछे हथियारों पर उतर कर लिखा है कि राजा व्युषिताश्व की लाश के साथ रानी मद्रा का संभोग कराकर सात लड़के पैदाकर लिए गए। अजी महाशय रानी का नाम मद्रा नहीं भद्रा है। यदि रानी भद्रा ने अपने पति राजा व्यषिताश्व से संतान पैदा करा लिया तो इसमें आक्षेप की क्या बात है ? जब रानी रो रही थी तो आकाश वाणी हुई ....मैं तुझमें सन्तान पैदा करूंगा यह शव की आत्मा ने कहा था, शव (मुर्दा) भला कैसे बोले ?

रानी ने वह बात पूरी की **"सा तेन सुषुवे देवी शवेन भरतर्षभ"**। यहां उस शव में प्राप्त आत्मा से मनोयोग द्वारा रानी ने ७ लड़के पैदा किये।...आपने लिखा है कि कौशल्या देवी का पौराणिक पंडितों ने घोड़े से नियोग करा दिया। आपको कुछ समझ भी है या नहीं।.....जब घोड़े के पास महिषी को रखा गया था उस समय घोड़ा जीवित नहीं था किन्तु मृतक....। लिंग चाटने का विधान मत्स्य पुराण में तो नहीं है।....स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य २१–६० में परमऐश्वर्य के लिए बैल से भोग करना लिखा है।.....संस्कार विधि में पृष्ठ १२६ पर लिखा है कि विवाह से पूर्व वर वधू सम्मिलित स्नान करते समय परस्पर एक दूसरे की मूत्रेन्द्रिय को **"इमन्ते उपस्थं मधुना सृजामि"** इत्यादि मन्त्रों बोलते हुए मधु से संयुक्त करके चाटा करें।....आपको मत्स्य पुराण के श्लोक देने थे। आगे जो आपने **"या रूपार्धवती पत्नी"** आदि श्लोक दिये हैं सो इनके उत्तर में स्वामी दयानन्द के मान्य शतपथ ब्राह्मण १४–३–४–३ में देख लें। **"या गौर भवत वृषभ इतरः सतामेव समभवत्तोगावोऽजायन्त"** जो अर्थ आप इस पद का करेंगे वही उत्तर हमारा हो जायगा।.......कृष्ण और गोपियों के विषय पर हम शास्त्रार्थ करने को बाद में तैयार होंगे अभी नहीं। आपने चरक, भाव प्रकाश आदि चिकित्सा ग्रन्थों की शरण ली है। हम ट्राई करके यह देखना चाहते हैं कि उनमें आपकी कहां तक श्रद्धा है। आप उनके प्रमाण मानते भी हैं या नहीं ?....उनमें ज्वर को महादेव जी के क्रोध से उत्पन्न माना है......शंकर को पूजने वाला ज्वर से निवृत्त हो जाता है। हम पूछते है बालक को प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे यह आज्ञा किस वेद मंत्र में है ?......संस्कार विधि के जात कर्म प्रकरण में घृत और मधु सोने की शलाका से बालक को चटाना लिखा है जब कि सुश्रुत में हथेली भरके खिलाना लिखा है। दोनों में विरोध क्यों है ?......(हम डरने वाले नहीं है).....मैं सबसे ज्यादा नंगा हूँ। क्या समझे...(दयानन्द) अखण्ड बृह्मचारी था.....अरे सन्डासी गोरूजी......चौथे दिन बालक को दूध पिलावे और फिर दशवें दिन बालक को माता के पास रखे ही नहीं, उसे धाय के सुपुर्द कर देवे। ऋषि ने तो संस्कार विधि पृष्ठ ६२ पर नाम करण का काल जिस दिन जन्म हो उस दिन से लेकर १० दिन छोड़कर ११ वें वा १०१ वें या २ वर्ष के आरम्भ जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे लिखा है जबकि कासगंजी १० वें दिन ही सब कर करा धाय के हवाले करने का विधान बता रहा है।.....आरोग्य प्रकाश पुस्तक में लिखा है कि स्त्री (माता) का दुग्ध बालक के लिए सर्वोत्तम आहार है..... वेद व्यास जी पुराणों के कर्त्ता नहीं थे बल्कि सम्पादक मात्र हैं। न्याय दर्शन को आर्य समाज मानता ही है। न्याय दर्शन भाष्य में ४–१–३२ में लिखा है–**"जो ऋषि मंत्र ब्रह्मणात्मक वेद के द्रष्टा हैं वे ही पुराणों के प्रवक्ता है"**।......दयानन्द का रमाबाई से सम्बन्ध था सौभाग्य शुण्ठी पाक में ऐसा तो कही नहीं लिखा कि उससे स्त्री के स्तन कठोर होकर योनि संकुचित हो जाती है.......हमने तुमसे भगवान का अर्थ नहीं पूछा था। हमने तो सिर्फ इतना ही पूछा था कि राम को धाय का दूध पिलाना किस रामायण में और कहां लिखा है ? इस पर आपकी बोलती बन्द हो गई। भगवान राम को मूर्ख कहीं नहीं कहा है।...."**धूर्तैः पुराण चतुरैः**" देवी भागवत् के इस प्रमाण में अर्थवाद है। तुम कुछ पढ़े लिखे तो हो नहीं यूँ ही सर्टिफिकेट लेकर धूर्त डाक्टर बन बैठे हों। इस श्लोक में देवी के गुणों का वर्णन इष्ट है। यहां **"पुराण चतुरैः"** का अर्थ भी पुराण बनाने वाले नहीं है। जब **"जोर जार शिखा मणिः"** का अर्थ अपने वेद मन्त्रों में भी पढ़ ले **"मामः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः"– (ऋग्वेद १–१०–४–८)** हे इन्द्र ! **(परमैश्वर्य युक्तेश्वर मातः प्रिया)** हमारे भागों को मत चोर वा चोर वाले। **"स्व सुर्जारः श्रुणोतु नः (ऋग्वेद ६–५५–५) (स्वसः)** अपनी बहिन का **(जारः)** जार परमात्मा हमारी **(नः)** प्रार्थना को **(श्रुणोतु)** श्रवण करे। उक्त दोनों प्रमाण वेद के उस संहिता भाग के है जिन्हें आर्य समाज भी वेद के नाम से मानता है। यदि चोर और जार शब्द नियोगी डाक्टर चेला जी के अनुसार केवल तस्कर और व्यभिचार के ही वाचक हैं तब तो निराकार बाबा भी तुम्हारे जूतों से नहीं बच सकता। आप कामिनी पाश देखना चाहते

हो तो अपने मान्य वेदों में देख लें, यथा **"स्वर्गे लोके बहुस्त्रैण मेषाम्"** (अथर्ववेद ४/३४–२) **"नव्या नब्यो युवतयो भवन्ती महद देवानाम् सुरत्वमेकम्"** (ऋग्वेद ३–५५–१६) पार्वती ने शिवजी की भर्त्सना करते हुए **"एषस्त्री लम्पटो देवो"** यह औरतों के विषय में अति आसक्त है' यह उनके क्रोध के वचन हैं। यहां आक्षेप की क्या बात है....? राजा आदि मनुष्यों के मिथ्या प्रशंसक शूद्र सेवी वेदानभिज्ञ ब्राह्मण की वसिष्ठ स्मृति में ही नहीं वरन् रामायण में भी आलोचना की गई है। इसमें निन्दा की क्या बात है ?......शेष चिकित्सकों की भैषज्य रत्नावली में भी बिना गुरू मुख में वैद्यों की निन्दा की गई है...। सुश्रुत संहिता आदि में गुरुमुख से शास्त्र न पढ़कर मन मुखी चिकित्सा कर्म में प्रवृत्ति होने वाले तुम्हारे जैसे डाक्टरों को महा मक्कार बतलाया गया है। (अतः वैद्यों की निन्दा में दोष नहीं है)। मालूम पड़ता है तुम्हारे बाप दादा ने भी कभी अत्रि स्मृति का दर्शन तक नहीं किया है क्योंकि ३२३–३२४ में पुराण पाठकों की निन्दा का नामो निशान नहीं है। स्मृत्यादि किसी ग्रन्थ विशेष में पाठकों की कहीं भी न तो निन्दा की गई है और न उन पर जूतों के प्रहार की बात ही लिखी है। यदि जूता प्रहार शब्द उक्त स्मृति में लिखा कोई दिखा दे तो उसे १०००) इनाम दिया जाएगा। आप लोग चरक आदि को प्रमाण मानते हैं तो इनमें– **"गौ मांस सुगुरुस्त्रिग्ध पित्तश्लेष्म विवर्धनम्। बृहणां बात ल्दब यमपथ्थं पीनस प्रणुत्"**।। (भा० नि० मां० ८५) अर्थात् गाय का मांस अत्यन्त गुरु स्निग्ध पित्त तथा **"कफ वैर्धक बृहंण"** (रस रक्तादिवर्धक) वात को दूर करने वाला–बलकारक स्वस्थों के लिए व्यपथ्य तथा पीनसरोग नाशक होता है।....सो आर्य समाजी महाशयों को बल प्राप्ति के लिए इसका सेवन करके कासगंजी ग्रन्थकार की बातों को प्रमाणित करना चाहिए। वेद शास्त्र के अनुसार तो सन्यासाश्रमियों और विधवाओं के अतिरिक्त शेष सब हिन्दू मात्र के लिए सदैव शिखा रखना परमावश्यक है। **"यश से श्रियै शिखा"** (यजुर्वेद १६–१२) अर्थात् यश और श्री बुद्धि के लिए शिखा धारण करना चाहिए, वेद कहता है शिखा काटने में महादोष है और वैदिक प्रकाशन कासगंजी महाशय कहते हैं, कोई दोष नहीं है कात्यायन प्रमाण का अर्थ आपने खाक नहीं समझा। वह श्लोक निम्न प्रकार है:–**"सशिखं वपनं कार्यमास्नानाद ब्रह्मचारिणा"** जिसका शुद्ध अर्थ है कि **(ब्रह्मचारिणा)** ब्रह्मचारी को **(अस्नानात्)** स्नातक होने के पर्यन्त **(वपनं कार्यम्)** बाल कटा देने चाहिए। अब प्रश्न उपस्थित हुआ कि **(कीट्टशम् वपन कार्य)** अर्थात् कैसे कटाने चाहिए ? जिसके उत्तर में शिखा विद्यमान रहे ऐसी रीति से क्षौर कराना चहिए। यह **"सशिखम्"** शब्द वपन का विशेषण नहीं है किन्तु क्रिया विशेषण है जिसका अर्थ है **"शिखा यथा स्यात्तथा इति सशिखम्"**...। क्योंकि हम पहले ही कात्यायन जी का सदावद्ध शिखेन वचन लिख चुके हैं जिसमें उन्होंने पुष्ट शब्दों में सदैव शिखा धारण करने की अनिवार्यता प्रगट की हैं और **"विशिखे यत् करोति न तत् कृतम्"**। अर्थात् शिखा विहीन पुरूष जो धर्माचरण करेगा वह सब व्यर्थ होगा यह घोषणा की है। ऐसी स्थिति है कि कात्यायन अपनी स्मृति में अनुपद शिखा कटाने की आज्ञा कैसे दे सकते है ? कात्यायन स्मृति में गौ को काट कर १४ टुकड़े करके उनसे यज्ञ करने का आदेश नहीं हैं। किसी भी धर्म ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं लिखी है....। कुछ भी लज्जा हो तो कासगंजी चुल्लू भर पानी में डूब मरें।.......। प्रकृति विषय कन्याओं का विवाह रजोदर्शन से पूर्व होना चाहिए या रजस्वला होने के पश्चात्। हम यह नहीं पूछ रहे है कि माता को रजोदर्शन की समाप्ति समझेगी अथवा बाप के वीर्य दर्शन की समाप्ति के दिन समझेगी.......हम तो इतना ही पूछे थे कि स्वामी दयानन्द जी ने विवाह का दिन वही नियत करना लिखा है। जिस दिन रजस्वला कन्या शुद्ध स्नान कर चुकी हो। सो पहिले से ही सुनिश्चित रूप से वह दिन नही जाना जा सकता है.....। आगे.....कासगंजी जी से जब हमारे प्रश्नों का उत्तर नहीं बन सका तो.....पुराणों की वेद विरुद्धता पर उल्टे हमसे प्रश्न कर बैठा।....जिन पुराण ग्रन्थों का वर्णन स्वयं वेदः भगवान करते है। उन्हें....कासगंजी गालियाँ लिखता है। भविष्य पुराण ब्रह्म पर्व अध्याय ७३ में जिस श्री कृष्ण

का अपनी पत्नियों के साथ शराब पीना लिखा है वह गीता के उपदेष्टा भगवान श्रीकृष्ण के लिए नहीं लिखा है। वहां कारुष देश के राजा काशी निवासी पौण्ड्रक नामक नकली कृष्ण की उक्त बातें हैं। श्लोक भी तो उद्‌धृत करना था ताकि उस पर कुछ विचार किया जाता...... । आगे कासगंजी भागवत पुराण पर आक्रमण करते हुए बलराम जी पर शराब पीने का आरोप लगाता है किन्तु मूल श्लोक में शराब–कबाब का जिक्र नहीं है। वहां तो **"गायन्तं वारणी पीत्वा"** वारुणी शब्द अंकित है वारुणी शब्द का सीधा अर्थ वरुण देवता सम्बन्धी पदार्थ है। वरुण देवता को समर्पित किए गए सोमरस का यज्ञ शेष भाग प्राप्त करके बल देव के साम वेद का गान कर रहे थे...... । महाशय जी ! भागवत पर आक्षेप करने से पूर्व **"मदिरमं शुभस्मै"** (ऋग्वेद ६–१७–११) के मंत्र को देखना चाहिये..... । आगे फिर शिखा कटाने की बात उठाकर अपनी बेवकुफी का प्रदर्शन किया गोभिल ग्रह्यसूत्र २८–३५ के प्रमाण से आपके गुरुजी के कपोल कल्पित बातों की संगति नहीं लग सकती है। अग्नि को संस्कृत में शिखी कहते है हमारे गौत्र कुल पुरूष भी हमारा अग्नि के साथ प्राचीन सम्बन्ध बताते हैं......अतः **"गोत्र कुल पुरुष स शिखं शिखा सून्यं वा"** यथा **"गोत्र कुल क पम्"** इत्यादि प्रमाणों से आपके गुरुजी के उष्ण देश में चुटियां कटा देने वाली बातों से सम्बन्ध और न समस्त बालों की मुण्डन कराने वाला कोई शब्द ही वहां है। **"मुण्डो भव, जटिलो भव, शिखीभव यतलिंगो"** आदि शब्दों से आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं, यह भी किसी के समझ में आने वाली बात नहीं है.....? **"नमः कपर्दिने व्युप्त केशाय च"** (यजुर्वेद १६–२९) इस मन्त्र में शिखा हीनता नहीं कही है, सामान्य केश वहां पर इष्ट है। **"केशान शीर्षन यश से श्रियै शिखा"** (यजु १९–९२) इस मन्त्र में शिखा तथा केश भिन्न २ शब्द आये हैं। तब केशों से शिखा का ग्रहण नहीं हो सकता। इस पर **"श्रियै शिखा"** इस मन्त्र से निषेध पड़ेगा। **"व्युप्त केश"** मुण्डित केश वाले (सन्यासा श्रम इष्ट है) आपको नमस्कार है....व्युप्त केश से सन्यासआश्रम इष्ट है. ....अतः आपके मिथ्या का कारण नहीं, तुम्हें शर्म आनी चाहिये **"यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव"** अर्थात् **(यत्र)** जिस युद्ध भूमि में **(बाणः)** बाणा **(सम्पतन्ति)** गिर पड़ते है **(इव)** जैसे कि **(विशिखा)** बिना शिखा के **(कुमाराः)** कुमार पतित हो जाते हैं। मंत्र में **"पतन्ति"** शब्द विद्यमान है जिसका तात्पर्य है कि जो बाण पूछ रहित होते हैं वे अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाते किन्तु धनुष से छुटते ही लक्ष्य से भ्रष्ट होकर गिर पड़ते हैं **"विशिखा"** शिखा रहित होने से वे बाण पतित हो जाते हैं। वह आपको क्यों नहीं दीख पड़ा......उव्वट महीधर आदि भाष्यकारों ने **"विशिखा"** पद का अर्थ **"शिखा रहिताः"** या **"सर्व मुण्डा"** ठीक ही किया है। आपके सब प्रयास जहां युक्त प्रमाण शून्य है वहां स्वामी दयानन्द जी के भी मन्तव्यों के सर्वदा विपरीत हैं। आशा है इस बार वेद प्रमाणों द्वारा उचित उत्तर देकर अपने पक्ष की वैदिकता को सिद्ध करके दिखलाने का कुछ साहस करेंगे।

तारीख १–११–६५

भवदीय प्रतिवादी–
"महन्त सीताराम दास" आयुर्वेदिक शास्त्री

श्री आचार्य डाक्टर श्री राम आर्य–

"कासगंज"
ता० ४–१२–६५

आदरणीय मिस्टर महन्त जी नमस्ते ! आपका तारीख १–११–६५ का इस शास्त्रार्थ का तीसरा और अन्तिम लेख मिला। इस पर हमारा आज यह अन्तिम उपसंहारात्मक लेख आपको भेजा जा रहा है। क्योंकि इस शास्त्रार्थ के लिये दोनों ओर से तीन तीन टर्न होने की बात आपके द्वारा प्रारम्भ में ही निश्चित कर दी

गई थी जो आज पूर्ण होती है। आप इस शास्त्रार्थ में अपनी लेखनी पर संयम प्रारम्भ से ही नहीं रख सके हैं। आपके आक्षेप प्रारम्भ से ही निम्न स्तर की भाषा के रहे हैं। यदि आपको प्रश्न करने की योग्यता भी नहीं थी तो फिर आपको शास्त्रार्थ में नहीं उतरना चाहिये था। आपका दावा था कि– **"स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं।"** तो आपको अपने प्रत्येक आक्षेप (प्रश्न) के साथ वेद मन्त्र देकर अपने पक्ष की पुष्टि करना व हमारे पक्ष का वेद प्रमाणों के साथ विरोध (खण्डन) दिखाना था, जोकि आप अन्त तक भी नहीं दिखा सके हैं। हमने आपको गत पत्र में तारीख ३०–८–६५ को प्रश्न करने का प्रकार पुराणों के वेद विरुद्ध होने का द्रष्टान्त देकर बताया था, फिर भी आप उसे नहीं समझ सके अथवा सामर्थ्य न होने से हमारे पक्ष को वेद से नहीं काट सके। जब आप हमारे पक्ष को वेद विरुद्ध सिद्ध नहीं कर सके हैं तो वह स्वतः ही वेदानुकूल सिद्ध हो जाता है। प्रश्न वही किया जाना चाहिये जिस पर हमारी मान्यता हो और आप न मानते हों। परन्तु जिस बात को दोनों ही पक्ष व्यवहार में मानते हैं उस पर प्रश्न नहीं हो सकता है। गर्भाधान का प्रकार व्यवहार में दोनों पक्षों को एक सा मान्य हैं। तब आपका सत्यार्थ प्रकाश की तत्सम्बन्धी विधि पर प्रश्न नं० २ करना, उस पर दुरालोचना करना, निम्न स्तर की भाषा का प्रयोग करना यह सब अनुचित ही नहीं वरन् आपकी घृणित निकृष्ट बुद्धि का परिचायक है। यदि वह प्रकार आपको पसन्द नहीं था तो आपको अपना ऊंट का प्रकार, नाक या मुंह मैथुन अथवा घोड़ाधान का प्रकार भी लिखना था और उसकी तर्क व प्रमाण से उपयोगिता की वकालत भी करके दिखानी थी परन्तु यह कुछ भी आप से न बन सका है। इससे स्पष्ट है कि अभी आप में प्रश्न करने की भी तमीज नहीं है। आपने जो कुछ भी लिखा है वह केवल महर्षि दयानन्द जी से द्वेष होने के कारण उनके पावन व्यक्तित्व पर कीचड़ उछालने की भावना से लिखा है। आप शास्त्रीय विषयों को खाक भी नहीं समझते हैं और न उन पर हमारे साथ टकराने की योग्यता आप में है। आप ऋषि के लेख को वेद–आयुर्वेद किसी से भी न काट सके हैं। आपने गत लेख में लिखा था कि– **"हम कोई पौराणिक पंडित नहीं है"** तो जब आप पौराणिक पंडित नहीं है अर्थात् कोई कुरान के मौलवी, बाइबिल के पादरी या वाममार्ग के अघोरी पन्थ आदि किसी के आचार्य है तो आपको पुराण अथवा वेद विषय पर हमसे टकराने का शौक क्यों पैदा हो गया ? आपने अपने को **"बड़ा भारी नंगा"** घोषित कर दिया है। श्रीमानजी ! नंगा लोगों से तो भले आदमी बात करना भी पसन्द नहीं करते हैं। हमें प्रारम्भ में पता होता तो हम भी आपसे बात न करते। हम तो शास्त्रार्थ में आपकी विद्वत्ता देखने बैठे थे न कि आपका **"नंगाचार्यपना।"** मिस्टर दास जी ! यदि हम आपके पूरे ४१ फुलस्केप के गन्दे लेख को यहां छाप दें अथवा उसकी असभ्य गालियों की पूरी सूची यहां दे दें तो कोई भी सभ्य व्यक्ति आपके गन्दे लेख के कारण इस शास्त्रार्थ को पढ़ना तो दूर रहा, छूने की भी हिम्मत नहीं करेगा। इससे हम आप की गालियों की लिस्ट अथवा, गन्दा पूरा लेख न छाप कर केवल मात्र उसका सम्पूर्ण सार भाग ही छाप रहे हैं। सम्भवतः देवी भागवतकार ने आपको ही सम्बोधित करके लिखा था– **पूर्व यो राक्षसा राजंस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृता। पाखण्ड निरताः प्रायो भवन्ति जन वंचकाः।। असत्य वादिनः सर्वे वेद धर्म विवर्जिताः दाम्भिका लोक चतुरा मानिनो वेद वर्जिताः शूद्रसेवा पराकेचित् नाना धर्म प्रवर्तकाः।। वेद निन्दा कराः क्रूरा धर्म भ्रष्टाति वादुकाः। असत्य वादिनः पापस्तथा वर्णे तराः कलौ। शूद्र धर्म रता विप्राः प्रतिग्रह परायणाः।। (देवी भागवत ६–११) पंडिताऽपिते सर्वे दुराचार प्रवर्तकाः। लम्पटा परादारेषु दुराचार परायणाः। कुम्भीपाक पुनः सर्वे पास्यन्ति निज कर्मभिः।। (देवी भागवत १२–६–६७)**
अर्थ– हे राजन् ! पूर्व काल में जो राक्षस थे वे ही कलियुग के ब्राह्मण हैं। वे बड़े पाखण्डी, लोगों को ठगने वाले, झूठ बोलने वाले, वेद धर्म से वर्जित, बड़े दम्भी, लोक व्यवहार में चतुर, बड़े अभिमानी, वेदों से बहिष्कृत, यवन स्टेट में शूद्रों की सेवा करने वाले, नानामत प्रवर्तक वा समर्थक, वेदों के घोर निन्दक, बड़े क्रूर (गालियाँ

लिखने व बकने वाले), धर्म से भ्रष्ट बड़े बकवादी, मिथ्याभाषी, पापी, वर्णसंकर, शूद्रों का धर्म पालन करने वाले, दान हड़पने में चतुर होते हैं। ये पौराणिक पंडित लोग सारे दुराचारों के प्रवर्तक, पर नारियों के घोर लम्पट होते हैं। अपने कुमर्मों के कारण ये सब कुम्भी पाक नामी नरक में झोंक दिये जावेंगे।

मिस्टर महन्त जी ! आप ही बतावें कि आपने गालियाँ लिखकर अपना जो स्वरूप प्रकट किया है उसके अनुसार देवी भागवत का उपरोक्त ऐसा कौन सा लक्षण है जो आप में शत प्रतिशत ज्यों का त्यों पूरा का पूरा न घटता हो। आप अपने तारीख १–११–६५ के पत्र की गालियों से रावण वंशीय पूरे राक्षस स्वयं ही सिद्ध हो रहे हैं। इसके लिए अन्य किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है। आपने हमसे तारीख २४–७–६५ के पत्र में १३ प्रश्न उस समय किये थे जब आपको हमारे प्रश्नों का ऊत्तर देना था। यद्यपि आपको उत्तर पक्ष में होते हुए प्रश्न करने का अधिकार न था। किन्तु हमने आपकी इस नादानी की अनाधि कार चेष्टा को सहन करके उनका जवाब आपको दिया था। उनमें से ६ प्रश्नों के हमारे उत्तरों पर आपकी बोलती बन्द हो गई थी। केवल ७ प्रश्नों पर आपने हठधर्मी से पुनः लिखकर एक प्रथक शास्त्रार्थ का रूप दे दिया है। इनमें से भी प्रश्न नं० ३–६ व ७ पर आप हमारे प्रथम उत्तरों पर ही कोई आक्षेप नहीं कर सके हैं। अतः सन्तुष्ट हैं, यह स्पष्ट है। इस तीसरे टर्न में आपने प्रश्न नं० १–२–४ व ५ पर ही लेखनी उठाई है। इनमें से भी हम प्रश्न नं० २–४ व ५ के अपने उत्तरों को वेद–आयुर्वेद तथा शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध कर चुके हैं और आप उनको काट नहीं सके हैं और न एक भी वेद मंत्र ऐसा पेश कर सके हैं जिससे हमारा पक्ष अवैदिक सिद्ध हो सका हो। तब आप हमारी किसी भी मान्यता को वेद प्रमाण देकर खण्डन नहीं कर सके हैं, ऐसी दशा में हमारा पक्ष स्वतः ही वेदानुकूल सिद्ध हो जाता है। प्रश्न नं० १ के उत्तर में हमारे द्वारा प्रस्तुत वेद मंत्र के अर्थ को न तो आप काट सके हैं और न स्वपक्ष में उस वेदमंत्र पर कोई अन्य अर्थ पेश कर सके हैं। ऐसी दशा में हमारे द्वारा प्रस्तुत मंत्रार्थ के आधार पर ऋषि दयानन्द का मंत्र का नियोग परक विनियोग उचित सिद्ध हो गया है। अब हम आपके इस तारीख १–११–६५ के अन्तिम पत्र का उत्तर लिखते हैं। इसमें सार की जो भी बात है उनका उत्तर हम देंगे। अहंकारी बुद्धि के भंडार दास जी ! यदि कोई आपको शिवजी की महानन्दा वेश्या से रण्डीबाजी **(शिव पुराण)** तथा दैत्य पुत्र आडि से इगलामबाजी **(मत्स्यपुराण)** रामचन्द्र जी से दण्डक वन में ऋषियों की भोगेच्छा **(पद्मपुराण)**। कौशल्या का घोड़े से नियोग **(बाल्मीकी रामायण)**। ब्रह्माजी से कामातुर असुरों का संभोग **(भागवत पुराण)**। कृष्ण जी का कुब्जा से व्यभिचार **(ब्रह्मवैवर्त पुराण)** आदि विषयों पर शास्त्रार्थ का चैलेंज देता तो विद्वान जन उसे जाहिल व्यक्ति बताते। इसी प्रकार आपका स्त्रियों से सम्भोग प्रकार आदि के विषय पर प्रश्न २ में शास्त्रार्थ का चैलेंज देना अव्वल नम्बर की जहालत रही है। पढ़े लिखे लोग आपको प्रश्न नं० २–३–४ व ६ पर आपको दुर्बुद्ध ही बतावेंगे। ऐसे विषय शास्त्रार्थ के नहीं होते हैं। इसीलिए हमने बार–बार लिखा है कि आपको शास्त्रार्थ करने की तमीज नहीं है। विद्वानों में शास्त्र चर्चा गहन शास्त्रीय मतभेद के प्रश्नों पर चलती है। न कि लिंग–योनि या नारियों के स्तनों पर ! ऐसे विषय तो आप जैसे नीच बुद्धि विषयी कामी लोग ही चुन सकते हैं। क्या– ईश्वरावतार, मोक्ष, मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध, आदि के विषय मिट गये थे जो आपको शास्त्रार्थ के लिए नहीं सूझ पड़े थे ? **"औरतों की योनि भंभाका हो जाती है"** चूड़ियां कैसी हो जाती है आदि वाक्य लिखते तुमको शर्म भी न आई। क्या नारी जाति की इतनी ही इज्जत तुम्हारी निगाह में है ? आपने हमसे योनि संकोचन की दवा पूछी थी। हमने व्यासावतार के अनुभूत योनि संकोचन के आपके मान्य नुस्खे तथा औरतों को वशीकरण के प्रयोग जब गरुड़ पुराण में से पेश किये तो आपके होश उड़ गये। भागवत पुराण में ठीक ही लिखा है (देखो महात्म्य पुराण) **"पण्डितास्तु कलश्रेण रमन्ते महिषा इव। पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्ति साधने"**।। १–७५–१ आप जैसे कलियुग के पौराणिक

पंडित चेलियों (औरों) समेत भैंसे के समान धुँआधार विषय भोग करने में ही कुशल होते हैं। धर्म–कर्म तथा मोक्ष व साधनादि के बारे में खाक भी नहीं जानते हैं। कोरे गाली गलौच शास्त्री होते हैं।.......मिस्टर महन्त जी ! आप नाराज न हों। यह सब तो हम आपको आपका मुखड़ा पुराणों के शीशे में दिखा रहे हैं। महन्त जी! अब हम आपके साथ हुए वर्तमान शास्त्रार्थ का अपना उपसंहार लिखते हैं। आपके ही मित्र मध्यस्थ महोदय तथा आपने इस शास्त्रार्थ के तीन–तीन टर्न निश्चित किये थे जो हमारे इस उत्तर के साथ पूर्ण होते हैं। इसके बाद आपके साथ अब आगे किसी भी प्रकार की कोई चर्चा नहीं चलाई जावेगी, क्योंकि आप गाली गलौज पर उतर आये हैं। अब आप अपने लेख के सार भाग का उत्तर सुनियें, जिस पर आपको गर्व है।.....सर्व प्रथम हम आपके वेद विषयक अज्ञान का निवारण करते है।.....वेद केवल चार ही है–यथा– **"चत्वारि श्रृंगस्त्रणेऽस्य पादा" (ऋग्वेद ४–५८–३)** इसमें वेद चार ही माने गये हैं। **"ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेदः (मुण्डक, १–१–५)**।। **"ऋृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।"** (शतपथ १४–५–१०)।। **"ऋग्वेदेभगवोऽध्येमि यजुर्वेदम् सामवेद माथर्वणं चतुर्थम्।"** (छान्दो० ७–१–२) **"चत्वारि श्रृगेति वेदा वाएत उक्त"** (निरुक्त १३–७–१)।। **"चतुरो वेदाः।।"** (मत्स्य पुराण ५–३–५)।। **"चतुरोवेदान्"** (शिव पुराण धर्मशास्त्र से २३–६२)।। इत्यादि सैकड़ों प्रमाण वेदों को चार ही मानने के प्रस्तुत किये जा सकते हैं।.....आपने अपने तारीख १–११–६५ के पत्र में पृष्ठ ७ पर वेद का परिमाण जो एक लाख मंत्रों का बताया है, वत गलत तथा शास्त्र विरुद्ध है। आपको जब वेद परिमाण का ही पता नहीं है तो इस विषय पर शास्त्रार्थ क्या करेंगे ?.....शतपथ ने वेद केवल चार माने है जो ऊपर लिखा है। वेद का परिमाण भी शतपथ ने निम्न प्रकार लिखा है।– **"स ऋचो व्यौहत द्वादश वृहति सहस्त्राणि एता वत्यो ऋचोयः प्रजापति सृष्ट्"**।। (शतपथ १०–४–२–२४) अर्थात् परमेश्वर ने ऋग्वेद को १२००० वृहती छन्दों में उत्पन्न किया। यह ऋग् ऋचाओं का परिमाण है। १२००० वृहति छन्दों का परिमाण १२,००० x ३६ = ४,३२००० अक्षरों का होता है। **"अथेरौ व्यौहत्। द्वादशैव वृहती सहस्राण्यष्टौ युजुषाँ चत्वारि साम्ना मेता वर्द्धतयोर्वेदचयोर्यत्प्रजापति सृष्टम्"**।। शतपथ १०–४–२–२४।। अर्थात् पुनः दूसरे वेदों को प्रकाशित किया १२००० वृहती छन्द परिमाण से। जिसमें आठ सहस्त्र (८०००) बृहती छन्द परिमाण में यजुः का और चार सहस्र (४०००) बृहती छन्द परिमाण में साम ऋचायें है। इससे स्पष्ट है ऋृग् ऋृचायें बारह हजार १२००० बृहति छन्द हैं जिनमें ४,३२००० अक्षर हैं। तथा यजु ऋचायें आठ हजार बृहति छन्द हैं जिनमें २,८८००० अक्षर हैं। साम ऋचायें चार हजार ब्रहति छन्द हैं जिनमें कुल १,४४००० अक्षर हैं। इस प्रकार शतपथकार ने गणना करके वेद के सम्पूर्ण मंत्रों की संख्या २४००० वृहती छन्द और उनकी कुल अक्षर संख्या ८,६४००० मानी व घोषित कर दी है। ऋृग्–यजु तथा सामात्मक छन्दों की दृष्टि से वेदों के लिए वेदत्रयी शब्द का प्रयोग होता है। वैसे विषय की दृष्टि से ये ही कुल ऋचायें चार वेदों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के नाम से प्राप्त है। वेद की यह ऋचायें (मंत्रभाग) अपौरुषेय हैं। और अपौरुषेय होने से नित्य हैं। इनमें न्यूनाधिकता सम्भव नहीं है। क्योंकि वेदों के मंत्र और अक्षर गिने हुए निश्चित संख्या में हैं। विपक्षी द्वारा बताया वेद परिमाण १०००० मंत्रों का सर्वथा मिथ्या कल्पना है। अतः अमान्य है। जिस प्रकार १२ पुराणों में कभी केवल १२००० श्लोक थे और अब पौराणिको ने नए नए जोड़ २ कर चार लाख से भी अधिक कर दिए हैं **(देखो भविष्य पुराण ब्राह्म पर्व अध्याय १–१०३)**। इसी प्रकार यह पौराणिक लोग वेद को भी नष्ट–भ्रष्ट करने पर तुले बैठे हैं। यह प्रयास विपक्षी का निन्दनीय है। अतः कोई अशिक्षित यह कह सकता है कि ऋग्–यजु व साम छन्दों के प्रकार हैं वेद नहीं हैं। तो उत्तर होगा कि अथर्व तो कोई छन्द नहीं होता है। शास्त्रों तथा वेदों में चारों वेद माने हैं। इन चारों को छन्द नहीं माना है।–चारों वेदों की मंत्र तथा पद संख्या तक निश्चित है। शतपथ तथा चरण व्यूह ने उसे निश्चित माना है। वेदों का स्वरभाषिक नहीं होता

है। ब्राह्मण ग्रन्थों का होता है। वेद चारों नित्य हैं। पौरुषेय ब्राह्मण (शाखायें) ११२७ में से हैं या ७ ही शेष बची हैं। शेष सब नष्ट हो गई हैं। वेदों की रक्षा धन–माला व जटा पाठ आदि से सुरक्षित हैं। ब्राह्मणों का उस सुरक्षा प्रक्रिया से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वेदों के ऋषि देवत्व–स्वर छन्द आदि का वर्णन अनुक्रमणियों में भी सुरक्षित मिलता है जबकि ब्राह्मणों का कोई उल्लेख उनमें नहीं होता है। इस विषय में ब्रह्म देवता ग्रन्थ प्रमाण स्वरूप देखा जा सकता है। इत्यादि अनेक तर्क व पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध है कि ऋग्वेदादि चार मूल संहितायें ही वेद नाम की अधिकारिणी हैं। अन्य पौरुषेय ग्रन्थों को वेद बताने वाले ग्रन्थ जाली होने से सर्वथा अप्रमाणिक हैं। उनका पक्ष लेने वाले पौराणिक पंडित वेदों के शत्रु है। देखिये–महाभाष्कार पतंजलि ने **"सप्त द्वीपा वसमती। ऋोलोकाः सागाः सरहस्याः"** ।। १–१–१। में उपनिषदों को वेदों से पृथक माना है, उनको वेद नहीं माना है।

"तेन प्रोक्तम् अष्टाः" ४३–३–१०१ के भाष्य में ४–३–१०१ पर लिखा है। **"ननुप्रोक्तं नहि छन्दासि क्रियते, नित्याभपि छन्दांसि। अपि क्रियते छन्दांसि यद्यपि अर्थो नित्यः यावत्सौ वर्णमनुपूर्वासाऽनित्या, तदभेदाश्चेतद् भयति काडवं कापालकं मोदपकं पैपलादकमिति।"** इसमें वेदों से काठक आदि का पृथत्व स्पष्टतया स्वीाकर किया है। वेद नित्य और ये सब अनित्य माने हैं। **"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"** वेद का यह वचन चार वेदों के लिये उपयुक्त होता है। जो कि परमात्मा का काव्य है और न कभी नष्ट होता है न जीर्ण होता है। जबकि मानव कृत ११२७ शाखायें लगभग सभी नष्ट हो चुकी हैं। यदि वे सब वेद होती तो नष्ट नहीं होनी चाहिए थी। वेद की उपरोक्त साक्षी चारों मंत्रात्मक वेद संहिता ही वेद होने की अकाट्य तर्क वेद का है। विश्व के समस्त साहित्य में केवल चार वेद ही ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके ऊपर आदि तथा अंत में **"वेद संहिता"** शब्द लिखा मिलता है। अन्य किसी भी पोथी पर वेद संहिता शब्द नहीं लिखा होता है। यह भी चारों वेदों के वेद होने का अकाट्य तर्क है। देखिये–**"वेदेन रूपे व्यपिवत् सुतासुतौ प्रजापतिः।"** (शुक्ल यजुर्वेद १६–७८)।। **"यस्मिन्वेदा निहिता विश्व रूपा"** (अथर्ववेद ४–३५–६)।। ये पद चार वेदों के लिए ही वेद में उद्धृत है। क्योंकि वेद के नित्य होने से यह मंत्र भी नित्य वेद का संकेत करते हैं। उपनिषद तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ तो बाद में बनते तथा नष्ट होते रहते हैं। उनके वर्तमान सृष्टि में बहुत बाद को बनने से अनन्त काल पूर्व भी ये पद चारों वेदों की नित्यता घोषित कर रहे थे व करते रहेंगे क्योंकि **"देवस्य काव्य न ममार न जीर्यति"**। परमात्मा का काव्य वेद कभी नष्ट नहीं होता है। **"छन्दौ ब्राह्मणनि च तद्विषयाणि"** अष्टाध्यायी ४–२–६६ भी ब्राह्मण ग्रन्थों का वेद से पृथकतत्व बता रहा है। ब्राह्मणों में वेद मंत्रों के प्रतीक रखकर आगे उनकी व्याख्यायें की गई है। जैसे **"इषेत्वा इति च्छिनत्ति"** इस शतपथ के वाक्य में यजुर्वेद के आदित्य अंश की व्याख्या की गई है। मूल मंत्र पहिले प्रथक होता है जो वेद का है और व्याख्याकार बाद को उन पर व्याख्या लिखता है। इस प्रकार वेद और उनकी व्याख्या में दोनों प्रथक २ अस्तित्व वाले होने से वेद व ब्राह्मण एक नहीं है। जैमिनी ऋषि ने **"ऋक यत्र अर्थवेशन पाद व्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः शब्दः"**।। इस प्राकर से चारों वेदों का लक्षण वर्णन किया है जो केवल मंत्र भाग में ही घटता है। ब्राह्मण भाग का कोई लक्ष्ण नहीं किया गया है और न ही उपरोक्त लक्षण उनमें घटता है। वेदों के ऋक् और साम मन्त्रों को उच्च स्वर से पढ़ने तथा यजुः को **"उपांशु स्वर"** से पढ़ने का विधान है, जबकि ब्राह्मणों पर यह लागू नहीं होता है। यह तर्क ही चार वेदों को वेद (ब्राह्मणों से पृथक) सिद्ध करता है। + विपक्षी लोग **"मंत्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्"** का कात्यायन श्रौत सूत्र का यह प्रमाण बहुधा प्रस्तुत करके ब्राह्मण तथा वेद को एक बताया करते हैं। परन्तु कात्यायन ने परिभाषा निरूपण आरम्भ से द्वितीय अध्याय के चतुर्थ कंडिका तक किया है। यही उसका परिभाषा प्रकरण है। और इसमें यह वाक्य नहीं मिलता

है। यह वाक्य परिशिष्ट में मिलता है। जो कि अप्रासंगिक है। स्पष्ट है कि जैसे घोड़े से संभोग स्त्री का कराने वाला स्थल कात्यायन श्रौत सूत्र में वाममार्गीयो ने जोड दिया है वैसे ही किसी पौराणिक ने यह वाक्य भी परिशिष्ट में घुसेड़ दिया है। यह परिभाषा यदि कात्यायन को मान्य होती तो इसे परिभाषा प्रकरण में यथा स्थान लिखा जाता। अतः यह प्रक्षिप्त प्रमाण अमान्य है। हमने यहां अति संक्षेप से विपक्षी के वेद परिणाम विषय पर विचार किया है। इस पक्ष में सैकड़ों ही तर्क व प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, कि मूल वेद चार ही हैं। पौराणिक वेद के शत्रुओं ने जब वेदों में मंत्र बनाकर घुसेड़ने में असमर्थता अनुभव की तो सारे ही मनुष्यकृत ग्रन्थों को वेद बताना प्रारम्भ कर दिया है। महाभारत को १० हजार से १ लाख श्लोक वाला बना दिया गया। पुराणों को १२००० श्लोकों से चार लाख श्लोकों वाला बनाकर उनका स्वरूप इन लोगों ने भ्रष्ट कर डाला है। और वेदों में जब मन्त्र न जोड़ सके तो हर पुस्तक को ईश्वरीय बताकर उसे वेद संज्ञा देकर वेद की पवित्रता को नष्ट करने पर कमर कस ली है। इनकी निगाह में १८ पुराण–उपनिषद हनुमान चालीसा–रामायण–चन्द्रकांता उपन्यास–अलिफ लैला आदि सभी वेद ही है। इन पौराणिकों से बढ़कर वेद का शत्रु अन्य कहीं नहीं मिलेगा।

यमयमी ाि द–

आपने अपने तारीख २४–७–६५ के पत्र में ऋग्वेद १०–१०–१० के मंत्र **"आघाता गच्छानुत्तरा"** मंत्र के अन्तिम भाग **"अन्य मिच्छस्व सुभगेति"** के नियोग परक विनियोग पर आपत्ति की थी। हमने इस मंत्र का प्रकृति परक अर्थ देकर तारीख ३०–७–६५ के पत्र में मंत्रार्थ को नियोग परक लगाकर **"अन्य मिच्छस्व–मत्"** पद के ऋषिदयानन्द जी के विनियोग को उचित सिद्ध किया था। तारीख १७–२–६५ के अपने पत्र में आप हमारे अर्थों का खण्डन नहीं कर सके थे, किन्तु यमयमी को भाई बहिन सिद्ध करने के लिये आपने ऋग्वेद के **"मिथुना सरण्यू"** मंत्र पर निरुक्त के ऐतिहासिक पक्ष का इशारा किया था। हमने आपकी उस शंका का विस्तृत समाधान तारीख ३०–८–६५ के पत्र में प्रथम पृष्ठ पर दे दिया था और बताया था कि यम=दिन, तथा यमी=रात्रि है। इनकी उत्पत्ति का कारण विवस्वान्=सूर्य है। यह सम्बन्ध वास्तविक न होकर वेद का दिन व रात्रि का अलंकारिक सम्वाद है। इसमें भाई बहिन के सम्वाद की कल्पना अशुद्ध है। तैत्तरीय आरण्यक १–१० में अहो रात्रि को पति पत्नी माना है।.........विशेष प्रमाण आप उस स्थल पर पुनः देख सकते हैं।...... .इस तारीख १–११–६५ के पत्र में आपने पुनः उसी विषय को उठाया है जिसका उचित समाधान किया जा चुका है। स्रायणादि टीकाकारों के नामों की दुहाई जो आपने दी है उससे आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता है। और न आपके कहने मात्र से कोई बात आपकी सत्य मानी जा सकती है कि यमयमी भाई बहिन थे। इसके लिये आपके दिये वेद मंत्र तथा उनके अर्थों पर विचार करना होगा। आपने स्वपक्ष की पुष्टि में जो वेद मंत्र दिये हैं वे ऋग्वेद १०–१०–१० में तथा अथर्ववेद १८ सूक्त १ में ज्यों के त्यों मिलते हैं। हम उन सभी मंत्रों का सत्यार्थ नीचे देकर यह दिखाते हैं कि आप वेदार्थ को सर्वथा गलत समझे हैं। इन सूक्तों में भाई बहिन का सम्वाद न होकर यम=यमी का सम्वाद है–**"यमस्यमा यम्य काम आगन्त्य समानयोनौ सह शेय्याय। जायेव पत्ये तन्वंरि रिच्यां विचिद् वृहेव रथ्येव चक्रा।।** अथर्ववेद काण्ड १२ सूक्त १, पत्नी कहती है कि **(समाने)** पति पत्नी भाव के योग्य **(योनौ)** स्थान में **(सह शेय्याय)** एक साथ शयन करने के लिये **(मायिम्यम्)** मुझ यमी को **(यमस्य)** यम की **(कामः)** कामना **(आ अगन्)** हुई है। और यह अभिलाषा हुई है कि **(पत्युः जाता इव)** जिस प्रकार स्त्री निज पति को अपना शरीर अर्पण करती हैं इसी प्रकार मैं अपने **(तन्वम्)** शरीर को आपके लिए **(रिरिच्याम)** सोंप दूं। **(रथ्या इव चक्रा)** रथ में लगे दो चक्रों के समान हम दोनों एक गृहस्थ रूपी रथ

में जुड़े के समान **(वि वृहेव चित्)** उत्तम प्रकार से एक दूसरे का भार उठालें। **न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानाँ स्पश इह ते चरन्ति। अन्येन मदाहनो याहि तू य तेन बि बृह रथ्येव चक्रा।।** ९।। अथर्ववेद काण्ड १८ सूक्त १।। **(इह)** इस संसार में ये जो **(देवानाम्)** विद्वान् राजाओं के **(स्पशः)** सिपाही **(चरन्ति)** विचरते है वे **(न तिष्ठन्ति)** न कभी विश्राम लेते हैं और **(न निमिषन्ति)** न झपकतें हैं, सदा वे सचेत रहते हैं। अतः उनके उत्तम राष्ट्र में हे पुत्राभिलाषिण ! हे **(आहनः)** कटाक्ष से आघात करने वाली प्रिये ! मत् पुत्रोत्पादन में समर्थ मुझ पति से अतिरिक्त **(अन्येन)** अन्य के साथ **(तू यं)** शीघ्र **(याहि)** संग कर, **(तेन)** उसके साथ ही **(रथ्या इव चक्र)** रथ में लगे दो चक्रों के समान **(वि वृह)** परस्पर भार को उठा :– **(इस पर यमी=पत्नी कहती है) वतो वतासि यम नैव ते मनो हृदयं चा विदाम। अन्या किलत्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजातं लिबुजेव बृक्षम्।।** १५।। अथर्ववेद १२–१।। **(यग)** नियमवान पुरुष ! **(वत)** खेद है कि **(बतः असि)** तू निर्बल है। **(ते मनः)** तेरे मन और **(हृदयं च)** हृदय को **(न अविदा)** हम नहीं समझ पाये। **(कक्ष्या इव युक्तम्)** बगल की रस्सी जिस प्रकार जुते हुए घोड़े से चिपटी रहती है उस प्रकार या **(वृक्षम्)** वृक्ष को **(लिबुआ इव)** लता जिस प्रकार आलिंगन करती है उस प्रकार तुम को कोई दूसरी स्त्री आलिंगन करती है ? जिससे तू मुझसे इस प्रकार अपना मन हटाता है। पति यह कहता है कि– **आघात गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयेः कृण्वन्न जामि। उपबर्वृहि वृषभाय बाहुमान्य मिच्छस्व सुभगे पति मत्।।** ११।। अथर्ववेद काण्ड १८ सूक्त १। **(ता)** वे भविष्यति के **(युगानि)** पति पत्नियों के जोड़े (घ) भी निश्चय से **(आ गच्छान्)** आने सम्भव हैं, **(यत्र)** जिनमें **(जामय)** सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्रियाँ **(अजामि)** दोष रहित सन्तान उत्पन्न करेंगी। इसलिए हे **(सुभगे)** उत्तम भाग्य शालिनी स्त्री ! तू **(वृषभाय)** वीर्य सेवन में समर्थ पुरुष के लिए **(बाहुम्)** अपनी बाहों को **(उपवर्वृहि)** सिरहाने के समान लगा उसको सुखी कर, और **(मत्)** मुझ सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ पुरुष से **(अन्यत्)** भिन्न पुरुषको **(पतिम्)** अपनापति **(इच्छस्व)** चाह, ऐसी मेरी आज्ञा है।

वेद के उपरोक्त पूरे मन्त्रों के अर्थों को देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि आपने इन मंत्रों के टुकड़े दे देकर और पूरे मंत्रो को छिपाकर जो स्वगलत पक्ष को सिद्ध करने का जाल रचा था वह आपका कोरा पाखण्ड था। यम यमी सूक्त वेद के पति पत्नी के सम्वाद के रूप में हैं तथा असमर्थ पति द्वारा सन्तानेच्छुक पत्नी को नियोग का आदेश **"अन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मत्"** देते है। अतः ऋषि दयानन्द जी महाराज का इस मंत्र भाग का नियोग परक विनियोग सत्य सिद्ध है। **"अन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मत्"** इस मंत्राँश में स्पष्ट है कि "हे सुभगे" ! मेरे सिवाय तू दूसरे पति की इच्छा कर। इसमें **"अन्य पति"** यह शब्द विचारणीय है। जब वह स्वयं प्रथम पति ही नहीं है तो **"दूसरा पति"** कह ही नहीं सकता है। जो व्यक्ति अपने को पति मानता है वही कह सकता है कि मेरे से पृथक अन्य पति की इच्छा कर। जब पहला पति ही न हो तो दूसरा पति कैसा? जैसे एक वैद्य रोगी से कह देता है कि तू मेरे सिवाय दूसरा वैद्य ढूंढ ले। एक वकील कहता है, मेरे सिवाय दूसरा वकील वैसे ही एक पति कहता है कि मेरे सिवाय दूसरा पति। नर की नारी पति की पत्नी, ठाकुर की ठकुरानी पंडित की पंडितानी, महन्त की महन्तरानी की भांति यम की पत्नी यमी भी हो सकती है। आपकी कल्पना यम की बहिने यमी मानने की भी अशुद्ध है। महाभारत आदि पर्व में नियोग का एक द्रष्टान्त मिलता है। राजा पाण्डु अपनी स्त्री से कहते हैं– **भर्ताभार्या राजपुत्रिं। धर्म्य वाधर्म मेववा। आदि ब्रूयात्तथा कार्य मित्ति वेद विदो विदुः। विशेषतः गृद्धी पुत्र हीनः प्रजननात्स्वयं यथा। यथा हयमवद्यांग पुत्र दर्शन लालसः।** हे राज पुत्रि ! वेद के जानने वाले महात्मा कहते हैं कि–अपना पति धर्म की बात कहे चाहे अधर्म की, स्त्रियों को वैसा ही करना चाहिये। उसमें भी यदि विशेष कर पुत्र की इच्छा वाला हो या और स्वयम् पुत्र उत्पन्न करने में असमर्थ हो, तब तो उसका वचन अवश्य ही मानना चाहिए। हे सुन्दरांगि ! मैं भी वैसा

ही हूं और पुत्र मुख देखने की मुझे बड़ी लालसा है। आगे देखिये– **"मन्नियोगात् सुकेशान्ते द्विजाते स्तय साधिकांत्। पुत्रान् गुणसमा युक्तान्नुत्पादयितु मर्हसि"**।। अर्थात– सुन्दर केशों वाली, मेरी आज्ञा से अधिक तप वाले ब्राह्मण का संग करके तुझे गुणवान् पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध है कि वेद मन्त्र पर महर्षि दयानन्द जी महाराज का भाष्य तथा विनियोग–नियोगपरक ठीक है। पौराणिक अर्थ गलत है। मंत्रार्थ की संगति **"पति पत्नी संवाद"** में ही ठीक बैठती है न कि भाई बहिन के रूप में ! आपके मान्य सायणाचार्य आदि वेदार्थ को नहीं समझ सके। आपका आक्षेप एतद् विषयक सर्वथा निर्मूल सिद्ध हो चुका है। आगे आप पुनः अथर्ववेद काण्ड १८ सूक्त १ के निम्न मन्त्र के अंश पेश करते हैं जो ऊपर के क्रम में आपने बीच में छोड़ दिये थे। यह मंत्र ऋग्वेद १०–१०–१२ में भी आता है जिसका आपने पता दिया है। पर यहां आपने यह शरारत की है कि एक ही मंत्र का आधा भाग ऋग्वेद के नाम से दिया है अर्थात् **"असंयदें"** मन्त्र के नीचे का भाग पहिले अथर्ववेद १८–१–४ के नाम से दिया है। इसका पूरा मंत्र निम्न प्रकार है, और मंत्र का पूर्वार्ध का अंश **"पापमाहुर्यः"** ऋग्वेद १०–१०–१२ के नाम से दिया है इसका पूरा मंत्र निम्न प्रकार है अथर्ववेद १८–१–१४ में पूर्व मंत्रों के क्रम में हैं **न वा उते तनु तन्वा सं प पृच्यां पाप माहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। असंयदे तन्मन सोहृदो में भ्राता स्वसुः शयनेयच्छयीय।। १४।।** अर्थ– इस प्रकरण में मन्त्र ११ के अन्दर पति पत्नी को नियोग की आज्ञा दी और उसकी प्रसंग कामना में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। साथ ही उसने मंत्र १३ में उससे कहा है– **न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि ते तनुं तन्वा सं प प्रच्याम्। अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्र्येतत्।। १३।।** हे **(यामि)** स्त्रि ? **(ते नाथम्)** तेरे पुत्र लाभ रूप प्रयोजन को **(अहम्)** मैं **(न अस्मि)** पूर्ण करने में समर्थ नहीं हूँ और इस कारण से **(तप्रनुम्)** तेरे शरीर को मैं अपने **(तन्वा)** शरीर के साथ **(न सं प्रच्याम्)** सम्पर्क नहीं करता हूँ। एतएव **(मत् अन्येन)** मेरे से भिन्न व्यक्ति के साथ अपने **(प्रमुदः)** प्रमोदों को **(कल्पयस्व)** प्राप्त कर। हे **(सुभगे)** सौभाग्यवती ! तरे आक्षेप के अनुसार यह असंमर्थ पति **(ते भ्राता)** तेरा भ्राता ही सही। वह **(एतद्)** शरीर सम्पर्क आदि कार्य को **(न वष्टि)** नहीं चाहता।

जब गर्भाधान में असमर्थ पति अपनी स्त्री को अपनी बहिन के समान समझ लेता है अथवा वानप्रस्थी गृहस्थाश्रम से विरक्त होकर तृतीयाश्रम में प्रवेश कर लेता है तो वह निज पत्नी सहित सभी स्त्रियों को बहिन की दृष्टि से देखने लगता है उस अवस्था में भोगेच्छा की कामना वाली अपनी पत्नी से कहता है–**"न वा उते तनूं............"** (देखो ऊपर दिया मंत्र संख्या १४)। हे प्रियतमे ! **(ते तनूम्)** तेरे शरीर को **(तन्वा)** अपने शरीर से **(न वा उ–सम पपृच्याम्)** अब नहीं सम्पर्क कराऊँ क्योंकि विद्वान लोग इसको **(पापम् माहुः)** पाप कहते, है कि **(यः)** जो ऐसा करे तो **(स्वसारम्)** अपनी बहिन का **(निगच्छात्)** भोग करे। क्योंकि **(यत्)** यदि मैं **(भ्राता)** तेरा भाई सा होकर **(स्वसुः)** अपनी बहिन के **(शयने)** सेज पर **(शयीय)** सो जाऊँ तो यह मेरे **(हृदः)** हृदय और **(मनसः)** चित्त के **(असंयत्)** संयम का भंग होगा।

इस प्रकार यम यमी सूक्त के पूरे मंत्रों के अर्थों की अति सुन्दर संगति पति पत्नी संवाद के रूप में लग जाती है। इनमें भाई बहिन के व्यभिचारपरक अर्थ लगाने की कोई गुंजाइश लेश मात्र भी नहीं है। पौराणिक लोग व उनके टीकाकारों तथा उनके अंध भक्तों को वेद को कलंकित करने वाले उल्टे सीधे अर्थ निकालने की आदत होती है। जिससे वेद कलंकित हो जावे। विपक्षी भी उन्हीं में से एक है, वे सत्यार्थ को कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? उनका सारा प्रपंच मंत्रों के टुकड़े तोड़ मरोड़ कर अर्थ करने का अब हमारे मंत्रों के पूरे सत्यार्थ के सामने नष्ट हो गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि वेद में यम यमी सूक्त (ऋग्वेद

१०–१०–१९) का देवता **"वैवस्वतो यमः"** तथा **"वैवस्वती यमी"** ठीक लिखा है। उससे आपके पक्ष का समर्थन नहीं हो सका है। आप हर बात अधूरी पेश करके गलत ढंग से अपने पक्ष का समर्थन करने का सर्वत्र कुप्रयास करते हैं। यह आपके लिए निन्दा की बात है। आपने निरुक्त २१–१०–२ के प्रमाण को भी अधूरा पेश किया है। पूरा स्थल निम्न प्रकार है। :–

अपा गृहन्नमृताँ मर्त्तेभ्यः कृत्वी सवर्णमदुदर्विवस्वते। उताश्विना व भरद्यतदासीद जहादु द्वामिथुना सरण्युः अप्यगृहन्नमृताँ कृत्वी सवर्णमद दुर्विवस्तेऽप्यश्विना व भरद्यतदासीद जहाद द्वौ मिथुनौ सरण्यूम–'ध्यमँ च माध्यमिकाञ्ज वाचमिति नैरुक्ता।। अर्थात– यह वैदिक प्राकृतिक जगत का वर्णन है निरुक्तकारों का मत है। इसके आगे निरुक्तकार आप जैसे उस काल के ऐतिहासिक पक्ष वालों का मत देता है कि जो लोग वेद को मनुष्य कृत मानते थे। वह लिखता है– **यमचं यमीचें त्यैति हासिकास्तत्रेहासमाचक्षते त्वाष्टी सरण्यूर्विवस्वत आदित्यादयमौ मिथुनौ जनयचंकार सा सवर्णामन्यां प्रतिर्निधायाश्वं रूपं कृत्वा प्रदुद्राव स विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं तामनुसृत्य सम्बभूवत तोऽशिवनौ जज्ञाते सवर्णायां मनुस्ततदभिवादिन्येषर्ग भवति।। ६०।।**

स्पष्ट हैं कि निरुक्तकार ऐतिहासिक पक्ष अपना मत दर्शाने का नहीं प्रस्तुत कर रहा है। वह तो **"इति ऐतिहासिका"** लिख कर बता रहा है कि यह मत वेद में इतिहास मानने व खोजने वालों का है। जैसे **"कविर्मनीषीं"** मंत्र में कबीरदास, **"ईशावास्य"** मंत्र में ईसा मसीह, **"इमाम य मिन्द्र"** मंत्र भाग में दिल्ली की मस्जिद का इमाम, **"कृष्ण त एनं"** भाग में श्री कृष्ण जी **"शतमदीनः स्याम शरद शतम्"** भाग में मक्का मदीना, आप जैसे लोगों को दीख पड़ता है, वैसे ही पौराणिकों ने वेद में इतिहास की मिथ्या कल्पना की हुई है। निरुक्तकार यास्क ने भी उसे स्पष्ट कर दिया है। इसलिए आपका वेद को कलंकित करने वाला पक्ष मिथ्या है। यहां वेद में यम=दिन तथा यमी=रात्रि का तथा ऊषा का वर्णन चल रहा है। सूर्य यद्यपि रात व दिन की उत्पत्ति का कारण है और सूर्य के अभाव में दिन की अनुपस्थिति से रात्रि को उत्पन्न करता है। इसलिए शास्त्रकार ने स्पष्ट किया है कि विवस्वान=सूर्य से दिन (यम) व सूर्य के अभाव में उसी के निमित्त यमी=रात (मिथुन) दोनों उत्पन्न होते हैं और उनके द्वारा सरण्यू=ऊषा काल की उत्पत्ति होती है। यह प्राकृतिक घटनाओं का अलंकारिक वर्णन है। भाई बहिन की कल्पना आपकी अशुद्ध है। तैत्तरीय आरण्यक १–१० में दिन व रात को पति पत्नी माना है, यह प्रमाण हम तारीख ३०–८–६५ के पत्र में भी दे चुके हैं। पर फिर भी आपने अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन पुनः कर दिया है। धन्य है, विशेष के लिए पिछला लेख तारीख ३०–८–६५ पर तथा तारीख १–९–६५ लेख पृष्ठ ७ व ८ पर देखो– हमने तारीख १–९–६५ के पत्र में आपके उस आक्षेप पर विचार किया था जिसमें आपने अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति के निराकरण के लिए सूर्य ने अपनी भतीजी संज्ञा के मुँह में मैथुन करने के समर्थन में ऋग्वेद १०–१–१८ के मंत्र २ के **"अपागूहन्नमृता"** मंत्र पर निरुक्त के ऐतिहासिक पक्ष के उल्लेख का प्रमाण किया था आप उस प्रमाण से अपने पक्ष को निरुक्तकार का मत सिद्ध नहीं कर सके थे। हमने वहां द्वा सरण्यू को वाणी, प्राकृतिक तत्वों के जोड़े **(मिथुन)** सिद्ध किया था। वहां दो जोड़ों को जड़ प्रकृति से सम्बन्ध रखते हैं। **"मध्यम तमो भाग"** और **"माध्यमिका वाक"** हमने बताया था। एक निमित्त से उत्पन्न होने से वेद को नष्ट करने की भावना रखने वाले आप जैसे ऐतिहासिक वेद विरोधी नास्तिक लोग उनको पुत्र और कन्या, भाई बहिन किसी भी रूप में मान सकते हैं। पर यह सम्बन्ध केवल काल्पनिक हैं, वास्तविक नहीं वेदार्थ वेद के गौरव के अनुकूल लेना चाहिए चैतन्य में यह सम्बन्ध अर्थ रखता है, जड़ प्राकृतिक जगत की घटनाओं के वर्णन में यह सम्बन्ध निरर्थक कल्पनायें मात्र

होती हैं। अतः आप वेद के इस प्रथक स्थल के उद्धरण देकर यम यमी सूक्त में दिन व रात के पति पत्नी के सम्वाद के रूप में अलंकारिक वर्णन द्वारा (कथानक द्वारा) अशक्त पति से पत्नी को नियोग की आज्ञा दिलाने के वर्णन को बहिन भाई का सम्वाद बताना अनुचित अयौक्तिक तथा कोरा जाल साबित हो चुका है। आप उसमें असफल सिद्ध हो चुके हैं। हम विपक्षी द्वारा प्रस्तुत **"अपागहन्नमृतां"** ऋग्वेद १०–१७–२ के मंत्र पर निरुक्त का मत पीछे दिखा चुके हैं। अब उसके दूसरे मंत्र **"त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोती तीदं विश्वं भुवनं समेत्ति। यमस्य माता पर्युह्यमाना महोजाया विवस्वतो ननाश।।** ऋग्वेद १०–१७–१ का हम सत्यार्थ प्रस्तुत करते हैं जो इस प्रकार है– **(त्वष्टा)** संसार को रचने वाला परमेश्वर **(दुहित्रे)** सर्व जगत को पूर्ण करने वाली प्रकृति को **(वहतु कृणोति)** वहन या धारण करता है। तभी **(तीदं विश्वं भुवनं)** यह समस्त उत्पन्न होने वाला जगत् **(सम एति)** उत्पन्न होता है। **(यमस्य महः विवस्वतः)** महान् सर्व जगत के नियन्ता विविध लोकों के स्वामी परमेश्वर की **(जाया)** विश्व की उत्पादक प्रकृति **(पर्युह्यमाना)** सब प्रकार से प्रभु द्वारा धारण की जाकर **(माता)** जगत की जननी, माता होकर **(ननाश)** अव्यक्त रूप से विद्यमान रहती है। इसी प्रकार दूसरा अर्थ भी इस प्रकार बनता है– **(त्वष्टा)** सूर्यवत् तेजस्वी पुरूष **(दुहित्रे)** अन्नादि देने वाली भूमि के तुल्य सब काम्य सुखों को देने वाली स्त्री के हितार्थ ही **(वहतु कृणोति)** विवाह करता है **(इति इदं विश्वं भुवन समेतिं)** इसी कारण यह समस्त लोक ठीक २ चलता है। **(यमस्य विवस्वतः)** विवाह कर्ता विविध धनों का स्वामी पुरूष द्वारा **(पर्युह्यमाना)** परिणय पूर्वक विवाह की गई **(जाया)** पुत्रोत्पादन में समर्थ स्त्री **(माता सती महः ननाश)** कालान्तरों में माता होकर अति महान् पति के समान पूज्य पद को प्राप्त होती है।........ इसी मंत्र पर महर्षि यास्क निरुक्त १२–११ में लिखते है– **"त्वष्टा दुहितुर्वहनं करोतीदं विश्वं भुवनं समेतीमानि च सर्वाणि भूतान्य भिसमागच्छन्ति यमस्य माता पर्य्युह्यमाना महतो जाया विवस्वतो ननाश रात्रि रादित्य स्यादित्योदयेऽन्तर्दधीयते।।"** अर्थात्– त्वष्टा सूर्य दुहिता उषा को धारण करता है। तब यह विश्व प्रगट होता है। तब इस महान दिन की उत्पादक माता ऊषा, लुप्त हो जाती है तथा दिन के प्रगट होने पर रात्रि (पत्नीवत्) छिप जाती है। वेद तथा निरुक्त के मान्य पक्ष के किसी भी अंश से उनकी सुसंगति पूर्वक अर्थ लगाने से विपक्षी के वेद से भाई बहिन के यमयमी के रूप में सम्वाद की कोई संगति नहीं बैठती है। व्यर्थ ही उसने प्रलाप करके अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन किया है। न तो विपक्षी में वेदार्थ समझने की बुद्धि है, और न उसे स्वयं अर्थ करना आता है। दूसरों की किताबों में से नकल करके उल्टा सीधा शास्त्रार्थ चला कर नाम पैदा करने व मिथ्या पाँडित्य दिखाने की उसे धुन व उन्माद (पागलपन) सवार है।

हमने ऋग्वेद १०–१७–१ के प्रमाण **"यमस्य माता पर्युह्यमाना"** के उद्धरण से गत पत्र में ठीक ही लिखा था कि उक्त मंत्र में सूर्य से केवल यम (दिन) की उत्पत्ति मानी है न कि यम यमी (दिन व रात) की। प्रलय काल में विश्व अन्धकारावृत रहता हैं जगत उत्पन्न होने पर सूर्य के निमित्त से प्रकाश उत्पन्न होता है। सूर्य के सामने जो भाग पृथ्वी का आता है उस पर प्रकाश (दिन) की उत्पत्ति (वेद की भाषा में विवस्वान के पुत्र दिन की उत्पत्ति) सूर्य से होती है। अतः दिन (यम) ही सूर्य का पुत्र कल्पित किया जा सकता है। (रात्रि की उत्पत्ति सीधी सूर्य से नहीं होती।.अन्धकार तो स्वाभाविक होता है। प्रकाश नैमित्तिक होता है। सूर्य के अभाव में, प्रकाश के अभाव में वा दिन के अभाव में। रात्रि (अन्धकार) प्रगट होती है। अतः सूर्य से दिन के समान ही रात्रि की उत्पत्ति न होने से दिन व रात्रि (यम व यमी) भाई बहिन बन ही नहीं सकते हैं। दिन के पीछे रात्रि चलती है, अतः यह अनुमान का रिश्ता दिन व रात्रि (यम यमी) के पति पत्नी के रिश्ते के समान है। अस्तु वेद के यम यमी सूक्त का अर्थ पति पत्नी के रूप में करना ऋषि दयानन्द जी का उचित था। दिन व रात साथ २ चलते होते तो भाई बहिन का रिश्ता आप मान भी सकते थे। इस प्रकार सायणादिक पौराणिक

विद्वानों का पक्ष यम (दिन) व यमी (रात) को भाई बहिन मानने का प्रमाण व युक्ति विरूद्ध मिथ्या सिद्ध है। तैत्तिरीय आरण्यक १–१० का जो प्रमाण हमने गत पत्र में दिया था उसमें दिन व रात दोनों को पति–पत्नी माना है। वह प्रमाण हमने गत पत्र में दिया था उसमें दिन व रात दोनों को पति–पत्नी माना है। वह प्रमाण विपक्षी के कट नहीं सका है। ऋग्वेद १०–१७ के मंत्रों के ऊपर **"वैवस्वतो यमः"** तथा **"वैवस्वतौ यमी"** जो लिखा होता है वह भी ठीक है। वैवस्वत (सूर्य) से (दिन) यम की ही उत्पत्ति होती है। सूर्य की उपेक्षा से दिन तथा दिन की अपेक्षा से रात्रि (यमी) का अस्तित्व होता है न कि सूर्य से रात्रि की उत्पत्ति होती है। सूर्य (प्रकाश) से अंधकार (रात्रि) का विनाश तो होता है न कि प्रकाश से अंधकार का जन्म होता है। यहां **"वैवस्वतो यमी"** का भाव सूर्य की अपेक्षा से रात्रि (यमी) का महत्व होने का है, न कि दिन व रात (यम–यमी) दोनों का सूर्य से दिन (यम) के समान जन्म होने की बात मानने का है। आप इतनी सी बात भी नहीं समझ पाते हैं, कैसे महन्त हैं ? प्राकृतिक जगत में यम यमी (दिन व रात) पति पत्नी रूप से है, यह तैत्तरीय आरण्यक का प्रमाण ऊपर दिया जा चुका है। जब तक दिन प्रातः से लेकर सांयकाल तक (जन्म से लेकर यौवन, तथा यौवन की समाप्ति के बाद तृतीय और उसके बाद चतुर्थ आश्रम को प्राप्त होता है) यमी (रात्रि) उससे मिलने नहीं आती है, वह छिपी रहती है। पर जब यम (दिन वृद्धावस्था में होता है और सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो जाता है तो उसके कलेवर की क्षीण अवस्था आने पर यमी (रात्रि) बड़े जोश के साथ पूर्ण यौवनावस्था में उससे मिलने की इच्छा से आती है। इस अलंकारिक वर्णन को वेद ने बड़े सुन्दर ढंग से यम यमी सूक्त में दिया है। यमी यम से मिलने की इच्छा रखती है। असमर्थ पति यम उससे इन्कार करता है। यमी उसे उलाहना देती है कि तुम तो निर्बल बना मर्द हो। ऐसा लगता है कि तू अन्य औरतों से फँसा है जिससे तू मुझ पत्नी से मन हटाता है।......यम कहता है कि तू किसी अन्य से सम्बन्ध करके सन्तान पैदा करले। असमर्थ पति अथवा चतुर्थाश्रमी की दृष्टि में सारी नारियाँ उसकी बहिन की स्थिति में आ जाती है। वह स्वपत्नी से भी उसी प्रकार व्यवहार रखता है। पति पत्नी भाव उसका समाप्त हो जाता है। गर्भाधानादि कर्म चतुर्थ आश्रमी के लिये निषिद्ध होते हैं। उसका दृष्टिकोण अति उच्च होता है। वह भगवद्भक्ति में तल्लीन रहना पसन्द करता है। वेद ने इस सूक्त से मानव को उसके इस आश्रम के कर्तव्याधिकार का उपदेश दिया है। शाम को जब दिन वृद्ध होकर चतुर्थ आश्रमी हो जाता है तब नव यौवना रात्रि उससे मिलने आती है। उस अवस्था के वृद्ध पुरूष के तरुणी पत्नी से वार्तालाप की संगति यम यमी सूक्त के भाव की ठीक २ बैठती है। न कि भाई बहिन के सम्वाद की। यम (दिन) यमी (रात्रि) से कहता है कि इस अवस्था में अब तू मुझे भाई के ही समान समझ। मैं तेरे साथ शरीर सम्पर्क नहीं करना चाहता हूँ। विद्वान लोग मेरे इस चतुर्थ आश्रमी के इस कर्म को **"ते तनूं तन्वा न बाउ सं प्रच्याम पापम् आहुं"** (तेरे शरीर को अपने शरीर से अब सम्पर्क नहीं कराऊँ। क्योंकि विद्वान लोग इसे पाप कहते हैं।......) इसलिये हे प्रिये ! (यम कहता है कि) **"अन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मत्"** तू मुझसे प्रथक अन्य पति की सन्तानोत्पति के (नियोग के लिये) कामना कर। वेद के इस सूक्त के मंत्र पर ऋर्षि दयानन्द जी का अर्थ उचित तथा वास्तविक है। पौराणिक सायणादि की कल्पना अशुद्ध तथा वेद को कलंकित करने वाली है। इस प्रकार आप का प्रश्न नं० १ सर्वथा मिथ्या है। उस पर हमारे वेद मंत्रों के अर्थ सहित उत्तर को आप किसी भी रूप में काट नहीं सके हैं। यह स्पष्ट है। व्यर्थ बकवास तथा गाली गलौज करना आपकी पराजय का ज्वलन्त प्रमाण है। गालियाँ प्रायः सभी हारे हुए पौराणिक लोग हमको दिया करते हैं, वही अपने भी अपना स्वरूप इस हस्त लेख में दर्शाया है। **"अन्य मिच्छस्व"** ऋग्वेद १०–१०–१० पर अपने पौराणिक पं० अखिलानन्द जी का अर्थ भी देख लें। वे लिखते हैं– **"(हे सुभगे) जीवित पतित्वात्सौभगाय भवति। (मत) पुत्रोत्पादनासमर्था यतः (अन्य पति) सवर्ण द्वितीय**

पतिं पुत्रोत्पादनाय (इच्छस्व) कामयस्व अहं पुत्रोत्पादने तवकामवद्धा विचारणे च सतर्थ इत्यर्थः।" अर्थात्– हे सुभगे! सुहागिन तू (मत्) मेरे से भिन्न **(अन्यपति)** मेरे समान वर्ण दूसरे पति की सन्तान के लिए **(इच्छस्व)** इच्छाकर मैं अब सन्तान पैदा करने की ताकत नहीं रखता हूं। आशा है अपने ही विद्वानों के उक्त अर्थ देखकर आपको ज्ञात हो जावेगा कि ऋषि दयानन्द जी का भाष्य व मन्त्र का नियोग परक विनियोग सर्वथा ठीक है। अब केवल नवीन आक्षेप **"उदीर्ष्व नार्याभिः"** मन्त्र पर जो आपने किया है, उसका हमें जवाब देना है। इस मंत्र के अर्थ पर आपका हमारे ऊपर आक्षेप व्यर्थ ही है। हमारे यहां पति की लाश पड़ी हो और उसकी पत्नी (विधवा) से विवाह को कहने की परिपाटी नहीं हैं। यह तो आपके सम्प्रदाय का धर्म है। प्रमाण देखिए इस वेद मंत्र पर सायणाचार्य का भाष्य जो सनातनी पक्ष को परम मान्य है।

"हे नारि ! त्वं इतासुगतप्राणं एवं पति उपशेष उपेत्य शयनं करोषि उदीर्ष्व अस्मात् पति समीपात्ऽउत्तिष्ठ जीवलोकमपि जीवितं प्राणि समूह अभिलक्ष्य एहिं आगच्छत्वं हस्त ग्रामस्य पाणिग्राहवतः दिधिषोः पुनर्विवाहेच्छोः पत्युः एतत् जानित्वं जायत्वं अभि संवभूव–अभि मुख्येन सम्यक् प्रप्नुहि।। तैत्तिरीय आरण्यक ६–१–१४ अर्थात्– "हे नारी! तू इस मरे हुए पति के समीप जो सो रही है (पड़ी है) इसके पास से उठ, जीते हुए प्राणियों के समूह को देखकर तू आ, तू हाथ पकड़ने वाले पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले दूसरे पति की पत्नी बन जा।" अब आप समझ गये होंगे कि पति की लाश सामने पड़ी होने पर ही सदा विधवा का वहां लाश उठाने को आये लोगों में से किसी के साथ लाश उठने से पूर्व ही विवाह कराना आपका सनातन धर्म है, और आपके परम पूज्य सायणाचार्य की व्यवस्था है। हम पर आप व्यर्थ दोषारोपण करने से पूर्व अपना घर देख लिया करें तो ठीक होगा।...... हमने तारीख ३०–८–६५ के अपने पत्र में जो उत्तर आपके अनर्गल लेख का आपको दिया था वह हमारा आज भी सत्य है। आप उसको किसी भी तर्क या प्रमाण से काट नहीं सके हैं। हमने लिखा था कि वेद में बीज रूप से समस्त विद्याओं व विज्ञानों का उपदेश मिलता है उस पर अन्वेषण करके विद्वानों ने विस्तार से अनुभव किये हैं और ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। सन्तानोत्पत्ति क्रिया का विधान भी वेद के मन्त्रों में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया है। यथा– **'रेतो मूत्र विजहाति योनि प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भोजरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना। ऋतमेसत्यमिन्द्रियम्'।।** (यजुर्वेद १६–७६) इस पर पौराणिक भाष्यकार जो आपको परममान्य है का भाष्य निम्न प्रकार है और जो हमारे पक्ष का समर्थन करता है– **"रेतो मूत्रम व्यवहित पद प्रायः। रेतः विजहाति त्यजति। योनि स्त्री प्रजननम् प्रविशत इन्द्रियं शिश्नम्। योनि प्रापेशदन्यत्र मूत्रं विजहाति। तुल्य द्वारयोरपि मूत्र रेतसो मूत्र स्थानं हि त्वान्यत्रावतिष्ठते रेतः। सत्यमेतत् ततः गर्भो जरायुणा आवृतः वेष्ठितः। जरायु च उल्वं च विजहाति त्यजति। जन्मना प्रसवेन। सत्यमेतत्। नाना स्थाना नामेकं द्वाराणां प्रथमं उदाहरणम्। एक स्थना नामेक द्वाराणाँ द्वितीयम्। ऋतेनेति व्याख्यातम्।। ७६।। "तां पूर्षछिवतमासे रयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति। या न उरुद्रशती विश्रायन्ति यस्मा मुशन्त प्रहराम शेयम्"** (ऋग्वेद १०–८५–३७)।।

इस वेद मंत्र में भी पुरुष अपनी पुजनेन्द्रिय को नारी पुजननेन्द्रिय में रखकर गर्भाधान का विधान बताया है। इन दोनों वेद मंत्रों में गर्भाधान का प्रकार वहीं बताया है जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है। यदि पौराणिकों ने वेद पढ़े होते तो वे आपकी तरह मुखाधान, नासिकाधान, घोड़ाधान, गैयाधान, ब्रह्माधान, अर्जुनाध्धान, गुदाधान, कर्णाधान आदि बेहूदी बातों पर अमल न करते और न इनका समर्थन ही आपकी तरह करते। वेद के उक्त विधान के समर्थन में बृहदारण्यक उपनिषद वा आयुर्वेद शास्त्रकारों ने जो विधान अनुभवों के आधार पर दिये हैं वे सभी सत्यार्थ प्रकाश के लेख का समर्थन करते हैं, इसीलिये हमने उनके प्रमाणों से

स्वपक्ष का समर्थन किया था, जो उचित था। आप उसके विपरीत अपना कोई नया ऊंट आदि के मैथुन के प्रकार का तरीका पेश करके उसकी वैज्ञानिकता पेश करते तो ठीक भी था। स्पष्ट है आप हमारे पक्ष को किसी भी वेद मंत्र से काट नहीं सके, अतः हमारा पक्ष वैदिक सिद्ध है। मानव का ज्ञान नैमित्तिक होता है। वह बिना सिखाये कुछ भी नहीं सीख पाता हैं जबकि अन्य जीवों का स्वाभाविक होता है। अतः मानव को हर आवश्यक बात का ज्ञान वेद से परमेश्वर ने दिया था। इसी लिये वैदिकों की गर्भाधान क्रिया सृष्टि नियमानुकूल होती है और पौराणिकों की अप्राकृतिक व मूर्खता पूर्ण तरीके से होती है। हमने आप को इसीलिये मुखाधान–वीर्य पान विधान, मुर्दाधान, घोड़ाधान आदि के अनेक पौराणिकों में वर्तमान गर्भाधान के प्रकारों के दृष्टान्त देकर बताया था कि देश में सन्तोत्पत्ति के आवश्यक विषय में सनातम धर्मी बनने वाले लोगों ने पुराणों के आधार पर भारी पापाचार फैला रखा था। उस अज्ञान के निवारणार्थ यह आवश्यक हो गया था आप जैसे वाममार्गीयमत पोषक लोग आगे बहका न सकें। इसीलिये सत्यार्थ प्रकाश में उसका उल्लेख आया है। हमारे सभी ग्रन्थों में जहां वेद के प्रमाण का उल्लेख हो वहां हमसे आपको वेद के उस स्थल को वेद में दिखाने की बात कहने का अधिकार है। आयुर्वेद या अन्य ग्रन्थों के आधार पर लिखी गई बातें तत सम्बन्धी ग्रन्थों में हमें दिखाने का अधिकार है। यह आप ध्यान में रखें। ऋषि दयानन्द जी ने जो बात शरीर विज्ञान के सम्बन्ध में लिखी है वे उन्होंने आयुर्वेद शास्त्र के आधार पर ही लिखी है। उनका बीज वेद में हम दिखा चुके है। अतः हर बात को वेद में दिखाने की मांग करना आपका मिथ्या पाखण्ड बाल हट है।.... अपने लेख में आपने व्यर्थ बकवास करते हुए हमारे द्वारा गत पत्र में प्रस्तुत महीधर के इस प्रमाण को **"महिषी अश्व शिश्नं स्वयमे वा कृष्य स्वयोनौ स्थापयति"** अर्थात रानी घोड़े के लम्बे लिंग को स्वयं पकड़ कर निज योनि में स्थापित करले। वैदिक सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसका अर्थ यह है कि आप घोड़े या गधे से औरतों का सम्भोग कराना सनातम धर्म समझते हैं और उसे ठीक साबित करने की वकालत करते हैं। आपको शर्म आनी चाहिये! आपने उक्त महीधर के प्राण की संगति शतपथ ब्राह्मण के लेख से लगाई है, पर आपको ज्ञात होना चाहिये कि शतपथ ब्राह्मण में यह आपका उद्धृत प्रमाण सर्वथा प्रक्षिप्त है जो किसी वाममार्गीय पौराणिक की कृति है। यजुर्वेद अध्याय–१३, मंत्र–२० **"ताउभौ चतुरः पदः............"** इस मंत्र पर महीधर के भाष्य में उक्त घोड़े से सम्भोग के वाक्य की संगति शतपथ ब्राह्मण १३–२–८–५ में दिये गये अर्थ से नहीं लगती है। वहीं लिखा है– **"ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसार यावेति मिथुनस्या वरुनस्या वरुर्ध्य स्वर्ये लोके प्रोर्णवाथामित्येष वै स्वर्गो लोगो पत्र पशु संज्ञ पयन्ति तस्मादेवमाह वृषा वाजी रेतोधा रेतो देधात्विति मिथुस्यै वावरुध्यै।"** अपने ही इस वर्णन के विरूद्ध शतपथ १३–५–२–२ में निम्न प्रकार पाठ किसी ने घुसेड़ कर मिला दिया है जिसे आपने पेश किया है देखिये **"निष्ठितेषु पात्रेजन्मेषु। महिषी मश्वायेग्यनिवाद–जन्त्यजैनावाधि वासेन सम्प्रोर्ष्ण वन्ति स्वर्गो लोके प्रोर्ण्णुवला मित्थेष वै स्वर्गो लोको यत्र पशुं संज्ञ पयन्ति निरायत्या श्वस्य शिशनम्महिष्यपस्थे निधत्तेब्वृषाव्वाजी रेतोधारेते दधात्विति मिथुनस्यैव सर्व्वत्वाय।"** इसमें नीचे का वर्णन पूर्ण वर्णन के विरूद्ध अनर्गल होने से स्पष्ट तथा प्रक्षिप्त सिद्ध है। कात्यायन श्रौत सूत्र में भी यह मूर्खता पूर्ण प्रमाण वाम मार्गीय लोगों को घुसेड़ा हुआ है। आप चाहे लाख प्रमाण देवें और गधों या घोड़ों से औरतों के सम्भोग को सनातम धर्म बतावें परन्तु संसार का हर व्यक्ति इस प्रकार के घृणित कृत्य को जंगली एवं मूर्खतापूर्ण बतायेगा। यदि आपको अपने सम्प्रदाय को बेहूदा साबित कराना है, तो घोड़ों व गधों से सम्भोग कराने का उपयोग कीजिए। वरना लज्जित होकर चुप बैठ जाइए। मध्यकाल में अधिकांश साहित्य को वाममार्गीय तथा यवनों ने बिगड़वाया है। आपके पुराणों में ही लिखा है **"सर्वाण्येव पुराणाति संज्ञेयानि यरर्षभ। द्वादशैव सहस्राणि प्रोक्ताविह मनीषिभिः। पुनर्बृद्विगतामहीह आख्यानैर्विवधैमृप।।**

भविष्य पुराण ब्राह्म पर्व अध्याय १–१०३।। अर्थात्–कभी १८ पुराणों में केवल १२००० श्लोक वर्तमान थे। फिर उनमें अनेक उपाख्यान घुसेड़ कर उनकी वृद्धि की गई। और अब श्लोक संख्या चार लाख से भी ज्यादा उनमें है।–इसी प्रकार पौराणिक स्वार्थी लोगों ने अपने मतलब के मिथ्या प्रमाण बना कर सूत्र ग्रन्थों आदि में मिला दिए हैं। अतः आपका प्रमाण प्रक्षिप्त होने से अमान्य है। वह बुद्धि व सृष्टि नियम के भी विरूद्ध है। जैसे आर्य समाज को प्रक्षिप्त भाग छोड़कर मनुस्मृति मान्य है, वैसे ही प्रक्षिप्त गलत अंश छोड़कर शतपथादि अन्य ग्रन्थ मान्य हैं। वेद के बाद सर्वांश में स्वतः प्रमाण हम अन्य साहित्य को स्वीकार नहीं करते है। यह आप ध्यान में रक्खें। आगे आपने हम पर मिथ्या लांछन लगाया है कि हमने उत्तर पक्ष में होते हुए आप से प्रश्न किए हैं। हमने कोई भी प्रश्न नहीं किया है। केवल कुछ कारण इस बात के लिए हमने दिखाए हैं कि गर्भाधान का सत्य शास्त्रोक्त विधान (प्रकार) सत्यार्थ प्रकाश में क्यों दिया गया है? आपने इनको प्रश्न कैसे समझ लिया है? हमने तो स्वपक्ष की पुष्टि में हेतु व परिस्थितियां बताई है, जो हमारे अधिकार क्षेत्र में आते हैं।–साथ ही तारीख ३०–८–६५ के अपने लेख के अन्त में आपका थोड़ा आभास कराया था कि आर्य समाज के मान्य ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ अवैदिक नहीं हैं वरन आपके मान्य पुराण अवैदिक हैं। आगे आप लिखते हैं कि ब्रह्मा से राक्षसों का सम्भोग आपकी खुराफात है। हमारा उत्तर है कि आप भागवत के स्मन्द ३ अध्याय २० के निम्न श्लोक आंख खोलकर दिन में देखने का कष्ट करें– **"देवोऽदेवाञ्जघनतः सृजति स्मातिलोलुयान्। य एनं लोलुप तया मैथुनायाभिपेदिरे।।२३।। ततो हसन् स भगवान सुरैर्निरपत्रपैः। अन्वीय मानस्त रसा क्रुद्धो भीतः परामतत्।।२४।। याहिमां पर मात्मस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः। या इमा यभितुं पापा उपाक्रामन्ति मा प्रभो।।२६।।** अर्थात्– ब्रह्मा ने अपनी जांघ से कामासक्त असुर पैदा किए। वे अत्यन्त कामलोलुप होने से उत्पन्न होते ही मैथुन के लिए ब्रह्मा पर चढ़ गए।।२३।। इस कार्य को होते देखकर पहिले तो ब्राह्मा जी हंसे (खुश हुए)। फिर उन असुरों को पीछे लगा देखकर भयभीत होकर भाग निकले।।२४।। क्योंकि असुर बहुत से थे और ब्रह्मा जी अकेले ही थे। बेचारे किस–किस से मैथुन कराते? भागते–२ वे विष्णु के पास जाकर बोले "परमात्मन्" मेरी रक्षा कीजिए। मैंने आपकी आज्ञा से प्रजा उत्पन्न की थी और यह कामासक्त होकर पाप में प्रवृत्त होकर मुझसे ही मैथुन में प्रवृत्त होने लगी है।।२६।। इन प्रमाणों से हमारा लिखना सत्य है कि असुरों ने ब्रह्मा जी के साथ मैथुन किया है।

आगे दिखिये– शिवजी ने अन्धक दैत्य के पुत्र आदि से इगलामबाजी की थी यह मत्स्य पुराण में लिखा है। आप भी मानते हैं कि की थी। फिर किसलिए की हो? यह विवाद की बाद नहीं है। की थी यह तथ्य है। और उसी इगलामबाजी से वह लड़का मर भी गया था। **मेढ़े व्रांस्त्रमादाय दानवं तम शायतत् अवुध्य द्वीर को नैव दानवेन्दुं निषु–दितम्।।** (मतस्य पुराण अध्याय १५५ श्लोक ३७) अर्थात्– शिवजी ने अपने लिंग पर वज्रास्त्र रखकर संभोग करके दानव पुत्र को मार डाला। हमारा यह प्रमाण भी सत्य सिद्ध है। आप काट नहीं सके। मत्स्य पुराण के इस अध्याय में शिवजी के याड़ि के साथ प्रेमालाप की पूरी कथा दी है, आप पढ़ सकते हैं। आगे आपने शिव वीर्य पीने से देवताओं में गर्भ रहने व अंजनी के कान में उसे घुसेड़कर हनुमान के पैदा होने की बात तो मौन होकर हमारी स्वीकार कर ली। अब झगड़ा अपने वीर्य शब्दों के अर्थों पर पैदा किया है। पर यह आपका श्रम व्यर्थ है। क्योंकि शिव पुराण में लिखा है कि– **"शिवजी पारवती से संभाग कर रहे थे। देवताओं ने द्वार पर आवाज लगाई। शिवजी मैथुन छोड़कर बाहर आ गए और खड़े से वीर्य पात कर दिया। पारवती जी ने वीर्य पात पर देवताओं को फटकारा कि यदि वीर्य मेरे गर्भ में गिरता तो सन्तान होती। अब मैं बांझ रह गई। उस वीर्य को पीकर सारे देवताओं को गर्भ रह गया।"** प्रमाण देखो– **"सत्य रेतः सुराः पीत्वा सगर्भा विष्णु ना सह।"** (सौर पुराण ५३–३६) उसी वीर्य को

अग्नि देवता पी गया था। जिसके बाद श्री कार्तकेय का जन्म हुआ था। कथा शिव पुराण कुमार खण्ड अध्याय २ में देखी जा सकती है। उसी वीर्य को ऋषियों ने थोड़ा सा पत्ते पर रख लिया जिसे अन्जनी के कान में डालकर हनुमान पैदा किए थे। जनाबे आला! यह शरीर की धातु विशेष "वीर्य" था। वीर्य का अर्थ बल या ओज यहां आपका नहीं चलेगा। पाखण्ड न रचकर सत्य को स्वीकार कीजिए आर्याभिविनय में **"निराकार ईश्वर न शरीर रखता है, न भोजन करता है और न रस–रक्त मांस आदि बनते हुए वीर्य धातु उत्पन्न होती है"** वहां **"वीर्य महिधेहि"** का अर्थ है– परमात्मा आप अतुल पराक्रमशाली हैं मुझे भी वैसा ही पराक्रम देवें इस प्रकार है। आपका जाल यहां भी फेल हो गया। राजा व्युषिताश्व की रानी का नाम हमने भद्रा लिखा था न कि मद्रा। क्या आप दर्जा आ के बच्चों के साथ पढ़ने वाले कोई चटसाली बच्चे हैं जो ऐसे आक्षेप ढूढ़ते है? आपका जो लेख आता है उसमें हम अनेक गलतियां दिखा सकते हैं। आपको यह भी नहीं मालूम की जीवात्मा से विहीन शरीर ही शव कहा जाता है। यदि जीवात्मा का संयोग रहता है तो वह शव नहीं कहा जाता महाभारत में लिखा है– **"सा तेन सुषुवे देवी शवेन भरषर्भ। त्रीण शल्वांश्चतुरो मद्राद सुतान भरत सत्तम।।"** (महाभारत आदि पर्व अध्याय १२० श्लोक ३६) हे भरत श्रेष्ठ! रानी भद्रा ने उस शव के साथ सोकर सात पुत्र पैदा किए। जिनमें तीन शल्व देश के और चार मद्र के राजा हुए। सारी जिन्दगी तो राजा, चुहिया भी रानी से पैदा नहीं कर सका, पर उनके शव से सम्भोग कर सात लड़के रानी ने पैदा करा लिए? यह पौराणिक गपोड़ा नहीं तो और क्या है? क्या मुर्दे में सम्भोग शक्ति तथा वीर्य रहता है? आप कैसे वैद्य सभा के प्रधान हैं जो इतना भी नहीं जानते हैं? मनोबल मुर्दे में नहीं रहता है। यह आपको जानना चाहिए। ग्रन्थकार ने **"शव"** शब्द लिखा है जीवित राजा नहीं लिखा है। आपका उत्तर व्यर्थ है। यदि राजा योगी था तो जीवित होने पर क्यों नहीं सन्तान पैदा कर सका? मरने पर तो शरीर विकृत हो जाता है, न कि उस लाख में कामोत्तेजना व गर्भाधान की ताकत पैदा हो जाती है ? इस संबंध में आपकी सारी बकवास एक मजाक है। कौशल्या का घोड़े से नियोग कराने की बात बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग १४ के श्लोक ३५ में इस प्रकार लिखी है– **"होताऽध्वर्यस्तथो उद्गाता हयेन समयोजयन्। महिष्या परिवृत्याथ बावातामपरांत था।"** इस पर आप पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र का बम्बई से प्रकाशित भाष्य देखें– तब होता अध्वर्यु व उद्धाताओं ने राज महिषी व परिवृति सहित वावाता को **"श्रत्रिय राज की वैश्या स्त्री वावाता और शुद्रा परिवृत्ति कही जाती है"** यज्ञीय अश्व के साथ नियोजित किया। इस श्लोक को आप छिपा गए हैं। इसमें घोड़े से कौशल्या के नियोग की बात स्पष्ट है। कैसे नियोग कराया गया है? इसकी विधि महीधर ने लिखी है कि रानी घोड़े के लिंग को पकड़कर निजयोनि में स्थापित करले। (देखिये– यजुर्वेद २३–२० पर महीधर भाष्य) इसमें आपको विधि तथा हमारा आक्षेप तो स्वीकार है। केवल बात इतनी सी है कि आप विधि को शास्त्रीय साबित करना चाहते हैं। हम पीछे लिख चुके हैं कि शतपथ तथा श्रोत सूक्त के आप द्वारा स्वपक्ष में प्रस्तुत प्रमाण प्रक्षिप्त तथा मिथ्या हैं। इस प्रकार हमने जो घोड़ाधान का दृष्टान्त दिया था वह प्रमाणित हो गया आप काट नहीं सके। मृतक घोड़े के लिंग से सम्भोग इसलिए कराया जाता था कि ताकि उसमें घोड़ा जीवित होने पर कहीं जोर से स्वेच्छा से कामातुर होकर एक दम प्रविष्टि न कर देवे। तथा आपने यह गलत लिखा है कि लिंग चाटने का विधान मत्स्य पुराण में नहीं है। देखिए प्रमाण इस प्रकार है– जब सुदेषादेवी दीर्धतमा ऋषि के सारे शरीर को ऊपर से चाटती हुई नीचे तक आई तो उसकी गुदा को छोड़ दिया और लिंग कों खूब चाटा उस पर दीर्धतमा प्रसन्न होकर बोला। **"प्राशितं यद्यद्ग्रेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते। तेन तिष्ठन्ति ते गर्भे पौर्ण मास्यामि वोडुराट्र।। तदंशस्तु सुदेशणाया ज्येष्ठ पुत्रो व्याजयत। अंग स्तथाक लिंगश्चपुन्ड्रः सुह्मस्तथैवच"**।। (मत्स्य पुराण अध्याय ४८–७५–७६) हे सुन्दर हास्य वाली,

तूने मेरी उपस्थेन्द्रिय को खूब चाटा है, इसलिए तेरा गर्भ ऐसा होगा जैसा पूर्णमांसी का चांद होता है। रानी के पुत्र हुआ, उसका लिंग खूब लम्बा व मोटा था। इस प्रकार यह प्रमाण कि सनातन धर्म में उपस्थेन्द्रिय को चाटने का विधान सन्तान पैदा करने का चालू था, सत्य प्रमाणित सिद्ध हो गया। आप काट नहीं सके हैं। **"इमन्ते उपस्थ........"** मंत्र विपक्षी के ही परममान्य गोभिल गृह्य सूत्र का प्रमाण है। यदि विपक्षी इसे गलत मानता है तो उसे घोषणा करनी चाहिए। यदि सत्य मानता है तो जो व्याख्या आपकी होगी वही व्याख्या हमारी भी समझें। शेष वर वधू परस्पर एक दूसरे की मूत्रेन्द्रियों पर पानी व शहद लगावें ऐसी कोई बात संस्कार विधि में नहीं लिखी है। झूठी बातें लिखने में आपको शर्म आनी चाहिये। **"गैयाधान"** के हमारे प्रमाण की पूरी कथा की संगति आप शतपथ से नहीं लगा सकेंगे। ब्रह्मा जी ने गौ से मैथुन करके अनेक सन्तानें पैदा करने का प्रमाण हम गत पत्र में दे ही चुके हैं। आप उसे मिथ्या साबित नहीं कर सके हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वह आपको स्वीकार है। आपने जो शतपथ १४–३–४–३ का प्रमाण दिया है उसमें ब्रह्मा का कोई उल्लेख नहीं है। वहां तो मनु की कथा दी है। शतपथ के १४वें काण्ड अर्थात् वृहदारण्यक उपनिषद में यह विवरण १–४–४ में दिया है। आपको इतना भी ध्यान नहीं है कि ब्रह्मा और मनु दोनों पृथक–पृथक थे। आपके द्वारा दिया गया प्रमाण मिथ्या है और **"गैयाधान"** का हमारा प्रमाण सिद्ध है। आप उसे काट नहीं सके हैं। आपके मान्य गीता प्रेस ने अपने उपनिषदांक में इस उपनिषद का भाष्य करते हुए पृष्ठ ४६३ पर मनु शतरूपा ने इसे सृष्टिरचना का विवरण लिखा है। आप वहां देख सकेंगे पुराण की कथा शतपथ के विवरण से भिन्न है कुछ भी हो गैयाधान का प्रमाण आपको स्वीकार है– यह स्पष्ट है यजुर्वेद ११–६० के मंत्र पर दयानन्द भाष्य में गाय बैल आदि पशुओं का उपभोग (उपयोग) करने का विधान है। उनसे मैथुन का विधान तो सनातन धर्म में ही हो सकता है। आपने कृष्ण और गोपियों के विषय पर शास्त्रार्थ की चुनौती दी है। पहिले प्रस्तुत विषयों पर निबट लीजिए जो आपके गले में फँदा बन कर अटक गये हैं फिर नए विषय इच्छानुसार चुन लेना जब आप सभ्यता पूर्वक लिखना कहीं सीख आवें! (सम्पत्ति भोग का अर्थ जैसे उसका उपयोग होता है, वैसे पशुओं के भोग का अर्थ उनका उपयोग होता है) चिकित्सा ग्रन्थों में शरीर विज्ञान, रोग विज्ञान तथा चिकित्सा भाग होता है। इनमें जो सत्य एवं ग्राह्य अंश होता है उसे हम स्वीकार करते हैं जो ऊटपटांग मिलावटी अंश बुद्धि विरूद्ध होता है उसे हम अस्वीकार करते हैं। जो प्रमाण आपने ज्वरादि की उत्पत्ति व रोग निवारण के अपने लेख में आगे दिए हैं वे सर्वथा कपोल कल्पित एवं मिथ्या हैं। वे भ्रम पर आधारित तथा पौराणिकों के द्वारा प्रक्षिप्त हैं वे हमें सर्वथा अमान्य है। संस्कार विधि में कहीं नहीं लिखा कि वर वधू विवाह से पूर्व सम्मिलित स्नान करें व एक दूसरे की मूत्रेन्द्रिय पर जल व शहद लगावें। ऐसी झूठी बात लिखकर आपने महामूर्खता का परिचय दिया है। इसके बाद आप पुनः गर्भाधान विधि पर आक्षेप करते हुए अपनी अज्ञानता तथा दूराग्रह का परिचय देते हैं। हम पूर्व पत्र में आपको बतला चुके हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित विधि वेद के **"रेतो–मूत्र"** मंत्र से समर्थित, बृहदाण्यक उपनिषद द्वारा प्रतिपादित, एवं आयुर्वेद जो वेद का उपांग है उससे अनुमोदित है। यहीं मनुष्यों के लिये प्रजा की उत्पत्ति के लिये सर्वोत्तम प्रकार है। आज सारा जोर लगाकर उसमें न तो कोई त्रुटि ही बता सके हैं, न उसे मिथ्या तथा वेद, शास्त्र, आयुर्वेद या किसी भी प्रमाण के विरूद्ध सिद्ध कर सके हैं, न जिन्दगी में कर सकेंगे। आप तो शतपथ को भी वेद मानते हैं, ब्रहदारण्यक उपनिषद उसी का १४वां काण्ड है। तब हमने मुंह के सामने मुंह करके संभोग करने का प्रमाण गत पत्र में आपको आपके मान्य वेद से भी देकर आक्षेप करने की गुन्जायश नहीं छोड़ी है। क्या आपको शतपथ पर विश्वास नहीं रहा है? आपने पौराणिक संभोग विधि नहीं बताई, अच्छा होता कि उस पर प्रकाश डाल देते। पर शर्म आ गई होगी क्योंकि आप लोग तो घोड़े गधों से गर्भाधान महीधर की आज्ञानुसार कराते

हैं। आपने सुश्रुताचार्य को नरकाचार्य लिखा है। यह भी आपकी असभ्यता है। गीता में आपके अवतार श्रीकृष्ण जी ने अपने को **"द्यूत छलयतामस्मि"** (गीता १०–३६) अर्थात् "छलियों दुष्टों में जुआ मैं हूँ" लिखकर स्वयं को सबसे निष्कृष्ट जुआ बताया है तो आपने स्वयं को नंगाचार्य लिखा है। दोनों में पूरी समानता है। आप बहुत ही कमजोर व्यक्ति सिद्ध हुए हैं जो हमारे चन्द इन्जैक्शनों से आप पागल हो गए और आप जहालत के मार्ग पर उतर आए हैं। हमने सुश्रुत का प्रमाण गत लेख में यह दर्शाने को दिया था कि बालक को १०वें दिन धाय को माता दे देवे। अपना दूध ६ दिन पिलावे। यह हमने आयुर्वेद से प्रमाणित किया था। सुश्रुत ग्रन्थ के लेखक के दिनों में हथेली पर घृत+मधु को पीने की बालक को सामर्थ्य होती थी, किन्तु अब नस्लें कमजोर हो जाने से स्वामी दयानन्द जी ने कम मात्रा में पिलाने की बात लिखी है। यह कोई विरोध या हानि की बात नहीं है। आपका आक्षेप व्यर्थ है। आपने जो मंत्र संस्कार विधि में जात कर्म तथा नामकरण प्रकरण से उद्घृत किए हैं वे तो पारस्कर–आश्वालयन गृह्यसूत्र तथा वेद के हैं जो कि आपके भी मान्य ग्रन्थ हैं। तब आपको आक्षेप का स्थान नहीं है। धाय को बालक १०वें दिन देने का विधान हमारे गत पत्र से सप्रमाण सिद्ध है। आप काट नहीं सकते है। **"यदि बालक का नाम ११वें दिन न रक्खा जावे तो ११वें या १०१वें दिन या दो वर्ष के आरम्भ में जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो, नाम धरे।"** संस्कार विधि की इस व्याख्या से धाय को १०वें दिन बालक को पालने के लिए देने का कोई विरोध विपक्षी सिद्ध नहीं कर सके है। नाम बाद को भी रक्खा जा सकता है। विपक्षी की बकवास व्यर्थ है। मनु तथा चरकादि में पौराणिक प्रक्षिप्त अंश हमारे मान्य नहीं हैं। कल्पित देवताओं को प्रमाण करने वाले जैसे स्थल पौराणिकों के स्पष्ट प्रक्षेप है जो व्यवस्था गृह्यसूत्रों के आधार पर संस्कार विधि में दी है वही सत्य है। आप काट नहीं सके हैं न उसे किसी भी वेद प्रमाण के विरूद्ध कर सके हैं। अतः यह आपका आक्षेप अनर्गल सिद्ध हो गया है। आर्य समाज के मान्य प्रमाणिक ग्रन्थों के विषय में हम गत पत्रों में स्पष्टीकरण कर चुके हैं। कि हम चारों वेदों को ही स्वतः प्रमाण मानते हैं शेष को परतः प्रमाण मानते हैं। हम अन्य ग्रन्थों की उचित बातों को स्वीकार करते हैं। और गलत बातें आपके लिए छोड़ देते हैं। अतः आपके द्वारा दिए गये प्रमाण प्रक्षिप्तांश होने से हमको मान्य नहीं है। वे बुद्धि विरूद्ध तथा ऊटपटांग हैं। मानवेतर किसी चैतन्य देवता का अस्तित्व सिद्ध नहीं है। वह पौराणिक मिथ्या कल्पना कर आधारित तथा बाद को ग्रन्थ में जोड़ दिए गए है। **"आरोग्य प्रकाश"** के आपके द्वारा दिये गये प्रमाण की उपेक्षा **"चरक व सुश्रुत"** के प्रमाण अधिक मूल्य रखते हैं। आरोग्य प्रकाश में भी धाय रखने का समर्थन किया गया है। देखो पृष्ठ ३३२ आठवाँ संस्करण ! आपने योनि संकोचन का नुस्खा हमसे गत पत्र में पूछा था। उस पर हमने गरुड़ पुराण में व्यासजी के योनि संकोचन व पर नारी वशीकरण के व्यभिचार प्रचारक अनुभूत प्रयोग दिखाकर यह बताया था कि ऐसे नुस्खे आपके शास्त्रों में लिखे मौजूद हैं, वह देख लेवें। चन्द नुस्खे हमने उद्घृत भी कर दिए थे। उन प्रमाणों से आपकी बोलती बन्द हो गई है। पुराणाध्ययन शून्य महन्त जी ! आपका यह लिखना कि **"व्यासजी पुराणों के कर्ता नहीं किन्तु सम्पादक हैं"** सर्वथा उन्मत्त प्रलाप है। आपको सनातनी सिद्धान्तों की भी जानकारी नहीं है। देखो प्रमाण–**"अष्टादश पुराणनि कृत्वा सत्यवती सुतः"** देवी भागवत १–३–१७ अर्थात् १८ पुराणों को व्यास जी ने बनाया था। इसमें उनको पुराणकर्ता लिखा है। सारे पुराणों पर **"कृष्ण द्वैपायन व्यास प्रणीतम्"** अथवा **"श्री मन्महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास रचितम्"** लिखा होता है किसी पर भी **"व्यास सम्पादित"** नहीं लिखा होता है। आपको जानकारी तो कुछ है नहीं, व्यर्थ नाम चाहने को हमसे भिड़ रहे हो। न्यायदर्शन ४–१–६२ के सूत्र में पुराण का कोई उल्लेख नहीं है। सूत्र निम्न प्रकार है **"समारोपणादातमन्यप्रतिषेधः"**। इसमें पुराण का उल्लेख कहां है? किसी पोप टीकाकार ने अपनी ओर से टीका में कुछ घुसेड़ दिया हो तो वह मान्य नहीं हो सकता है। पुराणों में ईसा, मूसा, नूह,

अकबर, तुलसीदास, तैमूरलंग, कबीरदास, रैदास, शिवाजी, नादिरशाह, अंग्रेजों का भारत में आना, कलकत्ते को राजधानी बनाना तथा १०वें लार्ड तक का इतिहास भरा पड़ा है। जैन व बौद्धों की निन्दा की है। उन्हें व्यास कृत या ब्रह्मा जी द्वारा सृष्टि के आदि में दो अरब वर्ष पूर्व का बना बताना महज पागलपन है। आपको तो यह भी ज्ञान नहीं है कि पुराणों के सिद्धान्त से हर द्वापर में सदैव नए–नए पुराण बनने की बात पुराणों में लिखी है। यथा– **"सर्व व्यस्ताश्च वेदाश्च द्वापरे द्विजा निर्मितानि पुराणानि अन्यानिचतत् परम्"।** (शिवपुराण वायु सं० अध्याय १–३५) अर्थात् हर द्वापर में नए पुराण बनते हैं, फिर वे बाद में नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार १००० चतुर्युगी में १००० द्वापर आते हैं और १००० बार पुराण सृष्टि काल में बनते हैं यह शिव पुराण की मान्यता व घोषणा है जब कि ब्रह्मा जी को आप सृष्टि के प्रारम्भ में प्रथम चतुर्युगी (प्रथम मन्वंतर) में होना मानते हैं आपका उक्त लेख सनातन धर्म पर खुला प्रहार तथा उसके विरूद्ध है। मत्स्य पुराण का लेख जो आपने दिया है वह शिवपुराण तथा भविष्य पुराण के विरुद्ध होने से कोई मूल्य नहीं रखता है। देखिए पुराण बनाने वालों के नामों की सूची भविष्य पुराण में निम्न प्रकार दी है–

पुराण बनाने वालों के नामों की सूची :–

पराशरेण रंचित पुराणं विष्णु देवतम्। शिवेन रचितं स्कान्दं पाद्मं ब्रह्म मुखोद्भवम्।। १०।। शुक्र प्रोक्तं भागवतं ब्राह्मं वैब्रह्मणा कृतम्। गारुड़ हरिणा प्रोक्तषड् वै सात्विक संभवाः।। ११।। मत्स्य कूर्मो नृसिंहश्च वामनः शिव एव च। वायुः एतत् पुराणानि व्यासेन रचितानि वै।। १३।। आग्नेयं अंगिराश्चैव जनयामास चोत्तमम। लिंग ब्रह्माण्डके चापितण्डिना रिचते शुभे।। १४।। महादेवेन लोकार्थे भविष्यं रचितं शुभम्। तामसा षट् स्मृताः प्राज्ञैः शक्ति धर्म परायणा।। १५।। अर्थ– पाराशर मुनि ने विष्णु पुराण बनाया। शिवजी ने स्कन्द पुराण बनाया। पद्म पुराण ब्रह्मा के मुख से निकला। शुक्राचार्य ने भागवत् तथा ब्रह्मा ने ब्रह्म पुराण बनाया। हरि ने गरुड़ पुराण कहा। यह छः सात्विक पुराण हैं व्यास जी ने मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वामन शिव तथा वायु यह छः पुराण बनाए। यह राजस पुराण हैं। मार्कण्डेय पुराण मार्कण्डेय मुनि ने बनाया अग्नि पुराण अंगिरा ऋषि ने बनाया। लिंग और ब्राह्माण्ड पुराणों को तण्डि मुनि ने बनाया था। महादेव जी ने लोक के कल्याण के लिए भविष्य पुराण बनाया। ये छः पुराण तामस पुराण हैं। ऐसा शक्ति धर्म परायण विद्वान कहते हैं। इस प्रकार पुराण ही स्वयं १८ पुराण बनाने वालों के नाम बता रहा है। तथा इनके विरूद्ध देवी भागवत सभी पुराणों को व्यास कृत बता रहा है। ऐसी दशा में महन्त जी का यह दावा बिल्कुल झूठा हो जाता है कि १८ पुराणों का व्यास जी ने सम्पादन किया था। व्यास जी को ऐडीटर साहब बताने पर महन्त जी को शर्म आनी चाहिए। यह दावा भी झूठा हो जाता है कि जिन ऋषियों ने वेद बनाए उन्हीं ने पुराण बनाए थे। इनमें से एक भी ऋषि मुनि वेद कर्त्ता नहीं था। इन सबने पूर्व भी वेद विद्यमान थे। यह शर्म की बात है कि जो महन्त जी ने भागवत तक नहीं पढ़ा है जिसमें लिखा है– **"इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम। उत्तम श्लोक चरितंचकार भगवानृषिः।।** (भाग १–३–४०) अर्थात्– वेदों से सम्मत इस भागवत पुराण को व्यास जी ने बनाया था। पुराण व्यास को कर्त्ता बताता है पर विपक्षी उन्हें ऐडीटर साहब लिखता है। अच्छी मजाक है। ब्रह्म पुराण कलकत्ता संस्करण खंड १ पृष्ठ १६ पर भी **"अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः"** तथा अर्थ में **"अठारह पुराणों के रचयिता भगवान व्यास जी हैं"** लिखा है। ऐसी दशा में विपक्षी का दावा मिथ्या प्रलाप है। विपक्षी को पौराणिक सिद्धान्तों की खाक भी जानकारी नहीं है। विपक्षी रमाबाई का नाम लेकर महर्षि दयानन्द जी के पावन चरित्र पर लांछन लगाता है। महर्षि के खंडन मंडन से चिढ़कर पौराणिकों ने उनको बदनाम करने के लिए मूर्खता पूर्ण ट्रैक्ट छापे थे, उनको १८ बार विष भी दिया

गया था जो कि ऐतिहासिक तथ्य है। इस बुद्धि में हिमालय को वैद्यराज होने का बड़ा भारी गर्व है। पर उसे सौभाग्य शुष्ठी पाक के योग में **"स्त्रीणां स्तन दाढ्यकां परम"** तथा **"योनिदोषहरम्"** शब्द नहीं दीख पड़ते हैं जिनका अर्थ **"स्तन दृढ़ करने वाले"** तथा **"योनि दोष हर"** है। यही आपकी योग्यता है? जिस पर आपको नाज है। जिस भ्रष्ट वैष्णम पन्थ में मनुष्य का वीर्य पीने का विधान तथा समर्थन हो उस भ्रष्ट सम्प्रदाय के महन्त व आचार्यो की बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। भागवत ५–२६–२६ में लिखा है **"अस्त्वि हवै सवर्णा भार्या द्विजो रेतः पाययति काम मोहितस्तं पाप कृत–ममुत्र रेतः कल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति"** अर्थात्– जो द्विज कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्या को वीर्यपान कराता है उसे मरने के बाद यमदूत वीर्य की नदी में डालकर वीर्य पिलाते हैं। अर्थात् द्विज सवर्णा भार्या को छोड़कर असवर्णा भार्या को तथा शूद्र अपनी भार्या को वीर्यपान करावे तो पाप नहीं है। यह अर्थापत्ति से सिद्ध है। यदि ऐसा नहीं था तो मानव मात्र को स्त्रीमात्र को वीर्य पिलाने का निषेध क्यों नहीं किया गया ? यह है आपका वैष्णवी धर्म ! रामचन्द्र जी को धाय ने पाला पोषा था, उसका प्रमाण आपने पूछा है। आप बाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड सर्ग ७ में श्लोक ७–१०–१२ देख सकेंगे हमने लिखा था कि देवी भागवत ४–२०–४१ में आपके अवतार राम को मूढ़ (महा मूर्ख) लिखा है (देखो श्लोक हमारे पत्र ३०–८–६५ के पृष्ठ ७ पर)। उसे देखकर विपक्षी को कष्ट नहीं होता है। वह ऐसे भ्रष्ट पुराण को धर्म शास्त्र मानता है। जहां तक हमारा सम्बन्ध है हम राम–कृष्ण आदि किसी भी महापुरूष को दूषित नहीं मानते हैं। **"धूर्तः पुराण चतुरैः"** इस देवी भागवती ५–१९–१२ के श्लोक के भाष्य में उक्त पुराण के प्रसिद्ध भाष्यकार श्री मन्नालाल अभिमन्यु एम.ए. बनारस ने **"पुराण बनाने में चतुर धूर्तों ने"** यही अर्थ किया है। अन्य भाष्यकारों का भी यही अर्थ है। अतः आपका कुतर्क अर्थ बदलने का मिथ्या होने से अमान्य है। पुराण के प्रमाण से भी पुराण धूर्तों के लिए बनाए ग्रन्थ सिद्ध होने का त्याज्य हो जाते हैं। पुराणों द्वारा श्रीकृष्ण जी के निर्मल चरित्र पर गन्दे व्यभिचार के लांछन लगाये जाने तथा शिवलिंग पूजा पर हम बहुत कुछ पुस्तकों में पूर्व हो लिख चुके हैं। (देखिये अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित– **"शिवलिंग पूजा क्यों?"** यदि सामर्थ्य हो तो उत्तर प्रकाशित करने का साहस दिखावें। व्यर्थ बकवास करने का कोई लाभ नहीं हैं, । मिस्टर महन्त जी! आपको तो संस्कृत का साधारण बोध भी नहीं है। ऋग्वेद १–१०–४–८ मन्त्र के **"मानः प्रिया भोजनानि प्रमोषी"** पद के साधारण से अर्थ भी नहीं समझ पाते हैं कि– हे परमेश्वर ! हमारे प्रिय भोज्य वस्तुओं को हमसे मत चोरवावे अर्थात् अप्रकट करे वा करवावे। इसमें आक्षेप की क्या बात है ? जो आपने इस प्रमाण को देकर गन्दे दिमाग का परिचय दिया है। इसी प्रकार आपने ऋग्वेद ६–५५–५ का निम्न मन्त्र का टुकड़ा देकर अपनी दुर्बुद्धि का परिचय दिया है। इसका उत्तर तो हम आपको दो पौराणिक भाष्यकारों के अर्थ देकर पहिले ही दे चुके थे, तब फिर आपने पुनः वही आक्षेप क्यों दिया है ? अब फिर अर्थ सुन लें। **"मातुर्दिधिषुमब्रव स्वसुर्जारः शृणोतृ नः। भ्रातेन्द्रस्य सख्यमम्"**। अर्थात्– जो **(स्वसुः जारः)** रात्रि व उषा को नष्ट करने वाले सूर्यवत् भगिनी तुल्य प्रजा को **(जारः)** शासन के मार्ग में चलाने वाला और **(इन्द्रस्य सखा)** अग्नि या विद्युत के मित्र वायु के समान भरण पोषण करने वाला है, उसको मैं **(मातुः)** ज्ञान देने वाली विद्यवा माता के समान मान या मापने योग्य भूमि को **(दिधिषुम्)** धारण करने में समर्थ **(अब्रवम्)** कहता हूं, वह **(न शृणोतृ)** हमारा वचन श्रवण करे। इस वेद मन्त्र में तो कोइ आक्षेप योग्य बात नहीं है और न इसे देकर विपक्षी श्रीकृष्ण को गोपाल सहस्र नाम श्लोक १३७ में **"चार जार शिखामणि"** बताये जाने के औचित्य को सिद्ध कर सका है। आप बजाय कृष्ण के दोष निवारण के उनको वेद के गलत प्रमाण देकर डबल व्यभिचारी साबित कर रहे हैं। क्या ऐसे ही शास्त्रार्थ होता है ? आगे आपने हमारे गत लेख में विष्णु, ब्रह्मा इन्द्रादि के परनारी लम्पट होने के पुराणों के प्रमाणों को बिना कान पूंछ हिलाये स्वीकार कर

लिया है, उनका कोई जबाब आपसे बन ही नहीं पड़ा है। शिवजी के कामिनी पाशों में फंसे रहने के हमारे प्रमाण को भी आपने स्वीकार किया है, साथ ही वेद मन्त्र के अर्थ न समझते हुए उसने हमारे प्रहार की पुष्टि भी कर दी है। आप अपने शिवजी को निश्कलंक साबित नहीं कर सके हैं। जो वेद मन्त्र आपने दिया है, अच्छा होता यदि आप उस पर किसी विद्वान का भाष्य भी देख लेते तो यह मन्त्र पेश न करना पड़ता। अब आप अपने दिए हुए वेद मन्त्र का अर्थ भी हमसे सुन लेवें। और पश्चाताप करें कि आपने गलत मन्त्र पेश किया है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है– **अनस्थाः पूताः शुद्धाः शुचयः शुचिमपियन्ति लोकम्। नैषां शिश्नं प्रदहितं जात वेदाः स्वर्गे लोके बहुस्त्रेणमेषांम्।।** (अथर्ववेद ४–३४–२) अर्थ– **(अनस्था)** जिनकी हड्डियां नहीं दीख रहीं जिनकी देह पुष्ट मांसल है, जो कंकाल मात्र शेष नहीं है **(पूताः)** बाहर भीतर से पवित्र हैं **(पवनेन शुद्धाः)** व्यायाम प्रणायाम द्वारा स्वस्थ हुए शुद्ध हुए **(शुचयः)** उज्जवल लोक ही इस **(शुचिम्)** पवित्र **(लोकम्)** गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का फल यह होता है कि यद्यपि **(स्वर्गे लोके)** परम सुख की ओर ले जाने वाले गृहस्थाश्रम में **(एषाम्)** इन सद् ग्रहस्थों का **(स्त्रैणाम्)** स्त्री वर्ग **(बहु)** बहुत होता है अर्थात् वह चारों ओर से पड़ोसियों की कन्याओं, युवती पत्नियों–निकट बन्धुओं की लड़कियों आदि से घिरे रहते हैं। परन्तु **(एषाम्)** इनके **(शिश्नम्)** उपस्थेन्द्रिय को **(जातवादाः)** परमात्मा कामाग्नि अथवा रोगाग्नि से **(न)** नहीं **(प्रदहन्ति)** दग्ध करता है।।

इस वेद मंत्र से शिवजी के **"नित्य कामिनी पाश संयुतः प्रेयसी"** औरतों की बाहों में कसे रहने का समर्थन तो नहीं हो सका है। तब आपने इस प्रमाण को देने का दीवानापन क्यों किया ? यह आप ही समझेंगे। यहां भी आप शिवजी के व्यभिचारी होने की बात को काट न सके हैं, मत्स्य पुराण में पारवती ने शिवजी को **"परनारी लम्पट"** शिवजी से नहीं कहा था, वरन् द्वारपाल को आदेश दिया था कि क्योंकि **"यह शिव परनारी लम्पट है बदमाश है अतः जब तक मैं वापिस न लोटूं कोई औरत इसके पास न आने पावे"**।. ......इसमें तो शिव की असलियत खोली गई है न कि क्रोधावेश के ये शब्द हैं। बदमाश औरतों से शिवजी न मिल पावें इसकी रुकावट का प्रबन्ध किया गया था। यह कथा मत्स्य पुराण अध्याय १५४–३१ में दी है जिसे आप काट नहीं सके हैं। अतः शिवजी के चरित्र पर पुराणों के यह निन्दात्मक प्रहार के हमारे सारे ही प्रमाण सत्य सिद्ध है। अत्रि स्मृति हमने पढ़ी है, हमारे पास है परन्तु तुम्हारे पूर्वजों ने शायद शक्ल भी उसकी नहीं देखी होगी। देखो श्लोक ३८३ व ३८४ पृष्ठ ६६ पर, प्रकाशक तथा भाष्यकार पं० भीमसैन जी इटावा वाले। श्लोक हम पहले पत्र में दे चुके थे। अब उन पर भीमसैन जी की टीका देखो–**"ज्योतिषी–अथर्ववेदीय–कीर (जहां तहां) कण्ठ से जो तोते की तरह उपदेश करें (जैसे आप)– पुराण के पढ़ने वाले इतने ब्राह्मणों को श्राद्ध यज्ञ और महान दान में कदाचित ही शामिल करे अर्थात् औरों के अभाव में ही इनको अधिकार है।। ३८३।। श्राद्ध में पूर्वोक्त ब्राह्मण को जिमाने से पितर घोर नरक में जाते हैं तथा दान निष्फल होता है, और यज्ञ में फल की हानि होती है। इसलिये पूर्वोक्त ब्राह्मणों को तज (त्याग) दे"**।। ३८४।। पाखण्डाचार्य महन्त जी। आप तो सर्वथा निर्लज्ज ही बन गये हैं जो बाप दादों तक भी पहुंचाने लगे हैं। कहीं आप पागल तो नहीं हो गये? जनाब, यह शास्त्रार्थ है घबराइये नहीं, रोइये नहीं। मिस्टर सर महन्त जी। जूता मारने का अर्थ निन्दा करना होता है। शाब्दिक जूते (निन्दा के वचन) पुराणों से हमने जो पेश किये थे वे आपको सभी सत्य स्वीकार हैं। चमड़े का जूता तो लगने पर घटना समापत हो जाती है परन्तु ग्रन्थों में निन्दा छपने पर युगों तक की निन्दा होती है और वह चमड़े के जूते से भी भयानक प्रभाव रखती है। आपने वाक (वाणी) के जूतों के प्रभाव को समझा ही नहीं है। हमने यह प्रमाण विवशता में आपको गाली– **"दयानन्द के मुंह पर तमाचा"** के जबाब में आपका दिमाग ठीक करने को चेतावनी रूप में दिये थे। जो सब आपने सर झुका कर

स्वीकार कर लिये हैं। रही पट चित्रों पर जूता मारने की बात ! सो महाराज कलियुगी पोप जी ! आपका चित्र मेरे पास है यदि मैं उस पर पांच सात जूते या तमाचे मार दूंगा तो आपको उनमें से कितने वहां टौंक में आपके सर पर ठिकाने पर लगते अनुभव होंगे ? क्या आप बता सकेंगे ? बस यही बात इतने में आप समझ लेवें। मूर्ति या चित्र पर जूते मारना कला का अपमान करना है। उसका उस चित्र से सम्बन्धित पात्र से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। आशा है सोच कर बात लिखना सीख लेंगे। हमने जो जो प्रमाण वर्तमान शास्त्रार्थ में आपको लिखे हैं आपसे एक भी उनमें से नहीं कट सका है। **"माधवाचार्य को डबल उत्तर"** नामक पुस्तक में प्रमाण तो आपका अज्ञान बड़ी मात्रा में दूर करने को आपको देखने को लिखा था। यदि अभी अज्ञान शेष होवे तो निम्न प्रमाण देखकर उसका निवारण कर लेवें। चोटी सहित बाल कटाने का अधिकार अत्याधिक उष्ण प्रदेश के लोगों को दिया गया है। वह विशेष परिस्थिति में है। अधिक बालों से सर में गर्मी की ऋतु में गर्मी बढ़ जाने की बात प्रत्यक्ष है जो दिमाग के लिए हानिकारक होती है। आप कैसे वैद्य हैं जो इतना भी नहीं जानते हैं ? विशेष अवस्थाओं में सशिखा सर मुंडाने के कई प्रमाण हमने तारीख ३०–८–६५ के पत्र में दिये थे। आपसे उनको स्पर्श करने का भी साहस नहीं हुआ और पुनः वही प्रश्न पेश कर दिया। ताण्ड्यब्रह्मण का प्रमाण गत लेख में पुनः देख लें। कुछ अन्य प्रमाण हमारे पक्ष में दिये जाते हैं–

"यथा गोत्र कुल कल्पम्"।। गोभिलगृह्यसूत्र २६–२५।। इस पर सामश्रमी टीका है– **"गोत्रकुलानुरूप सशिखं शिखा शून्यं वा पंच चूडं वा"**। आदि।.......... अर्थात् गोत्र कुल के अनुसार पांच या तीन शिखा या शिखा रहित अथवा शिखा सहित मुण्डन करावे।।..............(इसमें शिखा रखवाने का विधान है)। **"इह मुण्डो भव, जटिलो भव, शिखो भव यल्लिंगो यत्रोच्यते।"** (महाभाष्य) अर्थात्– तू यहां शिखा रहित हो, जटाधारी हो, शिखाधारी हो, जिसका चिन्ह यहां कहा जाता है। **"सशिखं कृत्वा वृतं कुर्यात्ः। हविष्यं भोजयेदन्नं, ब्राह्मणान सप्त पंचवा"** (गौतमस्मृति अध्याय १) शिखा सहित मुण्डन करा ले और शान्त चित्त होकर वृत करे। **"मुण्डः शिखी वा वर्ज्जयेज्जीव वधम्"**।। (गोतम स्मृति अध्याय ३–११) अर्थात्– शिर के सब बाल मुण्डवाया करे अथवा केवल चोटी रक्खे तथा जीवों की हिंसा न करे। **"यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव"** यजुर्वेद १७–४८। इस पर उव्वट भाष्य देखें– यथा **"कुमारा अदृष्ट परिकरिणः विगत शिखा सर्वमुण्डः ततमर्थ संनिपतेयुरे वं सम्पतन्ति तत्रेत्यर्थः"**।।..........इसमें सर्वमुण्डित शिखा रहित कुमारों का उल्लेख होने से चोटी कटाना कोई पाप कर्म नहीं रह गया है। **"कुर्यात्तस्य शिखाच्छेदः"**।। शिवपुराण वायु० सं० उत्तर खण्ड अध्याय १८–३८–३६।। इस वाक्य में संस्कार कराते समय शिखा कटाने का आदेश है आगे और देखिये– गोभिल गृह्य सूत्र १०–४० में सामश्रमी की टीका निम्न प्रकार है– **"ब्रह्मचारी केशान्तान कारयते। सर्वांग लोमानि संहारयेत"** ....पर टीका– **"ब्रह्मचारी ब्रह्म वेदः तद् ग्रहणाचार विशिष्टाः आद्याश्रमी यदैव केशान्तान कारयते तदैव सर्वाणि अंग लोमानि संहारयते। कक्ष वक्षोपस्थ शिखा केशापिवापयेदित्यर्थः।"** ....इसमें शिखा कटवाने का आदेश है। कात्यायन स्मृति २५–१४ का श्लोक तथा पौराणिक भीमसैन की टीका देखें–यथा– **"सशिखं वपनं कार्य मास्नानद् ब्रह्मचारिणा। आशरीर विमोक्षाय ब्रह्मचर्य न चेद्भवेत्।।** पौराणिक टीका इटावा की– यदि जीवन भर के लिये नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण न किया हो तो समावर्तन संस्कार होने पर्यन्त ब्रह्मचारी को शिखा सहित मुण्डन सदा कराना चाहिये। आपका कुतर्क इस सनातनी भाष्य से कट जाता हैं यही सत्यार्थ है। इन प्रमाणों के अतिरिक्त कई प्रमाण हम गत पत्र में भी दे चुके हैं। उन्हें भी देख लेवें।

उपरोक्त प्रमाणों से जो आपके परममान्य ग्रन्थ हैं ऋषि दयानन्द की अत्युष्ण प्रदेश में दिमाग को

गरमी से बचाने के लिये चोटी सहित सर के सारे बाल कटा देने की व्यवस्था सर्वथा वेद शास्त्र सम्मत सिद्ध है। आपका आक्षेप व्यर्थ तथा अज्ञानता पूर्ण है।........ कात्यायन में परस्पर विरूद्धता का दोष हो तो यह जिम्मेवारी हमारे ऊपर नहीं है। यह तो सनातनी ग्रन्थों पुराणों में बहुधा मिलता है। पर हमारा पक्ष तो पूर्णतः सिद्ध हो चुका है। आपने एक भी बात वेद के विरूद्ध अपने दावे के अनुसार सिद्ध नहीं की है। हमने कात्यायन स्मृति में गोवध का दृष्टान्त दिया था, विपक्षी उससे इन्कार करता है। अतः श्लोक देते हैं। "........**क्षालनं दर्भ कंर्च्चेन सर्वत्र स्रोत सांयशोः। तूष्णीमिच्छा ऋमेणस्या द्वापार्थे पार्णदारूणी।। १।। सप्ततान्मूर्धन्यानि तथा स्तन चतुष्टयम्। नाभि श्रोणिरपानंच गौ स्रोतांसि चतुदर्श।। २।। क्षुप्तो मांसावदानार्थः कृत्स्नास्विष्टकृदावृता। वृपामादायजुहूयात्तत्र मन्त्र समापयेत्।। ३।।** इत्यादि (कात्यायन स्मृति अध्याय २८) अर्थ– यज्ञ सम्बन्धी पशु के इन्द्रिय वा छिद्रों का दाभ के कूंचे से अपनी इच्छानुसार क्रम से बिना मन्त्र पढ़े प्रक्षालन करे। और वपा श्रमणी नामक पात्र (जिसमें चरबी पकाई जाती है) ढाक के पत्ते वा काष्ट की होती है उसमें चरबी गाय की इकट्ठी करे। गौ के सिर में १४ छिद्र होते हैं। सात ऊपर, शिर में ४ तथा थन, नाभि–योनि व गुदा गौ मांस के टुकड़े करने को छुरा होता है। प्रधान कर्म करने के बाद चर्बी लेकर सब स्विष्टकृत पर्यन्त होम करे। आगे निम्न प्रमाण देखें–

हृज्जिह्वा क्रीड मस्थीनि यकृद वृक्कौ गुदंस्तनाः। श्रोणि स्कन्ध सटा पार्श्व पश्वंग नि प्रक्षते,।। ४।। एका दशानांगनामिव दाननिसंख्यया। पार्श्वस्य वृक्क सक्थ्नोश्च द्वित्वा दाहुश्चतुर्दश।। ५।। चरितार्थाश्रुति कार्या यस्मादप्यनुकल्पशः। अतो अष्टर्च्चेन होमः स्याच्छाग पक्षे चरावपि।। ६।। अवदानानि यावन्ति क्रियेरन प्रस्तरे यशोः। तावतः पायसान् पिण्डान् पश्वभावेपि कारयेत्।। ७।। (कात्यायनस्मृति अध्याय २८)।।

अर्थ– हृदय, जिव्हा, गोड़, हड्डी, जिगर, वृषण, गुदा, स्तन, श्रोणि, कन्धे और सटा के दोनों पार्श्व पशु के अंग कहते हैं।। ४।। इन ग्यारह अंगों के टुकड़े लेखानुसार गिनती से होते हैं। और पार्श्व, वृषण और सक्थी (जांघ) ये दो–दो होते हैं। इससे पशु के १४ अंग कहे हैं।। ५।। प्रत्येक कल्पोक्त कामों में श्रुति को चरितार्थ करना चाहिये।। ६।। यज्ञपशु के अंगों के जितने टुकड़े प्रस्तर कुशों पर करके रखे जायें उतने ही खीर के पिण्ड यदि पशु न हों तब भी करावे।। ७।। यहां गौ को काट कर उसके १४ खंड करके खीर के साथ हवन करने का विधान स्पष्ट है, जो विपक्षी सच्चा सनातनी होने से अपने मठ के वैष्णव मन्दिर में सदा करता होगा तथा परशाद रूप में गौ मांस खाता भी होगा। आपके सातों प्रश्नों के उत्तर हमने दे दिया है। आपके प्रश्न का उत्तर, कि विवाह की तिथि कैसे निश्चित होगी ? हम पहिले लेख के उत्तर में दे चुके हैं। आप स्वामी जी के विधान को वेद के किसी भी मन्त्र के विरूद्ध सिद्ध नहीं कर सके हैं। गर्भिणी के अपने मुंह को घृत से भरे पात्र में देखने का वैज्ञानिक उत्तर जो हमने तारीख ३०–७–६५ के पत्र में दिया था वह आज तक भी आप से कट नहीं सका है और न आप किसी वेद मन्त्र को पेश करके उसका निशेध दिखा सके हैं। तारीख ३०–८–६५ के पत्र में हमने कोई नया प्रश्न नहीं किया था। हमने तो विपक्षी को यह बतलाया था कि वेद विरूद्ध किसी बात को सिद्ध करने के लिये वेद मंत्र पेश करके विरूद्धता दिखानी चाहिये। दृष्टान्त रूपेण हमने बताया था कि स्वामी दयानन्द जी के सभी ग्रन्थ स्वतः वेदानुकूल सिद्ध हैं क्योंकि विपक्षी वेद विरूद्धता नहीं दिखा सका है। भविष्य पुराणों की कथा के नायक कृष्णजी १६००० रानियों वाले, साम्ब के पिता आपके अवतार श्रीकृष्ण जी थे। दूसरा कोई कृष्ण नहीं था। देखिये– "**श्रीकृष्ण उवाच– मम पत्नी सहस्त्राणि संति पाण्डव षोडश। रूपौदाय गुणो पेता मन्मथायतनाः शुभा।। ३।। जल क्रीड़ा विहारेषु पुरा**

सरसि मानसे। (भविष्य पुराण उत्तर पर्व अध्याय १११) तस्मिन्न इति देवोऽपि सहान्तः पुरि कैन्द्रनैः अनुभूय जल क्रीड़ां पानगां सेवतेनरः।। ६७।। भूषिता वर स्त्रीयां चार्व मीनां विशेषतः ताभिसंपीयते पामं शुभ गन्धान्वितशुभम्। एतस्मिन्नन्तरे बुद्धा मध्यपानात्ततः स्त्रियः। उवाच नारदं साँम्वे साम्वोत्तिष्ठ कुमारक।।२।। इत्यादि भविष्य ब्राह्म० अध्याय–७३।। अर्थात्– श्रीकृष्ण जी औरतों के साथ शराब पी रहे थे। श्रीकृष्ण जी की पत्नियां शराब में मस्त थी। नारदजी वहां पर गये। साम्ब भी था इत्यादि कथा विस्तार से उक्त स्थनों पर पुराण में दी है। अतः आपका श्रीकृष्ण को कोई **"अन्य (व्यक्ति) श्रीकृष्ण"** बताना आपके महापाखण्ड की बात है। भागवत १०–६७–१० में बलराम ने शराब पीकर मदविह्वल होने नशे में लीन होने का प्रमाण साफ लिखा है। बम्बई की टीका देख लेवें। आपको अर्थ करना भी नहीं आता है। गोभिलगृह्यसूत्र २८–३५ के प्रमाण की भूत कालिक घटना चोरी कटाने में दोष नहीं, इसका प्रमाण उपस्थित करती है जो आपको स्वीकार्य है।.. ......वेद का **"विशिखा"** पद **"शिखा रहित"** बालकों के होने का प्रमाण उपस्थित करता है। हमारा उस प्रमाण से यही तात्पर्य है जो आपने भी मान लिया है।.......भागवत में बलराम जी के वारुणी (शराब) पीकर मद विह्वल होकर गाने का उल्लेख है, वह भी मस्त औरतों के मध्य में। वहां शराब का उल्लेख स्पष्ट है तथा सामवेद गाने का कोई प्रमाण नहीं है। शराब तो सारे यादव पीते थे और उसी से उनका विनाश हुआ था। मद की मस्ती में कामदेव के गीत गाये जाते हैं न कि सामवेद गाया जाता है! जैसे अफीम के मद में आपने हमें सहस्रों गाली प्रदान की हैं। आपके देवता लोग भी तो शराबें पीते थे। देखों प्रणाम **"मधु कुम्भ सहस्रैस्तु मांसभार शतैरपि। न तुष्यामिव रारोहे भग लिंगामृतं बिना।"** (कुलाराबि तन्त्र उल्लास ८)– शिवजी कहते हैं कि सहस्रों घड़े शराब तथा सैकड़ों मांस मेरा भोजन है। हे पार्वती! मैं बिना रजवीर्य के सन्तुष्ट नहीं होता हूँ। स्पष्ट है कि शिव आदि पौराणिक देवता शराबी व मांसाहारी थे। बलराम जी ने यदि मदिरा पी भी ली तो आपको सफाई देने की क्या आवश्यकता पड़ गई? आपको तो बिना कान पूंछ हिलाये सर झुकाकर भागवत की बात को मान लेना चाहिये था। आपने फिर शरारत यहां की है। ऋग्वेद ६–१७–११ का जो **"मदिरमंशभस्मै"** का पद दिया है उसमें शराब को पवित्र बताने को कोई उल्लेख नहीं है। मन्त्र इस प्रकार है देखिये– **"वर्धान्य विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषां इन्द्र तुभ्यम्"**। अर्थात– **(य)** जिसको **(विश्वे मरूतः)** सब वीर एवं प्रजा के पुरूष **(सजोषाः)** प्रति युक्त होकर **(वर्धान्)** बढ़ाते हैं, हे **(इन्द्र)** ऐश्वर्यवान् **(पूषा)** सबका पोषक सूर्य पृथ्वी **(तुभ्यम्)** तेरे लिये **(शते)** सौ सैकड़ो, अनेक, **(महिषान)** बड़े और श्रेष्ठ भोग अन्न फलादि वायु **(स्त्रीणि सरांसि)** तीनों जाने योग्य लोकों को **(धावन्)** जाता है, या उनको पवित्र करता हुआ, **(अस्मै)** इस राज्य के नायक **(बृत्रहणम्)** विध्नकारी शत्रुओं के नाशक, **(यदिरम्)** हर्ष जनक **(अंशुम्)** तेज को प्रदान करता है।

इस वेद मंत्र में शराब का तो कहीं भी उल्लेख नहीं है। तब आपने इसे क्यों पेश किया है? और जब आपने शराब पीना बलराम का माना ही नहीं तो फिर इस मंत्र के भाग द्वारा उसके पीने की प्रशंसा व समर्थन क्यों किया? गोभिल गृह्यसूत्र के हमारे प्रमाण पर आपने उन्माद पूर्ण लेख लिखा है? क्या ब्रह्मचारी की खोपड़ी पर आग जलाई जाती है जो भाष्यकार सामश्रमी ने **"सशिखं शिखा शून्य"** लिखा है। यहां चोटी कटाने का आदेश ही है। आप काट नहीं सके हैं।– **"मुण्डो वा जटिलों वा"** के अन्दर सर मुंडाने का विधान स्पष्ट है। **"मुण्डिता केशायस्य"** कहकर आपके महीधर ने सारा सिर मुंडाने का आदेश **"व्युप्त केशाय"** यजुर्वेद १६–**२६** मंत्र पर दिया है। वहां चोटी रखने का कोई शब्द नहीं है। हमारा लक्ष्य चोटी कटा देने में पाप नहीं है, यह दिखाना मात्र हैं, फिर वह किसी भी अवस्था में हो। विशेष अवस्था में ही ऋषि दयानन्द ने चोटी कटाने को लिखा है। वैसे तो शिखा धारण करना हमारा मत स्वयं सिद्ध है। उव्वट महीधर का हमारा

चोटी कटाने का प्रमाण आपने स्वीकार कर ही लिया है। इस प्रकार सिद्ध है आप उनके भाष्य को सही मानते हैं तो आपका अर्थ उनके विरूद्ध होने से कतई मान्य नहीं हो सकता है। शिखा सर के ऊपर होती है, जेबकि बाणों के पुंख बाण की पूंछ पर नीचे होते हैं। अतः विशिखा पद को बाण की पूंछ से नहीं जोड़ा जा सकता हैं आपका अर्थ सर्वथा मिथ्या सिद्ध है। इस प्रकार इस शास्त्रार्थ में तीन–तीन टर्न दोनों ओर से पूरे होकर पूर्ण निश्चयानुसार **"यह शास्त्रार्थ आज यहां समाप्त होता है"**। इसमें आपने सात प्रश्न ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों को वेद विरूद्ध सिद्ध करने के दावे के साथ पेश नहीं किया जिसमें आपके प्रश्न का समर्थन होता और ऋषि दयानन्द के किसी भी सिद्धान्त की हानि वा खण्डन (विरोध) प्रगट होता। प्रत्युत हमने स्वपक्ष को अनेक वेद मंत्र, उपनिषद, अन्य शास्त्र आयुर्वेद तथा पुराणों से भी जो सभी विपक्षी को परममान्य हैं अनेकानेक प्रमाण उपस्थित करके यह बहुत स्पष्ट रूप से सिद्ध किया है कि ऋषि के सभी सिद्धान्त शास्त्रानूकूल, वैदिक सिद्धान्तानुसार निश्चित, तथा सिद्ध हैं। वे सृष्टि नियम तथा बुद्धि के अनुकूल हैं। हमने जैसा कि पहले भी लिखा है कि– विष्णु–शिव–ब्रह्मा–कृष्ण–राम–दयानन्द–बुद्ध–महावीर आदि सभी व्यक्तियों को निष्कलंक मानते हैं। महापुरूष दुष्ट नहीं होते हैं, और दुष्ट जन महापुरूष नहीं हो सकते हैं। परन्तु पुराणों तथा अन्य दुष्ट लोगों ने विद्वेष से जो गन्दा साहित्य शास्त्रों के नाम से रचा है उनमें इन सभी ऋषि महर्षि–आदि को गन्दे झूठे लांछन लगाकर व्यर्थ कलंकित किया है। अतः हमारा झगड़ा पुराणों के अश्लील साहित्य पर है। हमने उनके अनेक प्रमाण देकर यह दर्शाया है कि पुराण साहित्य निन्दनीय है। उसका समर्थन कोई कर ही नहीं सकता है। इसीलिये जो प्रमाण हमने स्वपक्ष पुष्टि व विपक्ष गर्व मर्दन में दिये हैं, हमारे विपक्षी ने सभी सत्य स्वीकार कर लिये हैं।– इस प्रकार यह शास्त्रार्थ इस तथ्य के साथ आज समाप्त होता है कि हमारे विपक्षी श्री महन्त सीताराम दास जी अपने किसी भी प्रश्न वा आक्षेप को वेद में प्रमाणित नहीं कर सके हैं और न हमारे किसी भी सिद्धान्त को किसी भी वेद मंत्र के प्रमाण से काट सके हैं।– अस्तु वे शत प्रतिशत इस शास्त्रार्थ में पराजित हैं। तथा उनकी असभ्य भाषा व गालियां उनके ऊपर स्थाई कलंक बनकर रह गई हैं।

निष्कर्ष :–

विपक्षी ने हमसे सात प्रश्न किये थे। उनमें उसको सभी प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका है। देखिये–

प्रश्न नं० १– उसका वेद के यमयमी सूक्त के मंत्र **"आघाता गच्छानुत्तरा"** के चतुर्थपाद **"अन्य मिच्छस्व सुभगे पतिमतं"** के ऋषि दयानन्दजी के नियोग परक अर्थ करने पर था। हमने उस सूक्त के अनेक मंत्रों का अर्थ देकर विपक्षी को यह दर्शा दिया है कि ऋषि दयानन्द जी का नियोग परक नियोग ठीक है। सारा सूक्त ही यम–यमी (पति–पत्नी) के सम्वाद के रूप में है। यम–यमी को भाई बहिन का सम्वाद मानना पौराणिक समुदाय की मिथ्या मान्यता है। विपक्षी हमारे अर्थ को किसी भी तर्क प्रमाण से काट नहीं सका है। अतः उसके आक्षेप पर हमारे उत्तर पूर्ण अकाट्य रहा है। महन्तजी ! तारीख ११–२–६५ के अपने लेख में आपने पृष्ठ १६ पर **"उतोसि मैत्रावरुणो"** मंत्र का ऋग्वेद का पता अध्याय ५ अध्याय २ व अध्याय २४ लिखा था। जो सर्वथा गलत है हमने आपसे पत्र लिखकर सही पता पूछा था और आपने बाद में सही कर दिया था। हमने पता गलत लिखने पर आपको जय पराजय का चेलैन्ज नहीं दिया था। परन्तु आपने हमारे देवी भागवत १–१०–२८ के (तारीख ३०–८–६५ के पत्र में पृष्ठ पंक्ति १२ में)– **"शिवोऽपि पर्वते नित्यं कामिनी पाश संयुतः"** के सही पते पर हमें उक्त श्लोकार्य को देवी भागवत० १–११–२८ के पते पर लिखते अथवा

न दिखा सकने पर **"शास्त्रार्थ में पराजय"** स्वीकार का तारीख ६–१–६५ के मध्यस्थ के पत्र द्वारा चेलैन्ज भी दे डाला है। हमने आपके इस चेलैन्ज को स्वीकार किया। क्योंकि शास्त्रार्थ में जय वा पराजय इसी श्लोक का सही पते पर दिखाने पर निर्भर थी। यदि हम दिखा देते हैं तो आप पराजित हैं, यदि नहीं दिखा पाते हैं तो हम पराजित हैं। हमने तारीख १३–११–६५ को आपको उत्तर में लिखा कि हमने देवी भागवत १–१०–२८ का पता श्लोक पर लिखा था, न कि १–११–५८ लिखा था। श्लोक पर हमारा दिया पता उक्त पुराण के सभी संस्करणों में ठीक है। अतः अपनी ही चुनौती अनुसार इस शास्त्रार्थ में आपकी घोर पराजय हुई है। आप अपनी पराजय की स्वीकृति भेजें। आपने जवाब तक नहीं दिया। तारीख २४–११–६५ को हमने पुनः पत्र लिखा परन्तु फिर भी आपने जवाब नहीं दिया। गाली गलौच बकने वाले महन्त जी ! यदि आपको कुछ भी शर्मोहया बाकी हो तो इस घोर पराजय पर अपने मन्दिर के तालाब के चुल्लू भर पानी में डूब मरो। आप हमसे इस शास्त्रार्थ में अपनी ही चुनौती व प्रश्नों पर पराजित हुए हैं– क्योंकि आप गाली गलौचपूर्ण नीचता पर उतर आये हैं अतः अब आगे कभी भी आप के साथ किसी भी प्रकार का कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जावेगा। यदि कोई पत्र कभी आपका आया तो पोस्टमैन के वापिस करा दिया जावेगा। यह शास्त्रार्थ आपकी पूर्ण पराजय के साथ समाप्त हुआ है यह आर्य समाज के पक्ष के लिए हर्ष व गौरव का विषय है।

निवेदक–

तारीख– ४–१२–६५

"आचार्य डा० श्रीराम आर्य"
(कासगंज) उ०प्र०

विपक्षी महन्त जी द्वारा अखबारों में अपनी पराजय की स्वयं घोषणा :–

श्री लक्ष्मण भाई, भवना भाई आर्य–मन्त्री आर्य समाज सरसीआ (सौराष्ट्र) ने हमको अयोध्या से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र **"विरक्त"** के तारीख १८ अप्रैल सन् **१६६६** ई० के अंक में से प्रकाशित निम्न कटिंग (अंश को) भेजा है।

विकट शास्त्रार्थ :–

"कासगंज में एक श्रीराम आर्य नाम के एक आर्य समाजी डाक्टर रहते हैं। ये आर्य समाजी हैं एवं सनातन धर्म का बड़ा खण्डन करते हैं। हल्की एवं अभद्र भाषा में इनका साहित्य होता है। खण्डन मण्डन ग्रन्थ माला नाम की १५–२० पुस्तकें छपाये हुए हैं। मैंने भी उनमें से २–४ देखी हैं। शास्त्रार्थ में भी तगड़े है। श्री करपात्री जी को मिनटों में हरा दिया कारण कि भाषा इतनी हल्की होती है कि सभ्य मनुष्य सुनना भी पसन्द न करे। श्री माधवाचार्य जी कमला नगर दिल्ली वाले भी हार मान गये। पंडित जी ने श्री काशीजी के चार पंडित (१)– शास्त्रार्थ महारथी पं० पुत्तूलाल जी अग्निहोत्री। (२) वेदाचार्य पं० रजनीकान्त जी शास्त्री, कानपुर। (३)– वेणी राम शर्मा वेदाचार्य काशी। (४)– मदन मोहन जी शास्त्री व्याकरणाचार्य बम्बई। इन चारों का संयुक्त मोर्चा भी पैटर्न टैंक जैसे मिनटों में तोड़ दिया। इनके साथ पूरे आर्य समाज का तन मन धन से सहयोग भी है। अभी ८ माह से श्री सीताराम दास जी शास्त्री श्री चार भुजा नारायण मन्दिर टोंक (जयपुर) से शास्त्रार्थ हो रहा है। अब इनसे भिड़ने में श्रीराम आर्य को छटी का दूध याद आ रहा है, ८ माह में १५–२० बार प्रश्न–उत्तर का आदान प्रदान हो चुका है। अभी ५ विरक्त के बराबर प्रश्नों की फाइल श्रीराम आर्य ने टोंक भेजी है। उसे अगर पढ़ें तो दांत तले उंगली दबानी पड़ती है। परन्तु फिर भी टोंक के श्री शास्त्री जी

बड़ी मुस्तैदी से टक्कर ले रहे हैं एवं श्रीराम आर्य को मुंह छिपाना मुश्किल पड़ रहा है। परन्तु जो (सनातनी पंडित श्रीराम आर्य से) हार मान गये हैं उन्हें श्री शास्त्री जी के पक्ष में आकर सहयोग देकर अपने मुंह की कालिका मिटानी चाहिये। शास्त्री जी अकेले हैं एवं धन जल बल से रहित हैं। श्रीराम आर्य के प्रश्न की फाइलें जिनको देखना हो तो टोंक पधारें व श्री शास्त्री जी के विवेचना पूर्ण उत्तर भी देखें जिससे श्रीराम आर्य को छठी का दूध याद आ रहा है।– **"भई गति सांप छछूंदर केरी"**।।

समीक्षा–

समाचार पत्रों में भारत भर के विद्वानों को टोंक बुलाकर शास्त्रार्थ में विद्या की मदद मांगना महन्तजी की अपनी पराजय की स्वतः घोषणा है। इस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। महन्त जी समझ लेवें कि आज भारत वर्ष के सारे पौराणिक विद्वानों की बोलती हमारे साहित्य को पढ़ कर बन्द हो चुकी है। सनातन धर्म की निःसारता को समझ चुके हैं। अतः कभी कोई भी उनकी मदद करने को सामने नहीं आवेगा। हां ! यह उनसे सभी कहते रहेंगे "**चढ़ जा मिस्टर सूली पर भला करेंगे राम.........**" अतः अब आगे कभी किसी आर्य समाजी से उलझने की भूल कर भी महन्त जी साहस न करें।

"डा० श्रीराम आर्य"
(कासगंज–उ०प्र०)

एक सौ सौलहवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "गोहावर" (बिजनौर) उत्तर–प्रदेश

दिनांक : २४ फरवरी सन् १६०४ ई०

विषय : क्या **"मृतक श्राद्ध"** वेदानुकूल है?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

धर्म सभा (सनातन धर्मसभा) ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र (मुरादाबादी)

नोट– यह शास्त्रार्थ सामग्री उर्दू में छपी हुए जीर्ण–शीर्ण हालत में हमें **"श्री जय नारायण अरूण"** सम्पादक–**"प्रसाद के फूल"** बिजनौर निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिसका हिन्दी रूपान्तर भी उन्हीं के द्वारा किया गया, मैं उक्त विद्वान महानुभाव का हृदय से आभारी हूँ !

"प्रकाशक"

शास्त्रार्थ से पहले

भाईयों ! प्रस्तुत शास्त्रार्थ के विषय में अनेकों बार जिकर आता था, कहीं–कहीं तो शास्त्रार्थों के मध्य पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित माधवाचार्य जी उक्त विषय **"मृतक श्राद्ध"** पर इस शास्त्रार्थ का हवाला देते थे कि–**"गोहावर"** नामक स्थान पर हमारे महान पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्र जी ने आपके स्वामी दर्शनानन्द के छक्के छुड़ा दिये थे, उनकी बोलती बन्द कर दी थी, और न जाने क्या–क्या ड़ींग मारते रहते थे ?

मैं इस शास्त्रार्थ की खोज में था, पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने भी इस शास्त्रार्थ की बड़ी तलाश की, परन्तु यह उनके जीवन काल में उपलब्ध न हो सका।

श्री अमर स्वामी जी के देहावसान के बाद मेरा पत्राचार **"श्री जय नारायण अरूण"** जी से हुआ, जो मुझसे अत्याधिक स्नेह रखते हैं तथा आर्य समाज के प्राण स्वरूप हैं, अच्छे वक्ता एवं अत्यन्त स्वाध्यायशील आर्य पुरूष हैं, उन्होंने सूचना दी कि वह गोहावर वाला शास्त्रार्थ मेरे पास है जो उर्दू में छपा हुआ है, और उन्होंने उसका हिन्दी रूपान्तर कर प्रस्तुत शास्त्रार्थ सामग्री प्रकाशनार्थ मेरे पास भेज दी, मैंने उसे तुरन्त इस शास्त्रार्थ संग्रह में स्थान दे दिया, जिसके पढ़ने पर अनेकों नयी बातें सामने आई, तथा पौराणिक गप्पाधीश श्री माधवाचार्य जी की सारी ड़ींगे कपोल कल्पित ही साबित हुई।

मैं श्री अरूण जी का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री को प्रकाश में लाने का यत्न किया। आर्य जगत इस पुणीत कार्य के लिए हमेशा उन्हें याद रक्खेगा ?

मेरा अन्य भी सभी आर्य भाइयों से यह अनुरोध है कि अगर किसी भी आर्य सज्जन को इस तरह की प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री किसी भी भाषा में छपी हुई प्राप्त हो तो वह सज्जन तुरन्त मुझसे सम्पर्क करें, मैं उन सज्जन महानुभावों के नाम का उल्लेख करते हुए उस शास्त्रार्थ सामग्री को इस ग्रन्थ की श्रृंखला में अवश्य ही स्थान दूंगा।

अब आप स्वयं ही इस अति प्राचीन शास्त्रार्थ का अवलोकन कर ज्ञान प्राप्त करिये !

किमधिकम लेखेन्,

विदुषामनुचरः–

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र–

उपस्थित सज्जनों ! मैं प्रथम कुछ कहने से पहले दोनों पक्षों से और विशेष कर जो सुनने के वास्ते (श्रोतागण) आये हुए हैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि अगर बिल्कुल चुप रहेगें तो मतलब हासिल करेंगे अगर गड़बड़ करेंगे तो मतलब हासिल न होगा, इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप बिना किसी शोरोगुल के अर्थात् शान्तिपूर्वक बैठकर सुनें कि दोनों तरफ के पण्डित क्या कह रहे हैं? मैं आज जिस बात के कहने हेतु खड़ा हुआ हूँ यह विषय है **"श्राद्ध"** ! और भाईयों श्राद्ध वह होता है जो मरणोपरान्त, बाप–दादा, परदादा के लिए पिण्डदान वा पितृयज्ञ किया जाता है, अब इस विषय में हमको ये विचार करना पड़ता है कि– **"श्राद्ध मरे हुए का होना है या जीवित का?"** और वेद् इस बारे में क्या कहता है? जबकि भाईयों मैं आपको बतला दूँ कि वेद के अन्दर यह बात स्पष्ट रूप में मिलती है कि– श्राद्ध मरे हुओं का करना चाहिये। पिण्डदान करना चाहिये, जलदान करना चाहिये आदि–आदि। और इसके साथ–साथ वेद हमको ये बात भी सिखलाता है कि मृत्यु के पश्चात मनुष्य का आत्मा यमराज के पास पितर लोक में जाता है देखिये– स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ संस्कार विधि [१]सम्वत् १६४७ ई० की छपी हुई पृष्ठ २४३ के पंक्ति १० में अथर्ववेद का एक मन्त्र छपा हुआ है, जिसको मैं आप लोगों के समक्ष पढ़ता हूँ सुनिये–

अपेमं जीवा अरूधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः।
मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेतासून् पितृभ्योगमयाञ्चकार स्वाहा।।२७।।

(संस्कार विधि अन्त्येष्टि प्रकरणम् तथा अथर्ववेद काण्ड १८ सूक्त २)

सज्जनों ! इस मन्त्र का अर्थ उस ग्रन्थ (संस्कार विधि) में नहीं हैं, मैं अपनी ही तरफ से अनुवाद करके आप लोगों को सुनाता हूँ, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनिये– **"मृत्यु यमराज का दूत है वो पितरों के प्राणों को यमराज के पास ले जाता है"**[२] दूसरे यजुर्वेद में लिखा है देखिये– यजुर्वेद संहिता माध्यनन्दिनी शाखा,

---

टिप्पणी :–

[१] **वर्तमान में देखें**– संस्कार विधि, रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण विक्रम सम्वत् २०२५ चैत्र, अप्रैल सन् १६६८ ई० के अन्त्येष्टि प्रकरण, पृष्ठ ३७० पंक्ति १६ व १७ मन्त्र–७।।

[२] उपरोक्त अर्थ जो ज्वालाप्रसाद जी ने किया है उसकी तुलना अब आप निम्न अर्थ से करिये जो हमने **"अथर्ववेद भाष्यम्"**– श्री पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी द्वारा कृत मान्य सन् १६१६ ई० में पण्डित काशीनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध में प्रथम बार प्रयाग नगर से प्रकाशित हुआ।*

भाषार्थ :– **(इमम्)** इस **(ब्रह्मचारी)** को (जीवाः) प्राणधारी **(आचार्य आदि)** लोगों ने **(गृहेभ्यः)** घरों के हित के लिए (अप) आनन्द से (अरूधन्) रोका था, **(तम्)** उस **(ब्रह्मचारी)** को **(इतः)** इस **(ग्रामात्)** ग्राम **(विद्यालय)** से **(परि)** सब ओर को **(निः)** निश्चय करके (वहत) तुम ले जाओ। **(मृत्युः)** मृत्यु **(आत्मत्याग)** **(यमस्य)** संयमी पुरूष का **(दूतः)** उत्तेजक **(प्रचेतः)** ज्ञान करने वाला **(आसीत)** हुआ है, उसने **(पितृभ्यः)** पितरों **(रक्षक–महात्माओं)** को **(असून्)** प्राण **(गमायाम्चकार)** भेजे हैं।। २७।।

भावार्थ :– आचार्य लोग ब्रह्मचारियों को विद्यालय में उत्तम शिक्षा देने तक रक्खें और विद्या समाप्ति पर उनको उपदेश करें कि वे परिश्रम के साथ आत्म त्याग करके अर्थात् आपा छोड़कर संसार का उपकार करें, जैसे कि महात्मा लोग आपा छोड़कर विद्या द्वारा आत्मबल प्राप्त करके उपकारी होते हैं।। २७।। **"सम्पादक"**

नोट– ***(इसके कुछ काण्ड हमारे यहां स्टाक में उपलब्ध हैं, अगर किसी सज्जन को चाहियें तो प्रकाशन से सम्पर्क** स्थापित करें !

"लाजपत राय अग्रवाल"

अध्याय १६, मन्त्र ६०–"**ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये विषः स्वधूया मादयान्तितेभ्यः स्वराड़सु नीति मेतां यथा वशं तन्वं कलपयाति**" ।।६०।। इसका अर्थ यह है कि– जो पितर अग्नि में दग्ध अथात् जलाये हुए हैं और जो अपने उपार्जित कर्मों से स्वर्ग में निवास करते हैं यमराज ही उन पितरों के लिए निश्चय ही विशेष परिस्थितियों में पुनः उन्हें मनुष्य लोक को प्राप्त करता है। दूसरा मन्त्र इसी अध्याय का ५८वां है, देखिये और ध्यान से सुनिये– **आयन्तु नः पितरः सोम्यासो अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान्**।। (यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ५८) इस मन्त्र का अर्थ ये है कि– सोमपान करके योग अग्नि क्रिया को प्राप्त हुए हमारे पितर इस लोक में देवयान (हवाई मार्ग) से हमारे यज्ञ में आवें, और यही बात यजुर्वेद के अध्याय १६ मन्त्र ४६ में लिखी है कि पितर– **"प्राण मात्र मूर्ति वाले हैं"** मन्त्र इस प्रकार है सुनो,– **उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः................तथा................ ये सामानाः समनसः पितरो यमराज्ये, तेषांस्तोकः स्वधा नमो यज्ञोदेवेषु कल्पताम्**।। ४५।। अर्थात् जो समान आयु वाले हैं वे पितर आवें जो यमलोक में रहते हैं। आगे देखिये ऋग्वेद मन्डल १० अध्याय १ सूक्त १४ में मन्त्र इस प्रकार है,– **परेयियांस प्रवतोमहीरनु बहुभ्यः पन्था मनु पस्पक्षानम् वैवस्वतं संगमनं......... ....**अर्थात् विवस्वान् का बेटा होना व्याकरण से सिद्ध है, ऋग्वेद, मन्डल १० सूक्त १५ के मन्त्रों से यमराज को बलि देने के बाद उनके दोनों कुत्तों के लिए भी इस मन्त्र से बलि देना लिखा है, यजुर्वेद के तैत्तरीयोपनिषद में पितरलोक अलग–अलग लिखे हैं। जिसको मैं विस्तार से बतलाता, परन्तु समय कम है आप तैतरियोपनिषद में देख सकते हैं। इसी तरह सिद्धान्त शिरोमणी ग्रन्थ में अध्याय एक का मन्त्र भी अवलोकन करने योग्य है, जिसमें है कि– चन्द्रमा के ऊपर पितरलोक है जहां पितर निवास करते हैं, बृहदारण्यक उपनिषद में भी पितरों का लोक अलग लिखा है, देखिये– छटे अध्याय के तीसरे ब्राह्मण के बत्तिसवें काण्ड में, जहां लिखा है कि– **"पितरों के रहने का स्थान अलग है"**। और ये भी छुपी हुई बात नहीं है कि इन उपनिषदों का प्रमाण दयानन्द सरस्वती ने अपनी बनाई सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकों में उतारा है, यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ३६ में– **ओ३म् सम्यः स्वधायिभ्यःस्वधा नमः। पितामहेभ्यः स्वधायिभ्य स्वधानमः प्रपितामहेभ्यः स्वधामिभ्यः स्वधानमः। अक्षन् पित्रोऽमी मदन्ते पित्रोऽतीतृ पन्तपितरः। पितरः शुन्धवम्**।। अर्थात् इस मन्त्र को बोलकर अपने बाप, दादा, परदादा तीनों के लिए जल देना लिखा है, फिर लिखा है कि– मन्त्र बोल कर पितरों के लिए तिल व धान का देना लिखा है, अथर्ववेद के पितरी प्रकरण में मृतक जलाते समय और ऋग्वेद में भी– मुर्दा जलाते समय इस मनुष्य के जीव को यमराज के पास जाना और पहले पितर लोक में पितरों के पास पहुंचना लिखा है। और ये मन्त्र ऋग्वेद का दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि के अन्त्येष्टि प्रकरण में लिखा है तथा मन्त्र से आज्याहुति देना लिखा है, मन्त्र इस प्रकार है– **प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्वेभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः। उभा राजानां स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरूणं च देवं स्वाहा**।। ११।। (ऋग्वेद मन्डल १० सूक्त १४)।। इसका भाव ये है कि तुम उन्हीं रास्तों से जाओ जिन मार्गों से, पहले तुम्हारे पितर गये हैं। वहां जाकर सर्वप्रथम तुम यमराज का दर्शन करोगे। भाईयों मैंने ऋग्वेद के मन्त्रों का अनुवाद जो आप लोगों को सुनाया है और पीछे भी बताया है वो सभी सायणाचार्य के भाष्य पर, आश्वलायन गृह्यसूत्र, मनुस्मृति, आपस्तम्बश्रौतसूत्र, तृतीयवेद के ब्राह्मण भागों के अनुसार उन पर आधारित है। वैसे ही हवा में मैंने कोई बात नहीं कही, आगे मैं इन सभी बातों को सविस्तार बताऊंगा, इस बात को आप लोग जानते हैं कि– मरे हुओं के साथ जो सामान होता है उन चीजों का उल्लेख वेद में ऐसे अवसरों पर पूर्ण विस्तार से आया है। देखिये **"सानुदाय यमाय**

नमः" कहकर दक्षिण दिशा में पिण्ड रक्खे आदि–आदि। तथा–"**कुदन्वतिदयो खमात् पिलुमती विमध्यमात् तृतीया हि प्रदयोलिपि अस्याम् पितर आसते**"।। ४८।। यह अथर्ववेद के काण्ड १८ सूक्त २ का मन्त्र है। जिसमें पितरों का अन्तरिक्ष आदि द्यौलोकों में रहना सिद्ध है। "**मृतक**" शब्द से ही वहां रहने वालों के लिए उच्चारण किया जाता है, जो श्रौत सूत्र, वेदांग और कल्प कहलाते हैं इनमें विस्तार पूर्वक मृतक के लिए पिण्ड आदि का दान करना लिखा है। वेद में ही कहा है– कि जो पितर आदि के लिए दान किया जाता है सो मरे हुओं के लिए ही है, जो पिता और प्रपितामह के लिए ही देना लिखा है ऋग्वेद के आश्वलायनश्रौतसूत्र में भी मरे हुओं के लिए "**उपाविशेष**" कहा है। और उसमें कहा है कि अगर अपने बाप–दादा–परदादा का नाम मालूम न हो तो वो पिता–परपिता, महापिता आदि कहकर उनके नाम पर जल व पिण्ड आदि दान करे। क्योंकि आपस्तम्ब में लिखा है कि बिना नाम के जाने दिया गया दान पितरों को मिलना कठिन है। फिर कल्प सूत्र के अध्याय ४, सूत्र प्रथम में लिखा है कि जब चन्द्रमा दिखाई न देता हो उस अमावस्या में पितरों का नाम लेकर दान अवश्य करना चाहिये, और वह दान भी दोपहर के बाद करना चाहिये, यही बात आपस्तम्बसूत्र के प्रथम अध्याय में लिखी है। शतपथ ब्राह्मण में पिण्ड पितृयज्ञ प्रकरण में मन्त्र है, जिसमें लिखा है कि– पितृयज्ञ करके पिण्डदान के पश्चात्त उसके आगे अग्नि का जलता हुआ अंगारा रख दे और भाईयों स्वामी दयानन्द जी की बनाई हुई संस्कार विधि के समावर्तन संस्कार वाले प्रकरण में मन्त्र है कि– "**ओ३म् प्राणापानौ में तर्पयचक्षुर्मे तर्पय श्रौत्रं में तर्पय, ओ३म् पितरः शुन्धध्वम्........**" इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ना लिखा है अर्थात् अपसव्य होकर (दक्षिण की तरफ मुंह करके) जल भूमि पर छोड़ दे। इस बात को सब लोग जानते हैं कि, पितरों के लिए जो कुछ किया जाता है, वह दक्षिण की तरफ मुंह करके और बायें कन्धे पर जनेऊ करके ही किया जाता है। यही बात स्वामी दयानन्द जी ने भी कही है कि अपसव्य होकर दक्षिण की ओर मुंह करके कर्म करे। मनुस्मृति में पितरों का दिन रात, मनुष्यों के एक महीने के बराबर माना है। इसी प्रकार उन्होंने ब्रह्मा के एक दिन की व्यवस्था की है, देखिये मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ६६, इसी प्रकार स्वामी दयानन्द ने अपनी बनाई संस्कार विधि में लिखा है कि– "**ओ३म् पितृभ्यः स्वाधायिभ्यः स्वधानमः**" इसमें पितरों के निमित्त रख देना लिखा है, इसी प्रकार से मनुस्मृति के अध्याय ३ के श्लोक १७ में लिखा है कि– "**निमन्त्रतानि हि पितरः उपतिष्ठन्ति तानद्वजान्**" इसका हिन्दी अनुवाद है कि जो ब्राह्मण निमन्त्रण देने पर भोजन करने के लिए तुम्हारे यहां आयेंगे उनके साथ–साथ तुम्हारे पितर भी वायु की तरह उनके साथ–साथ चलेंगे, और उन ब्राह्मणों के साथ ही आसन पर या पीढ़े (आसन) पर बैठकर सूक्ष्मांश को ग्रहण करते हैं आगे अध्याय ३ में ही मनु जी महाराज लिखते हैं कि "**पितायस्य........** अर्थात् जिसका पिता मर जावे और दादा जिवित हो तो उस व्यक्ति को चाहिये कि वह पिता का नाम लेकर ही पितृ सम्बन्धी कर्म करे। इसी प्रकार दादा अगर जिवित है और परदादा मर गया हो तो परदादा का नाम लेकर ही पितृ कर्मों को पूर्ण करें।

बाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड, सर्ग १४ के श्लोक १६ में लिखा है कि– राजा दशरथ जी कहते हैं कि– मेरी जल क्रिया रामचन्द्र जी के इस अभिषेक की सामग्री में............ (आगे मूल कापी में मैटर फटा हुआ है) अध्याय १०२ के श्लोक ८ में लिखा है कि जिसका अनुवाद ये है कि– भरत जी ने राजा दशरथ के मरनोपरान्त उनके तीजे व दशवें के दिन उनका श्राद्ध किया, और फिर रामचन्द्र जी के पास जाकर ये कहा

कि- हम तो कर चुके अब तुम भी जल दान करो तब रामचन्द्र जी ने अगोंदी (जौं के आटें के पिण्ड) के पिण्ड बना कर कुशा के ऊपर रख कर रोते हुए कहा कि- हे राजन् आप ये ग्रहण करें, इस समय यही मेरे पास है,। भाईयों जैसा किसी पुरूष के पास होता है वैसा ही वह देवताओं को निवेदन करता है। इस प्रकार मैंने वेद मन्त्र, सूत्र ग्रन्थ एवं ब्राह्मण भाग व उपनिषदों आदि के प्रमाणों द्वारा **"मृतक श्राद्ध"** आदि का मण्डन किया, अब खण्डन वालों को चाहिये कि वे भी इसी तरह प्रमाणों सहित अपनी बात का मण्डन तथा हमारी बात का खण्डन करें;!

–दस्तख़त–

१. पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र (हिन्दी में)	१. स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती (उर्दू में)
२. पं० प्रेम शंकर (हिन्दी में)	२. बेगराज सिंह (उर्दू में)
मन्त्री आर्यसमाज–गोहावर (बिजनौर)	मन्त्री–धर्मसभा, गोहावर (बिजनौर)

श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती–

पण्डित जी ने सबसे पहले श्राद्ध की ये तारीफ़ (परिभाषा) बतलाई की जो मृतक पितरों के लिए किया जावे, और उसके लिए बहुत से वेद मन्त्र अपने विचार के अनुसार अनुवाद करके पेश किये, लेकिन हम पण्डित साहिबान से ये प्रार्थना करते हैं कि वो **"मृतक श्राद्ध"** केवल यही शब्द चारों वेदों की संहिताओं के अन्दर लिखा हुआ दिखला दें,। नहीं! नहीं!! मृतक श्राद्ध को भी छोड़िये, केवल **"श्राद्ध पद्यति"** ही दिखला दें,। अगर चारों वेदों में **"श्राद्ध"** शब्द ही नहीं है तो उसकी व्याख्या प्रत्यक्ष तौर पर करना किसी भी तरह सही नहीं, आपकी सारी व्याख्या में केवल पांच विषय है, जिनका सार आपको बतलाता हूँ। (१)– मृतक श्राद्ध, (२)– पितरों की मूर्ति प्राण रूप हैं, (३)– पितरों का लोक अलग हैं, (४)– सूत्र व ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है, (५)– पितर, निमन्त्रण किये गये ब्राह्मणों के साथ वायु की तरह चलते हैं,। ये हैं वो पांच बातें! जो पंडित जी के एक घंटे में दिये गये व्याख्यान का सार है, अब मैं पण्डित जी की इन पांचों बातों का खण्डन करता हूँ, जिनका मण्डन पण्डित जी ने स्वयं के भाष्य से किया है। आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें– (१)– **"मृतक श्राद्ध"**– इस विषय में, मैं बड़े जोर से कहता हूँ कि– आप मृतक श्राद्ध चारों वेदों में से कहीं भी लिखा हुआ दिखलावें, (२)– **पितरों की मूर्ति प्राण की तरह होती है,**– मूर्ति का लक्षण जैसा कि, आचार्यों ने किया है, उसे आप प्रमाणों में घटायें, क्योंकि ये नियम है कि, जब तक लक्षण और प्रमाण से कोई वस्तु सिद्ध न हो तब तक सिर्फ दावा ही उसको सिद्ध नहीं करता, जबकि उस मन्त्र में जो आपने इस विषय में पेश किया है, इस बात की गन्ध भी नहीं है। अब आप यजुर्वेद के उन मन्त्रों को जो कि आपने पेश किये हैं देखें, जिनमें आपने कहा है कि– **"अग्निस्वात्ता पितर यहां पर आयें,"** अब आना फ़ेल (कर्म) है, जो जिवितों के लिए सम्भव है, या मरे हुओं के लिए इसको सोचें? वेदों में पिता, दादा, परदादा सिर्फ तीन ही पितरों का श्राद्ध करने पर साफ तौर से पता चलता है कि, जिवितों का श्राद्ध होना चाहिये, क्योंकि सौ वर्ष की आयु में आश्रम व्यवस्था के अनुसार ये तीन जी जीवित रह सकते हैं, यदि आपने प्राचीन प्रणाली पर विचार किया होता और यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ६७ को पढ़ा होता, तो आपको पता चलता! जिसमें साफ तौर पर दिखाया गया है कि जो पितर यहां नहीं हैं, उसके क्या अर्थ हैं ? इस मन्त्र से उस आश्रम व्यवस्था के अनुसार पिता, दादा,

परदादा ये तीनों, तीन अवस्थाओं में रहते हैं, पिता–ग्रहस्थाश्रम में होता है, दादा वानप्रस्थाश्रम में तथा परदादा सन्यास आश्रम में विद्यमान रहता है। अब मन्त्र कहता है कि– जो पितर यहां विद्यमान हैं, अर्थात् घर में मौजूद हैं, और जो पितर यहां विद्यमान नहीं अर्थात् वानप्रस्थी एवं सन्यासी ! उनमें से भी क्योंकि वानप्रस्थी एक जगह पर स्थान बना कर रहा करते हैं, इसलिए उनको उनकी सन्तान जानती है कि वे कहां रह रहे हैं ? परन्तु सन्यासी एक जगह पर नहीं रहते उनका पता ठिकाना मालूम नहीं रहता, इसलिए उनके लिए कहा गया है कि, **"हम जिनको नहीं जानते"** बस ! ये ही तीन **"जीवित पितर"** हैं, जिनका श्राद्ध वेदों में बतलाया गया है, इसके बाद अगर मृतक पितरों का श्राद्ध मानना होता तो पहले मृतकों के साथ पिता–पुत्र का सम्बन्ध ा कीजिये, क्योंकि सम्बन्ध के अभाव में क्रिया की सिद्धी नहीं हो सकती, यह नियम है। पिता–पुत्र का सम्बन्ध ा आप केवल तीन ही अवस्थाओं में मान सकते हैं, या तो पिता का शरीर और पितर के शरीर का पता हो, या पिता का जो पितर के जीव का बना हो, या शरीर और जीव मिले हुए पितर के, शरीर और जीव मिले हुए का पता हो, अर्थात् इन तीन हालतों में ही पिता–पुत्र के सम्बन्ध का पता चल सकता है। इस हालत में जब पिता के मुर्दे को जलाते हैं तो पितृ हिंसा का पाप होगा। यदि जीव को जीव का पिता माना जावे तो जीव सब अनादि हैं, अनादि चीजों में, जन्य–जनक भाव सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, यदि जीव और शरीर मिले हुए को माना जावे तो मृतक में जीव और शरीर मिला हुआ ही नहीं, इसलिए मृतक की संज्ञा ही नहीं हो सकती, इस वास्ते वैशेषिक दर्शन में आत्मान्तर अर्थात् एक आत्मा के कर्म दूसरे आत्मा के लिए फल नहीं दे सकते यही बात मिमांसा दर्शन अध्याय १ सूत्र १६ में बतायी गई है कि अन्य के कर्म से यदि दूसरे को फल मिलना माना जावे तो अति प्रसंगति दोष आयेगा, जिसका मतलब ये है कि– एक पापी के कर्म से कोई मुक्त जीव बन्धन में आ जावेगा और मुक्त जीव के कर्म से पापी छूट जावेगा, इसलिए दूसरे के कर्म का किसी दूसरे को फल मिलना कर्म व्यवस्था के विरूद्ध है। जहां कर्मों के फल व्यवस्था का शास्त्रों में विचार किया है जैसा कि न्याय दर्शन में साफ कहा गया है कि कर्म का फल संस्कार के माध्यम से ही मिला करता है, जो मृतक के लिए कर्म होगा उसका संस्कार मृतक के मन में नहीं होगा, जिसका फल मिलना बिल्कुल विरूद्ध है। और मनुस्मृति के प्रमाण से यह बतलाया गया है कि– **"पितर, वायु की तरह निमन्त्रित ब्राह्मणों के पीछे–पीछे चला करते हैं,"** अगर चार ब्राहाण जिनको न्योता दिया गया है, वे चारों अलग–अलग दिशा में चलने लगें तो पितर किस दिशा में किस ब्राह्मण के पीछे चलेंगे? वेद मन्त्रों के अर्थ युक्ति विरूद्ध करना यानी दलील के विरूद्ध करना सरासर वेदों के खिलाफ़ अर्थ करना है। क्योंकि वैशेषिक दर्शन में वेदों की तारीफ़ (प्रशंसा) करते हुए महर्षि कणाद ने यह तीसरा सूत्र पेश (प्रस्तुत) किया है– **"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्"** ।।३।। (वैशेषिक दर्शन प्रथमोध्याय तृतीय सूत्र) कि वेद में तत्वज्ञान का उपदेश है, इसलिए वेद को प्रामाणित माना जाता है। और आगे इसी दर्शन में कहा है देखिये– **"बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे"** ।।१।। **(२२५)** यह वैशेषिक दर्शन के छटे अध्याय का पहला वाक्य है जिसमें कहा गया है कि– वेद में जो कुछ लिखा है वह सब बुद्धि के अनुकूल है, तथा तर्क संगत है" इसके सम्बन्ध में न्याय दर्शन में शब्द–प्रमाण के अवसर पर– **"तद्प्राणएवमनृत व्याघात पुनरूक्त दोषेभ्यः"** ।।५६।। अध्याय २, इस सूत्र का अर्थ ये है कि वो शब्द प्रमाण होता है जिसमें कि खिलाफ वाकया (विरोधाभास) न हो आपस में कोई टकराव न हो, परस्पर कोई विरोध न हो, जिन अर्थों से वेद अनर्थ दोष से युक्त हो जायें यानी वेदों में खिलाफ़ वाक़या (विरोधाभास) बातें पायी जावें वो अर्थ सही नहीं है। वेदों का सही अर्थ वही हो सकता है जो शब्दों के अर्थ से निकलता हुआ, युक्ति संगत भी हो, इसी

वास्ते ऋषियों ने माना था, सायणभाष्य, सांख्यदर्शन–विज्ञानभिक्षु के भाष्य में एक कारिका है, कि– पहले वेद के वाक्यों को सुनों और फिर उनको दलीलों (तर्कों) से मनन करो तब उसको धारण करो अर्थात् उस पर अमल करो, बहुत से लोग ये कहेंगे कि, वेद के मन्त्रों के अर्थ में जो कि ईश्वरीय ज्ञान है, लेकिन उसका वेदार्थ तो आदमी करते हैं। इसलिए अर्थो में भी तो गलती हो सकती है, उसके लिए अर्थात् उन अर्थों को गलत या सही जांचने हेतु उन्हें अकल की कसौटी पर उतारने की जरूरत है।

मेरे मन्त्र में बाकी वेद मन्त्रों के अर्थ– कि हम सायणभाष्य व सूत्रग्रन्थ और ब्राह्मणभाग के अनुकूल लेते हैं। लेकिन मेरे मन्त्र ने कोई प्रमाण सायणभाष्य का या सूत्र का साथ नहीं दिखलाया। अब मैं थोड़े समय में ही ये बताना चाहता हूँ कि– कात्यायन आदि सूत्र जिनके आधार पर वो (पण्डित जी महाराज) वेदों का अर्थ करना चाहते हैं, वह किस–किस ज़माने (काल) में तथा किन–किन लोगों ने बतलाये हैं? देखिये यजुर्वेद अध्याय ३ का पहला मन्त्र, जिसकी भूमिका में जहां से वाममार्ग की पैदायश का जिकर चला है वहां इनका आचार्य महिधर क्या लिखता है? वह लिखता है कि– व्यास जी ने यह देखकर कि अब चारों वेदों का पढ़ना सामान्य बुद्धि वालों के बाहर है, इसलिए उन्होंने चारों वेदों के पठन–पाठन को विभाजित कर दिया और इसके लिए उन्होंने अपने चार शिष्य नियत किये, जिनका नाम, पेल, वैशम्पायन, जैमिनी और सामन्तो था, उनको अलग–२ वेद पढ़ा कर तैयार किया, जिनमें से वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य वैगेरा शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया, और याज्ञवल्क्य से एक दिन नाराज होकर वैशपायन ने कहा कि जो वेद तुमने मुझसे पढ़ा है उसे भूमि पर उलट दे, तो याज्ञवल्क्य ने उस वेद को कै (उलटी) के रूप में भूमि पर उलट दिया। वैशम्पायन ने तभी अपने दूसरे शिष्य को कहा कि तुम इसको खा लो ! उस शिष्य ने तीतर बनकर उस उलटी को खा लिया, । बस ! भाइयों ये थी बुनियाद उस वाम मार्ग की ! उसी दिन से यज्ञों में हिंसा और मृतक श्राद्ध वगैरा का प्रचार आरम्भ हुआ। कात्यायन सूत्र का निर्माण इसी काल में हुआ, क्योंकि– बृहदारण्यक उपनिषद में लिखा है कि– याज्ञवल्क्य की दो स्त्रियां थी, एक का नाम मैत्री तथा दूसरी का नाम कात्यायनी था, इसलिए ससुर और दामाद का एक समय में साफ़ पता चलता है। इसलिए कात्यायन को अपने सूत्र में **"गर्दभयज्ञ"** अर्थात् गधे को मार कर पानी में यज्ञ करने की विधि बतलाई है। और दूसरे आपस्तम्ब आदि सूत्रों में भी बैल को मार कर हवन करने की विधि बतलाई है, पण्डित जी महाराज! ये वाममार्गियों के सूत्र हमारे लिए किस प्रमाण के हो सकते हैं? हमारे लिए इनका हवाला देना बिल्कुल व्यर्थ है। और मनुस्मृति के अन्दर भी साफ़

टिप्पणी– [१] **"बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे"**।।१।। (वैशेषिकदर्शन अध्याय ६ सूत्र १) (बुद्धिपूर्वा) बुद्धिपूर्वक है (वाक्यकृतिः) वाक्य रचना (वेदे) वेद में। अर्थात् सूत्र में **"बुद्धि"** पद का अर्थ इस नाम का अन्तःकरण नहीं प्रत्युत नैसर्गिक नित्यज्ञान का बोधक है। यह पद ! वेद में जो वाक्य रचना है, पद व पदसमूहों की आनुपूर्वी है, वह सब बुद्धिपूर्वक हैं, नित्य ज्ञान मूलक है। वेद के इस रूप में भ्रम, प्रमाद आदि की सम्भावना नहीं, इसी कारण धर्म व अधर्म का बोध कराने में वेद का स्वतः प्रामाण्य है। ईश्वरीय ज्ञान होना इसका मूल है, मानव का ज्ञान यत्किञ्चित् अज्ञान मिश्रित रहता है। यह कभी सम्भव नहीं कि कोई मानव पूर्ण ज्ञानी हो, ईश्वरीय ज्ञान पूर्ण व नित्य है। मानव प्राणी के लिए जितना अपेक्षित है, वह वेद के रूप में प्राप्त है। उसका निरपेक्ष प्रामाण्य होने से वहां जो विहित है वह अनुष्ठेय तथा जो निषिद्ध है वह त्याज्य है, यथार्थ धर्म का स्वरूप वहीं से जाना जाता है। वह वेद–ऋग्, यजुः, साम, अथर्व रूप हैं।।१।।

(वैशेषिक दर्शनम्– पं० उदयवीर शास्त्री कृत भाष्य)

– "सम्पादक"

तौर से मिलावट मौजूद है जिसको मेरे भाई (पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र) स्वयं स्वीकार करेंगे। मनुस्मृति के अध्याय पांच में साफ तौर पर दिखलाया है कि, ब्राह्मण बच्चों के लिए अच्छे–अच्छे जानवरों को मारे, नहीं–नहीं बल्कि यहां तक लिखा है कि नौकरों के रोज़गार के लिए भी जानवरों को मारें। क्या कोई ब्राह्मण इस समय यह स्वीकार करेगा कि हमारे पूर्वज नौकरों के रोज़गार के लिए पशु मारा करते थे। जिसको हर व्यक्ति कहेगा कि ये सब बाद में मिलावट की गई है। ये बात आगे और भी साफ हो जाती है, जबकि महाभारत के शान्ति पर्व अध्याय २६४ में मनु के सम्बन्ध में लिखा है कि– **"मनु ने तमाम कर्मों में अहिंसा बतलाई है"**, और मौजूदा मनुस्मृति में "जगह–जगह पर हिंसा भरी पड़ी है, इसलिए पण्डित जी द्वारा जितने प्रमाण दिये गये हैं, सिवाय वेद के और तो सभी इसी किस्म के हैं, और वेद में से पण्डित जी महाराज जब आप **"श्राद्ध"** शब्द दिखला देंगे तो हम आपकी बात को मान लेंगे, अगर वेद में **"श्राद्ध"** न निकला तो आपको मानना होगा कि **"वेद में मृतक श्राद्ध नहीं है"**।।

–दस्तखत–

१. पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र (हिन्दी में)
२. मेघराज सिंह, मन्त्री–धर्मसभा, गोहावर (उर्दू में)

१. स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती (उर्दू में)
२. पं० प्रेमशंकर, मन्त्री–आर्यसमाज–गोहावर (हिन्दी में)

श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र :–

आप लोग सावधान होकर सुनें, कि मैंने जो अपने व्याख्यान में पहले वेदों के मन्त्र पढ़कर फिर उनका अर्थ करके और उसी के अनुसार सूत्र, मनुस्मृति, वेदांग, श्रौतसूत्र और बाल्मीकि रामायण, तैत्तिरियउपनिषद का प्रमाण दिया था। और मैंने कहा था कि– जो अनुवाद मैं करता हूँ वही बात सायणाचार्य जी ने भी वैसे ही कही है, इसके जवाब में हमारे पण्डित साहब (स्वामी दर्शनानन्द) जी को चाहिये था कि उन मन्त्रों के अनुवाद हेतु सायणाचार्य जी का भाष्य खोल कर पढ़ते, और पढ़कर उसमें से ये बात दिखलाते कि जैसा आपने अर्थ किया है ऐसा करना अर्थात् यह अर्थ सायणाचार्य द्वारा किये गये अर्थ के विरूद्ध है। जबकि ऐसा कुछ न करके अर्थात् मेरे किसी भी अनुवाद को न पढ़कर क्यों सिर्फ़ ज़ुबान से कह दिया कि– ये अनुवाद उनका विशेष अनुवाद है। जो ठीक नहीं है। मैं कहता हूँ भाईयो ! ये जगह धर्म विचार की है, इसमें वेदों का प्रमाण पण्डित साहब को बोलना चाहिये था, कि– **"मृतकों का श्राद्ध नहीं होता"** परन्तु पण्डित साहेबान द्वारा ऐसा कोई भी वेद मन्त्र नहीं बोला गया जो मृतक श्राद्ध का खण्डन करता हो, इस पर भी पण्डित साहब दावा करते हैं, और कहते हैं कि– वेद में केवल श्राद्ध शब्द ही दिखला दें तो मैं मान जाऊँगा, इसका जवाब मैं भी देना जरूरी समझता हूँ कि– पण्डित साहब अपने कथन में खुद ही मान गये हैं, कि वेद में तीन का श्राद्ध है, जब पण्डित साहब ही श्राद्ध मानते हैं, तो इसमें मैं ज्यादा और क्या कहूंगा? पण्डित साहब ने मेरे कहने के अनुसार मेरे विषय को छोड़कर अपनी ओर से दो–चार बातें कायम कर उन पर जवाबदेयी आरम्भ कर दी है। जिसमें मालूम होता है कि वे मूल विषय को गड़बड़ में डालना चाहते हैं, जिससे वास्तविक बात मालूम होने से रह जावे। परन्तु भाइयो ! ये वेदों की बात है, दर्शनों की नहीं, इसमें इधर उधर चलने से काम नहीं चलेगा, मैंने आरम्भ में चार दिन वेदों से ही मृतक के लिए–जल, धान, तिल आदि दान देना साबित किया है, और वही बात मैंने ब्राह्मणग्रन्थ और सूत्रों के सिलसिले (तारतम्य) में व्यक्त किये हैं, परन्तु पण्डित साहब ने– **"पितरों का लोक अलग है"** इस बात को बिल्कुल ही उड़ा दिया, आप कहते हैं कि प्राण मात्र मूर्ति का

क्या स्वरूप होता है? इसका उत्तर ये है कि– जो प्राणों का स्वरूप है वही उसकी मूर्ति कहलाती है। ये न्याय है कि जो स्वरूप जिस वस्तु के जैसा होता है, वो वही उसकी मूर्ति कहलाती है। या लक्षण–प्रमाण से वस्तु की सिद्धि होती है? जैसा कि मेरे भाई पण्डित साहब बयान करते हैं। मेरी असल बात है श्राद्ध की! तो फिर मैं पूछता हूँ आप मूल बात श्राद्ध को छोड़कर इधर–उधर लक्षण और प्रमाणों में क्यों चक्कर लगा रहे हो? कितने ही प्रमाण मैंने इसी तरह के स्वामी दयानन्द द्वारा बनाई गई संस्कार विधि में बतलाये थे, उनपर अपने कुछ भी विचार नहीं किया। मैं पूछता हूँ क्या ये प्रमाण जो मैंने बयान किये हैं आपको स्वीकार नहीं हैं, या ये प्रमाण अर्थात् वेदों के मन्त्र नहीं हैं? पण्डित साहब जवाब दें! और हाँ पण्डित साहब मैंने नहीं कहा था कि– **"अग्निष्वात्ता पितर आवें"** ये आप मेरे ऊपर झूठा आक्षेप लगा रहे हैं। वो मन्त्र ही इससे अलग है। जिसमें पितरों का आना लिखा है आप कम से कम मंत्रों पर ध्यान तो दिया कीजिए, आप कहते है कि कहीं मुर्दों का आना जाना भी होता है ? और भाई जीव को भी नित्य मानते हो तो फिर मरा क्या? सत्यार्थ प्रकाश में कहते हैं कि, जीव आकाश में विचरते रहते हैं, और यहां सत्यार्थ प्रकाश में तो तुम्हारे मुक्त हुए जीवों का बार–बार आना जाना लिखा है, कि मुक्ति के स्थान में बार–बार आना ही आना हो जायेगा तो वहां आमदनी ज़्यादा तथा खर्च कम होने से झगड़ा हो जावेगा, इससे तो युक्ति से ही चला जाना बेहतर है। तो इस पर मैं पूछता हूँ कहिये पण्डित साहब ये जीव मरे हुए है या जीवित साढ़े तीन हाथ के हैं? या वेद में तीन का श्राद्ध करने से साफ़ तौर से ज़ाहिर है कि– **"जीवितों का श्राद्ध"** ये अपना वाक्य हर समय आपको याद रखना चाहिये,। आप कहते हो कि– गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यस्त, इन तीन का ही नाम, बाप–दादा तथा परदादा है। तो भाई फिर असली दादे–परदादे का क्या नाम रहा? मैं इसको बड़ी खुशी से मान लेता अगर मेरे पण्डित साहब अपने इस वचन की पुष्टि में कोई प्रमाण बोल जाते। वेद मन्त्र में जो बहुवचन अर्थात् ज़मा शब्द आया है उसकी फिर क्या गति होगी? आप संशय से बाप–दादे–परदादे बनाये जायेंगे तो पता चला कि एक के बहुत से बाप–दादे–परदादे बन गये, मैं समझता हूँ इस बात से शायद आप स्वामी दयानन्द जी की लिखी परम्परा **"पतिएकादशम्"** अर्थात् एक स्त्री के ग्यारह पति कराने चाहियें, वाली बात की पुष्टि तो नहीं कर रहे? कि एक व्यक्ति के बहुत से बाप–दादे व परदादे होने चाहिये। अध्याय १९ के ६७ वें मन्त्र का जो अनुवाद आपने बोला है वो बिल्कुल अधूरा और बेवजन है। उसमें साफ लिखा है कि, जिसका मैं पूरा अनुवाद करता हूँ, ऐसा ही सायणाचार्य जी ने लिखा है, और इसके ऊपर शतपथ का भी हवाला दूंगा, जिसको दयानन्द सरस्वती हर एक मन्त्र के साथ मानते है, इसलिए जो पितर यहां मौजूद हैं, यानी जो भूलोक में निवास करते हैं, और जो पितर इस भूलोक में निवास नहीं करते, जिनको हम नहीं जानते हैं, अग्निदेवता तुम उन सबको जानते हो, और उनके लिए हमारी दी हुई श्राद्ध की सामग्री ले आओ। आप अगर पूरा मन्त्र पढ़ लेते तो आपके मन में शान्ति पड़ जाती। क्या संसार में ऐसा कोई बेटा होगा जो बाप के वानप्रस्थ होने पर........ यहां तक अर्थ करके आगे आपने वेदमन्त्र व श्रौतसूत्र आदि को बिल्कुल त्याग कर न्याय शास्त्र की उलझन में अर्थ को खराब करना चाहा है, मगर हम जब तक आपसे ये प्रमाण न प्राप्त कर लें कि– **"वेद में लिखा है कि मृतक श्राद्ध नहीं करना चाहिये"** तब तक आपको वेद विचार से हटने नहीं देंगे। क्या आपको स्वतः प्रमाण वेद मन्त्रों में ये बातें नहीं मिली? कि पितर का सम्बन्ध उसकी औलाद के साथ क्या होता है? ये तो आप अदालत से तय कर सकते हैं, कि बेटा–बाप की जायदाद का क्यों अधिकारी होता है? या आपने ऐसा कोई सपूत बेटा देखा जो बाप के मर जाने पर उसके कर्ज़ को छोड़ बैठे या किसी का बाप डिप्टी

कमिश्नर था और उस बाप की औलाद अपने बाप की इज्जत को अपने साथ न लगावे। हम इस बात को ज्यादा विस्तार में नहीं ले जाना चाहते बल्कि उन इन्साफ़ पसन्दों के ऊपर छोड़ते हैं कि जो हिन्दू कानून को समझते हैं, कि जिस–जिसको पिण्ड या जल पहुंचता है वो उसकी जायदाद का अधिकारी होता है। अन्यथा बाप के मर जाने पर बेटे बाहर कर दिये जाया करें, आप तो वेद पढ़े हुए हो पण्डित साहब ! क्या आपको पिता–पुत्र का सम्बन्ध भी मालूम नहीं हैं? सुनिये हम आपको दयानन्द जी का ही माना हुआ वेद वचन प्रमाण स्वरूप पेश करते हैं, हालांकि वह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन हैं, परन्तु स्वामी जी ने इसको सामवेद का वचन लिखा है। जिसका अर्थ ये है कि– **"बेटे तू मेरे अंग'अंग से पैदा हुआ है अर्थात् तू मेरा जिगर का टुकड़ा ही नहीं बल्कि मेरी आत्मा है मुझसे पहले न मर कर सौ वर्ष तक जीवित रह"** पण्डित साहब ! अब आपको मालूम हो गया होगा कि बाप–बेटे का सम्बन्ध क्या है? क्या बाप का दिया हुआ नामकरण बेटे पर प्राप्त होता है ? ये बात आपको मालूम नहीं, कि गर्भ में रक्षा बाप करता है, क्या वो संस्कार विधि में कहीं कहे नहीं गये जो आप उन सबको ताक पर रखकर कहते हो कि– द्वैतभाव वस्तु का जन्म–जनक भाव सम्बन्ध नहीं होता, प्यारे पण्डित जी आप ईश्वर और जीव को नित्य मानते हो, पहला ईश्वर और जीव का जन्य–जनक भाव वेद कैसे मानता है ? मन्त्र सुनों यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र १० इसमें ईश्वर का सम्बन्ध पिता–पुत्र और भाईचारे का है, जिसका अर्थ है कि वह हमारा पैदा करने वाला आदि–२ है। आपने जो सूत्र बोले हैं वो इन प्रसंगों के नहीं, क्या ये बोले गये सूत्र श्राद्ध विषय के हैं ? न आत्मान्तर वाला आत्मा और बन्धन और प्रकृति के विषय का है कि जीव को बन्धन होता है कि नहीं, अगर होता है तो क्यों? **"तद् प्रमाणम्.. ...."** वाला सूत्र पूर्व पक्ष का है कि नस्तिक लोग वेद को नहीं मानते, आप भी पण्डित साहब क्या दलीलें रखते हो? वह कहते हैं कि उस वेद का प्रमाण नहीं जिसमें अनृतव्यघात और प्रक्षेप दोष हो, परन्तु उसी अनुवाद वाला भाष्य मेरे पास मौजूद है और शायद पण्डित साहेबान के पास भी होगा, उसमें देख लीजिये और मैं चैलेंज करता हूँ कि अगर ऐसा अर्थ न निकले जैसा कि मैंने किया है, तो मैं सब सभा के सामने कहता हूँ कि– **"मैं हार जाऊँगा"**। मैं प्रधान जी से प्रार्थना करता हुआ बड़े जोर के साथ कहता हूँ कि वे काशी से वात्सयायनं का हिन्दी अनुवाद अर्थ वाला भाष्य मंगवा लें और उसमें देख सकते हैं कि, ये सूत्र पूर्व पक्ष का है और किस मौके का है? इसका श्राद्ध से कोई सम्बन्ध है या नहीं? आप कहते हैं वेदों में तत्व ज्ञान का उपदेश है, आजकल के नये भाष्य में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो ज्ञान सिखलाया है वो शायद वाम मार्ग का भी परदादा होगा ! ध्यान दीजिये आपने पहले वाममार्ग की बात कहकर अपने आपको विषयान्तर में ध् ाकेल लिया, तो आप वाममार्ग पर ही सुनिये, स्वामी दयानन्द जी वेद का भाष्य करते हुए क्या नई–२ वाम मार्गीय बातें बतला रहे हैं ?–पढ़िये–दयानन्द का यजुर्वेद भाष्य अध्याय २८ पेज ६१२, कि हे मनुष्यों ! जैसे बैल, गौवों को ज्ञाभन (गर्भिणी) करके पशुओं में वृद्धि करता है वैसे ही आप ग्रहस्थ लोग भी अपनी स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें, । अध्याय २५ पेज ३७६ में–स्थूल गुदान्द्रिय के द्वारा अन्धे सापों को पकड़ना लिखा है, तथा अध्याय ६ मन्त्र १४ में, गुरू के द्वारा शिष्य की गुदा और लिग को शुद्ध करना कहा है, तथा पेज १४१२ में देश को ऊँट के समान लिखा है, आगे स्त्रियों अध्याय ३० पेज ७७३ में लिखा है कि– मछलियों से जीने वाले को पैदा कीजिये, ऐसा लिखा है। अध्याय ३० के ही पेज ७८३ में साँप आदि को पैदा करने की प्रार्थना लिखी है। मनुस्मृति के श्लोक के नाम से दयानन्द जी कहते हैं कि अगर शिक्षा प्राप्त करने वा आजिविका कमाने के लिए कोई व्यक्ति परदेश गया हुआ हो, और वह पांच छः वर्ष तक वापिस न आवे, तो

उसकी स्त्री को चाहिये कि उसके आने का समय बीत जाने पर, किसी अन्य व्यक्ति से शादी कर उसे अपना पति बना ले। आगे और देखिये, सत्यार्थ प्रकाश सन् ७५ की प्रथम बार छपी हुई में पेज **११८** में नील गाय को मारने का उपदेश दिया है, मैं पूछता हूँ पण्डित साहेबान ने याज्ञवल्क्य जी के बारे में कहने से पहले क्या इन बातों को ध्यान में नहीं रक्खा, जो दूसरों पर कीचड़ उछालने चल दिये, क्या उस समय दयानन्द को भी वाममार्ग की शिक्षा हुई थी, मेरे मित्र जवाब दें?

जिस याज्ञवल्क्य के बारे में मेरे मित्र ने कहा है वह दूसरे याज्ञवल्क्य थे, जो जनक के समय में थे, ये दूसरे याज्ञवल्क्य हैं, इस पर भी इस बात से क्या लेना–देना, विषय श्राद्ध का चल रहा है, मेरे मित्र पण्डित साहेबान को चाहिये कि वे श्राद्ध विषय पर ध्यान दें,–शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि– पितर मनुष्यों से अर्न्तध यान रहते हैं, और वे महाभाग्यशाली होने से अनेक रूप धारण कर सकते हैं, प्राणों के निमित्त पराभूम शतपथ ब्राह्मण में प्रति माह दिया जाता हैं, अगर जीवितों का श्राद्ध होता तो क्या वे उन्नतिस दिन भूखे रहते,? **"अग्निष्वात्ता"** का अर्थ जो शतपथ ब्राह्मण जो यजुर्वेद का ब्राह्मण है उसमें लिखा है कि– **"यान अग्निर्रेवदहति स्वदयति ते पितरः अग्निष्वात्ता"** अर्थात् जिनको अग्नि जलाती है, यानी अग्नि जिनके शरीर का रसास्वादन करती है चिता में ! उनका नाम है **"अग्निष्वात्ता"**!! आगे शतपथ में ही लिखा है कि– पितरों को भोजन दोपहर के पीछे (पश्चात) तथा मनुष्यों का दोपहर में, और देवता पूजा आदि और उनके लिए बलि–भोग आदि दोपहर से बहुत पहले लिखा है, ये दो चार विवाद शतपथ के प्रमाण से देख लीजियेगा, कल्पसूत्र जो वेदांग हैं उनके चौथे अध्याय के अन्त में, बिल्कुल श्राद्ध विधि देख लीजियेगा, इस प्रकार आप बाल्मीकि रामायण को भी देख लीजियेगा जिसमें **"मृतक श्राद्ध"** का करना बराबर लिखा है। **"ये बातें दूसरों की मिलावटें हैं"**, इसके सिवाय और आप क्या जवाब देंगे? इस बात का हमें पहले ही पता है। मेरे मित्र पण्डित जी सूत्र ग्रन्थों को तो संस्कार विधि ने भी मान्यता दी है, आपको ध्यान होना चाहिये। अस्तु !!

–दस्तखत–

१. पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र (हिन्दी में)	१. स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती (उर्दू में)
२. पण्डित रामशंकर, मन्त्री–आर्यसमाज, गोहावर (हिन्दी में)	२. मेघराज सिंह–सैक्रेटरी, धर्मसभा, गोहावर (उर्दू में)

श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती :–

मैंने पूछा था कि **"श्राद्ध"** शब्द चारों वेदों में से बतला दो, इसको पण्डित जी ने चारों वेदों की किसी भी संहिता में न बतलाया और न ही दिखलाया, इसका उत्तर केवल यह कहकर टाल दिया कि– **"मैंने कहा है कि तीन का श्राद्ध करना लिखा है"**। श्राद्ध शब्द की जो परिभाषा आपने दी कि– श्राद्ध मृतकों के लिए होता है, वह वेदों में से देख कर नहीं दी ब्लकि अपनी ओर से स्वयं का भाष्य करके दे दी, यह आपके द्वारा दी गई परिभाषा अर्थात् मृतक श्राद्ध परिचय, वेद में न दिखलाना और स्वेच्छा से ही इसका मण्डन करना इस बात का पूरा सबूत है कि ये अवैदिक कर्म है। आपने मुझ पर दोष लगाया है कि– मैंने आपको न्याय शास्त्र के झंझट में डाल दिया। लेकिन मैं पूछता हूँ कि क्या आप शास्त्रार्थ न्याय को छोड़कर अन्याय से करते है? मित्रवर, शास्त्रार्थ तो जब भी होगा न्याय व कायदे के अनुसार ही होगा, न्याय का अर्थ ही ये है कि– किसी

वस्तु की तर्क व प्रमाण के माध्यम से छानबीन की जावे, जब आप वेद के प्रमाणों व अन्य प्रमाणों से अपने पक्ष की सिद्धि के लिए संकल्प लेते हैं तो क्या वह अन्याय है? और वेदों के प्रमाणों के साथ–साथ न्याय को भी साथ लेने में क्या कठिनाई है, अतः आपका ये कहना कि मैंने आपको न्याय के झंझट में डाल दिया, ठीक नहीं है।·क्या आपने जो मन्त्र यजुर्वेद का ६७ वाँ बतलाया है कि– **"मैंने सायणाचार्य के भाष्य के अनुसार किया है"** कृपा करके सायणाचार्य के भाष्य में ही दिखला दीजिये, अगर ना दिखला सके तो आपको मानना पड़ेगा कि अपने दावाखिलाफ़ी आचरण किया है। और आपके अन्य दावे भी जो सायणाचार्य के भाष्य से सम्बन्धित हैं आदि–२ ऐसे ही कथन के विरूद्ध आचरण रखते हैं, इसके स्पष्टीकरण हेतु मैं आपको अपने समय में से पांच मिनट, नहीं–नहीं चलो दस मिनट देता हूँ, आप दिखलायें। (समय देने पर भी नहीं दिखलाया गया..........) कहिये मित्र! अब तो आपकी दावा खिलाफ़ी पक्की हुई कि नहीं? खैर ! आपने न्याय शास्त्र का– **"शब्द प्रमाणयम्............"** सूत्र पढ़कर दिखलाया था कि नास्तिकों ने ये पूर्व पक्ष किया है। और साथ ही इसके ये भी दिखला दीजिये कि– तत् शब्द जो गुजरी हुई बातों को प्रकट करता है वह क्या है? इस सारे वात्स्यायन भाष्य में कहीं तत् शब्द से पहले वेद सम्बन्ध ही दिखला दीजिये इसके लिए मैं आपको आपने समय में से दस मिनट देता हूँ। आपने स्वयं **"अग्निष्वात्ता"** का ये अर्थ किया है कि– अग्नि उसको चाटता हुआ यानी उसका स्वाद लेता हुआ उसे जलाता है। मैं पूछता हूँ कि क्या वह अग्नि पितर को जलाता है या शरीर को? अगर शरीर को जलाता है तो ये पितर की तारीफ़ न हुई, अगर पितर को जलाता है तो पितर रहा ही नहीं, उसका तो जल कर अस्तित्व ही समाप्त हो गया। तो फिर श्राद्ध किसका होगा? इसलिए पण्डित जी महाराज इसका अर्थ मैंने नहीं किया था– गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासी, ये तीन पितर होते हैं, ब्लकि ये बतलाया था कि पितर इन तीन अवस्थाओं में रहते हैं, आपका ये कहना कि उनके सिवाय असली पितर और कौन से हैं? ये सरासर आपका भ्रम हैं।

इन तीन पितरों में से दो ऐसे हैं, जिनको अग्नि चाटता हुआ यानी स्वाद लेता हुआ चलता है, अर्थात् ग्रहस्थी व वानप्रस्थ जो नित्य हवन करने वाले हैं, और अग्नि उनके शरीर में से पसीने के द्वारा स्वाद लेता हुआ जलता है। वह **"अग्निष्वात्ता"** है। और तीसरे पितर जो सन्यासी अवस्था में हैं, जो अग्नि होत्र से मुक्त है अर्थात् जो अग्निहोत्र नहीं करते वो **"अनग्निदग्ध"** हैं, आप शायद इस पर ये कहें कि **"दग्ध"** शब्द का अर्थ तुम बिल्कुल जलना न लेकर केवल अग्निहोत्र तपना क्यों बतलाते हो? आपको पता होना चाहिये पंण्डित जी महाराज कि लोगों में प्रायः आमतौर पर बोला जाता है? कि **"मैं गर्मी से जल गया"** मैं पूछता हूँ कि क्या उस समय कहने वाले च.१५ का शरीर पूर्णतः जल जाया करता है? यही**अग्निदग्ध"** और **"अनग्निदग्ध"** की है। मैंने जो यह कहा था कि दो तत्व–पदार्थों में, जन्य–जनक भाव सम्बन्ध नहीं होता, उसका उत्तर मेरे मन्त्र ने दिया कि तुम ईश्वर और जीव को तत् मानते हो, और वेदों में ईश्वर को जीव का जन्यता बतलाया है। तथा उस मन्त्र में भाई और पिता दोनों को एक ही साथ जन्म लेने वाला आपने कहा। मेरा कहना है कि आपने जो अर्थ किया है वह असम्भव है, जो वेद में हो ही नहीं सकता, भाई और पिता दोनों एक नहीं हो सकते, भाई वो होता है जो साथ पैदा हो, और पिता वो है जो पैदा करने वाला हो और इन दोनों बातों का एक में घटना असम्भव है, फिर आपने वेद मन्त्र का अर्थ ऐसा ही किया जो महर्षि कपिल ने सांख्य दर्शन में कहा है कि– वेदों में असम्भव बातों का उपदेश नहीं है और पण्डित जी महाराज के उपदेश से अर्थात् अर्थ

से नामुमकिनता अर्थात असम्भव का होना सिद्ध होता है इसलिए कहना पड़ता है कि, आपने इस वेद मन्त्र ६७ के अर्थ को भी नहीं समझा, वेदार्थ समझने के लिए वेद के अंग एवं उपागों को समझने की योग्यता को रखना अत्यावश्यक है। जैसा कि महर्षि कपिल जी ने सांख्य दर्शन में बतलाया है (प्रमाण दिखलाते हुए... .....) कि जो वेद के अंग व उपांग को जानता है उसको वेद के अर्थ का ज्ञान हो सकता है। आपने वेद के अंग व उपागों की अनभिज्ञता में वेद के अर्थ का अनर्थ किया है। जो किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है।

आगे मैंने जो पूछा था कि, प्राण रूप मूर्ति का लक्षण कर उसे प्राणों में घटायें, कि क्या प्राण–मूर्ति हो सकते हैं या नहीं? आपने यह सब न बतला कर उसके स्वरूप का वर्णन कर डाला, मैंने कहा था कि– मूर्ति का लक्षण करके घटायें आपने उसका लक्षण करके घटाने के बजाय यह एक नई बात बताई कि जो स्वरूप जिस वस्तु का होता है वो ही उसकी मूर्ति होती है। कृपा करके इस अद्‌भुत न्याय को किसी न्याय शास्त्र की पुस्तक में दिखाने का कष्ट करें जिससे हम आज तक अनजान ही रहे...... श्रौताओं में जर्बदस्त हंसी व तालियां...... इसके लिए मैं अपनी ओर से दस मिनट देता हूँ। (...... चारों ओर सन्नाटा...... समय देने पर पण्डित ज्वाला प्रसाद जी मिश्र का मौन रहना........) मैंने आपको कहा था कि– जिस वेद मन्त्र से आपने प्राण मूर्ति बतलाई है, उस वेद मन्त्र में, मूर्ति शब्द नहीं है। आपने इसको भी वेद में नहीं दिखलाया, आपने संस्कार विधि का हवाला देते हुए बहुत जोर के साथ बतलाया था कि,– **"दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके तथा जनेऊ को उलटा करके अर्थात् दायें से बायें कन्धे पर लेकर पितर को पानी देते हुए बोले कि– "पितर शुन्दध्वम्"!** यह आपको मालूम होना चाहिये कि ये समर्थ कर्म है। असमर्थ नहीं है अर्थात् असम्भव नहीं है, जो देश व काल के अनुरूप किया जाता है। इसका मतलब ये है कि– पितर को उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बिठाया जावे जिसका तात्पर्य ये है कि पितर–पिता को उत्तराभिमुख बिठाये, क्योंकि हिन्दुस्तान में तीन दिशाओं से सूर्य की धूप आती है पूरब, पश्चिम तथा दक्षिण, लेकिन उत्तर में धूप नहीं आती, यदि पितर उत्तराभिमुख होकर बैठेगा तो सूर्य की किरणों की वजह से आंखों में चुँधयायी न आकर, पितर की चेष्टा को ठीक तरह से देखने का अवसर प्राप्त होगा, कि इस पितर ने ब्रह्मचर्य आश्रम को ठीक से पालन किया है कि नहीं? और ये समावर्तन संस्कार करके गृहस्थ आश्रम के योग्य है कि नहीं? दूसरी बात पितृ कर्म में आपस्तम्ब होने का मतलब क्या है? क्योंकि द्विज मनुष्य देव कर्म तथा पितृ कर्म दो तरह का कर्म करते हैं, तो दोनों प्रकार के कर्म को निमन्त्रित कराने के लिए जनेऊ का उलटा–सीधा पहनना बताया गया है, ताकी आने वालों को बिना बतायें ही पता चल जावे कि सामने वाला मनुष्य किस–२ कर्म में लगा हुआ है। इन सभी तरीकों का ख्याल करते हुए आपने ये जो कहा है कि जमीन पर पानी डालें, इसका मतलब ये है कि, यहां जमीन से मतलब जमीन की इन्द्रीपांव से हैं, यानी पितर–पिता के पांव पर पानी डाल कर कहे कि **"पिताजी तुम शुद्ध हो लो,"** आपने इस बात को ख्याल न करके इसकी जगह पर आपने पितृ श्राद्ध निकाल लिया, अब मैं इन एतराजों का जवाब जो आपने आर्य समाज से किये हैं, कल दूंगा जिनका इस विषय **"मृतक श्राद्ध"** से कोई सम्बन्ध नहीं है। और मैं अपने दावे में दिखलाऊँगा कि जो कुछ स्वामी दयानन्द ने लिखा है– वह अकल और योग्यता से परिपूर्ण है, अब मैं आपके दावे का खण्डन क्रमवार दिखलाता हूँ। देखिये तथा ध्यान पूर्वक सुनिये–

१. वेदों में **"मृतक श्राद्ध"** शब्द नहीं दिखलाया गया।

२. **"श्राद्ध"** शब्द भी वेदों में नहीं दिखलाया गया।

३. सायण भाष्य का दावा तो किया परन्तु वह भी अन्त तक दिखाया नहीं गया।

४. न्याय दर्शन का अद्‌भुत भाष्य भी नहीं दिखाया गया। जिसका जिकर आपने अपने वक्तव्य में किया था।

५. मूर्ति का लक्षण भी नहीं किया गया।

६. वेद मन्त्रों का स्वयं का बनाया हुआ भाष्य प्रस्तुत करने पर उसकी जगह पर किसी मान्य आचार्य का भाष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

७. जिन प्रमाणों का दावा किया गया वे केवल दावे ही बन कर रह गये, दिखाये नहीं गये।

पण्डित जी ने जो भी बातें वेद मन्त्रों के भाष्य को आधार बना कर कहीं वे सब असम्भव व मिथ्या थी, कुछ बातों को तथा दर्शनों के प्रमाणों को विषयान्तर कह कर टाल दिया गया। अब नियम के अनुसार शास्त्रार्थ समाप्त हो गया, जानने वालों ने वस्तुः स्थिति (असलियत) को जान लिया, अब कल दूसरे विषय पर शास्त्रार्थ चलेगा तो हम सभी प्रमाण व दलीलें विस्तार से आप लोगों के समक्ष रक्खेंगे। इत्योम्।।

–दस्तख़त–

१. मेघराज सिंह
सैक्रेटरी–धर्मसभा, गोहावर (उर्दू में)

२. पण्डित रामशंकर, मन्त्री–आर्य समाज
गोहावर (हिन्दी में)

१. स्वामीं दर्शनानन्द सरस्वती (उर्दू में)

२. पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र (हिन्दी में)

।। समाप्त ।।

एक सौ सतरहवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान	:	तुलसी पुर (गौन्ड़ा)
दिनांक	:	१९८७ ई०
विषय	:	इस्लाम की तालीम
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	तर्करत्न लक्षमीनारायण शास्त्री
मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	मौलवी अहसानउल्ला साहिब

नोट– यह शास्त्रार्थ सामग्री "**श्री तर्करत्न लक्षमीनारायण शास्त्री, साहित्यरत्न**" ग्राम व पोस्ट–"लौकहवा," जिला गौन्डा (उ०प्र०) द्वारा प्राप्त हुई, हम उनके आभारी हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

मेरे ग्राम में शास्त्रार्थ महारथी पण्डित शान्तिप्रकाश जी पधारे थे, मैंने उनसे इस्लाम, ईसाई तथा सनातनधर्म पर कई प्रश्न किये और उन्होंने उनका उत्तर देने के बाद मुझे शास्त्रार्थ करने की प्रेरणा दी, मैंने पूज्य पण्डित जी को कहा कि मैंने पूज्य अमर स्वामी जी, पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री तथा पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार जी से भी शास्त्रार्थ कला सीखी है तथा उनका आर्शीवाद प्राप्त किया है।

अब आप लोग मेरे एक शास्त्रार्थ की झलक देखिये जिसने केवल ३० मिनट में ही **"निर्णय के तट पर"**[१] पहुँच कर सहस्त्रों दर्शकों को मन्त्र मुग्ध कर दिया। आप भी देखिये और लाभ उठाईये !!

निवेदक–

"तर्करत्न लक्षमीनारायण शास्त्री"

लोकहवा (गोन्डा)

(उ०प्र०)

टिप्पणी–

१– प्रस्तुत ग्रन्थ "निर्णय के तट पर" अपने आप में एक विशेष महत्व रखता है जिसकी झलक आपको केवल उपरोक्त शास्त्रार्थ में ही नहीं अपितु अनेकों स्थलों पर देखने को मिलेगी। जिसका श्रेय केवल मात्र शास्त्रार्थ महारथी अमर स्वामी जी महाराज को ही जाता है। जिनके अथक प्रयास से यह लुप्त सामग्री प्रकाश में आ सकी, जिसके अध्ययन करने पर प्रत्येक विषय का नीर, क्षीर स्वतः ही हो जाता है।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

मौलाना अहसानउल्ला साहिब–

पण्डित जी मैं पहले हिन्दु था तथा मथुरा में एक मन्दिर का मठाधीश था, किन्तु मैं हिन्दू धर्म को त्याग कर पाक इस्लाम में आकर शान्ति ग्रहण कर रहा हूँ। इस्लाम मजहब सर्वश्रेष्ठ है, पण्डित जी ! आप भी इसे ग्रहण कर लीजिये, हमारे मौहम्मद साहब पर ईमान लाकर जन्नत (स्वर्ग) का आनन्द लूटिये।

तर्करत्न लक्ष्मीनारायण शास्त्री–

मौलवी साहब ! आप कहते हैं कि मैं पहले हिन्दु था, तो मौलवी साहब आप बताईये कि हिन्दु धर्म में ऐसी क्या खराबियाँ थीं जिनको त्याग कर आपको इस्लाम धर्म कबूल करना पड़ा, और इस्लाम धर्म में ही ऐसी कौन सी विशेषताएँ थी जो आपको केवल इसी में आना पड़ा।

मौलाना अहसानउल्ला साहिब–

पण्डित जी हिन्दु धर्म में लोग मूर्ति (बुत) की पूजा करते हैं,।

तर्करत्न लक्ष्मीनारायण शास्त्री–

यदि हिन्दू मूर्ति पूजते हैं, तो क्या मुसलमान लोग कब्र व ताज़िया नहीं पूजते हैं ?

मौलाना अहसानउल्ला साहिब–

पण्डित जी आपको पता होना चाहिये कि कुरान पवित्र पुस्तक हैं, जो सारे संसार भर के लिए उपदेश देती है जो खुदा की ओर से नाज़िल (प्रकट) हुई है।

तर्करत्न लक्ष्मीनारायण शास्त्री–

मौलवी साहब आपने बहुत खूब फ़रमाया ! हज़रत जिस कुरान का आज जिकर कर रहे हैं वह कुरान तो असल ही नहीं हैं, सही कुरान की आयतों को तो बकरियों ने चर (खा) लिया था। हज़रत मौहम्मद साहब के ऊपर जो आयतें जीब्रील फरिश्ता लाता था उस आयत की पुस्तक को खलीफा उस्मान ने जलवा कर राख कर दिया था, और उसकी जगह पर वर्तमान कुरान को लिखवाया था। अब आप ही बतलाइये कि यह मौजूदा कुरान हज़रत मौहम्मद साहब के समय की है या हज़रत उस्मान के समय की है?.......शोरोगुल.... .....मौलाना साहब इधर–उधर की बातें न करें, मैं कहता हूँ आप अल्लाह की कसम खाकर कहिये कि उन पहली आयतों को बकरियों ने चर लिया था या नहीं? मौलवी साहब ने स्वीकार किया........चलो आपने इस बात को स्वीकार तो किया, दूसरे मेरा कहना यह है कि,– **"कुरान सारे विश्व के लिए नहीं है बल्कि वह सिर्फ अरब देश वालों के लिए ही है"** सुनिये कुरान स्वयं क्या कहाता है?– **"अन्ना अन जलना कुरानन् अरबीयन्"** मौलवी साहब जब यह कुरान अरब वालों को समझाने के लिए अरबी भाषा में उतारा है, तब हमारे भारत में इस अरबी कुरान और पैगम्बर की क्या आवश्यकता है? यहां के लोगों को यहां की भाषा में ईश्वरीय वेद ज्ञान उपलब्ध है, जिसकी पवित्र शिक्षाओं को ग्रहण कर मनुष्य मात्र लाभ उठाता है, आप भी क्यों न इसे ग्रहण कर अपने जीवन को पवित्र बनाते हो ?

मौलाना अहसानउल्ला साहिब–

हिन्दु लोग लिंग पर जल चढ़ाते हैं ? यह कार्य कहां तक और कितना पवित्र है? क्या इसका कोई जवाब तुम्हारे पास मौजूद है ?

तर्करत्न लक्ष्मीनारायण शास्त्री–

वाह ! वाह !! मौलवी साहब आप भी जो मन में आया कह दिया, स्वयं के गिरहबान में झाँक कर नहीं देखते ! अरे हिन्दु लोग तो केवल जल ही चढ़ाते हैं परन्तु आप लोग तो काबे में जाकर उस संगअसवद (लिंग) को मुंह से चूमते हो अर्थात् उसका बोसा लेते हो।......चारों तरफ करतल ध्वनि के साथ जय–जयकार की ध्वनि...........वैदिक धर्म की जय........के नारों से आकाश गूंज उठा।

नोट– अगले दिन मौलाना साहब शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित ही नहीं हुए !

"लक्ष्मीनारायण शास्त्री"
(लौकहवाँ–गौण्डा)

टिप्पणी– * यह उपलब्धि, मात्र आर्य विद्वानों, शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थ सुनने व देखने की है, धन्य है उन महान मूर्तियों को जिन्होंने अपने तर्क के तीरों से हमें रास्ता दिखाया तथा संसार में वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार किया। परमात्मा करे वह शास्त्रार्थ का युग पुनः लौट आवे।

एक सौ अट्ठारहवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

दिनांक : ६ तथा १० सितम्बर सन् १६८८ ई०

विषय : प्रत्येक वेद मन्त्र के आरम्भ में **"ओ३म्"** बोलना चाहिये या नहीं ?

वादी शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित अखिलेश कुमार "लखनवी"

प्रतिवादी शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित वेद भूषण जी, हैदराबाद

उपस्थित विद्वान : श्री ओ३म प्रकाश सेवक (प्रधान आर्य समाज–लालबाग–लखनऊ) श्री सत्य देव जी सैनी, श्री सत्य प्रकाश जी, श्रीमति उर्मिला आर्या, आदि–२।।

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य समाज, लालबाग–लखनऊ के वेद प्रचार सप्ताह पर श्री पण्डित वेदभूषण जी, हैदराबाद से लखनऊ दिनांक ३–६–८८ को पधारे थे। मुझे इसकी पूर्व सूचना मिल गई थी, उस समय मैं आर्य समाज लालबाग की आर्य वीरदल का अधिष्ठाता था, हमने आर्य समाज लालबाग के प्रधान श्री ओम्प्रकाश जी "सेवक" से प्रार्थना की, कि वह हमारा शास्त्रार्थ श्री पण्डित वेद भूषण जी से करवा दें, परन्तु उन्होंने मेरे सामने प्रस्ताव रक्खा कि मैं कुछ इससे पहले उक्त पण्डित जी से विचार विमर्श कर लूँ, तथा इसी दौरान उन्होंने मुझे अपने घर पर आने का निमन्त्रण दिया क्योंकि पण्डित वेद भूषण जी इन्ही के निवास स्थान पर ठहरे हुए थे। लेकिन हमने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि हम चाहते थे कि यह वार्ता व्यक्तिगत तथा संक्षेप में न होकर सार्वजनिक शास्त्रार्थ के रूप में हो ताकि अधिक से अधिक व्यक्ति इससे लाभ उठा सकें।

इसी विषय को लेकर दिनांक ५–६–८८ की रात्रि को आर्यप्रतिनिधि सभा उ०प्र० लखनऊ की यज्ञशाला, में, जहाँ पर आर्य समाज लालबाग की ओर से वेद प्रचार सप्ताह चल रहा था, हमने श्री प्रधान जी की अनुमति प्राप्त कर सभा के बीच में ही श्री पण्डित वेद भूषण जी को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दे दी। क्योंकि वह इस बात के पक्षधर थे कि– **"प्रत्येक मन्त्र के पूर्व "ओ३म्" नहीं बोलना चाहिये"**। उस दिन कुछ कारणों वश शास्त्रार्थ होने का निर्णय नहीं हो पाया, परिणाम स्वरूप हमने अगले दिन कहा की या तो शास्त्रार्थ कराओ अन्यथा हम अपनी सदस्यता से त्यागपत्र दे देंगे। फलतः हमें त्याग पत्र ही देना पड़ा तथा उसी समय से प्रतिज्ञा कर ली कि अब हम स्वतन्त्र रूप से वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार करेंगे।

दिनांक ६–६–८८ ई० की रात्रि को हमने एक पत्र श्री पण्डित वेद भूषण जी के नाम लिखा तथा उसकी एक प्रति आर्य समाज के प्रधान जी को दी जो इस प्रकार था–

।। ओ३म् ।।

सेवा में, ६–६–८८

श्री पण्डित वेद भूषण जी,

अध्यक्ष–अर्न्तराष्ट्रीय वेदसंस्थान,

हैदराबाद !

श्री युत् पण्डित वेदभूषण जी सादर नमस्ते। परमात्मा की कृपा से हम कुशल हैं तथा आपकी कुशलता एवं दीर्घायु के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं, हम जैसे नये आर्य युवकों को अभी आप जैसे मनीषियों का बहुत आर्शीवाद चाहिये। कल आपसे रात्रि में वार्ता हुई किन्तु कुछ कारणों से असफल रही, शायद हम और आप कुछ समझने या कहने में जल्दी कर गये। अस्तु।।

वस्तुतः आजकल आर्य समाज में "**ओ३म्**" के प्रति कुछ भ्रान्तियाँ व्याप्त हैं, मैं आर्य समाज का विद्वान तो नहीं परन्तु वैदिक सिद्धान्तों की रक्षा करने में काफी हद तक सक्षम अवश्य हूँ। यह हमारे गुरू एवं सर्वत्र पूज्य, महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के आर्शीवाद का प्रभाव है। जब कभी दो व्यक्तियों में किसी विषय को लेकर मतभेद होता है तो उसका समाधान करने का सबसे उत्तम उपाय "**शास्त्रार्थ**" ही है। मेरा किसी को नीचा दिखानें का तनिक भी अभिप्राय नहीं था और न अब है, क्योंकि न तो मैं प्रश्नकर्त्ता था और न ही शंकित था, हमने बहुत पूर्व ही प्रधान एवं मन्त्री जी से प्रार्थना की थी कि वह किसी योग्य विद्वान से शास्त्रार्थ करवा लें, ताकी यह विवादास्पद विषय दूर हो सके।

आगे आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि अगर आप मेरी भावना की कद्र करते हैं एवं शास्त्रार्थ के लिए तैयार हैं तो कृप्या शास्त्रार्थ करने हेतु स्वीकृति प्रदान करें, शास्त्रार्थ हिन्दी भाषा में ही हो तो उत्तम रहेगा, क्योंकि यह जन सामान्य की समझ में आने वाली भाषा है, शास्त्रार्थ के नियम निम्न प्रकार रहेंगे–

१. शास्त्रार्थ हिन्दी में होगा।

२. दोनों पक्षों के शास्त्रार्थकर्त्ता परस्पर सभ्यतापूर्वक वाक व्यवहार करेंगे।

३. शास्त्रार्थ लिखित रूप में होगा।

४. शास्त्रार्थ के मध्य कोई व्यक्ति बोलेगा नहीं, तथा ताली आदि भी नहीं बजायेगा।

५. शास्त्रार्थ के संचालन हेतु एक या दो अध्यक्ष नियुक्त किये जावेगें, जो समय का निर्देश एवं वक्ताओं को विषयान्तर में जाने से रोकने तथा श्रौताओं को नियन्त्रण में रक्खेंगे।

६. दोनों पक्षों को क्रमानुसार बराबर समय मिलेगा, अगर कोई पक्ष नहीं बोलना चाहता या निश्चित समय से कम बोलता है तो बाकी समय शान्त रह सकता है या अपना समय दूसरे पक्ष को दे सकता है।

७. दोनों पक्षों के सहयोगी भी हो सकते हैं, और वे तभी बोलेगें जब प्रथम वक्ता आगे न बोलने का वायदा करेगा।

अगर आपको ये उपरोक्त नियम उचित लगें तो कृपया हस्ताक्षर कर दें, और यदि कुछ नियम बढ़ाना अथवा घटाना हो तो नीचे लिख दें एवं आगे सम्मति मिलने तक प्रतिक्षा करें ! धन्यवाद !!

–हस्ताक्षर– भवदीय–

प्रथम पक्ष– "**पं० अखिलेश कुमार**" **पं० अखिलेश कुमार**

नोट– उपरोक्त पत्र पर हस्ताक्षर होने के बाद दिन व तिथि निश्चित होनी चाहिये थी, परन्तु वहाँ उपस्थित कुछ व्यक्तियों ने आक्षेप किया, फलस्वरूप उस दिन भी शास्त्रार्थ की बात टल गई। तीसरे दिन दिनांक **६–६**–८८ को मैं श्री प्रधान जी से मिला, उन्होंने कहा कि आप शास्त्रार्थ की बात आगे चलाओ तथा

पं० वेद भूषण जी से वार्ता कर लो वह शास्त्रार्थ के लिए तैयार हैं। आप शाम को सभा भवन में यज्ञशाला मंच पर आ जाओ वहीं शास्त्रार्थ का आयोजन रख लिया जावेगा, मैं शाम को सभा भवन पहुंचा तो वहां श्री प्रधान जी एवं पण्डित वेद भूषण जी आदि विद्वान पहले से ही मौजूद थे।

मेरे पहुंचते ही पण्डित वेद भूषण जी ने कुछ लिखित प्रश्न हमारे सामने रख दिये तथा उनका उत्तर लिखने को कहा। हम भी तैयार हो गये। और शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया।

अब आप इस छोटे से शास्त्रार्थ को पढ़िये तथा लाभ उठाइये।

अस्तु।।

निवेदक–

"पण्डित अखिलेश कुमार"

(लखनवी)

शास्त्रार्थ आरम्भ

प्रथम चक्र

स्थान– दिनांक ८–६–८८

यज्ञवेदी, आर्य प्रतिनिधि सभा (लखनऊ)

श्री पण्डित वेदभूषण जी–

प्रिय भाई पण्डित अखिलेश जी, कृपया निम्न प्रश्नों के लिखित उत्तर अपेक्षित हैं !

(१)– क्या आप महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज को ऋषि व आप्त पुरूष मानते हैं अथवा नहीं?

(२)– क्या महर्षि दयानन्द जी महाराज ने, वेद, उपवेद, षडंग शास्त्रदर्शन, आरण्यक ग्रन्थ (उपनिषद) ब्राह्मण ग्रन्थ व गृह्यसूत्रों का गंभीर अध्ययन किया था ?

(३)– क्या महर्षि द्वारा रचित ग्रन्थों को आप शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं ?

(४)– वर्तमान में प्रचलित कर्मकाण्ड के विधायक आर्य समाज में कौन थे ?

(५)– अष्ट प्रमाणों में जो शब्द प्रमाण हैं उनमें शब्द किसे माना गया है ? उसकी वेदानुकूलता क्या है?

(६)– क्या आप वेद को स्वतः प्रमाण और अन्य समस्त आर्य ग्रन्थों को परतः प्रमाण स्वीकार करते हैं ?

(७)– **"ओ३म"** इस शब्द का प्रयोग प्रत्येक वेद मन्त्र के आरम्भ में किया जाये, ऐसा वेद मन्त्र का प्रमाण आप कृपा कर दीजिये।

श्री पण्डित अखिलेश कुमार जी लखनवी–

आदरणीय पण्डित जी आपके प्रश्नों के उत्तर निम्न प्रकार हैं–

(१)– मानते हैं।

(२)– निश्चित रूप से किया था।

(३)– नहीं।

टिप्पणी– इस तीसरे उत्तर पर मेरा मत है कि जब तक किसी ग्रन्थकार के ग्रन्थ के लेख को तर्क एवं विज्ञान के आधार पर परख न लिया जावे, तब तक उसे शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिये। आगे ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि जो कुछ उनका मत है वह बृह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त ऋषियों का मत है, तो जो कुछ उन्होंने लिखा है उसका विधान किसी पूर्व आर्ष ग्रन्थ में अवश्य होना चाहिये)।

(४)– वर्तमान में आर्य समाज के अन्दर जो कर्म काण्ड पद्यति प्रचलित है उसे ऋषि दयानन्द जी ने प्राचीन आर्ष ग्रन्थां के आधार पर ब्रह्मा से लेकर जैमिनी ऋषि पर्यन्त जो वेदानुकूल मत है उसके आधार पर बनाई है।

(५)– मैं शब्द प्रमाण केवल उसी को मानता हूँ जो ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त वेदानुकूल है। **"आप्तोपदेशः शब्दः"** जो ऋषि प्रणीत व्यवस्था होती है, वह वेदानुकूल होती है।

(६)– हाँ।

(७)– कल प्रातः उत्तर देंगे।

टिप्पणी– अथर्ववेद ८/६/४५ में उद्गील का विधान है, जिसमें मुख्यतया **"ओ३म्"** का ही गान होता है। वेद में सब विद्या मूल रूप से सुरक्षित है। उनकी विस्तृत व्याख्या शास्त्र करते हैं, अस्तु !

नोट– अगले दिन प्रातः वार्तालाप नहीं हुआ।

स्थान– पूर्ववत् **द्वितीय चक्र** **दिनांक– ८–८–८८**

श्री पण्डित अखिलेश कुमार जी लखनवी–

(१)– क्या आप वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं ?

(२)– कृपया आप इस बात को वेद से सिद्ध करें कि एक प्रकरण के प्रत्येक वेद मन्त्र के आगे **"ओ३म"** लगाना चाहिये या नहीं?

(३)– आपके मतानुसार एक प्रकरण के जितने भी मन्त्र हों उनमें से केवल प्रथम मन्त्र के साथ ही "ओ३म्" लगाना चाहिये। क्या ऐसा कहीं ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त किन्ही आर्ष ग्रन्थों में ऐसा विधान है ?

श्री पण्डित वेदभूषण जी–

(१)– मैं वेदों को ही स्वतः प्रमाण मानता हूँ।

(२)– वेदों में मेरे अब तक अपने सीमित स्वाध्याय के आधार पर मैं ऐसा मानता हूँ कि– वेद में कहीं ऐसा स्पष्ट आदेश नहीं है कि– **"प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ "ओ३म्" शब्द का प्रयोग किया जावे"**। वेद मन्त्रों के भाष्यों में, मैं केवल महर्षि कृत भाष्यों को ही प्रमाण मानता हूँ। अन्य को नहीं।

यदि वेद में ऐसा आदेश होता तो स्वयं प्रभु उस आदेश का पालन करते। जब प्रत्यक्ष वेद संहिताओं तथा वेद मन्त्रों के आरम्भ में ओ३म् का संयोजन नहीं हैं **"यही प्रमाण है कि सर्वत्र "ओ३म्" लगाना वेद विरूद्ध है"**। वेद में ज्ञान, कर्म, उपासना व विज्ञान के तीन विषय है। विज्ञान–ज्ञान के ही अर्न्तगत है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड का वेद है। इसमें कर्म करने के सिद्धान्त मौलिक रूप में हैं परन्तु कर्म का विस्तृत विधान उन सूक्षम सिद्धान्तों के आधार पर ऋषि करते हैं, वेद विस्तार से नहीं करता।

(३)– इस विधान को समझने के लिए हमें गृह्यसूत्रों में वर्णित मन्त्रों को प्रत्यक्ष देखना होगा व महर्षि की संस्कार विधि को भी प्रमाण मानना होगा, ऋषियों के ग्रन्थों में प्रत्येक कर्म करने के आरम्भ में तथा अन्त में **"ओ३म"** के उच्चारण करने का विधान है। किस मन्त्र के साथ ओ३म् लगावें तथा किसके साथ न लगावें यह व्यवस्था विषय और सन्दर्भ को देख कर उन्होंने कर दी है। प्रत्येक मन्त्र के लिए निर्देश करना सम्भव

भी नहीं है अतः वे विधान को स्वतः प्रयोग रूप में ही उल्लेख कर देते हैं।

तृतीय चक्र

स्थान– श्री ओम्प्रकाश जी सेवक, का निवास **दिनांक– १०–९–८८**

(प्रधान–आर्यसमाज लालबाग–लखनऊ) समय– सांय चार बजे

श्री पण्डित अखिलेश कुमार जी लखनवी–

आदरणीय एवं पूज्य पण्डित वेद भूषण जी, कृपया निम्न प्रश्नों के उत्तर अपेक्षित हैं–

(१)– क्या आप महर्षि दयानन्द को ऋषि व आप्त पुरूष मानते हैं ?

(२)– क्या ऋषि दयानन्द ने वेदादि सहित आर्ष ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था ?

(३)– क्या आप महर्षि रचित ग्रन्थों को शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं ?

(४)– वर्तमान में प्रचलित कर्मकाण्ड के विधायक आर्यसमाज में कौन थे ?

(५)– अगर आप महर्षि रचित ग्रन्थों को शब्द प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं तो कृपया बतायें कि आपने– **"अयन्तइध्म आत्मा....."** मन्त्र से पांच आहुति क्यों नहीं दी ? आगे समिधाधान के तृतीय मन्त्र में **"ओ३म्"** नहीं लगाया गया है, आप क्यों लगाते हैं?

(६)– आपकी मान्यतानुसार एक प्रकरण के प्रत्येक मन्त्र के पूर्व **"ओ३म्"** लगाने का विधान नहीं है। अगर ऐसा आदेश वेद में होता तो स्वयं प्रभु उसका पालन करते। क्या जो आदेश वेद में परमात्मा ने दिये हैं उसका पालन ईश्वर के लिए आवश्यक है ?

(७)– क्या वेदों में कहीं ऐसा लिखा है कि एक प्रकरण के प्रथम मन्त्र के साथ ही **"ओ३म"** लगाना चाहिये? अगर ऐसा है तो क्या परमात्मा ने इसका पालन किसी वेद के आरम्भ में किया है?

(८)– क्या ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त किन्ही आर्ष ग्रन्थों में ऐसा विधान है कि एक प्रकरण के केवल प्रथम मन्त्र के साथ **"ओ३म्"** लगाया जावे अगर है तो उसे तर्क द्वारा वेदानुकूल सिद्ध कीजिये।

(९)– आपने जो अपनी पुस्तिका में महाभाष्य का प्रमाण दिया है उसका **"ओ३म्"** बोलने से क्या सम्बन्ध है?

(१०)– आपने मनुस्मृति का जो प्रमाण दिया है उसमें **"ब्राह्मणः"** का अर्थ कर्म कैसे किया जबकि सारे भाष्यकारों ने उसका अर्थ वेद मन्त्र किया है।

नोट– वास्तव में प्रकरणानुसार उसका अर्थ **"स्वाध्याय"** है।

श्री पण्डित वेदभूषण जी–

(१)– मैं हृदय से महर्षि दयानन्द को आप्त पुरुष व पूज्य मानता हूँ।

(२)– महर्षि ने समस्त वेदों व वेदानुमोदित शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

(३)– मैं महर्षि रचित ग्रन्थों को आप्तोपदेश होने से सर्वथा प्रमाण मानता हूँ और इन्हें शब्द प्रमाण के

रूप में स्वीकार करता हूँ।

(४)– आर्य समाज में प्रचलित कर्मकाण्ड के आदि प्रणेता महर्षि दयानन्द ही थे उन्होंने ही समस्त कर्मकाण्डों का गम्भीर अध्ययन कर संस्कार विधि रूपी कर्मकाण्ड के ग्रन्थ का प्रणयन किया है।

(५)– समस्त संस्कार विधि को पढ़ कर व प्रत्येक संस्कारों में ऋषि द्वारा दी गई व्यवस्था को देखकर व समझकर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ये मन्त्र गृहस्थियों के लिए ही हैं, वे ही सज्जन इन मन्त्रों से पांच आहुतियाँ देंगे जिन्हें मन्त्र में मांगे गये पांच वरदानों की आवश्यकता होगी।

समिधादान के आरम्भ में एक ही मन्त्र में **"ओ३म्"** लगाना चाहिये तीनों में नहीं, ऐसा ही ऋषि का मन्तव्य लगता है, मैंने यदि **"ओ३म्"** लगाया है तो वह मेरी भूल ही मानी जायेगी।

नोट– इसके पश्चात श्री पण्डित अखिलेश जी लखनवी द्वारा एक–एक अतिरिक्त प्रश्न किया गया जो निम्न है।

श्री पण्डित अखिलेशकुमार जी लखनवी–

कृपया बतलाये कि **"अयन्तइध्म आत्मा........."** मन्त्र में पांच कौन सी चीजें मांगी गई है? क्या वह केवल ग्रहस्थ के लिए ही आवश्यक है, अन्य किसी के लिए नही ? तर्क द्वारा सिद्ध करें।

श्री पण्डित वेदभूषण जी–

आपका यह प्रश्न वर्तमान में विचाराधीन विषय की सीमा से बाहर का है। इस समय केवल **"ओ३म्"** के संयोजन का ही विषय विचारणीय हैं, अतः इसका उत्तर इस प्रसंग में देना अनुचित है।

नोट– इसके बाद कोई सज्जन श्री पण्डित वेद भूषण जी को लेने आ गये, उसी बीच में जो गोपथ ब्राह्मण का प्रमाण मैं अपने साथ ले गया था, उसको निकाल कर श्री पण्डित जी के सामने उपस्थित किया, देखिये प्रमाण–

"गोपथ ब्राह्मण कण्डिका २८" में कहा है कि–

मामिवाम् एव वयाहूतिम् आदितः आदितः कृणुध्वम्।
तस्मात् ब्रह्मवादिनः ओंकारम् आदितः कुर्वन्ति।।

इस प्रमाण को दिखलाने पर पण्डित श्री वेदभूषण जी ने कहा कि यहां **"आदितः आदितः"** आया है, जिसका अर्थ सबसे पूर्व होता है। अतः एक प्रकरण के प्रथम मन्त्र के पूर्व ही इसे बोलना चाहिये, ऐसा कहकर आदरणीय पण्डित जी उठकर कहीं बाहर चले गये, क्योंकि उन्हें विलम्ब हो गया था, अतः उस समय विचार नहीं हो सका, इस पर मेरी टिप्पणी निम्न प्रकार है, जिस पर पाठकों से मेरा अनुरोध है कि इस पर गम्भीरता से विचार करें। अस्तु !!

श्री पण्डित अखिलेशकुमार जी लखनवी द्वारा टिप्पणी–

यहां पर **"आदितः आदितः.........."** का यह अर्थ तो ठीक है कि– **"सबसे पूर्व"** परन्तु प्रश्न उठता है

किसके सबसे पूर्व ? कर्म के ! प्रकरण के !! अथवा मन्त्र के !!!

शास्त्रों में **"ओ३म्"** के उच्चारण का विधान मन्त्र के पूर्व के लिए ही किया गया है अर्थात् मन्त्र के आरम्भ में न कि प्रकरण के आरम्भ में ! बहुत से व्यक्ति मन्त्र के बीच में भी ओ३म् लगा देते हैं, जिससे स्वर व छन्द के भंग होने का दोष होता है। अतः बताया गया कि मन्त्र में सबसे पूर्व। बाद में केवल **"आदितः"** आया है जिसका अर्थ **"प्रारम्भ में"** होता है। मन्त्र के सबसे पहले **"ओ३म्"** लगाने से न स्वर भंग होता है और न ही छन्द क्योंकि यह ओ३म् मन्त्र का अवयव नहीं होता है। शास्त्रों में विधान होने से ऐसा किया जाता है। यदि ओ३म् लगाने से अर्थ का अनर्थ हो तो वह प्रकरण के प्रथम मन्त्र के आरम्भ में भी लगाने से होगा।

अब आप इसी शास्त्रार्थ के कुछ अंशों पर ध्यान दें, प्रथम चक्र के प्रश्न–२ को देखें जो रेखांकित किया गया है, जिसमें, श्री पण्डित वेद भूषण जी लिखते हैं कि– **"जो कुछ प्रभु आदेश देते हैं उसका पालन वह स्वयं करते हैं,"** यह बड़े ही नादानी की बात है, वास्तविकता यह है कि, जो कुछ परमात्मा इस सृष्टि में, नियम व मर्यादा बनाते हैं, उसको वह स्वयं तोड़ नहीं सकते। यह एक सिद्धान्त है। परन्तु शायद श्री पण्डित जी को मालूम नहीं कि परमात्मा ने वेद में आदेश दिया है कि– **"ओ३म् क्रतो स्मर......"** क्या इस आदेश के अनुसार परमात्मा स्वयं **"ओ३म्"** का स्मरण करता है ? कदापि नहीं। इसी तरह के सैकड़ों प्रमाण मौजूद हैं जिनमें अलग से भी **"ओ३म्"** का जाप करने की आज्ञा दी गई है तथा प्रत्येक मन्त्र के साथ **"ओ३म्"** लगाना चाहिये। अब आप लोग स्वयं निर्णय करें ! अस्तु !!

नोट– उक्त विषय पर श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज से भी वार्तालाप होता रहता था, उनका मन्तव्य था कि–

(१)– **"ओ३म्"** बोलने पर कोई टैक्स नहीं लगता।

(२)– कहीं पर भी ऐसा निर्देश नहीं है कि यहां पर **"ओ३म्"** बोलो तथा यहां पर मत बोलो।

(३)– बल्कि अलग से **"ओ३म्"** का जाप करने, व **"ओ३म् बोल मेरी रसना घड़ी–घड़ी.........."** आदि गीत गाये जाते हैं।

(४)– **"ओ३म्"** बोलने पर किसी भी मन्त्र के अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(५)– **"ओ३म्"** बोलने पर कोई नुकसान तो है ही नहीं, अपितु लाभ ही है।

अतः निर्विवाद एवं निष्पक्ष स्वामी जी का निर्णय एवं मान्यता थी कि– **"ओ३म्" प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ अवश्य बोलना चाहिये"!!**

निवेदक–

"लाजपत राय अग्रवाल"

एक सौ उन्नीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान शाहपुर अल्लिपुर, जिला–मुजफ्फरपुर (बिहार)

: ८ जौलाई सन् १९५५ ई०

: क्या मृतक श्राद्ध वेद विरूद्ध है ?

: श्री पण्डित जे० पी० चौधरी "काव्यतीर्थ"

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पं० अयोध्यादास जी व्याकरणाचार्य

नोट– यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री **"श्री पं० सत्यव्रत वानप्रस्थी, वेद प्रचार केन्द्र, स्थान– बंगराहा, पोस्ट–काँचा वाया विद्यापति नगर, जिला–समस्तीपुर (बिहार)"** निवासी द्वारा प्राप्त हुई, जिनके हम हृदय से आभारी हैं, इन्हीं के प्रयास से यह लुप्त सामग्री प्रकाश में आ सकी।

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

श्री पण्डित जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ का नाम आर्य समाज के इतिहास में अग्रगण्य है, इनके द्वारा अद्भुत सैद्धान्तिक ग्रन्थों का लेखन कार्य किया गया है, जिनमें इनकी विद्वता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

पूज्य अमर स्वामी जी महाराज से जब भी शास्त्रार्थों सम्बन्धी चर्चा होती थी, वह अक्सर जिकर किया करते थे कि–अगर कहीं से श्री जे० पी० चौधरी जी द्वारा किये गये शास्त्रार्थों का विवरण प्राप्त हो सके तो अवश्य प्राप्त करों, वह बड़ी ही अद्भुत चीज होगी, उनसे बहुत लाभ पहुंचेगा। मैंने श्री चौधरी जी कृत कई ग्रन्थ देखें जैसे– कालूराम का जनाजा, अवतारवादमिमांसा, शुद्धि सनातन, वेद और पशुयज्ञ, वैदिक वर्ण व्यवस्था, पुराण पर्यालोचन, पौराणिक तीर्थ मिमांसा आदि–२ अनेकों ग्रन्थ ऐसे रचे जो विपक्षियों द्वारा लिखे ग्रन्थों के प्रत्योत्तर के रूप में थे। यह निश्चित ही है कि किसी विवादास्पद ग्रन्थ का उत्तर कोई तार्किक विद्वान या शास्त्रार्थकर्त्ता ही दे सकता है।

मैं श्री चौधरी जी के शास्त्रार्थों को प्राप्त करने हेतु प्रयास करता रहा, आखिर एक दिन मेरा प्रयास सफल हो ही गया, **श्री पण्डित सत्यव्रत जी वानप्रस्थी जो एक अच्छे वैदिक प्रवक्ता (प्रचारक) भी हैं,** उन्होंने अपने संग्रह से यह सामग्री भेज कर अतयन्त ही यश व पुण्य का कार्य किया है। आप स्वयं ही अब श्री पण्डित जे० पी० चौधरी जी द्वारा किये गये शास्त्रार्थों का अवलोकन करें, जिनमें आप स्वयं ही कुछ नयी उपलब्धियों को महसूस करेंगे। अन्य किसी सज्जन के पास भी अगर कोई ऐसी प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री मौजूद हो जो अभी तक इस ग्रन्थ **"निर्णय के तट पर"** की श्रंखला में न आ पाई हो तो अवश्य भेजें, मैं उस सामग्री को उन्हीं सज्जन के नाम से अगले भागों में प्रकाशित करा दूंगा। तथा उनका हृदय से आभार प्रकट करूंगा। **"वैदिक सिद्धान्तों की रक्षार्थ श्री अमर स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा थी कि किसी तरह आर्य समाज के इतिहास में किये गये सभी शास्त्रार्थों का संग्रह प्रकाशित हो जावे"**। जिसके लिए मैं पूज्यवाद अमर स्वामी जी महाराज से वचनबद्ध हूँ। आशा है सभी आर्य सज्जन इस कार्य में लुप्त शास्त्रार्थ सामग्री भेज कर सहयोग प्रदान करेंगे तथा मेरे द्वारा लिये गये इस संकल्प को पूर्ण करने में मदद करेंगे। अस्तु !!

निवेदक–

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित अयोध्यादास जी व्याकरणाचार्य–

देखिये मनुस्मृति में कहा गया है कि–

निमंत्रितान्हि पितरः उपतिष्ठन्तितान् द्विजान।
वायुवच्चानु गच्छन्ति तथा सीनानुपासते।। (मनुस्मृति)

अर्थात्– पितर लोग निमंत्रित ब्राह्मणों के पास जाते हैं और वायु के समान उनके पीछे–पीछे चलते हैं, तथा ब्राह्मणों के बैठने पर उनके पास ही बैठ जाते हैं, अतः मनुस्मृति के अनुसार पितरों का ब्राह्मणों के साथ बैठने से ही "**मृतक श्राद्ध सिद्ध**" होता है।

श्री पण्डित जे. पी. चौधरी, काव्यतीर्थ–

आपने "**पितर**" शब्द का लक्षण नहीं किया, यहां पर आपके मरे हुए बाप–दादों का नाम पितर नहीं है। मनु जी महाराज के अनुसार पितर– "**अनादि देव**" हैं। देखिये–

अक्रोधना शौच पराः सततं ब्रह्मचारिणः।
न्यास्तशस्त्रा महाभागा पितरः पूर्व देवताः।। (मनुस्मृति)

इसका अर्थ कुल्लूक भट्ट के अनुसार इस प्रकार है– क्रोधरहित बाहर से मिट्टी और जल के द्वारा शुद्ध, राग– द्वैषादि से रहित, सर्वदा स्त्री संयोगादि से रहित, ब्रह्मचारी, युद्ध न करने वाले अहिंसक दयादि आठ गुणों से युक्त अनादि देवता "**पितर**" कहलाते है।

मनु के ही उक्त प्रमाण से यह सिद्ध हो जाता है कि मनु ने जिन पितरों का वर्णन किया है वे किसी के मरे हुए बाप–दादा नहीं हैं बल्कि पितर वे हैं जो "**अनादि देवता**" हैं ऐसा स्पष्ट कहा गया है। अतः ब्राह्मणों के साथ वायु रूप में बैठने वाले ये अनादि देवता हैं न कि मरे हुए किसी के बाप–दादा आदि हैं। बैल का दागना, दश गाय–दशपिण्ड देकर अंगुष्ठ बराबर मरे का शरीर दश दिन में बनाना द्वादशाह ये ही आधुनिक श्राद्ध हैं। भाइयों ! परमात्मा तो दस महिने में शरीर बनाता है, परन्तु आप लोग दश दिन में ही अंगुष्ठ बराबर शरीर बना देते हैं........हँसी...........इस बात को तो मूर्ख से भी मूर्ख नहीं मान सकता। ब्राह्मण तो ईश्वर से भी बड़े बन गये कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं कर सकता। १० दिन में ब्राह्मण, १२ दिन में क्षत्रिय, १५ दिन मे वैश्य, और ३० दिन में शूद्र की शुद्धि मानते हैं, पर सबका नाम द्वादशाह कहते हैं। परमात्मा का नियम मनुष्य मात्र के लिए समान है, अतः जन्मना वर्ण व्यवस्था चल जाने पर यह व्यवस्था लादी गई है। साथ ही वेद के किसी भी मन्त्र में उक्त तीनों बातों का उल्लेख नहीं है। अतः वर्तमान श्राद्ध वेद विरूद्ध होने से त्याज्य है, आगे देखिये वेद क्या कहता है ?– "**वेदः प्रणिहितो धर्मः अधर्मस्तद् विपर्ययः**" वेद में श्राद्ध शब्द भी नहीं है, यदि है तो दिखलाइये ?

श्री पण्डित अयोध्यादास जी व्याकरणाचार्य–

श्राद्ध शब्द के बारे में, यजुर्वेद अध्याय १६ के सायण भाष्य में श्राद्ध शब्द आया है।– "**आप्तो देशः शब्दः**" आप्त पुरूषों ने जो कहा है वह प्रमाण मानना चाहिये, ७१ स्मृतियाँ १८ पुराण सब ही आप्त वचन हैं इसलिए उनको मानना चाहिये। पुराणों में, स्मृतियों में श्राद्ध का उल्लेख है इसलिए उसे मानना चाहिये, आप इन प्रमाणों के रहते हुए उससे इन्कार कैसे कर सकते हैं ? इसलिए श्राद्ध सिद्ध है।

श्री पण्डित जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ–

आप कृपया क्रमवार उत्तर दें।

(१)– मैंने वृष भांकन, द्वादशाह, दश गात्र, वेद में दिखलाने को कहा। इसका उत्तर आपने न दिया कृपया उत्तर दीजिये।

(२)– धन्य है आप तथा आपका वेदज्ञान ! आप यजुर्वेद पर सायण भाष्य का हवाला देते हैं, जबकि यजुर्वेद पर सायण का भाष्य है ही नहीं। आपको इतना भी पता नहीं है कि यजुर्वेद पर महीधर और उव्वट का भाष्य है, सायण का नहीं है। अतः आप निग्रह स्थान में आ गये, मालूम होता है कि किसी मूर्ख से आपने सुनकर कह दिया। श्री मान जी आपको जिस गुरू ने ७१ स्मृतियाँ बतालाई हैं तो उसके नाम भी बतलायें होगें, क्या आप उनके नाम बतला सकते हैं ? जब आपको इतना भी ज्ञान नहीं है तो किस बूते पर आप शास्त्रार्थ का चैलैन्ज देते फिरते हैं ?

(३)– सभी स्मृतियां तथा पुराण समय–समय पर समयानुकूल बने हैं, ये हिन्दू ला (कानून) है। सबमें परस्पर मतभेद है। आप प्रथम मनुस्मृति लीजिये जिसमें कहा गया है कि– ब्राह्मण के अपमान के लिए यदि शूद्र थूके तो उसके होठ कटवाले। यदि सामने पेशाब करे तो उसका लिंग कटवा ले। ब्राह्मण के सामने अधोवायु त्याग करे तो उसकी गुदा कटवा ले। अगर शूद्र वेदमन्त्र सुन ले तो उसके कान में शीशा गरम करके डाल दे। अगर वेद पढ़े तो उसकी जीभ क़टवा ले, यदि वेद मन्त्र याद करले तो उसको मरवा डाले। आगे देखिये– "**मन्स्यादः सर्वमांसादः तस्मान् मत्स्यंविवजयेत्**" अर्थात् मछली खाने वाले मनुष्य को सब जानवरों का मांस खाने वाला कहा जाता है। इसलिए मछली न खावे। परन्तु इसी के विरूद्ध आगे अनेक स्थलों पर मछली खाने का ही स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार पुराणों में भी कहीं–नृसिंह वध, कहीं विष्णु का व्यभिचार, कहीं शिव–इन्द्र शुक्र का व्यभिचार, कहीं चन्द्रमा का व्यभिचार, कहीं शिव प्रशंसा तो कहीं शिव की निन्दा इत्यादि हर स्थल पर विरोधाभास मौजूद है। ऐसी पुस्तकों को सर्वांश में कोई भी बुद्धिमान न मानेगा। क्या आप मानने को तैयार हो ? मनु ने स्वयं लिख दिया कि–

या वेदवाहया स्मृतयो याश्चकाश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ताः निष्फला प्रेत्य तपोनिष्ठा हिताः स्मृताः।। १२–६५।।

वेद विरूद्ध स्मृतियां अमान्य हैं, मीमांसा दर्शन में भी लिखा है– "**विरोधेतु अनपेक्ष्यं स्यात् असति ही**

अनुमानम्।" जो स्मृति वचन वेद विरूद्ध है उसको नहीं मानना चाहिये, यदि वेद विरूद्ध नहीं है तो स्मृति मान्य है, इससे आपके पुराण और स्मृतियां साध्य कोटि में आ जाते है। अतः आप वेद से दश गाय, द्वादशाह, वृषभांकन दिखलाइये।

श्री पण्डित अयोध्यादास जी व्याकरणाचार्य–

(पुनः वही आप्त वचन और मनुस्मृति का पाठ दोहराते रहे)।।

श्री पण्डित जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ–

वेद से दश गात्र, द्वादशाह तथा वृषभांकन आप नहीं दिखला सके, मैं अब भी आपसे प्रार्थना करता हूँ कि, चारों वेदों को पढ़कर हमारे पूर्वपक्ष का उत्तर देने के लिए तैयार रहिये और फिर एक बार अपनी इच्छा पूर्ति कर लीजिये, मेरा तो दावा है कि वेद में वर्तमान श्राद्ध का नामोनिशान भी नहीं है। वेद का मन्त्र हवन परक है जिसका वर्तमान श्राद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आपने वेद पढ़े होते तो– **"आयन्तु नः पितरः सोम्यासः अग्निस्वात्ता पथिभिर्देवयानैः..........."** इत्यादि मन्त्र अपनी पुष्टि के लिए पेश करते, जैसे दरभंगा* के शास्त्रार्थ में पण्डितों ने मेरे सामने पेश किया था और मुंह की खाई थी, और प्रायः २०–२५ ग्रामों के लोगों ने उस शास्त्रार्थ को सुनकर वर्तमान अवैदिक श्राद्ध को एक दम तिलाञ्जली दे दी थी। अब तो आप इस शास्त्रार्थ में ऐसे गिरे कि जीवन पर्यन्त कभी शास्त्रार्थ करने का नाम नहीं ले पाओंगे।। चारों तरफ शोरोगुल. .....वैदिक धर्म की जय के नारों से आकाश गूंज उठा.........। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ की सभा विसर्जित हो गयी।

***नोट–**

आगे **"एक सौ बीसवाँ शास्त्रार्थ"** उपरोक्त दरभंगा वाला ही है। बड़ा ही अद्भुत व विद्वता पूर्ण शास्त्रार्थ है ध्यान पूर्वक पढ़िये और लाभ उठाइये।

"लाजपतराय अग्रवाल"

एक सौ बीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : गढ़सिसई (समस्तीपुर) दरभंगा (बिहार)

दिनांक : १६ मई सन् १६५८ ई०

विषय : क्या मृतकश्राद्ध वेदानुकूल है ?

शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पं० जे० पी० चौधरी, "काव्यतीर्थ" (निवासी–धूप मण्डी–वाराणसी)

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित मुक्तिनाथ झा "ज्योतिषाचार्य"

नोट– यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री श्री पं० सत्यव्रत वानप्रस्थी, वैदिक प्रवक्ता निवासी–बगंराहा, पो०–काँचा, जि० समस्तीपुर (बिहार) द्वारा प्राप्त हुई जो स्वयं इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे, हम उनके हृदय से आभारी हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित मुक्तिनाथ झा ज्योतिषाचार्य–

पहले आप बतलाइये कि वर्तमान श्राद्ध आप लोग क्यों नहीं मानते ? उसका खण्डन क्यों करते हैं?

श्री पण्डित जे० पी० चौधरी, काव्यतीर्थ–

दशगात्र, द्वादशाह, वृषभांकन गयाश्राद्ध आदि यह सब वेद विरूद्ध हैं, वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो इन सबका समर्थन करता हो। द्वादशाह की चर्चा कहीं नहीं ब्लकि इसका खण्डन मौजूद है, ये लोग बारह दिन तक प्रेत का निवास घर में ही मानते हैं, श्राद्ध हो जाने पर वह नरक की ओर प्रस्थान करता है। जो यहां से ८६ हजार योजन दक्षिण में पुष्कर द्वीप में स्थित बताते हैं। परन्तु यह सभी अनर्गल प्रलाप है तथा वेद विरूद्ध है। इस वैज्ञानिक युग में उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक के चप्पे–२ अर्थात् सम्पूर्ण भू भाग का पता लग गया, परन्तु इसी प्रथ्वी पर पुष्कर द्वीप में इसका आज तक पता न लग सका। इसलिए यह कल्पना निराधार है। एतएव सर्वथा त्याज्य है। (बार–बार पूछने पर भी पं० मुक्तिनाथ झा इसका उत्तर न दे सके तथा मौन साध गये)।।

श्री पण्डित मुक्तिनाथ झा, ज्योतिषाचार्य–

देखिये चौधरी साहब ! यजुर्वेद क्या कहता है ? ध्यान पूर्वक सुनों और साहस है तो इसका उत्तर दो।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासः अग्निष्वात्ताः पथिभिर्दैवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मन्दतोऽधि ब्रुवन्तु ते उवन्त्वस्समान्।। (यजुर्वेद–१६–१८)

देखिये ! इस वेद मन्त्र से "श्राद्ध" शब्द सिद्ध होता है कि नहीं ?

श्री पण्डित जे० पी० चौधरी, काव्यतीर्थ–

आप पण्डित जी कम से कम इसका अर्थ तो करके सुनाते, लगता है आपने यह मन्त्र कहीं से सुन लिया होगा, जो यहां पेश कर दिया, केवल कहने मात्र से थोड़े ही **"श्राद्ध"** सिद्ध हो जावेगा। इस मन्त्र में **"देवयान"** पद पड़ा है। देवयान मार्ग से मुक्त पुरूष ही आते–जाते हैं। पितरों के आने–जाने का मार्ग पितृयान है। उपनिषदें बतलाती हैं कि मृत पितर, पितृयान मार्ग से जाते हैं और उसी मार्ग से जन्म लेने हेतु वापिस पृथ्वी पर आते हैं। जो वृष्टि के साथ भूमि पर गिरते हैं तथा औषधियों में प्रवेश करते हैं। जिसको जिस योनि में जाना होता है उसी योनि के लोग उन औषधियों को खाते हैं, और वीर्य के साथ स्त्री योनि में प्रवेश करते हैं, इसलिए यह मन्त्र आपके किसी भी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं करता, साथ ही मन्त्र में यह भी लिखा है कि वे हमसे खूब बातचीत करें और हमारी रक्षा करें। ये केवल जिवितों में ही घटेगा, मुर्दो में नहीं। मृत पुरूष न आ सकता है और न बातचीत ही कर सकता है और न किसी की रक्षा कर सकता है। माता, पिता, भाई आदि के श्राद्ध में इस मन्त्र का प्रयोग कैसे होगा ? यहां तो **"अग्निष्वात्ता"** बहुवचन है, ऐसा एक भी मन्त्र वेद में नहीं है जहां एक के श्राद्ध में प्रयुक्त होता हो, और भी आप देखिये–

"अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत, सदः सदः सुप्रणीतयः।
अत्ताध्वीषि प्रयतानि बर्हिष्यथा, रयिं सर्व वीरं दधातन।।

अर्थात्– अच्छी नीति वाले हे "**अग्निष्वात्ता पितर**" इस यज्ञ में आप लोग आइये और अपने–अपने स्थान पर बैठ जाइये, अर्थात् उस स्थान पर यथेष्ठ बैठ जाइये, बैठकर "**बहिर्षि**" (यज्ञ में) "**प्रयतानि**" (शुचिभि) पवित्र हवि को खाइये। इसके बाद पुत्र–पौत्रादि रूप धन हम लोगों को दीजिये, यह अर्थ सायण भाष्य के अनुकूल है। आप यहां देखते हैं कि, यहां एक नहीं अनेक पितरों का वर्णन है। उनके अलग अलग यथा स्थान बैठने के लिए और यज्ञ में बैठकर पके हुए हविष्य खाने के लिए प्रार्थना है और फिर अपने लिए पुत्र–पौत्रादि धन पाने के लिए अनुरोध है। क्या यह तुरन्त मरे हुए मृत पुरूष से प्रार्थना है, क्या वह पुत्र–पौत्रादि धन देने में समर्थ हो सकता है ? बहुवचन होने के कारण आपके पक्ष का बाधक है। आपकी श्राद्ध पद्धति में तो यह मन्त्र बुलाने में प्रयुक्त भी नहीं है। एक पुरूष के श्राद्ध में इन पितरों को बुलाना असंगत है और यहां मृतक का कोई चिन्ह भी नहीं है यह मन्त्र, जीवित पितर, आचार्यों, वानप्रस्थियों तथा विद्वानों के बुलाने और उनको खिलाने का उपदेश दे रहा है। "**विद्या प्रदानात्पितरः आचार्य परिचक्षते**"।।

श्री पण्डित मुक्तिनाथ झा ज्योतिषाचार्य–

"**आयन्तु नः पितरः.................**" इस वेद मन्त्र से मरे हुए पितर को बुलाना सिद्ध है। सारे संसार के लोग मानते हैं, चारों वेद, अठारह पुराणों में श्राद्ध से मृत पितरों को तृप्त होने का विधान है।

श्री पण्डित जे० पी० चौधरी, काव्यतीर्थ–

मैंने पूछा था कि वर्तमान श्राद्ध का मूल वेद मन्त्र में दिखलाइये ? परन्तु आपने इस बात को स्पर्श तक नहीं किया। सवाल कुछ होता है परन्तु आपकी ओर से उत्तर कुछ ओर ही मिलता है। सही सवाल का युक्तियुक्त जवाब न देकर "**आयन्तुः नः पितरः..........**" मन्त्र पेश कर दिया, यह हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं है। आप जीवन पर्यन्त इसका उत्तर नहीं दे पायेगें, यह हमारा चैलेन्ज हैं। "**आयन्तु नः पितरः.............**" इस मन्त्र का जवाब दिया गया तो आप और घबराये और जान छुड़ा कर भागने लगे। इस तरह बात बनेगी नहीं। आपको पता होना चाहिये ज्योतिषाचार्य जी ! इसी प्रकार एक शास्त्रार्थ* ग्राम–"बाघी" पोस्ट–आधारपुर, जिला–दरभंगा में सन् १६५१ में हुआ था, जिसमें विपक्ष की ओर से १० पण्डित पधारे थे, जहां उन्हें जबर्दस्त मुंह की खानी पड़ी थी। आप लोग मनमाने ढंग से वेद मन्त्रों का विनियोग करते हैं। "**केतु कृण्वन् अकेतवे**" यह मन्त्र सूर्य परक है।

परन्तु आरम्भ में केतु शब्द देखकर केतु देवता का आवाहन लिख मारा, "**उद्बुध्यस्वाग्ने**" यह मन्त्र अग्नि प्रदीप्त करने का है परन्तु आरम्भ में बुध शब्द देखकर बुध देवता का आवाहन लिख दिया। "**शन्नो देवीरभिष्टये**" यह आचमन करने का मन्त्र है परन्तु इससे शनैश्चर ग्रह का आवाहन करते हैं। "**इदं**

***नोट–** जिन किन्हीं सज्जन के पास उक्त शास्त्रार्थ का विवरण हो तो अवश्य भेजें, उस शास्त्रार्थ सामग्री को उन्हीं सज्जन के नाम से उनका आभार प्रकट करते हुए अगले खण्ड में प्रकाशित करा दिया जावेगा।

"लाजपतराय अग्रवाल"

विष्णुर्विचक्रमेत्रेधानिदधेपदम्" यह मन्त्र सूर्यपरक हैं। परन्तु इस मन्त्र को पढ़कर ब्राह्मण के अंगुष्ठ को अन्न में लगा दे। कैसा घोर अनर्थ आप लोगों ने कर रक्खा है ? महान आश्चर्य है।

श्री पण्डित मुक्तिनाथ झा ज्योतिषाचार्य–

गृह्यसूत्र, स्मृति शास्त्रों में ब्राह्मण को पितृ कार्य में खिलाने का विधान है। यदि श्राद्ध नहीं होता तो पितृ कार्य में ग्यारह ब्राह्मण खिलाने का विधान कैसे आता ? आप लोग हठ व अपनी मनमानी करते हैं। किसी शास्त्र को मानते ही नहीं हैं। अब कलयुग आ गया है। इन आर्यों ने सभी धर्मशास्त्र ताक पर रख दिये हैं।

श्री पण्डित जे० पी० चौधरी, काव्यतीर्थ–

पण्डित जी घबराइये नहीं ! धैर्य रखिये और हमारी बात ध्यानपूर्वक सुनिये। वेदविद्, सदाचारी, ब्राह्मण को खिलाना धर्म है। *केवल जन्मना ब्राह्मण (काठ के उल्लु) और अवेदज्ञ ब्राह्मणों को खिलाना श्राद्धकर्त्ता* के लिए अनिष्टकारक है, यथा–

"यावतो ग्रसते ग्रासान हव्याकण्येष्व मन्त्र वित्।

तावतो ग्रसते प्रेत्यदीप्त शूलर्ष्टय योर्गुडान।। (मनुस्मृति ३–१३२)

अर्थात्– वेद न जानने वाला, मूर्ख ब्राह्मण जितना बड़ा–बड़ा ग्रास खाता है, श्राद्धकर्त्ता को उतने ही बड़े धधकते हुए लोहे के गोलों को निगलना पड़ता है। इसलिए मूर्ख ब्राह्मण को कभी नहीं खिलाना चाहिये। परन्तु वेद विद्, श्रौत्रिय, सदाचारी ब्राह्मण मिल जाने पर उन्हें आदर पूर्वक खिलाना चाहिये। परन्तु ऐसे ब्राह्मण लाखों में दो–चार ही मिलेंगे। इन्हें भी अधिक से अधिक तीन ब्राह्मणों को ही खाना खिलावे, श्राद्धकर्त्ता अगर सम्पत्तिशाली भी हो तो भी तीन से अधिक न खिलावे।

द्वे दैवे पितृ कार्येत्रीनैक मुभयत्रवा।

भेजयेत्सुसमृद्धोपि न प्रसज्जेत बिस्तरे।। ३–१२५।।

अर्थात्–दैव कार्य में दो और पितृ कार्य में तीन ब्राह्मणों को खिलावे, अथवा दोनों में एक–एक ब्राह्मण को खिलावे। सम्पन्न होने पर भी इससे अधिक न खिलावे, लोग अपने कर्म से स्वर्ग–नरक जाते है। किसी को खिलाने–पिलाने से या पिण्डदान करने से नहीं, यहां अर्ध्यवाद समझना चाहिये, परन्तु आपने ग्यारह ब्राह्मणों को खिलाने का कोई प्रमाण नहीं दिया, वेद विरूद्ध स्मृतियां अमान्य हैं, यह सिद्धान्त कहाँ चला गया ? आप लोग बारह दिन तक प्रेत का निवास यहीं मानते हैं। मुर्दा जलाने के समय जो ऋचाएं पढ़ी जाती हैं, उसमें कहीं पर भी यह १२ दिन वाली बात नहीं आई। अतः जीवात्मा बारह दिन तक प्रेत बनकर यहीं पर रहता है यह बात कपोल कल्पित है तथा वेद विरूद्ध है। आपके द्वारा दिया गया प्रमाण भी तथा आपके सारे पुराण भी श्राद्ध का खण्डन करते हैं। देखिये **"गया श्राद्ध"** के बारे में आपके पुराण क्या कहते हैं ?–

त्वदर्थं तु गया पिण्डो मया दत्तो विद्यानतः।

तत्कथं नैव मुक्तो सिमयाश्चर्य मिदं महत्।।

प्रेत उवाच–

गया श्राद्ध शतेनापि मुक्ति मै न भविष्यति।
उपापम परं किञ्चत्तद विचारय साम्प्रतम्।। (भागवत पुराण)

यह गौकर्ण–धुन्धकारी का यह सम्वाद है। धुन्धकारी महापातकी था, जो मरने के बाद प्रेत हो गया। इस पर गौकर्ण कहता है कि मैंने तेरे लिए विधान पूर्वक पिण्ड दिये फिर तेरी मुक्ति क्यों नहीं हुई ? यह बड़े ही आश्चर्य की बात है, यदि गया श्राद्ध से मुक्ति न हुई तो कोई दूसरा उपाय नहीं है। प्रेत कहता है कि एक सौ गया श्राद्ध करने पर भी मेरी मुक्ति नहीं होगी। इसके लिए कोई दूसरा उपाय सोचो। इस आख्यायिका से यही सिद्ध होता है कि गया में पिण्डदान करना निष्फल है।

द्वादशाह–

मृत्युोपरान्त दस दिन तक लगातार पिण्ड देते हैं। और एकादशाह और द्वादशाह करके समाप्त करते हैं। ब्राह्मण के लिए १२, क्षत्रिय के लिए १४, वैश्य के लिए १७ तथा शूद्र के लिए ३२ द्वादशाह, शुद्धि के लिए विहित हैं परन्तु आश्चर्य है कि सबका नाम द्वादशाह ही रक्खा है। प्रथम तो यह विधि ही बिल्कुल काल्पनिक तथा ईश्वर नियम के विरूद्ध है।

मनुष्य मात्र दस माह में सन्तान उत्पन्न करते हैं, परन्तु मृतक श्राद्ध में असमानता क्यों ? यह असमानता ही प्रकट करती है कि अज्ञानी जनों ने ऐसा विधान बनाया है। क्या ईश्वरीय नियम मृत ब्राह्मण को यहां १२ दिन शूद्र को ३२ दिन यहां रहने देगा, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, वेदों में तो जलाने के बाद ही यहां से प्रस्थान करने का विधान है। यथा– **"यदा श्रृतं कृण्वो जातवेदोऽर्थे मेनं ग्रहिणुतात् पितृभ्यः"** मनुस्मृति में इसकी चर्चा नहीं है, मनुस्मृति में केवल शुद्धि की चर्चा है, जितने अधिक अज्ञानी हैं उतना ही उनके लिए शोक अधिक होता है। मृत पुरूष के निमित्त स्वभावतः उसके पुत्र–पौत्रादिकों को शौक हो जाता है, इसलिए यह नियम कमजोर है, मनु का तात्पर्य यही है, विद्वान वेद विद् पुरूष के लिए तो एक ही दिन में शुद्धि का विधान मनुस्मृति आदि करते हैं। यह दस दिन का विधान साधारण ब्राह्मणों के लिए है, श्लोक– **५–५६** पर कुल्लूक भट्ट की टीका में लिखा है कि– अग्नि वेदयुक्त ब्राह्मण एक ही दिन में शुद्ध हो जाता है।

श्रौताग्नि, वेदाध्ययन गुणों से एक, गुणों से रहित तीन दिन में, दोनों गुणों से हीन चार दिन में, रूप गुणों से हीन दस दिन में, शुद्ध होता है, इससे स्पष्ट है कि, शुद्ध होने का तात्पर्य शोक निवृत्ति में है। मृत्योपरान्त जीव का सूक्षम शरीर होता है, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच तन्मात्रायें, अहंकार–मन और बुद्धि इन अठारह पदार्थों का सूक्षम शरीर होता है। खाना–पीना, दुख–सुख, प्यास आदि स्थूल शरीर में होता है, सूक्षम शरीर को खाने–पीने की आवश्यकता नहीं, न उसे सुख दुःख का अनुभव होता है, न प्यास लगती है, अतः उसके लिए धूप से बचने हेतु छाता, तप्त बालुका में जलने से बचने के लिए जूता, सोने के लिए–बिस्तर दान, मार्ग में खाने के लिए ब्राह्मणों को अन्न दान इत्यादि सभी बातें अज्ञानियों की कल्पना मात्र हैं।

वृषभांकन–

बैल को खूब गरम लोहे से दागने की भी एक विधि श्राद्ध में आती है। यद्यपि आजकल बैल दागना

सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। तथापि बंगाल प्रान्त में इसकी अधिकता है। एक साधारण व लघुवयस्क के मरने पर भी बैल दागा जाता है। इस कर्म का नाम वृषोत्सर्ग है। लोग समझते हैं कि यदि बैल न दाग़ा जावेगा तो प्रेत की सद्‌गति नहीं होगी। दागने के समय बैल जितना जोर से चिल्लायेगा उतना ही शीघ्र वह मृत पुरूष स्वर्ग को चला जावेगा। यह विधि क्यों और कहां से चली ?

यह विधि चीनी लोगों ने प्रचलित की थी, क्योंकि ये चीनी लोग मांस खाने में सबसे आगे हैं। ये लोग कुत्ते के मांस तक को बड़े प्रेम से खाते हैं, यही अन्धविश्वास यहां के लोगों में फैल गया। ये चीनी लोग गया में वृषभादिक के मांस से श्राद्ध करते थे। इसी के देखा देखी यहां के लोग भी वैसा ही करने लगे, मधुपर्क आदि क्रिया में भी यहां के लोग गौ हत्या करते थे उस समय से ही लोग गौ हत्या करने लग पड़े थे। इसी हेतु जहां तहां गौ हत्या की चर्चा पायी जाती है, क्योंकि बौद्धों की प्रबलता के कारण सब प्राचीन ग्रन्थों में वेदों को छोड़कर बहुत सी मिलावटें की गई हैं।

यदि कहो कि– **"अहिंसा परमो धर्मः"** बौद्धों का यह परम माननीय सिद्धान्त था, यह मन्तव्य था इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। परन्तु इसको सभी ने स्वीकार नहीं किया। चीन–जापान, तिब्बत और लंकावासी बौद्ध इसके साक्षी हैं। प्रथम यहां के लोग भी चीनियों की देखा देखी श्राद्धादिक कार्यों में बैल मारते थे। यहां के सायण आदि भाष्यकारों ने कैसा अत्याचार किया हैं ? परन्तु पुनः वैदिक धर्म स्थापित् और बौद्ध धर्म पतित होने पर बैल को मारना तो बन्द कर दिया गया परन्तु उसके स्थान पर उसे दागना आरम्भ कर दिया जो अभी तक यह परम्परा विद्यमान है। यह महान घोर अनर्थ आर्य सन्तान से कदापि नहीं हो सकता है। कैसी अज्ञानता की बात देश में चली हुई है। यह क्रूर कर्म सूचित करता है कि यह मृतक श्राद्ध विदेशियों की देन है। श्राद्ध पर एक कथा बड़ी प्रसिद्ध है और मजेदार भी आप लोग ध्यान पूर्वक सुनिये–

अपने कर्मवश एक व्यक्ति मरणोपरान्त एक ब्राह्मण घर में ही बैल बना तथा उसकी स्त्री कुतिया बन गई। उस मृत–माता पिता के लड़कों ने श्राद्ध में खिलाने हेतु दूध एकत्र किया, किसी सांप ने उस दूध में मुंह डाल दिया, कुतिया उसे देखती रही, बाद में उसने भी उसमें मुंह लगा दिया, पुत्र वधु ने कुतिया को लाठी मारी, परिणाम स्वरूप कुतिया की कमर टूट गई। रात्रि में वह बैल के पास जाकर सब वृतान्त बताते हुए रोने लगी। बैल ने कहा तू रोती क्यों है ? पतोह ने मारा ही तो है, परन्तु बेटे ने आज मेरे लिए श्राद्ध किया। परन्तु आज खाने को न घास मिली और न पीने को पानी। जबकि पूर्व जन्म में, मैं इसका बाप था।

पुराण ही इसका खण्डन करता है, अब आप लोग समझ जाइये कि ब्राह्मणों को खिलाया हुआ मृत तक पहुंचता है या नहीं ? क्या पण्डित जी के पास इन सब बातों का है कोई जवाब ?...........श्रौताओं में चारों तरफ तालियां............... । (और सभा विसर्जित हो गई)।।

नोट– इस शास्त्रार्थ का ऐसा प्रभाव पड़ा कि आस–पास के लगभग २०–२५ ग्रामों में श्राद्ध परम्परा ही बन्द हो गई। मैं स्वयं इस शास्त्रार्थ में मौजूद था। तथा सभी लोग वैदिक रीति से मृतकों का संस्कार कराने लगे।

वैदिक धर्म का सेवक–
"सत्यव्रत वानप्रस्थ"

एक सौ इक्कीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : बून्दी (राजस्थान)

दिनांक : १६ से १६ मार्च सन् १८८८ ई०

विषय : क्या ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद हैं ?

शास्त्रार्थकर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : १. सर्वश्री स्वामी नित्यानन्द जी,
२. स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी

शास्त्रार्थकर्त्ता विपक्ष की ओर से : १. नवनन्दाचार्य जी,
२. पण्डित गंगासहाय जी,
३. पण्डित हरिदास जी व्यास,
४. पण्डित श्रीनिवास ताताचार्य जी,

संस्कृत से हिन्दी में अनुवादकर्त्ता : श्री पण्डित ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी, आयुर्वेद–शिरोमणी,

शास्त्रार्थ में ग्रन्थों की सहायता प्रदानकर्त्ता : आर्य नरेश महाराज सुदर्शन देव जी (शाहपुराधीश)

इस अप्राप्य सामग्री के खोजकर्त्ता : श्री भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण (मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान ने शाहपुराधीश के पुस्तकालय से प्राप्त किया)

शास्त्रार्थ में उपस्थित मुख्य–मुख्य व्यक्ति : बूंदी नरेश श्री महाराज रामसिंह जी (रामानुज–साम्प्रदायी) तथा राज वैध श्री पण्डित सूर्य नारायण जी आदि–आदि।

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी ने अपने जीवन में बहुत से शास्त्रार्थ किये, परन्तु यह शास्त्रार्थ अपने आप में विशेष महत्व रखता है, जिसके विषय में श्री पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने कहा था कि– **"महर्षि स्वामी दयानन्द जी के निधन के अनन्तर आर्य समाज ने ऐसा महत्वपूर्ण कोई शास्त्रार्थ नहीं किया था"** यह शास्त्रार्थ महर्षि दयानन्द जी के बलिदान से पांच वर्ष बाद हुआ था। तब श्री पण्डित लेखराम जी एवं श्री पण्डित गुरूदत्त जी एम० ए० जीवित थे, बल्कि पण्डित लेखराम जी तो इस शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिए आये भी थे, परन्तु अन्तिम दिन जब तक पण्डित लेखराम जी बूंदी पहुँचे तो वहां से श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी प्रस्थान कर चुके थे, अतः भेंट नहीं हो सकी।

यह शास्त्रार्थ वर्तमान में लगभग अप्राप्य सा ही था, इसको श्री पण्डित भगवानस्वरूप जी न्याय– भूषण जी के अथक प्रयास से वैदिक पुस्तकालय अजमेर द्वारा प्रकाशित कराया गया था। यह शास्त्रार्थ सन् १८८८ ई० में लिखित रूप से हुआ था। जिसमें रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायियों को श्री ब्रह्मचारी जी की विद्वता का लोहा मानना पड़ा था।

शास्त्रार्थ में एक तरफ श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी एवं स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी एवं दूसरी तरफ अनेकों दिग्गज विद्वान मौजूद थे। परन्तु जब शास्त्रार्थ में उन पण्डितों से कोई जवाब श्री ब्रह्मचारी जी के प्रश्नों का नहीं बन पड़ा तो उन विद्वानों ने सज्जनों की मर्यादा भंग करके इन दोनों के लिए, धृष्ट, पाखण्डी, रोगव्यपदेशहि सन्यासी वेष वाले आदि अपशब्दों का प्रयोग किया। और ऐसे व्यक्तियों से भाषणादि नहीं करना चाहिये, ऐसा कहकर अपना पिण्ड छुड़वाया एवं शास्त्रार्थ बन्द कर दिया। इसके बाद बूंदी राज्य की ओर से भी दुर्व्यवहार पूर्वक उन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया गया।

यद्यपि बूंदी नरेश की आज्ञा थी कि– **"मेरे राज्य में कोई भी आर्यसमाजस्थ पुरूष न आने पावे"** परन्तु जब स्वामी जी वहां पहुंचे तो उनको भी उनके पूर्व परिचित इन्दौर निवासी राजवैध श्री पण्डित सूर्यनारायण जी ने कहा कि– **"यहां पर आप अपने को आर्य न बतावें और शीघ्र ही यहां से प्रस्थान कर जायें"** इस पर स्वामी जी ने कहा कि– हम कुछ दिन ठहरेगें और हमसे जो कोई कुछ पूछेगा उसे हम यथार्थ की कहेगें। किसी प्रकार यह बात राजा के कानों में पहुँची तो कुछ वाद–विवाद के पश्चात शास्त्रार्थ करवाने का निश्चय हो गया जो बूंदी राज्य व स्वामी नित्यानन्द एवं स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी के मध्य होगा। शास्त्रार्थ का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जावेगा, बूंदी राज्य की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता श्री पण्डित नवनन्दाचार्य, पण्डित गंगासहाय, पण्डित हरिदास व्यास और पण्डित श्रीनिवास ताताचार्य जी नियुक्त हुए। स्वामी नित्यानन्द जी पहले जैनियों के सम्पर्क में बहुत रहे, इत्तफाक से एक बार स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी से भेंट हो गई तभी से दोनों साथ–२ रहकर वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे एवं हमेशा साथ ही रहते थे, स्वामी नित्यानन्द जी की मृत्यु (आठ जनवरी सन् १६१४ ई०) ५३ वर्ष में ही हो गई थी, इनके पास धन बहुत था, इनसे बहुत सा धन तो श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने हिन्दु विश्वविद्यालय काशी के लिए ले लिया था, शेष धन पण्डित विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए० ने लेकर विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान बना दिया था, जो आजकल होशियारपुर

(पंजाब) में साहित्य का महान कार्य कर रहा है।

स्वामी नित्यानन्द जी का बड़े–बड़े राजा–महाराजाओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था इन्होंने समाज का बड़ा भारी कार्य किया, वैसे इनका विस्तृत जीवन परिचय "**बूंदी शास्त्रार्थ**" जो वैदिक पुस्तकालय अजमेर से प्रकाशित हुआ है उसके आरम्भ में "**श्री वैद्य ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी**" द्वारा दिया गया है। अधिक जानकारी के लिए आप वहां पढ़ सकते हैं। जिसके पढ़ने पर आपको अपने पूर्वजों के कार्य कलापों की एवं उनकी त्याग व तपस्या की जानकारी विस्तृत रूप में मिल सकेगी।

धन्य है उन विभूतियों को ! हमें उन पूर्वजों के द्वारा किये गये कार्यों से कुछ तो शिक्षा लेनी ही चाहिये तथा समाज के कार्य को आगे बढ़ाना चाहिये।

किमधिकम् लेखेन्

वैदिक धर्म का–
"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ आरम्भ

बून्दीस्थ पण्डितों की ओर से पहला प्रश्न पत्र–

संस्कृत

बून्दीस्थ पण्डितानां प्रश्नाः

१. भवतां किं मतम् ? २. वेदशब्देन किं गृह्यते ? ३. ईश्वरेण ब्राह्मणभाग उक्तो वा संहिताभाग उक्तः? ४. संहिता–मात्र–ग्रहणे मानं किम् ? यतो व्यवहारेण शास्त्रेण च उभयं गृह्यते। ५. एवं चेन्मन्त्रभाग ईश्वरेणोक्त इत्यत्र किं मानम् ?

"गंगासहायाक्षराणि"

भाषानुवाद–

बून्दी स्थित पण्डितों के प्रश्न

१. आपका क्या मत है ? २. वेद शब्द से क्या ग्रहण किया जाता है ? ३. ईश्वर ने ब्राह्मण–भाग कहा है अथवा संहिता–भाग कहा है ? ४. ईश्वर ने संहिता मात्र भाग ही कहा है, इसमें क्या प्रमाण है ? क्योंकि व्यवहार में और शास्त्र में दोनों का ही ग्रहण किया जाता है। ५. यदि ऐसा ही है तो मन्त्रभाग ईश्वर ने कहा है इसमें क्या प्रमाण है ?

हस्ताक्षर– "गंगासहाय"

स्वामी जी की ओर से पहले पत्र का उत्तर–

उत्तराणि स्वामिनः

१. अस्माकं वेदमतम् २. ईश्वरोक्तत्वं वेदत्वम् ३. मन्त्रभागसंहितेति

४. ब्रह्मणभागस्यानीश्वरोक्तत्वात् पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वा वेदव्याख्यानत्वाद्वा।

५. 'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे'[1] इत्यादि

"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्य" मिति[2] वैशेषिकदर्शने कणादेनाप्युक्तम्। 'निजशक्त्यभिव्यक्ततेः स्वतः प्रामाण्यम्।'[3] इति सांख्ये कपिलेनाप्युक्तम्। इत्यादि वचनात् मन्त्रभागस्येश्वररोक्तत्वं स्वतः प्रमाण्यं च सिद्धम्। यद्येवमुच्यते भवद्भिर्ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं कुतो न स्यात्। तत्र ब्रूमोऽनीश्वरोक्तत्वादित्याद्युक्तहेतुभ्यो ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं नास्ति। तथा च पाणिन्याचार्यैरपि। छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि।

अ० ४, पा० २, सू० ६६।। द्वितीया ब्राह्मणे। अ० २, पा० ३, सू० ६०।। चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि। अध्याय २, पां० ३, सूत्र ६२।। इत्यादिसूत्रेषु मन्त्रब्राह्मणयोर्भेदो दर्शितो यदि ब्राह्मणभागस्यापि वेदत्वमिष्टं

स्यात्तर्हि "छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणी" ति सूत्रे छन्दोग्रहणं व्यर्थ स्यात्। "द्वितीया ब्राह्मण" इति ब्राह्मणस्य प्रकृतत्वात् यदि ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं मन्यते भवता तर्हि को नाम वेदः, कियती च वेदस्य संख्या तथा च के के ग्रन्था वेदे सन्निविष्टा इति भवान् प्रष्टव्यः।

"स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती"
"ब्र० नित्यानन्द हस्ताक्षराणि"

भाषानुवाद–

स्वामी जी की ओर से उत्तर–

१. वेद का मत हमारा मत है ?

२. ईश्वरोक्त होना वेदत्व है।

३. ईश्वर ने मन्त्रभाग संहिता कही है।

४. ब्राह्मण–भाग के अनीश्वरोक्त होने से, उसकी पुराण और इतिहास संज्ञा होने तथा वेद के व्याख्यान रूप होने से संहिता मात्र का ही ईश्वरोक्त रूप में ग्रहण होता है।

५. मन्त्रभाग ही ईश्वरोक्त है इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं। **"उस यज्ञ अर्थात् सच्चिदानन्द आदि लक्षण वाले पूर्ण पुरुष से सबके ग्रहण करने योग्य ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई अर्थात् उससे ही प्रकाशित हुए।"**[1] वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनि ने भी कहा है– **"ईश्वरोक्त होने से, धर्म और ईश्वर के ही वर्णन करने से और धर्म का ही कर्त्तव्य रूप से प्रतिपादन करने के कारण आम्नाय (चारों वेदों) का प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है।"**[2] सांख्यदर्शन में कपिलमुनि ने भी कहा है– **"ईश्वर की अपनी स्वाभाविक ज्ञान शक्ति से पुरुष (परमात्मा) की सहचारी प्रधान शक्ति से प्रकट होने के कारण वेदों का नित्यत्व और प्रामाण्य स्वीकार करना चाहिए।"**[3] इत्यादि वचनों से मन्त्रभाग की ईश्वरोक्तता और उनका स्वतः प्रमाण होना सिद्ध होता है। यदि आप ऐसा कहें कि ब्राह्मणभाग का वेदत्व क्यों नहीं है तो हम कहते हैं कि ऊपर जैसे (प्रश्न ४ के उत्तर में) बताया है– अनीश्वरोक्त होने से, ब्राह्मण की पुराण और इतिहास संज्ञा होने से और वेदों के व्याख्यान रूप होने से ब्राह्मणभाग का वेदत्व नहीं है। आचार्य पाणिनि ने भी कहा है– **"प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण तद्विषय हों" अर्थात् अध्येतृ वेदितृ विषयक हों।** एवं **"द्यूतार्थक और क्रय विक्रय रूप व्यवहारार्थक दिवु धातु से ब्राह्मण विषय में कर्म में द्वितीया हो।"** तथा **"छन्दों विषय में**

टिप्पणी–

१– तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दाँसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायद।।

(यजु० अध्याय ३१, मन्त्र ७)

२– वैशेषिक दर्शन, अध्याय १ आह्निक १, सूत्र ३, **अर्थः**– तद्वचनात् तयोर्धर्मेश्वरयोर्वचचनाद्धर्मस्यैव कर्त्तव्यतया प्रतिपादनादीश्वरेणैवोक्तत्वाच्चाम्नायस्य वेदचतुष्टयस्य प्रामाण्यं सवैर्नित्यत्वेन स्वीकार्यम्।। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदनित्यत्वविषयः)

३– सांख्यदर्शन, अध्याय ५, सूत्र ५१, "अस्यायमर्थः वेदानां निजशक्त्यभिव्यक्तेः, पुरुषसहचारि प्रधानसामर्थ्यात् प्रकटत्वात्स्वतः प्रामाण्यनित्यत्वे स्वीकार्ये इति"।। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदनित्यत्वविषयः) "वेदानां निजा स्वाभाविकी या यथार्थज्ञानजननशक्तिस्तस्या मन्त्रायुर्वेदादावभिव्यक्तेरुपलम्भादखिलवेदानामेव स्वत एव प्रामाण्यं सिद्ध्यति।" **विज्ञानभिक्षुः**।।

चतुर्थी के अर्थ में बहुल करके षष्ठी हो।" इत्यादि सूत्रों में मन्त्र और ब्राह्मण का भेद प्रदर्शित किया गया है। यदि ब्राह्मण भाग का भी वेद होना स्वीकृत होता तो **"छन्दोब्रह्मणानि च तद्विषयाणि।"** इस सूत्र में छन्द शब्द का ब्राह्मण से पृथक् ग्रहण करना ही व्यर्थ होता। **"द्वितीया ब्राह्मणे"** इस सूत्र में ब्राह्मण विषय प्रकृत होने से यदि ब्राह्मणभाग का वेद होना आप मानते हैं तो हम आपसे पूछना चाहेंगे कि वेद क्या है,? वेद की संख्या कितनी है ? और कौन–कौन से ग्रन्थ वेद में सन्निविष्ट हैं ?

हस्ताक्षर–

स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती,

ब्र० नित्यानन्द हस्ताक्षरकर्त्ता

बून्दीस्थ पण्ड़ितों की ओर से दूसरा पत्र–

अहो आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे इत्युक्तन्यायमनुसृत्य व्यवहारः प्रवर्त्तितः। ब्राह्मणस्येश्वरोक्तत्वन्नास्तिचेन्मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे किं प्रमाणमिति प्रश्नस्तदुत्तरत्वेन शिथिलान्हेतूनुपन्यस्य तद्दार्ढ्यमसम्पाद्यैव मन्त्रभागे ईश्वरोक्तत्त्वं सिद्धमित्युक्तम्। पश्चाच्च मन्त्रब्राह्मणयोर्भेदसाधकज्ञापकान्युपन्यस्तानि तानि च पाणिनिसूत्रैरेव बाध्यन्ते। यतो– "मन्त्रे उक्थ"[१] इत्यत्र मन्त्रग्रहणं कृत्वा ततो "बहुलं छन्दसी"[२] त्युक्तमनेन मन्त्रस्यापि वेदत्वं बाध्यते। "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेय" मिति कात्यायनापस्तम्बयोर्वचने स्फुटं मन्त्रवद् ब्राह्मणस्यापि वेदत्वम्। तथा चाप्रकृतविचारं परित्यज्य पूर्वप्रश्नस्योत्तरं देयम्। युष्माभिःसर्वशिष्टसम्मतं ब्राह्मणस्मृत्यादिप्रामाण्यं प्रमाणं विनैव परित्यज्यते। अस्माभिस्तु– "पुराण–न्याय–मीमांसा–धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।"[३] इति याज्ञवल्क्याद्युक्तिबलाद् वेदादिकं प्रमाणत्वेन स्वीक्रियते। तेषां परित्यागे युष्माभिः प्रमाणं देयम्। नो चेत् सर्वस्मिन्नपि स्वीयमते युक्तय एव वक्तव्याः। अर्धजरतीयस्य[४] सर्वाऽसम्मतत्वात्। इति संक्षेपः। अन्यदप्रकृतम्।।

गंगासहायाहस्तक्षराणि

(माघ शुक्ला द्वादशी, संवत् १९४५)

भाषानुवाद

बून्दी स्थित पण्डितों की ओर से–

अहो, आपने तो **"पूछे आम और बतावे कचनार"** वाली कहावत के अनुसार व्यवहार प्रवृत्त किया है। प्रश्न यह है कि यदि ब्राह्मणभाग ईश्वरोक्त नहीं है तो मन्त्रभाग के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ? इसके उत्तर में शिथिल हेतु देकर उनकी दृढ़ता सम्पादित किये बिना ही कह दिया कि मन्त्रभाग में ईश्वरोक्तत्व सिद्ध हो गया। बाद में मन्त्र और ब्राह्मण के भेद को सिद्ध करने वाले ज्ञापक उपन्यस्त किये हैं। वे पाणिनि के सूत्रों से ही बाधित हो जाते हैं। क्योंकि– अष्टधायी में **"मन्त्रे उक्थ"**[१] इस सूत्र में **"मन्त्रे"** इस पद से मन्त्रभाग

टिप्पणी–

१– अष्टाध्यायी, अ० ३, पा० २, सू० ८८।।

का निर्देश करके फिर आगे **"बहुलं छन्दसि"**[१] सूत्र में **"छन्द"** शब्द ग्रहण किया है। इससे तो प्रतीत होता है कि मन्त्रभाग भी वेद नहीं है। **"मन्त्र और ब्राह्मण का वेदनाम है"** इस कात्यायन और आपस्तम्ब के वचन में स्पष्ट ही मन्त्र के समान ही ब्राह्मण को वेद माना है। अप्रासंगिक विचार को छोड़कर पूर्व प्रश्न का उत्तर देना चाहिये। आप सभी शिष्टजनों द्वारा माने हुए ब्राह्मण स्मृति आदि के प्रामाण्य को बिना प्रमाण के छोड़ रहे हैं। हम तो– **"पुराण, न्याय, मिमांसा, धर्मशास्त्र तथा छः अंगों[२] से मिश्रित चार वेद धर्म और विद्याओं के चतुर्दश स्थान हैं।"** इस याज्ञवल्य के कथन् के बल पर वेद आदि ग्रन्थों को प्रमाण मानते हैं। इनको प्रमाण न मानने की अवस्था में आपको प्रमाण देना चाहिये। यदि आप प्रमाण नहीं देते हैं तो अपने मत के समर्थन में केवल युक्तियाँ ही कहनी चाहिये। **"अर्धजरतीयन्याय"**[३] सबको ही अस्वीकार्य है। यह संक्षेप में कहा है। दूसरा सब अप्रासंगिक है।

हस्ताक्षर–
"गंगासहाय"
(माघ शुक्ला द्वादशी, संवत १६४५)

स्वामी जी की ओर से दूसरे पत्र का उत्तर

भवद्भिर्यदहो आम्रानित्यारभ्य मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे किं प्रमाणमित्यन्तमुक्तम् तत्तु गगनकुसुमायते। यतो नहि मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे ब्राह्मणभागस्यचावेदत्वे मानं परित्यज्ज तदन्यदनुसरामो यदुक्तं शिथिलान्हेतूनुपन्यस्येत्यादि तदप्ययुक्तम्। यत उक्तहेतूनां शिथिलत्वे प्रमाणमदत्त्वाकस्मादेव हेतुशिथिलोक्तित्वं दर्शयन्ति भवन्तोऽस्मदुक्तहेतवस्त्वतीव दृढाः सन्ति। यतो ब्राह्मणभागे 'सुकेशा च भारद्वाजः शैवयश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रांह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो[१] भगवन्तं पिप्लादमुपसन्नाः'।। "तान् ह स ऋषिरुवाच–भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ। यथा कामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति"।। 'अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ'।। "तस्मै स होवाचअथ हैनं कोशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ'।। 'तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि। ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि'।। तथा च "शौनको ह महाशालोऽगिंरसंविधिवदुपसन्नःपप्रच्छ।। 'तस्मै स होवाच। द्वे विद्ये वेदितव्ये इति'। तथैव– ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानमि" ति।। तथैव– 'ओं शिक्षां व्याख्यास्यामः'।। 'भृगुर्वैवारुणिर्वरुणं पितरमुपससार'।। 'सैषा भार्गवी वारुणी विद्या'।। 'जनको वैदेहो बहुदक्षिणेन यज्ञेनेजे। तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवः। प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः जनः शार्कराक्ष्यो वुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमांसाञ्चक्रुः। को नु आत्मा। किं ब्रह्मेति'।। उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतु पुत्रमुवाच।।

टिप्पणी–

१– याज्ञवल्क्यस्मृतिः। आचाराध्यायः। उपोद्घातप्रकरणम्, श्लोक ३.

२– छः अंग–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः और ज्योतिष्।

३– "अर्धजरतीय न्याय" का हिन्दी अनुवाद "आधा तीतर आधा बटेर" ठीक जँचता है।

'याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः मैत्रेयी च कात्यायनी च'।। "सा होवाच मैत्रेयी। स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रियावतार' इत्यादि वचनानि ऋषिप्रोक्तानि सन्त्यत एव ब्राह्मणभागस्येश्वरोक्तत्वं नास्तीति।। तथा च मन्त्रभाग एव ईश्वरोक्त इत्यत्र मानमपि दृढतरं दर्शितमस्ति। 'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे'[2] इत्यादि। न चैवात्र ब्राह्मणानि जज्ञिरे इत्युक्तम्। एवमथर्ववेदेऽपि 'यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्'[3] इत्यादि। तथा च यदुक्तं 'मन्त्रब्राह्मणयोर्भेदसाधकानि ज्ञापकान्युपन्यस्तानि तानि च पाणिनिसूत्रैरेव बाध्यन्ते। यतो 'मन्त्रे उक्थ' इत्यत्र मन्त्रग्रहणं कृत्वा ततो 'बहुलंछन्दसी' त्युक्तमनेन मन्त्रस्यापि वेदत्वं बाध्यत, इत्यपि न सम्यक्। प्रथम तु 'मन्त्रे उक्थ' इत्यात्मकं सूत्रन्नास्ति। 'मन्त्रेश्वेतवह' इत्यत्र इत्युक्त्वा बहुलं छन्दसीत्यस्मिन् पुनः छन्दो ग्रहणेन महर्षेर्महानभिप्रायो यथा 'क्विप् च', कर्मणि हनः' इत्युक्त्वापि पुनः 'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' इत्युक्तम्। यथा अत्र भाष्यकारेण द्विविधो नियमः सूचितः[4] तथैव बहुलं छन्दसीत्यत्रापि ज्ञेयम्।

यथाऽस्माभिरेकस्मिन् सूत्र उभयपदं दर्शितम् तथैव युष्माभिरप्युदाहरणीयम्। यन्मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति कात्यायनापस्तम्बयोर्वचनमुपन्यस्तं तत्तु व्याख्यानव्याख्येययोः सम्बन्धेन कथञ्चित् सम्भाव्यते। यथा कश्चित् प्रधानामात्यमेव राजानं ब्रूयात् तत्कर्मकारित्वात् तथैवात्राऽपि बोध्यम्।

युष्माभिः सर्वशिष्टसम्मतब्राह्मणस्मृत्यादिप्रामाण्यम्प्रमाणं विनैव परित्यज्यत इति तु भवतां साहसोक्तिर्नह्यस्माभिर्वेदानुकूलब्राह्मणस्मृत्यादिप्रामाण्यं परित्यज्यते। परन्तु वेदानां स्वतः प्रामाण्यं वेदानुकूलत्वेन ब्राह्मणस्मृत्यादीनां परतः प्रामाण्यमित्यस्माभिः स्वीक्रियते। तथा युष्माभिः "पुराणन्यायमीमांसे" त्यादिना यत् स्वीयमन्तव्यमुपन्यस्तन्तत्र पुराणशब्देन यदि भागवतादीनामष्टादशपुराणानां ग्रहणं चेत्तर्हि वेदविरुद्धत्वेन सर्वैरास्तिकैर्हेयम्। तथा च ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं स्वीक्रियते भवता तर्हि को नाम वेद इत्यादि प्रश्नानामुत्तरावसरे कथमुपरम्यते युष्माभिस्तेषां मुत्तरन्त्ववश्यंविधेयमन्यदप्रासगिंकमिति।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती

(नित्यानन्दक्षराणि माघ ब्र० नित्यानन्द हस्ताक्षराणी शुक्ला १२ सम्वत १६४५)

–भाषानुवाद–

स्वामी जी की ओर से–

आपने तो **"अहो, पूछे आम बतावे कचनार"** से लेकर **"मन्त्रभाग के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?"** यहां तक जो कुछ कहा है वह आकाश के फूल के समान ही असम्भव और असंगत है। क्योंकि हम तो मन्त्रभाग की ईश्वरोक्तता और ब्राह्मणभाग के वेद न होने के विषय में प्रमाण को छोड़कर दूसरा मार्ग ही नहीं लेते हैं। जो आपने यह कहा है कि हमने शिथिल हेतु दिये हैं वह भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि उक्त हेतुओं की शिथिलता में कोई प्रमाण या कारण न बताकर आप उन्हें शिथिल हेतु बता रहे हैं। वास्तव में हमारे कहे हुए हेतु तो अत्यन्त दृढ़ हैं। क्योंकि ब्राह्मणभाग में ऋषियों के कहे हुए वचन हैं इसलिए उनको ईश्वरोक्त, ईश्वर का कहा हुआ नहीं माना जा सकता। जैसा कि ब्राह्मण में लेख है– ब्रह्म की लगन वाले, ब्रह्मनिष्ठ

और परब्रह्म के अन्वेषक भारद्वाज के पुत्र सुकेशा, शिवि के पुत्र सत्यकाम, सौर्यायणी गार्ग्य, कौशल्य आश्वलायन, भृगुवंशज वैदर्भि और कबन्धी कात्यायन यह सोचकर कि यह हमको सब कुछ बता देंगे– समित्पाणि[१] होकर भगवान् पिप्पलाद की सेवा में उपस्थित हुए। उनसे उस ऋषि (पिप्पलाद) ने कहा– यद्यपि आप पहिले भी ब्रह्मचर्य का आचरण करते रहे हैं फिर भी पुनः तप और श्रद्धापूर्वक एक वर्ष और ब्रह्मचर्य को धारण कीजिये। उसके अनन्तर इच्छानुसार प्रश्न पूछिए। यदि हमें ज्ञात होगा तो सब कुछ आपको बतावेंगे। एक वर्ष ब्रह्मचर्य के अनन्तर कबन्धी कात्यायन ने उनके पास जाकर पूछा। उससे ऋषि ने कहा। उसके बाद कौशल्य आश्वलायन ने उनसे पूछा। 'उनसे ऋषि ने कहा तुम तो ऊँचे ऊँचे प्रश्न पूछते हो। ब्रह्मिष्ठ प्रतीत होते हो। इसलिए मैं तुमको बताता हूँ'। और "महाशाल शौनक मुनि विधिपूर्वक अगिंरस ऋषि के पास पहुँचे और उनसे पूछा।" 'उससे उन्होंने कहा। दो विद्याएँ जाननी चाहिए।' और भी इसी प्रकार कहा है– 'ओम् इतना ही यह अक्षर है। यह सब उसका ही उपव्याख्यान है।' और भी– "अब शिक्षा की व्याख्या करेंगे।।" 'वरूण के पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के पास गये।' 'वह यह भार्गवी (भार्गव के नाम से प्रसिद्ध) और वारुणी (वरुण के नाम से प्रसिद्ध) विद्या है।' 'वैदेह जनक ने बहुदक्षिण यज्ञ किया। उस यज्ञ में कुरु और पञ्चाल प्रदेशों के ब्राह्मण एकत्र हुए। उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भाल्लवि का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष का पुत्र, जन, अश्वतराश्व का पुत्र वुडिल ये सद् गृहस्थ और वेदाध्ययन में तत्पर महाश्रोत्रिय एकत्र होकर विचारने लगे'। 'आत्मा कौन है ? ब्रह्म क्या है?' 'आरूणि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा'।। याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थी। मैत्रेयी और कात्यायनी'।। 'मैत्रेयी ने कहा। वे याज्ञवल्क्य बोले।' आदि वचन ऋषियों द्वारा कहे गए हैं। इसलिए ब्राह्मणभाग ईश्वरोक्त नहीं हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्रभाग ही ईश्वरोक्त है इस विषय में दृढ़तर प्रमाण भी दर्शित किया गया है। 'उस पूजनीय परमात्मा से सबके ग्रहण करने योग्य ऋक् और साम उत्पन्न हुए[२] इत्यादि स्थल पर यह तो कहा गया है कि ऋग्, यजुः, साम और अर्थववेद उत्पन्न हुए परन्तु यह कहीं नहीं कहा गया है कि ब्राह्मण भी उत्पन्न हुए। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी 'जिससे ऋचाएँ उत्पन्न हुई, जिससे यजु की उत्पत्ति हुई।[३] आदि कहा गया है। तथा जो आपने यह कहा है कि 'मन्त्र और ब्राह्मण के भेद को सिद्ध करने वाले ज्ञापक हमने दिये हैं वे तो पाणिनि के सूत्रों से ही कट जाते हैं। क्योंकि **"मन्त्रे उक्थ"** यहां पर मन्त्र का ग्रहण करके फिर **"बहुलं छन्दसि"** सूत्र कहा है इससे मन्त्र का भी वेद होना बाधित हो जाता है, इस प्रकार का आपका वचन भी ठीक नहीं है, प्रथम तो यह बात है कि **"मन्त्रे उक्थ"** इस प्रकार का सूत्र ही नहीं है। **"मन्त्रे श्वेत वह०"** इस पाणिनि सूत्र में **"मन्त्रे"** शब्द कहकर फिर जो **"बहुलं छन्दसि"** सूत्र कहा है उसमें महर्षि पाणिनि का बड़ा एवं विशेष अभिप्राय है। जैसे कि उन्होंने **"क्विप् च"** और **"कर्मणिहनः"** इन सूत्रों को कहकर फिर भी **"ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्"** सूत्र कहा है। उस स्थल पर जैसे महाभाष्यकार पतञ्जलि ने बताया है कि इस प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि

टिप्पणी–

१– हाथ में समिधा लेकर। प्राचीन काल में गुरु के पास शिक्षार्थ जाने का यही ढंग था।

२– यजुः। अध्याय ३१, मंत्र ७।।

३– 'यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः'।। अथर्ववेद काण्ड १० । प्रपाठक २३ । अनुवाक ४ । मन्त्र २० ।।

दो प्रकार का नियम है।[४] उसी प्रकार **"बहुलं छन्दसि"** के यहां पर कहने से भी समझना चाहिये। जैसे हमने एक ही सूत्र में मन्त्र और ब्राह्मण पदों को अलग अलग पठित दिखलाकर मन्त्र और ब्राह्मण का भेद बताया है उसी प्रकार आप भी कोई उदाहरण दीजिये जिससे एक ही सूत्र में इनका अभेद प्रदर्शित होता हो। जो आपने **"मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है।"** ऐसा कात्यायन और आपस्तम्ब का वचन प्रस्तुत किया है वह तो वेद और ब्राह्मण के व्याख्येय और व्याख्यान के सम्बन्ध से किसी प्रकार सम्भव हो सकता है। जैसे कोई राजा के प्रधानमंत्री को भी राजा का समस्त कार्य करने के कारण राजा कहे उसी प्रकार यहां भी वेद का (सर्वोत्तम सर्वाधिक प्रामाणिक) व्याख्यान होने से ब्राह्मण को भी वेद कह दिया है ऐसा समझा जा सकता है।[५] आपने जो ऐसा कहा है कि हम सब शिष्टों के द्वारा माने गये ब्राह्मण तथा स्मृति आदि का प्रमाण होना बिना प्रमाण के ही छोड़ रहे हैं, वह आपकी साहसोक्ति ही है। हम वेदानुकूल ब्राह्मण स्मृत्यादि के प्रामाण्य को नहीं छोड़ रहे हैं। अपितु हम ऐसा मानते हैं कि वेद स्वतः प्रमाण है और ब्राह्मण तथा स्मृति आदि ग्रन्थ वेदानुकूल होने पर परतः प्रमाण हैं। जो आपने 'पुराण–न्याय–मीमांसा' इत्यादि वाक्य से अपना मन्तव्य रक्खा है उसमें यदि पुराण शब्द से आपका तात्पर्य भागवत आदि पुराणों से है तो उनके वेद विरुद्ध होने से सब आस्तिकों को इस मन्तव्य का परित्याग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि आप ब्राह्मणभाग को भी वेद स्वीकार करते हैं तो **"वेद क्या है"** इत्यादि प्रश्नों के उत्तर के समय आप चुप क्यों हो जाते हैं ? उन प्रश्नों का उत्तर तो आवश्य ही देना चाहिये। इससे भिन्न बात अप्रासंगिक है।

हस्ताक्षर–

"स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती"

ब्र० नित्यानन्द (माघ शुक्ल १२ सम्वत १९४५)

टिप्पणी–

१– ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्किप्।। अष्टाध्यायी अध्याय ३। पाद २। सूत्र ८७।। ब्रह्म, भ्रूण और वृत्र शब्द के कर्मोपपद होने पर हन् धातु से क्किप् प्रत्यय हो।। महाभाष्यकार श्री पतञ्जलिमुनि ने बताया कि 'क्विप् च' अष्टाध्यायी अध्याय ३। पाद २। सूत्र ७६।। इस सूत्र से ही सिद्धि हो जाने पर "ब्रह्म" आदि सूत्र विशेष नियम के लिए है। अर्थात 'ब्रह्म' आदि शब्दों के ही कर्मोपपद होने पर हो, और क्विप् प्रत्यय ही हो। इस प्रकार दो प्रकार का नियम यहां है। श्री स्वामीजी ने महाभाष्य का उद्धरण यहां दिया है परन्तु काशिकाकार ने तो यहां चार नियम होते हैं यह स्वीकार किया है। उनके अनुसार– १. ब्रह्म आदि शब्दों के ही कर्मोपपद होने पर २. हन् धातु से हीं हो ३. भूतार्थ में ही और ४. क्विप् प्रत्यय ही हो। इस प्रकार चतुर्विध नियम की सृष्टि होती है। स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी और ब्र० नित्यानन्दजी का कहना है कि जिस प्रकार इस स्थल पर आचार्य पाणिनि ने **"क्विप् च"** तथा **"कर्मणि हनः"** सूत्रों को कहकर भी फिर **"ब्रह्मभ्रूण,"** सूत्र विशेष और महान् तात्पर्य को लेकर कहा है– उसी प्रकार **"मन्त्रेश्वेतवहोक्‌थ"** सूत्र को कहकर **"बहुलं छन्दसि"** सूत्र कहना भी विशेष नियम की सृष्टि करने वाला है। **मन्त्राभाग के** ईश्वरोक्त होने का बाधक नहीं है। क्योंकि महर्षियों के वचन निरर्थक अथवा पुनरुक्ति आदि दोष से रहित होते हैं। अतः उनके प्रत्येक शब्द का कोई न कोई विशेष अर्थ तथा तात्पर्य होता है।

२– महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी कात्यायन का यह वाक्य पूर्वपक्ष में प्रस्तुत किया है। परन्तु उन्होंने वहां उत्तरपक्ष में ऐसा समाधान नहीं दिया है। उन्होंने तो स्पष्ट कहा है कि **"अन्यच्च कात्यायनेनापि ब्रह्मणा वेदेन सहचरितत्वात्सहचारोपाधिं मत्वा ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा संमतेति विज्ञायते। एवमपि न सम्यगस्ति। कुतः। एवं तेनानुक्तत्वादतौन्यै ऋषिभिरग्रहीतत्वात्।"** ऋग्वेदिभाष्यभूमिका। वेदसंज्ञा विचारविषयः। आर्यभाषानुवाद सहित। पृष्ठ ८७।। "और भी है। कात्यायन ने भी ब्रह्मण अर्थात् वेद के सहचारी होने से सहचारोपाधि मानकर ब्राह्मणों की वेद संज्ञा मानी है ऐसा ज्ञात होता है। यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि कात्यायन ने ऐसा कहा भी नहीं है और उनके अतिरिक्त अन्य ऋषियों ने भी ऐसा ग्रहण नहीं किया है।" तात्पर्य यह है कि महर्षि को सहचारोपाधि से भी ब्राह्मणों की वेद संज्ञा अभीष्ट नहीं थी।

बून्दीस्थ पण्डितों की ओर से तीसरा पत्र–

भवद्भिर्यदहो इत्यारभ्य युष्माभिस्तेषामुत्तरन्त्ववश्यं विधेयमन्यदप्रासगिंकमित्यन्तं भवद्भिरस्मदुक्तमनुद्य किञ्चिल्लिखितं तत्रोच्यते– अस्माभिर्भवदुक्तेरप्रकृतोक्तत्वम् मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे मानशैथिल्यं च यदुक्तं तत्रायं हेतुः– अस्माकं प्रश्नस्तावदयमेव यदि ब्राह्मणस्येश्वरोक्तत्वं नाङ्गीक्रियते तर्हि मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे किं मानमिति। तत्र युष्याभिर्मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे प्रमाणाभासत्रयं यदुपन्यस्तम् तत्रास्माभिर्यद् वक्तव्यं तदप्रतीक्ष्यैव अपृष्टमपि स्वयमेव शङ्कित्वा ब्राह्मणस्यावेदत्वसाधनमुपक्रान्तम्। तत एव भवदुत्तरस्य शैथिल्यं हेतुकथनानपेक्षमेव सिद्धम्। पूर्वोक्तास्मत् प्रश्नस्योत्तरे ब्राह्मणस्यावेदत्वमप्रकृतमेवेत्याप्रकृतोक्तत्वं सिद्धम्। भवदुक्ते मन्त्रभागमात्रस्येश्वरोक्तत्वे हेतवस्तु शिथिला एव तथाहि इदं मन्त्राभगमात्र ईश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणस्मृत्यादिप्रामाण्यमनपेक्ष्य केवलेनोक्तवचनबलेन साध्यते तद्गतयुक्तया वा।

वचनबलेन चेत् तद्वचनप्रयोक्तुराप्तत्वं केन प्रमाणेन निश्चितम्। प्रत्यक्षादीनामत्रामम्भव एवेति शब्दमात्रं वाच्यम्। तत्र न तावन्मन्त्रः। स्वविषये तस्य प्रमाणत्वे आत्माश्रयादि दोषात्। नापि ब्राह्मण–स्मृति–पुराणादिकं तेषां स्वातन्त्रयेण प्रमाण्यस्य भवद्भिरनंगीकारात्। एकस्यैव शास्त्रस्य भवन्मतसाधक्तवे प्रमाण्ययमस्मन्मतसाधकत्वे चाऽप्रामाण्यमित्यर्द्धजरतीयस्य सर्वासम्मतत्वात्। यदि च सर्वैः शिश्टैर्मन्त्र–भागस्येश्वरोक्तत्वं स्वीकृतमेव तत्रार्थे एव वचनमुपन्यस्येत इति ब्रूध्वे तर्हि ब्राह्मणस्येश्वरोक्तत्वं स्मृत्यादीनां परमाप्तपुरुषप्रणीतत्त्वं च सर्वैः शिष्टैः स्वीकृतमिति तान्यपि प्रमाणत्वेन किमिति न स्वीकूरुध्वे। यत ईश्वरस्यापि परमाप्तत्वादेव तदुक्तं प्रमाणत्वेनाङ्गीक्रियते निश्वरत्वेन। ततश्च मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं न सिध्यति भवदुक्तप्रमाणस्य मन्त्रब्राह्मणसाधारण्यात्। ऋग् यजुः सामादि विशेषशब्दैः श्रुति वेदाम्नायादि सामान्यशब्दैश्च मन्त्रस्येव ब्राह्मणस्यापि शिष्टैग्रहणात्।

ईश्वरासिद्धेरिति स्फुटं स्वसूत्रे ईश्वरनिषेधकस्य कपिलस्य वेदे ईश्वरोक्तत्वसाधकत्वेन तत्सूत्रस्य भवदुक्तार्थासाधकत्वात्। ब्राह्मणस्य वेदत्वाभावेऽनीश्वरोक्तत्वादि हेतुत्रयन्तु हेत्वाभासः। तथाहि ब्राह्मणं वेदत्वाभाववत्। अनीश्वरोक्तत्वात्। इत्याद्यनुमानाकारः। तत्र अनीश्वरोक्तत्वम् ईश्वरानुक्तत्वमीश्वर–भिन्नऋष्याद्युक्तत्वं वा। उभयत्रापि। स्वरूपासिद्धोऽप्रयोजकश्च हेतुः। वेदव्याख्यानत्वमपि भाष्योक्त–पद–व्याख्यानस्य भाष्यादौ दृष्टत्वेन तद्व्याख्यानस्य तच्छब्दावाच्यत्व–रूपा–व्याप्तरेसम्भवादप्रयोजकमेव। एवं पुराणेतिहाससंज्ञत्वमप्यप्रयोजकमिति संक्षेपः। सल्लिंगबोधितेप्यलौकिकेऽर्थे प्रत्यक्षवचनबाध्यत्वस्य जैमिन्यादिसर्वर्षिसम्मतत्वेन दुर्हेतुकल्पितस्य वेदत्वाभावस्य सुतरां बाध्यत्वमिति भवदुक्तहेतूनां शैथिल्ये हेतवः।

यच्च ब्राह्मणभागे सुकेशा इत्यारभ्य ब्राह्मणभागस्येश्वरोक्तत्वन्नास्तीति लिखितं तदपि चिन्त्यमेव। तत्र युक्तयो यद्यपि भवदुक्तहेदुशैथिल्यकथनप्रकरणे कथिता एव तथापि किञ्चित् कथ्यते। तथाहि युष्माभिवेद एव स्वतः प्रमाणत्वेन स्वीकृतः। वेदश्च संहितामात्रन्न ब्राह्मणमिति च प्रतिज्ञातम्। वेदत्वं चेश्वरोक्तत्वमुक्तम्। तद्यावद् भवद्भिर्न साध्यते तावद् ब्राह्मणस्यावेदत्वसाधनं दुष्करम्। यतोऽवेदत्वं वेदत्वाऽभावः। वेदत्वं चेश्वरोक्तत्वं। तथा च मन्त्र ईश्वरोक्तत्वे सिद्धे ब्राह्मणे तद्भावः साधयितुं शक्यः। घटादौ सिद्धस्य रूपस्य वायाविवा भावः। वेदे ईश्वरोक्तत्वं तु स्मृत्यादिवचनैरेव तेषां वचनानां प्रामाण्यं स्वीकृतं स्वीकृतं चेद् ब्राह्मणस्यापि तद्वचनैर्वेदत्वं स्वीकार्यम्। नो चेन् मन्त्रस्यापीश्वरोक्तत्वं केन

प्रमाणेनाङ्गीकृतमित्यस्योत्तरं यावद् भवद्भिर्न दत्तं तावद् भवत् प्रतिज्ञा न सिध्यति। भवदुदाहृतवचनेषु ऋषीणां नामश्रवणमात्रेण ऋषिप्रणीतत्वन्न साधयितुं शक्यम्। "त्र्यायुषं जमदग्ने" रित्यादि मन्त्रेष्वपि ऋषिनामश्रवणात् कात्यायनादिमहर्षि–वचनसिद्धेन ब्राह्मणेऽपि वेदत्वेन ज्ञापकाऽऽभासकल्पितस्यावेदत्वस्य बाध्यत्वात्।

यत्तु "मन्त्रेश्वेतवहे" त्यादि "विजुपे छन्दसीत्यत्र द्विविधो नियमः सूचितः" इत्यन्तं तदपि चिन्त्यम्। यतः विजुपे इत्यत्रापि मन्त्रे इत्यानुवृत्या सिद्धे छन्दोग्रहणेन मन्त्रस्याप्यच्छन्दस्त्वमापन्नमिति तात्पर्यकस्यास्मल्लेखस्य विषये ब्राह्मभ्रूणेत्यत्रेव द्विविधनियमसूचनादिकं भाष्यादौ नोक्तम्। हठेन तत्कल्पनेऽपि अविरोधिना तेनाऽस्मदभिप्रायस्याखण्ड्यत्वात्। एक सूत्रे उभयप्रदर्शनादिकन्त्वकिञ्चित्करम्। कात्यायनापस्तम्बवचनस्य सर्वसम्मतस्योपचारिकत्वकल्पनमपि हठमूलम्। यच्च नह्यस्माभिर्वेदानुकूल–ब्राह्मणेत्यादि स्वीक्रियते इत्यन्तमुक्तं तदप्याभासमात्रम्।

तथाहि किमिदं वेदानुकूलत्वं, वेदार्थानुवादकत्वं, वेदाविरुद्धार्थबोधकत्वं वा। नाद्यः भवद्भिः प्रमाणत्वेनोपन्यस्तानां सुकेशा चेत्यादि ब्राह्मणानां कणादादिवचसां च कस्यापि मन्त्रस्यार्थानुवादकत्वाभावाद् भवन्मतासाधकत्वापत्तेः। द्वितीये तु–किन्नामाविरुद्धत्वं, न तावदन्यूनाधिकार्थत्वं तस्यानुवादकत्वाविशेषेण प्रथमपक्षोक्तदोषतादवस्थ्यात्। नापि विहितनिषेधकत्वनिषिद्धाविधायकत्वान्यतरत्। अस्मत् सम्मतभवदनभिमतदेवार्चनादिविधायकस्मृत्यादेरपि तादृशत्वेन भवतांगीकरणीयत्वापत्तेः। एतेन भवद्वक्ष्यमाणश्रीमद्भागवतादिहेयत्वमपि प्रत्युक्तम्। अन्यादृश वेदविरुद्धत्वस्य भवता अप्रतिपादनात। किञ्च वेदानां स्वतः प्रामाण्यमपि लेखमात्रम्। तथाहि वेदप्रामाण्ये किं स्वतस्त्वम्।

केवलमितरानपेक्षकत्वं वा, इतर प्रमाणानपेक्षत्वं वा, स्वावगमितप्रामाण्यकत्वं वा? नाद्यः। ईश्वराधीनत्वेन वेदानां तस्या सम्भवात्। न द्वितीयः। ईश्वरोक्तलिंगसापेक्षत्वेन तस्यापि बाधात्। न तृतीयः अन्योन्याश्रयात्। तस्माद् वेदप्रमाण्यविषये स्वतस्त्वं निर्वाच्यम्। यश्च को नाम वेद इत्याद्यप्रकृतार्थान्तरप्रश्नः स च भवतान्निग्रहस्थानम्। तस्मात् प्रथमं ब्राह्मणस्मृत्यादिप्रामाण्यमनपेक्ष्य मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं दृढप्रमाणेन साध्यम्। ततः सर्वशिष्टसम्मतप्रामाण्यकानां स्मृतिपुराणादीनामप्रामाण्यं च साधनीयम्। तत् सिद्धौ च ब्राह्मणस्यावेदत्वं स्वतः सेत्स्यति। प्रथममेव तत् साधनन्तु बलवताभियुक्तस्य प्राणापदं प्राप्तस्य भीरोर्गह्वरान्तराश्रयणं तुल्यम्। अक्षराण्याचार्य नवनन्द शर्म्मणः सममान्ययमर्थो गंगासहायेन, सम्मनुते व्यास हरिदास शर्मा। श्री निवास ताताचार्यः।

"माघ शुक्ल १३ सं० १९४५"

भाषानुवाद

पण्डितों की ओर से प्रश्न पत्र

"भवद्भिर्यदहो"– से प्रारम्भ करके "अन्यदप्रासंगिक" वचन तक जो आपने हमारे कहे हुए को अनुवाद कर कुछ लिखा है उसके विषय में हम कहते हैं– हमने जो आपके वचन को "अप्रकृतोक्त"[1] कहा है और

टिप्पणी–

१– प्रकरण के प्रतिकूल कहा हुआ–प्रकरण विरुद्ध

मन्त्रभाग के ईश्वरोक्त होने में मान की शिथिलता कही है उसमें यह हेतु है– हमारा प्रश्न तो यही है कि यदि आप ब्राह्मण का ईश्वरोक्त का होना स्वीकार नहीं करते तो मन्त्रभाग के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ? वहां आपने मन्त्रभाग के ईश्वरोक्त होने में तीन प्रमाणाभास उपन्यस्त किए हैं। उसके विषय में जो हम कहना चाहते हैं उसकी प्रतीक्षा न करके बिना पूछे अपने आप ही शंका करके आपने ब्राह्मण की अवेदता सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया है। उससे ही आपके उत्तर की शिथिलता बिना हेतु दिये ही सिद्ध हो जाती है। पूर्वोक्त हमारे प्रश्न[1] के उत्तर में ब्राह्मण का अवेदत्व सिद्ध करना स्वतः अप्रकृत है ही इसलिये आपके वचन की **"अप्रकृतोक्तता"** सिद्ध है। आपके कहे हुए मन्त्रभाग मात्र के ईश्वरोक्त होने में हेतु तो शिथिल हैं ही। यह मन्त्रभाग मात्र की ईश्वरोक्तता ब्राह्मण, स्मृति आदि के प्रामाण्य की अपेक्षा न करके आप क्या केवल उक्त वचनों के बल से ही सिद्ध करते हैं अथवा युक्ति से ? वचन में बल से ही यदि ईश्वरोक्तता सिद्ध करते हैं तो उस वचन के प्रयोक्ता की आप्तता आप किस प्रमाण से सिद्ध करते हैं ? क्योंकि यहां प्रत्यक्ष आदि प्रमाण तो हो ही नहीं सकते। शब्द प्रमाण मात्र कहा जा सकता है। परन्तु यहां 'मन्त्र' को शब्द प्रमाण नहीं माना जा सकता। क्योंकि अपने विषय में ही उसके प्रमाण मानने में आत्माश्रयादि दोष होते हैं। ब्राह्मण स्मृति आदि को भी प्रमाण नहीं माना जा सकता। क्योकि आप उनको स्वतन्त्र प्रमाण मानते ही नहीं हैं। एक ही शास्त्र यदि आपके मत का साधन करे तो प्रमाण माना जाये और हमारा मत सिद्ध करे तो प्रमाण न माना जावे यह अर्ध जरतीय न्याय सभी के द्वारा असम्मत है। यदि आप यह कहते हैं कि सब शिष्ट विद्वानों ने मन्त्रभाग को ही ईश्वरोक्त स्वीकार किया है अतः हम भी वैसा ही कहते हैं। तो फिर ब्राह्मण का ईश्वरोक्त होना और स्मृति आदि का परम आप्त पुरूषों द्वारा बनाया जाना भी सब शिष्ट विद्वान् स्वीकार करते है। इसलिए उनको भी प्रमाण क्यों नहीं स्वीकार करते ? क्योंकि ईश्वर के परम आप्त होने के कारण ही उसके कहे हुए को प्रमाण रूप में स्वीकृत किया जाता है। उससे मन्त्रभाग मात्र का ही ईश्वरोक्तत्व नहीं सिद्ध होता। क्योंकि आपने जो प्रमाण कहे हैं वे मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लिए समान हैं और ऋग्, यजु, साम आदि विशेष शब्दों से एवं श्रुति, वेद, आम्नाय आदि सामान्य शब्दों से मन्त्र के समान ही ब्राह्मण का भी सब शिष्टों द्वारा ग्रहण किया जाता है।'

कपिल मुनि ने तो अपने **"ईश्वरासिद्धेः"**[2] इस सूत्र में ईश्वर की ही असिद्धि की है। इसलिए वेद के ईश्वरोक्त होने में उसके सूत्र की आपके मत के साधन में कोई उपयोग नहीं है। ब्राह्मण के वेद न होने में अनीश्वरोक्तत्वादि जो तीन हेतु[3] दिये गये हैं वे हेत्वाभास हैं। क्योंकि वहां अनुमान का आकार (रूप) बनता हैं– ब्राह्मण वेदत्व के अभाव वाले हैं। अनीश्वरोक्त होने से। यहां अनीश्वरोक्तता का अर्थ ईश्वर द्वारा न कहा हुआ होना है या ईश्वर से भिन्न ऋषि आदि द्वारा कहा हुआ होना ? दोनों ही प्रकारों में हेतु स्वरूपासिद्ध और अप्रयोजक है। वेद व्याख्यान होने से ब्राह्मण वेद नहीं हैं, यह जो हेतु दिया है वह भी अप्रयोजक है। क्योंकि भाष्योक्त पदों का भी व्याख्यान भाष्य आदि में देखा जाता है, अतः वेद का व्याख्यान वेद शब्द से अवाच्य हैं ऐसी व्याप्ति भी नहीं बन सकती। इसी प्रकार 'ब्राह्मण को ही पुराण और इतिहास भी कहा जाता है' यह जो

टिप्पणी–

१– प्रश्न है कि मन्त्रभाग के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण हैं ?

२– सांख्य–दर्शन। अध्याय १ सूत्र ९२।

३– ब्राह्मणभागस्यानीश्वरोक्तत्वात्, पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वा, वेदव्याख्यानत्वाद्वा।

हेतु दिया है वह भी अप्रयोजक है। यह संक्षेप से कहा है। जैमिनि आदि सभी ऋषि इस बात को मानते हैं कि निर्दोष हेतु से बोधित अर्थ भी प्रत्यक्ष वचन से बाधित हो जाता है। फिर आपके द्वारा दूषित हेतुओं से कल्पित ब्राह्मणों का वेदत्वाभाव सुतरां बाधित है ही। यह आपके कहे हेतुओं की शिथिलता में हेतु हैं।

जो कि आपने ब्राह्मणभाग में **"सुकेशा"** इत्यादि से प्रारम्भ करके लिखा है कि ब्राह्मणभाग का ईश्वरोक्तत्व नहीं है, वह भी चिन्तनीय है। यद्यपि आपके द्वारा कहे विषय के हेतु शिथिलता सम्बन्धी प्रकरण में हमने युक्तियां कह ही दी हैं फिर भी कुछ और कहते हैं। आपने वेद को ही स्वतः प्रमाण स्वीकृत किया है। वेद संहिता मात्र भाग ही है ब्राह्मण नहीं है यह भी प्रतिज्ञा की है। यह भी कहा है कि ईश्वरोक्तत्व होना ही वेदत्व है। अतः जब तक आप इस बात को सिद्ध नहीं कर देते तब तक ब्राह्मण का अवेदत्व सिद्ध करना दुष्कर है। क्योंकि वेदत्व का अभाव होना ही अवेदत्व है, ईश्वरोक्तत्व होना ही वेदत्व है। तथा मन्त्रभाग के ईश्वरोक्तत्व सिद्ध होने पर ही ब्राह्मण भाग में ईश्वरोक्तता का अभाव सिद्ध किया जा सकता है। जैसे कि घट (घड़ा) आदि पदार्थों में रूप की सिद्धि होने पर वायु में उस रूप का अभाव सिद्ध किया जाता है। वेद में ईश्वरोक्तत्व तो स्मृति आदि के वचनों द्वारा ही सिद्ध किया जाता है। यदि उन स्मृति आदि में वचनों का प्रामाण्य आप मान लेते हैं तो उन्हीं के वचनों से ब्राह्मण का भी वेदत्व स्वीकार करना चाहिये। अन्यथा मन्त्रभाग का ईश्वरोक्तत्व भी आपने किस प्रमाण से स्वीकृत किया है, इस बात का उत्तर जब तक आप नहीं देते तब तक आपकी प्रतिज्ञा नहीं सिद्ध होती। आपके द्वारा उदाहृत ब्राह्मण के वचनों में ऋषियों के नाम मात्र के आजाने से उनका ऋषि प्रणीत होना सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि **"त्र्यायुषं जमदग्नेः"** इत्यादि मन्त्रों में भी जमदग्नि, कश्यप आदि ऋषियों के नाम देखे जाते हैं। कात्यायनादि महर्षियों के वचनों से ब्राह्मणों के भी वेद सिद्ध होने से ज्ञापकाऽऽभास[1] द्वारा कल्पित ब्राह्मणों का अवेदत्व बाधित हो जाता है।

जो कि आपने **"मन्त्रेश्वेत वह"** से **"द्विविधो नियमः सूचितः"**[2]। तक लिखा है वह भी चिन्तनीय है। क्योंकि **"विजुपे"** सूत्र में भी **"मन्त्रे"** इस अनुवृत्ति से ही सिद्ध हो जाने पर भी **"छन्दः"** शब्द ग्रहण करने से मन्त्रभाग का भी छन्द न होना आपन्न होता है। इस तात्पर्य वाले हमारे लेख के विषय में **"ब्रह्मभ्रूण"** सूत्र में दो प्रकार के नियम की सूचना आदि जो आपने बताई है वह भाष्य में नहीं कही है[3]। कदाचित् हठ से आप उसकी कल्पना कर भी लें तो भी हमारे अभिप्राय का वह विरोधी नहीं है। अतः हमारा अभिप्राय अखण्डनीय है। एक सूत्र में ही मन्त्र और ब्राह्मण का पाठ दिखाकर उनके अभेद प्रदर्शन का उदाहरण देने की बात आपने कही है उससे तो कुछ आता जाता नहीं। कात्यायन और आपस्तम्ब के वचन को, जो कि सर्व सम्मत है, औपचारिक मानना भी हठ के कारण ही है। जो कि आपने **"न ह्यस्माभिः"** से लेकर **"स्वीक्रियते"** यहां तक कहा है वह भी आभास मात्र ही है।

तथा–यह वेदानुकूलता क्या है ? क्या यह वेद के अर्थों की अनुवादकता है या वेद के अविरुद्ध अर्थों

टिप्पणी–

१– पूर्वोक्त तीन हेतु। उनको पण्डित लोग हेत्वाभास कहते हैं।

२– देखिये पृष्ठ ....

३– भाष्य में तो कहा ही है सिद्धान्त कौमुदीकार ने भी उसे उद्धृत किया है– ब्रह्मादिष्वेव, क्विबेवेति द्विविधो नियम' इति भाष्यम्। सिद्धान्त कौमुदी। वेंकटेश्वर प्रकाशन। कृदन्ते कृत् प्रक्रिया। पृष्ठ ५७४।

की बोधकता ? वेदानुकूलता का पहिला अर्थ—वेदार्थानुवादकता—तो हो नहीं सकता। क्योंकि आपने प्रमाण रूप से जो "**सुकेशा च भरद्वाजः**" आदि ब्राह्मणों के और कणाद आदि के वचन उद्धृत किए हैं वे किसी मन्त्र के अर्थ के अनुवादक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वेदार्थानुवादकता नहीं है। ऐसी स्थिति में वेदार्थानुवादकता का जो आपका मत है उसका यह साधक नहीं हैं। वेदानुकूलता से यदि द्वितीय अर्थ—वेद के अवरुिद्ध अर्थ की बोधकता मानते हैं तो अविरुद्धता क्या है ? कुछ कम या अधिक अर्थ न होना ही अविरुद्धता का अर्थ हो तो वह भी नहीं हो सकता क्योंकि उसमें भी पूर्वोक्त दोष वैसा का वैसा विद्यमान है। अर्थात् उपर्युक्त ब्राह्मण के 'सुकेशा' इत्यादि वचन उस सीमा में नहीं आते। यदि—वेदानुकूलता का अर्थ—वेद विहित का निषेध न करना या निषिद्ध का विधान न करना मान लिया जावे तो उनमें से भी कोई एक भी अर्थ नहीं बन सकता। क्योंकि ऐसी स्थिति में हमारे द्वारा सम्मत और आपके द्वारा अनभिमत देवों की अर्चना का विधान करने वाली स्मृति आदि को भी आपको वेदानुकूल स्वीकार करना होगा। वेद विरुद्धता का और कोई रूप आपने प्रतिपादित नहीं किया है। अतः आप जो भागवत आदि को हेय (त्याज्य) बताना चाहते हैं उनका भी प्रतिकार उपर्युक्त बातों से ही हो जाता है। आपका यह वेदों का स्वतः प्रामाण्य भी लेख मात्र ही है। वेद के प्रामाण्य में "**स्वतस्त्व**" से क्या तात्पर्य है ?

केवल दूसरे की अपेक्षा न रखना ही "**स्वतस्त्व**" है, या दूसरे प्रमाण की अपेक्षा न रखना, या अपने विषय में अपना ही प्रमाण होना स्वतस्त्व है ? प्रथम अर्थ तो हो नहीं सकता। क्योंकि वेद स्वयं ईश्वराधीन है। ऐसी स्थिति में दूसरे की अपेक्षा न होना सम्भव नहीं है। दूसरा अर्थ भी नहीं बन सकता क्योंकि ईश्वरोक्त रूप लिंग की अपेक्षा होने से उसका भी बाध हो जाता है। तीसरा अर्थ भी नहीं बनता क्योकि उसमें अन्योन्याश्रय दोष आ जाता है। अर्थात् वेद का वचन होने से उसकी प्रामाणिकता मानी जावे या उस वचन के आधार पर वेद की प्रामाणिकता मानी जावे। इसलिये वेदों के प्रामाण्य के विषय में "**स्वतस्त्व**" का निर्वचन करना आवश्यक है। जो आपने 'वेद क्या हैं ?' यह अप्रकृत, प्रकरण भिन्न प्रश्न किया है वह तो आपके लिए निग्रह स्थान है। इसलिए पहले तो ब्राह्मण, स्मृति आदि के प्रमाण की अपेक्षा के बिना ही मन्त्रभाग की ईश्वरोक्तता दृढ़ प्रमाण से सिद्ध करनी चाहिये। उसके अनन्तर सब शिष्टों के द्वारा प्रमाण रूप में माने जाने वाले स्मृति, पुराण आदि के अप्रामाण्य को सिद्ध करना चाहिये। उसके सिद्ध होने पर ब्राह्मण का अवेदत्व—स्वयं सिद्ध हो जायेगा। परन्तु पहले से ही उसको सिद्ध करना अपने से बलवान् व्यक्ति से लड़ने वाले भीरु पुरुष के प्राणापत्ति देखकर किसी अन्य गुफा में छिपने के समान ही है। अक्षर—आचार्य नवनन्द शर्मा के, गंगासहाय ने भी इस अर्थ को मान्य किया, व्यास हरिदास शर्मा और श्रीनिवास ताताचार्य भी इसे मानते हैं।

"माघ शुक्ल १३ सम्वत् १९४५"

स्वामी जी की ओर से तीसरे पत्र का उत्तर—

स्वामिनामुत्तराणि—

तत्रोच्यत' इत्यारभ्य भवद्भिर्यदुक्तन्तदुत्तरं श्रूयतामस्मदप्रकृतोक्तत्वे मानशैथिल्ये च भवदुक्तेरप्रकृतोक्तत्वमित्यारभ्य सिद्धमित्यन्तं युष्माभिर्हेतुत्वेन यदुक्तन्तदसाधु। तद्यथेश्वरेण ब्राह्मणभाग उक्तो वा संहिता भाग (उक्त) इति भवत् प्रश्नस्योत्तरन्तु मन्त्र भागसंहितेत्युक्तमस्माभिर्वेदत्वेन संहितामात्रग्रहणे ब्राह्मणभागस्य

चाग्रहणे चानीश्वरोक्तत्वादि हेतुत्रयमुदाहृतम्। "एवं चेन्मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे किं मान" मित्येतद् भवत्प्रश्नस्योत्तरेण 'तस्माद्यज्ञा'–दित्यादि दृढतरप्रमाणेन मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वमुक्त्वा पुनर्ब्राह्मणभागस्यानीश्वरोक्तत्वमवेदत्वं च संसाधितमस्माभिरिति किमत्राप्रकृतत्वमतो भवदुक्तमेवाप्रकृतमिति निश्चीयते। किञ्च "भवदुक्ते मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे हेतवस्तु शिथिला एव"–इत्यारभ्य "ब्राह्मणस्यापि शिष्टैर्ग्रहणा" दित्यन्तमपि भ्रमोक्तिः। यतो मन्त्रभागमात्रस्येश्वरोत्वम्ब्राह्मणस्मृत्यादि प्रामाण्यं विनैवानादि–निर्भ्रान्तस्वतः सिद्धवेदादेव संसाधितम्। ईश्वरः खलु परमाप्तत्वेन सर्वैरार्यैः परमास्तिकैर्नितरां स्वीकृतस्तद्वचनमपि निस्सन्देहतया स्वीकृतम्। एवञ्च नहि नास्तिकैर्विना केनापीश्वरे तद्वचने वा सन्देहः क्रियते। अस्ति चेश्वराप्तत्वं योगिनां प्रत्यक्षमतः प्रत्यक्षादीनामत्राऽसम्भव इति भवच्चेष्टितं कथं संगच्छते। यदि च तदाप्तत्वम्भवद्भिर्न निश्चितं चेत् तर्हि याज्ञवल्क्यादि युक्तिवलाद् वेदादिकं प्रमाणत्वेन स्वीक्रियत इति कथमुक्तम्। भवन्नयेऽपि तद्दोषतादवस्थ्यात्। यच्चात्माश्रयादिकमुक्तम् तदप्यबोधजम्। नहि तावदत्रयात्माश्रयादयः। कुतः। ईश्वरस्य वेदस्य चानादित्वात्रह्मनादि पदार्थेष्वात्मा श्रयत्वमागच्छति। वेदः खलु स्वप्रमात्वेन प्रमाणभूतोऽप्यस्ति। सूर्यप्रदीपवत्। किञ्च "तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋच" इत्यादयो मन्त्रा यदीश्वरोक्तवेदबोधका न भवेयुस्तर्हि भवन्नये एतेषान्निरर्थकत्वं, युष्मासु नास्तिकत्वं च स्याद्। यथाह मनुः "नास्तिको वेदनिन्दकः" इति।

तथैव तत्तद्ग्रन्थोपत्तौ तत्तद्ग्रन्थवचनं प्रमाणमिति सर्वसम्मतम्। एवन्नोचेत् तर्ह्यन्योन्याश्रयादयो दुर्निवारणीया इति। तथा ब्राह्मणमीश्वरोक्तमिति न कैश्चिदप्यगींकृतम्। यदि च परमाप्तोक्तत्वे–नेश्वरोक्तमंगीक्रियते नेश्वरोक्तत्वेन चेत्तर्हि स्मृत्यादीनामपीश्वरोक्तत्वमनिवारणीयम्। अस्मदुक्तप्रमाणञ्च खलु न मन्त्रब्राह्मण साधारण्यगन्वेति तत्रैव साक्षादृग्यजुरादीनां श्रवणाद् ब्राह्मणमिति पदस्याश्रवणाच्च। मन्त्रस्येवेति युष्मत् कथनमेव तयोः स्फुटं भेदत्वं दर्शयति। यथा गौरिव गवय इति। किञ्च "ईश्वरासिद्धे"[२] रिति कपिलसूत्रमीश्वरासाधकत्वेन यल्लिखितम् तत्तु भवन्महदनिष्टसाधकम्। यत ईश्वरासिद्धेरिति सूत्रस्य पूर्वपक्षपरत्वात्। तदुत्तरत्वेन "सत्ता मात्राच्चेत् सर्वेश्वर्य"[२] मिति सूत्रस्य तत्रैव ईश्वरसाधकत्वेन विद्यमानत्वात्। तथा ब्राह्मणस्य वेदत्वाभावे इत्यारभ्य भवदुक्तहेतूनां शैथिल्ये हेतव इति यदुक्तन्तदप्यसमञ्जसम्। यतो नह्यस्मदुक्तानीश्वरोक्तत्वादिहेतुः स्वरूपासिद्धो यत्र यत्रानीश्वरोक्तत्वं स्मृत्यादौ तत्र तत्र वेदत्वाऽभावत्वमिति व्याप्तेरव्याहतत्वात्। तथैव वेदव्याख्यानत्वं पुराणेतिहाससंज्ञकत्वं च। नहि वेदव्याख्यानस्य वेदत्वं दृष्टचरमस्ति। यद्येवं स्यात्तर्हि तद्भाष्यादीनामपि वेदत्वापत्तेः। तथा च सूत्रकारै गौतममहर्षिभिः स्वरूपा सिद्ध इति हेत्वाभासोऽपि नोक्तः। कुतः– "सव्यभिचार–विरुद्ध– प्रकरण–समसाध्यसमातीतकाला हेत्वाभासा"[३] इत्युक्तत्वात्। यच्च "ब्राह्मणभागस्येश्वरोक्तत्वं नास्ति लिखित" मित्यादि यदनूद्योक्तं तत्रोच्यते। ऋगादिवेदानामीश्वरोक्तत्वं तु पूर्वमेव साधितम्। ब्राह्मणभागस्यावेदत्वसाधनमुचितमेव। तथा च मन्त्रस्यापीश्वरोक्तत्वं केन प्रमाणेन स्वीकृतमित्यादि[१] भवत्कथनमप्यसंगतम्। यतः, स्वतः प्रमाणसिद्धवेदेनैव ऋगादिमन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वांगीकारात्। साक्षिवच्चान्येषमपि वचनमुदाहृतम्। किञ्च स्मृत्यादिवचनस्य मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे प्रमाणं तत्तू समीचीनम्। परन्तु ब्राह्मणभागस्येश्वरोक्तत्वे प्रमाणं स्यात्तर्हि तद्वचनं हेयङ् कुतो वेदानुकूलत्वेन तत्प्रमाणत्वात्। "या वेदबाह्याः स्मृतयः"[५] इत्यादि मनुवचनात्। मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं तु सुसिद्धमेव। तथा च ब्राह्मणभागस्य ऋषिभिरुक्तत्वादवेदत्वं स्फुटमेव।

तदेवास्माभिरप्यंगीक्रियत इति। अस्मदुदाहृतवचनबाधकत्वेन मन्त्रेष्वपि ऋषीणां श्रवणं दर्शितं यत् तदपि न सम्यक्। नहि तत्र जमदग्निरिति ऋषिनामास्ति। किन्तु चक्षुर्वै जमदग्निरिति शतपथब्राह्मणाज्जमदग्निशब्देन चक्षुर्गृह्यते। तथा च ब्राह्मणभागस्यावेदत्वज्ञापकेषु परमर्षिपाणिनिवचनेषु कात्यायनादिवचनस्याकिञ्चित्करत्वात्। न हि पाणिनिवचनं कात्यायनवचनेन केनापि बाधयितुं शक्यते। यत्तु 'मन्त्रे श्वेतवहे' त्यारभ्या 'किञ्चित् कर' मित्यन्तं तदपि चिन्त्यम्। युष्माभि 'र्मन्त्र उक्थ' इत्युक्त्वा पुन 'र्बहुलं छन्दसी' युक्तम्। 'ब्रह्मभ्रूणे' त्यादिवत् 'बहुलं छन्दसी' त्यस्मिन्नपि छन्दोग्रहणं महत्प्रयोजनज्ञापकमिति[६] पूर्वोक्तत्वेनेव भवन्मतं खण्डितम्। यत् पाणिनिना एकस्मिन् सूत्रे उभयपदमुपात्तम् तत् ब्राह्मणभागस्यावेदत्वे महज्ज्ञापकम्। यच्च 'कात्यायनेत्यारभ्य' हठमूलमित्यन्तन्तदेव हठमूलकम्। यतो वेदस्याग्रे कात्यायनापस्तम्बवचनस्याकिञ्चित्करत्वात्। न हि वेदविरुद्धत्वं केनापि वक्तुं शक्यते। तथा च 'नह्यस्माभि' रित्यारभ्या 'न्यादृशवेद विरुद्धत्वस्य भवताऽप्रतिपादना' दित्यन्तमप्यसंगतम्[१]। अत्र निगद्यते– वेदानुकूलत्वं नाम वेदविरुद्धार्थ बोधकत्वम्। अविरुद्धत्वञ्च वेदाप्रतिकूलत्वम्। न हि तदंशे पाषाणाद्यर्चनबोधकवाक्यस्य प्रमाणत्वमस्ति वेदप्रतिकूलत्वात्। तथा च भागवतादिष्वपि अतीव वेदविरुद्धत्वं वर्त्तते। तथा हि– यथा सृष्टिप्रकरणे– 'सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप।। १।। ताम्रायाः श्येन गृध्राद्याः.........[२]।। तथा 'ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृत परिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन्नि' त्यादि। 'किञ्च वेदानामि' त्यारभ्य 'स्वतस्त्वं निर्वाच्य'[३] मित्यन्तमपि साहसमात्रम्। तथा हि न हि वेदेतरप्रमाणमपेक्ष्यते। यथा सूर्य स्वप्रकाशः सन् संसारस्थान् महतोऽल्पांश्च पर्वतादीन् त्रसरेण्वन्तान् पदार्थान् प्रकाशयति तथा वेदोऽपि स्वयं प्रकाशः सन् सर्वा विद्याः प्रकाशयति। किञ्च "यश्च कोनाम वेदः" इत्यारभ्य 'गह्वरान्तराश्रयणतुल्यमि' त्यन्तम[४] यत् तदपि लेखमात्रम्। तथाहि ब्राह्मणभागस्य वेदत्वसाधनावसरे को नाम वेद इत्यादि प्रश्नावकाशः साधुरेव।[५] तदुत्तराज्ञानत्वेन भवतामेव निग्रहस्थान[६] मिति विज्ञेयम्। तथा च मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं उक्तदृढप्रमाणेनैव साधितम्। परन्तु ब्राह्मणस्य ऋष्युक्तपुराणेतिहासवेदव्याख्यानत्वादि सिद्धेऽपि यदि वेदत्वं स्यात्तर्हि भारत–गृह्य–श्रौतसूत्रादीनामपि वेदत्वं कुतो न स्वीक्रियते। किञ्च ब्राह्मणभागो वेद इत्येव भवत्पक्षस्तत्र यावत् वेदस्य सिद्धिर्नस्यात् तावत् ब्राह्मणभागी वेद इति वक्तुमशक्यम्। अतएवादौ भवद्भिर्वेदस्य सिद्धिं कृत्वा पश्चाद् ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं दृढप्रमाणेन साधनीयम्। नो चेत् तर्हि विडम्बना मात्रम्।

(माघ शुक्ला १५ संवत १०४५) "स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती ब्र० नित्यानन्दाक्षराणि"

–भाषानुवाद–

स्वामी जी महाराज का उत्तर–

"तत्रोच्यते"[१] से प्रारम्भ करके जो आपने कहा उसका उत्तर सुनिये। हमारे कथन को प्रकरण विरुद्ध और प्रमाणों को शिथिल सिद्ध करने के लिए "भवदुक्तेरप्रकृतोक्तत्वं" से लेकर "सिद्धम" तक जो हेतु रूप से आपने कहा है वह ठीक नहीं है। जैसे कि आपके प्रश्न "ईश्वर ने ब्राह्मण भाग कहा है या संहिता भाग कहा है ?" के उत्तर में हमने बताया कि– "ईश्वर ने संहिता भाग कहा है।" फिर वेद रूप में संहिता मात्र

टिप्पणी– [१]देखिये पूर्व लिखित बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या–३

के ग्रहण करने में और ब्राह्मण भाग के वेद रूप में ग्रहण न करने के विषय में– १. ब्राह्मण के अनीश्वरोक्त होने से– २. उसकी पुराण और इतिहास संज्ञा होने से– ३. वेदों के व्याख्यान रूप होने से (वह ईश्वरोक्त नहीं है) यह तीन हेतु कहे हैं। **"यदि ऐसा है तो मन्त्र भाग के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण हैं ?"** इस आपके प्रश्न के उत्तर में **"तस्माद् यज्ञात्"** इत्यादि दृढ़तर प्रमाणों से हमने मन्त्र भाग का ईश्वरोक्त होना सिद्ध किया। तदनन्तर ब्राह्मण भाग का ईश्वरोक्त न होना और वेद न होना अच्छे प्रकार सिद्ध किया है। इसमें प्रकरण विरुद्ध क्या है ? इससे तो आपका कहा हुआ ही प्रकरण विरूद्ध निश्चित होता है। और **"आपके कहे मन्त्र भाग के ईश्वरोक्त होने में हेतु तो शिथिल ही हैं।"** से लेकर 'ब्राह्मण का भी वेदत्व सब शिष्टों द्वारा ग्रहण किया जाता है।' तक आपकी भ्रमोक्ति ही है। क्योंकि हमने मन्त्र भाग मात्र का ईश्वरोक्त होना ब्राह्मण स्मृति आदि के प्रमाणों के बिना ही अनादि निर्भ्रान्त और स्वतः सिद्ध वेद के द्वारा ही सिद्ध किया है। सभी आर्य और परम आस्तिक जनों ने ईश्वर को परम आप्त माना है। उसके वचन को भी उन्होंने असन्दिग्ध स्वीकार किया है। नास्तिकों के अतिरिक्त ईश्वर अथवा उसके वचन में कोई भी सन्देह नहीं करता। ईश्वर वा आप्त होना योगियों को प्रत्यक्ष है। अतः आपको यह मानना और कहना कि इस विषय में प्रत्यक्ष आदि प्रमाण तो सम्भव ही नहीं है, कैसे ठीक कहा जा सकता है। यदि आपने ईश्वर के ही आप्त होने का निश्चय नहीं किया तो फिर यह कैसे कह सकते हैं कि याज्ञवल्क्य आदि के वचन के बल से आप वेदों को प्रमाण मानते हैं। आप हमारे मन्तव्य में जिस दोष को बताना चाहते हैं वह दोष तो याज्ञवल्क्य आदि के आप्तत्व के निश्चय न होने से आपके मत में भी वैसा का वैसा ही विद्यमान है। जो आपने यह कहा कि वेदों के ईश्वरोक्त होने में वेद का प्रमाण देने से आत्माश्रय दोष आता है, वह आपका कथन भी अज्ञानजन्य है। क्योंकि यहां पर आत्माश्रय आदि दोष हो नहीं सकते। ईश्वर और वेद अनादि हैं। अनादि पदार्थों में आत्माश्रय दोष नहीं आता। वेद स्वयं प्रमाण होने से प्रमाणभूत भी है। जैसे कि सूर्य और प्रदीप अपने विषय में दूसरे प्रकाश और प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखते और दूसरे पदार्थों को भी प्रकाशित करते हैं। जो **"तस्माद्ज्ञात्........."** इत्यादि मन्त्र हैं यदि वे ईश्वरोक्त वेद के बोधक नहीं हैं तो आपके मत में वे निरर्थक हुए। उनको निरर्थक मानने से आपकी नास्तिकता सिद्ध होती है। जैसे कि मनु ने कहा है **"वेदनिन्दक नास्तिक होता है"**। इसी प्रकार उस–उस ग्रन्थ की उत्पत्ति में उस–उस ग्रन्थ का वचन प्रमाण होता है, यह सर्व सम्मत है। यदि ऐसा न हो तो अन्योन्याश्रय आदि दोष दुर्निवारणीय होते हैं। ब्राह्मण ईश्वरोक्त हैं यह किन्हीं शिष्टों ने स्वीकार नहीं किया है। यदि आप यह कहें कि परम आप्तों द्वारा कथित होने से वे ईश्वरोक्त हैं, ईश्वर के द्वारा कहे हुए होने से ईश्वरोक्त नहीं हैं तो फिर स्मृति आदि भी ईश्वरोक्त कही जावेगी। क्योंकि उनको भी परम आप्तों के द्वारा कहा हुआ आप मानते हैं। हमने जो वेद के ईश्वरोक्त होने में प्रमाण प्रस्तुत किये हैं वे ब्राह्मण भाग के लिए भी उसी प्रकार लागू नहीं हो सकते। क्योंकि उनमें ऋग्, यजु आदि शब्द तो साक्षात् विद्यमान हैं और ब्राह्मण शब्द नहीं पढ़ा गया है। आपका यह कहना कि– **"वेद के समान ही ब्राह्मण भी ईश्वरोक्त हैं"** इसी से उनका भेद प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जैसे **"गौ के समान ही नील गाय होती है"** ऐसा कहने से दोनों में भेद स्पष्ट दृष्टीगोचर होता है। इसके अतिरिक्त **"ईश्वरासिद्धेः"**[१] इस कपिल के सूत्र को जो ईश्वर की

टिप्पणी–

१ सांख्यदर्शन अध्याय–१, सूक्त–९२.

असिद्धि का प्रतिपादक आपने लिखा है वह आपके लिए बड़ा ही अनिष्ट साधक है। क्योंकि सांख्य दर्शन में तो वहां ही उसके उत्तर के रूप में **"सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम"**[१] यह सूत्र ईश्वर के साधक रूप में विद्यमान हैं। और ब्राह्मणों के वेदत्वाभाव में यहां से लेकर आपके कहे हेतुओं की शिथिलता में हेतु हैं, यहां तक जो आपने कहा है वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि हमने जो तीन हेतु ब्राह्मणों के अवेदत्व के विषय में अनीष्वरोक्त होता आदि कहे हैं वह स्वरूपासिद्ध नहीं है। क्योंकि **"जिन जिन स्मृति आदि में अनीश्वरोक्तता है वहां वेदत्व का अभावत्व है"** यह व्याप्ति अव्याहत है। उसी प्रकार ब्राह्मणों के वेद व्याख्यान होने से और पुराण तथा इतिहास संज्ञक होने से, यह जो दो हेतु हमने दिये हैं उनके विषय में भी जानना चाहिये। वेद के व्याख्यान का वेदत्व तो कहीं देखा नहीं गया। यदि वेद का व्याख्यान भी वेद मान लिया जावे तो वेद के जो भाष्य (अभी तक हुए) हैं वे भी वेद माने जावेंगे। आपने हमारे दिये हेतुओं को स्वरूपासिद्ध हेतु बताया है। परन्तु महर्षि गौतम ने अपने न्यायदर्शन में स्वरूपसिद्ध नाम का कोई हेत्वाभास भी नहीं बताया है। क्योंकि उन्होंने तो कहा है कि सव्यभिचार विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम तथा अतीत काल यह पांच हेत्वाभास होते हैं,[२] इनमें स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास का तो नाम ही नहीं है। जो आपने– 'ब्राह्मण भाग की ईश्वरोक्तता नहीं हैं, इत्यादि लेख को पुनः लिखकर कहा है उस विषय में हमारा कहना है कि– ऋग् आदि वेदों का ईश्वरोक्त होना तो हमने प्रमाणादि के द्वारा पहले ही सिद्ध कर दिया था। उसके अनन्तर ब्राह्मण भाग का अवेदत्व सिद्ध करना उचित और प्रासंगिक ही है।

जो आपने कहा है **"मन्त्र भाग का ईश्वरोक्तत्व भी आपने किस प्रमाण से स्वीकृत किया है"**?[३] वह भी नितान्त असंगत है। क्योंकि स्वतः प्रमाण सिद्ध वेद के द्वारा ही ऋग्वेदादि मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता स्वीकार की गई है। स्मृति आदि के प्रमाणों के आधार पर इनका वेदत्व नहीं सिद्ध किया गया है। उनके वचन तो उसमें साक्षिमात्र ही हमने उद्धृत किए हैं। इसके अतिरिक्त– स्मृति आदि के जो वचन मन्त्र भाग के ईश्वरोक्त होने में प्रमाण माने जावें वे तो उचित हैं। परन्तु यदि उनके कोई वचन ब्राह्मण भाग के ईश्वरोक्त होने में प्रमाण माने जावें तो वे त्याज्य हैं। क्योंकि वेदानुकूल होने पर ही स्मृति आदि प्रमाण माने जाते हैं। मनुजी ने कहा भी है कि– **"जो स्मृतियां (स्मृति वाक्य) वेदमूलक और वेदानुकूल नहीं और जो कोई वेदप्रतिकूल सत् तर्करहित कुदर्शन हैं वे सब निष्फल, व्यर्थ हैं। उनसे परलोक नहीं बनता। वे तमोनिष्ठ हैं।"**[४] मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता तो सुसिद्ध ही है; तथा ब्राह्मण को ऋषियों ने कहा है इसलिए उसका अवेदत्व भी स्फुट है। वही हम भी स्वीकार करते हैं। हमने जो ब्राह्मणों के ऋषि प्रणीत तथा मनुष्य कथित होने में **"सुकेशा च"** इत्यादि वचन उदाहरण स्वरूप दिये थे उनके बाधक रूप में अपने जो वेदों में भी ऋषियों के नामों को पठित दिखाया हैवह भी सत्य नहीं है। क्योकि वहां जमदग्नि ऋषि का नाम नहीं है। अपितु **"चक्षु ही जमदग्नि"** है इस शतपथ ब्राह्मण के वचन से जमदग्नि शब्द से चक्षु का ही ग्रहण किया

टिप्पणी–
१ सांख्यदर्शन अध्याय–५, सूक्त–६,
२ न्यायदर्शन, प्रथमाध्याय, आह्निक २, सूत्र–४।
३ ....देखो बून्दीस्थ पण्डितों का पंत्र सं०–३,
४ ये वेद बाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलः प्रेत्य तमो निष्ठा हि ताः स्मृताः।। (मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक ६५)

जाता है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों के अवेदत्व ज्ञापक परम ऋषि पाणिनि के वचनों के विद्यमान होते हुए कात्यायन आदि के वचन अकिञ्चित्कर हैं। पाणिनि का वचन कात्यायन के किसी वचन से बाधित नहीं हो सकता। जो कि **"मन्त्रे श्वेतवह"** इत्यादि से आरम्भ करके **"अकिञ्चित् कर"** तक आपने लिखा है वह भी चिन्तनीय है। आपने कहा है **"मन्त्र उक्थ"** इस सूत्र को कहकर जो पाणिनि ने **"बहुलं छन्दसि"** सूत्र कहा है उससे मन्त्र भाग का भी वेदत्व बाधित होता है। उसमें जो हमने बताया है कि **"ब्रह्मभ्रूण"** इत्यादि सूत्र के समान ही यहां पर **"छन्दः"** शब्द का पाणिनि द्वारा ग्रहण करना महान् प्रयोजन का ज्ञापक है।[1] उस पूर्वोक्त बात से ही आपका मत खण्डित हो जाता है। जो कि महर्षि पाणिनि ने एक सूत्र में ही छन्द और ब्राह्मण दोनों शब्द रक्खे हैं वे ब्राह्मण भाग के अवेदत्व सिद्ध करने में बहुत बड़ा ज्ञापक है। जो आपने **"कात्यायन"** से लेकर **"हठमूलम्"** यहां तक अपने पत्र में लिखा है वह आपके हठ से ही उत्पन्न बात है। क्योंकि वेद के आगे कात्यायन और आपस्तम्ब के वचन अकिञ्चित्कर हैं। कोई वेद के विरुद्ध कुछ कह नहीं सकता। **"नह्यस्माभिः"** से लेकर **"वेदविरुद्धत्वस्य भवताऽप्रतिपादनात्"** तक जो आपने कहा है वह असंगत है।[2] इस विषय में हमारा कहना है कि– वेदानुकूलता का अर्थ है, वेद के अविरुद्ध अर्थ का बोधक होना। अविरुद्ध का अर्थ है वेद के प्रतिकूल न होना। इस अंश में जो कोई पाषाण आदि की पूजा का बोधक वाक्य है वह भी प्रमाण नहीं है क्योंकि वह वेद के प्रतिकूल है। तथा भागवत आदि में अत्यन्त वेद विरुद्धत्व दिखाई देता है। जैसे कि– सृष्टि प्रकरण में कहा है–हे नृप ! कश्यप की सुरभि नाम की पत्नी से महिष (भैंसे) गांए और दूसरे द्विशफ पशु उत्पन्न हुए। ताम्रा नाम की पत्नी से श्येन (बाज) और गृध्र (गिद्ध) उत्पन्न हुए।[3] 'और जो उसके रथ के पहिये के चलने से खड्डे पड़ गए वे ही सात समुद्र हुए' इत्यादि। आपने जो वेदों का यहां से लेकर **"स्वतस्त्व का निर्वाचन करना आवश्यक है"**[4] तक लिखा है। वह आपका साहस मात्र ही है क्योंकि वेद के विषय में वेद के अतिरिक्त दूसरे प्रमाण की अपेक्षा ही नहीं है। जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशमान है। और संसारस्थ पर्वत आदि से लेकर त्रसरेणु तक बड़े और छोटे पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे ही वेद स्वयं प्रकाशमान है और सब विद्याओं को प्रकाशित करता है। और जो **"वेद क्या है"** से लेकर **"अन्य गुफा में छिपने के समान ही है"**[5] आपने लिखा है वह भी लेख मात्र ही है उसमें वास्तविकता नहीं है। आपके द्वारा ब्राह्मण भाग के वेदत्व सिद्ध करने के अवसर पर हमारा यह प्रश्न करना कि **वेद क्या है?** नितान्त उचित ही है।[6] इसका उत्तर आपको ज्ञात नहीं है इसलिए यह तो आपका ही निग्रह स्थान[7] है न कि हमारा ! तथा मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता तो पूर्व में कहे हुए दृढ़ प्रमाणों से हमने सिद्ध कर ही दी है। परन्तु ब्राह्मणों के ऋष्युक्त होने, और पुराण इतिहास

टिप्पणी–

१ देखिये स्वामीजी का पत्र संख्या–२।
२ देखिये बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र सं०–३,
३ भागवत पुराण। स्कन्ध–६, अध्याय–६। श्लोक–२७ व २८ (भागवत में कश्यप की तेरह पत्नियां बताई है। जिनमें एक सुरभि और एक ताम्रा भी थी)
४ देखिये बूदीस्थ पण्डितों का पत्र सं०–४।
५ देखिये बूदीस्थ पण्डितों का पत्र सं०–४।
६ देखिये बूदीस्थ पण्डितों का पत्र सं०–३।
७ न्याय दर्शन अध्याय–५ आह्निक २ में २६ निग्रह स्थान बताये गये हैं। स्वामी जी का संकेत इस स्थल पर "अज्ञान" नामक निग्रह स्थान की ओर प्रतीत होता है।।

तथा वेद व्याख्यान आदि सिद्ध होने पर भी यदि उन्हें आप वेद मानते हैं तो महाभारत, गृह्यसूत्र, श्रौत सूत्र आदि सभी को वेद क्यों नहीं मानते? तथा ब्राह्मण भाग वेद है यही तो आपका पक्ष है। ऐसी स्थिति में जब तक वेद की ही सिद्धि न हो तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि **"ब्राह्मण भाग वेद है।"** अतः आपको पहले वेद *की सिद्धि करके उसके अनन्तर ही ब्राह्मण भाग का वेदत्व सिद्ध करना चाहिये। अन्यथा यह केवल* विडम्बना मात्र ही है।

(माघ शुक्ला १५ संवत १९४५) हस्ताक्षर–

"स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती, ब्रह्मचारी नित्यानन्द"

बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र सं० ४–

युष्माभिर्मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणस्येश्वरानुक्तत्वमुक्तम्। तत्रास्माभिरेवमपृच्छ्यत यदि ब्राह्मणस्येश्वरोक्तत्वं नांगीक्रियते तर्हि मन्त्रभागमात्रस्येश्वरोक्तत्वे किं प्रमाणम्। तत्र युष्माभिर्मन्त्रभागमात्रस्येश्वरोक्तत्वे दृढं प्रमाणमनुपन्यस्यैवापृष्टमपि ब्राह्मणस्यावेदत्वसाधनमुपक्रान्तम्। तद्विषय एव लेखः प्रापञ्च्यत अस्माभिश्च तदप्रकृतोक्तत्वेनोपेक्षणीयमपि संक्षेपतः खण्डयित्वा प्रान्ते च *प्रथमं ब्राह्मणस्मृत्यादि प्रामाण्यमनपेक्ष्य मन्त्रभागमात्रे ईश्वरोक्तत्वं साधनीयमिति स्फुटमलेखि। युस्माभिस्तु* तद्दुरुत्तरं मत्वाऽमत् प्रश्नस्योत्तरत्वहेतोः हुंफड़ादिवदर्थशून्यस्यानिर्वाच्यस्य स्वतः प्रामाण्यशब्दाख्यमन्त्रस्य जप आरब्धः। तत्पुरश्चरणांगतया च ब्राह्मणस्यावेत्वादि कथनरूपषंडगन्या सादयः प्रपञ्चिताः। तत्र यद्यप्यस्माभिरन्ते पुनरपि स्फुटमुक्तस्य प्रश्नस्योत्तरमस्मिन् लेखेनागतमेवात एतत् पत्रस्य पुनः प्रत्यर्पणमेव योग्यं तथापि अप्रकृतविचारं परित्यज्य मन्त्रमात्रस्येश्वरोक्तत्वविषये लिखितस्य समाधानाभासस्य खण्डनं लिख्यते। तत्र यद मन्त्र[1] भागस्येश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणस्मृत्यादि प्रामाण्यं विनैवानादि–निर्भ्रान्तस्वतः सिद्धेत्यादि "भवन्नयेऽपि तद्दोषतादवस्थ्या" दित्यन्तमुक्तं तदबोधात्। न ह्यस्माभिरीश्वर (स्य) तद्वचनस्याप्रामाण्यं वांगीक्रियते। किन्तु सर्वशिष्टादृतैर्यैः प्रमाणैर्मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदत्वं तयो श्चेश्वरोक्तत्वं सिध्यति तान्यनादृत्य स्वमतिमात्रेण मन्त्रभागमात्रे ईश्वरोक्तत्वमन्यत्र तदनुक्तत्वं वदतो युष्मान् प्रतिवादिरीत्यैतत् पृच्छ्यते यदि ब्राह्मणस्येश्वरोक्तत्वन्नास्ति तर्हि मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे किं प्रमाणमिति। यतो मन्त्र भागस्यापीश्वरोक्तत्वं सर्वशिष्टादृतैर्ब्राह्मणादिभिरेव विदितम्।

न च मन्त्राणां स्वतः प्रामाण्यं सूर्यादिवदिति वाच्यम्। वेदप्रामाण्ये स्वतस्त्वस्यास्माभिः पृष्टस्य युष्माभिरद्याप्यनिर्वचनात्। सूर्यादिदृष्टान्तस्तु विषमः। तथाहि घटादिप्रत्यक्षजनने सूर्यादयो न स्वतः प्रमाणभूताः। किन्तु प्रमाणभूतचक्षुरनुग्राहका इति प्रत्यक्षप्रमाणेन निश्चितम्। मन्त्रास्तु युस्माभिः स्वतः प्रमाणभूता उक्ताः। तत्र तद्गतसन्देहनिवृत्तयेऽनुग्राहकान्तरापेक्षास्त्येवेति तत्र किमनुग्राहकमिति वक्तव्यम्। 'अस्ति चे'[2] त्यादिकन्तु व्यर्थमेव। यत ईश्वरस्याप्तत्वं मन्त्रमात्रे मन्त्रब्राह्मणयोर्वा। तदुक्तत्वं च योगिनां प्रत्यक्षतां यातु नाम। अधुनातनैस्तु तदपि शब्देनैव वेदितुमर्हम्। विप्रतिपन्नविषयेण तेनाधुनातनैः प्रमेयस्य निश्चेतुमशक्यत्वात्। उभयसम्प्रतिपन्नानां योगिनामद्यानुपलम्भात्।

यच्चे 'श्वरस्य वेदस्य चानादित्वा' दित्यादिकं[3] तदपि हासहेतुः। यतो वेदस्येश्वरोक्तत्वेऽना

दित्वासम्भवः। अनादित्वे च ईश्वरोक्तत्वाऽसम्भवः। आत्माश्रयसमाधानं त्वात्माश्रयस्वरूपानवबोधमूलम्। यतो वेदस्येश्वरोक्तत्वज्ञाने वेदापेक्षत्वस्यैवात्माश्रयत्वात्। अस्माकं नास्तिकत्वायोदाहृतं वचनं तु[१] भवतामेव नास्तिकत्वं स्फुटयति। यतः– "श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ।[२] योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।[३] इत्येतादृशमनुवचनेन ब्राह्मणस्मृत्याद्यवमन्तॄणां भवतां नास्तिकत्वस्य स्फुटत्वादिति।

'तद् ग्रन्थोत्पत्तौ तद्वचनं प्रमाण' मिति[४] निर्मूलम्। 'ब्राह्मणमीश्वरोक्तमिति कैश्चिदपिशिष्टैनांगीकृत मिति'[५] तु भवन्मतानुयायिनामग्र एवं शोभते युष्मदुक्तप्रमाणेषु ऋगादिपदोपादानन्तु मन्त्रब्राह्मणसाधारणमिति पूर्वमेवावोचाम। मन्त्रब्राह्मणयोर्भेदस्तु युष्माकमृग्यजुषोर्भेद इवऽस्माकमपीष्ट एवेति वृथा दोषदानम्। 'ईश्वरासिद्धे'[६] रित्यारभ्य कपिलस्येश्वरांगीकर्त्तव्यं स्वरूपासिद्धस्य हेत्वाभासाभावत्वमित्यादि लेखस्तु कापिल–गौतममतानभिज्ञत्वं भवतां स्फुटयतीति पक्षावृत्तिभिरेव हेतुभिस्सर्वत्र सर्व भवतां सिध्येदित्यादि दोषानभिज्ञान् प्रति तल्लेखो व्यर्थ इत्युदास्महे। 'त्र्यायुषं जगदग्ने' रित्यादौ जगदग्निशब्देन चक्षुर्ग्रहणन्तु[७] साहसात्रम। ब्राह्मणप्रामाण्यमनंगीकुर्वद्भिरवाच्यत्वात्। न च वेदानुकूलं तद् इति वाच्यम्। वेदानुकूलत्वस्याद्याप्यनिर्वचनात्। भवदनभिमतानां मान्यत्वापत्तेश्च। मन्त्रेश्वेतवहेत्यारम्य व्याकरणविषयविडम्बनन्तु भवत्प्रेषितपत्रेषु भवदुच्चारणेषु चासंख्याताऽशुद्धिदर्शनादस्माभिर्न समाधेयम्। कात्यायनापस्तम्बवचनस्य वेदविरुद्धत्वन्तु वेदविरोधमदर्शयित्वैव लिखितमित्यनादेयम्। भागवतादिषु दोषदानं च साहसमात्रम। न हि युष्माभिर्वेदानुकूलत्वस्याऽस्मत्पृष्टस्य निर्वचनं कृतम्। पाषाणाद्यर्चनादि दोषदानन्तु तत्तत्त्वाऽनव बोधमूलमप्रकृतञ्चेति नाधुनोत्तरमर्हति। वेद–स्वतः–प्रामाण्यमन्त्रजपपुरश्चरण संख्यापूर्त्तिस्तु नाधुना जातेति भूयोभूयोऽभ्यस्यत इति युक्तमेव। ब्राह्मणभागो वेद[८] इत्येव भवत्पक्ष इत्यादिकं तु अस्मत्प्रश्नोत्तराऽस्फूर्त्तिप्रयुक्तगह्वरान्तराश्रयणतुल्यमिति तस्यैवोत्तरम् सम्यक् लेख्यम्। न हि तत् पूर्वोक्तजपमात्रेणोत्तरयितुं शक्यम्। किञ्च क्वचिद् ब्राह्मणादीनां स्वतः प्रामाण्याभावलेखः क्वापि प्रामाण्यमित्यादि वैचित्र्यविस्मितैरस्माभिर्भवदभिमताः ग्रन्थाः के इति पृच्छ्यते। तत्र वेदानुकूल ब्राह्मणस्मृत्यादय इति द्वीपान्तर–भाषावद्दुरूहो लेखस्तु न कार्यः।

यतो भवदभिमतं वेदानुकूलत्वम्भवदेकवेद्यमतोऽमुकामुका ग्रन्थाः प्रमाणभूतास्तत्रेदं मानम्। तदितरे चाप्रमाणभूतास्तत्र चेदम्मानमित्येव लेख्यम्। अर्धजरतीयं त्याज्यम्। वैदिकशब्दशक्तिग्राहकाणि प्रमाणानि भाष्यादीनि भवदभिमतानि चेत् तेषामपि नाम लेख्यम्। अर्धजरतीयं त्याज्यम्। वैदिकशब्दशक्तिग्राहकाणि प्रमाणानि भाष्यादीनि भवदभिमतानि चेत् तेषामपि नाम लेख्यम्। अक्षराण्याचार्यनवनन्दशर्मणः गंगासहाये नायं सममान्यर्थः।

"श्री निवास ताताचार्य"
सम्मनुते व्यास हरिदास शर्मा
फाल्गुन कृष्णा १ सम्वत् १९४५

बून्दीरथ पण्डितों के पत्र सं० ४ का भावार्थ–

आपने मन्त्र भाग को ईश्वरोक्त और ब्राह्मण भाग को अनीश्वरोक्त कहा है। हमने यह पूछा था कि यदि

आप ब्राह्मण भाग को ईश्वरोक्त नहीं मानते तो मन्त्र भाग के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है? परन्तु आपने मन्त्र भाग मात्र के ईश्वरोक्त होने में दृढ़ प्रमाण दिये बिना ही न पूछे हुए ब्राह्मणभाग के अवेदत्व को सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। हमने अपना पूर्व लेख इसी विषय में लिखा था और प्रकरण विरुद्ध होने से उपेक्षा के योग्य होने पर भी उसका संक्षेप से खण्डन करके अन्त में स्पष्ट लिखा था कि ब्राह्मण, स्मृति आदि के प्रमाणों के बिना ही मन्त्र भाग मात्र की ईश्वरोक्तता सिद्ध कीजिये। आपने उसका उत्तर देना कठिन जानकर हमारे प्रश्न के निमित्त **"हुँ फट्"** आदि के समान अर्थशून्य और अनिर्वचनीय स्वतः प्रमाण्य शब्द नामक मन्त्र का जप करना प्रारम्भ कर दिया। उसके पुरश्चरण के अंगभूत ब्राह्मणों के अवेदत्व आदि कथन रूप षडंगन्यास आदि भी लिख मारे। यद्यपि हमारे द्वारा पूर्व पत्र के अन्त में स्पष्ट कहे हुए प्रश्न का उत्तर इस लेख में नहीं आया है, अतः उसको आपके पास लौटा देना ही उचित था, फिर भी अप्रकृत विचार को छोड़कर मन्त्र मन्त्र की ईश्वरोक्तता में आपके द्वारा लिखे हुए समाधानाभास का खण्डन हम लिख रहे हैं। जो अपने **"मन्त्र भाग[1] का ईश्वरोक्त होना"** से लेकर **"वह दोष तो आपके मत में भी विद्यमान है ही"** तक लिखा है यह अज्ञान के कारण ही लिखा है। हम ईश्वर की अथवा उसके वचन की अप्रमाणिकता नहीं स्वीकार करते। किन्तु समस्त शिष्ट जनों द्वारा मान्य जिन प्रमाणों द्वारा मन्त्र और ब्राह्मण का वेदत्व और ईश्वरोक्तत्व सिद्ध होता है उनका अनादर करके केवल अपनी मति से मन्त्र भाग मात्र में ईश्वरोक्तता और अन्यत्र अनीश्वरोक्तता कहने वाले आप से प्रतिवादी के रूप में हमने यह पूछा है कि यदि ब्राह्मण की ईश्वरोक्तता नहीं है तो फिर मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता में क्या प्रमाण है? क्योंकि मन्त्र भाग की भी ईश्वरोक्तता समस्त शिष्ट जनों द्वारा माने हुए ब्राह्मण आदि के द्वारा ही विदित होती है।

सूर्य आदि के समान मन्त्रों का स्वतः प्रमाण्य भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि हमने जो आपसे पूछा था कि वेदों के प्रामाण्य के विषय में **"स्वतस्त्व"** क्या है? उसका आपने अभी तक निर्वचन नहीं किया है। सूर्य आदि का दृष्टान्त तो विषम दृष्टान्त है। क्योंकि घट आदि पदार्थों के प्रत्यक्ष की उत्पत्ति में सूर्य आदि स्वतः प्रमाण नहीं होते। किन्तु उसमें प्रमाण भूत चक्षु के अनुग्राहक सहायक होते हैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा निश्चित है। मन्त्रों को तो आपने स्वतः प्रमाण भूत माना है। ऐसी स्थिति में उसके विषय में उत्पन्न होने वाले सन्देह की निवृत्ति के लिए उनके अतिरिक्त किसी अन्य अनुग्राहक की उपेक्षा तो है ही, इसलिए यह बताइये कि वहां क्या अनुग्राहक है? ईश्वर का आप्त होना योगियों को प्रत्यक्ष हैं आदि जो आप कहते हैं वह तो व्यर्थ ही है।[2] चाहे उसका आप्तत्व मन्त्र में हो या मन्त्र और ब्राह्मण दोनों में हो। ईश्वरोक्तता भी चाहे योगियों को प्रत्यक्ष ही हो जावे। परन्तु आधुनिक लोग तो उसको भी शब्द प्रमाण द्वारा ही जान सकते हैं। क्योंकि विप्रतिपन्न विजय वाले उन योगियों के प्रत्यक्ष से आधुनिकों द्वारा प्रमेय का निश्चय नहीं किया जा सकता। और उपर्युक्त प्रकार के– मन्त्र भाग के विषय में ईश्वर की आप्तता और उनकी ईश्वरोक्तता को प्रत्यक्ष जानने वाले योगी आज के समय में प्राप्त ही नहीं हैं। जो कि आपने **"ईश्वर और वेद अनादि हैं"** इत्यादि कहा है[3]

टिप्पणी–

१– प्रकाशित पुस्तक में 'ब्राह्मण भाग' शब्द लिखा है। उसके अनुवाद में भी 'ब्राह्मण भाग' ही लिखा है। वह ठीक नहीं। यहां 'मन्त्र भागस्य' शब्द होना चाहिये। स्वामीजी के पत्र में यही शब्द है उसकी का यहां निर्देश है। देखिये स्वामीजी का पत्र सं० ३।

२– देखिये स्वामी जी का पत्र सं० ३।

३– पृष्ठ १४० (स्वामी जी का पत्र संख्या ३)।

वह भी एक हंसी की बात है। क्योंकि यदि वेद ईश्वरोक्त (ईश्वर के कहे हुए) हैं तो अनादि नहीं हो सकते। यदि अनादि हैं तो ईश्वरोक्त नहीं हो सकते। हमारे बताए हुए आत्माश्रय दोष का आपके द्वारा किया गया समाधान तो आत्माश्रय के स्वरूप को न समझने के कारण ही आपने किया है। क्योंकि वेद के ईश्वरोक्तत्व के ज्ञान में वेद की अपेक्षा होना ही आत्माश्रय दोष है। हमारे नास्तिकत्व सिद्ध करने के लिए जो वचन आपने उद्धृत किया है[१] वह आपके ही नास्तिकत्व को प्रकट करता है। क्योंकि– **"श्रुति तो वेद है और धर्मशास्त्र स्मृति है। यह दोनों सब आर्यों में अमीमांस्य है। उन्हीं से धर्म प्रकाशित हुआ है[२] जो द्विज इन दोनों मूलों का हेतु शास्त्र के आश्रय से अवमान करे उसे, सज्जनों को चाहिये कि, बहिष्कृत कर दें। क्योंकि–वेद का निन्दक नास्तिक होता है।"**[३] उक्त प्रकार के मनु के वचन से स्मृति आदि के अपमान करने वाले आपका नास्तित्व तो स्पष्ट प्रकट ही है। किसी ग्रन्थ की उत्पत्ति में उस ग्रन्थ के वचन का प्रमाण मानना भी निर्मूल है।[४] **"ब्राह्मण ईश्वरोक्त हैं यह किन्हीं शिष्टों ने स्वीकार नहीं किया है"**[५] ऐसी बात तो आपके मतानुयायियों के आगे ही शोभा देती है। आपके द्वारा कहे प्रमाणों में ऋग्० यजु० इत्यादि पदों से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही समान रूप से ग्रहण होता है। अतः ब्राह्मण भी ईश्वरोक्त हैं यह हमने पहले ही कहा है। मंत्र और ब्राह्मण को जो भेद आज बताते है वह आपके ऋग्० यजु० आदि के भेद के समान ही हमें भी अभीष्ट है। इसलिए हमें दोष देना व्यर्थ है। **"ईश्वरासिद्धेः"**[६] से लेकर जो आपने कपिल को ईश्वरवादी बताया है; और स्वरूपासिद्ध कोई हेत्वाभास ही नहीं है ऐसा बताया है, उससे आपकी कपिल और गौतम के मत के सम्बन्ध में अनभिज्ञता प्रकट होती है। सब प्रकार एक पक्ष में ही ढलने वाले हेतुओं से सब जगह सब बात अपनी सिद्ध करने का आप अनुचित प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में दोषों से अनभिज्ञ आपके प्रति कुछ लिखना व्यर्थ है। अतः हम इस विषय में उदासीन हैं। **"त्र्यायुषं जमदग्नेः"** इत्यादि में **"जमदग्नि"** शब्द से चक्षु का ग्रहण होता है[७] ऐसा कहना आपका साहस मात्र है। ब्राह्मण को प्रमाण न मानने वाले आप उसको प्रमाण रूप में उद्धृत नहीं कर सकते। यह भी नहीं कह सकते कि यह बात वेदानुकूल होने से प्रमाण मानते हैं क्योंकि वेदानुकूलता का निर्वचन अभी तक आपने नहीं किया है। इससे आपके अनभिज्ञमत विषय भी मान्य हो जायेंगे। आपके द्वारा प्रेषित पत्रों और आपके उच्चारणों में असंख्यात अशुद्धियों के देखने के कारण, आपने जो **"मन्त्रेश्वेतवह"** इत्यादि से प्रारम्भ करके व्याकरण विषय की विडम्बना की है, उसका समाधान हम नहीं कर रहे।

टिप्पणी–

१– मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १०।

२– मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ११। पृष्ठ ४८ पैरा ६ में स्वामी जी ने **"नास्तिको वेदनिन्दकः"** लिखकर पण्डितों से कहा कि आप वेद की निन्दा करते हैं इसलिए आपमें नास्तिकत्व आता है। इस पर पण्डित लोग उसी श्लोक के आधार पर उन्हें नास्तिक बता रहे हैं कि श्लोक में तो कहा है कि श्रुति और स्मृति का जो अवमान करता है वह नास्तिक है, बहिष्कार्य हैं। वास्तव में उनका कथन छल पूर्ण है। स्मृति वेदानुकूल होने पर ही प्रमाण है, वेद विरुद्ध होने पर नहीं। ऐसा मानना उचित ही है। यह उसका अवमान नहीं है। मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार श्री कुल्लूक भट्ट ने इसी अध्याय के प्रसिद्ध श्लोक ६, **"वेदोऽखिलो धर्ममूलं"** की टीका में स्पष्ट कहा है– **'वेदस्य धर्मे प्रामाण्यं'** धर्म के विषय में वेदों का प्रामाण्य है। **"वेदमूलत्वेनैव स्मृतीनां प्रामाण्यमभिमतम्।"** वेदमूलक होने से ही स्मृतियों को प्रमाण माना जाता है।

३– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३।

४– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३।

५– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३।

६– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३।

७– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३।

कात्यायन और आपस्तम्ब के वचन में वेद का विरोध बिना बताए ही आपने उसे वेदविरूद्ध कहा है इसलिये आपका वचन ग्रहण करने योग्य नहीं है। भागवत आदि में दोष देना तो आपका साहस मात्र है। हमने जो आपसे पूछा था कि वेदानुकूलता क्या है? उसका आपने अभी तक निर्वचन नहीं किया है। पाषाण पूजन आदि दोष देना तो उन-उन तत्त्वों के न जानने के कारण ही है और प्रकरणानुकूल भी नहीं है अतः इस समय उसके उत्तर की आवश्यकता नहीं है। **"वेद स्वतः प्रमाण्य"** मन्त्र के जप पुरश्चरण की संख्या अभी पूरी नहीं हुई प्रतीत होती इसलिये उसका पुनः पुनः अभ्यास आप कर रहे हैं, यह युक्त ही है। ब्राह्मण भाग वेद है,[१] यही तो आपका पक्ष है, आदि आपका कथन हमारे प्रश्न का उत्तर देने में आपकी अस्फुर्ति के कारण दूसरी गुफा में आश्रय लेने के समान है अतः उसका ही उत्तर आपको लिखना चाहिये। पूर्वोक्त स्वतः प्रमाण रूप मन्त्र के जप से उसका उत्तर नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त कहीं तो आप कहते हैं कि ब्राह्मण स्वतः प्रमाण नहीं है, कहीं उन्हें आप प्रमाण बताते हैं। इस विचित्रता से विस्मित होकर हम आप से पूछते हैं कि आपके अभिमत ग्रन्थ कौन से है? इस विषय में- **"वेदानुकूल ब्राह्मण, स्मृति आदि प्रमाण है"** ऐसा द्वीपान्तर की भाषा के समान न समझने योग्य लेख तो न करियेगा। क्योंकि आपका माना हुआ वेदानुकूलत्व तो आप ही समझ सकते हैं। ऐसा लिखिये कि अमुक अमुक ग्रन्थ प्रमाण भूत हैं और उसमें यह प्रमाण हैं उनके अतिरिक्त ग्रन्थ प्रमाण भूत नहीं हैं और उसमें यह प्रमाण है। **"आधातीतर आधा बटेर"** वाली आदत छोड़ दीजिये।

वैदिक शब्द शक्ति के ग्राहक जो भाष्य आदि ग्रन्थ आप प्रमाणभूत मानते हैं उनका भी नाम लिखिये। अक्षर आचार्य नवनन्द शर्मा के, गंगासहाय ने इस अर्थ को माना है।

"श्रीनिवास ताताचार्य"
(व्यास हरिदास शर्मा इसको मानते हैं)
फाल्गुन कृष्णा १ सम्वत् १९४५

स्वामी जी का पत्र संख्या ४ –

तत्रास्माभिरेवमपृच्छ्यत इत्यादि यदुक्तम्[१] तत्रोच्यते। प्रथमम्भवद्भिरित्थमपृच्छ्यत मन्त्रभाग ईश्वरेणोक्त इत्यत्र किम्मानम्। तदुत्तरावसरेऽस्माभिर्मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे वेदवचनानि, साक्षिवदृषिवचनानि चोदाहृतानि पश्चाच्च ब्राह्मणभागस्यावेदत्वसाधनं योग्यमिति पूर्वमेव प्रत्यपादि। तथा च को नाम वेद इत्याद्यस्मत् प्रश्नानामुत्तरमदत्त्वैव "भवद्भिर्ब्राह्मणस्मृत्यादि प्रामाण्यं प्रामाणं विनैव परित्यज्यत" इत्यादि। वचनं मिथ्या कुलुकवत प्रारब्धन्तदंगत्वेन मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे दृढं प्रमाणमनुपन्यस्येत्याद्यर्धरात्रौ विगतस्वरेण भैरव-ध्वनिरालापितः। तथा च मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे प्रमाणमश्रुत्वैव हुंफडित्यादि पणवत्वेन वादितम्। तत् सिद्ध्यर्थमुक्तप्रश्नस्योत्तरमस्मिँल्लेखेऽनागतमित्यादि प्रक्वणत्वादि तौर्यत्रिकं च प्रसारितम्। तथा च "खण्डनं लिख्यत" इत्यादि "वक्तव्य" मित्यन्तम[२] यदुल्लिखितं तत्तु प्रत्याख्यानार्हम्। यतो न हि ब्राह्मणभागस्येश्वरोक्तत्वंकेनापि प्रमाणेन शिष्टैः साधितम्। अस्माभिस्तु मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे वेदप्रमाणं साक्षिवदृषिवचनप्रमाणं च दत्तम्। यदि च मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणादिभिरेव विदितं स्यात् तर्हि 'तस्माद्यज्ञा' दित्यादयो मन्त्राः किमर्था इति पुनरपि भवन्तः प्रष्टव्याः। किञ्च मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणादिभिरेव विदितमिति भवत् कथनादेव तयोर्भेदत्वं स्फुटम्। पुनस्तयोरभेदत्वं कथं साधयन्ति

टिप्पणी–

१– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३।

भवन्तः। यद्येवं मन्यध्वे यथा ऋक्यजुषोर्भेदस्तथैव मन्त्रब्राह्मणयोर्भेदोऽस्ति, तन्न संगच्छते। कुतो मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वात् ब्राह्मणभागस्यानीश्वरोक्तत्वात्। न हि चतुर्षु ऋगादिष्वीश्वरोक्तत्वं व्यभिचरति।[1] ब्राह्मणेषु तु स्फुटं व्यभिचारित्वमस्ति। किञ्च मन्त्राणामीश्वरोक्तत्वेन सर्वदा स्वाधीनप्रमाणत्वं स्वतस्त्वमित्युक्तमेव। यथा सूर्यः स्वसिध्यर्थमितरन्नापेक्षते तथैव मन्त्रा अपि। यद् "घटादि प्रत्यक्षजनने"[२] त्याद्युक्तं तत्तु महदज्ञानज्ञन्यम्। कुतोऽन्धस्य घटाऽप्रत्यक्षत्वेऽपि सूर्यस्य स्वप्रकाशत्वेन घटानां प्रकाशकत्वात्। यथा सूर्ये अन्धंविहाय केनाऽपि सन्देहो नैव क्रियते तथैव वेदेऽपि नास्तिकं विहाय कस्यापि सन्देहो भवितुं नार्हति। यथा न्धेन स्वदृष्टिगतरोगनिवृत्यर्थञ्चिकित्सकौषधिः सेवनीया तथैव नास्तिकैरपि सत्योपदेशरूपौषधिः सेवयितव्या। "व्यर्थ" मित्यारभ्य "आत्माश्रयत्वादि"[३] त्यन्तं यदुक्तं तदेव प्रामादिकम्।

यतस्तदाप्तत्वम्भवद्भिर्न निश्चितमित्यादि पूर्वकथनेनैव समाधानात्। तथा न हीश्वरेण विद्यमानवेदा उक्ताः। किञ्च तेषामीश्वरज्ञानेन सह सदैव विद्यमानत्वात् यथाऽस्मिन् कल्पे वेदेषु शब्दाक्षरार्थसम्बन्धास्तथैव पूर्वमासन्नग्रे भविष्यन्ति च। कुतः ईश्वरविद्याया नित्यत्वादव्यभिचारित्वादीश्वरज्ञानस्य वृद्धिक्षयविपर्ययाऽभावाच्च। यदि वेदस्येश्वरोक्तत्वमनादित्वञ्च न स्वीक्रियते तर्हि भवत्सु नास्तिकत्वं दुर्निवारणीयम्। किञ्चात्माश्रयस्योत्तरन्तु[४] तस्माद् यज्ञादित्यादि मन्त्रा निरर्थका भवेयुरिति कथनादेव बोधितम्। अस्माक[५] मित्यादि भवत्कथनन्त्वत्यन्तमेव भ्रमाविष्टङ्कुतो वेदानुकूलत्वेन ब्राह्मणस्मृत्यादीनां सर्वदैव मान्यत्वात्। यदुक्तं तद् ग्रन्थोत्पत्तौ तद् वचनप्रमाण[६] मित्यस्योत्तरं यथा– "श्री भगवानुवाच" इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्त' मित्यादिभगवद्–गीतावचनादेव श्रीकृष्णचन्द्रेणैव गीता निर्मिता इति निश्चीयते। ब्राह्मणमीश्वरोक्तमिति कैश्चित् शिष्टैरपि नांगीकृतमित्यादि यदुक्तं तत्तु समीचीनमेव कुतोऽस्माकं मतानुयायिनां विपरीतज्ञानाऽभावात्। युष्मदुक्तप्रमाणेष्वित्यादि[७] कथनस्योत्तरन्त्वस्मिन्नेव मन्त्रेऽवलोकनीयम्[८]। "ईश्वरासिद्धे"[९] रित्यारभ्य "इत्युदास्महे" इत्यन्तं यत् प्रतिपादितं तत्तु भवतः सच्छास्त्राऽनभिज्ञत्वं द्योतयति। कुतः, ईश्वरसिद्धौ कपिलसूत्रस्य[१०] तत्रैव विद्यमानत्वाद्, गौतमीयसूत्रेषु स्वरूपासिद्ध इत्यस्यादर्शनत्वाच्च।[११] "त्र्यायुष" मित्यादि तु लेखमात्रम्। यतो न ह्यस्माभिर्वेदानुकूलत्वेन ब्राह्मणानामप्रामाण्यं स्वीक्रियते। वेदानुकूलत्वं तूक्तमेव। मन्त्रे श्वेतवहेत्यादिषु तु प्रथममेव भवद्भिरशुद्धं प्रतिपादितम्। कात्यायनापस्तम्बवचनन्तु व्याख्यानव्याख्येयसम्बन्धपरम्। भागवतादिषु दोषदानं तु समीचीनमेव। यदि नोचेत्तर्हि अस्योत्तरावसरे तथा च पाषाणाद्यर्चनस्य समाधाने कथं मूकायते। "वेदस्वत" "इत्यारभ्य" "शक्य"[१२] मित्यन्तं यदुल्लिखितं तत्तु केवलं बुसताडनमेवास्तीति। तथा च किञ्च इत्यादि यदुक्तम् तदपि साहसमात्रम्। यतो ब्राह्मणादीनां सर्वदैव परतः प्रमाण्यस्वीकारात्। किञ्च अस्मत्कृतप्रश्नानामुत्तरं कथन्न दीयते। अन्यदप्रासंगिकमिति। फाल्गुन कृष्णा २ (सम्वत् १०४५)

"स्वामी विश्वेश्वरानन्द" (सहायक)
"ब्रह्मचारी नित्यानन्दाक्षराणि"

स्वामी जी के पत्र सं०–४ का भावार्थ–

"वहां हमने यह पूछा था"[१] इत्यादि जो आपने कहा है उस विषय में हम कहते हैं कि पहिले आपने हमसे यह पूछा था कि मन्त्र भाग ईश्वर ने कहा है इसमें क्या प्रमाण है? उसका उत्तर देते हुए हमने मन्त्र

टिप्पणी–

१– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३।

भाग के ईश्वरोक्त होने में वेद के वचन और साक्षी रूप से ऋषियों के वचन उद्धृत किये थे। उसके अनन्तर ब्राह्मणों का अवेदत्व सिद्ध करना उचित ही था यह हमने पहले ही प्रतिपादन कर दिया है। और **"वेद क्या है ? इत्यादि हमारे प्रश्नों का उत्तर न देकर आपने–ब्राह्मण, स्मृति आदि का प्रामाण्य बिना किसी प्रमाण के ही छोड़ दिया है।"** इत्यादि वचन आपने असत्य तमाशे के समान कहना प्रारम्भ कर दिया है। उसके ही अंग के रूप में आपने रात्रि में फटे हुये स्वर से यह भैरव ध्वनि का आलाप भी प्रारम्भ कर दिया है–कि **"मन्त्र भाग के ईश्वरोक्त होने के दृढ़ प्रमाण दिये बिना ही, ब्राह्मण के अवेदत्व की सिद्धि करना प्रारम्भ कर दिया"**। साथ ही मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता में हमारे द्वारा दिये प्रमाणों को सुने बिना ही **"हुं फट्"** आदि का ढोल भी बजाने लगे। **"हमारे प्रश्न का उत्तर इस लेख में नहीं आया है"** ऐसा बाजा बजाना, नाचना और गाना सा आपने पसार दिया है। आपने जो समाधानाभास का हम खण्डन लिख रहे हैं से **"बताइये कि वहां क्या अनुग्राहक है"**[१] तक लिखा है वह प्रत्याख्यान के योग्य है। क्योंकि ब्राह्मण भाग की ईश्वरोक्तता होना ब्राह्मण आदि के द्वारा ही विदित और सिद्ध होता हो तो हम आप से पूछते हैं कि फिर ऐसी स्थिति में **"तस्माद् यज्ञात्"** इत्यादि वेद मन्त्रों का क्या प्रयोजन रह जाता है। आप कहते हैं कि **"मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता ब्राह्मण आदि के द्वारा ही विदित होती है"** आपके इस कथन से ही वेद और ब्राह्मण का भी भेद स्पष्ट हो जाता है। फिर आप उनका अभेद कैसे सिद्ध कर रहे हैं? यदि आप ऐसा मानते हैं कि जैसा ऋग् और यजुः का भेद है वैसा ही मन्त्र और ब्राह्मण का भेद है, तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि मन्त्र भाग तो ईश्वरोक्त है और ब्राह्मण भाग ईश्वरोक्त नहीं है। चारों ऋग् आदि के विषय में ईश्वरोक्तत्व का व्यभिचार[२] नहीं पाया जाता। ब्राह्मण के विषय में तो यह व्यभिचार स्पष्ट है।

यह हम कह चुके हैं कि ईश्वरोक्त होने के कारण सर्वदा स्वाधीन प्रमाण होना ही **"स्वतस्त्व"** है। जैसे सूर्य को अपनी सिद्धि के लिये किसी अन्य की अपेक्षा नहीं होती उसी प्रकार मन्त्रों को भी अपनी सिद्धि के लिये अन्य किसी शास्त्र अथवा प्रमाण आदि की अपेक्षा नहीं है। जो आपने **"घट आदि पदार्थों के प्रत्यक्ष की उत्पत्ति में सूर्य आदि स्वतः प्रमाण नहीं होते"**[३] आदि कहा है वह तो महान् अज्ञानजन्य ही है। क्योंकि अन्धे पुरुष को घट का प्रत्यक्ष न होने पर भी सूर्य घण्टों का प्रकाश करता ही है। जैसे सूर्य के विषय में अन्धे पुरुष के अतिरिक्त किसी को सन्देह नहीं होता उसी प्रकार वेद के विषय में भी नास्तिका को छोड़कर किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इस दोष का निवारण करने के लिये जैसे अन्धे को अपने दृष्टिगत रोग को शान्त करने के लिये चिकित्सक की औषधि का सेवन करना चाहिये उसी प्रकार नास्तिकों को सत्य उपदेश रूपी औषधि का सेवन करना उचित है। **"वह तो व्यर्थ ही"** से प्रारम्भ कर आपने जो **"..............आत्माश्रयदोष हैं"**[४] तक कहा है वही प्रामादिक है न कि हमारा कथन ! क्योंकि इसका समाधान तो हमारे **"यदि आपने ईश्वर के ही आप्त होने का निश्चय नहीं किया है तो फिर आप यह कैसे कह सकते हैं कि याज्ञवल्क्य**

टिप्पणी–

१– देखिये बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या–४,

२– *"व्यभिचारः एकत्राव्यवस्था"। न्याय० वात्स्यायन भाष्य– अध्याय १। आह्निक २। सूत्र ४६। एक पक्ष में ही व्यवस्था* न होकर हेतु आदि का दूसरे विरुद्ध पक्ष में भी उसी प्रकार घट जाना व्यभिचार कहलाता है।

३– *स्वामी जी का पत्र सं० ३।*

४– *बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र सं० ४।*

आदि के वचन के बल से वेदों को प्रमाण मानते हैं" आदि पहिले कथन से ही हो चुका है। इसके अतिरिक्त, ईश्वर ने विद्यमान वेदों को किसी समय में कहा नहीं है। उनके, ईश्वर ज्ञान के साथ सदा विद्यमान होने से जिस प्रकार के वेदों में शब्द, अक्षर और अर्थ के सम्बन्ध इस कल्प में हैं वैसे ही पहिले कल्पों में भी थे और भविष्य में आगे भी ऐसे ही होंगे। क्योंकि ईश्वर की विद्या नित्य एवं अव्यभिचारी है, उसमें वृद्धि, क्षय अथवा परिवर्तन नहीं होता। यदि आप वेद को ईश्वरोक्त और अनादि नहीं स्वीकार करते तो आपके नास्तिकत्व का निवारण नहीं हो सकता। आत्माश्रय दोष जो आपने बताया था उसका उत्तर तो इसी से हो गया है कि यदि ब्राह्मण स्मृति आदि के प्रमाणों से ही वेद की ईश्वरोक्तता सिद्ध होगी तो वेद के **"तस्माद् यज्ञात्"**[१] इत्यादि मन्त्रों का कोई प्रयोजन न रहेगा और वे निरर्थक हो जायेंगे। **"हमारे नास्तिकत्व"**[२] आदि जो वचन आपने कहे हैं वे तो अन्यन्त भ्रमपूर्ण है। क्योंकि वेदानुकूल होने पर ब्राह्मण स्मृति आदि सर्वदा ही मान्य है। (ऐसी स्थिति में हमें नास्तिक बताना आपकी भ्रान्ति ही है)।

जो आपने कहा, किसी ग्रन्थ की उत्पत्ति में उस ग्रन्थ का वचन प्रमाण मानना निर्मूल है[३] उसका उत्तर सुनिये जैसे– गीता में **"श्री भगवान् बोले"** **"यह गुह्यतम शास्त्र कहा है"** इत्यादि वचनों के प्राप्त होने से निश्चित होता है कि गीता श्री कृष्णचन्द्र ने ही बनाई है। इस प्रकार किसी ग्रन्थ के वचन उस ग्रन्थ की उत्पत्ति में प्रमाण होते हैं। ब्राह्मण ईश्वरोक्त हैं यह कहीं शिष्टों ने अंगीकार नहीं किया है, ऐसा जो कहा गया है, वह तो उचित ही है। क्योंकि हमारे मतानुयायियों का इसके विपरीत ज्ञान नहीं है। (अर्थात् वे ऐसा ही जानते हैं) **"आपके द्वारा कहे प्रमाणों में"**[४] इत्यादि कथन का उत्तर तो इस मन्त्र में ही देख लीजिये।[५] **"ईश्वरासिद्धेः"** से लेकर **"हम इस विषय में उदासीन हैं"** तक जो आपने प्रतिपादित किया उससे आपकी सत् शास्त्रों से अनभिज्ञता प्रकाशित होती है। क्योंकि कपिल के सांख्य सूत्रों में ईश्वर की सिद्धि करने वाला सूत्र[६] भी वहीं विद्यमान है। गौतम ऋषि के सूत्रों–न्याय दर्शन में, स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास कहीं दिखाई नहीं देता[७]। **"त्र्यायुषम्"** इत्यादि जो आपने लिखा है वह लेखमात्र है उसमें वास्तविकता कुछ भी नहीं है। क्योंकि वेदानुकूल होने पर हम ब्राह्मणों का अप्रामाण्य नहीं मानते। वेदानुकूलता क्या है,? यह भी हम पहिले कह चुके हैं।

"मन्त्रे श्वेतवह"[८] इत्यादि सूत्र तो पहिले ही आपने अशुद्ध प्रतिपादित किया था। कात्यायन आपस्तम्ब

टिप्पणी–

१– देखिये बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या–४, २– देखिये बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या–४, (प्रथम पैरा)

३– देखिये बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या–४,

४– **"तस्माद यज्ञात्"** इत्यादि मन्त्र में, ऋग्, यजुः आदि का तो नाम है, परन्तु ब्राह्मण आदि का नाम भी हैं, फिर समानता कैसे हो सकती है?

५– 'सत्ता मात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम्'। सांख्य दर्शन अध्याय ५ सूत्र ६।

६– स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास न्याय दर्शन में नहीं बताया गया। वहां केवल पांच हेत्वाभास हैं– 'सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसमातीतकाला हेत्वाभासाः। न्याय दर्शन अ० १ आ० २ सूत्र ४।

७– देखिये स्वामी जी का पत्र संख्या–३,

८– बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र सं० २–पण्डितों ने यह सूत्र पहले **"मन्त्रे उक्थ"** लिखा था। यह भी बताया था कि इस सूत्र में मन्त्र शब्द ग्रहण करके पाणिनि ने **"बहुलं छन्दसि"** सूत्र कहा है। इससे मन्त्र भाग का भी वेद होना बाधित होता है। स्वामी जी ने इसे भ्रान्त होना सिद्ध किया है।

का वचन तो व्याख्यान और व्याख्येय सम्बन्ध का प्रदर्शक है। भागवत आदि में दोष बताना तो उचित ही है। यदि यह उचित नहीं है तो उसका उत्तर देने के समय और पाषाण आदि की पूजा के सामधान में आप मूक क्यों हो रहे हैं? **"वेद स्वतः प्रामाण्य मन्त्र जप"** इत्यादि से प्रारम्भ कर **"मन्त्र के जप से उसका उत्तर नहीं हो सकता।"** तक जो आपने लिखा है वह तो भूसे में लट्ठ मारने के समान है। **"कहीं तो आप कहते हैं"** इत्यादि जो आपने लिखा है वह आपका साहस मात्र है। क्योंकि हम तो ब्राह्मण को सर्वदा ही परतः प्रमाण स्वीकार करते हैं, न कि कहीं उसका प्रामाण्य और वहीं अप्रामाण्य। यह सब तो हुआ। आप हमारे किये हुए प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं देते हैं,? उनके उत्तर के अतिरिक्त जो कुछ भी आप लिखते या कहते हैं वह सब तो अप्रासंगिक है।

फाल्गुन कृष्णा २ (सम्वत १९४५) हस्ताक्षर

स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती

ब्रह्मचारी नित्यानन्द के अक्षर

बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या ५–

पूर्वप्रेषितपत्रेषु भवल्लिखितपत्रोत्तरत्वेनास्माभिर्यद्यल्लिखितं तत्तदविचार्यैव केवलं स्वेच्छानुसारेण न भेतव्यं, न बोद्धव्यं, न श्रव्यं वादिनो वचः' इति न्यायमनुसृत्य पत्राण्यलिप्यन्त। यदि ब्राह्मणानामनीश्वरोक्तत्वे किम्प्रमाणमित्यस्मत् प्रश्नस्य सम्यगुत्तरमद्यावधि न दत्तं यतो ब्राह्मणाद्यवमन्तृभिर्मन्त्रभागमात्रस्येश्वरोक्तत्वमपि न सुसाधम् ततश्च स्वतः प्रामाण्यावलम्बे कृते तन्निर्वचने पृष्टे तत्रापि निर्वचनाभाव आलम्ब्यते, वेदानुकूलब्राह्मणादिप्रामाण्यमंगीकृत्यापि तत्राप्यनुकूलत्वनिर्वचनं न कृतम्। यत् किञ्चित्तत्र लिखितं तस्य चास्मन्मतसाधारण्यदोषस्योद्धारो न कृतः। अस्माभिः स्वमन्तव्यग्रन्थलेखे कृतेऽपि युष्माभिः स्वमन्तव्यग्रन्था न लिखिताः। तदलेखे हेतुस्तु भवदभिमतानाम्मन्तव्यत्वे तदितराऽमन्तव्यत्वे च प्रमाणाऽभावो अर्धजरतीयावलम्बः प्रबन्धान्तरे नियन्त्रणभयञ्चेति प्रतीयते। अतो भवद्भिर्यावत् प्रश्नानां सम्यगुत्तरन्न दीयते तावद्युष्माभिस्तूष्णीं स्थातव्यम्। वृथा पत्रलेपो न कार्यः।

प्रश्नास्तु स्मरणार्थं पुनर्लिख्यन्ते। (१)– ब्राह्मणभागस्येश्वरोक्तत्वन्नास्ति चेन्मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वे किम्मानम्। यतः मन्त्रभागेऽपीश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणादिवचनैर्ज्ञेयम्। तेषां प्रामाण्यं स्वीकृतञ्चेद् ब्राह्मणानां वेदत्वं स्वीकार्यं नो चेन्मन्त्रस्यापि न स्वीकार्यम्। (२)–युष्माभिः सर्वशिष्टसम्मतं ब्राह्मणस्मृत्यादि प्रामाण्यं प्रमाणं बिना परित्यज्यते। अस्माभिस्तु याज्ञवल्क्याद्युक्तिबलाद् वेदस्मृत्यादिकं स्वीक्रियते। युष्माभिस्तत्परित्यागे प्रमाणन्देयम्। नो चेत् सर्वस्मिन्नपि स्वीयविषये युक्तय एव वक्तव्याः। अर्धजरतीयस्य सर्वासम्मतत्वात्। (३)–मन्त्रभागमात्रे ईश्वरोक्तत्वं वचनबलेनांगीकृतञ्चेद् वचनप्रयोक्तुराप्तत्वं केन निश्चितम्। मन्त्रेणैव चेदात्माश्रयदोषः। (४)– सर्वे शिष्टैः स्वीकृतं ब्राह्मणस्मृत्यादि प्रामाण्यं किमिति न स्वीकुरुध्वे। (५)– ऋग् यजुः सामादि विशेषशब्दैः श्रुत्यादि सामान्यशब्दैश्च मन्त्राणामिव ब्राह्मणानामपि सर्वशिष्टैर्ग्रहणादिति हेतोरुत्तरावसरे भवद्भिस्तूष्णीं भूतम्। (६)–"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेय" –मित्यस्यौपचारिकत्वे प्रमाणन्न दत्तम्। (७)– वेदानुकूलत्वं सम्यङ् न निरुक्तम्। अविरुद्धत्वमित्युक्तिस्तु

पर्यायकथनमात्रम्। प्रत्युतास्मदुक्तदोषैर्दूषितम्। (८)– वेदप्रामाण्ये स्वतस्त्वन्न निरुक्तम्। (९)– पुराणन्यायेत्यादि श्लोकेनाऽस्माभिः स्वमन्तव्यग्रन्थलेखे कृतेऽपि युष्माभिरस्मत् प्रश्नानुसारेण स्वमन्तव्यग्रन्थलेखो न कृतः। (१०)– वैदिकशब्दशक्तिग्राहकभाष्यनामाद्यलेखः न च भवतः प्रति येऽस्माभिः प्रश्नाः कृतास्तेषामुत्तरम्भवद्भिरपि न दत्तमित्युत्तराधमर्णता उभयोस्तुल्येति वाच्यम्। अस्माभिः पृष्टं विषयमपूरयित्वैव भवद्भिः प्रश्नाः कृता अतस्तेषां केवलमस्मत् प्रश्नविस्मारणार्थत्वेन गहवरान्तराश्रयणा–तुल्यत्वात्।

१. अक्षराण्याचार्य नवनन्दशर्मणः,
२. सममतोऽयमर्थो गंगासहायेन,
३. सम्मान्ययमर्थो व्यासहरिदासेन,
४. श्रीनिवास ताताचार्यः,
फाल्गुन कृ० ३ (सम्वत् १९४५)

बून्दीस्थ पण्डितों के पत्र संख्या ५ का भाषानुवाद–

अपने पूर्व प्रेषित पत्रों में आपके लिखे पत्रों के उत्तर स्वरूप हमने जो जो लिखा था उसका विचार न करके केवल स्वेच्छा से–"**वादी के वचन को न सुनो, न समझो और न डरो**" इस न्याय का अनुसरण करके आपने पत्र लीप डाले हैं ब्राह्मणों के ईश्वरोक्त न होने में क्या प्रमाण है,? हमारे इस प्रश्न का उत्तर अभी तक आपने नहीं दिया है। ब्राह्मण आदि के अपमान करने वाले आप मन्त्र भाग मात्र का ईश्वरोक्तत्व भी अच्छे प्रकार से सिद्ध नहीं कर सकते। उसके अनन्तर आपने स्वतः प्रामाण्य का अवलम्बन किया। परन्तु उसका भी निर्वचन पूछने पर निर्वचन भी नहीं करते। वेदानुकूल ब्राह्मण आदि का प्रामाण्य स्वीकार करके भी अनुकूलता का निर्वचन नहीं किया। जो कुछ इस विषय में आपने लिखा उसका हमारे मत में भी साधारण्य होने के दोष का उद्धार (समाधान) भी आपने नहीं किया। हमारे मन्तव्य ग्रन्थों को लिख देने पर भी आपने अपने मन्तव्य ग्रन्थ नहीं लिखे। इसके न लिखने में तो यही कारण प्रतीत होता है कि आपके अभिमत ग्रन्थों के मन्तव्य में और उसके अतिरिक्त अन्यों के न मानने में प्रमाणों का अभाव और अर्धजरतीयावलम्बन है। साथ ही आपको यह भी भय है कि ऐसा लिख देने पर दूसरे प्रबन्धों (लेखों) में पकड़ में आ जावेंगे। इसलिये जब तक आप प्रश्नों का सम्यक् उत्तर नहीं देते तब तक आपको चुप ही रहना चाहिये। व्यर्थ में पत्र लेपन न कीजिये।

प्रश्न तो स्मरणार्थ पुनः लिखे जा रहे हैं। यदि ब्राह्मण भाग की ईश्वरोक्तता नहीं है तो मन्त्र भाग के ही ईश्वरोक्तत्व में क्या प्रमाण है ? क्योंकि मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता भी ब्राह्मणादि के वचनों से ही जानी जा सकती है। यदि उनका प्रामाण्य स्वीकृत करते हैं तो ब्राह्मणों को भी वेद स्वीकार करना चाहिये। अन्यथा मन्त्रों को भी वेद न स्वीकार कीजिये। आप सब शिष्टों से सम्मत ब्राह्मण, स्मृति आदि के प्रमाण्य को बिना प्रमाण के ही छोड़ रहे हैं। हम तो याज्ञवल्क्य आदि के वचनों के आधार पर वेद और स्मृति आदि को स्वीकार करते हैं। आपको उनके परित्याग में प्रमाण देना चाहिये। अन्यथा अपने सभी प्रतिपाद्य विषय में युक्ति ही कहनी चाहिये। "**आधा तीतर आधा बटेर**" सभी को असम्मत है। मन्त्र भाग मात्र का ईश्वरोक्त होना किसी के वचन के बल से यदि स्वीकार करते हैं तो उस वचन के प्रयोक्ता का आप्तत्व किसने और किस प्रकार

निश्चित किया? यदि कहें कि मन्त्र द्वारा ही तो आत्माश्रय दोष आता है। समस्त शिष्ट जनों से स्वीकृत ब्राह्मण, स्मृति आदि का प्रमाण क्यों नहीं स्वीकार करते? ऋग्, यजुः, साम आदि विशेष शब्दों से और श्रुति आदि सामान्य शब्दों से मन्त्रों के समान ही–सभी शिष्ट लोग–ब्राह्मणों का भी ग्रहण करते हैं। इसके उत्तर के समय आप चुप हो गये हैं। **"मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है"** इस वचन के औपचारिक होने में आपने प्रमाण नहीं दिया है। वेदानुकूलत्व की निरुक्ति आपने ठीक प्रकार से नहीं की है। अनुकूलत्व का अर्थ अविरुद्धत्व बताना पर्याय कहना मात्र है और हमारे द्वारा बताए दोषों से भी युक्त है। वेद–प्रामाण्य के विषय में स्वतस्त्व का निर्वचन आपने नहीं किया। हमने **"पुराण–न्याय"** इत्यादि श्लोक द्वारा अपने मन्तव्य ग्रन्थों को लिख दिया था, फिर भी आपने हमारे प्रश्न के अनुसार अपने मन्तव्य ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया है। आपने वैदिक शब्द–शक्ति के ग्राहक भाष्यों के नाम आदि का लेख नहीं किया है। आप ऐसा तो कह नहीं सकते कि 'आपसे (पण्डितों से) जो प्रश्न हमने (स्वामी जी ने) किये थे उनका आपने भी उत्तर नहीं दिया है। इसलिये उत्तर न देने का ऋणी होना दोनों ओर समान ही है।' क्योंकि हमारे द्वारा पूछे विषय को पूरा किये बिना ही आपने प्रश्न कर डाले हैं। अतः आपका यह कार्य हमारे प्रश्नों को भुलाने के लिये गहवरान्तर में आश्रय लेने के समान है।

१. अक्षराण्याचार्य नवनन्दशर्मणः,
२. सममतो यमर्थो गंगासहायेन,
३. सम्मान्ययमर्थो व्यासहरिदासेन,
४. श्रीनिवास ताताचार्यः,
फाल्गुन कृ० ३ (सम्वत् १६४५)

श्री स्वामी जी का पत्र संख्या ५ –

अहो ! बून्दीस्थपण्डितानां लीला सर्वैः शिष्टैरार्य्यैर्धार्मिकै रागद्वेषशून्यैर्नीतिज्ञैर्विद्वद्भिरवलोकनीया। यत अर्थी दोषं न पश्यतीति न्यायमनुसृत्यानृतस्वपक्षसिद्ध्यर्थं नास्तिक्यमंगीकृत्य च यावदार्यपरम–पूजनीयवेदेऽपि दूषणं दातुमुद्यताः।

भवत्प्रश्नांकितप्रेरितच्छदानामुत्तराण्युक्तान्यस्माभिस्तथापि न निरीक्षन्ते भवन्तः कुतो निरीक्षेरन्। निरीक्षणन्तु हार्दनेत्रोन्मीलनमन्तरेण नैव संजाघटीति। हार्दनेत्रे चावैदिक–पथ–मरुतेरितयेतरेतर–विरुद्ध वैष्णव शैव–शाक्तगाणपत्यादि मतोत्थपक्षपाताद्यात्मिकया धूल्या निमीलिते स्तः। "पूर्वप्रेषितपत्रे" ष्वित्यारभ्य "प्रश्नास्तु स्मरणार्थं पुनर्लिख्यन्ते"[1] इत्यन्तं उल्लेखनेन भवद्भिर्व्यर्थमेव पत्रमस्यादिव्ययः कृतो यतोऽस्य निम्नलिखितप्रश्नेष्वन्तर्भावात्। तथा च भवत्प्रश्ना[2] अप्यनर्थकाः। कुतस्तेषामस्मदीयच्छदेषु पूर्वमेव समाधानात्। नहि भवत्प्रश्नाः पुनरुत्तरमर्हन्ति। तथापि यथाधाराधरो जलेऽपि वर्षतीति न्यायमनुसृत्य पुनरप्यत्रोच्यते।

१. प्रथमप्रश्नस्योत्तरन्तस्माद्यज्ञादित्यादि मन्त्रैः साक्षिवदृषिवचनैश्च दत्तम्। यदुक्तं मन्त्रभागेऽपी–श्वरोक्तत्वं ब्राह्मणादिवचनैरेव ज्ञेयमित्यादि तत्भवत्कथनं न संगच्छते। कुतो–मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति

वचनादुभयोर्वेदत्वं स्वीकृत्य वेदवचनादेव वेदस्येश्वरोक्तत्वं मन्वानान् अस्मान्प्रत्यात्माश्रयत्वं वदतां (भवतां) एवं प्रत्युतात्माश्रयदोषेण कलंकितत्वात्। तथैवान्योन्याश्रयोऽपि भवन्मते। यतो भवद्भिरेव पुराणन्यायेत्यादि याज्ञवल्क्यस्मृतिवचनाद्वेदानां प्रमाणत्वं स्वीकृतम्। स्मृत्यादीनां प्रमाणञ्च वेदानुकूलत्वेनैव सर्वशिष्टैरंगीकृतम्। यथा प्राहस्म मनुः– या वेदब्राह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः[२]।। तथा शारीरकसूत्रे कृष्णद्वैपायनोऽपि प्राहस्म– 'स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोरप्रसंगात[३]।।

किञ्च यदुक्तं मन्त्रभागे ईश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणादि वचनैरेव ज्ञायते तस्माद् ब्राह्मणस्यापि वेदत्वं स्वीकरणीयमिति। तन्न। यतोन्यवचनादपि वेदस्येश्वरोक्तत्वं ज्ञायते तत्राऽपि वेदत्वापत्तेः। युष्माभिरित्यादि द्वितीयप्रश्नस्योत्तरं श्रूयतान्नह्यस्माभिः सर्वशिष्टसम्मतं ब्राह्मणस्मृत्यादि प्रामाण्यं परित्यज्यते। यतो वेदानुकूलत्वेन तेषां सर्वथैवांगीकरणात्। इदन्तु वृथैव दोषदानं प्रणियच्छन्ति भवन्तः। परन्तु वेदविरुद्धत्वं तु नांगीक्रियतेऽस्माभिरत्र प्रमाणां तु "या वेदबाह्याः स्मृतयः" इत्यादि वचनम्। अर्धजरतीयन्यायं भूयो भूयोऽभ्यस्यमानान् भवतः प्रति ब्रूमः। भवद्भिः पुराणन्यायेति याज्ञवल्क्यवचनात् सर्वेषां पुराणानां सर्वासां स्मृतीना च प्रमाणं स्वीकृतम्। तत्र पुराणेषु यथा– संतप्तशंखादिलिंगैर्यश्चिह्नितनुर्नरः। स सर्वपातकभोगी चाण्डालो जन्म कोटिभिः।। १।। लिंगपुराणे– "यज्ञोदानं तपश्चैव स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। व्यर्थ भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्"।। २।। कृष्णामृतमहार्णवेऽपि– "यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः। सममन्यैर्निरीक्षेत स पाखंडी भवेत् सदा"।। ३।। किमत्र बहुनोक्तेन– ब्राह्मणा ये चावैष्णवाः। न स्पृष्टव्या न वक्तव्या न द्रष्टव्याः कदाचन।। ४।। पद्मपुराणे– विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते। शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम्।।५।। इत्यादि सर्व भवद्भिः स्वीकरणीयम् अर्द्धजरतीयस्य भवन्मते असम्मतत्वात्।

तथैव– "सद्युगे मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमा मताः। द्वापरे शंखलिखिताः, कलौ पाराशराः स्मृताः"[१] इति पाराशरवचनाद् याज्ञवल्क्यस्मृत्यादीनान्तु सर्वथैव हेयत्वं तथा कलौ मन्वादिवचनानां वैयर्थ्यापत्तिः। प्रमाणाभावश्च भवन्नये आगच्छति। तथैव तन्त्रग्रन्थेष्वपि। शिव उवाच– १– "मद्यं मास च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च। एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे।।"

२– मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु। लिंग योन्यां तु संस्थाप्य जपेन्मन्त्रमतिन्द्रतः।। मातुरपि न त्यजेदित्यादि सर्व भवद्भिः स्वीकरणीयम्। यतो भवन्नये अर्धजरतीयामान्यत्वात्।

३. 'मन्त्रभागमात्रे, इत्यादि तृतीयप्रश्नस्योत्तरं श्रोतव्यम्। यथा खलु कार्य दृष्ट्वा कारणस्यानुमानं क्रियते तथैव सर्वविद्यामयर्गादिवेदचतुष्टयस्य दर्शनादीश्वरस्याप्तत्वमनुमीयते। नहीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् परमात्मनोऽन्यतः सम्भवोऽस्ति। तस्य निर्विकारस्याजस्या–नादेर्नित्यस्य सत्यसायर्थ्यस्येश्वरस्याप्तत्वं सर्वैरार्यैर्ऋषिमहर्षिभिरंगीकृतम्। नहि नास्तिकैर्विनाकेनाऽपि तदाप्तत्वे सन्देहः क्रियते।

४. सर्वशिष्टैरित्यादि ४ प्रश्नस्योल्लेखनं महदनर्थकम्। यतो वयं ब्राह्मणस्मृत्यादीनां प्रामाण्यं वेदानुकूलत्वेन सर्वदैव मन्यामहे।

५. ऋग्यजुरादि पञ्चमप्रश्नस्योत्तरं निगद्यते। यथा "तस्माद्यज्ञादित्यादि" मन्त्रेषु ऋग्यजुरादीनां साक्षान्नामास्ति न तु ब्राह्मणस्य। तथा च ऋग्यजुरादीनामध्यायस्यादावन्ते च वेदशब्दोल्लेखनप्रचारो दृश्यते न चैवं ब्राह्मणग्रन्थानां वेदशब्देन शिष्टैर्ग्रहणमपि न कृतम्। तथैव वर्त्तमाने कम्प्रतिकोऽप्येवं ब्रूते भवतां को वेदः। पुनः स तं प्रतिवदत्यस्माकं यजुर्वेदोऽस्ति न चैवास्माकं गोपथब्राह्मणवेदोऽस्तीति कोऽपि ब्रूते। इति व्यवहारेणापि ब्राह्मणभागस्यावेदत्वं सिद्धम्। यत्तु तूष्णीं भूतमित्युक्तं तत्तु भवतां स्वभावोऽस्ति न त्वस्मदीयः।।

६. "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेय" मित्यस्यौपचरिकत्वे प्रमाणं न दत्तमित्यस्योत्तरं वदामो ब्राह्मणं वेद इति महर्षिस्वीकृतमित्यंगीक्रियते युष्माभिस्तर्हि पृच्छ्यन्ते भवन्तोऽस्माभिरिदं किमवेदानां ब्राह्मणानां वेदत्वं महर्षिभिः स्वीकृतं तदा तु ब्राह्मणानि न वेदा इति सिद्धम। पुनश्चावेदस्य वेदत्वप्रतिपादनं स्थाणौ पुरुषबुद्धिवदतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं महर्षिषु तत्र भवद्भिरंगीक्रियताम्। यदि च सतां वेदानामेव वेदत्वमुपपादितं तर्हि सिद्धस्य साधनं मृषेति महर्षिवचनानां नैष्फल्यापत्तिः। किंच यत्र वेदस्यानादित्व–मपौरुषेयत्वं च प्रतिपाद्यते तत्र ब्राह्मणानां वेदत्वं न सम्भवति। अत एव "वेदब्राह्मणयोर्वेदनामधेय" मित्यस्यौपचारिकत्वं प्रत्यपादि।

७. वेदानुकूलत्वमित्यस्योत्तरं तु वेदाविपरीतार्थबोधकत्वं वेदानुकूलत्वमित्युक्तमेव।

८. वेदप्रामाण्ये स्वतस्त्वम् ईश्वरोक्तत्वेन सर्वदा स्वाधीनप्रमाणत्वं स्वतस्त्वमित्यवोचाम।

९. "पुराण–न्याय–मीमांसे" त्यादिश्लोकेनाऽस्माभिः स्वमन्तव्यलेखेकृतेपीत्यस्योत्तरं ब्रूमः।

अस्माभिस्तु पूर्वमेव विज्ञापनापत्रे प्रतिपादितं तावदुभयपक्षावलम्बिभिः स्वमन्तव्यग्रन्था उल्लेखनीयाः पश्चाच्च शास्त्रार्थः कर्त्तव्यः। भवद्भिरेतदंगीकृत्वापि प्रकरणान्तरे विचारः प्रारब्धः। अत एव प्रतिज्ञाहानित्वेन भवतां निग्रहस्थानम्। तावद् भवद्भिः सर्वेषां स्वमन्तव्य–ग्रन्थानां नामोल्लेखनं कर्त्तव्यं पुनर्वयमपि करिष्यामः।

१०. अस्योत्तरन्तु स्वमन्तव्यग्रन्थेष्वागमिष्यति। भवद्भिरपि स्वमन्तव्यवेदभाष्यसंज्ञोल्लेखनीया। न च भवतः प्रतीत्यादि यदुक्तं तत्तुचिन्त्यम्। यतो युष्मत्कृतसर्वेषां प्रश्नानामुत्तराण्यस्माभिर्दत्तानि। परन्त्वस्मत् प्रश्नानामुत्तरमद्यावधि नागतमस्मत्प्रश्नास्तु पूर्वमेव जाता भवत् प्रश्नास्तु पश्चात्। तथाप्युत्तराणि दत्तानि।

१. को नाम वेदः।

२. कियती च वेदस्य संख्या।

३. के के ग्रन्था वेदे सन्निविष्टाः।

४. ईश्वरस्याप्तत्वमस्वीकृत्य याज्ञवल्क्याद्युक्तिबलाद्वेदादिकं प्रमाणत्वेन कथं स्वीक्रियते भवता।

५. 'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः, इत्यादयो मन्त्रा यदीश्वरोक्तत्व–वेदबोधका न भवेयुस्तर्हि भवन्नये एतेषां निरर्थकत्वं युष्मासु नास्तिकत्वं च स्यात्।

६– यदि च परमाप्तोक्तत्वेन ईश्वरोक्तत्वमंगीक्रियते नेश्वरोक्तत्वेन तर्हि स्मृत्यादीना–मपीश्वरोक्तत्वमवारणीयं तेषामपि परमाप्तोक्तत्वेन स्वीकारात्।

७. 'ईश्वरासिद्धेरिति' सूत्रस्याभिप्रायमज्ञात्वैव परमास्तिकस्य कपिलस्य नास्तिकत्वप्रतिपादनम्।

८. 'सुकेशा' इत्यादि ऋषिवचनात् ब्राह्मणभागस्यावेदत्वं स्फुटम्।

९. यदि च मन्त्रभागस्येश्वरोक्तत्वं ब्राह्मणादिभिरेय विदितं स्यात्तर्हि तस्माद्यज्ञादित्यादयो मन्त्राः किमर्था। इति भवन्तः पुनरपि प्रष्टव्याः।

१०. यद्येवं मन्यध्वे तथा ऋग्यजुयोर्भेदोऽस्ति तथैव मन्त्रब्राह्मणयोरपि भेदोऽस्ति तन्न संगच्छते। कुतो? मन्त्र भागस्येश्वरोक्तत्वात्। ब्राह्मणभागस्यानीश्वरोक्तत्वाच्च। नहि चतुर्षु ऋगादिष्वीश्वरोक्तत्वं व्यभिचरति ब्राह्मणेषु तु स्फुटं व्यभिचारित्वमस्ति।

११. तद् ग्रन्थोत्पत्तौ तद्ववचनप्रमाणं यथा श्री भगवानुवाच इत्यादि भगवद्गीतावचनादेव श्रीकृष्णचन्द्रेण गीता निर्मिता इति निश्चीयते।

१२. भागवतादिषु वेदविरुद्धत्वं साधु।

१३. पाषाणाद्यर्चनबोधकवाक्यस्य वेदविरुद्धत्वम्।

१४. मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति वचनबलेन ब्राह्मणभागस्य वेदत्वं साध्यते चेत्तर्हि प्रवचनप्रयोक्तुराप्तत्वं केन निश्चितन्तद् प्रयोक्तुर्वचनैव चेत् तर्ह्यत्माश्रयो यद्यन्येन तर्ह्यन्योन्याश्रयादि।

१५. ब्राह्मणभागस्य ऋष्युक्तपुराणेतिहासवेदव्याख्यानत्वादि सिद्धेऽपि यदि वेदत्वं स्यात्तर्हि भारतगृह्यश्रौतसूत्रादीनामपि वेदत्वं कुतो न स्वीक्रियते।

एतेषामुत्तरं विधेयम्। तथा च भवत् प्रश्नोत्तरेषु यदस्माभिरुक्तं तस्यापीति।

फाल्गुन कृ० ५ सम्वत् १९४५ स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती
ब्रह्मचारी नित्यानन्दाक्षराणि

श्री स्वामी जी के पत्र संख्या–५ का हिन्दी अनुवाद–

अहो! "**बून्दी के पण्डितों की लीला**" सब शिष्ट, आर्य, धार्मिक, रागद्वेष शून्य और नीतिज्ञ विद्वान् देखें। क्योंकि ये "**स्वार्थी किसी दोष की परवाह नहीं करता**" इस न्याय का अनुसरण करके अपने असत्य पक्ष को सिद्ध करने के लिए नास्तिकता स्वीकार कर समस्त आर्यों द्वारा परम पूजनीय वेदों में भी दोष देने के लिए उद्यत हो गए हैं। आपके भेजे गए प्रश्नांकित पत्रों के उत्तर तो हमने दे दिये हैं। फिर भी आप उन्हें देखते नहीं है। कैसे देखें? निरीक्षण तो हृदय के नेत्र खुले बिना हो नहीं सकता। और आपके हृदय के नेत्र तो अवैदिक पथ की वायु से उड़ी हुई परस्पर विरुद्ध वैष्णव, शैव शक्ति तथा गाणपत्य आदि मतों से उत्पन्न पक्षपात आदि रूपी धूलि से निमीलित हैं। "**अपने पूर्व प्रेषित पत्रों में, यहां से लेकर प्रश्न तो स्मरणार्थ पुनः लिखे जा रहे हैं**"[1] तक आपने जो लिखा उसमें आपने कागज और मसी (स्याही) आदि का व्यर्थ ही व्यय किया है। क्योंकि इनका निम्नलिखित प्रश्नों में ही अन्तर्भाव हो जाता है। और आपके प्रश्न[2] भी अनर्थक हैं।

टिप्पणी–

१– देखिये बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या–५,

२– देखिये बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या–५,

क्योंकि हमारे पत्रों में पहले ही इनका समाधान कर दिया गया है। आपके प्रश्नों का पुनः उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी **"मेघ पहिले से जल होने पर भी वर्षा करता है"** इस न्याय का अनुसरण करके आपके प्रश्नों का फिर भी उत्तर दे रहे हैं। पहिले प्रश्न का उत्तर तो **"तस्माद यज्ञात्"** इत्यादि मन्त्रों से और साक्षी के समान ऋषियों के वचन से दे दिया है। जो आपने कहा है कि मन्त्र भाग का ईश्वरोक्तत्व भी ब्राह्मण आदि के वचनों से ही जाना जाता है यह आपका कथन उचित नहीं है। क्योंकि– **"मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है"** इस वचन से दोनों का वेदत्व स्वीकार करके उसी वेद के वचन से वेद का ईश्वरोक्तत्व मानने वाले आप हमारे प्रति आत्माश्रय बताते स्वयं ही आत्माश्रय दोष से कलंकित हो गए हैं। इसी प्रकार अन्योन्याश्रय दोष भी आपके ही मत में है। क्योंकि आपने ही **"पुराणन्याय"** इत्यादि याज्ञवल्क्य स्मृति के वचन के आधार पर वेदों का प्रमाणत्व स्वीकार किया है। तथा स्मृति आदि का प्रमाण सब शिष्टों ने वेदानुकूल होने से ही स्वीकार किया है। जैसा कि मनु ने कहा भी है–

जो वेद से ब्राह्य स्मृतियां और कुदर्शन हैं वे सब इस लोक और परलोक में निष्फल हैं तथा तमोनिष्ठ, अर्थात् अज्ञानजन्य हैं,[1] (इस प्रकार स्मृति प्रामाण्य वेदों के आधार पर और वेदों का प्रामाण्य स्मृति के आधार पर मानना अन्योन्याश्रयदोष होता है)। शारीरिक सूत्र में कृष्णद्वैपायन ने भी कहा है– **"यदि स्वतन्त्रकर्ता परमात्मा और ईश्वराधीन उपादान कारण प्रकृति को पृथक् मानोगे तो स्मृति विरुद्ध होगा,"**[2] क्योंकि किसी किसी स्मृति में ब्रह्म को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहा गया है। यदि ऐसी स्मृतियों के अनवकाश का दोष मानो तो उचित नहीं है। क्योंकि फिर उन स्मृतियों का अनवकाश दोष होगा जिनमें पुरूष को निमित्त और प्रकृति को तदधीन उपादान कारण कहा है। जो आपने कहा कि मन्त्र भाग का ईश्वरोक्तत्व ब्राह्मणादि के वचनों से ही जाना जाता है अतः ब्राह्मण का भी वेदत्व स्वीकार करना चाहिये। यह ठीक नहीं। क्योंकि वेद का ईश्वरोक्तत्व ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों के वचनों से भी जाना जाता है। इसलिये उन्हें भी वेद मानना पड़ेगा।

'युष्माभिः' से प्रारम्भ कर जो आपने द्वितीय प्रश्न किया है उसका भी उत्तर सुनिये। हम सर्व शिष्ट सम्मत ब्राह्मण स्मृति आदि के प्रामाण्य को छोड़ते नहीं हैं। क्योंकि वेदानुकूल होने से हम उनको सर्वथा स्वीकार करते हैं। यह तो आप व्यर्थ में ही हमारे ऊपर दोष लगा रहे हैं। परन्तु जो कुछ वेदविरुद्धता है हम उसे स्वीकार नहीं करते। इसमें प्रमाण मनुस्मृति के– **"या वेदब्राह्याः स्मृतयः"** आदि वचन हैं।

"अर्धजरतीय" न्याय का पुनः पुनः अभ्यास करने वाले आपसे हम कहते हैं– आपने **"पुराण न्याय मीमांसा"** इत्यादि याज्ञवल्क्य के वचन के आधार पर सब पुराणों और स्मृतियों का प्रमाण स्वीकार किया है।

पुराणों में लिखा है– "जो तपे हुए शंखादिके चिन्हों से युक्त शरीर वाला मनुष्य है वह सब पापों को भोगने वाला होता है और करोड़ो जन्म में चाण्डाल होता है।।१।।

लिंग पुराण में कहा है– "ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाए बिना जो यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि किये जाते हैं वे सब व्यर्थ हो जाते हैं"।।२।।

टिप्पणी–

१– देखिये मुनस्मृति अध्याय १२, श्लोक ९५।

२– देखिये वेदान्त दर्शन अध्याय २, पाद १, सूत्र १।

"कृष्णामृतमहार्णव" में कहा है– जो देव नारायण को अन्य ब्रह्म रुद्र आदि देवताओं के साथ देखता है वह सदा पाखण्डी होता है।।३।।

और अधिक क्या कहें ?– "..............जो ब्राह्मण हैं परन्तु वैष्णव नहीं हैं उनको कभी स्पर्श न करना चाहिये, उनसे कभी बोलना न चाहिये और न उन्हें देखना चाहिये"।।४।।

पदम् पुराण में कहा है– "विष्णु के दर्शनमात्र से शिव का द्रोह होता है। शिव के द्रोह से पुरूष, निस्सन्देह, दारुण नरक में जाता है"।।५।।

इत्यादि सभी परस्पर विरोधी और असंगत वचन आपको स्वीकार करने पड़ेंगे क्योंकि अर्धजरतीय न्याय तो आपको स्वीकृत है ही नहीं। उसी प्रकार– 'सत युग में मनु के बताए हुए धर्म हैं। त्रेता में गौतम के बताए हुए द्वापर में शंख के द्वारा लिखे हुए और कलियुग में पाराशर द्वारा प्रतिपादित धर्म माने जाते हैं?[1] इस प्रकार पाराशर के वचन के आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति आदि तो सर्वथा त्याज्य है और कलियुग में मनु आदि के वचनों की व्यर्थता हो जाती है। इसी प्रकार आपके मतानुसार इन सबका प्रमाणत्व भी नहीं बन सकता है। इसी प्रकार की असंगत और अनुचित बातें तन्त्र ग्रन्थों में भी हैं। देखिये–

शिव बोले– 'मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन यह पांच मकार हैं जो कि युग युग में मोक्ष देने वाले हैं।।१।।

और देखिये– 'मातृयोनि को छोड़कर सब योनियों में विहार करें।' लिंग को योनि में स्थापित कर तन्द्रा रहित होकर मन्त्र जप करें।।२।।

माता की योनि भी न छोड़े, इत्यादि सभी बातें आपको स्वीकार करनी होगी। क्योंकि आपके मत में अर्धजरतीय न्याय तो नितान्त अमान्य है। **"मन्त्रभागमात्र का ईश्वरोक्त होना"** आदि जो आपने तृतीय प्रश्न किया है उसका उत्तर भी सुनिये। जैसे कार्य को देखकर कारण का अनुमान किया जाता है वैसे ही सर्व विद्यामय ऋग् आदि चारों वेदों को देखकर ईश्वर की आप्तता का अनुमान किया जाता है। इस प्रकार के सर्वगुणान्वित ऋग्वेदादि रूप शास्त्र का सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी से उद्भव नहीं हो सकता। उस निर्विकार, अज, अनादि, नित्य और सत्य सामर्थ्यवान, ईश्वर की आप्तता सभी आर्य, ऋषि और महर्षियों ने स्वीकार की है। नास्तिकों के अतिरिक्त उसके आप्त होने में कोई सन्देह नहीं करता। **"समस्त शिष्टों से स्वीकृत"** इत्यादि चतुर्थ प्रश्न का उल्लेख नितान्त अनर्थक है क्योंकि हम वेदानुकूल होने पर ब्राह्मण, स्मृति आदि का प्रमाण सर्वदा ही मानते हैं।

अब **"ऋग्, यजुः, साम"** आदि पञ्चम प्रश्न का उत्तर कहा जाता है। जैसे कि **"तस्मात् यज्ञाद्"** इत्यादि मन्त्रों में साक्षात् ऋग्, यजु आदि का नाम दृष्टिगोचर होता है वैसा ब्राह्मण का नाम कहीं नहीं है और ऋग्, यजु आदि के अध्यायों के आदि और अन्त में वेद शब्द के उल्लेख करने का प्रचार है उस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों के आदि और अन्त में वेद शब्द का उल्लेख नहीं किया जाता। वेद शब्द से शिष्ट जनों ने ब्राह्मण का

टिप्पणी–

१– अर्थात् सतयुग में मनुस्मृति, त्रेता में गौतम स्मृति, द्वापर में शंख स्मृति तथा कलियुग में पाराशर स्मृति मान्य हैं।

ग्रहण भी नहीं किया है। इसी प्रकार वर्तमान में भी जब कोई किसी से पूछता है कि आपका कौन सा वेद है? तो वह उसको उत्तर देता है कि हमारा यजुर्वेद है। परन्तु ऐसा कोई नहीं कहता कि हमारा गोपथ ब्राह्मण वेद है। इस प्रकार के व्यवहार से भी ब्राह्मण भाग का अवेदत्व सिद्ध होता है। जो आपने कहा कि आप चुप हो गये। सो वह तो आपका ही चुप हो जाने–निरुत्तर हो जाने का स्वभाव है, हमारा नहीं।

"मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है" इसके औपचारिक होने में हमने कोई प्रमाण नहीं दिया" इसका उत्तर हम कहते हैं। यदि आप यह स्वीकार करते हैं कि ब्राह्मण वेद है ऐसा महर्षियों ने अंगीकार किया है तो हम आपसे पूछते हैं कि क्या महर्षियों ने अवेद (वेदत्व रहित) ब्राह्मणों का वेदत्व स्वीकार किया है। यदि हां तो ब्राह्मण वेद नहीं है यह सिद्ध हो गया और फिर यह अवेद का वेदत्व प्रतिपादन करना स्थाणु (वृक्ष आदि) को पुरूष समझने के समान, जो जैसा नहीं है उसमें वैसी बुद्धि रूप मिथ्या ज्ञान महर्षियों में था ऐसा आपको स्वीकार करना होगा। आदि आप कहे कि जो वेद हैं उन्हीं का वेदत्व प्रतिपादित किया है तो पूर्व ही सिद्ध का साधन करना असत्य है। इस प्रकार महर्षियों के वचन निष्फल हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त जहां वेद का अनादि और अपौरूषेय होना प्रतिपादित किया जाता है, वहां ब्राह्मणों का वेदत्व नहीं हो सकता। इसलिए **"मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है"** इस वचन का औपचारिकत्व हमने प्रतिपादन किया है।

"वेदानुकूलत्व क्या है?" इसके उत्तर में हम कह चुके हैं कि वेद के अविपरीत अर्थ की बोधकता ही वेदानुकूलता है।

वेदप्रामाण्य में स्वतरत्त्व क्या है? इसके विषय में हम कह चुके हैं कि ईश्वरोक्त होने के कारण सर्वदा स्वाधीन प्रमाणता ही **"स्वतरत्त्व"** है। **'पुराण न्याय मीमांसा'** इत्यादि श्लोक के द्वारा अपने मन्तव्य का लेख करने पर भी, इत्यादि प्रश्न का उत्तर कहते हैं। आपने जो **"पुराणेत्यादि"** श्लोक कहा हैं। उसके कहने से आपके मन्तव्य सब ही ग्रन्थों का ज्ञान नहीं होता। अतएव जो आपकी मन्तव्य पुस्तकें हैं उन सबका उल्लेख करना चाहिये। जिसका आप उल्लेख नहीं करेंगे, उस ग्रन्थ का प्रमाण्य नहीं होगा। हमने तो विज्ञापन पत्र में पहिले ही प्रतिपादित किया था। कि दोनों पक्ष वालों को अपने मन्तव्य ग्रन्थों का उल्लेख करना चाहिये। उसके पश्चात् शास्त्रार्थ करना चाहिये। आपने इसको स्वीकार करके भी प्रकरणान्तर का विचार प्रारम्भ कर दिया। अतः प्रतिज्ञा हानि होने से यह आपके लिए निग्रह स्थान है। अब आपको अपने मन्तव्य के सभी ग्रन्थों का नामोल्लेख करना चाहिये। फिर हम भी अपने मन्तव्य ग्रन्थों को लिखेंगे।

इस दशम प्रश्न का उत्तर तो स्वमन्तव्य ग्रन्थों के नामोल्लेख में आजावेगा। आपको भी अपने मन्तव्य वेदभाष्य का नाम लिखना चाहिये। **"आप ऐसा तो कह नहीं सकते"** इत्यादि जो आपने कहा वह भी चिन्तनीय है क्योंकि आपके किये सभी प्रश्नों के उत्तर तो हमने दे दिये हैं परन्तु हमारे प्रश्नों का उत्तर अभी तक नहीं आया है। वास्तव में हमारे प्रश्न पहिले हुए थे और आपके बाद में। फिर भी हमने उनके उत्तर दे दिये हैं।

वेद क्या है ?

वेदों की संख्या कितनी है ?

वेद में किन किन ग्रन्थों का समावेश आप करते हैं?

ईश्वर का आप्तत्व मानकर याज्ञवल्क्य आदि के वचनों के बल पर वेद आदि का प्रमाणत्व आप कैसे स्वीकार करते हैं?

"तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः" इत्यादि मन्त्र आदि ईश्वरोक्तत्व और वेद के बोधक नहीं है तो आपके मत में इन मन्त्रों की निरर्थकता हो जावेगी और आप में नास्तिकत्व सिद्ध होगा। यदि परम आप्तोक्त होने से ईश्वरोक्त होना आप मानते हैं और ईश्वरोक्त होने से नहीं तो स्मृति आदि का ईश्वरोक्त होना अवारणीय होगा क्योंकि आप परम आप्तोक्त होने से ऐसा स्वीकार करते हैं।

"ईश्वरासिद्धेः" इस सूत्र के अभिप्राय को न जानकर आपने परम आस्तिक कपिल मुनि को नास्तिक बताया है।

"सुकेशा" इत्यादि ऋषियों के वचन ब्राह्मणों में होने से ब्राह्मणों का वेद न होना स्पष्ट है।

यदि मन्त्र भाग की ईश्वरोक्तता ब्राह्मण आदि के द्वारा ही जानी जाती है तो फिर **"तस्माद् यज्ञाद्"** इत्यादि मन्त्रों का क्या प्रयोजन है? यह हम आपसे फिर भी पूछते हैं। यदि आप ऐसा मानते हैं कि ऋग् और यजुः आदि का जैसा भेद है वैसा ही भेद मन्त्र और ब्राह्मण में भी है तो वह असंगत है क्योंकि मन्त्र भाग तो ईश्वरोक्त है और ब्राह्मण भाग अनीश्वरोक्त है। चारों ऋग् आदि वेदों में ईश्वरोक्तत्व का व्यभिचार नहीं है परन्तु ब्राह्मणों में तो स्पष्ट ही व्याभिचार है। किसी ग्रन्थ की उत्पत्ति में उस ग्रन्थ का वचन प्रमाण होता है। जैसे कि गीता में **"श्री भगवान् बोले"** इत्यादि वचनों के होने से ज्ञात होता है कि गीता श्रीकृष्णचन्द्र जी ने बनाई।

भागवतादि में वेद विरुद्धत्व जो हमने बताया है वह ठीक ही हैं

पाषाण पूजा आदि बताने वाले वाक्य वेद विरुद्ध हैं।

"मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है।" इस वचन के आधार पर ही ब्राह्मण का वेदत्व आप सिद्ध करते हैं तो उस वाक्य के वक्ता का आप्तत्व कैसे और किस के द्वारा निश्चित करते हैं? यदि उस वक्ता के वचन के आधार पर ही तो इसमें आत्माश्रय दोष आता है यदि दूसरे के आधार पर तो अन्योन्याश्रय आदि दोष आते हैं। ब्राह्मण भाग का ऋषि कथित होना पुराण, इतिहास और वेद–व्याख्यान होना सिद्ध होने पर भी यदि आप उनको वेद मानें तो भारत, गृह्य सूत्र और श्रोत आदि का वेद होना भी क्यों नहीं स्वीकार करते? कृपया इनका उत्तर दीजिये और आपके प्रश्नों के उत्तर में जो हमने कहा है उसका भी उत्तर दीजिये।

फाल्गुन कृ० ५ सम्वत् १९४५ **स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती**
ब्रह्मचारी नित्यानन्द के अक्षर

बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या ६–

अहो, धृष्टानां वेदाश्रयणमिषेण विप्लावितवेदोक्त–व्यवस्थित–धर्माणामस्मत् प्रश्नार्थमबुद्ध्वा वृथाडम्बरशाल्यशुद्धतमलेखपूरित प्रलम्बपत्राणां गर्जनम्। अस्माभिर्ये प्रश्नाः कृतास्तेषामुत्तराणि युष्माभिः

सम्यङ् न दत्तान्येव अतो नास्माभिर्भवादृशैः पाखण्डिभी रोगव्यपदेशार्हसन्यासवेषैः सह भाषणादि कर्त्तव्यम्।

यावदस्मत् प्रश्नानामुत्तराणि युष्माभिर्नदत्तानि तावत्सुगमतमानामपि युष्मत् प्रश्नानामुत्तराण्यस्माभिर्न देयान्येव। अक्षराण्याचार्य नवनन्द शर्मणः गंगासहायाक्षराणि सम्मतिद्योतकानि सममान्ययमर्थो व्यासहरिदासेन श्री निवास ताताचार्यः।।

इत्यायुर्वेदाचार्याऽयुर्वेदशिरोमणि प्रतिष्ठितस्नातकाद्युपपदधारिणा वैद्य श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठिनाऽर्यभाषायामनूदितो "बून्दी शास्त्रार्थः" समाप्तः।

बून्दीस्थ पण्डितों का पत्र संख्या ६–

अहो! हमारे प्रश्नों के अर्थ को न जानकर, वेद के आश्रय के बहाने वेदोक्त व्यवस्थित धर्म को विप्लावित करने वाले धृष्टजनों के वृथा आडम्बरशाली, अशुद्धतम लेख पूरित लम्बे लम्बे पत्रों का यह गर्जन !

हमने जो प्रश्न किये थे उनके उत्तर तो आपने अच्छे प्रकार दिये ही नहीं हैं। इसलिये हमको आप जैसे पाखण्डी, रोग नाम से सम्बोधन योग्य सन्यास वेष को धारण करने वाले जनों से भाषण आदि नहीं करना चाहिये। जब तक हमारे प्रश्नों का भी उत्तर नहीं देते तब तक आपके सुगमतम प्रश्नों का भी उत्तर हम नहीं देंगे। अक्षर आचार्य नवनन्द शर्मा के समक्ष द्योतक अक्षर गंगासहाय के व्यास हरिदास ने यह अर्थ माना।

आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद शिरोमणि प्रतिष्ठित स्नातक वैद्य श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी द्वारा आर्य भाषा में अनुदित किया गया।

"श्री निवास ताताचार्य"

"बून्दी शास्त्रार्थ समाप्त"

❀ ❀ ❀

एक सौ बाईसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान	:	(चरखी) दादरी–(भिवानी) हरियाणा
दिनांक	:	२८ अप्रैल सन् १९८६ ई०
विषय	:	परमेश्वर निराकार है या साकार ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री "विद्याभास्कर"
सहायक	:	१. शास्त्रार्थ महारथी पूज्य अमर स्वामी जी महाराज २. श्री पण्डित सुदर्शनदेव जी, ३. श्री पं० राजवीर जी शास्त्री, ४. श्री सत्यवीर जी शास्त्री, आदि
पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री
सहायक	:	१. श्री पं० वीराचार्य जी २. श्री पं० देवदत्तजी शुक्ल, आदि
शास्त्रार्थ के मध्यस्थ	:	श्री डा० प्रेमानन्द जी,

नोट– यह सामग्री **"दयानन्द सन्देश"** जून १९८६ ई० के अंक से ली गयी है।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

पाठकों को अभी विस्मरण नहीं हुआ होगा कि कुछ वर्ष पूर्व आर्यपुरा (सब्जी मण्डी) दिल्ली में पौराणिक तथाकथित शास्त्रार्थ महारथी श्री प्रेमाचार्य जी शास्त्री के साथ आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान शास्त्रार्थ केशरी श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज का शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें भरी सभा में ये पण्डित प्रेमाचार्य जी झूठ बोलते हुए, तथा नकली पुस्तक का प्रमाण देते हुए और एक जिल्द में दो किताबें रख कर, पुस्तक का नाम कुछ और उद्धरण दूसरी पुस्तक का पढ़ते हुए पकड़े गये थे। पुनरपि मुख पर लेश मात्र भी शर्म नहीं थी। वे ही पण्डित जी महाराज २८ अप्रैल सन् १९८६ ई० के दिन दादरी (भिवानी) की आर्य समाज के तीन दिन के उत्सव की समाप्ति के बाद उत्सव स्थल पर शास्त्रार्थ की चुनौति को स्वीकार कर जा धमके। यद्यपि वे यह सोचकर विलम्ब से गये थे कि विद्वान उपदेशक तो विदा हो गये होगें। अतः शास्त्रार्थ कौन करेगा ? किन्तु उन्हें क्या पता था कि शास्त्रार्थ का अखाड़ा ही जुड़ जायेगा। दादरी आर्य समाज के अधिकारियों ने साहस और सूझ के साथ शास्त्रार्थ का समय अगले दिन निश्चित्त करके अपने विद्वानों को लाने के लिए गाड़ियां भेज दी। क्योंकि यह आर्य समाज की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। अगले दिन शास्त्रार्थ का विषय निश्चित्त करने के लिए आर्य समाज के दो विद्वान पं० प्रेमाचार्य के पास गये और विषय का निर्धारण करके नगर में घोषणा करा दी गई। शास्त्रार्थ के समय तक अनेक विद्वान सभा स्थल पर पहुंच गये थे। **"यह शास्त्रार्थ श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री "विद्याभास्कर" (खतौली निवासी) तथा श्री पण्डित प्रैमाचार्य जी शास्त्री के मध्य हुआ, जिसमें शास्त्रार्थ महारथी वयोवृद्ध पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज (पूर्व नाम श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी) तथा श्री पं० सुदर्शनदेवजी व श्री पं० राजवीर शास्त्री व श्री सत्यवीर शास्त्री आदि आर्य मञ्च पर सहायक रूप में आसीन रहे"।**

और विपक्ष के मञ्च पर **"श्री पण्डित वीराचार्य जी, श्री पण्डित देवदत्त जी शुक्ल आदि विद्वान आसीन थे"**। शास्त्रार्थ की व्यवस्था चलाने के लिए दोनों पक्षों के विद्वानों ने **"श्री डा० प्रेमानन्द जी को शास्त्रार्थ का मध्यस्थ बनाया"** और शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

किन्तु शास्त्रार्थ की घोषणा होने पर पौराणिक मंच से अनेक बाधाएं उपस्थित की गई, जैसे शास्त्रार्थ का विषय जो दिन में निश्चित्त किया गया था, क्योंकि वह मौखिक ही था, उससे सर्वथा मुकर जाना, बार–बार शास्त्रार्थ संस्कृत में करने का आग्रह करना आदि–आदि। किन्तु जनता जनार्दन के समक्ष प्रतिपक्षी विद्वान पलायन का बहाना कैसे कर सकते थे ? और उन्हें विवश होकर शास्त्रार्थ प्रारम्भ करना ही पड़ा। सर्वप्रथम बोलने का समय श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी को दिया गया और उसके बाद क्रमशः चलता रहा। आप भी इस विवरण को पढ़ कर सत्यासत्य का निर्णय करें।

विदुषामनुचरः–

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

(१) **त्रयम्बकं यजामहे**..................(यजुर्वेद) (२) **प्रजापतिश्चरति**...........................**गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते**................तथा (३) **यस्य पृथिवी शरीरम्**..........................इत्यादि।।

नोट–

यहां केवल प्रमाण ही छपे हुए मिले, पूरा पाठ नहीं, अतः प्रमाण ही उद्धृत करने पड़े, मगर सम्पूर्ण वार्ता व पाठ होता तो ज्यादा अच्छा रहता। **(सम्पादक)**

श्री पण्डित ओ३मप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

इन मन्त्रों को ध्यान से पढ़ा जाये तो कोई भी निष्पक्ष विद्वान इन मन्त्रों से साकारवाद को सिद्ध नहीं कर सकता, "**प्रजापतिश्चरति**................" मन्त्र में तो प्रभु को स्पष्ट रूप से ही "**अजायमानः**" (जन्म न लेने वाला) कहा गया है। महिधर आदि ने भी ऐसी ही व्याख्या की है। "**त्रयम्बकं यजामहे**......" का त्रिनेत्रधारी अर्थ किसी शास्त्रीय प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है और पृथ्वी आदि के शरीर या सूर्य चन्द्र के चक्षुतुल्य बताना तो ईश्वर के साकारवाद को सिद्ध नहीं करता है। ये तो परमात्मा की सर्वव्यापकता, रचना, चातुर्य तथा महत्ता को ही सिद्ध करते हैं।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

जो मूर्ति पूजा नहीं करते हैं केवल निराकार की भक्ति आंखे बन्द करके मन से करते हैं उन्हें गीता में "**मिथ्याचार**" कहा है। देखिये– "**कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा चरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढ़ात्मा "मिथ्याचारः" स उच्यते**।। (गीता, ३–६)

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

विद्वान का कर्त्तव्य तो यह है कि वह सत्य अर्थों का जनसाधारण में प्रकाश व शिक्षा का प्रसार किया करें, किन्तु जिसका कार्य ही जीवन भर यह रहा हो कि किसी भी प्रकार से जनता को मूर्ख बनाकर स्वार्थ–साधन करते रहना चाहिये। भला वह गीता को परम पवित्र मान कर भी उसका कैसे सत्यार्थ कर सकता है ? इस श्लोक की व्याख्या भी लोगों की आंखों में धूल झोंकने के लिए उल्टी ही की है। इस श्लोक का अर्थ एक सामान्य संस्कृतज्ञ भी जान सकता है पुनरपि यहां जान बूझकर अनर्थ किया गया है। क्या ऐसे आत्म हनन करने वालों की कभी अच्छी गति हो सकती है ? ऐसे व्यक्ति– "**असूर्या नाम ते लोकाः**.................... **ये के चात्महनो जनाः**।" (यजुर्वेद) वेदमन्त्र के अनुसार नरकगामी होते हैं। गीताके श्लोक में तो उसको मिथ्याचारी कहा है कि जो इन्द्रियों का संयम करके बैठ तो गये हैं, किन्तु मन वश में नहीं हैं, उससे इधर–उधर गति करते रहते हैं। बताइये इसमें निराकार ब्रह्म की सन्ध्या में आसीन उपासक का उपहास कहाँ है ? इसके विपरीत गीता ही अवतारवादी मूर्ति पूजकों को मूढ़ कहकर धिक्कार रही है, यथा– "**अवजानन्ति**

मां मूढ़ा मानुषी तनु माश्रितम्" ।। (गीता, ६–११) ।। अर्थात् परमेश्वर के स्वरूप को न जानने वाले वे मूढ़ लोग भगवान का अपमान करते हैं, जो भगवान को शरीरधारी मानकर भक्ति करते हैं और उपासना की सत्य पद्यति का निर्देश करते हुए, गीता में लिखा है– "**सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरूध्य च**" (गीता, १–१२) तथा "**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्**" ।। (गीता, ८–१३) अर्थात् नेत्र आदि समस्त इन्द्रियों को ब्रह्म विषयों से रोककर, मन को हृदयस्थ, जीवात्मा–परमात्मा के मिलन केन्द्र में परमात्मा की भक्ति में लगाकर "**ओ३म्**" शब्द का उच्चारण करते हुए परमेश्वर का ध्यान किया करें।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

परमेश्वर सर्वव्यापक है, यह बात आर्य समाज भी मानता है, अतः मूर्ति में परमेश्वर है फिर उसकी उपासना का खण्डन क्यों करते हो ?

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

यह तो सत्य है कि, सर्वव्यापक होने से परमेश्वर मूर्ति में भी है, परन्तु उपासना का स्थान वहीं हो सकता है जहां उपासक तथा उपास्य का सान्निध्य होता है। क्योंकि मूर्ति में उपास्य तो है, उपासक नहीं, अतः मूर्ति उपासना का साधन नहीं हो सकती। परमात्मा तो सर्वत्र व्यापक है। उससे मिलन जीवात्मा के निवास स्थान हृदय में ही हो सकता है, क्योंकि हृदय में ही उपासक का सान्निध्य अपने उपास्य से सम्भव है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

स्वामी दयानन्द ने भी यद्यपि अनेक स्थानों पर मूर्ति पूजा का खण्डन किया है, किन्तु अपनी पुस्तक आर्याभिविनय में मूर्ति पूजा को माना भी है। इसकी पुष्टि– "**वायवायाहि दर्शते में सोमाअलंकृताः**" (ऋग्वेद, १–१–३–१) इस मन्त्र की व्याख्या से मूर्ति पूजा सिद्ध होती है, देखिये– हे अनन्तबल परेश वायो दर्शनीय ! हम लोगों ने अल्प शक्ति से सोमवल्ली आदि औषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिए अलंकृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं। और वे सब आपको समर्पण किये गये है, उनको आप स्वीकार करो। (सर्वात्मा से पान करो) इस व्याख्या से स्पष्ट है कि, सोम आदि का रस परमात्मा पीता है। और यह पान क्रिया बिना मुख आदि शरीरावयवों के बिना नहीं हो सकती, अतः परमेश्वर का अवतार व मूर्तिपूजा स्वामी दयानन्द जी के अनुसार भी सिद्ध होती है।

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

मेरे भाई पूर्व पक्षी शास्त्रार्थ में अनेक बार इस मन्त्र व्याख्या को प्रस्तुत करते रहे हैं, किन्तु वे स्वामी दयानन्द की भाषा शैली को न समझकर जनसाधारण में भ्रान्ति पैदा करने का साहस मात्र ही कर रहे हैं। यथार्थ में इस मन्त्र व्याख्या से यह भाव कदापि नहीं निकलता है इसके निम्नलिखित कारण हैं–

(१) इस व्याख्या में लिखा है– "**सर्वात्मा से पान करो**" क्या कभी सर्वात्मा से पान करना सम्भव हैं ? यदि पीना ही अर्थ माना जाये तो पीना तो मुख से होता है, अतः धात्वर्थों को अनेकार्थक मानकर यहां "**पान करो**" का अर्थ स्वीकार करना है, और यह भी भक्त की उत्कृष्ट दशा का सूचक है कि जिससे भक्त अपने समस्त कर्मों को निरपेक्ष होकर ईश्वरार्पण करके करता है।

(२) महर्षि की भाषा को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों को भी समझना चाहिये। महर्षि के

समय हिन्दी भाषा का यह स्वरूप कहां था ? जिसे हम आजकल व्यवहार में लाते हैं। महर्षि ने तो संस्कृत का आश्रय करके हिन्दी भाषा लिखी इसीलिये महर्षि की भाषा में विधि, अग्नि, वायु इत्यादि शब्दों का प्रयोग संस्कृत के अनुसार ही हुआ है जैसे संस्कार का विधि लिखा जाता है, **"अग्नि जलता"** हैं इत्यादि।। यदि कोई व्यक्ति पूर्वोक्त वाक्यों को आधुनिक हिन्दी के आश्रय से गलत बताने का साहस करने लगे तो यह उसकी महाभ्रान्ति ही होगी।

इसी प्रकार स्वामी जी की भाषा में प्रेरणार्थक क्रियाओं को अप्रेरणार्थक क्रियाओं की भाँति भी प्रयोग किया गया है। जैसे ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्रों की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं– **"जो (भद्रम्) कल्याण कारक, गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको प्राप्त कीजिये"**। जैसे इस मन्त्र की व्याख्या में **"कीजिये"** का अभिप्राय **"कराईये"** है, अन्यथा मन्त्रार्थ संगति नहीं लग सकती। वैसे ही पूर्वोक्त मन्त्र व्याख्या में भी **"पान करो"** का आशय **"पान कराईये"** है। इस महर्षि की भाषा के प्रवाह को न समझकर ही पूर्वपक्षी ने महर्षि पर मिथ्या आक्षेप किया है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि के चूड़ाकर्म संस्कार में **"शिवो नामासि........."** (यजुर्वेद, ३–६) मन्त्र का विनियोग किया है। इस मन्त्र की व्याख्या एक आर्यसमाज के महान पण्डित श्री रामगोपाल जी विद्यालंकार ने की है कि– **"हे उस्तरे ! तुझे नमस्कार हो"**। इत्यादि, यदि आर्यसमाजी जड़ उस्तरे की पूजा कर सकते हैं तो उन्हें मूर्तिपूजा पर आपत्ति क्यों हैं ?

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

आर्यसमाज वेदों को स्वतः प्रमाण निभ्रन्ति ज्ञान मानता है। उन पर लिखी गई ऋषियों की ही व्याख्या को प्रामाणिक मानता है। इसलिए पण्डित रामगोपाल की मन्त्र व्याख्या हमारे लिए प्रमाण नहीं है। इस मन्त्र की व्याख्या महर्षि दयानन्द ने इस प्रकार की है जिसमें जड़ उस्तरे से लेशमात्र भी प्रार्थना नहीं की है। अतः जड़ पूजक पौराणिकों का आर्यसमाज पर आक्षेप निराधार है। महर्षि की व्याख्या देखिये– **"हे (रुद्र) ईश्वर ! वा उपदेशक ! आप (स्वाधितिः) अमर होने से वज्रमय (असि) हो और जो (ते) आपका (शिवः) मंगल स्वरूप ज्ञानमय विज्ञान देने वाला (नाम) है, सो आप मेरे (पिता) पालक हो (तो) आपको (नमः अस्तु) नमस्कार हो"**।

और यदि मन्त्र विनियोग को देखकर भी मन्त्रार्थ किया जाये, तो भी जड़ पूजा सिद्ध नहीं होती। जो व्यक्ति वेद की काव्यमयी भाषा से अनभिज्ञ है, वह ऊटपटांग अर्थ करके आर्य समाज पर आक्षेप करे तो वह प्रमत्त प्रलाप ही समझना चाहिये। क्योंकि वह लौकिक व्यवहार से भी अनभिज्ञ है। हम नगर में जाकर प्रतिदिन यह व्यवहार देखते हैं कि रिक्शावाले को रिक्शा शब्द से ही पुकारते हैं। और रिक्शा वाला आ जाता है। साहित्य में भी– **"मञ्चाः क्रोशन्ति"** वाक्य से मचान पर बैठे व्यक्ति के आक्रोश का आशय ही लिया जाता है। इसी प्रकार चूड़ाकर्म में उस्तरे से अभिप्राय उस्तरा धारण करने वाले नापित (नाई) से ही प्रार्थना की जाती है। तुम इस और कर्म में अतीव दक्ष हो, तुम इस बालक का क्षौर कर्म बहुत ध्यान से करो, हम आपका अन्नादि देकर सत्कार करते हैं इत्यादि।

नोट–

इस प्रकार महर्षि दयानन्द कृत मन्त्र व्याख्या से जड़ पूजा का सर्वथा निराकरण करने पर भी पूर्व पक्षी बार–बार इसी बात की आवृत्ति करता रहा, जिसका श्रौताओं पर प्रभाव बहुत बुरा हुआ, और यही कहते सुने गये कि यह कैसा विद्वान है ? इसे तो कुछ आता ही नहीं।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

परमात्मा के साकार और निराकार दो रूप हैं। इसमें एक अन्य प्रमाण देखिये– **"द्वेवाव ब्रह्मणों रूपे मूर्त्तंचैवामूर्त्तं च"** अर्थात ब्रह्म के मूर्त्त–साकार और अमूर्त्त–निराकार दो रूप हैं। इसलिए मूर्तिपूजा वेदोक्त है।

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

यह भी जन साधारण को धोखे में रखने के लिए छलपूर्ण प्रमाण दिया गया है। प्रथम तो यह प्रमाण इसलिए सत्य नहीं है कि जब प्रथम ही निश्चय किया गया था कि अपने–अपने पक्ष में वेद के ही प्रमाण देने हैं। किन्तु यह बृहदारण्यकोपनिषद का उद्धरण दिया गया हैं और इसकी भी व्याख्या प्रकरण को सर्वथा तिलाञ्जली देकर की गई है। यहां प्रकरण परमात्मा का नहीं है। देखिये– (पूर्वापर की संगति)–

"द्वे वा ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तंचैवामूर्त्तं च..............................."।।
"तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद् वायोश्चान्तरिक्षाच्च......................"।
"अथा मूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं च.."। (बृहदारण्यकोपनिषद, ३–१)

यहां पर प्रकरण के अनुसार जगत् का वर्णन है। यह जगत पंच भौतिक है। और इन पंचभूतों में भी यह क्रम है कि जो जिससे सूक्ष्म है, उसका गुण स्थूल में आता है। दृश्य पदार्थों में रूप–गुण, अग्नि का है, वह उसके स्थूल जल और पृथ्वी में हैं इसीलिए रूप, गुण–वाले होने से , अग्नि, जल और पृथ्वी मूर्त्तरूप है, और आकाश, वायु, अमूर्त्त है। इस वाक्य को ईश्वर के साकार रूप की पुष्टि में बोलना सर्वथा ही असंगत होने से मिथ्या है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

वेदों में परमेश्वर का साकार वर्णन अनेक स्थानों पर किया गया है, पुनरपि वेदोक्त बातों को आर्य समाजी स्वीकार न करें तो हम उन्हें क्या कह सकते हैं ? देखिये वेद में एक मन्त्र आया है।–

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः।। (अथर्ववेद, ११–२–५)

इस मन्त्र में परमेश्वर के साकार रूप का वर्णन किया गया है। क्योंकि त्रिनेत्रधारी पशुपति शिवजी के मुख को नमस्कार किया गया है।

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री, विद्याभास्कर–

इस मन्त्र की भी भ्रान्त व्याख्या की गई है। क्योंकि इस मन्त्र का जो देवता है उसी देवता के अन्य मन्त्रों

में से एक मन्त्र में "**भवाशर्वौ**" – "**भूतपति**" – "**पशुपति**" (अथर्ववेद, ११–२–१) "**द्विवचनान्त**" के प्रयोग मिलते हैं, जिससे स्पष्ट है कि लोक में शिव के वाचक "**भव, शर्व,**" शब्द वेद में एक शिव के लिए नहीं है। और (अथर्ववेद–११–२–३) मन्त्र में "**सहस्त्राक्षाय**" पद त्रिनेत्रधारी शिव जी का खण्डन करता है, और सर्वव्यापक प्रभु कभी दुःखी नहीं होते। वे तो सर्वदा आनन्द स्वरूप हैं, किन्तु इसी सूक्त के– इसी मन्त्र में "**क्रन्दाय**" पद रुद्र के लिए आया है, जिससे स्पष्ट है कि ये विशेषण रुद्र के नहीं हैं। अपितु भक्त अपने क्रन्दन–दुःखद कार्यों से निवृत्ति के लिए रुद्र–ईश्वर से प्रार्थना करता है पूर्व पक्षी के द्वारा उद्‌धृत मन्त्र का सत्य अर्थ इस प्रकार है– "हे **(पशुपते)** समस्त देखने वाले प्राणियों के रक्षक ! **(भव)** हे समस्त सुखों के उत्पादक परमेश्वर ! हमारे जो **(यानि चंक्षूषि)** ज्ञान के साधन हैं उनके लिए **(त्वचे)** त्वचा के लिए **(रूपाय)** सुन्दरता के लिए **(संदृशे)** अच्छे रूप वाले स्वास्थ्य के लिए **(प्रतीचीनाय)** हमारे पीछे अर्थात् परोक्ष में भी रक्षा करने के लिए और **(मुखाय)** मुख के तुल्य विद्वान ब्राह्मणों की रक्षा के लिए **(ते नमः)** आपको नमस्कार करते हैं"।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

शतपथ में महावीर की मूर्ति का मिट्टी से बनाने का विधान किया है जिससे स्पष्ट है कि मूर्ति पूजा करना शास्त्रोक्त है।

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

शतपथ ब्राह्मण में महावीर नामक यज्ञ का पात्र मिट्टी से बनाना लिखा है। परमेश्वर की मूर्ति का नहीं, इसका प्रतिपक्षी कुछ भी उत्तर न देकर केवल बार–बार यही कहता रहा कि यह कौन सा यज्ञ पात्र होता है ? स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि में यज्ञ के पात्रों का विवरण दिया हैं। उनमें से कौन सा महावीर पात्र होता है ? आप देख सकते हैं।

नोट–

परन्तु यह मुख्य विषय से पलायन मात्र ही था कि यज्ञ पात्र के निर्माण की बात को लेकर परमेश्वर की मूर्ति की भ्रान्ति फैलाना। क्या विद्वान पुरुषों का यही कर्म रह गया है ? कि वे स्वार्थ पूर्ति के निमित्त विद्या के प्रकाश को भ्रान्ति जाल की मिथ्या मेघमाला से ढ़कते फिरें ? क्या ऐसे व्यक्ति अधशंसी होने से सत्पुरूष कहलाने के योग्य हो सकते हैं ? क्या वे मिथ्या भाषण करके परमात्मा के न्यायालय से मिलने वाली दुःखद योनियों से त्राण पा सकेगें ?

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

स्वामी दयानन्द ने भी कमर की रीढ़ की हड्डी में ध्यान लगाने की बात लिखी है। इस मांस रूधिर से लिप्त हाड़ में ध्यान लगाने से तो हमारी मूर्ति पूजा ही अच्छी है। क्योंकि ये दोनों ही जड़ हैं। अतः जो स्वयं जड़ की पूजा करते हैं उन्हें दूसरे मूर्ति पूजकों के खण्डन करने का कोई अधिकार नहीं है।

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री, विद्याभास्कर–

यहां पर पूर्व पक्षी ने धोखा देने का ही साहस किया है। "**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा**" (योग दर्शन) इस सूत्र के अनुसार योग साधना करने वाले साधक को ध्यान और समाधि से पूर्व धारणा करनी होती है। और यह धारणा शरीर के अन्दर ही नाभि, मस्तक, नासिका प्रमाण इत्यादि स्थानों पर की जाती है, शरीर से बाहर

नहीं। और धारणा का अभ्यास परिपक्व होने पर ध्येय–परमेश्वर में निर्विषय होकर मग्न होना ध्यान कहलाता है, अतः धारणा को ही ध्यान कहना सर्वथा अल्पज्ञता एवं भ्रान्ति जनक हैं।

यदि पूर्व पक्षी यही आग्रह करे कि रीढ़ की हड्डी में धारणा करना जड़ पूजा ही है। प्रथम तो यह बात सर्वथा अव्यवहारिक है कि कोई व्यक्ति अपनी रीढ़ की हड्डी को देख सके, और जब भक्त ऐसा कदापि नहीं कर सकता तो इसकी ऐसी संगति लगाना प्रसंग विरूद्ध है। इन्द्रियों का ब्राह्य विषयों से संयम करके शरीर के अंतर्गत ही किसी स्थान पर मन को एकाग्र करने की बात योगदर्शनकार ने कही है। स्वामी दयानन्द ने भी वही बात लिखी है। अतः स्वामी जी के लेख से मूत्ति पूजा कदापि सिद्ध नहीं होती है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री–

आपने हमारे किसी भी प्रश्न का यथोचित्त उत्तर नहीं दिया। **"न तस्य प्रतिमा अस्ति....."** में साफ लिखा है कि मूर्ति पूजा वेदोक्त है, अन्य प्रमाण भी हमारे ज्यों के त्यों हैं। पहले उनका उत्तर देने की कृपा करें।

श्री पण्डित ओ३म्प्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

यह तो सत्य है कि– **"प्रतिमा"** शब्द के मूर्ति से भिन्न तोलने या नापने के साधनों (सेर, पसेरी, किलोग्राम आदि) को भी प्रतिमा कहते हैं, यथा– **"प्रतिमीयते यथा सा प्रतिमा"** अर्थात् प्रमाण या परिमाण जिससे किया जाये उसे प्रतिमा कहते हैं, इसीलिए मनु ने **"प्रतिमानां च भेदकः.........."** कहकर तोलने आदि के साधनों में गड़बड़ी करने वालों को दण्ड देने का विधान किया है। परन्तु अनेकार्थक शब्द प्रसंग में आकर अनेकार्थक नहीं होते।– **"न तस्य प्रतिमाऽअस्ति............"** (यजुर्वेद–३२–३) मन्त्र का देवता **"परमात्मा"** है, अतएव ईश्वर विषयक व्याख्या की ही संगति होती है। देखिये इस मन्त्र की महर्षि दयानन्द कृत व्याख्या–

"(तस्य) परमेश्वरस्य (प्रतिमा) प्रतिमीयते यथा तत्परिमापकं सदृशं तोलन साधनं प्रतिकृतिशकृतिर्वा (न अस्ति) न वर्त्तते"। अर्थात्– उस परमेश्वर की प्रतिमा अर्थात् नापने वाली, उसके सदृश प्रतिकृति–मूर्ति अथवा आकृति नहीं है। (महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य) अतः प्रतिपक्षी विद्वान ने महर्षि की व्याख्या कहकर इस मन्त्र के विषय में जो भ्रान्त विचार रक्खे हैं, वे **"कहीं की ईंट तथा कहीं का रोडा"** के समान असंगत एवं मिथ्या हैं।

"उपसंहार"

श्री राजवीर जी शास्त्री–

शास्त्रार्थ के उपर्युक्त कतिपय संस्मरणों से स्पष्ट है कि, प्रतिपक्षी विद्वान श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी अपने पक्ष के पोषण में वैदिक प्रमाणों के अभाव में इधर–उधर भटकते हुए उन्हीं पुरानी घिसी–पिटी असंगत, मिथ्या एवं अवैदिक बातों को ही बार–बार अपने स्वभावानुरूप बोलते रहे, जिससे श्रौताओं पर अच्छा प्रभाव तो क्या पड़ना था, प्रत्युत यही कहते हुए लोगों को सुना गया कि जो व्यक्ति वेद के नाम पर झूठे प्रमाण देकर जन–साधारण में भ्रान्तियां ही पैदा करता है वह क्या विद्वान कहलाने योग्य है ?

मूर्ति पूजा या ईश्वर का साकारवाद एक अतीव विवादास्पद विषय आस्तिकों में है किन्तु यदि वेद शास्त्रों के प्रमाणों पर गम्भीरता से विचार किया जावे तो साकारवाद स्वतः ही धराशाही हो जाता है। उपासना के प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य योग शास्त्रकार ने उपासना के क्षेत्र में सबसे बड़ी बाधा अविद्या को माना है। और

अविद्या के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– जो व्यक्ति अनित्य पदार्थों में नित्य बुद्धि तथा अनात्मा–जड़ वस्तु में चेतन बुद्धि रखता है, वह अविद्या से कभी नहीं छूट सकता है, तथा ईश्वर भक्ति का पात्र भी नहीं बन सकता, **"अतः जड़ मूर्ति में ईश्वर की भावना करना सबसे बड़ी अविद्या है"**।

ईश्वर उपासना के क्षेत्र में मूर्ति पूजा की धारणा ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को न समझने के कारण फैली है, यजुर्वेद में (४०–८) ईश्वर के स्वरूप पर विशद विचार किया गया है। जैसे– **"स पर्यगात्"** वह ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। **"अकायम"** वह ईश्वर स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण शरीरों से रहित है। **"अव्रणम्"** वह परमात्मा अच्छेद्य, अविकारी सत्ता है। **"अस्नाविरम्"** वह परमात्मा जीवात्मा की भाँति नस–नाड़ी के बन्धन में कदापि नहीं आता है। शुद्धम्–वह ईश्वर अविद्या आदि दोषों से ग्रस्त न होने से सदा पवित्र है। **"मनीषी"**–वह समस्त जीवों की मनोवृत्तियों को भी जानने वाला हैं। **"स्वयम्भू"** उसका कोई कारण नहीं है, जो अनादि स्वरूप है *अर्थात्* वह ईश्वर *जन्म–मरण तथा* वृद्धि–क्षय से रहित है, इत्यादि बातों पर विचार करके महर्षि व्यास ने योग भाष्य में ईश्वर को **"सदैव मुक्तः"** कहा है। क्या अवतारवादी साकार ईश्वर को सदा मुक्त कह सकते हैं ?

इसके विपरीत जो निराकार से साकार तथा साकार से फिर निराकार होगा, वह विकारी होने से नित्य नहीं हो सकता है। संसार में जितने भी पदार्थ निराकार हैं उनमें से किसी की भी मूर्ति आज तक कोई बना नहीं सका है। जीवात्मा, वायु तथा आकाश भी निराकार है, क्या किसी ने आज तक इनकी मूर्तियां देखी है;? यदि नहीं तो निराकार ईश्वर की मूर्ति कैसे सम्भव है? और वर्तमान में जो ईश्वर की मूर्तियां बनाई व पूजी जा रही है, उनकी सबकी आकृतियां भिन्न–भिन्न हैं। जिससे ईश्वर को बहुरूपिया (चतुभुर्ज, अष्टभुज, चर्तुमुख आदि) ही बना दिया है। और मनुष्यों की भांति ईश्वर के शिव, विष्णु, महेश, आदि रूप बना कर उनके भक्तों में घृणा, वैमनस्य, ईर्ष्या के बीज बो दिये हैं। अतः मूर्तिपूजा मानवोन्नति के लिए एक अभिशाप ही सिद्ध हुई है।

यथार्थ में स्थिति यह है कि उपासना का फल होता है, उपास्य के गुणों को धारण करके तदनुरूप होना। ईश्वर भक्ति के क्षेत्र में यह कार्य तो चिरकालीन तपस्या व साधना से ही सम्भव हो सकता है। परन्तु आज के भौतिकवादी मानव ने ईश्वर का भी मानवीकरण ही कर दिया है, ईश्वर को भी अपने समान जन्म, मरण, वृद्धि–क्षय, भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी आदि द्वन्द्वों से ग्रस्त कर दिया है। यह एक महान आश्चर्य एवं उपासना से विपरीत गति का सूचक है।।

——— o ———

एक सौ तेइसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "शास्त्रार्थ प्रदीप" प्राचीन ग्रन्थ से, उद्धृत,

दिनांक : अक्टूबर, सन् १६४८ ई०

विषय : आर्यसमाज की मान्यताएं ?

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री महन्त रलियाराम जी अमृतसरी

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री महाशय रहतुलाल जी आर्य, गंगोह– (सहारनपुर) निवासी

नोट– यह सामग्री प्राचीन पुस्तक "शास्त्रार्थ प्रदीप" से ली गई है !

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

प्रिय पाठक गण !

सेवक ने सन् १९४८ ई० में **"सनातन धर्म का मुग़ालता"** नामक उर्दू ट्रैक्ट महन्त रलिया राम अमृतसरी द्वारा प्रकाशित– **"पण्डित दयानन्द की झूठी तहरीरों का सिलसिला"** उर्दू ट्रैक्ट के उत्तर में लिखकर प्रकाशित किया था, यद्यपि महन्त जी ने लाला जगन्नाथ मुरादाबादी के– जो सन् १८८२ ई० में अपने गुरू मुंशी इन्द्रमणी के साथ अनुचित लोभ के कारण आर्य समाज से पृथक हुए थे। **"दयानन्द हृदय"– "तराना–ए–दयानन्द"** तथा **"दयानन्द चरित्र"** आदि से लेकर स्वार्थ सिद्धि के लिए यह कार्य आरम्भ किया था।

समय–समय पर आर्य भाइयों की ओर से **"सत्य प्रकाश"–"जगन्नाथ–भ्रमनाशक," "जगन्नाथ भ्रम निवारक," "पापदर्शक," "कप्तान डाकू," "नियोग के मूजिद कौन थे ?," "वेदार्थ प्रकाश," "जगन्नाथ कुठार," "मुगालते से बचो," "जगन्नाथ लीला," "जगन्नाथ का बेसुरा तराना," और "नुसख–ए–जनूँ"** के रूप में उत्तर छप चुके हैं। मैंने उन आक्षेपों को जो उक्त पुस्तकों में किये गये थे, उनके प्रश्नोत्तर जो महन्त जी से हुए, एकत्रित कर दिया, महन्त जी की सभ्यता और विद्वता उनके इन निम्न शब्दों से विदित होती है–

"पण्डित दयानन्द के सम्बन्ध में आर्य समाजी चाहे जैसी राय रखते हों, परन्तु एक हक़पसन्द के लिए महात्मा मज़कूर इन्सानियत के दर्जे से भी गिरा हुआ समझा जाता है"।।

जिस महात्मा दयानन्द के सम्बन्ध में स्वर्गवासी श्री पण्डित मदनमोहन जी मालवीय और मुसलमान सर्र सैय्यद अहमद खाँ साहिब तथा जर्मनी के प्रसिद्ध प्रोफेसर मैक्समूलर आदि भी अपनी सादर श्रद्धांजलियाँ समर्पित करते हैं उन्हें महन्त जी ऐसा कहें ? यदि महन्त जी को सूर्य के प्रकाश में भी कुछ नहीं सूझता तो यह उनके स्वभाव का दोष है। ऋषि ने तो अपने जीवन में दुष्ट और मूर्खों से ईंट, पत्थर और गालियां खाने के अतिरिक्त स्वयं को विष देने वाले को भी बचाया, और आप महन्त जी जैसी वृत्ति वाले उपदेशकों की आजीविका के कारण बनें। फलदार वृक्ष ईंट–पत्थर मारने वालों को भी फल ही प्रदान करते हैं। मैंने उन प्रश्नों को, जो उत्तर के लिए लिखे गये थे जिनका उत्तर आज तक नहीं मिला, और न आगे मिलने की आशा है, छोड़कर अन्य लाभदायक बातें इसमें सम्मलित कर दी हैं, यद्यपि ऋषि की कार्य प्रणाली में सनातनधर्मियों में ऐसी नीच वृत्ति के पुरूष न्यून होते जा रहे हैं और श्रीमान पण्डित गणेशदत्त जी शास्त्री "प्रधान" प्रतिनिधि सभा सनातनधर्म लाहौर आदि कार्यकत्ताओं का सम्मान होने लगा है। परन्तु यह भी महन्त जी को दुंखःदायी ही है। यहां यह बतलाना उचित समझता हूँ कि मेरी विद्वता महन्त जी की भांति उर्दू मिडिल ही है, परन्तु धार्मिक पुस्तकों और समाचार पत्रों के अध्ययन मात्र से पुरूषार्थ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस सम्मान के पात्र वे महाशयगण हैं, जिनके लेखों से उद्धृत करके महन्त जी को भ्रम पूर्ण मार्ग से बचाने की भावना

से यह ट्रैक्ट लिखा गया है : महन्त जी या अन्य भाइयों को इससे कुछ लाभ होगा तो तब मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। मैंने जो पुस्तकें लिखी हैं, सब उर्दू भाषा में "प्रचारार्थ" बिना मूल्य वितर ा करने के लिए प्रकाशित की हैं। महन्त जी की भांति अपने किसी स्वार्थ के लिए नहीं।

इस पुस्तक में प्रथम महन्त जी अथवा इस प्रकार के विचार रखने वाले व्यक्तियों के आक्षेपों का संक्षेप पूर्वपक्ष रूप में लिखा है। और उसके पश्चात् उनके निवार ा को जो आर्य विद्वानों के अनुरूप है, उत्तर पक्ष के रूप में उपस्थित किया है। आशा है सत्य धर्म के जिज्ञासुओं और शंकाशील व्यक्तियों का इस पुस्तक से आर्य वैदिक धर्म पर अनुराग बढ़ने में अवश्य सहायता मिलेगी।

सेवक–

रहतूलाल आर्य (प्रधान)
"गंगोह," जिला–सहारनपुर
(उत्तर प्रदेश)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री महन्त रलियाराम अमृतसरी–

चारों वेदों में **"गायत्री मन्त्र"** का बतलाना स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भूल है।

श्री महाशय रहतूलाल आर्य–

महाशय जी ! ऋग्वेद मण्डल ३, अध्याय ४, सूक्त ६२, और यजुर्वेद अध्याय ३, मन्त्र ३५, तथा अध्याय ३६, मन्त्र ३, और सभी वेद उत्तरांचक्र अध्याय १३, मन्त्र संख्या १४६० तीनों वेदों में गायत्री मन्त्र मौजूद है, और यजुर्वेद में दो बार आया है। ऋषियों ने तीनों वेदों को ज्ञान और अथर्ववेद को विज्ञान माना है। बस ! जो बात तीनों वेदों में आई हो उसको विज्ञान अर्थात् अथर्ववेद में मानना आवश्यक है। यदि आप ज्ञान–विज्ञान का भेद जानते तो यह शंका न करते।

उपचार को भी समझ लीजिये– यदि कोई मनुष्य सवारी में बैठकर किसी ग्राम को जाये और वहां पहुंचने पर कहे कि ग्राम आ गया तो यह उपचार है क्योंकि ग्राम के लिए आना–जाना शब्द नहीं बन सकता अतः आप सरीखा बुद्धिमान ही इसको असत्य कहे तो कहे। देखो अथर्ववेद सायणाचार्य का भाष्य भाग–४ पृष्ठ ५३२, (एशियांटिक सोसायटी–कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)। श्री मान जी मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक ६ का यह पाठान्तर है, यदि प्रश्नकर्त्ता व्याकरण या न्याय शास्त्र पढ़ा होता तो ऐसी शंका कदापि न करता, उपचार पहले बतलाया जा चुका है। अब पाठान्तर को भी समझ लीजिये। पाठ दूसरा होता है। परन्तु अर्थ में भेद नहीं होता, जिस पुस्तक से स्वामी जी ने यह श्लोक लिया है उसमें रत्न शब्द है, और वर्तमान स्मृति में धन शब्द आया है, और **"विवित्त"** का अर्थ स्वामी जी ने सन्यासी किया है। परन्तु संस्कृत विद्या से अनभिज्ञ पुरूषों ने इसका अर्थ गृहस्थी कर दिया जो सर्वत्र कोष और धातु अर्थ के विपरीत है। मनुस्मृति में पाठ भेद और मिलावट को छः टीका वाली बम्बई की छपी मनुस्मृति ने, जिसकी टीका मेधातिथि, रामचन्द्र आदि छः विद्वानों ने की है अर्थात् माना है। यह ध्यान रहे कि योग सूत्र के अनुसार सन्यासी दो प्रकार के होते हैं। (१) सम्प्रज्ञात, (२) असम्प्रज्ञात। समाधि के प्रकार भी यह दोनों हैं। जो सम्प्रज्ञात होता है उसका संसार से सम्बन्ध अवश्य रहता है अतएव परोपकार के लिए धन लेने में उसको कुछ दोष नहीं। परन्तु उसमें लिप्त होना दोष है। गीता में भी सन्यासी को अनाश्रित कर्म की शिक्षा है,। राजा जनक और पंच शिखा सन्यासी का इतिहास देखिये। राजा ने कई बार सन्यासी को राज दिया, और उसने स्वीकार किया। स्वामी शंकराचार्य ने उज्जैन के राजा सुधन्वा से लेकर वैदिक धर्म का प्रचार किया। जितने शंकराचार्य के मठ हैं, क्या वे बिना धन के बन गये? जगद्गुरू शंकराचार्य के मठ में इस समय लाखों रूपये की वार्षिक आय है। शारदामठ के शंकराचार्य जब इस देश में आये तो एक सौ आठ रूपये की दक्षिणा ली। पीलीभीत, मुरादाबाद, आदि से ज्ञात कर लें, काशी के प्रसिद्ध विद्वान स्वामी विशुद्धानन्द जी के पास लाखों रूपया मौजूद था। मनुस्मृति तारा प्रिंटिंग प्रैस कांजीपुरम–मद्रास १८८२ में छपी दस ग्यारह मनुस्मृतियों में यह शब्द ज्यों का त्यों आया है। और दक्षिण की हस्त–लिखित मनुस्मृति में भी स्वामी जी के लेखानुसार पाठ हैं। निर्णय सिन्धु, धर्म सिन्धु श्राद्धमयूख, पाराशर माध्वी आदि धर्म ग्रन्थों में और कर्म काण्ड की पुस्तकों में ३५५ श्लोक मनुस्मृति

के नाम से पौराणिक आचार्यों ने लिखे हैं। जिनमें से एक का भी वर्तमान मनुस्मृति में पता नहीं। दृष्टान्त के तौर पर निर्णय सिन्धु प्रथम परिच्छेद पृष्ठ १९ और २३१ में चार श्लोक मनु के नाम से हैं, यदि साहस है तो लिख लाईये या यह मानिये कि उन्होंने असत्य लिखा है। यहां पाठान्तर पर भी शंका ? स्वामी जी पर यह दोष स्वार्थी और पक्षपातियों की ओर से लगाया जाता है। नहीं तो परोपकार के लिए सबने धन प्राप्त किया, और उसमें कोई दोष नहीं।

श्री महन्त रलिया राम अमृतसरी—

सत्यार्थ प्रकाश में **"खम्बे पर चींटियों का चलना"** स्वामी जी ने झूठ लिखा है।

श्री महाशय रहतू लाल आर्य—

स्वामी जी ने उस स्थान पर खास कर भागवत् के नाम पर नहीं लिखा, बल्कि भागवत् आदि पुराणों में जहां पर प्रहलाद की कथा का वर्णन है, सबको मिला कर संक्षेप से लिख दिया जिसने नरसिंह लीला देखी है इसे वह अस्वीकार ही नहीं करेगा। और भागवत के नाम से लिखने पर भी कोई शंका नहीं हो सकती, क्योंकि भागवत कुल पुराणों का संक्षिप्त संग्रह (संकलन) है। भागवत के प्रथम चार अध्याय जिनमें सूत जी और मुनियों की वार्तालाप लिखी है, देखिये ! बहुत से अवतारों के नाम पर एक–एक पुराण पृथक–पृथक बना। नृसिंह पुराण, नृसिंह अवतार के नाम पर और वाराह पुराण वाराह के नाम पर, इत्यादि। प्रहलाद और हिरण्याक्ष की कथा पूर्ण रूप से नृसिंह पुराण में है, इस कारण स्वामी जी ने भागवत को पढ़कर ही उसकी पोल खोली, भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर जी को यह स्वीकार है, और जिस भागवत का फ़ैजी ने उल्था (अनुवाद) किया है उसमें साफ मान लिया है, देखो श्री मद्भागवत नवल किशोर प्रैस लखनऊ में १८७० ई० में छपी। किस भागवत का यह उल्था (अनुवाद) है यह तो तब बताया जा सकता था जब एक ही भागवत एक ही बार की छपी हो, भागवत कई बार छप चुकी है। दक्षिण की हस्त लिखित भागवत के निम्न श्लोक में **"गर्म खम्बे पर चींटियों का चलना लिखा है"** यथा– **"अग्नि प्रज्वलिते स्तम्भे जग्मुश्चन्या पिपीलिका। न प्रदग्धा बभूपुस्तः हरेरद्भु लीलया"**।। परन्तु आपको निर्णय से क्या प्रयोजन ? जब आप अन्ध पक्षपात से स्वामी जी को असत्यवादी सिद्ध करने की धुन में लगे ही हुए है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी—

"रथेन वायु वेगेन" आदि भागवत में नहीं है, यह भी स्वामी दयानन्द जी का लेख असत्य है।

श्री महाशय रहतु लाल जी आर्य—

ज्ञात होता है कि शंका करने वाला औरों की नकल करके पाँचों सवारों में अपनी गिनती कराना चाहता है। भागवत स्कन्द–१० अध्याय ३९, श्लोक ३८ पृष्ठ ११६ और अध्याय ३८, श्लोक २४ पृष्ठ ११२ बम्बई की छपी भाषा–टीका में यह कथा है। यदि संस्कृत और आर्य भाषा की योग्यता नहीं थी तो किसी से पढ़वा ही लेते। अध्याय ३६ श्लोक ३० में कंस का यह कहना कि नन्दराय के व्रत में वसुदेव के पुत्र को रथ में बिठलाकर शीघ्र लाओ, पृष्ठ ११० अध्याय ३८ श्लोक १ में अक्रूर का मथुरा से प्रातःकाल चलना पृष्ठ ११० में अक्रूर जी का दिन छिपने पर गोकुल पहुंचना पृष्ठ ११६ पर भगवान का बलदाऊ अक्रूर के साथ हवा के मानिन्द शीघ्रगामी रथ से पापमोचिनी यमुना के तीर पर पहुंचना लिखा है। प्रथम तो प्रमाण की भूल से कोई सिद्धान्त की हानि नहीं, छापे आदि में ऐसी भूल सम्भव हैं। परन्तु यहां तो न प्रमाण की भूल है न कोई पाठान्तर या

उपचार हैं जिन्हें शंका कर्त्ता न समझ सके, पक्षपात तो मनुष्य को अन्धा बना देता है। और देखिये स्वामी आनन्द गिरिकृत गीता का उल्था (अनुवाद) परमानन्द प्रकाशिका–पृष्ठ ४८६ का यह लेख– **"हिन्दू धर्म में अन्य की निन्दा करना ही, कर्म निष्ठा, ज्ञान निष्ठा, और भक्ति हो रही है"**। सत्य है ! यदि शुद्ध नीति से प्रेम पूर्वक किसी की भूल दिखाई जावे तो यह सुधार की नीति, शुद्ध भावना और सराहनीय शैली कही जा सकती है। अक्रूर जी का प्रातःकाल मथुरा से चलना और सायंकाल गोकुल पहुंचने का वृत्तान्त, विष्णु पुराण अंश ३ अध्याय १५, १७ व १८ में भी आया है। स्वामी दयानन्द जी ने संकेत मात्र वह वाक्यांश लिखकर सारी कथा बतलाई है। भागवत स्कन्द १०, अध्याय ३८ श्लोक १ वर्तमान भागवत में **"प्रययौ"** और दक्षिण हस्त लिखित भागवत में **"जगाम गोकुलं प्रति"** लिखा है। **"प्रययौ"** और **"जगाम"** का एक ही अर्थ है। इसलिए एक बाल ब्रह्मचारी सत्यवादी, तथा परोपकारी को असत्यवादी कहने के पाप से बचने के अतिरिक्त लज्जित भी न होना पड़ता।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

स्वामी शंकराचार्य को जहरीली वस्तु का दिया जाना, और उनका छः मास के अन्दर मरना, ऐसा लेख लिखना भी स्वामी दयानन्द जी की भूल है।

श्री महाशय रहतु लाल जी आर्य–

शोक है कि स्वयं किसी बात को न जानना और दूसरे की सत्य बात को भी असत्य बतलाना कितनी नासमझी है ? किसी ने इस सम्बन्ध में कितना अच्छा कहा है–

तू बेहुदा बन कर मेरे मेहरबाँ, हिमाकत न कर अपनी सब पर अयाँ।
यह बेहतर है खामोश तू ही रहे, ज़हालत रहे तेरी जिससे निहाँ।।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

माधवाचार्य कृत बम्बई की मुद्रित शंकर दिग्विजय पृष्ठ ११६ में लिखा है कि– **"अभिनव गुप्त एक मन्त्र शास्त्री ने छल और कपट से शंकराचार्य को मारने के लिए एक अभिचार कर्म किया जिससे उनको भगन्दर रोग हो गया, और अत्यन्त रोगी रहे आदि"**।

श्री महाशय रहतु लाल जी आर्य–

इसी ग्रन्थ पर गुजराती टीकाकार ने हिन्दी कविता छापा नवल किशोर लखनऊ सन् १८७७ ई० के पृष्ठ ३३० से ३३६ तक पूरा वृत्तान्त लिखा है, अभिचार कर्म विषैली औषधि खिलाने के अतिरिक्त और क्या होता है ? जिसकी गर्मी से भगन्दर फूट निकला, और छः मास पश्चात स्वर्गवास हुआ उन्होंने जैन मत के दृढ़ वृक्ष को जड़ से काटा था, अतएव जैन व्यक्ति के अतिरिक्त और कौन ऐसा काम करता? ऐतिहासिक निरीक्षण द्वितीय भाग **"विषय इतिहास शंकराचार्य"** से भी विष का देना प्रकट है।

उर्दू जीवन चरित्र पूर्णचन्द्र शर्मा कृत आनन्द प्रकाश प्रैस अमृतसर सन् १६१२ ई० प्रथमवार के पृष्ठ ११२ तरंग १६ के आरम्भ में अभिनव गुप्त का पुरश्चरण करना अभिचारक कर्म के प्रभाव से भगन्दर रोग प्रकट होना और पृष्ठ १११ पर अभिनव गुप्त को शाक्तिक लिखा और अन्त के पृष्ठ ११६ पर दीवाली की रात्रि को मुक्ति धाम पधारना लिखा है। यदि आप संस्कृत से अनभिज्ञ हों तो अमृतसर की उर्दू में छपी यह पुस्तक देख लेते, परन्तु

ऐसा तो तब करते यदि आप निर्णय पर पहुँचना चाहते। आपको तो दोष का एक नम्बर और बढ़ाना था।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

"छादयत्यकर्म्" स्वामी जी की भूलें इत्यादि वाक्यांश से सम्बन्धित इस विवेचन पर कि– **"यह सिद्धान्त शिरोमणि में भी है"** स्वामी जी की भूल माना है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

प्रथम तो ऋषि मुनियों की लेख शैली को समझने की बुद्धि होनी चाहिये। क्यों जी, स्वामी जी ने कहां लिखा है कि यह श्लोक सिद्धान्त शिरोमणि का है ? आप श्लोक या वचन में भी भेद नहीं समझते, वहां स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि– **"सिद्धान्त शिरोमणि"** का भी वचन है और **"सूर्य सिद्धान्त"** का भी। मानो **"भीम"** शब्द दोनों सिद्धान्तों के लिए आया है और यह श्लोक **"ग्रहलाघव"** अध्याय ४ का श्लोक ४ है। क्या आप **"ग्रहलाघव"** को मानने से इन्कार करेंगे ?

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

संक्षिप्त शारीरिक और शारीरिक भाष्य में कारिका का प्रमाण स्वामी दयानन्द जी ने नहीं दिया, बल्कि अद्वैतवादियों से शास्त्रार्थ के समय यह प्रमाण उनकी ओर से पेश होने पर स्वामी जी ने उनकी ओर से ही आक्षेप कर्त्ता के रूप में लिखा है और अद्वैतवादियों की यह प्रसिद्ध ढ़ाल है। वे इसी को बहुधा प्रमाणों में पेश किया करते हैं, इन दोनों प्रमाणों को पण्डित ज्वाला प्रसाद जी मुरादाबादी ने **"दयानन्द तिमिर भास्कर"** के पृष्ठ २१६ में पहले वचन को **"वार्तिक कर"** सुरेशाचार्य का और दूसरा **"अथर्वोपनिषद"** का माना है। क्या आपके लिए यह दोनों पुस्तकें अमान्य हैं। भूल और मिथ्या भाषण में भेद न समझना भी मूर्खता है। यदि कोई प्रमाण ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित उस या किसी अन्य मान्य पुस्तक में न मिले तो शंका मान्य हो सकती है परन्तु प्रथम तो आप अपनी धर्म पुस्तकों का संशोधन करायें। एक ही पुस्तक दो स्थानों से छपने पर उनमें बड़ा भेद मिलेगा जैसे रामायण को ही ले लिजिये, एक में **"हनुमान का सूर्य को नारंगी के समान मुँह में डालना"** लिखा है तथा दूसरी में ऐसा उल्लेख नहीं हैं।

महाभारत कलकत्ता प्रतापचन्द्रराय के छापे की छपी में रन्तिदेव धर्मात्मा राजा की रसोई में सहस्त्रों गौ और अन्य पशुओं का नित्य प्रति वध करना लिखा है। परन्तु बम्बई के छपे महाभारत में इसका वर्णन कहीं नहीं है। मनुस्मृति में भी ऐसा ही भेद मिलेगा। और अन्य ग्रन्थों में से बहुत सी बातें ऋषि दयानन्द की शंकाओं से बचने के लिए अलग की जा रही है। ऋषि ने अनेक ग्रन्थ हस्तलिखित और छपे हुवे न जाने कहां–कहां से और किस प्रकार देखें, और बहुत से प्रमाणों की तो पुस्तकें भी नहीं मिलती। बहुत विद्वानों ने भाष्य ही बदल दिये हैं, देखो मेरी बनाई पुस्तक– **"नायाब गुलदस्ता"**।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि में यज्ञोपवीत संस्कार के बारे में स्वामी जी का विरोध है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

इस विरोध को तोड़ना आपकी बुद्धिमत्ता है, आप साधारण और उपदेश में भी भेद नहीं समझ सकते। बस ! सत्यार्थ प्रकाश में साधारण उपदेश हैं, परन्तु संस्कार विधि में ब्राह्मण को आठवें, क्षत्रियों को ग्यारहवें

और वैश्य को बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत धारण करना बतलाकर मेखला और भिक्षा की विधि पृथक–पृथक बतला दी। और मनुस्मृति के प्रमाण से बतला दिया कि, यदि शीघ्र विद्या–बल और व्यवहार करने की इच्छा हो तो ब्राह्मण–पांचवे, क्षत्रिय, छटे, वैश्य आठवें वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत धारण करें। यह बालकों की बुद्धि पर निर्भर होने से विशेष उपदेश है। पक्षपात मनुष्य को अन्धा बना देता है। नहीं तो शब्द **"एक साथ"** अपनी ओर से न बढ़ाते। स्वामी जी के लेख में कहीं पर भी तीनों वर्णों का यज्ञोपवीत एक साथ एक ही आयु में आप नहीं दिखा सकते।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

"देवरः कस्माद्" प्रमाण के सम्बन्ध में एक सम्मति नहीं, कि सम्बन्ध में यह कहना कि यह निरुक्त में नहीं, साथ ही टिप्पणी में पश्चात्त का मिला हुआ मान लेना। यह निरुक्त अध्याय ३ खण्ड–१५, पृष्ठ २६, पंक्ति २२ वैदिक मन्त्रालय अजमेर का छपा हुआ देखें ? साथ ही उसी मन्त्र को बतलाने का दोष भी स्वामी जी पर लगाया गया।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

जिस मन्त्र को स्वामी जी निरुक्त का बतला रहे हैं, उसी स्थान पर मन्त्र को वेद का मन्त्र कैसे बतला देते ? केवल समझ और सुविधा के लिए इस निरुक्त के वचन का वहां लिखना उचित समझा गया। और वेदों का ईशारा **"अदेवृध्नि"** अथर्ववेद काण्ड १४, अनुवाक–२, मन्त्र १८ और **"गन्धर्वोविविद"** ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ४०, मन्त्र–२ की ओर संकेत है। द्वितीय निरुक्त भी वेद की टीका है अतएव यह शंका र्निमूल है।

दुर्गाचार्य ने निरूक्त पर भाष्य करते हुए यदि इस पर भाष्य नहीं किया तो यह उसकी भूल है। मगर सायणाचार्य ने ऋग्वेद १०–४–२ मन्त्र का अर्थ करते हुए स्पष्ट लिखा है कि– यह यास्काचार्य का मत है कि– **"देवर दूसरे वर का नाम है,"** यह संस्कृत में लेख यथावत् विद्यमान है। सायणाचार्य–दुर्गाचार्य से बहुत पहले हो चुके हैं, जर्मनी विद्वान रोथ ने जो निरुक्त बतलाया, उसमें भी यही पाठ है। ओरियेन्टल कालिज लाहौर के एक महामहोपाध्याय श्री पण्डित शिवदत्त जी भी इसे निरुक्त का पाठ मानते हैं,। ऐसा ही ऋग्वेद मण्डल १०, अनुवाक–२, सूक्त–४०, अध्याय ८, वर्ग–१८, अष्टक ७, मन्त्र २ का सायण भाष्य पृष्ठ ५६**६** गणपति कृष्ण जी मुद्रा यन्त्रालय शकाब्द १८११ में ज्यों का त्यों उपस्थित है। इस पर भी यदि कोई न माने तो अविधा, पक्षपात और मस्तिष्क के भ्रम की क्या चिकित्सा ?

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

"सत्य, ब्राह्मणस्य, विजानतः" पर भी शंका है कि यह वेद में नहीं और गीता में है। न जाने स्वामी दयानन्द जी ने गीता के बदले वेद में बतला कर अपना क्या प्रयोजन सिद्ध किया ? और सिद्धान्त की क्या हानी हुई ? तथा शंका करने वाले की क्या पुष्टी ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

आपको तो भूल और असत्य का ही बोध नहीं। महाशय जी ! गीता अध्याय २, श्लोक ४६ में **"सत्य"** पद नहीं आया, यह आपका धोखा है। हाँ **"ब्राह्मणस्य तथा विजानतः"** यह दोनों पद अवश्य आये हैं। परन्तु

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में यह तीनों पद पृथक्–पृथक् आये हैं। जिनकी ओर स्वामी दयानन्द जी का संकेत है, आपने–अपनी बुद्धिमत्ता से तीनों पदों को एक ही पद समझ कर स्वामी जी के कथन पर शंका कर दी, और वेदों में होना भी स्वीकार नहीं किया। "**अशुद्धि**" द्रव्य है या गुण ? यह जानकर यदि आप शंका करते तो उचित था। यदि "**अशुद्धि**" को द्रव्य मानोगे तो शब्द गुण होने से अशुद्धि स्वामी जी की पुस्तकों में नहीं हो सकती। यदि गुण मानोगे तो स्वामी जी के शब्दों में अशुद्धि नहीं रह सकती। क्योंकि गुण में गुण नहीं रहा करता। यही तो कारण है कि ऐसी बातें लिख कर भोले मनुष्यों को भूल में डालकर अपनी स्वार्थ सिद्धि की जाती है। फिर धर्म–अधर्म का विचार कैसे हो ?

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

"**य आत्मने**" आदि को स्वामी जी का बृहदारण्यक का वचन और महर्षि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद बतलाना भी भूल कह कर बड़े जोर से कहा कि यह बृहदारण्यक में नहीं है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

शोक यह है कि शंका करने वाले को इतना भी ज्ञान नहीं कि बृहदारण्यक, शतपथ ब्राह्मण का ही तो एक काण्ड हैं। शतपथ में याज्ञवल्क्य और उद्दालक मुनि का संवाद है। सत्यार्थ प्रकाश में लिखने वाले की भूल से उद्दालक मुनि के बदले मैत्रेयी छप गया जिस पर आप आपे से बाहर हो गये। माध्यन्दिनी शाखा शतपथ ब्राह्मण में यह पाठ विद्यमान है। परन्तु काण्व शाखा में नहीं, और दोनों का ही नाम बृहदारण्यक है। वर्तमान बृहदारण्यक काण्वी शाखा की है और शतपथ की ही यह दोनों शाखा हैं। माध्यन्दिनी में आत्मा और काण्वी में विज्ञान पाठ है परन्तु अर्थ दोनों का एक ही है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

"**मनुष्याः ऋषयंश्च**" इत्यादि चारों वेदों में नहीं है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

इस शंका का उत्तर यह है कि, यह दोनों पद पृथक–पृथक यजुर्वेद और शतपथ में मौजूद है। यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र ६ का पाठान्तर है वहां "**मनुष्याः**" शब्द के बदले "**सांध्याः**" आता है और शतपथ ब्राह्मण में जिसको पौराणिक वेद ही मानते हैं। काण्ड–१४, पाठक ३, ब्राह्मण ४, कण्डिका ३ में "**ततो मनुष्याऽजायत**" लिखा है। स्वामी दयानन्द जी साधारणतया जहां वेद को समझाना चाहते हैं वहां वचन शब्द का प्रयोग करते हैं। यहां स्वामी जी का वाक्य यह है कि– यह यजुर्वेद में लिखा है जिससे कोई भेद नहीं आया। ऋषि ने मन्त्र शब्द नहीं लिखा बल्कि वचन कहा है। मन्त्र और वचन में बड़ा भेद है।

पांतञ्जलि मुनि ने व्याकरण अध्ययन के १८ प्रयोजन रक्षा, ऊहा, आगम आदि कहे हैं। उनमें से ऊहा के अनुसार जो मीमांसा दर्शन के अनुकूल है। यज्ञ प्रकरण में पाठ भेद किया जा सकता है, बस ! सृष्टि रूपी यज्ञ में यह पाठ भेद है, कैयट और नागेश आचार्य ने इसकी पुष्टि की है। सृष्टि रूपी यज्ञ में पुरुष सर्वव्यापक परमात्मा के द्वारा सब मनुष्य आदि उत्पन्न हुए। अतएव महर्षि ने "**साध्या**" के स्थान में "**मनुष्याः**" पाठ कर दिया। ऋषि की भाष्य शैली के गुण–देश–विदेश के विद्वान गान कर रहे हैं और यह भी सोचने की बात है कि यजुर्वेद में ऋषि ने "**सांध्या ऋषयश्च**" यही शुद्ध पाठ लिखा है।

जो पुरुष सूक्त का मन्त्र ६ है। यजुर्वेद और भूमिका में शुद्ध पाठ लिखकर भी सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८ में– **"मनुष्याः ऋषयश्च"** इत्यादि को यजुर्वेद तथा उसके ब्राह्मण में लिखा ऐसा पाठ करने में बड़ा भारी रहस्य हैं। जिससे ऋर्षि का मन्त्रदृष्टा होना प्रकट है। इस पाठ के दो बड़े कारण हैं, विशेष देखिये– श्री पण्डित सत्यमित्र जी शास्त्री वेदतीर्थ का २२ अगस्त १६४६ ई० के आर्य मित्र नामक समाचार पत्र में प्रकाशित लेख।

श्री महन्त रलियाराम जी अमृतसरी–

"आदि सृष्टि का त्रिविष्टप में होना भी स्वामी जी की भूल कहता है। और यह भी अपनी विद्वत्ता प्रकट करता है कि त्रिविष्टप के अर्थ तिब्बत किसी कोष में नहीं है।

श्री महाशय रहतूलाल जी आर्य–

आपको सत्य–असत्य से कोई सरोकार ही नहीं, समस्त विद्वान आदि सृष्टि के तिब्बत में होने की सम्मति देते हैं। सुनिये– स्वामी दयानन्द जी ने हिमालय का भाग त्रिविष्टप (स्वर्ग) जिसको आप तिब्बत कहते है, आर्यों का उत्पत्ति स्थान इसलिए माना है कि मनु महाराज के काल में जिसका नाम दण्डधर मनु था– तिब्बत आर्यावर्त्त के साथ सम्मिलित था, जैसा भूगोल हस्तामलक सन् १८४७ ई० को छपे, पृष्ठ ४० पर लिखा है कि, हदूद अर्बा (सीमा) इस देश की भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न रही हैं, कभी बर्मा, स्याम, मलाया, और कोचीन इसमें मिलाया गया और कभी काबुल–कन्धार और तिब्बत पुरातन काल में आर्य अपनी सीमा सिन्ध से इस ओर नहीं समझते थे। किन्तु कोहकाफ के इस ओर तक देखो, इतिहास राजस्थान प्रथम भाग सन् १८२६ ई० का छपा पृष्ठ २६। यही नहीं बल्कि भूगोल हल साहिब प्रथम भाग में काश्मीर के पहाड़ी हिस्से का नाम छोटा तिब्बत लिखा है। उस हिसाब से भी जबकि काश्मीर इस देश में सम्मिलित है तो छोटा तिब्बत भी सम्मिलित हुआ। मनु महाराज के अनुसार सरस्वती और ब्रह्मपुत्र के बीच के देश को ब्रह्मावर्त कहते हैं। और यह दोनों नदियां तिब्बत में कैलाश पर्वत से निकलती हैं। जो शिव जी का प्रसिद्ध स्थान है, अतएव कैलाश भी तिब्बत में हुआ, और हिमालय तथा विंध्याचल और पूर्व पश्चिम के सागर के बीच का देश आर्यावर्त है। हिमालय के उत्तर में मानसरोवर झील का होना और कैलाश शिवजी का स्थान होना, अर्जुन का देवलोक में जाकर विद्या का सीखना, गंगा का ब्रह्मलोक से आना, अलखनन्दा का कुबेरपुरी से आना, युधिष्ठिर का देह सहित स्वर्ग में जाना, नारद जी का देवलोक से इस लोक में आना, उत्तराखण्ड में प्रसिद्ध विद्वानों का होना, महाभारत और केदारखण्ड आदि में जो पते लिखे हैं, उनका हिमालय के उत्तरी भाग त्रिविष्टप में होना सिद्ध करता है कि, प्रथम आर्यों के बसने की यही जगह थी। कृप्या इन ऋषि–मुनियों के वचनों का विरोध करके इतना ही बतला दिया होता कि तिब्बत के अतिरिक्त कहां पर प्रथम सृष्टि उत्पन्न हुई थी और आर्य कहां पर बसते थे ? कोई प्रमाण आपके पास होता तो बतलाते। भूगोल हिल साहिब द्वितीय भाग पृष्ठ २३ में लिखा है कि हिन्द की तीन बड़ी नदियां, सिन्धु, सतलुज, तथा ब्रह्मपुत्र तिब्बत के भीतरी भाग से आकर मानसरोवर झील से ऊपर कैलाश पर्वत के बड़े पहाड़ की ढ़ाल से निकलती हैं, और भाग तृतीय के पृष्ठ ३० तथा भूगोल क्लर्क पृष्ठ ४६ पर लिखा है कि– सिन्धु, सरस्वती, और ब्रह्मपुत्र नदियां तिब्बत से निकलती हैं। तनिक एटलस खोलकर ही देख लेते कि सिन्धु और ब्रहमपुत्र के बीच में तिब्बत का भाग आ जाता है या नहीं और यह प्रकट ही है कि, दोनों नदियाँ तिब्बत में कैलाश से निकलती हैं। अतएव आर्यों का प्रथम तिब्बत में बसना मानने में क्या शंका हो सकती है ? और विज्ञान के अनुसार भी यही स्थान रहने योग्य हो सकता है। आपको इतना भी ज्ञान नहीं कि नाम संज्ञा के अर्थ कोष में नहीं हुआ करते क्योंकि तिब्बत नाम है। क्या आप

लवपुर के अर्थ लाहौर किसी कोष में दिखला सकते हैं ? यदि दिखलाओ तो हम आपकी विद्या और बुद्धि की प्रशंसा करेंगे। महाराज जी ! सृष्टि उत्पत्ति से पहले पृथ्वी सृष्टि के आदि में गर्म और सर्द होने पर इस योग्य हुई कि वनस्पति को उगा सके। अतः पृथ्वी गोल है, अतएव प्रथम सबसे ऊपर का भाग ही सर्द होना चाहिये तिब्बत सबसे ऊँची जगह है। अतः वहां यदि सृष्टि का होना आवश्यक है तथा जर्मनी के नामी वैज्ञानिक महानुभाव और अमेरिका के वैज्ञानिक डाक्टर तथा योगी ने भी हिमालय पर आदि सृष्टि को होना माना है, यह तो शब्दों का भेद है कि स्वामी जी ने तिब्बत लिखा है, वेदमन्त्र में हिमालय पर्वत कहा। यद्यपि लोकमान्य तिलक ने आदि सृष्टि उत्तरी ध्रुव में बतलाई है। जो वेद मन्त्र के विरूद्ध है। यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र ६३ में महार्णव हिमालय पर्वत को और मन्त्र २६ भी हिमालय का बोधक है, और हिमालय की सीमा ही तिब्बत है, गुरूकुल बम्बई के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान, आचार्य प्रवर श्री पण्डित मायाशंकर शास्त्री शर्मा सदा अपने भाषणों में कहते हैं कि– शतपथ ग्रन्थ में हिमालय अर्थात् तिब्बत प्रदेश को आदि सृष्टि का होना माना है। महन्त जी ! यदि तिब्बत के स्थान पर अमृतसर ही लिख देते तो इस लान्छन से तो बच जाते कि आदि सृष्टि यदि तिब्बत में नहीं हुई तो फिर कहाँ हुई ? जैसा पण्डित प्रभुदयाल जी, तोषाम, जिला हिसार ने तिब्बत का खण्डन करते हुए अपने हरियाणा प्रान्त को ही आर्यों की जन्मभूमि बतला दिया, जिसका कुछ वर्णन मैंने अपनी पुस्तक **"नायाब गुलदस्ता"** में किया है। वैदिक ज्योतिष शास्त्र पुस्तक के विद्वान लेखक ने भी पृष्ठ २१२ पर अथर्ववेद १८–४–४ आदि के आधार पर तिब्बत में सृष्टि होने की पुष्टि की है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

चीनी बनाते समय **"चमार आदि का जूते आदि से रोंदना"** लिखना भी स्वामी दयानन्द जी की भूल बतलाई है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

क्यों जी ! वे लोग गर्म चीनी को हाथों से रौंदते हैं। गर्मी से बचने का कोई उपाय नहीं करते और इस प्रकार की अशुद्धि पर आपको कोई आक्षेप नहीं। यद्यपि स्वामी जी ने छूतछात और अशुद्धि दिखलाई है तो जगन्नाथ का झूठा भात खाना, सोड़ावाटर की बोतल, जिसको प्रत्येक भंगी चमार मुँह से लगा लेते हैं, उनका मुँह से लगाना और कांग्रेस मैंनों का हिन्दु मुस्लिम मेल दिखलाने के लिए एक ही गिलास में पानी पी लेना, इसके अतिरिक्त होटलों में खाना आदि, मांस मदिरा का सेवन आदि क्या आप पर प्रकट नहीं ? आपके सनातन धर्मी पण्डित माता सेवक पाठक, सम्पादक **"विश्वमित्र"** ने स्वामी जी की लिखी ऐसी अशुद्धियां भले प्रकार स्वीकार की है। और अपने लेख दयानन्द दिग्विजय में स्वामी जी को सत्य सनातन धर्म का प्रचारक हिन्दू जाति और शिखा सूत्र का रक्षक मानते हुए लिखा है कि, **"उनके कारण ही हिन्दुस्तान–यवनस्थान बनने से बचा,"** परन्तु वह आप जैसे सनातनी नहीं बनें।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

संजीवनी की बाबत कैसा लचर आक्षेप है ? कि स्वामी जी ने उसकी नकल क्यों न कर ली ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

स्वामी जी ने तो स्पष्ट लिखा है कि राम दयाल आदि ने देखा है। जिनके विश्वास पर स्वामी जी ने उसका वर्णन किया। भोले मनुष्यों को धोखे में डालना अनाप–शनाप प्रश्न करने पर विद्वता प्रकट नहीं हो

सकती, इतिहास है या नहीं ? प्राचीन ग्रन्थों का पता लगना ही कठिन हो गया है। भारत के पुस्तकालयों से छः छः मास तक हम्माम गर्म होते रहे, इतिहास इस बात का साक्षी है। आपको ऐसी बातों से क्या दुःख? क्या आप इतिहासों की नामावली बतला सकते हैं ? सिवाय रामायण और महाभारत के किसका नाम लें ?

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

सोमनाथ की मूर्त्ति और उसके चमत्कारों के विषय में जो कुछ स्वामी जी ने लिखा, वह भी असत्य बतलाया गया है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

वहां पर स्वामी जी ने केवल मूर्ति के चमत्कारों का खण्डन किया है, और बतलाया है कि मूर्ति का चुम्बक पत्थर के सहारे से लटकते रहना सम्भव है, ऐतिहासिक प्रमाण भी लीजिये– इतिहास ऐलिट साहिब, प्रथम भाग सन् १८६७ ई० का छपा पृष्ठ ६७ से ६८ तक देखिये, जिसका अर्थ यह है कि– सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर में जो मूर्ति बिना किसी सहारे के लटकती थी, जिसे देख कर सब विस्मित हो जाते थे उसके सम्बन्ध में महमूद गज़नवी ने अपने साथियों की राय ली, उनमें से कई ने कहा कि– मूर्ति किसी गुप्त अटकाव से ठहरी हुई है। उनमें से एक ने कहा कि– गुम्बद चुम्बक का और मूर्ति लोहे की बनी हुई है। बुद्धिमान शिल्पी ने ऐसी बुद्धिमानी की है कि जिससे चुम्बक का आकर्षण किसी एक विशेष ओर को अधिक न हो, इस पर गुम्बद की चोटी से चुम्बक पत्थर अलग किया गया तो मूर्ति झुक गई। यहां तक कि सब पत्थर अलग किये जाने पर मूर्ति धम्म से जमीन पर आ पड़ी। **"रोजहिस्ट्री आफ इन्डिया"** में भी ऐसा ही लिखा है। क्या अब भी स्वामी जी की बनावट कहकर कलेजे की जलन मिटाओगे ? स्वामी जी की इच्छा तो केवल सुधार की थी, किसी पर झूठा आक्षेप करने की नहीं।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

"हिरण्याक्ष का पृथ्वी को चटाई की भांति लपेट कर ले जाना" ऐसा लिखना स्वामी जी का कथन झूठ है। क्योंकि भागवत में ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

महन्त जी ! अन्य पुराणों का संक्षिप्त वर्णन होना भागवत को स्वयं स्वीकार है, जिसका वर्णन शंका संख्या ३ में पूर्व ही आ चुका है। अतएव किसी पुराण की कथा को भागवत के नाम से लिखना स्वामी जी का दोष नहीं, बल्कि आपकी बुद्धि का दोष है। क्योंकि पक्षपात, स्वार्थ और द्वेष भाव का पर्दा पड़ा हुआ है।

लिंग पुराण अध्याय ६६ में हिरण्याक्ष का भूमि को उठा ले जाना फिर वाराह भगवान का लाना लिखा है। और भागवत में भी इस कथा का वर्णन है। यदि संस्कृत की योग्यता नहीं थी तो कम से कम उर्दू में छपी श्री मद्भागवत, लखनऊ–नवल किशोर प्रैस की पांचवी बार की छपी, पृष्ठ १७४ व १७५, अध्याय–१, स्कन्ध ७, ही देख लेते। उर्दू मिडि्ल तक तो आपकी योग्यता है ही। वहां लिखा है कि– हिरण्याक्ष ने सोचा कि पृथ्वी पर यज्ञ व होम होने से सभी देवता लोगों का बल बढ़ रहा है। अतः क्यों न मैं पृथ्वी को ही उठाकर पाताल लोक में ले जाँऊ ताकि कोई यज्ञ न कर सके। तो देवता मर जायेंगे अतएव पृथ्वी को हिरण्याक्ष पाताल लोक में ले गया। और ब्रह्मा जी के निवेदन करने पर नारायण जी ने वाराह अवतार धारण कर पाताल लोक में जाकर हिरण्याक्ष को मार दिया, और पृथ्वी को ज्यों का त्यों लाकर स्थिर कर दिया। श्री जगन्नाथ

खुशतर ने भी उर्दू भागवत में उल्लेख किया है– **"जमीं को ले गया सर पर उठा कर, रसातल में उसे रक्खा चुरा कर"** । अब यदि चटाई के समान शब्द पर आपको शंका है तो आप ही बतलायें कि किस प्रकार पृथ्वी को उठाया गया ? हम तो पृथ्वी आदि को उठा ले जाना ही असत्य व असम्भव मानते हैं । और स्वामी दयानन्द जी ने इन कथाओं की पोल खोल कर सर्व साधारण को अविद्या के गड़ढ़े से निकलना चाहा था, परन्तु आप उसी में डूबने के अतिरिक्त जिस प्रकार हिरण्याक्ष ने देवताओं को मारने के लिए पृथ्वी को ही उठा लिया । आप स्वामी दयानन्द जी को असत्यवादी सिद्ध करने की धुन में अपने अवतारों और मान्य ग्रन्थों पर ही हाथ फेरने लगे । हम यह भी मानते हैं कि, जहां पुराणों में गपोड़े भरे पड़े हैं, वहां बहुत से अच्छे अलंकारों को भी बिगाड़ा हुआ है । काशी में स्वर्गवासी महामान्य मालवीय जी ने पुराणों की गड़बड़ी दूर करने के लिए, सभा करके अपने भाषण में बड़े जोर से कहा था कि **"यदि सनातन धर्म जिन्दा रहना चाहता है तो उसे पुराणों की शुद्धि करनी चाहिये"** । दक्षिण की हस्तलिखित पुस्तकों का निम्न श्लोक देखिये, जिसमें चटाई की तरह शब्द भी मौजूद है । यथा–

"कटमिव समाहृत्य हिरण्याक्षो महाबली, कृत्वो पधिभुवं राजन् सुष्वाय दानवेश्वरः" आदि ।।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

स्वामी जी के सत्यार्थ प्रकाश में भागवत् को बोपदेव कृत लिखना और जयदेव को उसका भाई बतलाना भी असत्य है ।

श्री महाशय रहतूलाल जी आर्य–

श्री पण्डित नीलकण्ठ शास्त्री द्वारा लिखित देवी भागवत् की भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि– **"श्री मद्‌भागवत्–बोपदेव का बनाया हुआ है"** आप देख लें, भविष्य पुराण पर्व ३, अध्याय २, श्लोक १, पृष्ठ ३२, वैंकटेश्वर प्रैस, सन् १८६७ ई० में ऐसा ही लिखा है । रहा जयदेव को उसका भाई कहने का प्रयोजन ! यह एक ही जैसा कर्म और एक ही जैसे भाव होने के कारण कहा गया है । न कि सहोदर !! जैसे बोपदेव ने भागवत् बना कर कृष्ण जी की निन्दा की है इसी प्रकार उसके भाई अर्थात् हमख्याल (एक ही जैसे गुण, कर्म स्वभाव वाले) जयदेव ने गीत गोविन्द बनाकर अपनी बेसमझी से या जानबूझ कर धोखे की नियत से यह आरोप किया है । क्योंकि स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में ही लिखा है कि– यह भी दूसरे गपोड़े का भाई गपोड़ा है । फिर स्वार्थियों को पशुओं का बड़ा भाई लिखा है । इस पर तो आप डबल गलती का दोष स्वामी जी पर लगाना भूल गये । क्योंकि मनुष्य को पशु का बड़ा भाई लिख दिया । कहावत है कि बदमाश या मूंजी को शैतान का भाई और बहुत सोने वाले को कुम्भकर्ण का भाई कह देते हैं । आप तो बड़े भोले हैं जो कहावत को भी नहीं समझ सकते, और आक्षेप करते हैं, ऋषियों पर जिस लाला जगन्नाथ दास के दास बनकर आपने ऐसा लिखा है उन्हीं की बनाई **"रियाज़े राज"** का शैर देख लें, शीघ्र समझ में आ जावेगा ।

नाना देव उपासक बन कर अपनी कुगति कराई ।
अहम् ब्रह्म का शब्द पुकारें हिरनाकुश के भाई ।।

इसमें भी भाई शब्द हमख्याल के लिए आया है ।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

सत्यार्थ प्रकाश में– **"वेद पढ़त ब्रह्मा मरे तथा चारों वेद कहानी"**– भूल है, क्योंकि ऐसा किसी मान्य

ग्रन्थ में नहीं है। सुखमनी पौड़ी ७ चौपाई–८ पढ़िये।।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

"वेद पढ़त ब्रह्मा मरे" यह ग्रन्थ साहिब का है। तथा **"चारों वेद कहानी"** यह कबीर साहित्य का कथन है। देखो कबीर सागर राग आस्त १–१ और राग तिलंग १–१।।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

"न हि सत्यात् परो धर्मो" स्वामी दयानन्द जी की दस उपनिषदों में कहीं नहीं है। अतएव यह भी स्वामी जी की भूल है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं, इस सिद्धान्त से तो आपको घृणा नहीं होगी। आपका दस उपनिषदों में उक्त वाक्य न होने का आक्षेप है। प्रथम तो स्वामी जी ने यह कहीं नहीं लिखा कि– यह मेरी मान्य दश उपनिषदों में है। उपनिषदों की गणना १५० तक पहुंच गई है। सत्यार्थ प्रकाश में कई श्लोकों के अन्त में उपनिषद शब्द है। पहिले भी कहा जा चुका है कि प्रमाण की भूल से कोई सिद्धान्त की हानि नहीं होती। मुद्रण में कम्पोजिटर की भी भूल हो सकती है। परन्तु उपनिषद, वेद, महाभारत, बाल्मीकि रामायण आदि सबका यह मुख्य सिद्धान्त है कि सत्य से बढ़कर धर्म नहीं। बृह्मवैवर्त्त पुराण मूल पृष्ठ ६६८ पंक्ति–२ अध्याय–६२ श्लोक–२१ आनन्दाश्रम पूना सन् १६३५ ई० में अक्षरशः देख लीजिये।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय ६, मन्त्र १– **"देवस्त्वा सवितुः"** इत्यादि। दयानन्द कहता है कि मैं अपान वायु के बल से शत्रुओं के गले काटता हूँ, वैसे ही राजा की रानी भी काटे।

श्री महाशय रहतूलाल जी आर्य–

प्रत्येक लेखक की लेखन शैली अपनी बोली और देश भाषा के अनुसार हुआ करती है। वेदों के संस्कृत भाष्य में स्वामी दयानन्द जी ने स्वयं लिखा परन्तु भाषा अन्य पण्डितों की हुई हैं। इस मन्त्र में राजा और रानी को न्याय पूर्वक दण्ड देना बतलाया है। आगे पीछे के कुछ शब्द छोड़कर असम्बद्ध शब्द लिखकर शंका कर दी। अन्यथा तात्पर्य यह है कि राजा पुरूषों को और रानी स्त्रियों को उनके दुष्ट व्यवहार पर उनको न्याय पूर्वक दण्ड दें। चूंकि राजा का धर्म है भावार्थ में स्पष्ट लिख दिया है कि सृष्टि में अपनी और दूसरों की दुष्टता को छुड़ाकर राजकर्त्ता सुखी होते हैं।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र १४– **"वांचते शुन्धामि"** इत्यादि में दयानन्द कहता है– **"चेले चेली को गुरू कहे कि– मैं तेरे लिंग और गुदा को पवित्र करता हूँ"**। क्या वेदों में ऐसी ही पवित्र शिक्षा का वर्णन है ?

श्री महाशय रहतूलाल जी आर्य–

इसमें गुरू–शिष्य को वेदानुकूल रहने और सब इन्द्रियों को शुद्ध आचार व्यवहार की ओर प्रेरित करने

का उपदेश है। इसमें क्या अश्लीलता हुई ? परन्तु आक्षेप करने वाले की तो यह स्पष्ट दुर्भावना है कि उसने सारे लेख में से सब इन्द्रियों, वाणी और चक्षु आदि को छोड़कर केवल गुदा और लिंग को ही देखा। पाठक गण ! इससे अगला मन्त्र १५ भी तो देखें जिसके भाष्य में स्पष्ट है कि– **"हे शिष्य ! मेरी शिक्षा से तेरा मन पर्याप्त गुणोयुक्त हो"** आदि ऐसी शुद्ध एवं सुन्दर शिक्षा पर भी आक्षेप केवल समालोचक की दुर्बुद्धि का परिचायक है।

श्री महन्त रलियाराम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय १४ मन्त्र ८– **"पानगृमेपाहिये पान ममे पाहि"** में दयानन्द ने अपान वायु उसको कहा है जो नाभि के नीचे रहने वाला वायु, गुदा इन्द्रिय के मार्ग से निकल जाता है।

श्री महाशय रहतूलाल जी आर्य–

इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपयालंकार है। प्राण, अपान व्यान आदि की रक्षा व पुष्टि पर लिखा है कि स्वयम्बर विवाह से गृहस्थाश्रम को शास्त्रानुकूल प्रेम से व्यवहार की शिक्षा, स्त्री व पुरूष को दी गई है। उस लेख में से भी दो–एक शब्द लेकर सर्वसाधारण को धोखे में डालने की चेष्टा की गई है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ४०– **"पवित्रेण पुनीहिय"** शिष्य गुरू को कहे कि हे विद्या के देने वाले आप वीर्य से पवित्र होकर फिर मुझको पवित्र कीजिये।

श्री महाशय रहतूलाल जी आर्य–

इस मन्त्र के भाष्य में वीर्य से आगे पराक्रम लिखा हुआ है। जिसको बदनीयती से छोड़ा गया है वहाँ वीर्य के लिए पराक्रम लिखा है। भाव यह है कि पिता, अध्यापक और उपदेशक को स्वयं धार्मिक और विद्वान होकर अपनी सन्तान को धार्मिक और योग्य बनाना चाहिये, यह शिक्षा है। इसमें क्या अपवित्रता की बात हैं?

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ७६– **"रेतो मन्त्र बिजहाति..............."** इस मन्त्र का भाष्य करते हुए वीर्य उसी को कहा कि जब योनि के अन्दर लिंग इन्द्रिय जाती है तब विशेष करके वीर्य को छोड़ता है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

क्या एक शब्द के हर जगह एक ही अर्थ हुआ करते हैं ? इस मन्त्र में यह बतलाया गया है कि प्राणी जो कुछ खाता–पीता है वह परम्परागत वीर्य बन कर शरीर का कारण बनता है। जब लिंग योनि में वीर्य छोड़ता है– अर्थात् गर्भ स्थापन करता है वह वीर्य जिस कारण सब अंगों से उत्पन्न होता है इससे सब अंगों की आकृति उसमें रहती है। अतएव जिसके शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है उसी की आकृति वाली सन्तान पैदा होती है। यह भी बतलाया गया है कि, मूत्र स्थान से वीर्य स्थान अलग है, मेरी सम्मति में ऐसी उत्तम और आवश्यक बातों के बतलाने पर वहीं मनुष्य आक्षेप कर सकता है जिसका मस्तिष्क मलीन हो। यदि इस मन्त्र का भावार्थ लिख दिया जाता तो सर्वसाधारण को भ्रम में डालने की नीयत कैसे पूरी होती ? इसमें क्या असभ्यता की बात है ?

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र ८४– "**पयेसाशुक्तं मृतं................**" में बाबा जी दयानन्द ने वीर्य उसको कहा है जो मूत्रधार इन्द्रिय से निकलकर खड़ा होता है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

इस लेख में से भी काट–छांट कर अश्लीलता दिखलाने की चेष्टा की गई है। यद्यपि इस मन्त्र के भाष्य में व्यभिचार से बचने और वीर्य को बढ़ाकर (बलशाली बन कर) सन्तान पैदा करने वाले का कुल प्रशंसनीय होना बताया है। इसके विपरीत आचरण करना आक्षेप करने वाला उचित समझेगा तो उसका दुर्भाग्य

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र ६ में– "**मरूतांइस्कंधा**" में दयानन्द ने चूतड़ों (गुदा) के साथ सूर्य को सिद्ध करना लिखा है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

इस मन्त्र में भी अंगों की पुष्टि और दुष्टों को ताडन्य और न्याय करने की शिक्षा है। पदार्थ में जहां क्रियाओं का जिकर है ताडना व न्याय आदि मनुष्यों का और पशु का पूंछ से पवन का विशेष पक्षी सारस का चूतड़ों (गुदा) से और सूर्य जंघाओं से इत्यादि वर्णन है। कहीं भी मनुष्यों के लिए चूतड़ों से सिद्ध करना नहीं है। आक्षेप करने वाले की बुद्धि को दीमक खा गई। अतएव ईमानदारी और सच्चाई जाती रही।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र ६– "**पोषं वनिष्ठ............**" में दयानन्द ने लिखा कि गुदा इन्द्रिय के साथ अन्धे सर्प को पकड़ो।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

क्या ही विलक्षण बुद्धि है ? भाई इस मन्त्र में तो प्रत्येक अंग या पदार्थ से उचित कार्य करने की शिक्षा है। आँत सर्प जैसी होने से उनको अन्धा सर्प कहा है। परन्तु पक्षपात मनुष्य को अन्धा कर देता है। उसने आँतों को ही सब कुछ समझ लिया है। गुदा से उनका सम्बन्ध है ही। यहां सर्प को गुदा से पकड़ने का वर्णन होता तो यह आशय हो सकता था कि सर्प को सदा गुदा (पीछे) की ओर से ही पकड़ना चाहिये, शिर की ओर से पकड़ने में हाथ पर लिपटने और काटने का भय होता है। मन्त्र से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह केवल आपकी अज्ञानता है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

यजुर्वेद अध्याय २४ मन्त्र २३ से २६ तक पक्षी विद्या का वर्णन है। मन्त्र २३ में उलूक का वर्णन मुर्गा और नीलकण्ठ, बटेर, कबूतर, चूहा, नेवला आदि का नाम भी आया है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

आक्षेप यह है कि स्वामी दयानन्द जी ने उलूक पालना लिखा है। उसको पता नहीं कि इन जानवरों

के गुण जानना और पालन करना कितना लाभकारी है ? परमात्मा ने संसार में जो कुछ उत्पन्न किया है वह बेकार नहीं है। उनके गुणों को न जानना और उनसे काम न लेना अपनी भूल है। क्या इनको मारकर खाना अच्छा समझते हो ? कई वर्ष हुए मैंने एक पुस्तक **"मांस निर्णय भास्कर"** पंडित बैजनाथ जी कृत जिसे हिन्दी से उर्दू में गोसांई चरणदास ने लिखी थी उसे पढ़ा, उसमें बल पूर्वक मांस खाने, शराब पीने तथा यज्ञों में मांस डालने की पुष्टि की। हिन्दू पुस्तकों के अतिरिक्त स्वामी जी कृत सत्यार्थ प्रकाश को भी उस पुस्तक के लिखने में सहायक बनाया गया, राम, युधिष्ठिर, वेद वेत्ता ब्राह्मणों, राजाओं को स्वयं मांस खाना और अतिथियों को खिलाना ही स्वर्गप्राप्ती का साधन बतलाया, इसके विपरीत चलने वालों को नरकगामी बतलाया गया। मांस से अधिक कोई वस्तु स्वादिष्ट और खाने योग्य नहीं। घृत और दूध से भी अधिक गुण, मांस में बतलाये गये। यह भी लिखा है कि सरयू नदी के किनारे अयोध्यापुरी तीर्थ में पशु बलीदान यज्ञ करके दशरथ महाराजा ने राम और लक्ष्मण आदि चार पुत्र प्राप्त किये थे। और यह भी कहा कि मांस का अर्थ उड़द किसी हिन्दी कोष में नहीं। और श्राद्ध में मनु महाराज ने मांस इसी देश के लिये लिखा है। आप अपने इस सनातनी भाई के विचारों से तो सहमत नहीं। एक विद्वान का कहना है कि, पूर्वकाल में इच्छा, भूत, मृत्यु केवल तीन रोग थे, परन्तु पशुघात के कारण ९८ रोग उत्पन्न हो गये। पक्षियों के गुणों का नमूने के रूप में बतलाना ही आवश्यक है। उल्लुक रात को खेतों से खेती को हानी पहुँचाने वाले जानवरों की सफाई करता है। तथा इसकी बीट (टट्टी) कुछ रोगों में बहुत ही लाभदायक है। मुर्गा सर्प काटे हुए व्यक्ति को बचा देता है। इसकी विधि यह है कि जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो वहां पर मुर्गे की गुदा स्थान से पर उखाड़ कर लगा दिये जावें, मुर्गे की गुदा सर्प विष को चूस लेगी, जिसके कारण मुर्गा मर जायेगा। परन्तु थोड़ी–थोड़ी देर बाद कई मुर्गों को इसी भाँति काम में लाया जावेगा तो विष समाप्त होने पर कोई मुर्गा नहीं मरेगा, और मनुष्य भी बच जायेगा, क्योंकि कई मुर्गों को काम में लाने से विष की मात्रा कम हो जायेगी।

मोरपंख की हवा वैद्यक में त्रिदोष नाशक लिखी है। महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १३ पृष्ठ १७ उर्दू श्री राम कृत में– तोता, मैना, कबूतर, पालने से घर में समृद्धि की वृद्धि का लेख है। आप तो मुंशी द्वारका प्रसाद उफ़क के लेखानुसार इन जानवरों के कारण घर में मलिन आत्माओं का न आना भी स्वीकार करेंगे। मोहिते आज़म जिल्दराबा हिस्सा अव्वल, नज़ामी कानपुर का छपा सन् १३१३ ई० पृष्ठ ३०– कबूतर, चकोर, आदि जानवरों की हवा रोग, दिमाग, चेचक, कमेड़ा, सकता, ताऊन, फ़ालिज़ आदि में लाभदायक है। आपको तो सब जानवर छोड़कर स्वामी जी के भाष्य में उलूक ही का दिखाई देना आपके उसी स्वभाव को प्रकट करता है। ऋषि दयानन्द ने पदार्थ के पश्चात्त भावार्थ लिखा, ताकि भाषा जानने वाले भी समझ सकें परन्तु आपने उसके समझने का भी कभी पुरूषार्थ नहीं किया। उनके लेख को पूरा न लिख कर शब्दों की हेरा फेरी से ऊपर लिखित शंकाये गढ़ कर ऋषि पर अश्लील लेख का दोष लगाया। इसमें आपका क्या दोष ? आपके गुरू घण्टालों ने तो महिमास्तोत्र २२ और गोपाल सहस्त्रनाम श्लोक ३७ में ब्रह्म और योगी कृष्ण जी को भी मिथ्या दोषों से मुक्त न रक्खा। हनुमान जी को जो व्याकरण जानने वाला विद्वान और शूरवीर था, उसके भी पूँछ लगा कर उसे मनुष्य से बन्दर बना दिया। जटायू को जो राजा जनक का सहपाठी था, उसको भी मनुष्य से पक्षी बना दिया गया। आपकी बुद्धि की जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है।

कोई माने न माने है उनको अख़्त्यार।
बाग़े धर्म को स्वामी गुलज़ार कर गया है।।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

क्या सृष्टि उत्पत्ति के समय में मनुष्य पहले पहल एशिया के तिब्बत देश में पैदा हुए थे ? और अमरीका युरोप देशों में मनुष्य यहां से गये थे।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

सृष्टि उत्पत्ति प्रथम तिब्बत में ही हुई, क्योंकि सबसे ऊँचा स्थान तिब्बत ही है। और जो जगह सबसे ऊँची होती है, वही सबसे पहले ठण्डी और वनस्पति तथा मनुष्य पैदा करने योग्य होती है। इसीलिए हिन्दुओं में तिब्बत को "**त्रिविष्टप**" (स्वर्ग) कहते हैं। उत्तर की दिशा ऋषि तर्पण के लिए नियत है। यहां से ही समय–समय पर सभी स्थानों पर मनुष्य गये।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

क्या पशु पक्षी आदि की सृष्टि के आदि में एशिया में उत्पत्ति हुई थी, क्योंकि कतिमय पशु सारे ऐशिया अपितु योरोप में भी नहीं पाये जाते हैं, ब्लकि अफ्रीका आदि दूसरे देशों में पाये जाते हैं ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

स्थानीय अवस्था के कारण प्राणियों की आकृतियों में परिवर्तन हो जाता है, और जहां की जलवायु अनुकूल नहीं होती, वहां पर वह नसल समाप्त हो जाती है। और अनुकूल स्थान पर कायम रहती है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

कतिपय देश ऐसे हैं कि उनमें अन्न उत्पन्न नहीं होता, और एक प्रकार के हरिण के मांस तथा चमड़े से ही उस देश के मनुष्यों का र्निवाह होता है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

विद्वानों ने निश्चय किया है कि जिस स्थान पर हरिण या बन्दर जो मांसाहारी नहीं होते रह सकते हैं वहीं मनुष्य रह सकता है, और वह जिस वस्तु को खाकर जीवित रह सकते हैं, उसी को खाकर मनुष्य भी अपना निर्वाह कर सकता है। मांस खाना आवश्यक नहीं। और न वह जीवन का हेतु ही है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

गौत्र ऋषियों के नाम पर हैं। जिन ऋषियों के नाम से गौत्र हैं उन ऋषियों से पहले विवाह का संस्कार किस तरह होता था ? अर्थात् तब गौत्र आदि का विचार (निर्णय) किस प्रकार किया जाता था ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

जिन ऋषियों के नाम से गौत्र हैं। उनसे पहले कोई ऋषि नहीं थे, गौत्र उन्हीं के नाम से आरम्भ हुए हैं। और वह अमैथुनी (बिना माँ–बाप) सृष्टि के थे। आदि सृष्टि के मनुष्य किसी कुटुम्ब के मनुष्य न थे, अतएव उनको गौत्र विचार की आवश्यकता ही नहीं थी।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

अफ्रीका, अमेरिका और अन्य द्वीपों में जो मनुष्य हैं उनके गौत्र का क्या विचार है ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

वैदिक धर्म का प्रचार न रहने के कारण अफ्रीका, आदि के लोग इस मर्यादा को भूल गये। अतएव उनमें गौत्र का विचार न रहा।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

जो दूसरे धर्म से, आर्य धर्म में लोग आवें, उनका क्या गौत्र नियत्त किया जावेगा ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

दूसरे धर्म से आने वाले मनुष्यों का गौत्र **"दयानन्द गौत्र"** होगा (सभा यह निश्चय कर चुकी है)।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

जो अनाथ बालक व बालिकाएं हैं उनके गौत्र का किस प्रकार निर्णय किया जावेगा जबकि वह कहीं पड़े हुए पाये गये हैं, या हरामी हैं ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

अनाथ आदि के गौत्र का किसी जानकार से पता चल सकता है यदि पता नहीं चलता तो आपतकाल के कारण उनका गौत्र भी दयानन्द गौत्र होगा। और रणवीर प्रकाश ग्रन्थ पृष्ठ १६३ से १६५ प्रकरण २० के अनुसार जिसके यहां वह पालित हों उन्हीं का गौत्र उनका माना जावेगा, मनु आदि की भी ऐसी ही सम्मति है।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

सरावगी अन्य धर्मी हैं, जब इनके हाथ का खाया–पिया जाता है। राजपूत, काश्मीरी पण्डित, ब्राह्मण आदि बहुत से हिन्दु मांसाहारी हैं तो फिर पारसी, ईसाई आदि के हाथ का खाने में क्यों इन्कार किया जाता है ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

अन्य धर्मी गोमांस भक्षक होने से अति वर्जित है तथा और भी बहुत से कारण हैं, जैसे स्त्री जाति आदि के साथ अत्याचार आदि।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

पुराने लेखों से पाया जाता है कि, अन्य देश और अन्य जातियों की कन्याओं से विवाह किया जाता था तो अब क्यों रोक की जाती हैं ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

अन्य देश या अन्य जाति में विवाह कर लेने से कोई दोष नहीं, ब्लकि बहुत से आर्य ऐसा कर चुके हैं।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

ईसाइयों की असली इन्जील **"इबरानी"** भाषा में है, उसका अनुवाद अंग्रेजी आदि भाषाओं में हो गया

है। और वह प्रामाणिक समझा जाता है। अंग्रेजी में प्रार्थना भी अनुदित इन्जील से होती है और देशी ईसाइयों में उर्दू आदि भाषाओं में प्रार्थना की जाती है, तो आर्य समाज द्वारा संध्या में क्यों वेद मन्त्रों के अनुवाद को प्रामाणिक नहीं गिना जाता ?

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

ईसाई लोग अपनी मख्य भाषा इबरानी को अनुवाद के कारण खो बैठे। इसी प्रकार आर्य भी अपनी पुरानी वैदिक भाषा को खो बैठेंगे। अतएव आप अपनी देश भाषाओं के द्वारा भाष्यों से केवल भावार्थ समझना चाहिये और वास्तविक प्रार्थना आदि वेद मन्त्रों से ही होनी चाहिये, प्रथम जिन्होंने अंग्रेजी में बाईबिल का अनुवाद किया था उस समय के पादरियों ने अनुवाद करने वालों को जीवित ही जलवा दिया था।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

मुसलमानों और ईसाइयों में स्त्रियों को तलाक दी जा सकती है, इसी प्रकार जब किसी आर्य की स्त्री दुराचारिणी, कलहकारिणी, आदि अवगुणों से युक्त पाई जावे तो क्यों न उसको तलाक दे दी जावे ? यदि छोटी आयु में विवाह हो जावे और पति व्यस्क (बालिग) होने पर नपुंसक पाया जावे तो यह भी एक कारण तलाक का है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

मनु महाराज ने ऐसी अवस्थाओं में त्याग कर देना लिखा है, देखो अध्याय ६ श्लोक ७२।।

श्री महन्त रलिया राम जी अमृतसरी–

अगर कोई विवाहित स्त्री और पुरूष स्थायी रोगी हो जावें। यदि मनुष्य नपुंसक हो जावे। तो स्त्री अपने पति की इच्छा से अपने पति के भाई (देवर) से गर्भ धारण कर सकती हैं परन्तु जब किसी की स्त्री स्थायी रूप से रोगिणी हो जावे तो वह किसी भावज से उसके पति की आज्ञा से कामवासना पूर्ण कर सकता है।

श्री महाशय रहतू लाल जी आर्य–

सन्तानोत्पत्ति के लिए ऐसा कर सकता है, काम वासना की तृप्ति हेतु नहीं।

नोट–

तारीख ११ अप्रैल सन् १६४८ ई० के आर्य गजट जो जालन्धर से प्रकाशित होता है के द्वारा ज्ञात हुआ कि गोकल दास महन्त उपनाम **"रलिया राम"** जी का स्वर्गवास हो गया।

मेरे द्वारा दिये गये विभिन्न विषयों पर प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तरों से आर्य जनता लाभ उठायेगी। इसी आशय से अब यह प्रश्नोत्तर समाप्त किये जाते हैं।

निवेदक–

"रहतू लाल आर्य"

"गंगोह" (सहारनपुर) उत्तर प्रदेश

एक सौ चौबिसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : लुधियाना (पंजाब)

दिनांक	:	अक्टूबर, सन् १९१५ ई०
विषय	:	क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री प्रोफेसर सत्यव्रत सिद्धान्त
मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री मौलाना साहब (जिनका नाम ज्ञात नहीं हो सका)

नोट– यह शास्त्रार्थ सामग्री "आर्य जगत" चार दिसम्बर सन् १९८८ ई० के अंक से प्राप्त हुई। ऐसी सामग्री समय–२ पर आर्य समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रहनी चाहिये, जिससे कभी समय आने पर इस तरह की सामग्री को पुस्तक रूप दिया जा सके। सम्पादक महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

निवेदक–

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

बहुत पुरानी बात लिखने बैठा हूँ। होगी ७५ साल पहले की बात !

तब शास्त्रार्थों का युग था मैं गुरूकुल काँगड़ी में पढ़ता था, परिवार के किसी संकट में घर बुलाया गया था, घर लुधियाना के एक गाँव में था, दशहरे के दिन थे। मैं गाँव से लुधियाना शहर आया हुआ था। जैसे दिल्ली में रामलीला ग्राउन्ड है जहां लम्बे चौड़े आयोजन होते हैं, वैसे ही लुधियाना में दरेसी नामक मैदान था, जहां उत्सवों में लोग इकट्ठे हुआ करते थे। अब वहां क्या है ? यह मुझे मालूम नहीं।

कौतुहल वश में भी दरेसी मैदान की ओर चला गया, वहां देखा लोगों का जमघट लगा हुआ था। एक मौलाना आर्य समाज के विरूद्ध टीका–टिप्पणी तथा लैक्चर बाजी कर रहे थे। मैं भी उस जमघट में शामिल हो गया।

और उस बीच जो मौलाना से उत्तर–प्रत्युत्तर हुए आप भी पढ़िये और लाभ उठाइये।

निवेदक–

"सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार"

नोट– डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कृत समस्त साहित्य आपको हमारे यहां प्राप्त हो सकता है। प्रकाशन से बृहद् सूची पत्र मंगाकर सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करें।

"प्रबन्धक"

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

गाजियाबाद

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री मौलाना साहब–

ये आर्य समाजी कहते हैं कि, **"वेद ईश्वरीय ज्ञान है"** अगर वेद ईश्वरीय ज्ञान है तो इनसे पूछो कि जब ईश्वर शरीर धारण नहीं करता जैसा कि ये मानते हैं। तो बिना बोले उसने ज्ञान कैसे दिया ?

नोट–

उस मज़में में सब तरह के लोग उपस्थित थे, मुसलमान भी थे, हिन्दू भी थे, आर्य समाजी भी थे, परन्तु मौलाना की आवाज अपनी युक्ति को बेमिसाल समझने के कारण क्षण–प्रतिक्षण ऊँची होती जाती थी। उनका मुद्दा सिर्फ एक था– जब खुदा ज़िस्म अख्तियार नहीं करता ? जैसा कि आर्य समाजी कहते हैं, तब बिना बोले वह वेद का ज्ञान कैसे दे सकता था ?

कुछ देर तो मैं खड़ा–खड़ा सुनता रहा, परन्तु मुझसे अधिक देर तक चुप नहीं रहा गया, और मैं भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ गया और मौलाना को ललकारते हुए कहा–

श्री पण्डित सत्यव्रत जी सिधान्तालंकार–

मौलाना साहब ! मैं आपके सवाल का जवाब दूंगा।

श्री मौलाना साहब–

तुम कल के छोकरे, परे (दूर) हट जाओ तुम्हारे आर्य समाजी काका यहां बहुत खड़े हैं, उनको मेरे सवाल का जवाब देने दो।

नोट–

वहां उस जनसमूह में जो आर्य समाजी सज्जन खड़े थे, वह मुझे जानते ही नहीं थे, एक आर्य समाजी सज्जन ने मेरे पास आकर कान में कहा कि– बच्चा तुम कौन हो ? आर्य समाज की फज़ीहत (दुर्गति) न करा देना, तुम मौलाना से इतना भर कह दो कि– आर्य समाज मन्दिर में आकर शास्त्रार्थ कर लें !

मैंने उस आर्य भाई की बात को अनसुना कर दिया और मौलाना को सम्बोधन करते हुए कहा–

श्री पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार–

मैं गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार का एक विद्यार्थी हूँ, मगर तुम्हारे हर सवाल का जवाब दूंगा।

नोट–

गुरुकुल काँगड़ी का नाम सुनते ही वहां उपस्थित सभी आर्य समाजियों का उत्साह बढ़ गया, और उन्होंने ताली बजाकर मेरा स्वागत किया। मैंने मौलाना को सम्बोधित करते हुए पूछा–

मौलाना साहब ! मैं पहले आपसे कितनी दूर खड़ा था ?

श्री मौलाना साहब–

यही कोई एक सौ गज की दूरी पर !

श्री पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार–

(थोड़ा मौलाना की ओर बढ़ते हुए..........) अब मैं कहां खड़ा हूँ, बतलाइये मौलाना साहब ? कितनी दूरी होगी।

श्री मौलाना साहब–

झल्लाते हुए..............यही कोई पचास गज दूर !

श्री पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार–

(थोड़ा आगे मौलाना जी की तरफ बढ़ते हुए..........) अब बताइये मौलाना साहब ! मैं आपसे कितनी दूरी पर खड़ा हूँ।

श्री मौलाना साहब–

बिल्कुल मेरे नज़दीक आ गये हो। परन्तु ये क्या बेहूदगी है ? मेरे इतना नजदीक आने का और मेरे सवाल का, क्या यही हल है ?

श्री पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार–

मौलाना साहब ! आपके सवाल का यही तो हल है। मैं जब बहुत दूर खड़ा था, तब आप चिल्ला–२ कर बोलते थे, जितना मैं नज़दीक आता गया, आपकी आवाज धीमी होती गई। अगर मैं आपके भीतर पहुंच जाऊँ तो आवाज की कोई जरूरत ही नहीं रहेगी। ईश्वर हर जगह मौजूद है। बाहर भी है तथा भीतर भी है, वह मेरे अन्दर भी है तथा आपके अन्दर भी है, वह हमारे इतना भीतर है कि, उसे बोलने की जरूरत ही नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि, जितनी दूरी कम होती जावेगी, "मैटर" तो उतना ही रहेगा, आवाज की जरूरत उतनी ही कम हो जायेगी। यहां तक कि दूरी जब जीरो हो जायेगी तब आवाज भी जीरो हो जायेगी। बस ! यही तुम्हारे सवाल का जवाब है।

नोट–

मौलाना साहब के सवाल का जवाब सुनते ही वहां उपस्थित आर्य समाजी भाइयों ने तालियां पीटना आरम्भ कर दिया और मुझे अपने कन्धों पर उठाकर "**गुरुकुल माता की जय**" के नारों से आकाश गुँजा दिया। इस बीच मौलाना जी कहां गायब हो गये पता ही नहीं चला।

उक्त घटना मेरे जीवन के ७५ वर्ष पहले की है, कुछ इसी प्रकार की घटना मेरे साथ १६८२ ई० में हुई। वहां "**एस्स**" नाम का एक सैमिनार हुआ था जिसमें मैं शामिल हुआ था, उस सैमिनार में एक देवी भी शामिल हुई, जिसका नाम शकुन्तला देवी है। एक अंग्रेज इस सेमिनार का संचालक था, वह अंग्रेज जो कुछ कहता उसे मैं युक्ति से तुरन्त काट देता था, इस प्रक्रिया से जब थोड़ा सा अवकाश मिला, तब शकुन्तला मेरे पास

आई, और मेरा परिचय पूछा। मैंने अपना परिचय देने के बाद पूछा, पर आप क्या वहीं शकुन्तला है जो कम्प्यूटर के नाम से प्रसिद्ध हैं ?

उसने कहा– हाँ मैं वहीं शकुन्तला हूँ।

मैंने कहा– सुना है आप करोड़ों की संख्या का योग ऋण–गुणा–भाग सैकिंडों में कर देती हैं, यह भी सुना है कि कम्प्यूटर गलती कर सकता है परन्तु आपके द्वारा सैकिण्डों में दिये गये उत्तर में गलती नहीं हो सकती। वे बोली– बात तो ठीक है। मेरे उत्तर में कभी कोई गलती नहीं हुई। तब मैंने पूछा– क्या आपको उत्तर पाने में गणित की कोई प्रक्रिया करनी पड़ती है। या उत्तर अपने आप सामने आ जाता है।

शकुन्तला ने कहा– मुझे गणित की कोई प्रक्रिया नहीं करनी पड़ती, उत्तर अपने आप सामने आ जाता है। कितना भी बड़ा सवाल क्यों न हो। उत्तर स्वयं सामने आ जाता है। शकुन्तला ने लौटते हुए कहा– आपका जन्मदिन शनिवार है। मुझे स्वयं इसका पता नहीं था। मैंने आकर घर में पंचाग देखा पांच मार्च १८९८ का दिन सचमुच शनिवार था। वही मेरा जन्म दिन है।

लुधियाना के दरेसी मैदान का वह दिन कहीं दूर चला गया, जब मौलाना दहाड़ रहे थे कि– "बिना मनुष्य की आवाज आये वेद का ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ?"

शकुन्तला जी आज की जिवित जाग्रत कम्प्यूटर हैं। वह मौलाना के प्रश्न के उत्तर में मेरे सामने खड़ी हैं। उसके सामने बिना गणित के प्रयोग किये, पहाड़ जैसे सवालों के उत्तर आ खड़े होते हैं।

सृष्टि के आदि काल में ऋषियों के मानसिक क्षितिज पर मनुष्य रूप में नहीं ब्लकि ज्ञान रूप में वेद आ खड़े हुए होंगे। उनका अवतरण हुआ होगा।

यह मनन करता हुआ मैं पुराने विचारों में डूब गया, मेरे लिये यह पहेली–पहेली न रही।

"सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार"

एक सौ पच्चीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान	:	कानपुर (उत्तर प्रदेश)
दिनांक	:	७–४–१६१८ ई० (दिन रविवार)
विषय	:	पुराण वैदिक हैं या अवैदिक ?
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री ब्रजमोहन झा तार्किक शिरोमणी
सहायक	:	श्री पण्डित नारायण प्रसाद जी (मुख्याधिष्ठाता–गुरुकुल–वृन्दावन)
सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	श्री पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
सहायक	:	श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री
सनातनधर्म सभा के मन्त्री	:	श्री विष्णु दयाल मिश्र
आर्यसमाज के मन्त्री	:	श्री हरिगोपाल नारायण राय
आर्यसमाज के प्रधान	:	श्री डा० फकीरेराम, I.S.M.D.
आर्यसमाज के उपमन्त्री	:	श्री शिवशंकर लाल मिश्र
शास्त्रार्थ के सभापति	:	श्री युत् बाबु गिरधरदास जी वकील

नोट– श्री विजय पाल जी नैष्ठिक (वर्तमान संचालक–सन्यास आश्रम गाजियाबाद) **"कपसाड़"** जिला मेरठ (उ०प्र०) निवासी द्वारा प्राप्त, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। जिनके सौजन्य से यह सामग्री प्रकाश में आ सकी।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

नोट– सनातन धर्म सभा कानपुर का उत्सव मनाया जा रहा था, जिसमें आमन्त्रित विद्वान अपने स्वभावानुसार आर्य समाज को शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज कर रहे थे, तथा गालियाँ निकाल रहे थे। भला शास्त्रार्थ का चैलेन्ज हो और आर्य समाजी चुप रह जाये ऐसा तो हो ही नहीं सकता। अतः आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ की चुनौति को स्वीकार करते हुए निम्न पत्र सनातन धर्म की सेवा में दिया गया–

।। ओ३म् ।।

आर्य समाज रेल बाजार, कानपुर
३०–३–१९१८ ई०

श्री मान मन्त्री जी !

श्री मर्यादा पुरुषोत्तम सनातन धर्म सभा कानपुर नमस्ते ! आपके उत्सव का विज्ञापन पढ़ कर अत्यन्त हर्ष हुआ, इसमें आपने लिखा है कि– गत वर्ष आर्य समाजियों की जो हालत हुई उसे उस समय के उपस्थित महानुभाव ही जानते हैं। जहां तक हम जानते हैं गत वर्ष कोई आर्य समाजी विद्वान आपके यहां गया ही नहीं था, और आपने भी उपस्थित पुरूषों में से किसी सुबोध पुरूष को समय न देकर, सब समय एक अति साधारण से व्यक्ति के साथ बिता दिया, उसमें भी आपको कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ा था, उसे आपका हृदय ही जानता होगा।

इस वर्ष भी शंका समाधान के समय कोई पुराणों का मर्मज्ञ विद्वान न आ जाये और कोई मर्म भेदी शंका उपस्थित न कर दे– इस भय से ही आप शंका समाधान का समय नहीं रखते जान पड़ते, और शास्त्रार्थ के लिए चैलेन्ज देते हैं। तथा विषय भी स्वयं ही एक ऐसा निर्धारित कर लेते हैं जिसमें कि बहुत अधिक पोल खुलने का भय नहीं है। अस्तु, हम इस निमित्त भी तैयार हैं, फिर भी इतना अवश्य कहना चाहते हैं कि शास्त्रार्थ के लिए बिना नियम आदि तय किये ही आपको निश्चात्मक शब्दों में ऐसी सूचना निकालनी उचित न थी कि– **"आर्य सामज वेदों से जीवित पितरों का श्राद्ध और सनातन धर्म मृतकों का श्राद्ध सिद्ध करेगा"** इतने पर भी हम आपके चैलेन्ज को स्वीकार करते हैं, क्योंकि ऐसा समय बार–बार नहीं आता तथापि शास्त्रार्थ के लिए कुछ नियम आपकी सेवा में भेजते हैं, आप इनके स्वीकार करने की कृपा करें, हम आपके द्वारा निर्धारित समय पर शास्त्रार्थ के लि उपस्थित हो जायेंगे–

(१)– शास्त्रार्थ का विषय निश्चय करने का अधिकार हमको है आपको नहीं। इसके अनुसार शास्त्रार्थ के लिए हम एक बहुत ही आवश्यक और उपयोगी विषय– **"पुराण अवैदिक हैं"** यह रखना चाहते हैं। यदि आप आग्रह करें कि **"श्राद्ध विषय"** पर ही शास्त्रार्थ हो तो हमें यह भी स्वीकार है, किन्तु हमारे प्रस्तुत विषय पर भी दूसरे दिन आपको शास्त्रार्थ करना होगा।

(२)– शास्त्रार्थ के समय कोई मध्यस्थ हो, जो निष्पक्ष रूप से निर्णय दे सके।

(३)– शास्त्रार्थ के आयोजन की जिम्मेदारी आपकी होगी।

(४)– पहले प्रश्न हम करेंगे, आप उनका उत्तर देंगे। अन्त में सब कथनोपकथन पर पहले आप और तत्पश्चात् हम उनकी समिक्षा जनता को सुना देंगे।

(५)– शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा, और वह आपके कथनानुसार १२ मिनट में लिख कर तीन मिनट में जनता के समक्ष सुना दिया जावेगा।

(६)– शास्त्रार्थ में दोनों ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में एक ही विद्वान बोलेगा।

(७)– ताली पीटने या जयकारा बोलने का अधिकार किसी पक्ष को नहीं होगा, ऐसा बोलने वाले पराजित समझे जावेंगे।

(८)– शास्त्रार्थ सभ्य भाषा में होगा, कोई किसी तरह का व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किया जावेगा।

(६)– प्रमाण रूप में आपको अपने सभी मान्य ग्रन्थ– यथा चारों वेद, सायण, महिधर आदि के भाष्य, शास्त्र, उपनिषद, पुराण, उपपुराण, महाभारत, संस्कृत के सभी ग्रन्थ व रामायण आदि मानने होंगे। और हमको हमारे सब मान्य ग्रन्थ यथा, वेद, स्वामी दयानन्द जी का भाष्य सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि। मानने होंगे, आप नियमों को स्वीकार करके हमें शीघ्र सूचित करने की कृपा करें।

भवदीय–कृपैषी
"शिवशंकर मिश्र"
(उपमन्त्री)

(१) नोट– शास्त्रार्थ के लिए समय आपने बहुत थोड़ा रक्खा है, इतने थोड़े समय में किसी सिद्धान्त पर पहुंचना असम्भव सा है; इसलिए प्रार्थना है कि– आप समय अधिक रक्खे, और शास्त्रार्थ कई दिन तक हो।

"ब्रजमोहन झा"

(२) नोट– इस अवसर पर हिन्दुओं का होली का त्योहार था। द्वितीया तक लेखनी नहीं उठाई जाती, इस कारण हम आपके पत्रोत्तर नहीं दे सके, इसी बीच आर्य समाज की ओर से द्वितीय पत्र आ गया जो निम्न प्रकार था।

भवदीय–
"विष्णु दयाल मिश्र"
मन्त्री–सनातन धर्म सभा, कानपुर

।। ओ३म्।।

आर्य समाज रेल बाजार– कानपुर
२–४–१६१८

श्री मान मन्त्री जी,

श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा, कानपुर नमस्ते। आपकी सेवा में एक पत्र मैं तारीख ३०–३–१८ को भेज चुका हूँ। आपके द्वारा प्रैषित संदेश के अनुसार हमने कल उसके उत्तर की बड़ी बाट देखी, किन्तु शोक है कि उत्तर प्राप्त न हुआ। अब प्रार्थना है कि आप उस पत्र में उल्लिखित विषयों व नियमों की स्वीकृति आज सायंकाल पर्यन्त अवश्य भिजवाने की कृपा करें, अन्यथा शास्त्रार्थ न करने के उत्तरदाता हम नहीं होंगे।

भवदीय कृपैषी–
"श्री हरिगोपाल नारायण"
(मन्त्री)

इसके पश्चात सनातन धर्म सभा की ओर से उसी दिवस जो उत्तर दिया गया वह इस प्रकार है–

।। श्री हरिः ।।

श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा, कानपुर
तारीख २–४–१९१८ ई०

महोदय,

मन्त्री आर्य समाज रेल बाजार, कानपुर अनेक शुभाशीर्वाद !

(१)– कृपापत्र आपका तारीख ३०–३–१८ का मिला। उत्तर में निवेदन है कि, हुज्जत मचाना, चीं चपट करना, परस्पर में विरोध उत्पन्न कर देना यह आर्य समाज का मुख्य धर्म हो गया है। काँगड़ी गुरूकुल में लाला मुंशीराम ने जब **"वर्ण व्यवस्था"*** का चैलेन्ज दिया तब सनातन धर्म उसमें कुछ भी मीन–मेख न कर शास्त्रार्थ करने को चला गया, और शास्त्रार्थ गुरूकुल के नियमों पर हो गया। इसके बाद आज तक जितने शास्त्रार्थ होते हैं वे बुलाने वाले के नियमों पर होते है। इस बात को न जान कर आपने, अपने नियम बना कर भेजे, क्या यह आपकी भूल नहीं है? हमारे यहां शास्त्रार्थ हमारे नियमों पर होगा जब हमको आर्य समाज बुलावेगा और हम शास्त्रार्थ को उनके पास जावेगें तब आर्य समाज के नियमों पर शास्त्रार्थ होगा।

(२)– आप हमारी सभा का प्रबन्ध भी अपने हाथ में लेना चाहते हैं, आज कहते हैं कि सभापति बदला जाये, कल लिखेगें कि मन्त्री बदला जाये। तो हम शास्त्रार्थ क्या करने बैठे ? अपने योग्य पुरुषों का अपमान करने को तैयार हुए हैं। काँगड़ी में हमने तो नहीं कहा था कि लाला मुंशीराम आर्य समाजी हैं अतएव वे सभापति न हों, फिर आप क्यों ऐसा कहते हैं ? अतः मध्यस्थ हमारा ही व्यक्ति होगा।

(३)– गत वर्ष की बाबत आपने लिखा कि– आर्य समाज के पुरूष जो प्रश्नोत्तर को गये थे वे साधारण थे। आपने उनको साधारण इसलिए लिखा कि उन्होंने आर्य समाज को नहीं छोड़ा। आर्य समाज छोड़ने पर आप महामान्य पण्डित भीमसैन जी और कविरत्न पण्डित अखिलानन्द जी को महामूर्ख बतलाने लग गये। किसी को विद्वान, मूर्ख, साधारण, बनाना इसका तो आपने ठेका ही ले लिया है, अस्तु। गत वर्ष तो साधारण आर्य समाजी आये थे किन्तु इस वर्ष आप प्रसिद्ध–२ विद्वानों को बुला लें, क्योंकि इस वर्ष यदि शास्त्रार्थ हो गया तो फिर आप कहेंगे कि वह साधारण व्यक्ति थे।

(४)– गत वर्ष आर्य समाज मूक हो गया था, आप इतना होने पर भी नहीं मानते और न मानना आपका

नोट– *एक शास्त्रार्थ जो गुरुकुल काँगड़ी में– **"मृतक श्राद्ध"** विषय पर सन् १९१६ ई० में श्री पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी व श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जी के मध्य हुआ था, वह इसी ग्रन्थ– **"निर्णय के तट पर"** की श्रंखला के द्वितीय भाग में बत्तीसवे शास्त्रार्थ के रूप में छप चुका है। **परन्तु यह "वर्णव्यवस्था"** वाला शास्त्रार्थ हमें अभी तक अप्राप्त है कृपया जिन किन्ही सज्जन या संस्था के पास उपलब्ध हो तो अवश्य ही प्रकाशन को प्रकाशनार्थ भेजें, हम उन सज्जनों का आभार प्रकट करते हुए उसे प्रकाशित कर देगें, जिससे आर्य जनता चिरकाल तक उससे लाभ उठा सकेगी। मैने सुना है कि इस शास्त्रार्थ में महात्मा गांधी जी भी मौजूद थे ! **"सम्पादक"**

स्वाभाविक धर्म है। जब आप न मानने पर अपने यहां की भी नहीं सुनते तब फिर हमारे यहां न मानें तो क्या आश्चर्य ? किसी की एक बात न मानिये, इसी से तो उन्नति होगी।

शास्त्रार्थ के बाद पहिले आप सुनाना, फिर हम सुनावेगें, आपके इस लेख का क्या यह प्रयोजन नहीं है कि गिरी हुई आर्य समाज की थोपा थोपी लाला श्रद्धानन्द की भाँति करेगें, जैसा कि उन्होंने नियोग विषय पर किया है। शास्त्रार्थ के बाद आप हमारे यहां एक मिनट भी नहीं बोल सकेंगे, चुपके घर चले जाना होगा। आपके लेख से मालूम होता है कि, कुछ मनुष्य आप ऐसे लावेंगे जो दंगा–बखेड़ा करेंगे जिससे आप लिखते हैं कि आप जिम्मेदार होगें। कृपा कर ऐसा न करें।

(५)– दंगे–बखेड़े से कभी किसी मजहब की विजय नहीं होती, फिर आप क्यों उद्योग करते हैं ? हम सनातन धर्मियों के जिम्मेदार हैं, आप आर्यसमाजियों के रहिये।

(६)– आप कहते हैं कि, आपको महिधर भाष्य प्रमाण रूप में मानने होगें। इससे मालूम होता है कि आप शास्त्रार्थ छोड़कर दूसरी जगह भागोगे, कृपा कर ऐसा हमारे यहां न करिये, क्योंकि शास्त्रार्थ के स्थान में वितण्डा हो जावेगा, जिस वर्ष महिधर भाष्य का काम पड़ेगा उस वर्ष हम आपको दिखला देगें। जो महिधर जी ने लिखा है वही शतपथ में लिखा है। जिस द्वेष से आप महिधर को छोड़ते हैं उसी दोष से शतपथ भी छोड़ देना होगा।

आपकी चिट्ठी पर नीचे की ओर एक नोट **"ब्रजमोहन झा"** का है, यह कोई कायदा नहीं है कि चिट्ठी कोई लिखे और नोट कोई और लिखे। यदि ब्रजमोहन झा आपको अयोग्य और अपने को योग्य समझते हैं, तो वे पृथक लिखा पढ़ी करें। आपकी चिट्ठी में शामिल न हों,

(७)– तारीख ६–४–१८ को आठ बजे से ११ बजे तक उसी प्रकार पुराणों पर शास्त्रार्थ स्वीकार है। तैयार होकर आइयेगा।

(८)– भाव यह है तारीख ६ को पुराण का और तारीख ७ को श्राद्ध का शास्त्रार्थ समझ लीजिये। केवल पुराण का शास्त्रार्थ स्वीकार कर लिया है। शेष आपका समस्त लेख अस्वीकार है। और न अब लिखा–पढ़ी की आवश्यकता है और न गप्पै फैलाने की जरूरत है। यदि आप शास्त्रार्थ को तैयार हैं तो तारीख ६ को प्रातःकाल ७ बजे अपने विद्वानों को लेकर सभा के स्थान में आ जाइये, आधा घण्टा शास्त्रार्थ से पहले दोनों ओर के विद्वानों का संस्कृत में भाषण होगा, और फिर समय पर शान्ति के साथ शास्त्रार्थ होगा। कृपा रखिये, अवश्य पधारिये।

नोट–

शास्त्रार्थ के परचे तीन–तीन बनेगें, एक विपक्षी को देना होगा, एक सभापति को और एक अपने यहां रहेगा, शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित और मन्त्री के हस्ताक्षर प्रत्येक पत्र पर होगें।

भवदीय–
"विष्णु दयाल मिश्र"
(मन्त्री– सनातन धर्म सभा)

इस उपरोक्त पत्र का उत्तर जो आर्य समाज की ओर से आया वह निम्न प्रकार था–

।। ओ३म् ।।

आर्य समाज–रेल बाजार, कानपुर

तारीख– २–४–१८

श्री युत् मन्त्री,

श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा, कानपुर !

आयुष्मान भव ! कृपा पत्र आपका हमारे गत ३० के उत्तर में आज तीसरे दिन प्राप्त हुआ। आपके इस तीन दिन के परिश्रम से लिखे हुए सभ्यता पूर्ण पत्र को पढ़कर अतयन्त शोक हुआ, तथा च यह भी विदित हुआ कि, अब आप शास्त्रार्थ से बगलें झाकते हैं।

(१)– आप गुरुकुल काँगड़ी के शास्त्रार्थ का उदाहरण देते हैं। किन्तु क्या आपके पास भी वही सभ्यता और प्रबन्धशक्ति विद्यमान है जो कि महात्मा मुंशीराम जी और गुरुकुल में है, इसके अतिरिक्त वहां भी नियम आदि तय कर ही लिये गये थे और आपके लेखानुसार सनातन धर्मियों ने वहां किसी प्रकार की मीन मेक नहीं निकाली, इसका कारण यह ही था कि, उनके प्रस्तुत नियम पहिले जैसे संकुचित और अनुचित न थे।

(२)– आपकी मिथ्या आशंका के अनुसार हम आपकी सभा का प्रबन्ध अपने हाथ में लेना नहीं चाहते हैं, किन्तु शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक हो केवल इस अभिप्राय से उस समय दूसरे निष्पक्ष सभापति के नियत किये जाने का प्रस्ताव करते हैं। क्योंकि आपके वर्तमान अधिकारियों की सभ्यता और विद्वता तो आपके इस पत्र से ही टपक रही है।

(३)– प्रसिद्ध–प्रसिद्ध विद्वानों को हम बुलावें अथवा न बुलावें इस कारण आप अभी से क्यों भयभीत होते हैं ? इसके अलावा जिसके भरोसे पर आप कूद रहे हैं उन पण्डित कालूराम जी की विद्या की गोरखपुर तक पीछा करके कलई खोलने वाले जब हमारे समाज ही में विद्यमान हैं तो हमें किसी के बुलाने की ऐसी विशेष आवश्यकता भी क्या ? हाँ आप इसका प्रबन्ध कर लें क्योंकि जहां आपके मन्त्री जी पत्रों की भाषा भी नहीं लिखना जानते और मेष को (तम्बू की) मेख लिखते हैं तथा अपना नाम तक शुद्ध नहीं लिख पाते, वहां श्री पण्डित कालूराम जी भी हमारे समाज द्वारा उनके मर्दित मुख को अद्यावधि सीधा नहीं कर सके हैं, यही दशा आपके पहाड़ उठाने वाले श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी और हमारे द्वारा बहिष्कृत श्री पण्डित अखिलानन्द जी की भी है।

(४)– गत वर्ष आर्य समाज मूक हो गया, इससे बढ़ कर मिथ्या प्रलाप और क्या होगा ? **किमाश्चर्यमतः परम्।।**

(५)– एक ओर तो आप गुरूकुलों के शास्त्रार्थों का उदाहरण देते हैं और दूसरी ओर हमारे पिछले भाषण को स्वीकार नहीं करते। क्या यह टाल मटोल नहीं ? जब गुरूकुल वाले ऋषिकुल में पीछे बोले थे जब **"मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ"*** आपके पण्डित गिरिधर शर्मा जी से ही हुआ था, जिसमें आपके अन्य प्रकाण्ड विद्वान भी श्री शर्मा जी की मिट्टी पलीद होने से बचा नहीं पाये थे। तब आपको यहां मीन–मेक क्यों ? हमारा

नोट– * यह शास्त्रार्थ छप चुका है, पूर्ण विवरण जानने के लिए **"निर्णय के तट पर द्वितीय भाग"** में बत्तीसवें शास्त्रार्थ का अवलोकन करें। "सम्पादक"

यह नियम न्यायोचित है, अतः आपको यह स्वीकार करना ही चाहिये।

(६)– शास्त्रार्थ के बाद हम एक मिनट भी नहीं बोल सकेगें, और चुप चाप घर चले आना होगा। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं है कि पुनः आप गोरखपुर की सनातन धर्म सभा के कृत्यानुसार हमारे पीछे खूब पेट भरकर गाली प्रदान करके अपनी सभ्यता का परिचय देगें। धन्य ! शास्त्रार्थ के बाद आप हमको सभा में बैठने देना भी नहीं चाहते, यही आपकी सभ्यता है ? और इसी बल पर आप कहते हैं कि मध्यस्थ और सभापति शास्त्रार्थ के समय भी आप ही के अधिकारी हों।

(७)– महिधर भाष्य से आप क्यों भयभीत होते हैं ? प्रसंग विरूद्ध नहीं, किन्तु प्रसंग उपस्थित होने पर वह क्यों न दिखाया जाये ? हमारा वह नियम कि आपको अपनी सब मान्य पुस्तकें माननी होंगी और हमको सब हमारी। यह बहुत ही न्यायोचित्त है, और आप यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो आपको यह मानना ही चाहिये।

(८)– पण्डित ब्रजमोहन झा हमारे समाज के सभासद और उपदेशक हैं उन्होंने नियमानुसार लेखक की हैसियत से नोट पर हस्ताक्षर किये हैं। आपको उनके हस्ताक्षरों से भय क्यों ? क्या इसलिए कि श्री पण्डित कालूराम जी आपको पत्र लिखवा रहे हैं, और उनके नाम से उनके पेट में अभी से पानी आ गया है।

(६)– आप लिखते हैं कि– **"पुराण का शास्त्रार्थ"** स्वीकार है और अन्य **"समस्त लेख अस्वीकार है"** इसका क्या अर्थ है ? हम **"पुराण अवैदिक हैं"** इस विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, और आप– **"पुराण का शास्त्रार्थ"** स्वीकार करते हैं। धन्य है ! इसके साथ ही साथ हमारे नियम संख्या **६** को आप मानते ही नहीं, जिसमें कि पुराणों को प्रमाणार्थ देने का विषय है। कहिये दीर्घाशय जी जब आप पुराण आदि को प्रमाण रूप में देने से भयभीत होते हैं तो पुराणों की अवैदिकता पर शास्त्रार्थ कैसे होना सम्भव है ? क्या इसका अर्थ शास्त्रार्थ से जी चुराना नहीं है ?

(१०)– शास्त्रार्थ के पूर्व आप आधा घण्टा संस्कृत भाषण करना चाहते हैं, यह हमें बड़े हर्ष के साथ स्वीकार है। हमारी ओर से संस्कृत भाषण कम से कम दो घंटे पर्य्यन्त हो। इसके अतिरिक्त जब पांडित्य प्रकाशन ही कर्त्तव्य है तो संस्कृत के अतिरिक्त, अरबी, अंग्रेजी, बंगला, मराठी, पाली आदि भाषाओं में भी कुछ देर भाषण हों, किन्तु एक ही एक पण्डित दोनों ओर से बोलेगा और वह पण्डित वही होगा जो शास्त्रार्थ करेगा। कहिये है कुछ दम ? या कोरी बातें ही बातें हैं।

(११)– परचे तीन–तीन ही बनाये जायें, आपके इस नियम को हम स्वीकार करते हैं। अब आपके पत्र की मुख्य–मुख्य बातों का सभ्यतापूर्ण उत्तर हो चुका। शेष रहा गाली प्रदान ! सौ उसका उत्तर हमारे पास है नहीं। अन्तिम प्रार्थना यह है कि आपके लेखानुसार तीन परचे लिखना हमें स्वीकार है किन्तु यावत् (जब तक) आप हमारे पूर्व प्रैषित नियमों को स्वीकार न कर लें तावत् (तब तक) शास्त्रार्थ नहीं हो सकता। आपके प्रेषित जो कतिपय* सज्जन यहां आये थे, उनको न्यायानुसार सब बातें हमारे महोपदेशक पण्डित ब्रजमोहन झा और उपमन्त्री पण्डित शिवशंकर मिश्र ने समझा दी थी। वे उनसे सहमत होकर गये थे, किन्तु विदित नहीं अब आप क्यों नानुनच करते हैं। इसलिए प्रार्थना है कि यदि आप वास्तव में शास्त्रार्थ करने की इच्छा

नोट– ★ हमारी सभा की ओर से कोई सज्जन नहीं गये थे।

"सम्पादक"

रखते हैं तो हमारे पूर्व प्रेषित नियमों को स्वीकार करें, अन्यथा साफ उत्तर दें।

कृपा पूर्वक आप इस पत्र का उत्तर कल मध्यान्ह तक दे दें। यदि कल उत्तर न आवेगा तो हम समझेगें कि आप शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते।

भवदीय कृपैषी–
"शिव शंकर मिश्र" स०मन्त्री

इस उपरोक्त पत्र का उत्तर जो सनातन धर्म सभा की ओर से दिया गया वह निम्न प्रकार है।

।। श्री हरिः ।।

श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा,
कानपुर
तारीख ३–४–१९१८ ई०

श्री युत् मन्त्री जी,

आर्य समाज–रेल बाजार, कानपुर

कृपा पत्र आपका तारीख २–४–१९१८ ई० का आज तारीख ३–४–१९१८ ई० को प्राप्त हुआ। आपके दोनों पत्रों का उत्तर संक्षेपतः हमारे पूर्व पत्र में आपके पास पहुंच चुका है। जिसको बिना विचारे ही आपने फिर उत्तर की आवश्यकता समझी यह टाल मटूल नहीं तो और क्या है ? यदि आपको शास्त्रार्थ करना स्वीकार है तो तारीख ६–७ अप्रैल १९१८ को प्रातः सात बजे सभा मण्डप में अपने विद्वानों को लेकर आ जाइये, अन्यथा इसी प्रकार पत्रों में समय टालने से शास्त्रार्थ के लिए आपकी अस्वीकारी समझी जावेगी।

भवदीय–
"विष्णु दयाल मिश्र"– मन्त्री

नोट–

इस उपरोक्त पत्र का आर्य समाज ने उत्तर न देकर बल्कि **"शास्त्रार्थ से टाल मटोल"** नामक विज्ञापन छपवा कर अधिवेशन के समय तारीख ५–४–१९१८ ई० को बंटवाया, जो निम्न प्रकार था।

।। ओ३म् ।।

शास्त्रार्थ से टाल मटोल

सज्जनों को मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा के विज्ञापन को पढ़ कर हर्ष हुआ होगा और आशा हुई होगी कि, अब शीघ्र ही एक अच्छा शास्त्रार्थ देखने को मिलेगा। हमें भी यह जानकर हर्ष हुआ था, किन्तु शोक ! कि हमारी इस आशा लता पर शीघ्र ही वज्रपात हो गया। आपको यह सुनकर अत्यन्त शोक होगा कि, शास्त्रार्थ के निमित्त नियमादि निश्चय करने के लिए हमारे पत्र व्यवहार करते ही सनातन धर्म सभा के विचार बदल गये। ज्यों–त्यों करके तीन दिन में हमारे दो–दो चिट्ठियां भेजने पर एक महा अशुद्ध पत्र पण्डित कालूराम जी की सहायता से लिखवाकर भेजा, किन्तु उसमें एक भी नियम को स्वीकार नहीं किया, और अपने

स्वभावानुसार सैकड़ों ही गालियां आर्य समाज को दी। हमारे द्वारा प्रेषित नियमों का सार यह था कि– शास्त्रार्थ के समय सभाध्यक्ष कोई निष्पक्ष व्यक्ति हो। शास्त्रार्थ सभ्य भाषा में हो और दोनों ओर से एक ही एक व्यक्ति (पंडित) बोले। शास्त्रार्थ का उत्तरदायित्व सनातन धर्म सभा ले तथा अन्तिम भाषण उसी प्रकार हमारा हो जिस प्रकार की ऋषिकुल में गुरूकुल वालों का हुआ था। सनातन धर्मी अपनी सब मान्य पुस्तकें यथावेद, पुराण महिधर भाष्य आदि तथा आर्य समाज अपनी सब यथा–वेद, सत्यार्थ प्रकाश आदि प्रमाण रूप में मानें। एक दिन शास्त्रार्थ– **"पुराण अवैदिक हैं"** इस विषय पर भी हो। पाठक समझ सकते हैं कि– शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक होने के लिए एवं किसी सत्य पथ पर पहुंचने के लिए हमारे यह नियम कितने उचित और आवश्यक थे ? किन्तु शोक ! कि इन अतयन्त सरल नियमों को भी स्वीकार नहीं किया गया और उत्तर में लिख भेजा कि– **"हुज्जत मचाना, चीं–चपट करना आर्य समाज का मुख्य धर्म हो गया है"**। हमारे अन्तिम भाषण के सम्बन्ध में आपने लिखा है कि– **"शास्त्रार्थ के बाद चुपके से घर चले जाना होगा"**। अर्थात् पुनः यह हमें वहां बैठने भी नहीं देगें। इस सभ्यता और विद्वता के बल पर शास्त्रार्थ करने की इच्छा करना कहां तक उचित है ? इसे पाठक स्वयं विचारें। शास्त्रार्थ करने वालों के ऐसे शब्द नहीं हुआ करते। क्या इनसे साफ विदित नहीं होता कि, सनातन धर्म सभा उस समय तो चैलेन्ज लिख बैठी, लेकिन अब पीछा छुड़ाने पर तुल बैठी है।

इतने पर भी पब्लिक को सूचनार्थ हम निवेदन करते हैं कि यदि कुछ नये मन्त्र प्रमाणार्थ प्राप्त हो गये हों और कानपुरस्थ किसी सनातन धर्मी संस्था को शान्तिपूर्वक नियमादि तय करके सत्यासत्य के निर्णयार्थ श्राद्ध या किसी विषय पर कभी शास्त्रार्थ करने की इच्छा हो तो हम उसके लिए सदैव तैयार हैं बशर्ते कि सनातन धर्मियों की ओर से कोई उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्ति यथा श्रीमान बाबु विक्रमादित्य सिंह जी प्रबन्ध और उत्तरदायित्व का भार अपने पर लेना स्वीकार करें, क्योंकि सभ्यता की मर्यादा को उल्लंघन करने वाली मर्य्यादा पुरूषोत्तम जैसी सनातन धर्म सभाओं के साथ कोई भी बिना अपनी मर्य्यादा को हाथ से दिये शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। और न ऐसे महापुरूषों का अभिप्राय ही शास्त्रार्थ करने का होता है। जैसे कि आपको इनके सभ्यतापूर्ण उत्तर से विदित हो गया होगा। शोक है कि पहले तो बिना किसी आर्य समाज से पूछे ही सनातन धर्म सभा ने निश्चयात्मक शब्दों में मिथ्या ही छपवा दिया कि आर्य समाज वेदों से जीवित पिंतरों का श्राद्ध और सनातन धर्म मृतकों का सिद्ध करेगा और जब इनकी इस मिथ्या उक्ति को भी हमने स्वीकार कर लिया तथा शास्त्रार्थ के लिए नियम लिख भेजे तो उन्हें स्वीकार न करके गालियां देना आरम्भ कर दिया। परमात्मा ऐसे सत्यवादियों से भारत को बचाये रहे सो ही अच्छा।

हस्ताक्षर :

श्री हरिगोपाल नारायण राय	डा० फकीरे राम
B.A., B.Sc. (मन्त्री)	I.S.M.D. (प्रधान)

नोट– इस उपरोक्त पत्र को पढकर सनातन धर्म सभा ने आर्य समाज को जो पत्र लिखा वह इस प्रकार था–

श्री मर्य्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा,
कानपुर
तारीख ५–४–१९१८ ई०

श्री युत् मन्त्री जी !

आर्य समाज रेल बाजार, शुभाशीर्वाद !!

हमने जो शास्त्रार्थ समय पर उपस्थित होने के लिए आपको अन्तिम पत्र भेजा था, उसका तो आपने हमको कुछ उत्तर नहीं दिया, और एक छपा हुआ नोटिस आपकी तरफ से सभा के समय बांटा गया– जिसमें कि नियमों की अस्वीकृति दिखाते हुए आप शास्त्रार्थ से निराशा प्रकट करते हैं, इन बातों से यहीं सिद्ध होता है कि, आप शास्त्रार्थ के इस अवसर को टाल देना ही अपना कर्त्तव्य माने हुए हैं। किन्तु हम आपको नियमों का सहारा लेकर टलने नहीं देंगे। जैसा आप कहेगें वैसा ही मान कर सर्व साधारण को सत्यासत्य के निर्णय का अवसर अवश्य देंगे, इसलिए निम्न लिखित बातों को आपके ही कथनानुसार हम स्वीकार करते हैं।

१– विप्रत्पत्ती आपकी सभापति विषय पर है। जब आप हमारी सभा में आ रहे हैं, और शान्ति रक्षा आदि का प्रबन्ध हमारा है, तब उचित तो यही था कि जिसे हम सभापति चुनें उसे आप स्वीकार कर लें– जैसा कि भारतभर के समस्त शास्त्रार्थों में होता है। किन्तु आप नहीं मानते तो कोई चिन्ता नहीं, आप जिसे निष्पक्ष व्यक्ति समझते हैं, उनको ही कृपा करके साथ लेते आइये, हम उनकी अध्यक्षता में शास्त्रार्थ करा देगें। सभापति का कर्त्तव्य होगा कि दोनों ओर के वक्ताओं को समय का निर्देश करता रहे। सभ्यता की सीमा से बाहर न जाने दे और सर्व साधारण में शान्ति रक्षा करे। इसके अतिरिक्त सभापति किसी पक्ष में रिमार्क नहीं दे सकेगा।

२– दूसरा आग्रह आपका अन्तिम भाषण पर है, सौ नियम तो सर्वत्र का यही है कि जिस सभा में, शास्त्रार्थ हो उसी के पक्ष का अन्तिम भाषण हुआ करता है। परन्तु यहां भी हम आपकी ही बात मान लेते हैं। प्रथम पक्ष स्थापन हमारी ओर से होगा। आप हमारे पक्ष का खण्डन और हम उसका मण्डन करेगें, इस प्रकार क्रमशः तीन घंटे शास्त्रार्थ होगा और अन्तिम समय आपको दिया जावेगा। प्रत्येक अवसर में पन्द्रह मिनट नियत्त होगें, जिसमें बारह मिनट लिखने के और तीन मिनट सुनाने के होंगे, इसके अतिरिक्त दोनों ही ओर से शास्त्रार्थ के विषय पर और कोई भाषण होने की आवश्यकता नहीं।

३– तारीख ६ को प्रातःकाल आठ बजे से ग्यारह बजे तक पुराणों की वैदिकता पर और तारीख सात को श्राद्ध की वैदिकता पर शास्त्रार्थ होगा।

४– और भी जो कुछ आपने लिखा सब स्वीकार है, आप कृपा करके शास्त्रार्थ के समय को जाने न दीजिये, और नियत समय पर अवश्य पधारिये।

"विष्णु दयाल मिश्र" (मन्त्री)

इसके पश्चात् आर्य समाज ने निम्न पत्र भेजा –

आर्य समाज, रेल बाजार, कानपुर
६–४–१९१८ ई०

श्री मान मन्त्री जी ! श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा, कानपुर !!

श्री मान का एक कृपा पत्र हमें आज रात्रि को १ बजे प्राप्त हुआ, जिसमें कि आपने हमारे प्रेषित नियमों को स्वीकार किया है। इसके निमित्त आपको अनेक धन्यवाद। किन्तु निवेदन विशेष यह है कि, जब आपने हमारी तारीख २–४–१८ की चिट्ठी का कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया, और न उसमें किसी बात ही को स्वीकार किया तो बाध्य होकर व्यर्थ व्यय बचाने के अभिप्राय से अपने आने वाले सब पण्डितों को न आने के लिए तारीख ४ को हमने तार दे दिये। हमारे पास इस समय केवल दो ही पण्डित हैं, किन्तु दो से लेखबद्ध शास्त्रार्थ का काम चला नहीं करता। एक पण्डित तो लिखने के लिए ही चाहिये, द्वितीय पण्डित दूसरे विषय को सुनने आदि के लिए तथा च प्रमाण आदि को तत्काल खोज कर देने के लिए अन्य विद्वानों का होना भी परमावश्यक है। ऐसी अवस्था में ठीक समय पर सूचित किये जाने पर हम किस प्रकार प्रबन्ध कर सकते हैं?

आप लोगों में पण्डित गिरिधर शर्मा जैसे विचारशील विद्वान इस समय उपस्थित हैं, वे जानते होंगे कि शास्त्रार्थ और शंका समाधान में बड़ा अन्तर होता है। तथा शास्त्रार्थ के लिए कई विद्वानों की आवश्यकता होती है। इसलिए आपसे निवेदन है कि शास्त्रार्थ हो जाना हम भी इस बार आवश्यक समझते हैं, किन्तु इतनी जल्दी प्रबन्ध होना मुश्किल है, अतः आपको कुछ समय बढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिये। बहुत नहीं तो केवल दो दिन के लिए अर्थात् शास्त्रार्थ तारीख ८ और ९ को हो। आप कृपा कर इसका उत्तर अतयन्त शीघ्र इसी समय दे दें जिससे कि हम अपने अन्य विद्वानों को भी बुला लेने का शीघ्र प्रबन्ध कर सकें। आशा है कि आप इस पत्र का यथार्थ भाव ही गृहण करेंगे एवम् इससे अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न न करेंगे यदि आप समय न बढ़ाना चाहें तो अन्य वार्ता को सभा में प्रकट करने की अपेक्षा आप हमारे इस पत्र ही को पढ़ कर सुना दें, यही अच्छा होगा।

भवदीय कृपैषी–

"फकीरे राम
(प्रधान)

"श्री हरि गोपाल नारायण
(मन्त्री)

नोट– इसके पश्चात् सनातन धर्म सभा ने उपरोक्त पत्र का तुरन्त उत्तर दे दिया, वह इस प्रकार है–

श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा, कानपुर
६–४–१९१८ ई०

श्री मान्यवर मन्त्री जी, आर्य समाज, रेल बाजार, कानपुर !

कृपा पत्र आपका तारीख ६ का मिला, प्रार्थना है कि तारीख ७–४–१८ तक हमारा उत्सव है और तभी तक हमारे विद्वान रहेगें, इसके बाद शास्त्रार्थ भी नियत नहीं किया जा सकता। आज का दिन तो आपने टाल दिया, यदि कल आने को तैयार हों तो सूचना लिख दीजिये अन्यथा केवल पत्र व्यवहार में समय नष्ट करना व्यर्थ है।

"विष्णु दयाल मिश्र" (मन्त्री)

नोट– इसके पश्चात्त जब सायंकाल तक किसी प्रकार का उत्तर आर्य समाज की ओर से न आया, तब सभा ने एक विज्ञापन निकाला वह यह है–

।। श्रीः ।।

आर्य समाज की घोर पराजय

धार्मिक सज्जनों को विदित है कि हमारे प्रिय कुछ आर्य समाजी महाशय श्री ब्रह्मावर्त्त सनातन धर्म मण्डल के उत्सव पर शंका समाधान और शास्त्रार्थ के लिए आग्रह किया करते थे। बड़ी समाज के प्रतिष्ठित मेम्बरों के उदासीन रहने के कारण मण्डल ने तो इन्हें मुंह लगाना उचित न समझा। किन्तु सर्व साधारण में यह भ्रम न फैल जाय कि यथार्थ में सनातन धर्मावलम्बी शास्त्रार्थ से टलते हैं। इसलिए मण्डल की शाखा श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा ने इस बार एक अच्छा शास्त्रार्थ करा देना आवश्यक और उचित समझा। इसकी सूचना पहले से ही विज्ञापनों द्वारा दे दि गई। बस ! अब क्या था ? समाजी महाशय कागजी घोड़े दौड़ाने लगे। हमारा दिया हुआ शास्त्रार्थ का विषय भी पलटा, तथा नियम भी मनमाने ऐसे गढ़े कि जो आज तक भारत भर में किसी शास्त्रार्थ के अन्दर नियत न किये होगें। अस्तु !! सनातन धर्म सभा उनके पत्रों का युक्तियुक्त उत्तर यथा समय देती रही। किन्तु जब देखा कि नियमों के झमेले में ही डाल कर आर्य समाजी महाशय बेदाग बच जाना चाहते हैं, तब सनातन धर्म सभा ने स्पष्ट लिख दिया कि– **"आपके सब नियम स्वीकृत हैं, शास्त्रार्थ के लिए आ जाइये,"** विषय भी आपका ही और सभापति भी आप अपना ही ले आइये! इतना करने पर भी आर्य समाज से उत्तर मिला कि आज तो मुश्किल है आप दिनांक ८ व ९ का समय नियत कर लें। हमारी सभा का उत्सव तारीख ७ को समाप्त है, ऐसी दशा में तारीख, ८ व ९ को हम शास्त्रार्थ कैसे कर सकते हैं ? यह सर्व साधारण बुद्धिमान विचार सकते हैं। इस घटना से सब विचारशील स्वयं समझ सकते हैं कि आर्य समाज में कितना दम हैं ? और शास्त्रार्थ से हटकर किस प्रकार समाज ने बड़ा भारी पराजय अपने सिर पर लिया है। अब भी समय है यदि आर्य समाज चाहे तो कल तारीख ७ को फिर भी आकर विचार कर सकता है नहीं तो फिर कभी सनातन धर्म सूर्य पर धूल फेंकने का इनका साहस किसी की दृष्टि में आदरणीय न होगा।

"विष्णुदयाल मिश्र" (मन्त्री)
श्री मर्यादा पुरूषोत्तम सनातन धर्म सभा, कानपुर

नोट–

इसके पश्चात्त आर्य समाज का पत्र आया वह निम्न प्रकार है–

आर्य समाज, रेल बाजार, कानपुर
७–४–१८

श्री मन् नमस्ते !

कृपा पत्र आपका प्राप्त हुआ। इसके पहले ही मुझे विदित हो गया था कि आपने हमारे लेख के विरूद्ध हमारे पत्र से अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा की और जनता में भ्रम फैलाया। भला यह कहां का न्याय था कि पहले तो आपने तीन–तीन दिन में पत्र का उत्तर देकर समय को टाला, और नियमों को साफ अस्वीकार किया, किन्तु आज अकस्मात् ही उन सब बातों को स्वीकार कर लिया, परसों हमारे पण्डित ब्रज मोहन झा

ने श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी से इसी अभिप्राय से वार्तालाप हुआ कि कुछ निश्चय हो जाय किन्तु सब व्यर्थ हुआ। इसके बाद अकस्मात ही आपने रात्रि के १ बजे हमारे प्रधान जी के घर पर पंत्र भेज दिया और उनके कहने पर भी उसे समाज तक न पहुंचाया। यह पत्र समाज में ठीक कल प्रातः ८ बजे पहुंचा जो कि शास्त्रार्थ का समय था। भला बतलाइये शास्त्रार्थ क्या खेल था ? क्या आपकी यह सारी कार्यवाही का अभिप्राय हमें धोखे में डाले रहना और पुनः "हमारे न आ सकने पर जनता में भ्रम फैलाना नहीं था" हमको आपकी इस कार्यवाही पर खेद है। दूसरी ओर हमारा अभिप्राय इस बार पूरी तैयारी के साथ दोनों ओर के विद्वानों को एकत्रित करा के विचार कराने का था क्योंकि साधारण रीति से तो आपका खेल बहुत जगह हो चुका है। और उसका कोई परिणाम नहीं हुआ।

हमारे इस लेख से भी आपने अनुचित लाभ उठाया, आज पुनः एक पत्र भेजकर हमें आप बुलाते हैं जबकि दो विषयों के लिए केवल तीन घंटे रह गये हैं। इस सबसे हमको यह विदित हो गया है कि आप शास्त्रार्थ को वास्तविक शास्त्रार्थ का रूप देना नहीं चाहते किन्तु साधारण सा ही विचार करना चाहते हैं और यदि हम अच्छा प्रबन्ध करना–कराना चाहते हैं तो आप उससे अनुचित लाभ उठाते हैं, और अपनी निर्बलता व हमें धोखे में डाले रहने की कार्यवाही छुपाकर हम पर ही उलटा अपवाद लगाते हैं। आपके कल वाले नोटिस से तथा समय को न मानने से हमने यह भी समझ लिया है कि, आप वास्तव में शास्त्रार्थ करना ही नहीं चाहते। आप उसे शंका समाधान के रूप में लड़कों के खेल के समान करना चाहते हैं, जिसका कि 'तू तू तथा मैं मैं' के अतिरिक्त कुछ फल नहीं होता इसके अतिरिक्त हम आप लोगों का बर्ताव भी गत दो दिनों से देख रहे हैं। कल तो एक सज्जन हमारे पण्डितों को भीतर जाने से भी रोकते थे। परसों के दिन कई चालाक आदमियों ने हमारे नोटिसों वाले पर्चों को छीन कर फाड़ डालने की कोशिश की थी। एक महाशय कल पुलिस की सहायता ले रहे थे। एक ओर आर्य समाजियों का घोर पराजय भी छप गया। भला यह क्या लीला है ? जब आर्य समाज आपकी टाल–मटोल के कारण गया भी नहीं तब तो पराजय हो गया, कदाचित् चले जाने पर उसका पता भी संसार से उठ जाता,। धन्य रे सभ्यता और वीरता ! क्या इसी सभ्यता और वीरता के बल पर आप शास्त्रार्थ करना चाहते हैं ? इसलिए आपसे निवेदन है कि, हम आपकी बाल क्रीड़ा में सम्मिलित हो नहीं सकते। आपने हमें दो दिन का भी समय नहीं दिया। भला यह भी कोई बात थी कि हमारा उत्सव समाप्त हो जाता है इसलिए हम आगे नहीं बढ़ा सकते। क्या आपके पण्डित दो दिन और नहीं ठहर सकते थे। फिर आपने नियम पहले क्यों नहीं स्वीकार किये, और वह धोखा देने के लिए समय पर क्यों स्वीकार कर लिये। अस्तु, अब हम आपको ग्यारह दिन का समय देते हैं, और आज ही से शास्त्रार्थ के लिए निमन्त्रित करते हैं, नियम जो आप चाहें, सौ ! यह शास्त्रार्थ हमारे उत्सव पर अर्थात् रामनवमी पर तारीख १८ अप्रैल से तारीख २० तक तीन दिन पर्य्यन्त प्रति दिन तीन घंटे होगा। आपकी इच्छानुसार और भी समय बढ़ा दिया जायेगा। आप अभी से भली भांति तैयारी कर लें। यहां आपको इस वर्ष यह भी देखने को मिल जायेगा कि शास्त्रार्थ के लिए किस प्रबन्ध–प्रेम और सभ्यता से काम लिया जाता है ? आप इस पत्र को सभा में पढ़कर सुना देने की कृपा करें, जैसा कि आपने कल किया था। आर्य समाज सत्यासत्य के निमित्त हर समय शास्त्रार्थ करने को तैयार है।

भवदीय कृपैषी –

"हरि गोपाल नारायण" (मन्त्री)

शास्त्रार्थ आरम्भ

सनातन धर्म की ओर से प्रथम लेख–

आज शास्त्रार्थ "**पुराणों की वैदिकता या अवैदिकता**" पर है। हम पुराणों को वैदिक कहते हैं, और हमारे भाई दूसरे पक्ष वाले अवैदिक ! वैदिक का अर्थ यही है कि वेद और पुराण में परस्पर अनुकूलता हो। वेद पुराण को और पुराण वेद को प्रमाण मानता हो। सो देखते हैं कि वेद स्पष्ट पुराण की प्रामाणिकता स्वीकार करता है। देखिये अथर्ववेद ११–७–१(२४) में मन्त्र है–

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्ठाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवादिविश्रिताः।।

इसका अर्थ है कि सबके अन्त में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक्, साम, छन्द, और पुराण–यजु के साथ उत्पन्न हुए हैं। जब वेद स्वयं पुराण को परमात्मा से उत्पन्न बताता है तो वेद के उसका प्रमाण मानने में कोई सन्देह नहीं रह सकता। दूसरे स्थान पर भी अथर्ववेद में ही १५–६–११ में लिखा है कि–

स वृहतीं दिश मनुष्यचलत्, तमितिहासश्च।
पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्।।

इस प्रकरण में, वेदों की तरह पुराणों को भी विराट् का अनुगमन बताया है। ब्राह्मण भाग जो हमारे सिद्धान्त में वेद हैं, और श्री स्वामी दयानन्द जी भी उसे प्रमाण अवश्य मानते हैं उसमें पुराणों की प्रामाणिकता सुस्पष्ट है। गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग–२ प्रपाठक में लिखा है कि– **इमें सर्वे वेदा निर्मिताः संकल्पाः सरहस्याः स ब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः स पुराणाः।। इत्यादि,** इन वचनों से पुराणों की वैदिकता सिद्ध हो जाती है, पुराण तो वेद को प्रमाण प्रत्येक स्थान में लिखते ही हैं। इससे परस्परानुकूलता होने से वैदिकता में कोई सन्देह नहीं।

हस्ताक्षर–
"गिरिधर शर्मा"

आर्य समाज की ओर से प्रथम लेख–

आपने लिखा है कि वेदों की अनुकूलता पुराणों से मिलती है। निस्संदेह ऐसा होने पर पुराण प्रामाण्य हो सकते हैं किन्तु दोनों को देखने से पता चलता है कि उनके विषयों में परस्पर अतयन्त विरोध है और सृष्टि नियम विरूद्ध असम्बद्ध एवं भ्रष्ट विषयों का प्रतिपादन पुराणों में है। वेद में इस प्रकार के विषयों का मिलना असम्भव है। यथा–

१– श्री मद्भागवत ६ स्कन्द में बुध की उत्पत्ति का विषय देखिये, वहां पर आचार्य बृहस्पति की पत्नी से उनके शिष्य चन्द्रमा ने समागम किया है जो कि अत्यन्त घृणित कर्म है। क्या वह पुस्तकें जो कि ऐसी भ्रष्ट बातों से पूर्ण हैं कदापि वेदानुकूल हो सकती हैं ?

२– श्री मद्भागवत में स्पष्ट वर्णित शिव और मोहनी का चरित्र भी कैसा अश्लील हैं ? क्या मोहनी के ऊपर काम वश होकर शिवजी का भागना और पुनः उनके वीर्य से धातुओं का उत्पन्न होना सम्भव है ?

३– महाभारतोक्त उतथ्य की कथा देखिये उतथ्य की स्त्री ममता के साथ बृहस्पति ने कैसा अत्याचार

किया है ? जहां कि गर्भस्थ बालक को पैर की ऐड़ी लगाने की आवश्यकता है। क्या यह बातें वेदानुकूल ही हैं ?

हस्ताक्षर–
"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से द्वितीय लेख–

वेद पुराण को ईश्वर प्रोक्त व विराट का अनुगामी कहता है। इस पर प्रमाण रूप में जो मन्त्र मैने दिये थे उनको आपने स्पर्श भी नहीं किया है। वादी के प्रमाण का प्रतिवादी उत्तर न दे, तो ऐसे स्थल में **"अप्रतिभा"** निग्रह स्थान होता है। जो कि आप पर लग चुका है, पुराण की एक–एक कथा पर तो विचार इतने समय में हो जाना असम्भव ही है। इसलिए समष्टि रूप से पुराण की वेदानुकूलता पर ही विचार होना चाहिये था, उस विषय को ही आप हटा कर दूसरे विशेष विषय पर जा रहे हैं। इसलिए विषयान्तररूप निग्रह स्थान भी प्राप्त हो गया।

पुराण को वेद विरूद्ध दिखाने की आपने प्रतिज्ञा की है किन्तु आपकी लिखी कथायें कौन से मन्त्रों के विरूद्ध हैं, यह आपने नहीं लिखा। आपकी प्रतिज्ञा मात्र से कैसे वेद विरूद्ध मान लिया जायें ? सम्भव–असम्भवपर विचार की आवश्यकता ही इस समय नहीं है। विचार तो वैदिकता या अवैदिकता है। इसके लिए वेद प्रमाण देकर जब तक आप विरोध न दिखलावेगें तब तक इन कथाओं के लिख देने मात्र से कुछ न होगा। मनुष्य की बुद्धि पर सम्भव–असम्भव का निर्णय नहीं हो सकता। इसलिए वैदिक अवैदिक का ही विचार मुख्य रहना चाहिये।

पुराणों की जो कथाऐं आपने लिखी हैं, उनका पूरा पता भी नहीं दिया है, जिसके बिना आपका पूर्व पक्ष ही प्रमाणिक नहीं हो सकता। विनय यही है कि, जो कुछ कहा या लिखा जाये वह प्रमाण सहित हो। जिससे कि वाद निर्णय पर पहुंच सके।

हस्ताक्षर–
"गिरिधर शर्मा"

आर्य समाज की ओर से द्वितीय लेख–

प्रथम आपने पुराणों को वेद के अनुकूल सिद्ध करना स्वीकार कर लिया है। अब हम अश्लील विषयों को पुराणों से प्रकट करते हैं, जिनको कि वेदानुकूल सिद्ध करना आपका काम है। अब कहिये निग्रह स्थान किसको प्राप्त हुआ ? केवल पुराण शब्द से १८ पुराणों को ग्रहण करना वाक्छल है, उस स्थान पर पुराण शब्द जो आया है उसका सम्बन्ध पुराण विद्या से है, न कि इन अष्टादश पुराणों से। आपने इन पुराणों को प्रामाण्य सिद्ध करने के लिए कोई वेद मन्त्र नहीं दिया। और विषयान्तर में जाने की आपकी आशंका व्यर्थ है। जबकि हम पुराणों में ही वर्णित विषय को आपके सामने रख रहे हैं। आपका कर्त्तव्य है कि उनको वेदानुकूल सिद्ध करें। हमारे पहिले विषय को आपने छुआ भी नहीं, आप इस अश्लीलता से क्यों भय खाते हैं ? फिर भी देखिये–

विष्णुर्जालन्धरं गत्वा दैत्यस्य पुट भेदनम्।
पातिव्रतस्य भंगाय बृन्दायाश्चाकरोन्मतिम्।।

(रूद्र संहिता युद्ध खण्ड अध्याय २२ श्लोक–२)

पुनः वृन्दोवाच–

धिक् तदेवं हरे शीलं परदाराऽभिगामिनः।
ज्ञातोऽसित्वं मयासम्यङ् मायी प्रत्यक्ष तापसः।।

इस प्रकार परदारागामी विष्णु को कैसा स्पष्ट बताया है ? कहिये यह चरित्र आपके भगवान का पुराण वर्णित वेद प्रतिपाद्य है ? पुनः देखिये–

रे महाधम दैत्यारे पर धर्म विदूषक।
ग्रहणीष्व शठ मद्दत्तं शापं सर्व विषोल्वणम्।।

यह शाप विष्णु को "**महाधम**" कहकर वृन्दा ने दिया और कहा कि– ये ही राक्षस तुम्हारी भार्या को हरण करेगें। कहिये क्या आपके भगवान का यही कर्त्तव्य है ? आपको इन बातों को वेदानुकूल सिद्ध करना चाहिये। इनको छिपाने से आपका मत वेदानुकूल कैसे सिद्ध होगा ? आप स्वयं प्रस्तुत विषय को छोड़ कर प्रतिज्ञा सन्यास निग्रह स्थान को प्राप्त होते हैं। इस समय आपसे प्रार्थना है कि इन कथाओं की संगति वेद से मिलावें।

हस्ताक्षर –
"ब्रज मोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से तृतीय लेख–

वेदानुकूलता के विचार में, मन्त्रों का अर्थ हो जाना सबसे प्रथम आवश्यक है। जिसका कि अर्थ करके अप्रतिभा निग्रह स्थान से बचना आप अब भी नहीं चाहते। मैं फिर कहता हूँ कि आप पहले पुराण सामान्य पर विचार करके तब विशेष कथाओं पर चलें। सामान्य सिद्धि के बिना विशेष पर विवाद करना शास्त्र विरूद्ध है। और शास्त्र विरूद्ध वाद से कभी लाभ न होगा। आप वाद करना चाहते हैं तो शास्त्र मर्यादा का अवलम्बन कीजिये। दो–चार कथायें सुना कर आप सर्व साधारण पर बुरा प्रभाव डालना चाहते हैं। यह चेष्टा कभी सफल नहीं हो सकती, बुद्धिमान समझ रहे हैं कि आप प्रमाण रूप मन्त्र के अर्थ से कितनी दूर बचते हैं। आपने पुराण शब्द का अर्थ लिखा है,– "**पुराण विद्या**" किन्तु वह पुराण विद्या कौन सी है ? और उसके प्रतिपादक कौन से ग्रन्थ वेद को प्रमाण रूप से स्वीकृत हैं, ? यह आपको बताना होगा। ये अष्टादश पुराण नहीं तो वे कौन से पुराण हैं ? जिनका जिकर मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों में आया हैं ? प्रतिज्ञा सन्यास निग्रह स्थान का लक्षण तो कृपा कर बता दीजिये। वह मुझ पर कैसे लगा ? मैंने कौन सी प्रतिज्ञा छोड़ी ? यदि न बता सकेंगे तो बिना निग्रह स्थान के निग्रह स्थान कहने से अननुयोज्यानुयोग निग्रह स्थान आपके ऊपर और आवेगा। अश्लीलता का विचार आप क्यों कर रहे हैं ? क्या यह विचार का विषय है ? और क्या वेदों में अश्लीलता नहीं है ? क्या आप उसे खुलवाना चाहते हैं ? महाशय ! विचार वैदिकता का है ? वेद विरूद्ध सिद्ध करने के लिए आप प्रमाण दीजिये, स्पष्ट लिखिये कि आपकी लिखी कथायें कौन से मन्त्र के विरूद्ध पड़ती हैं ? अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए आपको वेद से विरोध दिखलाना होगा, अन्यथा आपके लेख का प्रकृत विवाद से कोई सम्बन्ध नहीं माना जायेगा।

हस्ताक्षर–
"गिरिधर शर्मा"

आर्य समाज की ओर से तृतीय लेख–

हम पहले की आपको बतला चुके हैं कि पुराण विद्या से १८ पुराणों का कोई सम्बन्ध नहीं, किन्तु पुराण विद्या से तात्पर्य, सर्ग,–प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित आदि का ज्ञान प्राप्त करने व कराने से है, जो ब्राह्मणादिकों में है। अब आपका यह कर्त्तव्य था कि, इन १८ पुराणों की प्रमाणिकता वेदों से सिद्ध करते। जब तक आप यह १८ पुराणों का वर्णन वेद में न दिखला दें, तब तक आप अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ देने के कारण प्रतिज्ञा सन्यास नामक निग्रह स्थान में हैं। पुराणों की कथाओं से आप भयभीत होते हैं, और स्वयं स्वीकार करते हैं कि, उनका प्रभाव पब्लिक पर बुरा पड़ता है, कहिये ! इतने पर भी आपका यह साहस कि– **"पुराण वेदानुकूल हैं"** कहां तक ठीक है ? क्या इन अश्लील कथाओं के अनुसार ही वेदों की शिक्षा भी मानते हैं ? क्या आप वेदों में भी अश्लील बातें दिखला सकते हैं, या मानते हैं। आपको हमने जितनी कथाओं का प्रमाण दिया है आप उनमें से किसी एक का भी स्पर्श क्यों नहीं करते ? आपने प्रतिज्ञा सन्यास के लक्षण पूछे हैं, सो लीजिये– **"पक्ष प्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञा सन्यासः"** कहिये कैसा शुद्ध प्रतिज्ञा सन्यास आप पर आरोपित हुआ ? आपने हमारी बताई अश्लील एक कथा को भी वेदों में नहीं बताया, पुनः यह कथाएं वेदत्रयी अर्न्तगत कैसी समझी जायें, ? गुरु पत्नी गमन,–ईश्वर का व्यभिचार कर्म, वेदानुकूल होना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं।।

हस्ताक्षर–
"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से चतुर्थ लेख–

आपने पुराण विद्या का वर्णन करते हुए लिखा है कि, सर्ग, प्रतिसर्ग, आदि पुराण विद्या है। और वह ब्राह्मण में है। महाशय !– **"सर्गश्च–प्रति सर्गश्च"** श्लोक तो पुराण का है, उसके आधार पर तो मन्त्रार्थ लगा कर आप स्पष्ट इन्हीं पुराणों को प्रमाण मान चुके। दूसरे ब्राह्मण जिसे आपके सिद्धान्त में ऋषिप्रोक्त माना जाता है। उसका जिकर ईश्वर प्रोक्त अनादि वेद में कैसे आया ? क्या ब्राह्मण का जिकर मन्त्र में मानना आपका सिद्धान्त विरोध नहीं है ? कृपा कर मन में ही सोचिये, स्पष्ट सिद्ध है कि, आप मन्त्रों का कुछ भी अर्थ अभी तक नहीं कर सके, और इससे पुराणों की वेदानुकूलता आपके मौन से ही सिद्ध हो चुकी। आप अश्लीलता पर बहुत अधिक बल दे रहे हैं किन्तु– **"पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्"** **"मातुर्दिधिषु मब्रुवं स्वसुर्जारः शृणोतुनः"** **"स्वसारं जारो अभ्येती पश्चात्"** इत्यादि मन्त्रों में क्या अश्लीलता नहीं है ? जहां माता और भगिनी तक के लिए बुरे शब्द लिखे हैं। इन मन्त्रों का आप कुछ आशय लगावें, तो पुराणों की कथाओं का भी आशय पुराणों में ही लगाया हुआ है, उसे देख लीजिये। कथन का ढंग दोनों ही जगह अश्लील है, और आशय दोनों ही का उत्तम है। फिर एक ही जगह शंका क्यों है ?

फिर श्री स्वामी दयानन्द जी का सालम मिश्री वाला नुसखा, आँख और नाक का सामने करना, स्थूल गुदा से सर्पों का ग्रहण– **"इमं ते उपस्थं मधुना संसृजामि"** (संस्कार विधि) इत्यादि लेख क्या अश्लीलता की पराकाष्ठा नहीं है;? और क्या पंजाब की अदालत सत्यार्थ प्रकाश को स्पष्ट अश्लील नहीं मान चुकी ? क्या इसकी खबर आपको नहीं है ? फिर भी आप अश्लीलता का दावा पुराणों पर करते हैं, यह आश्चर्य है।

स्वामी दयानन्द जी मन्त्रानुसार ही सोलेतूर के विज्ञापन में महाभारत आदि को ईश्वर कृत मान चुके हैं। और सत्यार्थ प्रकाश में भी युधिष्ठिर से पहले का इतिहास पुराणों से लेना मानते हैं। आप लोग भी इतिहास के लिए पुराणों को ही अब भी लिया करते हैं, फिर पुराण की प्रामाणिकता आपको ही स्पष्ट स्वीकृत

है। आपने मन्त्रार्थ कुछ नहीं किया है, और अब लास्ट टर्न (अन्तिम पत्र) में किया हुआ भी व्यर्थ होगा, इससे मेरे दिये हुए मन्त्र ब्राह्मण से पुराण प्रामाणय सिद्ध हो गया है। मैंने प्रतिज्ञा कोई नहीं छोड़ी है। इससे आपका लक्षण मुझ पर नहीं घटता। आप समय–समय पर तीन निग्रह स्थानों से निगृहीत हो चुके हैं।

हस्ताक्षर–
"गिरिधर शर्मा"

आर्य समाज की ओर से चतुर्थ लेख–

आपने लिखा है कि, सर्ग–प्रतिसर्ग वाला श्लोक पुराणों का है, इससे आपका क्या मतलब सिद्ध हुआ? हम उस विद्या को तो मानते ही हैं। इतिहास का विषय केवल पुराणों ही से नहीं लिया जाता, ब्लकि उसका वर्णन तो राजतरंगिणी आदि ग्रन्थों में भी है। और ब्राह्मणादिकों में भी है। अष्टादश पुराणों का वर्णन जब आप किसी वेद मन्त्र में नहीं बतला सकते, तब हम अर्थ क्या करें ? हम अश्लीलता पर बहुत बल देते हैं,– यह बिल्कुल यथार्थ है, और यही मुख्य विषय है। वेद के मन्त्र का न तो आपने पता ही दिया, और न उसका अर्थ ही किया। ऐसी दशा में केवल वेद मन्त्र में जार आदि शब्द आ जाने से कुछ थोड़े ही सिद्ध हो जायेगा। इसके आगे आप स्वामी जी के वैद्यक सम्बन्धी विषय में दोष लगाते हैं। जहां कि शरीर आदि के सूधा रखने का विषय है सौ तो ठीक है। क्या आपके नितम्बो से नितम्बों का सम्मेलन किया जाता है,? धन्य है इस सभ्यता पर ! आप सर्पों को क्या मुँह से पकड़ते हैं ? यदि स्वामी जी ने उनको गुदा की ओर से पकड़ना लिखा है तो क्या बुरा किया ? कहीं आप मुंह की ओर से पकड़ न बैठियेगा। आपने अभियोग का जो जिकर किया है, सौ क्या कोई वेद प्रमाण है ? आप पण्डित गोपीनाथ जी के अभियोग को ही देखें, और अश्लीलता विचारें। जब आप एक भी पुराण की कथा अर्थात् व्यभिचार और गुरूपत्नी गमन को वेद में नहीं दिखा सकते, तो **"पुराण वेदानुकूल सिद्ध नहीं हुए"**।

हस्ताक्षर–
"ब्रजमोहन झा"

(शास्त्रार्थ–समाप्त)

प्रकाशकीय–

इस शास्त्रार्थ की प्रति जो सनातन धर्म सभा ने प्रकाशित करायी थी, मुझे वही प्राप्त हुई। जिसमें सनातन धर्म की ओर से लिखे गये लेखों पर नीचे टिप्पणी देकर उनको बढ़ा–चढ़ाकर अपनी ओर से आर्य समाज को पराजित होना दर्शाया गया है। जबकि आर्य समाज की ओर से लिखे गये लेखों के नीचे कोई टिप्पणी नहीं दि गई।

जिससे साफ पता चलता है कि एक पक्षीय दृष्टि कोण रखकर टिप्पणी लिखी गई है। अतः हमने उस टिप्पणी को यहां प्रकाशित नहीं किया। हमने केवल मूल सामग्री को ही प्रकाशित किया है जिससे पाठक गण स्वयं निर्णय कर सकें तथा सत्यासत्य पर विचार कर सकें। हमारे पूर्ण प्रयास करने के बाद भी आर्य समाज द्वारा प्रकाशित शास्त्रार्थ कापी प्राप्त नहीं हो सकी। तो भी मूल सामग्री से हमारा उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। हमें तो पाठकों के निर्णयार्थ मूल सामग्री को ही उद्धृत करना आवश्यक है। अस्तु।।

विदुषामनुचर :–
"लाजपत राय अग्रवाल"

एक सौ छब्बीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : कानपुर (उ०प्र०) आर्य समाज रेल बाजार

देनांक : १६ अप्रैल सन् १६१८ ई०
(साढ़े आठ बजे से साढ़े दस बजे तक)

विषय : श्राद्ध (जिवित पितरों का अथवा मृतक पितरों का?)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री ब्रज मोहन झा तार्किक शिरोमणी

अन्य उपस्थित विद्वान : श्री पण्डित नारायण प्रसाद जी आदि
(मुख्याधिष्ठाता–गुरुकुल वृन्दावन)

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

अन्य उपस्थित विद्वान : श्री पण्डित विशम्भर दत्त जी, व्याकरणाचार्य
: श्री पण्डित चन्द्रशेखर जी अग्निहोत्री आदि–२

सनातन धर्म सभा के मन्त्री : श्री विष्णु दयाल मिश्र

आर्य समाज के मन्त्री : श्री हरि गोपाल नारायण राय

आर्य समाज के उपमन्त्री : श्री शिवशंकर लाल मिश्र

आर्य समाज के प्रधान : श्री डा० फकीरे राम I.S.M.O.

शास्त्रार्थ के सभापति : श्री युत् बाबु गिरधर दास जी वकील

नोट– श्री विजय पाल जी नैष्ठिक (श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती) (वर्तमान–संचालक, सन्यास आश्रम, गाजियाबाद)

निवासी– "कपसाड़" जिला मेरठ (उ०प्र०) द्वारा यह सामग्री प्राप्त हो सकी, जिनका मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

तारीख ७ अप्रैल सन् १६१८ ई० को सनातन धर्म सभा के उत्सव पर अभी हाल में ही आर्य समाज व सनातन धर्म सभा के बीच– **"पुराण वैदिक हैं या अवैदिक ?"** विषय पर शास्त्रार्थ हो चुका था।

जिसका प्रभाव वहां की जनता पर अमिट छाप छोड़ गया था, अब आर्य समाज रेल बाजार–कानपुर का उत्सव १८ अप्रैल से २० अप्रैल सन् १६१८ ई० को ही होना निश्चित किया गया था। जिसमें सनातन धर्म सभा ने अपने पिछले कुप्रभाव को समाप्त करने हेतु आर्य समाज के उत्सव में विघन डालने की सोची, तथा अमरोधा (कानपुर) निवासी श्री पण्डित कालूराम जी को बुलाकर व्याख्यान कराया, जिन्होंने अपने स्वभावानुसार आर्य समाज को भरपेट गालियां, अपशब्द, न जाने क्या–२ कहे, इतना सुनने पर भला आर्य समाज कहां चुप बैठने वाला था, ? तुरन्त शास्त्रार्थ का चेलेंज दे दिया, तथा सभी नियम व विषय नियत्त कर दिनांक १६ अप्रैल से शास्त्रार्थ का आयोजन निश्चित कर दिया गया।

आर्य समाज की ओर से श्री ब्रज मोहन झा, तार्किक शिरोमणी तथा सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में नियत किये गये, विषय **"श्राद्ध"** का ही रक्खा गया, यह शास्त्रार्थ दिन के साढ़े आठ बजे से साढ़े दस बजे तक (१२ मिनट में लिख कर ३ मिनट में श्रौताओं के सम्मुख सुनाना) इसी रीति से होता रहा।

शास्त्रार्थ में किसी भी पक्ष का लेख घटाया या बढ़ाया नहीं गया है, उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया गया है। ब्लकि हमें जो छपी हुई प्रति जिसे सनातन धर्म सभा ने प्रकाशित कराया है प्राप्त हुई जिसमें उन्होंने अपने पक्ष की पुष्टि में अनेकानेक टिप्पणियां तथा लेख दिये हैं, हमने उन सबको यहां उदघृत नहीं किया, यह निर्णय हमने पाठकों के ऊपर ही छोड़ा है। आप लोग भी इस प्राचीन अद्भुत वाद को पढ़ें और सत्यासत्य का विचार करें। अस्तु !!

निवेदक–

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

आर्य समाज की ओर से प्रथम लेख–

भाइयों ! आज शास्त्रार्थ "**श्राद्ध**" विषय पर होना हैं, हम लोग श्राद्ध जीवित पितरों का मानते हैं, और हमारे सनातन धर्मी भाई मृतक पितरों का श्राद्ध मानते हैं। इस सम्बन्ध में निवेदन यह है कि, श्राद्ध मृतकों का हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसमें भोजनादि से मृतकों की तृप्ति होना आवश्यक है, और यह मृतकों में सम्भव ही नहीं जबकि उनको कर्मानुसार जन्म ग्रहण करना होता हैं ? यह भी साध्य कोटि में है। इसके अतिरिक्त पितर शब्द मृत पुरुषों में घटता ही नहीं। निरुक्तकार का कथन है– "**पिता पाता वा पालयितावा**"। अर्थात् पिता पालन करने वाले को कहते हैं, पितर शब्द पितृ का बहुवचन है। अतः सिद्ध है कि पालन करना मृत पुरूषों में घट ही नहीं सकता। पालन करना जीवितों में ही घट सकता है। देखिये यजुर्वेद अध्याय **१९** मन्त्र ८६ में स्पष्ट लिखा है –

> **ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।**
> **तेषां श्री मोर्य कल्पंतास्मिन् लोके शत सभाः।।**

इसमें पितर का जीवित ही होना सिद्ध है, और भी देखिये– अथर्ववेद काण्ड–१८, अध्याय–४, मन्त्र–७८, "**स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः**" इसमें पृथिवीस्थ पितरों का स्पष्ट वर्णन है, अतः सिद्ध हो गया कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही हो सकता है और वही वेद प्रतिपाद्य है।

हस्ताक्षर–

"**ब्रजमोहन झा**"

सनातन धर्म की ओर से प्रथम लेख–

भोजनादि से तृप्ति क्यों नहीं होती ? क्या आप उसी क्षण में तृप्ति मानते हैं ? वेद कहता है कि पितरों की तृप्ति होती है वे यहां आकर भोजन करते हैं,– यथा– "**ये निखाता ये परोक्ता.........................**" **इत्यादि**, पितर मृतकों को भी कहते हैं, देखिये– "**विधूर्ध्व भागे पितरो वसन्ति............**"। तथा "**ये समाना...........**
........." जो मन्त्र दिया इसमें पितरों को दी लक्ष्मी की प्रार्थना है, इससे पूर्व मन्त्र में– "**यमराज्ये**" पद पड़ा है, यम राज्य में मृतक पितर ही जाते हैं। यम का वर्णन वेदों में बहुत आया है। देखिये– "**वैवस्वन्तं संगमनं यमंराजानं हविषादुवस्य..................**" यहां पर यम को सूर्य पुत्र बतला कर हवि दिलाई है। आगे सुनों, अन्तरिक्ष दिव् में मृतक ही पितर रह सकते हैं, यथा– "**स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः स्वधापितृभ्योऽन्तरिक्ष सद्भ्यः स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः**"।। आगे देखो मनु जी महाराज ने मृतकों का श्राद्ध करना लिखा है– "**पिता यस्य निवृत्तः स्यात्**" वेद भी– "**ये निखाता..............**" मन्त्र से मृतकों का श्राद्ध करना बतलाता है। स्वामी दयानन्द जी ने मृतकों के लिए ही जल दान देना आदि लिखा है। देखिये– स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि– "**अपसव्य हो दक्षिण की तरफ मुखकर**" "**ओ३म् पितरः शुधध्वम्**" "**मन्त्र पढ़ कर जल जमीन में छोड़ दे**" नामकरण में अमावस्या के स्वामी पितर और मघा नक्षत्र के स्वामी पितरों के नाम की आहुति देनी लिखी है।

हस्ताक्षर–

"**कालूराम**"

आर्य समाज की ओर से द्वितीय लेख–

आपने मेरे उत्तर में कहा है कि, मृतकों की तृप्ति होती है। और उसमें– **"ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता..............."** आदि मन्त्र दिया है। किन्तु इस मन्त्र में मृतकों के श्राद्ध की सिद्धि कुछ भी नहीं होती। इस मन्त्र में जो **"निखाता"** आदि पद पड़े हैं, वह आत्मा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते, यथा **"गीतायाम्– "नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि.................."** आदि। इसके अतिरिक्त पितर क्या गाड़े भी जाते हैं ? इस मन्त्र का ठीक अर्थ यह है कि– **"हे अग्ने परमात्मन् जो पृथ्वी में कंदादिक पैदा होते हैं, और जिन्हें हम बोते हैं और जो दग्ध भुने हुए पदार्थ हैं उन सबको खाने के लिए (आवह) प्राप्त कराइये"**। इस सम्बन्ध में एक निवेदन और भी है और वह यह है कि आप पितर किसको कहते हैं ?

यदि आप आत्मा को पितर कहें तो यह सम्भव नहीं, वहां स्पष्ट लिखा है– **"नैव स्त्री न पुमान......."** इत्यादि। यदि कहिये कि शरीर का नाम पितर है तो यह भी सम्भव नहीं क्योंकि वह नष्ट हो जाता है, वह रहता ही नहीं, यदि आप कहें कि शरीर विशिष्ट आत्मा को पितर कहें तो भी सम्भव नहीं, क्योंकि वह सम्बन्ध विशेष मृत्यु के बाद रहता ही नहीं। इस युक्ति से भी श्राद्ध जीवित पितरों का ही हो सकता है क्योंकि वहां आत्मा और शरीर का सम्बन्ध कायम रहता है। द्वितीय एंक बात ओर भी विचारणीय है, वह यह कि मान लीजिये एक पिता के चार या थोड़ी देर के लिए पुराणों के अनुसार हजारों पुत्र हैं, और वे पृथक पृथक स्थानों पर श्राद्ध करें तो आप विचारिये उस पितर की क्या दशा होगी ? निश्चय ही उसे विविध स्थानों में एक ही समय पर पहुंचने के लिए वायुयान भी सहायक न हो सकेंगे। आपने जो लिखा है कि अन्तरिक्ष में मृतक पितर ही रह सकते हैं, यह भी ठीक नहीं है, शतपथ में स्पष्ट लिखा है **"षड् ऋतवः पितरः.................."** यही अर्थ महिधर ने भी किया है और आचार्य सायण ने पितर का अर्थ **"रश्मी"** भी किया है, अब आपका कथन कि **"पितर ही अन्तरिक्ष में रह सकते हैं"** यह अयुक्त सिद्ध हो गया। आपने मेरे कथन– **"पिता पाता वा पालयितावा"** का कुछ भी उत्तर नहीं दिया, जिसमें निरुक्तकार ने पिता का अर्थ केवल पालन करने वाला लिखा है और यह मृतकों में घटता ही नहीं। उत्तर न देना अप्रतिभा निग्रह स्थान है।

हस्ताक्षर–

"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से द्वितीय लेख–

"ये निखाता.................." इसमें शरीरों की चार दशा दिखाई हैं जिनके शरीरों की यह दशा है उनको हवि खाने के लिए बुलाने की प्रार्थना ईश्वर से है। **"आवह"** का अर्थ ले आना होता है। गमन और प्राप्त्यर्थ धातुओं के पीछे आङ् लगाने से उलटा अर्थ होता है, **"नयति आनयति............"** इत्यादि। आपत्ति में पितर गड़ते भी हैं, जैसे घोर संग्राम में। तुम जो कर्म करते हो, जो अगले जन्म में मिलेंगे उनका किससे सम्बन्ध हो, सूक्ष्म शरीर और जीव दोनों के मेल से सम्बन्ध है। जीवित पितर के आठ लड़के एक कलकत्ता दूसरा पेशावर इत्यादि में रहता हो तो जीवित पितर कैसे श्राद्ध में आवेगें ? मृतक पितरों का वायु का शरीर होता है जो लक्षों (लाखों) कोश से दो मिनटों में यहां आते हैं, वे हजारों कोश भी दो मिनट में जा सकते हैं, मुश्किल आपको है।

उदन्वती द्यौर वमा पीलुमतीति मध्यमाः।
तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते।।

इस मन्त्र में और– **"विधूर्व्व भागे........."** इसमें और **"अन्तरिक्ष सद्भ्यः........."** इन सबसे पितरों का

चन्द्रमा के ऊपर भाग में रहना सिद्ध है, अतएव मृतकों का ही श्राद्ध में ग्रहण है जीवितों का नहीं। मनु कहते है कि ब्राह्मणों का खाया भोजन पितरों को मिल जाता है, **"यस्यास्येन.............."** इति। यह भोजन मृतको को ही मिलता है न कि जिवितों को ! पिता पालने वाले का नाम ठीक है।

हस्ताक्षर–

"कालूराम"

आर्य समाज की ओर से तृतीय लेख–

आपने **"ये निखाता............."** आदि मन्त्र से शरीर की चार अवस्थाएं मानी हैं, इससे यही सिद्ध होता है कि इस मन्त्र का सम्बन्ध आप भी शरीर की स्थिति पर्यन्त ही मानते हैं, उसके पश्चात कुछ भी सम्बन्ध इसका शेष नहीं रह जाता। यदि शरीर ही को आप पितर मानें तो जलाने आदि में पितृघात का पाप आप पर पड़ेगा। हमने जो युक्तियुत अर्थ किया उस पर आपने कोई दोष नहीं दिखलाया। आङ् पूर्वक वह धातु का अर्थ आप प्राप्त कराना कहते हैं, हमारे पक्ष में भी यही है। यहां कन्द आदि को पितरों को प्राप्त कराने की परमात्मा से प्रार्थना है। आप पितरों को केवल वायु रूप बतलाते हैं, किन्तु उनको कर्मानुसार जन्म लेना होता है। इसमें आप भूल गये।

दूसरे जन्म को प्राप्त पितर, वायु रूप कैसे हो सकता है ? और उसे भोजन कैसे प्राप्त कराया जा सकता है ? हम लोगों में दो–चार पुत्रों के लिए सर्वत्र श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है किन्तु जिस पुत्र के समीप वह पितर होगा वही उसका श्राद्ध करेगा। आपने प्रमाण में **"उदन्वती.............."** इत्यादि मन्त्र पेश किया, किन्तु इसमें पितर से ऋतुओं का ग्रहण है।

अब हम बतलाते हैं कि पितर किनकों कहते हैं ? देखिये यह मनुस्मृति का वचन है– **"वेदप्रदानादाचार्य पितर परिचक्षते"**। इसमें पितर से आचार्य का ग्रहण किया है, और देखिये यजुर्वेद १६–१५ **"मानो वधी पितरं प्रोत मातरं......."** स्पष्ट कहा है, "पितरंमावधी..............." यहां मृतकों का मारना सम्भव ही नहीं। देखिये मनु भगवान कहते हैं–

जनकश्चोपनेताच यश्च विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृता।।

शतपथ ब्राह्मण में भी पितर शब्द से मृतक पितरों का कुछ भी ग्रहण नहीं हैं, वहां पर ऋतुओं को पितर कहा है। आपने संस्कार विधि का जो उदाहरण दिया है, **"ओं पितरः शुन्धध्वम्........"** इसमें भी मृत शब्द नहीं है। प्रत्युत वहां भी जीवितों से ही तात्पर्य है। और देखिये यजुर्वेद अध्याय १८, मन्त्र ६३–

आसीना सो अरूणीना मुपस्थेरयिंधनंदाशुषे मर्त्याम्।
पुत्रै का पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत इहोर्जं दध्यात्।।

अर्थात– यहां पर पितरों से प्रार्थना है कि– आप आइये तथा ऊन के लाल आसनों पर विराजिये। आप सम्पत्ति के देने वाले हो, सन्तान के लिए ऐश्वर्य का भाग हो तथा यज्ञ में बल धारण कराओ। क्या कभी मृत पितरों का भी आसनों पर बैठना सम्भव है ? मनुस्मृति का आपने प्रमाण दिया है, पहले तो यह सबका सब हमें माननीय ही नहीं इतने पर भी मनुस्मृति का तो आप जिकर हीं न करते तो अच्छा था, क्योंकि मनुस्मृति

से श्राद्ध मानने पर वह सारी प्रक्रिया सूअर आदि मारने की करनी पड़ेगी। क्या आप उसे स्वीकार करते हैं ? देखिये मनुस्मृति अध्याय – ३, श्लोक २६७ से २७२ तक*।

हस्ताक्षर–

"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से तृतीय लेख–

शरीरों को पितर नहीं लिखा, किन्तु जिनके शरीरों की यह दशा हुई है। आप इस मन्त्र के अक्षरों का अर्थ कर दें और ईश्वर के द्वारा बुलाना लिखा उसको समझाइये। कर्मानुसार जन्म ! क्या कर्मानुसार पितर पितृलोक में नहीं जाते ? यह उनका प्रकरण है जो पितृलोक को गये। निरूक्त और मनु का सामान्य वचन है, जीवित को भी पितर कहते हैं, और मृतक को भी और जो अपने को अन्न वस्त्र दे उसको भी। परन्तु श्राद्ध मनु ने केवल मरे हुए का ही लिखा है उसका आप कुछ उत्तर न दे सके, यह कहकर टाल दिया कि हम मानते ही नहीं। सत्यार्थ प्रकाश में, ५० से अधिक श्लोक मनुस्मृति के हैं उन्हें निकाल दीजिये। **क्या मीठा ग्राह्य और कटु त्याज्य** ? और देखिये–

"अध्वोमृता पितृषु सम्भवन्तु..................." वेद मृतक पितर का श्राद्ध मानता है। संस्कार विधि में अमावस्या का स्वामी पितर जिसे आप जीवित बतलाते हैं वह कहां रहता है पता बतलाओ ? तथा **"ओं पितरः शुन्धध्वम्........."** में यदि जीवित का तर्पण है तो अपसव्य क्यों ? दक्षिण की तरफ मुख क्यों ? क्या समस्त पितर, नवाब हैदराबाद के राज्य में नौकर हो गये ? सब पुत्रों को जीवित श्राद्ध नहीं लिखा इसमें वेद का प्रमाण बतलाओ ?

इतना शास्त्रार्थ हुआ, परन्तु आपने वेद से जीवित पितरों का श्राद्ध न बतलाया अतएव आपका पक्ष गिर

***तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा। दत्तेन मासं तृपयन्ति विधिपत्पितरो नृणाम्।। २६७।। द्वौ मासौ मत्स्य मांसेन त्रीन्मासान्हारिणेनतु। औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पंच वै।। २६८।। षण्मांसाश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै। अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु।। २६९।। दशमासांस्तु तृपयन्ति वराहमहिषामिषैः। शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु।। २७०।। सवंतसरं तु गव्येन पयसा पायसेन च। वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिद्वदिशवार्षिकी।। २७१।। कालशांक महाशल्काः खगलोहामिषं मधु। आनन्त्यायैव कल्पयन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः।। २७२।। (मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक २६७ से २७२)**

अर्थ– तिल, धान्य, यव उड़द, जल, मूल और फल विधिवत् देने से मनुष्यों के पितर एक मास पर्यन्त तृप्त होते हैं।। २६७।। मछली का मांस श्राद्ध में खिलाने पर पितर दो महीने तक तृप्त रहते हैं। हरिण के मांस से तीन महीने, मेढ़ा के मांस से चार महीने, पक्षियों के मांस से पांच महीने तृप्त रहते हैं।। २६८।। **क्या अब भी मृतक श्राद्ध को प्रक्षिप्त न मानियेगा** ? यह श्री पं० तुलसीराम स्वामी कृत भाष्य है, सभी भाष्यों में ऐसा ही वर्णित है।

आगे देखिये– और बकरे के मांस से छः महीने और चित्रमृग के मांस से सात महीने, एण मृग के मांस से आठ महीने और रूरू मृग के मांस से नौ महिने।। २६६।। सूकर और भैंसे के मांस से दश महीने तक तृप्त रहते हैं, और शशा (खरगोश) और कछुवे के मांस से ग्यारह महीने तक पितरों की तृप्ति रहती है।। २७०।। गाय के दूध की खीर से एक वर्ष पर्यन्त और वाध्रीणस (लम्बे कान वाले बकरे) के मांस से बारह वर्ष तक पितरों की तृप्ति रहती है।। २७२।।

इससे अधिक स्पष्ट उत्तर और क्या चाहिए था? पाठकों की जानकारी हेतु यहां पर मूल सहित सविस्तार वर्णन दिया गया है।

विदुषामनुचरः–

"लाजपतराय अग्रवाल"

गया। पितरों के स्वामी यम को बलि देना लिखा, इसका क्या उत्तर है ? **"ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। त्वं तान्वेत्थ यदि ते जातवेद इति।।"** इस मन्त्र में मृतक पितरों को बुलाया गया देखिये–

अपेवं जीवा अरून्धन गेहे भ्यस्ततिर्वहत्परि ग्रामादितः।
मृत्युर्यम स्यासी दत्त प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार।।

इस मन्त्र में मृतक पितरों का यम के यहां जाना लिखा, उसी यम को बलि लिखा। **"आसीना........"** में मृतक पितरों को आसन है। जीवितों का नाम नहीं। मांस का श्राद्ध उन देशों के लिए है जहाँ अन्न बिल्कुल नहीं होता। अन्न वाले देश के लिए लिखा है कि– **"आनन्त्यायैव........."**।

हस्ताक्षर–

"कालूराम"

आर्य समाज की ओर से चतुर्थ लेख–

आपने **"ये निखाता........"** आदि मन्त्र के लिए लिखा है कि **"अक्षरों का अर्थ कीजिये"**। पण्डित जी ! अक्षरों का अर्थ नहीं हुआ करता। अर्थ शब्दों का हुआ करता है। और शब्दार्थ हम पहले ही कर चुके हैं। आपने लिखा है कि, जीवित पितरों को परमात्मा कैसे प्राप्त कराता है। किन्तु वहां हमने कन्द फलादिकों को परमात्मा के द्वारा प्राप्त होना लिखा है। आप इस विषय को हमारे पहिले पत्र में फिर पढ़िये। मनुस्मृति को हम उतना ही मानते हैं उसका जितना भाग वेदानुकूल है शेष (प्रक्षिप्त) को नही।

आपने कहा है कि हमने जीवित पितरों के लिए कोई प्रमाण नहीं दिया, विदित होता है कि आपने हमारे द्वारा दिये– **"आसीनासो........"** आदि मन्त्र को पढ़ा ही नहीं। आपने जो दक्षिण दिशा के लिए आपत्ति की है उसका प्रकृत विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। देखिये आपके मान्य ग्रन्थ ऋषि पंचमी में कुतिया और बैल का कैसा सम्वाद है ? – **"शृणुकान्त वचं मह्यं या दृशं कृतवान् वधूः।"** इत्यादि इसमें कुतिया ने बैल से कहा है कि ऐसे श्राद्ध से क्या प्रयोजन ? जो खाये तो ब्राह्मण और हम माँ–बाप को डन्डे लगें। पहिले पत्रों में हमने आपसे जो प्रश्न किया था, कि आप पितर कहते किसको हैं ? अर्थात् शरीर को ! आत्मा को !! अथवा शरीर विशिष्ट आत्मा को !!! आपके मतानुसार तीनों पक्षों में दोष आता हैं। आपने जो पूछा कि कर्मों का सम्बन्ध किससे हैं ? और आपने उसे सूक्ष्म शरीर और जीव के सम्बन्ध से माना है, हमें भी यह स्वीकार है परन्तु सूक्ष्म शरीर और जीव मिलकर पिता–माता नहीं बना करते, यह सभी जानते हैं। आपने एक वाक्य– **"विधूर्ध्व भागे......."** इत्यादि दिया है। उसका आपने पता भी नहीं दिया। इसके अतिरिक्त पितर शब्द के अनेक अर्थ हैं और उन्हें हम सिद्ध भी कर चुके हैं, पितर का अर्थ सूर्य तथा रश्मि भी है और उनका निवास स्थान चन्द्रमा है अतः यह वाक्य भी हमारे ही अनुकूल हो गया। इसके अतिरिक्त आपको श्राद्ध शब्द का अर्थ भी करना चाहिये।– **"श्रत सत्यं धीयते अनयासा श्रद्धाश्रद्धया कृतं श्राद्धम....."** यहां पर न तो विशेषतः भोजन का सम्बन्ध है और न मृत पितरों का ! जो कोई भी कर्म उपर्युक्त लक्षणों से युक्त हो वही श्राद्ध है। इसके अतिरिक्त पुत्र श्राद्ध करेगा और फल प्राप्ति आप उसके पिता को मानते हैं। ऐसा करने से कृतहानि और अकृताभ्यागम दोष आप पर पड़ेगा। और भी देखिये अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म पितामह ने बतलाया है कि मृतश्राद्ध निमि राजा के समय से चला (आरम्भ हुआ) है। अब उससे पहले मृतक श्राद्ध न करने से, पहले पुरूषों की क्या दशा हुई होगी ? **"आसीना..........."** से मृतक पितरों को आप आसन

देना मानते हैं, किन्तु यह सर्वथा असम्भव है, क्या आपने कहीं मृत पितरों को आसनों पर बैठे देखा हैं ? मांस का विधान उन देशों के लिए है जहां अन्न नहीं होता। इस कथन के लिए आपको मनु का ही प्रमाण देना चाहिये था, बिना प्रमाण के आपका कथन मान्य नहीं, अन्न तो सभी जगह प्राप्त हो सकता है, यह भी प्रत्यक्ष है। आपने जो– **"अध्वोमृता पितृ.........."** आदि मन्त्र दिया है उसका कोई पता नहीं फिर उसका उत्तर ही क्या दिया जाये ? अन्त में जनता यह जान कर प्रसन्न होगी कि आपने आर्य समाज का पक्ष मान लिया है अर्थात् यह कि **"पितर का अर्थ जीवित माता–पिता ही है"**।

हस्ताक्षर–

"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से चतुर्थ लेख–

अक्षरमय ही शब्द होता है। अर्थ फिर कपोल कल्पित सायण विरूद्ध किया। तर्पण में दक्षिण की तरफ मुख करना प्रकरण विरूद्ध बतलाते हैं, क्या मूर्ति पूजा का शास्त्रार्थ हैं ? कुतिया की कथा को प्रमाण मान कर ही आर्य समाज श्राद्ध छोड़ बैठा है। इससे छोड़ें तो सनातन धर्मी छोड़ेगें। आपके पास जीवित श्राद्ध का क्या प्रमाण हैं ?– **"एवमपसव्येन चत्रींस्त्रीनञ्जलीन्दद्यात्पितृभ्यः........."** यह स्वामी दयानन्द जी का लेख है इससे मृतक श्राद्ध सिद्ध है। – **"स्वधायिभ्य'..........."** इस मन्त्र से स्वामी दयानन्द जी ने एक कौल (ग्रास) पितरों को देना लिखा है, एक कौल में जीवित पितरों का पेट नहीं भर सकता, यह मृतकों को ही अन्न देना दर्शाता है। **"सानुगाय यमाय नमः.........."** मन्त्र से स्वामी दयानन्द जी ने मृतक श्राद्ध बतलाया है, जिसका समाज के पास कोई उत्तर नहीं। हमने – **"वैवस्वतम्........"** मन्त्र लिखा, आपने इसे छुआ तक नहीं, आसन पर मरे हुए ही बैठते हैं और मरे हुए ही आते–जाते हैं। **"प्रेहि–प्रेहि........"** मन्त्र देखिये ? हमने जो मन्त्र दिया वह अथर्व वेद के काण्ड १८ का था, आप जान कर टाल गये उसमें आपकी पोल खुलती थी। सूर्य या रश्मि, पितर हैं, यह कहीं नहीं लिखा। षड् ऋतु पितर भोजन को नहीं आते, दिव्य शरीर वाले पितृ लोक को गये, हमारे पुरूखा आते हैं। आपने– **"श्राद्ध प्रेतान्पितृंश्च निर्दिश्यभोज्यं यत्प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्त्तिम्"**।। आपने इस श्रौत लेख को आधा लिखा, आधे में आपका पक्ष गिर गया। संस्कार विधि के अमावस्या के स्वामी पितर का पता नहीं– **"ये निखाता........"** का कोई ठीक अर्थ नहीं। जीवित पितर का एक लड़का श्राद्ध करे इसमें कोई प्रमाण नहीं। हमारे– **"अनन्त्या यैव कल्पन्ते........."** का कोई उत्तर नहीं।

हस्ताक्षर–

"कालूराम"

नोट–

यह शास्त्रार्थ यहीं समाप्त होता है, जो अनेकों प्रमाणों से युक्त है आप स्वयं विचारिये तथा निर्णय करिये। वैसे अमर स्वामी जी महाराज ने एक पुस्तक **"जीवित पितर"** अपने जीवन काल में लिखी थी, तथा उसे सर्व प्रथम कलकत्ते से प्रकाशित कराया गया था। जिसमें एक सौ चौबिस प्रमाण केवल इसी बात पर अकिंत थे कि **"पितर" जीवित ही होते हैं, मरे हुए नहीं"**। यह पुस्तक अभी भी मिलती है आप प्रकाशन से मंगा सकते हैं।

निवेदक–

"लाजपत राय अग्रवाल"

एक सौ सत्ताईसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : कानपुर (उ०प्र०) (आर्य समाज रेल बाजार)

दिनांक	:	२० अप्रैल सन् १९१८ ई०
विषय	:	मूर्ति पूजा ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	सर्वश्री बृजमोहन झा तार्किक शिरोमणी
सहायक	:	पण्डित नारायण प्रसाद जी (गुरुकुल वृन्दावन)
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	पण्डित कालूराम शास्त्री
सहायक	:	पण्डित विशम्भरदत्त जी व्याकरणाचार्य
	:	पण्डित चन्द्रशेखर जी अग्निहोत्री
सनातन धर्म सभा के मन्त्री	:	विष्णु दयाल मिश्र
आर्य समाज के मन्त्री	:	हरिगोपाल नारायण राय
आर्य समाज के उपमन्त्री	:	शिवशंकर लाल मिश्र
आर्य समाज के प्रधान	:	डा० फकीरे राम I.S.M.D.
शास्त्रार्थ के सभापति	:	बाबु गिरधरदास जी वकील

नोट– श्री विजय पाल जी नैष्ठिक (वर्तमान–(स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती) संचालक–सन्यास आश्रम, गाजियाबाद) द्वारा यह सामग्री प्राप्त हुई, जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

आज तीसरे दिन शास्त्रार्थ **"मूर्ति-पूजा"** पर होना निश्चित हुआ था। आर्य समाज और सनातन धर्म के विद्वानों ने आपसी विचार विमर्श से १५ मिनट के समय को थोड़ा समझते हुए बीस मिनट कर लिया तथा पहले दिन पूर्व पक्ष आर्य समाज का था, आज सनातन धर्म का निश्चय किया गया, प्रथम अपने लेख को लिखकर पुनः सुनाने का क्रम कल की भाँति आज भी चलाया गया।

जो विद्वान कल शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में नियत थे वही आज भी रहे। शास्त्रार्थ बड़े ही शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त हुआ। इसमें भी हमने कोई किसी भी प्रकार की टिप्पणी नही दी जैसा कि पुराने छपे हुए शास्त्रार्थ में सनातन धर्म की ओर से अपनी पुष्टि में टिप्पणी दी गई हैं।

हम यह निर्णय पाठकों पर ही छोड़ते हैं, वह स्वयं पढ़कर निर्णय करें कि किसका पक्ष मजबूत है ? तथा सच्चाई क्या है ? और उसे ही जीवन में धारण करें। शास्त्रार्थ तो स्वयं अपने आपमे ही **"नीर क्षीर विवेक"** का कार्य करता है।

निवेदक-

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

सनातनधर्म की ओर से प्रथम लेख–

आर्य समाज मूर्तिपूजा का जो खण्डन करता है। वह बड़ी भारी भूल करता है, क्योंकि स्वामी दयानन्द जी ने भी विविध प्रकार की मूर्तियों का पूजन अपने ग्रन्थों में करना लिखा है। संस्कार विधि में– **"ओ३म् सानुगाय यमाय नमः। ओ३म् मरूदभ्यो नमः।"** इस पञ्चमहायज्ञ के प्रकरण में यम, मरूत, जल, औखली, मूसल, लक्ष्मी, भद्रकाली, मकान के देवता को एक–एक कौल (ग्रास) दाल भात से बलि देना (भोग लगाना) आदि लिखा है।

आर्याभिविनय में– **"वायवायाहि........."** इस सातवें मन्त्र में निराकार ईश्वर को सोमवल्ली के रस का भोग लगाना लिखा है। संस्कार विधि में–**"ओ३म् ओषधे त्रायस्व........"** इस मन्त्र के द्वारा कुशा से प्रार्थना करनी लिखी है। यजुर्वेद में– **"घृतेन सीता मधुना.........१२–७०"** के मन्त्र में खेत के पटेले (पहटा) पर घी, दूध, जल, शक्कर, शहद, चढ़ाना लिखा है। संस्कार विधि में–**"ओ३म् विष्णोर्दंष्ठ्रोसि........"** इस मन्त्र के आगे छुरे को नमस्ते करना और उससे बालक की रक्षा करने हेतु प्रार्थना की गई है, यह सब मूर्तिपूजन है। और वेद में भी–**"तं यज्ञं बर्हिषि प्रोक्षन्......."** मन्त्र में लिखा है कि ऋषियों और देवताओं ने आरम्भ में परमात्मा का पूजन किया। **"यजामहे सुगन्धिंपुष्टि वर्धनम्........"** मन्त्र में पूजन करना लिखा है। यजुर्वेद माध्यन्दिनीय शाखा अध्याय ३७ में महावीर नामक प्रजापति की मूर्ति बनाई जाती है। इसका पूजन होता है। **"प्रादेश मात्रं प्रादेश मात्रमिति........."** आदि।

हस्ताक्षर–

"कालूराम"

आर्यसमाज की ओर से प्रथम लेख–

मूर्तिपूजा सिद्ध करने के लिए आपको सर्वप्रथम तो कोई वेदमन्त्र देना था किन्तु ऐसा आपने नहीं किया। करते भी कहां से ? वेद में कोई ऐसा मन्त्र ही नहीं है जिससे मूर्तिपूजा सिद्ध होना सम्भव हो और आपके किसी मन्त्र का प्रमाण न देने से भी यही सिद्ध हो गया कि– **"वेद में तो मूर्तिपूजन का विधान नहीं है"**।

आपने जो संस्कार विधि के पंचयज्ञ का उदाहरण देते हुए ओखली, मूसल आदि पर बलि देना लिखा है, यह बिल्कुल मिथ्या है। वहां पर ऐसा पाठ कहीं भी नहीं है। आप पब्लिक को धोखा क्यों देते है ? उस स्थान पर अनेक भागों का रखना मात्र है, पुनः स्पष्ट लिखा है कि– **"उन भागों को यदि कोई अतिथि आ जाये तो उसे दे दें अन्यथा अग्नि में डाल दे"**। आपने इस पाठ को क्यों छिपाया ? आपने आर्याभिविनय से एक मन्त्र दिया है जो कि ऋग्वेद में आया है यदि इसका आप भाष्य देख लेते तो आपको पता चल जाता, वहां पर **"पाहि"** का अर्थ पालन किया है। आप इतना परिश्रम क्यों करने लगे ? संस्कार विधि में– **आगत–"ओ३म् औषधे त्रायस्व........."** आदि मन्त्रों से उन–उन चीजों का पूजन कहीं नही लिखा है किन्तु कार्य करने वाले को आदेश किया है कि उनको पवित्र रक्खें। यजुर्वेद में– **"आगत घृतेन सीता मधुना........"** मन्त्र पर आक्षेप है। इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है ? वहां पर पटेले में घी लगाना लिखा

है न कि पूजा करना। घी इसलिए लगाते हैं कि वह फटने न पावे।

आपने–"**तं यज्ञं**..........." मन्त्र से मूर्तिपूजन सिद्ध करना चाहा है किन्तु वहां मूर्ति का नाम भी वही है। इसमें तो आप बुरे फँसे, आपको कोई ऐसा मन्त्र देना था जिसमें विधि वाक्य से मूर्तिपूजन का विधान पाया जाता हो। अब हम आपको एक ऐसा मन्त्र देते हैं कि जिससे मूर्ति पूजा का सर्वथा खण्डन होता है और उस पर आपको कुछ भी एतराज होना ही नही चाहिये, सुनिये :–

स पर्य्यगाच्छुंक्रं मकायम ब्रण मस्नाविरं शुद्धम् पाप विद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽथन्यिद धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।। ८।।

(यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र ८)

देखिये इस पर अपने ही आचार्य महीधर का भाष्य :–

य एवमात्मानं पश्यति सईदृशं ब्रह्म पर्यगात् परिगच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः। कीदृशम्। शुक्रं शुक्लं शुद्धं विज्ञानन्द स्वभावम् अचिन्त्यशक्ति। अकायं न कायः शरीरं यस्य तत्। अकायत्वा देव अव्रणम् अक्षतम्। अस्नाविंर न विद्यन्ते स्नावाः शिरायत्र तदस्नाविरं स्नायुरहितम्। अकायत्वा देव इत्यादि।।

कहिये इस मन्त्र और इसके भाष्य में परमात्मा को "**अकाय**" अर्थात् शरीर से रहित कैसे स्पष्ट शब्दों में लिखा ? और जब उसका शरीर ही नहीं तो–"**नष्टे मूले नैव शाखा न पत्रम्**" के अनुसार उसकी मूर्ति होना सम्भव ही नही। कहिये क्या अब भी आप उसक़ी मूर्ति बनाना और उसकी पूजा करना वेद प्रतिपाद्य बतलाने का साहस करेगें ? और देखिये परमात्मा को इन्द्रिय रहित उपनिषदों में कैसा स्पष्ट कहा है :–

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।

श्वेताश्वेतर उपनिषद, ३/१२।।

अर्थात् उस परमात्मा की कोई इन्द्रिय नही है। किन्तु सब इन्द्रियों का काम वह बिना इन्द्रियों के ही करता है। कहिये क्या ऐसे परमात्मा की मूर्ति बनाना और उसे पूजना सम्भव है ? कहां तक लिखें वेदादिकों में कहीं भी मूर्तिपूजा का विधान नही पाया जाता इसके विपरीत स्थल–स्थल पर लाखों प्रमाण मूर्तिपूजा के विरूद्ध मिलते हैं। यदि उन सबको लिखने बैठें तो एक बड़ा भारी पौधा केवल प्रमाणों ही का बन जाय इसलिए प्रार्थना है कि आप इन पर विचार करें और यदि आत्मिक बल हो तो स्पष्ट स्वीकार करें कि हमारा कथन ठीक है।

हस्ताक्षर–

"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से द्वितीय लेख–

मैने वेद के दो मन्त्र दिये, एक– "**तं यज्ञं....**" दूसरा– "**त्र्यम्बकं यज्ञामहे....**" इनका आपके पास कोई उत्तर नही था इसलिए छोड दिये। "**वायवा.........**" मन्त्र का ऋग्वेद भाष्य। किसका बनाया ऋग्वेद भाष्य देखें फिर ऋग्वेद भाष्य क्या करेगा ? निरूक्तकार ने इस पर "**पिव**" लिखा है। "**पिव**" का अर्थ पान है, रक्षा

नही, इसको साफ करें, छिपाते क्यों हैं ? कार्य करने वाले को नही कहा ब्लकि छुरे से कहा है कि मैं तुझे नमस्ते करता हूँ। बच्चे को मत मार, आपने अपनी तरफ से बाल साफ करना लिखा है। आपके पास उत्तर नही टालना चाहते हैं।

संस्कार विधि में ओखली व मूसल साफ लिखा है, सबको एक–एक बलिदान लिखा है। मकान का देवता कौन है ? आप मिथ्या भाषण करके काम न चलाइये संस्कार विधि पढ़कर सुनाइये। पटेला फटे नही यह आपने अपनी तरफ से लिखा है। वहां पर तो यह लिखा है कि–**"पटेला (पहटा) हमको घी देगा"**। शक्कर, घी शहद से पुष्ट होता है, इसमें प्रमाण दीजिये।

आपने यह प्रमाण दिया कि ईश्वर निराकार है। निराकार ही नही किन्तु निराकार और साकार दोनों है। **"द्वेवाव ब्रह्मणों रूपे मूर्तञ्चा मूर्तञ्च......."** अब दूसरा देखिये–**"उभयम्बा एतत्प्रजापतिः........."** – **"प्रजापतिश्चरति गर्भे........"** इस मन्त्र में साफ लिखा है कि अजन्मा ईश्वर गर्भ में आता है। उसके स्वरूप को धीर पुरूष देखते हैं जिस ईश्वर में समस्त भुवन ठहरे हैं।–**"एषोह देवाः...."** इस मन्त्र में लिखा है कि यह ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में सबसे प्रथम **"जातः"** प्रकट उत्पन्न हुआ आगे को होगा। अतः शरीरधारीपन उसका सिद्ध है। इसमें स्वामी जी को भी विरोध नही है। **"इदं विष्णुर्विचक्रमे......."** में वामन अवतार और **"वराहेण पृथिवी संविदाना......."** में वाराह अवतार–**"पूर्वो यो देवेभ्यः........"** में ब्रह्मा अवतार लिखा है।

हस्ताक्षर :–

"कालूराम"

आर्यसमाज की ओर से द्वितीय लेख–

"तं यज्ञं......." का उत्तर हम दे चुके। उसमें मूर्ति शब्द भी नही। **"बर्हिषि"** शब्द से आचार्य महिधर ने भी मानस यज्ञ का ग्रहण किया है। **"वाहि वाहि......."** के अर्थ में आपने स्वामी दयानन्द के मन्त्र पर आक्षेप किया था, उसका समाधान कर दिया गया। आपने छुरे को नमस्ते करना लिखा है। यह भी सरासर गलत है। उसमें नमस्ते करना कहीं नही लिखा जिसे आप दिखा नही सके, बल्कि वहां लिखा है कि इस मन्त्र को बोलकर छुरे को दाहिने हाथ में ले। मकान देवता का आपने जिकर किया है किन्तु हमने तो मकान शब्द का उच्चारण भी नही किया। फिर आप हमें ही झूठा बतलाते हैं, भला इस न्याय का भी कोई ठिकाना है? जो कुछ हो हम आपके गालिप्रदान को सिर पर लेते हैं। हमारे पास गालियाँ नहीं हैं। पटेला घी से पुष्ट होता ही है, इसमें आपको क्या शंका? अब हम मन्त्रों की ओर चलते हैं। इस सम्बन्ध में आपने निराकार तो मान ही लिया अब साकार देखना है।

"द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे......." इत्यादि में केवल यह बतलाया है कि इस जगत के दो रूप हैं, एक मूर्त और दूसरा अमूर्त। मूर्त से पृथ्वी जल आदिक और अमूर्त से वायु आदिक का प्रदर्शन है। " **प्रजापतिश्चरतिगर्भे. ......"** इस मन्त्र को आपने आधा क्यों पढ़ा? मन्त्र यह है कि–**"प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तर जायमानः........ "** इसमें कैसी खूबसूरती से परमात्मा को बतलाया है कि वह पैदा न होते हुए भी गर्भो में व्यापक है, लिखा भी है। **"आकाशवत् सर्व गतश्च नित्यः........"** आपने एक मंत्र और **"इदं विष्णुर्विचक्रमे......."** लिखा है। इसमें विष्णु शब्द का अर्थ **"वेवेष्टी व्याप्नोति इति विष्णुः......"** और यह मन्त्र सीधा सूर्यपरक है क्योकि वह त्रेधा तीन स्थलों पर अपनी किरणों को प्रकाशित करता है। महाभारत आदि में भी विष्णु से सूर्य लिया है।

इससे आपने अवतार ग्रहण किया है, यह विषयान्तर निग्रह स्थान है। और भी देखिये शंकर स्मृति क्या कहती है ? "**रूपं रूप विवर्जितस्य भवतो.......**" इस प्रकरण में – "**व्यापित्वञ्चंनिराकृतं भगवतो यत्तीर्थ यात्रादिना। क्षन्तव्यं जगदीश तद्धि भवता दोषत्रयंमक्तम्.........**" और देवी भागवत स्कन्ध ३, अध्याय ६, श्लोक ७० में लिखा है–

दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं न भविष्यति।
निर्गुण परमात्मा सौ न तु दृश्यः कदाचन।।

अध्याय ७, श्लोक ६ में ब्रह्मा जी ने कहा है :–

निर्गुणस्य मुने रूपं न भवैद्दृष्टि गोचरम्।
दृश्यं च नश्वरं यस्मात् अरूपं दृश्यते कथम्।।

इसमें कैसा स्पष्ट दिया है कि जो अरूप है, वह दृश्य कैसे हो सकता है ? और जो दृश्य है, वह नश्वर अर्थात नाश होने वाला है। इसलिए उसकी मूर्ति नहीं हो सकती। और उपनिषद भी कहता है – "**अशब्दमस्पर्शमरूप अव्ययम्.......**" इत्यादि देखिये यह कैसे अच्छे शब्द हैं ? और देखिये कूर्म पुराण क्या कहता है ?

अपाणिपादो जवनो गृहीता ह्रदि संस्थितः।
अचंक्षुरपि पश्यामि तथा कर्णः श्रणोम्यहम्।।

इसमें कैसा साफ लिखा है कि मूर्ति हो ही नही सकती। आगे देखिये महाभारत क्या कहता है ?

तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ठ पाषाण्मृण्मये।
प्रतिमादौमनो येषां ते नराः मूढ़ चेतसां।।

पशु यज्ञ और प्रतिमादि पूजा को यहां स्पष्ट मूर्खों का कार्य लिखा है। अब हम एक स्पष्ट मन्त्र यजुर्वेद का देते हैं। उस पर आप यदि महिधर का भाष्य ही देख लें। तब भी आपको मूर्तिपूजा त्याज्य ही माननी पड़ेगी, देखिये–" **न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः**" । (यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३) इसपर आपके माननीय आचार्य महिधर का भाष्य भी देखिये–

महीधर भाष्य– "यस्य पुरूषस्य प्रतिमा प्रतिमान मुपमानं किंचिद्वस्तु नास्ति प्रसिद्धं महत् यशः यस्यास्ति इत्यादि।" देखिये कैसा स्पष्ट इस मन्त्र के भाष्य में आपके आचार्य ने भी परमात्मा को प्रतिमा रहित माना है। क्या इस मन्त्र के वेदों में होते हुए भी आप मूर्ति के नाम पर लोगों से धन हरण करने का साहस करते ही रहेंगे। अब ऐसा कदापि सम्भव नही। इस मन्त्र के शब्द बहुत स्पष्ट है; एक साधारण भाषा जानने वाला भी इसके अभिप्राय को समझ सकता है। इतना ही नही यदि आपने अपने महामान्य ग्रन्थ श्री मद्भागवत् को भी ध्यानपूर्वक पढ़ा होता तो आपको स्पष्ट पता चल जाता कि मूर्तिपूजा त्याज्य ही नही किन्तु उसका करना एक मूर्खता और पाप में शामिल है। देखिये श्री मद्भागवत दशम स्कन्द अध्याय ८४/१३,–

यस्यात्म बुद्धिः कुणपेत्रिधातुके। स्वधीःकलत्रादिषु भौमइज्यधीः।
यःत्तीर्थ बुद्धिः सलिलेनकर्हिचित्। जनेष्वभिज्ञेषु सः एव गोखरः।।१।।

यहाँ भागवत ने कहा है। इस पर अपने ही आचार्यों का संस्कृत भाष्य भी देख लीजिये–" **अतो यस्य वात पित्त श्लेष्म युक्ते शरीरे आत्म बुद्धिः कलत्रादिषु स्वधीया इति बुद्धिः। भू विकारे प्रतिमादौ देवता बुद्धिः सदारूनो वृष खर इव ज्ञातव्यः।।**"

भाषार्थ–

जो वात्त–पित्त युक्त शरीर को आत्मा समझता है, कलत्रादि को अपना समझता है, और भू विकार अर्थात् मिटट्ी या पत्थर से बनी चीजों मे देवता बुद्धि रखता है। वह बिलकुल मूर्ख और विद्वानों की दृष्टि में पशु के समान है। कहिये अब आप क्या पसंन्द करते है ? या तो इस श्लोक में जो लिखा है सो बनना पसन्द कीजिये अन्यथा मूर्ति पूजा छोडिये या कम से कम इस भागवत पुराण के श्लोक पर हरताल फेरिये। पब्लिक यह जानकर आश्चर्य करेगी कि हमारे प्यारे सनातनधर्मी पण्डितगण उनका धन भी हरते हैं और उन्हें पशु भी बनाते हैं। कहिये पण्डित जी ! क्या अब भी आप मूर्ति पूजा सिद्ध करने का साहस करेंगे। परमात्मा करें आप हमारी बात मान लें और सनातनधर्मी समुदाय को पशु बनाना छोड दें मुझे वास्तव में बड़ा दुख है कि मेरे भाईयों को बिल्कुल चौडे में लूटा जाता है और उन्हें पशु बनाया जाता है।

हस्ताक्षर–

"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से तृतीय लेख–

"न तस्य प्रतिमा अस्ति......." इस मन्त्र से आर्य समाज मूर्तिपूजा का खण्डन करता है। किन्तु इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ–" **प्रतिमीयते अनयासा प्रतिमा......**" होता है। अर्थ यह हुआ कि–उसके तुल्य (समान) कोई नही। आगे इसमें आता है कि–"**यस्य नाम महद्‌यशः**" अर्थात् जो बडे भारी यश वाला है। यश वाला कहने से मूर्ति का खण्डन नही होता बल्कि मण्डन होता है। संसार में यशवालों की ही मूर्ति होती हैं। आर्य समाज सबसे अधिक यशवाला स्वामी दयानन्द जी को मानता है। अतएव उनकी मूर्ति (फोटू) छपवाता है। प्रभु जार्ज पञ्चम के बराबर कोई यशवाला नही अतएव आपकी मूर्ति, गिन्नी, रूपया, दुअन्नी, एकन्नी, टिकट, आदि पर बनती है। इसमें "**हिरण्यगर्भ.......**" मन्त्र की प्रतीक है।

"**हिरण्यगर्भ.......**" मन्त्र का अर्थ यह है कि हिरण्यगर्भ ईश्वर सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ था और इसी मन्त्र से यज्ञ में प्रजापति ईश्वर की मूर्ति बनाई जाती है। कल्पसूत्र लिखता है कि– "**अथ पुरूष मुपदधाति स प्रजापतिः स यजमानः**" इत्यादि। तथा शतपथ कहता है कि– "**अथ साम गायतिः.......**" (शतपथ,७–४–१–२२)।। अर्थात– जब पुष्कल पत्र में ईश्वर की मूर्ति बनाई, देवता स्तुति करने लगे। स्तुति के बाद देखा कि–इसमें चेतनता नहीं आयी, फिर साम गाया, ईश्वर प्रकट चेतन हुआ। इस कारण "**न तस्य. ......**" मन्त्र में मूर्तिपूजा का खण्डन नही बल्कि मण्डन है। आर्य समाज के पास इसका क्या जवाब है ? छुरे वाली बात को आप टालते आ रहे हैं, संस्कार विधि में लिखा है कि–" **शिवो नामासिस्वधितिस्ते पिता नमस्ते.........**" फिर आगे लिखा है कि–"**मामाहिꣳसीः........**" जिसका अर्थ यह है कि–इसको मत मार। तथा "**वास्तुस्पतये नमः.........**" यह मन्त्र पढ़कर जो भोग लगाया जाता है। इस मन्त्र में कहा कि मकान का देवता कौन है ? हमने कौन सी गाली दी? पढ़ कर सुनाइये। "**द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे.........**" यहां पर ब्रह्म शब्द से

आपने जगत ले लिया, ब्रह्म से ईश्वर का ग्रहण होता है, सब जानते हैं। " **उभयं वा एतत्प्रजापतिः.......**" इसका उत्तर आप नही देते। वाराह अवतार को आपने साफ उड़ा दिया। मानो हमने कहा ही नही। अब बतलाईये हम निग्रह स्थान में आये या आप ? आपने प्रथम कहा कि ईश्वर निराकार है। उसका उत्तर साकार होना, हमने कहा। ब्रह्मावतार का जवाब भी गायब है।

"**अशब्द ....**" आदि जो आपने प्रमाण दिये, जिन उपनिषदों में इन श्रुतियों से निराकार लिखा। उसी में दूसरी श्रुतियों के अन्दर साकार भी लिखा है। हमने "**अपाणि पादो.......**" के आगे की श्रुति "**एषो है देवाः. ....**" पहले ही लिख दी। आपने कुछ भी उत्तर नही दिया। "**प्रजापतिश्चरति........**" मन्त्र का साफ–साफ अर्थ स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि अजन्मा ईश्वर गर्भ में आता है और बहुत रूपों में प्रकट होता है। उसके स्वरूप को धीर लोग ही देख पाते हैं। जिसमें संसार ठहरा हुआ है। उसी ईश्वर के रूप को "**तं यज्ञं......**" मन्त्र के अर्थ से साफ निकलता है कि सृष्टि के आरम्भ में देवताओं ने ईश्वर का पूजन किया।

"**यजामहे........**" का कोई जवाब नही दिया। "**इदं विष्णु.......**" **मन्त्र का** सीधा–सीधा अर्थ है कि विष्णु ने इस संसार को नापा, और तीन कदम रखे। विचक्रमे क्रिया पैर के उठाने धरने में ही बनती है, फिर आप सूर्य किरणें किस व्याकरण से अर्थ करते हैं ? पुराण अब की बारी मैं लिखूंगा।

हस्ताक्षर–

"कालूराम"

आर्य समाज की ओर से तृतीय लेख–

आपने "**न तस्य प्रतिमा अस्ति........**" का अर्थ जो दिया है। उसके सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि आप इस पर महिधर भाष्य को देख लें। उसमें "**प्रतिमा प्रतिमानं उपमानम् किंचिद् वस्तुनास्ति.......**"। आपने " **एषो ह देवः.......**" इत्यादि मन्त्र दिया है, इस पर भी यदि आप महिधर का भाष्य देख लें तो शंका मिट जाये, उनका भाष्य है–"**गर्भे अन्तः गर्भ मध्ये स उ स एव तिष्ठति।**" वह गर्भ में व्यापक है, यश वालों की मूर्ति होती है किन्तु उसका पूजन कोई नहीं करता। आपने जार्ज पञ्चम और ऋषि दयानन्द की मूर्ति होना बतलाया है, किन्तु आपको यह भी बतलाना था कि क्या उनकी पूजा भी की जाती है ? क्या उन पर चन्दन अक्षत आदि भी चढ़ाये जाते है ? और उनसे प्रार्थनाएँ की जाती है। यह उदाहरण आपके सर्वथा प्रतिकूल है। "**हिरण्यगर्भ.........**" से भी मूर्ति बनाना कहीं नही सिद्ध होता। आपने जो संस्कार विधि का मन्त्र पढ़ा है। वह स्वामी दयानन्द जी महाराज ने छुरे के लिए नहीं लिखा है, किन्तु वह वेद मन्त्र है। "**प्रजापतिश्चरति. ......**" का उत्तर हम दे चुके हैं। आपने जिस मन्त्र में वाराहअवतार का जिक्र किया है। सौ उसका पहले तो प्रकृति विषय से कोई सम्बन्ध नहीं। इतने पर भी उससे अवतार सिद्ध नही हुआ। यदि आपने निरुक्त देखा होता तो पता लग जाता। "**वरम् आहारो भवति.......**" इत्यादि अनेक अर्थ वहां लिखे हैं। उनमें किसी से भी अवतार सिद्ध नही होता।

जिन उपनिषदों से हमने निराकार सिद्ध किया है। उनमें आप साकार भी मानते हैं। यह तो श्रुति विरोध हो गया और न आपने उन श्रुतियों को लिखा। इस स्थान पर भी आप निगृहीत हुए। विष्णु का अर्थ हम व्यापक सूर्य बतला चुके हैं। श्वेताश्वेतर उपनिषद में लिखा है कि–"**न तस्य कार्य करणं च विद्यते न तत् समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते।। ६–८।।**" ऐसी दशा में उसकी मूर्ति बनाना और पूजना कहां सम्भव है ?

आपके मान्य ग्रन्थ महाभारत[1] में भी लिखा है :–

मृच्छिला धातु दार्वादि मूर्त्ताविश्वरः , बुद्धयः।
क्लीश्यन्ति तपसा मूढ़ाः परां शान्ति न यान्ती ते।।

अर्थात्– मिटट्री पत्थर और लकड़ी आदि की मूर्ति में जो ईश्वर बुद्धि रखते हैं। वे मूर्ख वृथा क्लेश को प्राप्त होते हैं, यह परिश्रम करके वे परम् शान्ति को प्राप्त नही होते। इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि जिन मूत्तियों को आप पूज रहे हैं। वे सनातन (प्राचीनकाल) से कैसे सिद्ध हो सकती हैं ? हनुमान जी, और रामचन्द्र जी की मूर्तियाँ कहां से आई और किस समय से उनकी पूजा आरम्भ हुई ? यदि बीच में आरम्भ हुई तो वह मूर्तियां सनातन कैसे हो सकती हैं ?

इसके अतिरिक्त आपको यह भी बतलाना होगा कि वेदों में कितनी बड़ी और लम्बी चौड़ी मूर्त्ति बनाना लिखा है ? और मन्दिर आदि की स्थापना तथा धूप, नैवेद्य चढ़ाना आदि कौन–कौन से मन्त्रों से सिद्ध है ? फिर आपको यह भी बतलाना चाहिये कि आप व्याप्य की पूजा करते हैं या व्यापक की? यदि व्यापक की करते है तो वह सर्वत्र विद्यमान है। उसकी मूर्ति हो ही नही सकती, और यदि व्याप्य की पूजा करना चाहते हैं तो वह जड़ है। उससे ईश्वर की पूजा नही हो सकती क्योंकि वह चेतन सत्ता है।

हस्ताक्षर–

"ब्रजमोहन झा"

सनातन धर्म की ओर से चतुर्थ लेख–

आर्य समाज **"अन्धंतमः प्रविशन्ति........"** मन्त्र से मूर्ति पूजन का खण्डन करता है। उसका अर्थ यह है कि जो कार्य कारण की उपासना करता है। वह नरक को जाता है। हम कार्य रूप पृथ्वी के पूजक नहीं, किन्तु उसमें व्यापक ब्रह्म को पूजते हैं, फिर यहां पर सम्भूति करके शरीर लिया है, जो शरीर को ईश्वर मानता हैं, वह नरक को जाता है। यही इसका अर्थ समस्त भाष्यकारों ने किया है। आगे मन्त्र कहता है कि–**"सं भूतिंच विनाशञ्चं........"** इस मन्त्र का अर्थ है कि शरीर से मृत्यु को पार कर सम्भूति ईश्वर की प्राप्ति से मोक्ष को जाता है। स्वामी दयानन्द का अर्थ गलत है, और इस अर्थ के रहते हुए भी हम कंकर–पत्थर पूजक नही बल्कि व्यापक ईश्वर के पूजक हैं। **"अर्चन्ति........"** इस ऋग्वेद के मन्त्र में पूजा करना लिखा है और–**"एह्यश्मान मातिष्ठ अश्मा भवतु ते तनुः........."** इस अथर्व वेद के मन्त्र में ईश्वर का आहवान करना लिखा है, तथा **"यदा देवायतनानि........"** इस मन्त्र में प्रतिमाओं का रोना–हँसना, आँख खोलना, बन्द करना लिखा है। यह उस समय के लिए लिखा है कि जब संसार पर कोई आपत्ति आने वाली होती है। यदि प्रतिमा नही है तो फिर कौन हंसता है ? **"नमस्ते स्तुविद्युते........"** इस अर्थववेद के मन्त्र में–**"नमस्तेस्तु अश्मने. ...."** पत्थर को नमस्कार करना लिखा है, क्या यह मूर्तिपूजन नहीं ? आप लोग भी तो सन्ध्या करते समय नित्य प्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं, अब आप ही सच–सच बतलाइये कि आप कितनी बड़ी मूर्त्ति

---

[1] *यह वचन महाभारत का नहीं भागवत पुराण का है !*

सम्पादक–

"लाजपत राय अग्रवाल"

की परिक्रमा करते हैं ? आप निराकार शब्द को अजमेर में छाप कर उसे साकार बनाते हैं, ओंकार की मूर्ति मस्तक पर लगाते हैं। **"न तस्य प्रतिमास्ति........."** मन्त्र से प्रजापति की मूर्ति बनना हमने वेद, शतपथ, कल्प आदि के प्रमाणों से लिखा, आप इसका कुछ भी उत्तर न देकर उल्टा लिखते हैं कि कहां पर लिखा है ? महिधर के भाष्य में – **"हिरण्यगर्भः........"** की प्रतीक देख लीजिए **"हिरण्यगर्भ........"** मन्त्र पर मूर्ति बनाना लिख दिया है।

वाराह अवतार में **"सूकराम"** पद है। इसको आप लौट नही सकते, निराकार–साकार में श्रुति विरोध नही। श्रुति निराकार और साकार दोनों बतलाती है। इसको–**"उभयं वा एतत्प्रजापतिः–"** इस श्रुति में साफ कर दिया, जिसका आप जिकर ही नही करते। आपने–**"इदं विष्णुः........"** पर सूर्य को व्यापक बतलाया। सूर्य व्यापक होता तो रात्रि क्यों होती ? **"विचक्रमे"** को दबा गये। हम मूर्ति में व्यापक ईश्वर को मानते हैं। हमने इस बात को पूर्व ही अनेकों मन्त्रों द्वारा सिद्ध कर दिया है। **"यस्यात्म बुद्धिः........."** इस श्लोक में उसको गधा, बैल आदि बतलाया, जो ईश्वर के स्थान में शरीर को पूज्य मानता है। जो लड़का आदि को स्वकीया बुद्धि से मानता है और जो कार्य को ईश्वर मानता है, सनातन धर्मी ऐसा नही करते। पुराणों को लेकर ही आर्य समाज ने मूर्तिपूजन छोड़ा है। धन्य है! अब तो पुराणों को स्वतः प्रमाण मानने लग गये। पुराणों मे हजारों स्थानों में मूर्त्तिपूजन है–**"प्रत्यांग मुख्यां कित मन्दिराणि यद्दर्शना कृष्ण मनुस्मरन्ति"** अर्थात अम्बरीष का पूजन करना और ध्रुव का वृन्दावन में मूर्तिपूजा करना लिखा है। प्रभु पञ्चम जार्ज आदि की मूर्त्तियों का सत्कार किया जाता है। जो ठीक ही है।

स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के एक अंश में सृष्टि मानी और तीन अंश खाली माने। अंश साकार में ही होते है, भगवान राम व कृष्ण के अवतार वेद में लिखे हैं। **"भद्रो भद्रया"** और **"कृष्णन्तु"** इत्यादि, मूर्त्ति प्रादेश (एक विलस्त) की का प्रमाण **"प्रादेशमात्रं"** यह शतपथ ब्राह्मण का काण्ड १४ है।

हस्ताक्षर–

"कालूराम"

आर्य समाज की ओर से चतुर्थ लेख–

आपने " **अन्धन्तम........**" मन्त्र का विषय व्यर्थ ही उठाया है। यद्यपि इसमें भी मूर्ति का कोई जिक्र नही। आप जिन मन्त्रों को हम देते हैं। उनका तो जिकर करते नही और जिन मन्त्रों को नही लिखते उन्हें व्यर्थ ही उठाते हैं। आपने लिखा है कि हम कंकर–पत्थर पूजक नही, किन्तु व्यापक ईश्वर के पूजक हैं। इसे पढ़कर सबको बड़ी प्रसन्नता होगी। आगे से आप पत्थर आदिको पर चन्दन आदि न चढ़ाया करें। और अपने को मूर्ति पूजक न कहा करें। **"अर्चन्त"** शब्द से आपने मूर्ति पूजा कैसे मान ली ? उसका अर्थ तो केवल पूजा होता है। हम लोग जो मानसिक पूजा करते हैं, यह तो ठीक ही है, ऐसा ही आप भी किया करें।

आप **"उभयं वा ऐतत्प्रजापति............."** से दो अवस्था परमात्मा की लेते है, किन्तु वहां जगत का वर्णन है, जिसे कि हम पहले ही बता चुके हैं। यदि ऐसा नही तो आपको दो ईश्वर मानने होंगे। एक साकार दूसरा निराकार।।

सूर्य अपनी किरणों द्वारा तीनों लोकों को प्रकाश देता है। यह अर्थ तो बहुत ही ठीक है। आप जो कहते

हैं कि पुराणों में मूर्तिपूजा भी है, यही वदतोव्याघात दोष है। इसका आपको निवारण करना होगा। पंञ्चम जार्ज पर आपने चन्दन चढ़ाना और भोग लगाना कहीं नही बतलाया। **"भद्रो–भद्रया........"** आदि शब्दों से पहले तो सीताराम आदि का ग्रहण आपको किसी कोष से बतलाना चाहिये। फिर यह मानना होगा कि आपके वेद, राम से पीछे बने आपने जो षड्विशं ब्राह्मण के पाठ से प्रतिमा का नाचना–कूदना बतलाया है, वह ग्रन्थ ही अवैदिक है और हमें अमान्य है। पुराण स्वतः प्रमाण आपको तो है ही हमें नही। **"अश्मानम"** इत्यादि से गोदान के समय बालक को दृढ़ता का उपदेश है।

अब हम आपको भगवान कृष्ण के कथन का भी स्मरण कराना चाहते हैं, उससे आपको यथार्थ स्थिति का पता लग जायेगा, देखिये–

अव्यक्तम् व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्यक्त मनुत्तमम्।।

इसमें साफ लिखा है कि– अविवेकी अर्थात् र्निबुद्धि पुरूष मेरी व्यक्ति की सत्ता मानते हैं। अब हम ही आपको बतलाते हैं कि असल में मूर्ति किसे कहते है ? मनु महाराज ने लिखा है–

आचार्यो ब्रह्मणों मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः।
भ्राता मरूत्पतेर्मूर्तिर्माता, साक्षात् क्षिते स्तनुः।।

दया या भगिनी मूर्तिधर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम्।
अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः।।

इन श्लोकों में भगवान मनु बतलाते हैं कि आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की। इत्यादि मन्त्रों में मूर्तियों का ठीक वर्णन है। यदि आप मूर्ति पूजा करना चाहें तो आपको चाहिये कि इस प्रकार की जीवित मूर्तियों की पूजा किया करें।

मुझे यह देख कर आश्चर्य होता है कि आप इतने स्पष्ट प्रमाणों को भी मानना नही चाहते। अच्छा आप न मानें यह बात दूसरी है, किन्तु यह तो मुझे पूरा विश्वास है कि आज की पब्लिक को तो अवश्य पता लग जायेगा कि आप अपने स्वार्थवश उसे कितना धोखा दे रहे हैं ? देखिये मै आप ही के महामान्य ग्रन्थ श्री मद्भागवत का एक ओर ऐसा प्रबल प्रमाण देता हूँ कि जिस पर किसी भी बुद्धिधारी व्यक्ति को आपत्ति हो ही नही सकती। देखिये श्री मद्भागवत पुराण तृतीय स्कन्ध, अध्याय २६ श्लोक २१ व २२–

अहं सर्वेषु भूतेषु संत मात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्ची भजते मौढ़याद् भस्मन्येव जुहोति सः।।२१।।

अहम् सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मा मर्त्यः कुरूतेऽर्वा विडम्बनम्।।२२।।

देखिये इन उपर्युक्त भागवत के श्लोकों पर अपने ही आचार्य का भाष्य–

सर्वभूतेषु यदा स्थितमीश्वंर माम् हित्वा यः प्रतिमा भजते स मौढ़याद् भस्मन्येव जुहोति।।

अर्थात्– सब प्राणियों में स्थित परमात्मा को छोड़कर जो व्यक्ति प्रतिमा पूजन करता है। वह मूर्ख या

मूढ़ राख में घी ड़ालता है या भस्म (राख) में हवन करता है।

कहिये ! क्या अब भी आप मूर्तिपूजा का प्रतिपादन करेंगे ? यह मूर्ख और मूढ़ शब्द आपके मूल श्लोक और संस्कृत टीका दोनों ही में है। मेरा अपना इसमें कोई शब्द नही है। श्वेताश्वेतर उपनिषद में तो साफ ही लिखा है। देखिये–

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्य चक्षुः स शृणोत्य कर्णः।
स वेत्ति वेत्तं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुर्रग्रम् पुरूषं महान्तम्।।

(श्वेताश्वेतर उपनिषद–३–१६)

अर्थात्– वही महान परमात्मा जानने योग्य है जिसके कि हाथ–पैर कुछ भी नही है, किन्तु वह सब कुछ क्रियायें बिना किसी इन्द्रियों के करता है। वह बिना आँख और कान के देखता और सुनता है। इससे स्पष्ट और क्या प्रमाण आपको चाहिये ? और यदि आप इतने पर भी न मानें तो पब्लिक तो जान ही लेगी। हमारी समझ में तो मान– अपमान और हार–जीत का ख्याल न करके यदि आप मूर्ति पूजा त्याज्य मान लें तो कोई हानि नही। सत्य मानने में प्रतिष्ठा घटती नही बल्कि बढ़ती है। विद्वानों को हठ नही करनी चाहिये। अन्त में हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि आपने इस बार उन मन्त्रों को पेश नही किया, जिनको कि सनातन धर्मी भाई पहले पेश किया करते थे, इसका अभिप्राय यही है कि उनका समाधान हो चुका है। आशा करते है कि जो एक–दो मन्त्र बड़ी कठिनाई से आपने पेश किये उनका भी जब आप विचार करेंगे तो समझेंगे कि हमारा किया हुआ अर्थ ही यथार्थ है।

हमने तो मूर्तिपूजा के विरूद्ध अनेक प्रमाण, वेद, स्मृति और पुराण आदि के दिये उन पर आपने कुछ भी नही लिखा। भागवत आदि के श्लोकों का जिनमे मूर्तिपूजा का स्पष्ट निषेध है, मूर्तिपूजकों के लिये **"खर"** आदि कुवाक्यों का प्रयोग किया गया है। उनका आपने कुछ भी अर्थ नही किया, इन सब बातों से आज सिद्ध हो गया कि –**"मूर्तिपूजा वेद विरूद्ध ही नही अपितु पुराणों के भी विरूद्ध है"** और यदि आप अपने पुराणों का ही ठीक अर्थ करके सनातनधर्मी भाईयों को समझावें तो हमारा अभीष्ट सिद्ध होने में कोई कमी न रह जाए।

हस्ताक्षर–

"ब्रजमोहन झा"

नोट–

इस प्रकार कानपुर के इस शास्त्रार्थ श्रंखला की कड़ी का अन्तिम तथा तृतीय शास्त्रार्थ समाप्त होता है। वैसे तो एक ही विषय पर अनेकों विद्वानों के मध्य समय–समय पर अनेकों शास्त्रार्थ होते रहे हैं। परन्तु प्रत्येक शास्त्रार्थ में कुछ न कुछ नवीन अवश्य होता है। ऐसा ही कुछ आपने इस शास्त्रार्थ के अध्ययन करने में अनुभव किया होगा।

विदुषामनुचर :–

"लाजपत राय अग्रवाल"

एक सौ अट्ठाईसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : धर्मनगर (यमुना तट पर अल्पकाल के लिए निर्मित स्थल) देहली।

दिनांक	:	७. फरवरी सन् १९४४ ई०
विषय	:	क्या यज्ञों में पशु हिंसा वैदिक है ? एवं अन्य विवादित विषय,
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	तार्किक शिरोमणी श्री पं० व्यासदेव जी शास्त्री
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ के प्रधान	:	शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी,
मन्त्री	:	श्री पं० रामचन्द्र जी जिज्ञासु (मन्त्री) (आर्यसमाज–दीवानहाल, देहली)
आर्यसमाज की ओर से उपस्थित विद्वान	:	१. श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री, एम.ए.–ज्वालापुर
	:	२. श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति (सम्पा०–सार्वदेशिक)
		३. श्री पं० चन्द्रभानु जी शास्त्री, नई दिल्ली
धर्मसंघ (सनातनधर्म) की ओर से	:	१. श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री, (कोल निवासी)
शास्त्रार्थकर्ता	:	२. श्री पं० मायादत्त जी पाण्डेय, शास्त्री
सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थ के प्रधान	:	श्री महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी

(क्रमशः)

शास्त्रार्थ के मध्यस्थ : पुरी के शंकराचार्य—"श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज"

सनातनधर्म की ओर से उपस्थित विद्वान : (१) श्री जगद्गुरू श्री भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज।

: (२) श्री जगद्गुरू श्री ज्योतिष्पीठाधीश ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज।

: (३) श्री महामहोपाध्याय पं० हरिहर कृपालु जी बनारस।

: (४) श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज।

: (५) श्री महामहोपाध्याय पं० परमेश्वरानन्द जी शास्त्री।

: (६) श्री पं० रामजी पाण्डेय व्याकरण—साहित्याचार्य।

: (७) श्री पं० मथुरानाथ जी शास्त्री—साहित्याचार्य।

: (८) श्री पं० सभापति जी उपाध्याय—व्याकरणाचार्य।

: (९) श्री पं० नारायण शास्त्री जी खिस्ते।

: (१०) श्री पं० अखिलानन्द जी शर्मा कविरत्न।

: (११) श्री पं० कालूराम जी शास्त्री (अमरोधा) कानपुर।

: (१२) श्री पं० महामहोपाध्याय प्रभुदत्त जी शास्त्री व्याख्यान वाचस्पति।

: (१३) श्री पं० गंगाप्रसाद जी शास्त्री तर्करत्न—दिल्ली।

नोट— (१)— यह एतिहासिक **"शास्त्र चर्चा"** (शास्त्रार्थ) आर्य समाज, नया बाँस, दिल्ली द्वारा हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की बलिदान अर्धशताब्दी के अवसर पर २५ दिसम्बर सन् १९७६ ई० को **"दिल्ली दिग्विजय"** के नाम से प्रकाशित करायी गयी थी।

(२)— इस शास्त्रार्थ के विषय में मुख्य—२ विशेष जानकारी के लिए अन्दर पृष्ठ संख्या—२३६ पर छपे लेख— **"प्रस्तुत शास्त्रार्थ के विषय में मुख्य—२ जानकारियाँ"** पढ़ें!

—"सम्पादक"

प्रस्तुत शास्त्रार्थ की मुख्य–मुख्य जानकारियाँ

मैंने इस पूरे शास्त्रार्थ का अवलोकन किया, मैं इसी निश्चय पर पहुँचा कि इसमें सनातनधर्मियों की ओर से शास्त्रार्थ करने की नियत आरम्भ से ही नहीं रही। प्रत्येक बात को टालना या उसके लिए नकारात्मक कोई न कोई बहाने ढूँढना ही पं० माधवाचार्य जी का मुख्य ध्येय रहा है। विषय भी कोई एक रह पाना इन परिस्थितियों में असम्भव ही था। परिणाम स्वरूप कभी किसी विषय पर तो कभी किसी विषय पर ही वार्ता चलती रही। काफी समय एक दूसरे के ऊपर दोषारोपण करने में ही निकल गया। तो भी यह एक शास्त्रार्थ न भी हो, है तो शास्त्रार्थ का ही प्रारूप। अतः पाठकों को कम से कम ऐसी स्थिति का ज्ञान भी होगा कि कभी–कभी शास्त्रार्थों के आयोजन कराने में ऐसी स्थिति भी आती है।

हालांकि इस वार्ता में भी काफी विषयों से सम्बन्धित प्रश्नों का शंका निवारण हुआ है, काफी शास्त्रीय ज्ञान की उपलब्धि हुई है। तथा महामहिम श्री पं० माधवाचार्य जी के पाण्डित्य की पोल खुली है। मैं यहां अधिक कुछ न कहते हुए, इतना ही कहूंगा कि आगे कहीं अगर कोई शास्त्रार्थ का आयोजन हो तो शास्त्रार्थ का आयोजन कराने वाले तथा शास्त्रार्थकर्ता पण्डितों को यह हथकन्डे ध्यान में रखने चाहियें जो इस "**शास्त्रार्थचर्चा**" में श्री पं० माधवाचार्य जी ने अपनाये हैं। जिनके फलस्वरूप अन्त तक शास्त्रार्थ करने की नौबत ही नहीं आने दी गयी तथा अपना यज्ञ का कार्यक्रम भी शान्ति एवं सफलता पूर्वक सम्पन्न कराया एवं आर्य समाज के सिर पर हार का सेहरा भी बांधने का विफल प्रयत्न किया गया। इस कला में श्री पं० माधवाचार्य जी अतयन्त निपुण थे। मैंने उनको अनेकों शास्त्रार्थों में इस कला का प्रयोग करते हुए देखा था। उनकी सही नब्ज शास्त्रार्थ केशरी श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज ही जानते थे, इसलिए यह पण्डित महाशय उनके नाम से ही शास्त्रार्थ करने हेतु घबराते थे। अनेकों स्थानों से शास्त्रार्थ करने हेतु महात्मा अमर स्वामी जी महाराज (पूर्व नाम– ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी) जी के सम्मुख होने पर इन महाशय जी के "**शास्त्रार्थ–पलायन**" प्रसिद्ध हैं।

किमधिकम् लेखेन !!

-विदुषामनुचरः

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्र चर्चा अर्थात् "दिल्ली–दिग्विजय"

(दो शब्द)

कौन ऐसा आर्य या हिन्दुत्वाभिमानी है जिसका मस्तक यज्ञ के नाम पर न झुक जाय। यह यज्ञ जिसकी विभिन्न समाचार पत्रों में खूब चर्चा रही दिल्ली में बड़े समारोह पूर्वक श्री १०८ श्री स्वामी "**हरिहरानन्द**" जी महाराज, "**करपात्री**" तथा श्री स्वामी "**कृष्णबोधाश्रम**" जी महाराज के उद्योग से गुलाबी जाड़े की ऋतु में भगवती कलिन्द कन्या के विशाल पुलिन प्रांगण में रचा गया था। जितने नर नारियों ने इस अपूर्व मेले में भाग लिया उतना समारोह अन्यत्र कठिनता से देखने को मिलेगा– इस अवसर पर भारत के कोने–कोने से बड़े–२ प्रसिद्ध सन्यासी, महात्मा, उपदेशक, विद्वान, क्षोत्रिय आदि पधारे थे। ब्राह्मणों में परस्पर विद्या–विवाद का होना स्वाभाविक ही बात है बस आपस में छेड़खानी शुरू हो गई।

यदि कोई ऐसी संस्था है जो जीवित कही जा सकती है तो वह "**आर्य समाज**" ही है। आर्य विद्वानों को "**धर्म नगर**" के धर्म के ठेकेदार मनचले अधकचरों ने कौंचना आरम्भ कर दिया, पहले आर्य समाज इस विवाद को टालता रहा पर जब टालने का मतलब उलटा लगाया जाने लगा तो स्वर्गीय विद्वद्वर श्री पं० व्यासदेव जी शास्त्री से न रहा गया, उन्होंने आर्य जगत के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान कवि तार्किक श्री पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री एम.ए., प्रिंसिपल डी.ए.वी. हाई स्कूल आगरा वर्तमान संस्कृत हिन्दी प्रोफेसर (B.R. College, Agra) को पहले तार दिया और फिर मुझे भेजकर इस वाद–खुरली का आनन्द देखने का बुला ही लिया, बस ! उन्हें अब किसी तीसरे की आवश्यकता महसूस न हुई, शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी की कृपा के सहारे सारे ही सनातन धर्म के दिग्गजों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा गया। इस "**शास्त्रार्थ**" में जो कुछ भी गद्य–पद्य मय संस्कृत भाग है वह सारा श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री सप्ततीर्थ (मुख्याधिष्ठाता महाविद्यालय ज्वालापुर) की रचना है भावों का चित्रण करना स्वर्गीय शास्त्रार्थ महारथी विद्याभास्कर श्री पं० व्यासदेवजी शास्त्री एम०ए०एल०एल०बी० (स्नातक महाविद्यालय ज्वालापुर) का काम है तथा उसको गद्य–पद्य रूप देना श्री पं० हरिदत्त शास्त्री का। शास्त्रार्थ में भी परस्पर परामर्श से जो कुछ शास्त्री जी संस्कृत में परस्पर परामर्श से लिखाते जाते थे, पं० व्यासदेव जी उसे ही लिखते जाते थे और फिर सानुवाद सुना देते थे।

यह यज्ञ कैसा था ?

यज्ञ में ऋग्वेद की विकृतिः– जटा, माला, शिखा, रेखा ध्वजाधण्टा रथ, घन, तथा प्रकृतिः– संहिता, पद, क्रम इन सबके विद्वान पधारे थे ऋग्वेद की शाकल और बाष्कल दो शाखाओं के विद्वान् ही वहां दृष्टिगोचर होते थे ऋग्वेद के सूत्र आश्वलायन और शांख्यायन के ज्ञाता भी वहां आये थे। जो याज्या, पुरोऽनुवाक्या, धाय्या, शस्त्र, (खिल व अनारभ्याधीत दोनों प्रकार के) वहां उच्चारण करते थे। कण्व शाखाध्यायी श्री गोपाल जी घनपाठी (मेदिनीपुरम, मद्रास) का उच्चारण प्रशंसनीय था। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के विद्वान गणेश भट्ट बापट (बनारस) से मिलकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ पौण्डरीक यष्टा–श्री गोपाल भट्ट गोखले (सांगली) चयन **याझी**–श्री वैद्यनाथ घनपाठी, सामवेदी श्री पं० हरिशंकर जी अग्निहोत्री (काशी) अग्निष्टोमयाजी श्री अरूण चल दीक्षित (मद्रास) कौथुमि शाखाध्यायी सामवेदी श्री पं० गौरीशंकर जी अग्निहोत्री, वाजपेय

याज्ञी श्री पं० रामनाथ यज्वा दीक्षित (मद्रास) महाग्नि चिद् याजी श्री पं० यज्ञ दीक्षित जी वाजपेयी अथर्व–वेद पाठी श्री पं० मनोहर लाल जी नागर (काशी) मैत्रायिणी शाखाध्येता श्री पं० शंकरहरि आभोणकर, अथर्ववेदीय शौनक शाखाध्यायी श्री पं० बेणी रायजी (जामनगर) आदि वैदिक विद्वानों का दर्शन कर बड़ा आल्हाद प्राप्त हुआ श्री स्वा० आनन्द प्रकाशतीर्थ जी महाराज (महाविद्यालय ज्वालापुर) विद्वद्वर श्री पं० रामदत्तजी शुल्क एम०ए०, एल०एल०बी० (मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उ०प्र०) के साथ तो कहीं–२ पर (वार्ता करने में) इतनी देर लगा देते थे कि हमें खड़े रह पाना अखरने लगता था। इस यज्ञ के प्रधान यज्वा श्री पं० बालकराम जी (ऋषिकेश) थे। यह हमारे पूर्व परिचित थे अतः आपके तथा श्री पं० जीवनदत्त जी महाराज (नरवर) के कारण हमें बड़ी सुविधाएं मिली जिनसे हम यज्ञ की प्रत्येक व्यवस्था व अवस्था को ठीक तरह समझ सके। समारोह तो अपूर्व था ही पर ऐसा सुन्दर विद्वानों का समुदाय भी शायद ही अब भविष्य में देखने को मिले। पर यह भी मानना पड़ेगा कि ऋषि दयानन्द के प्रताप से वहां पर भी आर्यसमाज की विजय का ही डंका बजा, तथा श्री पं० व्यासदेव जी शास्त्री तथा श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी के सामने कोई भी न टिक सका, यद्यपि वहां दर्जनों महामहोपाध्याय थे। प्रसंगवश हम नाम कतिपय पाश्चात्य वेदज्ञों के नाम (पते सहित) उद्धृत कर रहे हैं जो कि यज्ञ में हिंसा नहीं मानते तथा इस प्रकार के यज्ञ को अवैदिक तथा शान्ति स्थापना का उपाय नहीं मानते, यथा :–

1. Rev. R. Zimmermann S.J., Ph.D., Professor of Sanskrit, St. Xavier's College, Bombay.
2. Rev. Herrer, St. Xavier's College, Bombay.
3. Prof. A, B. Keith, University, Edinburg, England.
4. Prof. A.A. Macdonell, 20, Bardwell Road, Oxford, England.
5. Prof. E.I. Rapson, M.A., University, Cambridge, England.
6. Prof. F.E. Pargiter, 12, Charlbury Road, Oxford, England.
7. Sir George A. Grierson, O.M., K.C.S.I.D.Litt., Ph.D., Rathfarrham Camberley. Surrey, England.
8. Prof. Dr. M. Winternitz M.A., Ph.D., II Opatovicka, 8, Pragne, Czechoslovakia.
9. Prof. Dr. O Stein, VII Letna, 313, Socharska, Prague, Cxecholovakia.
10. Prof. Dr. W. Caland., M.A., 78, Koninlaan, Utricht, Holland.
11. Prof. Dr. Sten Konow, Ph.D., Indische Mussum, Oslo, Norway.
12. Dr. Louis Finot, Villa Santaram, Montee Gueyras Ste, Catherine, Toulon, Var, France.
13. Prof. Chas R. Lanman, 9, Farrar Street, Cambridge, Mass, U.S.A.
14. Prof. Dr. H. Jacobi, Ph.D., 59, Nieburhrsatsse, Bonn, Germany.
15. Prof. J. Jolly Ph.D., University, Wurzburg, Garmany.
16. Prof. Dr. Adolf Erman, 36, Pcteg Lenne Street, Berlin-Dahlem, Germany.
17. Prof. J. Hertel, 110, Denkmrls-Allee, Liepzig Germany.
18. Dr. Aertal, M.A., Ph.D., Munich, Germany.
19. Prof. J. Charpencuer., Ph.D., 2, Gotgaton, Upasala, Sweeden.
20. Prof. Formichi, University De Rome, Italy.
21. Mr. Jagdish Chandra Chatterjee, B.A. International School of Vedic & Allied Research, 1500, Times Buildings, Newyork.
22. Dr. Serge Doldenbuag, Ph.D., Academy of Sciences, Leningrad.

वाग्मिप्रवर–स्व० विद्याभास्कर श्री पं० व्यासदेवजी शास्त्री–

आज हमें उस उदीयमान विद्वान् के साथ स्वर्गीय शब्द जोड़ते हुए असीम वेदना हो रही है। आपकी शिक्षा–दीक्षा उत्तरीय भारत के प्रमुख निःशुल्क शिक्षा केन्द्र **"महाविद्यालय ज्वालापुर"** में हुई थी। एम०ए० तथा एल०एल०बी० परीक्षा आपने लखनऊ यूनिवर्सिटी से उत्तीर्ण की थी। आपकी माता श्रीमती कौशल्यादेवी जी आर्यसमाज की सच्ची भक्त व प्रचारिका थी, आपके पिता श्री पं० प्रभुदयाल जी शर्मा अम्बहटा (जि० सहारनपुर) के एक प्रतिष्ठित आर्य व्यक्ति थे।

श्री पं० व्यासदेवजी ने अपने पीछे अपनी धर्मपत्नी विदुषी श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी, प्रिय चि० विश्वेदेव तथा चि० विश्वबन्धु नामक दो पुत्रों, ऊषा, उर्मिला, और मञ्जुला नाम की तीन कन्याओं को असहाय अवस्था में छोड़ा है। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ४५ वर्ष की थी। अपने जीवनकाल में आपने दिल्ली के **"शिवमन्दिर"**, **"हैदराबाद सत्याग्रह"** आदि में सक्रिय प्रमुख भाग लिया था जिसके कारण आपको कारावास भी भोगना पड़ा था आपका यह **"बम्बई शास्त्रार्थ"** एक चिरस्मरणीय घटना रहेगी आपको व्याख्यानों व शास्त्रार्थों द्वारा आर्य समाज की निरन्तर सेवा करने के कारण फेफड़ों पर आघात पहुंचा और अन्ततोगत्वा क्षय रोग का शिकार होना पड़ा, इस आठ मास की लम्बी बीमारी के अन्तराल प्रायः दिल्ली की सब ही आर्यसमाजों ने सहायता देकर पुण्य कमाया है पर हम पीयूषपाणि श्री पं० मूलचन्द्र वैद्य सदर बाजार के अनथक परिश्रम को नहीं भुला सकते जो दौड़ धूप व आर्थिक सहायता में विशेष योग देते रहे। परम दुर्भाग्य का विषय यह है कि ७–८ मास के निरन्तर उपचार के बाद भी आपका ता० २६ अगस्त को प्रातः ७ बजे **"टी०बी० होस्पिटल दिल्ली"** में देहावसास हो गया तथा विधाता ने आर्य–जगत् के होनहार नवयुवक को हमसे छीन लिया। परमात्मा मोक्षभागी आत्मा को चिर सुख प्रदान करें स्व० बन्धुवर श्री काशीनाथजी काव्यतीर्थ सुपुत्र श्री पं० पद्मसिंह शर्मा (मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त) तथा श्री पं० चंद्रदत्तजी शास्त्री का भी इस अवसर पर स्मरण हो आया है सम्पादकजी की कृति **"पद्मपराग"**[1] अभी तक अमुद्रित पड़ी है, जो आर्यसमाज की अमूल्य निधि है– उसके प्रकाशन का भी प्रबन्ध होना चाहिये। श्री व्यासदेवजी की भी **"यमयमी संवाद"**[2] आदि पुस्तकें अभी अप्रकाशित है– जो शनैः शनैः पाठकों के सामने प्रस्तुत की जावेंगी।

सिंहावलोकन–

इन यज्ञों की जितनी देश में अभिवृद्धि हो उतना ही अच्छा है परन्तु मनु महाराज की आज्ञानुसार इस हजारों मन अन्न को पाक यज्ञों में भस्मसात् करने की अपेक्षा **"उपांशुजप यज्ञ"** करना बड़ा उत्तम कहा है। वे लिखते हैं कि–

ये पाक यज्ञाश्चत्वारी विधियज्ञ समन्वितः।
सर्वे ते जप यज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।

अर्थात्– जो चार पाक यज्ञ हैं वे विधि यज्ञ सहित जप यज्ञ के १६वें हिस्से के भी बराबर नहीं। इसी

---

(१)– इस पुस्तक के प्रकाशन की योजना भी तैयार कराई जा रही है।

(२)– यह पुस्तक किन्हीं सज्जन के पास हो तो प्रकाशनार्थ प्रकाशन को भिजवायें ताकी इसे उनका आभार प्रकट करते हुए प्रकाशित करने की योजना तैयार की जा सके ! "लाजपत राय अग्रवाल"

प्रकार स्थान–स्थान पर जो आजकल कीर्तन का प्रचार हो रहा है वह भी विष्णु पुराण के विरूद्ध है– वहां लिखा है कि–

स्वधर्म–कर्म विमुखाः कृष्ण कृष्णेतिराविणः।
ते हरे र्द्वेषिणो मूढाः धर्मार्थ जन्म यद्हरेः।।

अर्थात्– अपने धर्म कर्मों को छोड़कर जो लोग कृष्ण–कृष्ण रटते फिरते हैं, वे भगवान के भक्त नहीं है। इस प्रकार यदि हम परस्पर सम्मेलन तथा विचार–विनिमय के अंश को (जो दिल्ली यज्ञ का एक प्रमुख फल था) निकाल कर विचार करें तो निःसन्देह ऐसा ही प्रतीत होता है कि इस अन्न के दुर्लभ जमाने में जब कि प्रति व्यक्ति सौ ग्राम अन्न मिल रहा हो, बंगाल में दुर्भिक्ष से करोड़ों व्यक्ति तड़प–तड़प कर प्राण दे रहे हों, हजारों मन अन्न, खाण्ड और तिलों को **"स्वाहा"** कर देना **"बुद्धिवाद"** गम्य बात नहीं। इस अन्न से यदि जनता–जनार्दन के प्राण बचाए जाते तो अत्युत्तम होता, या यदि सब मिलकर **"उपाँशु जप"** करते तो शायद इससे कहीं अधिक **"विश्वशान्ति"** होती। क्योंकि इन यज्ञों से भूतलशान्ति मेघादि द्वारा परम्परा भले ही सम्भव हो पर **"भीषण रक्तपात"** या प्रबल **"नर संहार"** की शान्ति असम्भव ही है, अतः ऐसे कार्य करने से पूर्व यह विचार कर लेना चाहिये कि जिन द्रव्यों का हम होम कर रहे हैं वे– महाभूत शोधक हैं या नहीं; यह तिलादि द्रव्य उत्तम होम सामग्री के साधन नहीं कहे जा सकते, अतः श्रेयस्कर उपाय का ही अवलम्बन करना चाहिये। वे ' की आज्ञा है :–

भविष्यतीत्येवमनः कृत्वा सततमव्यर्थः।
"उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु"।

अर्थात्– उठो, जागो और उन्नति के कार्य करो, निराश कभी न बनो।

अन्त में हम श्री बाबू श्रीरामजी गुप्त, विशारद, एम०ए०, एल०एल०बी० (प्रधान डी०ए०बी० हाई स्कूल) तथा श्री बाबू मनोहरलालजी टेलीग्राफ मास्टर (मैनेजर डी०ए०वी० हाई स्कूल) को बिना धन्यवाद दिये नहीं रह सकते जिनकी उदारता से हमें विद्वद्वर श्री पं० हरिदत्तजी शास्त्री का इस शास्त्रार्थ यज्ञ में सहयोग प्राप्त हुआ और हमारी सफलता पूर्वक विजय हुई। विजय किसकी हुई यह प्रस्तुत पुस्तक पढ़कर पाठक स्वयं ही निर्णय करेंगे।

यद्यस्ति वस्तु किमपीह तथानवद्यम्।
द्योतेत तत् स्वयं मुदेष्यति चानुरागः।।
शास्त्रार्थ एष बुध बुद्धि कषे परीक्ष्यः।
निर्दोह धेनु महिमा नहि किंकिणीम्[१]।।

निवेदक–
"वीरेन्द्र शास्त्री"
मन्त्री– आर्यतर्क शालिनी सभा, देहली
व्याकरणाचार्य, वागीश्वर शास्त्री
मैनेजर–दयानन्द अनाथालय, आगरा (उ०प्र०)

नोट– (१) अर्थात् यदि इस शास्त्रार्थ में कोई अच्छाई है तो वह स्वयं ही प्रकट हो जायेगी तथा लोग अपना लेंगे–क्योंकि **"ठल्ल"** गाय की महिमा केवल गले में घण्टियाँ बांधने से ही नहीं होती। –**"सम्पादक"**

शास्त्रार्थ से पहले

यज्ञ से कई मास पूर्व से ही दिल्ली नगर में विज्ञापनों तथा समाचार–पत्रों द्वारा यह सूचित किया जा रहा था कि यहाँ **"अखिल भारतवर्षीय धर्म–संघ"** के तत्वावधान में एक महान् यज्ञ का आयोजन हो रहा है और इस सम्बन्ध में भारत भरके बहुत से विद्वान् याज्ञिक तथा वेदपाठी पधारेंगे। यह भी प्रचार किया जा रहा था कि इस प्रकार का यज्ञ महाभारत काल के पश्चात् इसी समय हो रहा है और इस यज्ञ में केवल मन्त्रों से अग्नि प्रदीप्त की जायेगी। इस प्रकार अत्यन्त भ्रमपूर्ण वातावरण बहुत दिवस से दिल्ली तथा समीपस्थ नगरों व उपनगरों में उत्पन्न किया जा रहा था। इस सम्बन्ध में कुछ छोटी–मोटी संस्थाओं ने तथा सनातन धर्मियों ने भी कुछ विज्ञापन निकाले और कुछ व्यक्तियों ने समाचार–पत्रों का आश्रय लिया और यह कहना आरम्भ किया कि यह समय यज्ञ के अनुकूल नहीं है, बंगाल के दुर्भिक्ष की भी दुहाई दी गयी। पर हर्ष का विषय है कि दिल्ली नगर में लगभग २० आर्यसमाजों के होते हुए भी किसी आर्यसमाज या किसी आर्यसमाजी ने इस यज्ञ के विरोध में एक शब्द भी न लिखा और न कहा। इसका कारण यह नहीं था कि हम इस यज्ञ से सहमत थे अथवा इस प्रकार भ्रमपूर्ण वातावरण के उत्पन्न करने में सहायक थे किन्तु केवल इसलिये कि यज्ञ शुभकर्म है, वैदिक है, और मनुष्य को चाहिये कि न केवल यज्ञ ही करे किन्तु अपना सम्पूर्ण जीवन यज्ञमय बनाले। यह ठीक है कि हम इस यज्ञ के नाम से तथा इसके विधिविधान से सहमत नहीं थे तथा इसे अवैदिक भी समझते थे, परन्तु हमने विरोध इसलिये नहीं किया कि आर्यसमाज के तत्वाधान में तो यज्ञ होते ही रहते हैं अपने आपको सनातनधर्मी कहने वाले महानुभाव भी यज्ञ करना तथा उसमें सहयोग देना सीख लें, क्योंकि वस्तुतः वैदिक यज्ञों की प्रथा सनातन धर्मियों में से उठ चुकी है और विशेष कर उत्तर भारत में तो इस प्रथा का लोप ही हो चुका है। हम समझते थे कि यज्ञों की प्रथा पुनः चल पड़ने पर उसकी अवैदिकता कालान्तर में नष्ट हो जावेगी और जब जनता प्रत्यक्ष देखेगी कि केवल मन्त्र पाठ से अग्नि प्रज्वलित नहीं होती अपितु बांसों की रगड़ से जिस प्रकार जंगलों में अग्नि प्रज्वलित हो जाती है उस ही प्रकार अरणि (काष्ठ विशेष) के रगड़ने से यज्ञ में अग्नि प्रदीप्त होती है, तब इस प्रकार का भ्रमपूर्ण प्रचार तथा अन्धविश्वास स्पष्ट नष्ट भ्रष्ट हो जावेगा। ऐसे वातावरण में– एक दिन अचानक जबकि २८ जनवरी सन् १९४४ ई० को आर्यसमाज, दीवान हाल–दिल्ली के ५९ वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में नगरकीर्तन निकल रहा था और नगर की सब आर्यसमाजें तथा आर्यसमाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति नगरकीर्त्तन को सफल बनाने में लगे हुये थे तभी हमें एक विज्ञापन मिला, जिसे **"सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल"** की ओर से पं० माधवाचार्यजी तथा पं० मायादत्तजी शास्त्री ने प्रकाशित किया था। यह विज्ञापन एक ओर संस्कृत श्लोकों में तथा दूसरी ओर हिन्दी भाषा में था। इस विज्ञापन को ही शास्त्रार्थ का मूल कहना चाहिये। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस शास्त्रार्थ का सूत्रपात सनातनधर्मियों की ओर से हुआ है किसी आर्यसमाज अथवा आर्यसमाजी की ओर से नहीं।

इस विज्ञापन का शीर्षक **"शास्त्रार्थ घोषणा"** था। पाठकों की जानकारी के लिये हम उसे यहां पर अविकल उद्धृत करते हैं तथा संस्कृत भाग का हिन्दी भाषा में अनुवाद भी देते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिये कि अनुवाद हमने किया है और अनुवाद करते समय इस बात का ध्यान रक्खा है कि कोई बात छूटने न पाये। हाँ कहीं–कहीं अनावश्यक पदों का अनुवाद–जहां कि ऐसा आवश्यक था, छोड़ भी दिया गया है।

सनातन धर्म की ओर से भेजा गया पत्र

श्री हरिः

धर्मस्य जयोऽस्तु। अधर्मस्थ नाशोऽस्तु।
प्राणिषु सदभावनास्तु।। विश्वस्य कल्याणमस्तु।।

।। हर हर महादेव।।

अखिल भारतवर्षीय धर्म संघस्य तृतीयाधिवेशनावसरे शास्त्रार्थ घोषणा।

इन्द्र प्रस्थे प्रशस्ते तपन तनु जनू रम्य कूलेऽनुकूले।
खाभ्रा काशाक्षिवर्षे तपसि सितदले पंचमी राकयोर्यः।।

मध्येऽयं कोटिहोमात्मक यजनयुतो धर्म संघाधिवेशः।
शास्त्रार्थार्थ प्रबन्धो विहित इह मुदा घोषणेयं तदीया।।

वादोऽयं पण्डितानां परिषदि भविता संस्कृते लेख बद्धो भाषाभिः प्राकृताभिर्निज निज रूचितः शक्यते वा विधातुम विद्वान्विज्ञातसारः परिषदधिपति र्निश्चितोऽस्माभिरीड्यो मध्यस्थोऽपीह कश्चिन्निखिल मुनि मनो वेद्य निष्ठायुतः स्यात्।

वेदोऽखिलो धर्म मूलं स मन्त्र ब्राह्मणात्मकः।
शास्त्रं पुराणं तन्त्रञ्च वेदार्थस्यो पबृंहणम्।।

श्रीयास्कः शबर स्वामी सायणश्च महीधरः।
उव्वटो वेदवक्तारो विरूद्धा वेद दूषकाः।।

पुनर्जन्म सदा मुक्तिर्जन्मतो वर्णनिश्चयः।
स्वर्गादयः सन्ति लोका देवाद्यास्तन्निवासिनः।।

मृतानां श्राद्धतस्तृप्तिः प्रतीकैरचनं विभोः।
अस्पृश्यता शास्त्र सिद्धा सवर्णे पाणि पीडनम्।।

द्विजेषु न नियोगोऽर्हो विधवावेदनं तथा।
पुराण शास्त्र संहिता वेदोः प्रणव एव च।।

पठनीयास्तथा जप्यां द्विजैरेवोपवीतिभिः।

भक्त्या ये संभजन्ते गणपति कमला नाथ शम्भ्वर्क देवीः स युक्ता ब्रूयुरेते श्रुतितति गदितं चारूसिद्धान्त पक्षम्। म्लेच्छा बोद्धास्तुरूष्का हरिजन जनकास्त्वद्वदार्य ब्रुवाद्याः कुर्युश्चास्नाय वाह्म स्वमत रतधियः पूर्वपक्षं विपक्षाः।। सर्व विविच्य प्रतिवादिभिर्द्रुतंस्वकीय केन्द्रीय सभा सकाशतः। दत्वा दलं माघसितेतरे दले ग्राह्योऽवकाशः कृतिभिः पुरैव हि।।

धर्मस्य विजयो भूयादधर्मस्य पराभवः।
सदभावना प्राणभूता भूयाद्विश्वस्य मंगलम।।

निवेदकौ–

धर्म नगर–देहली
माघ कृष्णा प्रतिपद सम्वत् २००० विक्रमी,

माधवाचार्य शास्त्रीः शास्त्रार्थ महारथः
मायादत्त पण्डितः शास्त्री कविरत्नम्

।। श्री हर हर महादेव ।।

शास्त्रार्थ घोषणा–

सनातन धर्म के सिद्धान्तों के विरूद्ध जिनको सन्देह हो उनको सादर सूचित किया जाता है कि धर्मसंघ के तृतीय महाधिवेशन के अवसर पर वे लोग अपने सन्देहों की निवृत्ति शास्त्रार्थ या शंका समाधान की शास्त्रीय शैली के अनुसार कर लें। इसके लिये वसन्त पञ्चमी तक लिखित सूचना देने की कृपा करें।

"सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल"
(अखिल भारतीय धर्म संघ)–देहली

धर्मसंघ की ओर से प्रकाशित शास्त्रार्थ की घोषणा का हिन्दी में अनुवाद–

।। श्री हरि ।।

धर्म की–जय हो। अधर्म का–नाश हो।
प्राणियों में–सद्भावना हो।। विश्व का–कल्याण हो।।

।। हर हर महादेव ।।

अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ के तृतीय महाधिवेशन के अवसर पर शास्त्रार्थ की घोषणा।

प्रशंसित इन्द्रप्रस्थ में यमुना के सुन्दर तट पर माघ शुक्ला पञ्चमी तथा पौर्णमासी के मध्य सम्वत् २००० में कोटि होमात्मक यज्ञ के सहित धर्मसंघ का उत्सव हो रहा है। जहां शास्त्रार्थ के लिये प्रबन्ध किया गया है। उसकी यह सहर्ष घोषणा है। यह शास्त्रार्थ पण्डितों की सभा में संस्कृत भाषा में लेखबद्ध होगा। अथवा अपनी–२ इच्छा के अनुसार लौकिक भाषाओं में किया जा सकता है। किसी प्रशंसित सारवित् तथा विद्वान् महोदय को सभापति मध्यस्थ रूप से हम चुनेंगे।

वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है। वह मन्त्र और ब्राह्मण स्वरूप है। शास्त्र पुराण और तन्त्र वेदार्थ को प्रकाशित करते हैं, श्री यास्क, शबरस्वामी, सायण, महीधर और उव्वट वेद भाष्यकार हैं इनके अतिरिक्त (भाष्यकार) वेदों के दूषक हैं। पुनर्जन्म मुक्ति सदा रहने वाली है जन्म से वर्ण का निश्चय है। स्वर्ग आदि लोक हैं और देव आदि वहां के रहने वाले हैं। मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण होता है परमात्मा का प्रतीकों द्वारा पूजन हैं, अछूतपन शास्त्र से सिद्ध है। विवाह सवर्ण में ही होना चाहिये। द्विजों में नियोग तथा विधवा विवाह ठीक नहीं। शास्त्र पुराण सहित वेद तथा प्रणव का पढ़ना और जपना यज्ञोपवीत करने वाले द्विजों को ही करना चाहिये। जो भक्ति से गणेश–विष्णु–शंकर–सूर्य तथा देवी की पूजा करते हैं वे एकत्रित होकर वेदोक्त इस सुन्दर सिद्धान्त को मानें। मलेच्छ–बौद्ध–तुरुष्क तथा हरिजन बनाने वाले अपने आपको आर्य कहने वाले विपक्षी हैं वे शास्त्र विरूद्ध मतों को मानने वाले होने से पूर्वपक्ष करें।

विद्वान् प्रतिवादियों को चाहिये कि सब विचार कर शीघ्र ही अपनी केन्द्रीय सभा के द्वारा माघ के कृष्ण पक्ष में ही पत्र भिजवाकर समय ग्रहण कर लें। इत्यादि।

☆ ☆ ☆

नोट– इस शास्त्रार्थ की घोषणा के सम्बन्ध में यह लिखना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस घोषणा पर **"माघ कृष्णा प्रतिपद् २००० विक्रमी"** छपा है। हम नहीं कह सकते कि यह घोषणा माघ शुक्ला तृतीया (२८ जनवरी सन् १९४४) तक कहां छिपी पड़ी रही। इसके वितरण का क्या प्रबन्ध सनातनधर्मियों की ओर से किया गया था ? कम से कम औचित्य तो यह था कि दिल्ली नगर की समस्त आर्यसमाजों के नाम यह भेजा जाना चाहिये था और यदि घोषणा के अनुसार केन्द्रीय सभा में ही पत्रव्यवहार करना अभीष्ट था तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पास ही भेजना था, पर हमें यह ज्ञात है कि ऐसा नहीं किया गया। यह घोषणा सब मत मतान्तरों को चैलेंज है और नियमानुसार इसकी सूचना किसी को भी न देना औचित्य के विरूद्ध है। सम्भवतः यह घोषणा करने वालों का यह विचार हो कि अच्छा है यह किसी विरोधी के हाथ में न पहुंचे जिससे कोई इसका उत्तर भी न दे तब हमें यह लिखने का अवसर होगा कि देखा, हमने शास्त्रार्थ की घोषणा की और कोई हमारे सम्मुख आने का साहस नहीं कर सका। हमें शोक है कि घोषणा करने वालों को ये मनोमोदक खाने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। यह घोषणा आर्यसमाजियों के हाथ लग ही गई। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि घोषणा के अन्तिम पद्य से पूर्व पद्य में कहा गया है कि **"माघ मास के कृष्ण पक्ष में पत्र भेजकर समय ग्रहण कर लें"** और घोषणा के द्वितीय और हिन्दी भाषा में लिखा है कि **"बसन्त पंचमी तक लिखित सूचना देने की कृपा करें"** इस परस्पर विरोध का समाधान क्या है ? हमें यह घोषणा माघ मास के कृष्ण पक्ष में मिली नहीं और न हमारे पास भेजने का सौजन्य दिखलाया गया इसलिये हम इसका कोई उत्तर अमावस्या तक किसी प्रकार भी नहीं दे सकते थे। हाँ बसन्त पञ्चमी के दो दिन शेष थे। इसलिये केवल पत्र न भेजकर सार्वजनिक घोषणा का उत्तर सार्वजनिक रूप से देना आवश्यक समझा। हमने जो इसका उत्तर प्रकाशित किया उसका शीर्षक था **"घोषणायाः प्रतिध्वनिः"** अर्थात् **"घोषणा की गूंज"**। वह भी एक ओर संस्कृत पद्यों में तथा दूसरी ओर हिन्दी भाषा में थी। पाठकों के अवलोकनार्थ उसे हम यहां प्रकाशित करते हैं, तथा संस्कृत पद्यों का अनुवाद हिन्दी भाषा में करते हैं। अनुवाद के लिये यहां भी हमने उसी नियम का पालन किया है जिसका कि पहिले उल्लेख कर चुके हैं।

आर्यसमाज की ओर से भेजा गया उत्तर–

।। ओंतत्सत् ।।

"घोषणायाः प्रतिध्वनिः"

वेदनिष्ठाः ! यतिप्रष्ठाः ! वरिष्ठाः ! विदुषामिह।
आर्याः वः स्वागतं ब्रूमः समेषां श्रद्धयेद्धया।।१।।

धर्मयेऽत्र सनातनं श्रुतिमतभ्रान्त्या जुषन्ते जनाः।
मिथ्या–रीति कपोल–कल्पित–पुराणाद्यैरूपाबृं हितम्।।२।।
तद्बुद्धौ दयनीयतां प्रकटयन्नार्यः समाजो।
शास्त्रार्थैं स्वरूचिं दधद वितनुते शार्दूल विक्रीडितम्।।३।।

माया–माधव घोषणा विरहिता सारैःपदानुक्तितः।
कावेतौ, किमुमण्डलम्! सचिवतां धत्तस्तदीयामुत।।४।।

आस्ताम्, अत्र समस्तनिस्तुषसतां यागेन सम्मेलने।
प्रश्नः, कोऽत्रसनातनेति पदता वाच्योऽस्ति धर्मोऽनघः।।५।।

शैवाः, विष्णु परायणाः, भगवतः श्री शंकरस्यानुगः।
शाक्ताः, द्वैतविशिष्टशुद्वैसहिताद्वैतानुगाश्चापरे।। ६।।

इत्थं विप्लवसंप्लवे जनिमतां धर्मः प्लवत्वं व्रजेत्।
कोऽद्धा ? वाच्यमिदं विचार्य सुधिया नैवार्यता वार्यताम्।। ७।।

व्यासं याताः विशस्ते तरणितनुभवापुण्यतीरे मनोज्ञाः।
यज्ञाः प्रज्ञातविज्ञैः 'शतक मुख महा कोटि' नाम्ना प्रसिद्धाः।। ८।।

तेषां वाच्यं न किञ्चित्परमिदमलघुज्ञानवाञ्छास्पदं नः।
कस्या आधारलाभो वदत श्रुतितते र्यत्कृता यज्ञसृष्टिः।। ९।।

हिंसायतो वो यजनांगभूता, भूता न सा स्याद्यदिशास्त्रदृष्ट्या।
तदाकथंवैदिकमेतदिष्टम्, दिष्टंकथन्न श्रुतिभिन्नसृष्टम्।। १०।।

शास्त्रार्थ स्त्वधिदेववाणि नियमैर्लेखेन तैर्निश्चितः।
संमृद्योभयपक्षतस्त्वधिपतिर्नः स्याद्विदामुत्तमः।। ११।।
प्रामाण्यं मन्त्र भागे तदनुसृतिपरे चागमे स्मार्त्तभागे।
यास्कं मानं निरुक्तं श्रुतितितिविषयार्थप्रमाऽऽधानमार्गे।। १२।।

वेदा अपौरूषेया ये मन्त्रभागात्मका मताः।
स्वतः प्रामाण्यमेतेषां नान्येषामिति नो मतम्।। १३।।

मुक्ततेर्निवृत्तिः, वर्णानां भिन्नता गुणकर्मभिः।
भवेदथ स्वभावोऽपि विशेषाधायको मतः।। १४।।

मृताः श्राद्धे नतृप्यन्ते तृप्यन्ते जीविता द्विजाः।
अस्पृश्यता लोक सिद्धा सिद्धान्तः श्रुतिवोदितः।। १५।।

किञ्च—

"महाधिवेशनं" सिद्ध्येत् कथञ्चा "स्नाय" प्राकृता।
मण्डलादि पदानाञ्च कथं वा पदशून्यता।। १६।।

विविच्य सर्वं प्रतिवादिभिर्नः संसूचना द्वित्रदिनेषु देया।
मान्याः महान्तः प्रतिपक्षपक्ष्या भवेयुरत्राग्रहलेशवेशः।। १७।।

न माधवं नापि तदीय मायाम्, मन्ये विपक्षक्षपणाय पूर्णाम्।
अतो बलीयः प्रतिपक्षभावम्, वाञ्छामि वादाहवकौतुकाय।। १८।।

वैदिकस्यैव धर्मस्य जयोभूयादनारतम्।
भूयासुरनुगाः सर्वे दयानन्दोक्तवर्त्मनः।। १९।।

स्थानम्:—
इन्द्रप्रस्थ नगरम्
वसन्त पंचमी
सम्वत् २००० विक्रमी,

निवेदकाः—
"रामचन्द्रः जिज्ञासुः," व "रामगोपालः"
आर्यसमाज मंत्री, आर्ययुवकसंघ, मंत्री
वीरेन्द्रः, आर्यतर्कशालिनी सभा, मंत्री

घोषणा की प्रतिध्वनि–

इस यज्ञ में जो विद्वान् तथा सन्यासी पधारे हैं हम उनका स्वागत करते हुए स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि अहर्निश जागरूक आर्य समाज विद्वान पण्डितों से सदैव शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत है किन्तु श्री पं० माधवाचार्य तथा पं० मायादत्त जी शास्त्री जैसे अनुत्तरदायी व्यक्तियों पर कोई ध्यान नहीं देना चाहते, क्योंकि– "**अनुहुंकरुते धनध्वनि नहि गोमायुरुतानि केसरी**" हम यह जानना चाहते हैं कि जिसे आप "**सनातन धर्म**" कहते हैं उसका स्वरूप क्या है ?– अर्थात् शैव, वैष्णव, शाक्त, कापालिक, द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि परस्पर विरूद्ध मतों में से कौन सा सनातन धर्म है ? तथा आप जो यहाँ पर "**शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ**" करने पधारे हैं यह किस श्रुति के आधार पर है ? आपके मतान्तर्गत यज्ञों में हिंसा का विधान "**कात्यायन श्रौत सूत्रादि**" के आधार पर मान्य ही है तब क्या आपका यज्ञ बिना पशु हिंसा किये भी सफल हो सकता है ?

हमारा सिद्धान्त है कि वेद अपौरुषेय हैं तथा वे स्वतः प्रमाण हैं– अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं, मुक्ति, सावधिक है, वर्ण, गुण कर्म स्वभावानुसार हैं यज्ञों में पशु हिंसा, वेद विरूद्ध है, यदि आप इन विषयों पर शास्त्रीय रूप से विचार करना चाहते हैं तो आइये हम तत्पर हैं। यदि आप शास्त्रार्थ न करेंगे तो आप पराजित समझे जायेंगे– और आपका यहां आना व्यर्थ सिद्ध होगा।

☆☆☆

आर्यसमाज द्वारा प्रकाशित घोषणा की प्रतिध्वनि का हिन्दी में अनुवाद–

वेदभक्त सन्यासी एवं विद्वानों में श्रेष्ठ महानुभाव ! एवं हे आर्य पुरूषों ! हम आप सबका बड़ी श्रद्धा से इस स्थान पर स्वागत करते हैं।।१।।

जो महानुभाव मिथ्या रीति तथा कपोल कल्पित पुराणादि प्रतिपादित सनातन धर्म को वैदिक धर्म के भ्रम से ग्रहण किये हुए हैं उनकी बुद्धि पर दया को प्रकट करते हुये आर्यसमाज प्रसन्नता से शास्त्रार्थ में अपनी रूचि को रखता हुआ सिंहनाद करता है*।।२।।

माया और माधव (मायादत्त पाण्डेय और माधवाचार्य शास्त्री) की घोषणा सार तथा अधिकार पदों से रहित है। घोषणा से यह प्रकट नहीं होता कि ये दोनों कौन हैं ? मण्डल क्या है ? क्या ये दोनों उसके मन्त्री हैं ? अच्छा जाने दो इन बातों को। इस यज्ञ के अवसर पर आये हुये समस्त उत्कृष्ट विद्वानों से हमारा प्रश्न है कि "**सनातन धर्म**" कहते किसे हैं ?।।३।।

कोई शैव हैं कोई वैष्णव हैं कोई भगवान् शंकर के अनुयायी हैं, कुछ शाक्त, कुछ द्वैतवादी, कुछ विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत तथा अद्वैत के मानने वाले हैं– सब ही अपने आपको सनातनधर्मी कहते हैं, बतलाओं साधारण– जन कौन सी नाव पर चढ़कर संसार सागर को पार करे ? आपको चाहिये कि आप कदापि आर्यत्व का उल्लंघन न करें।।४।।

---

* इस पद्य के द्वितीय चरण में "**पुराणवैरूपावृंहितम्**" पाठ होना चाहिये।

–"सम्पादक"

यमुना के पवित्र तट पर जो विद्वान् महानुभावों ने शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञों का आयोजन किया है, उसके सम्बन्ध में हमें कुछ नहीं कहना, किन्तु हमें यह बड़ी शंका है कि इस शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ को आप किस श्रुति के आधार पर कर रहे हैं ?।।५।। (इस श्लोक के प्रथम पाद में अर्थ शेष है)।।

आपके मत में हिंसा यज्ञ का अंग है। आपने इस यज्ञ में वह क्यों नहीं की ? न करने पर आपका यज्ञ वैदिक कैसे है ?।।६।।

हम संस्कृत भाषा में ही शास्त्रार्थ करने को उद्यत हैं किन्तु नियमों का तथा विद्वानों में श्रेष्ठ किसी सभापति का निर्णय उभय पक्ष से होना चाहिये। हम वेद को प्रमाण मानते हैं तथा तदनुकूल शास्त्रों तथा स्मृतियों को प्रमाण मानते हैं। महर्षि यास्क रचित निरूक्त वेदार्थ करने में प्रमाण है।।७।। (इस पद्य का पूर्वार्द्ध शार्दूल विक्रीडित और उत्तरार्द्ध स्रग्धरा है, यह राभस्य का फल है–हरिः)।।

वेद अपौरूषेय हैं। वे केवल मन्त्र भाग रूप हैं। हम वेदों को ही स्वतः प्रमाण मानते हैं अन्यों को नहीं। यह हमारा सिद्धान्त है।।८।।

मुक्ति से जीव लौटता है। वर्णो की भिन्नता गुण कर्मो से है और स्वभाव भी वर्णो की विशेषता करता है अर्थात् वर्ण व्यवस्था गुण कर्म स्वभाव से है जन्म से नहीं।।९।।

श्राद्ध से मृत पितरों की तृप्ति नहीं होती। भोजन करने वाले जीवित ब्राह्मण ही तृप्त होते हैं। अछूतपन लौकिक व्यवहार है, शास्त्रीय नहीं, यह वैदिक सिद्धान्त है।।१०।।

महाधिवेशन– आस्नाय–प्राकृता–आदिरूप किस प्रकार सिद्ध होते हैं ? मण्डलादि पदों का विभक्ति से रहित प्रयोग क्यों है ? ।।११।।

इन सब बातों पर विचार कर प्रतिवादियों को चाहिये कि हमें दो तीन दिन में शास्त्रार्थ स्वीकृति की सूचना दे दें। हमारा यह आग्रह अवश्य है कि हमारे प्रतिपक्षी कोई महान् व्यक्ति हों।।१२।।

माधव (श्री पं० माधवाचार्य) की, और उसकी माया (पं० मायादत्त जी) को पूर्णतया विपक्ष का समर्थक नहीं समझता। इसलिये मैं चाहता हूं कि शास्त्रार्थ के युद्धरूपी कोतूहल के लिये कोई बलवान प्रतिपक्षी हो।।१३।।

वैदिक धर्म की सदा जय हो। सब मनुष्य श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा दिखलाये हुये मार्ग के पथिक बनें।।१४।।

☆ ☆ ☆

यह पहले लिखा जा चुका है कि हमारी **"प्रतिध्वनि"** ३० जनवरी को प्रकाशित हो चुकी थी और उस ही दिन हम स्वयम् धर्म नगर में जाकर पण्डित समुदाय में तथा साधारण जनता में वितीर्ण कर आये थे। श्री पं० मायादत्त जी के कर कमलों में भी हम स्वयम् पहुंचा आये थे। हमने लगातार तीन दिन तक सनातन धर्मियों के उत्तर की प्रतीक्षा की, किन्तु तीसरे दिन के सायंकाल अर्थात् पहली फरवरी को पौने आठ बजे हमें

श्री पं० मायादत्तजी का निम्नलिखित पत्र मिला–

श्री "धर्मनगर–दिल्ली"

श्रीमान् मन्त्री, आर्य समाज–देहली।

श्रीमन्महोदय !

आपकी प्रतिध्वनि प्राप्त हुई उत्तर में निवेदन है कि आप आज सायं ८ बजे से ही धर्म नगर के विशाल सभा मण्डप में शास्त्रार्थ करने हेतु पधारने की कृपा करें। अब इस विषय में हम कोई लिखा पढ़ी नहीं करेंगे।

"मायादत्त पाण्डेय शास्त्री"

१–२–१९४४ ई० मन्त्री– सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल, देहली

यह पत्र हिन्दी भाषा में था। यहां यह जानना आवश्यक है कि इस पत्र में हमें सायंकाल के आठ बजे शास्त्रार्थ के लिये बुलाया गया था। केवल पन्द्रह मिनट ादि संग्रह करना अपने विद्वानों को सूचित करना तथा आर्यसमाज मन्दिर से लगभग एक मील दू ें उपस्थित होना सर्वथा असम्भव था। हम यह न समझ सके कि हमें इतने तंग समय में सूचना क्यों दी गई ? जबकि हमारी प्रतिध्वनि ३० तारीख को मध्याहन् तक उनके पास पहुँच चुकी थी तब यदि पहली तारीख को ही शास्त्रार्थ करना अभीष्ट था तो हमें पहले से भी सूचित किया जा सकता था। अतः इसके दो कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि स्वयं सेवकों का अभाव पर वस्तुतः यह बात नहीं थी क्योंकि स्वयं सेवक सैकड़ों की संख्या में वहां उपस्थित थे। दूसरा कारण यह हो सकता है कि केवल पत्र भेजकर अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर लिया जावे और समय ऐसा दिया जावे कि आर्यसमाज के पुरुष आ ही न सकें और जनता में यह भ्रम फैलाने का सुअवसर मिल जावे कि **"देखा ! आर्यसमाजी शास्त्रार्थ करने हेतु नहीं आये"** बस हमारी जीत समझी जावेगी। हमारा विचार है कि यह दूसरा ही मुख्य कारण इसका हो सकता है, क्योंकि जो आर्य भाई उस समय धर्मनगर के विशालमण्डप में उपस्थित थे उन्होंने हमें बतलाया कि जिस समय तक सनातनधर्मियों का स्वयंसेवक, प्योन बुक (Peon Book) में हमारे हस्ताक्षर कराकर वहां पहुंचा भी नहीं था अर्थात् आठ बजकर ठीक पांच मिनट होने पर ही मण्डप में यह घोषणा कर दी गयी कि हमने आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिये पत्र लिख दिया है, पर पांच मिनट बीत जाने पर भी वे यहां नहीं आये। इस ऐलान के औचित्य अथवा अनौचित्य पर विचार सर्वसाधारण को करना चाहिये।

अब तक जो भी कुछ लिखा पढ़ा गया था उसका मुख्य अंश संस्कृत भाषा में था और सर्वसाधारण के लिये उसका भाव हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया गया था। अर्थात् जो प्रथा घोषणा द्वारा सनातनधर्मियों से आरम्भ की गई थी हमने भी प्रतिध्वनि में उसका वैसा ही पालन किया। किन्तु प्रतिध्वनि सुनकर झट चाल बदल दी और संस्कृत से हिन्दी पर आ गये। वाह रे ! पाण्डित्य ? हमें यह पत्र ७ बजकर ४५ मिनट पर मिला था। उस समय आर्यसमाज दीवानहाल के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में आर्य तर्क शालिनी सभा के तत्वावधान में विधर्मियों से शास्त्रार्थ ही कर रहे थे, इसलिये उस कार्य से निश्चिन्त होकर हमने तुरन्त निम्नलिखित पत्र संस्कृत भाषा में लिखकर लगभग साढ़े ग्यारह बजे, धर्मनगर में सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल के मन्त्री **"श्री पं० मायादत्त जी"** के पास भिजवा दिया है। हमारा पत्र तथा उसका हिन्दी भाषा में अनुवाद निम्न प्रकार है –

श्रीमन् ! सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल मन्त्री महोदय !

भावत्कमुत्तर दलमस्माभिरधुनैव पादोनाष्टंवादन समये सायम लम्भि। आश्चर्यावहमेतद्यदष्ट वादन समये शास्त्रार्थाय समाहूताः वयं पादोनाष्ट वादनसमये लब्ध प्रत्युत्तराः कथमेतावताल्पीयसानेहसा तत्रशक्ष्यामः समुपस्थातुमिति न ब्यचारि भवता। आर्य ! पद्धतिरेषा नानु हरते सतां रीतिम्। भवतु, अधुनेदं युज्यते यच्छास्त्रार्थाय भवन्निर्धारिताद् दिनाद्दिन चतुष्टय पूर्वमेव वयंसूच्येमहि, येन सर्वेऽपि इहत्या नागरिकाः शास्त्रार्थ, चुञ्चवो विपश्चितश्च पूर्वतः विज्ञाप्येरन् विज्ञापनादिना। इदमप्यवधेयं सज्जनतायां चिकीर्षितः शास्त्रार्थचर्चश्चर्चिष्यते हिन्दी भाषायां मौखिकश्चैष भविष्यति, लेखवद्धस्तु गिरा देवानाम।

अद्येदं संविद्य मोमुद्यते मेऽन्तरंगं यदार्य मिश्रः सनातन धर्म दिग्विजय मंडल मन्त्रि पदमलंकरोति। परमद्यापि विविदिषाविषयीभूतमेतद्यद्भवन्मंडलस्य धर्म संघेन सह कः कीदृशश्च सम्बन्धः इदमजानन्नहं धर्मनगरस्थे विशाल सभा मंडपे तावदागन्तुं मोत्सहे यावद्धर्म संघाधिकारी कश्चित्र निमन्त्रणयति।

पत्रोत्तरं द्रतमाकाँक्षन्,–

"रामचन्द्रोजिज्ञासुः"
(आर्यसमाज–मन्त्री)

आर्यसमाज के प्रथम पत्र का हिन्दी भाषा में अनुवाद–

श्रीमान् सनातनधर्म दिग्विजय मंडल के मन्त्री, महोदय !

आपका पत्र अभी पौने आठ बजे सायंकाल को हमें मिला। यह एक आश्चर्य की बात है कि आठ बजे शास्त्रार्थ के लिये बुलवाये हुए हम पौने आठ बजे आपका उत्तर पाकर किस प्रकार इतने थोड़े समय में वहां *आ सकेंगे ? यह आपने नहीं सोचा। हे आर्य ! यह मार्ग सज्जनोचित नहीं है। अच्छा ! अब यह होना चाहिये* कि शास्त्रार्थ के लिये आपसे निर्धारित दिन से चार दिन पूर्व आप हमें सूचना दें जिससे सब यहां के नगर निवासी शास्त्रार्थ कुशल और विद्वान् महानुभावों को विज्ञापन आदि के द्वारा सूचना दी जा सके। यह आपको ध्यान में रखना चाहिये कि यदि जनता में शास्त्रार्थ को करने की इच्छा है तो वह हिन्दी भाषा में और मौखिक होगा और यदि लेखबद्ध होगा तो वह संस्कृत भाषा में। यह जानकर आज हम प्रसन्न हैं कि आप (पं० मायादत्त पाण्डेय) सनातन धर्म दिग्विजय मंडल के मंत्री पद को सुशोभित करते हैं। किन्तु अभी यह जानने की इच्छा है कि आपके मण्डल का धर्मसंघ के साथ क्या और कैसा सम्बन्ध है ? यह बिना जाने हुए धर्मनगर के विशाल सभा मण्डल में मैं आने का उत्साह नहीं कर सकता जब तक कि धर्मसंघ का कोई अधिकारी हमें निमन्त्रण न दे।

"रामचन्द्र जिज्ञासु"
मन्त्री–आर्य समाज (दीवानहाल–देहली)

☆ ☆ ☆

हमें इस पत्र के सम्बन्ध में कुछ भी कहना आवश्यक नहीं प्रतीत होता क्योंकि हमने जो कुछ भी लिखा है वह अत्यन्त स्पष्ट है। यद्यपि यह पत्र पहली फरवरी की रात्रि को ही श्री पं० मायादत्त जी के पास भेज दिया गया था– पर हमें इसका उत्तर नहीं मिला। हाँ हमें यह सूचना मिलती रही कि धर्मनगर के विशाल मण्डल में प्रतिदिन सायंकाल यह घोषणा की जाती है कि हमने आर्यसमाजियों को शास्त्रार्थ के लिये पत्र

लिख दिया है और वे नहीं आते। आर्यसमाज दीवानहाल में पांच फरवरी तक का वार्षिकोत्सव का कार्यक्रम था, हमने भी कार्यक्रम के अंत में सम्पूर्ण पत्र व्यवहार सुनाया। तथा अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा तीन फरवरी तक की और अन्त में यह सोच कर कि पण्डित मायादत्त जी तो अपने पहली फरवरी के पत्र के अन्त में लिख ही चुके है कि **"अब इस विषय में हम कोई लिखा पढ़ी नहीं करेंगे"** हम पत्र के उत्तर की आशा छोड़ बैठे। प्रतिदिन सायं काल को धर्मनगर के मण्डप में जो भ्रमपूर्ण घोषणा हो रही थी, उसके सम्बन्ध में जनता के सामने वास्तविक स्थिति को प्रकट करने के लिए हमने एक विज्ञापन **"आर्य सिंहनाद तथा सत्य का प्रकाश"** नाम से चौथी फरवरी को प्रकाशित किया तथा स्वयम् धर्मनगर में जाकर श्री पं० मायादत्तजी के कर कमलों में पहुंचा दिया। वह विज्ञापन केवल हिन्दी भाषा में था और उसके आदि तथा अन्त में संस्कृत भाषा में दो पद्य थे। वह विज्ञापन तथा उन श्लोकों का हिन्दी भाषा में अनुवाद इस प्रकार हैं–

।। ओ३म्तत्सत्।।

आर्य सिंहनाद तथा सत्य का प्रकाश

दत्तं वेदमतन वादकवदैर्यद्धर्षणं घोषणम्। तस्याभूदतिभैरवो रवसवः शास्त्रार्थधीरार्यजः।।
हन्ताद्य व्यगमत्तुरीयदिवसो नैवोत्तरं चाप्यते– त्यार्योघः कुरूते तदद्य सघृणं शार्दूल विक्रीडितम्।।

दिल्ली नगर निवासियों से यह छिपा हुआ नहीं है कि यमुना तट पर **"शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ"** हो रहा है। और इस सम्बन्ध में गणमान्य सन्यासी तथा पण्डित पधारे हुए हैं। यज्ञ शुभ कर्म है। यज्ञ होना आवश्यक है इसलिये अनेकों प्रकार की भिन्नता होते हुवे भी हमने यज्ञ के सम्बन्ध में कुछ न कहना ही उचित समझा। परन्तु सनातनधर्मियों ने हमारी इस चुप्पी का आशय अन्यथा समझ कर उनके द्वारा यज्ञ मण्डप से प्रतिदिन झूठा प्रचार आर्यसमाज के विरूद्ध किया जा रहा है इसलिये इस विज्ञापन के द्वारा वास्तविकता को प्रकट कर देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

२८ जनवरी सन् १६४४ को हमें एक विज्ञापन मिला जिस पर माघ कृष्णा प्रतिपद २००० विक्रमी छपा था। यह शास्त्रार्थ की घोषणा थी और इसके प्रकाशित करने वाले हमारे एक सुपरिचित शास्त्रार्थ महारथी तथा पं० मायादत्त पाण्डेय थे। इस घोषणा में शास्त्रार्थ के लिये ललकारा गया था। हमने इसे स्वीकार करते हुवे **"घोषणा की प्रतिध्वनि"** नाम से एक विज्ञापन प्रकाशित किया। घोषणा संस्कृत पद्यों में थी और उसका भाषानुवाद हिन्दी में था इसलिये हमारी प्रतिध्वनि भी संस्कृत पद्यों में हिन्दी भाषानुवाद सहित प्रकाशित हुई। हमने अपनी प्रतिध्वनि में कुछ प्रश्न भी किये थे। यह प्रतिध्वनि ३० जनवरी को प्रकाशित हुई थी। इसका कुछ भी उत्तर **"सनातनधर्म दिग्विजय मंडल"** की ओर से प्रकाशित नहीं हुआ। हाँ, हमें पहली फरवरी को पं० मायादत्त पाण्डेय का एक पत्र हिन्दी में लिखा हुआ मिला। जिसमें लिखा था कि **"आपकी "प्रतिध्वनि" प्राप्त हुई उत्तर में निवेदन है कि आप आज सायं ८ बजे से ही धर्मनगर के विशाल सभा मण्डप में शास्त्रार्थ करने को पधारने की कृपा करें।"** यह पत्र हमें पौने आठ बजे सायंकाल को मिला। हमने इस पत्र का उत्तर संस्कृत भाषा में लिखकर रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे उस ही दिन भिजवा दिया और यह लिख दिया कि पौने आठ बजे पत्र पाकर आठ बजे शास्त्रार्थ के लिये आना असम्भव है। आप जिस दिन शास्त्रार्थ करना चाहें उससे चार दिन पूर्व सूचना दें जिससे कि हम नगर की जनता को भी इसकी सूचना दे सकें। हमने यह भी स्पष्ट किया कि यह महोत्सव धर्मसंघ की आधीनता में हो रहा है और जब तक यह स्पष्ट न हो जावे कि धर्मसंघ के साथ **"सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल"** का क्या सम्बन्ध है ? तब तक मण्डल के निमन्त्रण को धर्मसंघ के मण्डप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, धर्मसंघ की ओर से निमन्त्रण आना चाहिये। इस पत्र

का उत्तर हमें अभी तक नहीं मिला, हम उत्तर की प्रतीक्षा में हैं।

सर्वसाधारण के ज्ञान के लिये हम उन प्रश्नों का उल्लेख करना चाहते हैं जिनकी ओर हमने प्रतिध्वनि में संकेत किया है। इस यज्ञ में बड़े–बड़े मठाधीश साधु आये हैं। इनमें से कोई अपने को श्री शंकर का अनुयायी और कोई श्री रामानुज का अनुयायी कहते हैं, कोई–कोई शाक्त भी है। ये सब अपने आपको सनातनधर्मी कहते हैं। हम पूछते हैं श्री शंकर का अद्वैतमत सनातनधर्म है या श्री रामानुज का विशिष्टाद्वैत सनातनधर्म है या शाक्तमत सनातनधर्म है ? न तो ये सब पृथक्–पृथक् सनातन धर्म हो सकते हैं और न सब मिलकर ! क्योंकि ये प्रकाश और अन्धकार के समान परस्पर विरूद्ध हैं तथा यह सब एक दूसरे का आपस में खण्डन करते हैं, इसलिये यह निर्णय नहीं हो सकता कि कौन–सा धर्म, सनातन है ? तथा सत्य एवं श्रुति प्रतिपादित है। भाव यह है कि सनातन धर्म के अनुसार शिव, विष्णु का उपासक है या विष्णु, शिव का उपासक है ? या ये दोनों मिलकर शक्ति के उपासक हैं ? इस प्रकार उपास्य देव की भिन्नता से सम्प्रदाय भिन्न–भिन्न हैं, इनमें से सनातनधर्म कौनसा है ? इस यज्ञ में नवग्रह का पूजन विशेषतया हुआ है। ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार ग्रह केवल सात हैं। अन्य दो ग्रह कहाँ से आये ? सनातनधर्म के अनुसार इन नौ ग्रहों में से कुछ ग्रह राक्षस हैं, फिर राक्षसों का पूजन ब्राह्मणों द्वारा और श्रौत यज्ञ में किस श्रुति के आधार पर है ? सनातनधर्म के अनुसार यज्ञ में पशु हिंसा का विधान है। गौ–अश्व–अज से आहुति होनी चाहिये– यहाँ यह करने को आपका साहस नहीं है। फिर आपके ही विचार से यज्ञ विधिवत् कैसे है ? हम तो यज्ञ में पशुवध को पाप समझते हैं। हमने स्वयं देखा है कि यज्ञ मण्डप के चारों और वेदपाठ हो रहा था और वहां तक मनुष्यमात्र आ जा सकते थे और वेद पाठ सुन सकते थे। वहां जाने तथा वेद पाठ सुनने की शूद्रों को भी आज्ञा थी। श्री शंकराचार्य के मतानुसार यदि शूद्र वेद को सुन ले तो उसके कान में रांग और लाख भर दे। श्री रामानुजाचार्य भी शूद्रों को पशु तुल्य कहते हैं और उनके कानों में वेदपाठ सुन लेने पर रांगा तथा लाख भरने को कहते हैं। आपने शूद्रों के साथ इस प्रकार व्यवहार करने का क्या प्रबन्ध किया है ? यदि नहीं तो क्या यह आर्यसमाज की विजय नहीं है ? इत्यादि बहुत से प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर अपने आपको सनातनधर्मी कहने वाले पण्डित कभी नहीं दे सकते। इन बातों का समाधान ये व्यक्ति नहीं कर सकते। आपका कर्तव्य है कि आप वैदिक धर्म का अनुसरण करें जिसका प्रतिपादन अपौरूषेय वेद करते हैं, जिसका समर्थन ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त ऋषि करते चले आ रहे हैं और जिनका पुनरूद्धार श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किया है। सायण, महीधरादि वेद भाष्यकारों ने अनर्थ किया है और वेदों को उपहासास्पद बनाया है। अष्टादश पुराण अनार्ष हैं और साम्प्रदायिक भावनाओं को उत्तेजित करने वाले हैं। इनमें विदेशीय भावों तथा सभ्यता का सन्निवेश है। ये वैदिक ऋषि तथा देवताओं की निन्दा करने वाले हैं। इनको मान्य समझना वैदिक धर्म के अनुकूल नहीं है। हम इस विज्ञापन के द्वारा दिल्ली वासियों को तथा सर्वसाधारण को सावधान करना चाहते हैं कि वे भ्रम के वशीभूत होकर इन लोगों के चक्कर में न आवें। यदि आप चाहते हैं कि इस यज्ञ के अवसर पर शास्त्र–चर्चा हो तो इन आगन्तुक पंडितों से कहो कि वे हमें शास्त्रार्थ के लिये समय दें अन्यथा अपनी घोषणा को वापिस लें। आर्य समाज शास्त्रार्थ के लिये सर्वदा प्रस्तुत है।

हन्ताभाणि पुरैव सर्वजनताहेतोस्तु हिन्दी गिरा, शास्त्रार्थः करणीय आः ! नहि मतिश्चासीत्तदुत्सारणे।
लेखेनास्ति चिकीर्षितो यदि ततः सज्जा वयं तत्कृते, नोचेदार्यमृगेद्र–गर्जनमिदं शार्दूलविक्रीडितम्।।

मन्त्री– आर्यसमाज, दीवानहाल–दिल्ली,
आर्ययुवक संघ,
(दिनांक– ४–२–१९४४ ई०)

निवेदक–
रामचन्द्र जिज्ञासु, रामगोपाल
वीरेन्द्र, मन्त्री आर्य तर्क शालिनी सभा

"आर्य सिंहनाद" का हिन्दी में अनुवाद–

अपने आपको वैदिक कहने वालों (सनातनधर्मियों) ने अपने पाण्डित्य के मद से जो घोषणा निकाली थी, उसके उत्तर में शास्त्रार्थ में धीर आर्य पुरूषों ने अत्यन्त भीषण प्रति शब्द किया। शोक ! आज चौथा दिन भी बीत गया पर उसका कोई उत्तर नहीं मिला। इसलिये आर्यसमाज उन लोगों के ऊपर घृणा की दृष्टि के साथ खुशी में शार्दूल विक्रीडित करता है। हमने पहिले ही कहा था कि यदि शास्त्रार्थ सम्पूर्ण जनता के हित के लिये करना है तो वह हिन्दी भाषा में करना चाहिये। किन्तु यह कहते हुवे हम शास्त्रार्थ को टालना नहीं चाहते थे। यदि आपकी इच्छा लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने की है तो भी हम उसके लिये भी उद्यत हैं। यदि आप यह भी नहीं मानते तो आपकी इच्छा।

यह विज्ञापन श्री पं० मायादत्तजी के पास चार फरवरी को दिन के बारह बजे से पूर्व पहुंच गया था। हमें उस ही दिन सायंकाल को साढ़े सात बजे श्री पं० मायादत्त जी का लिखा हुआ एक पत्र मिला। पत्र इस प्रकार है–

सनातनधर्मियों के दूसरे पत्र की प्रतिलिपि

पत्र संख्या २– दिल्ली ता० ४–२–१९४४ ई०

श्रीमान् मन्त्री महाशय आर्य समाज–देहली–,

महोदय !

यद्यपि हमारी सुस्पष्ट शास्त्रार्थ घोषणा की विद्यमानता में अर्थात् लिखित पत्र द्वारा १ फरवरी को उपस्थित होकर शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति दे देने पर भी पुनः कुछ लिखना अनावश्यक है तथापि आपको सूचित किया जाता है कि अब तक शास्त्रार्थ न हो सकने का उत्तरदायित्व आप पर ही है, अन्यथा आपके पहुंच जाने पर आपके आर्यसमाजी विद्वान् महाशय सुरेन्द्रजी की भाँति आपका भी शास्त्रार्थ द्वारा स्वागत किया जाता ? अब भी यदि आप चार दिन की अवधि का पचड़ा लगाकर अपनी दुर्बलता छुपाने की नीति का आश्रयण न कर आज या कल रात्रि ९ बजे सभा मण्डप में पधारें तो हम आपका शास्त्रार्थ द्वारा स्वागत करने को प्रस्तुत हैं।

विशेष–

यदि किसी कारण से ऐसा विचार नहीं है चार दिन पहले सूचना देने पर ही आप दृढ़ हैं तो यज्ञ समाप्ति के अनन्तर ता० १० फरवरी के बाद भी सनातनधर्म सदैव विचारार्थ प्रस्तुत रहेगा।

४–२–४४ **"पण्डित मायादत्त शास्त्री,"**

मन्त्री– सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल,

(अखिल भारतीय धर्मसंघ–निगमबोधघाट, देहली)

नोट–

श्री पं० मायादत्त जी के इस पत्र में दो बातें आक्षेप योग्य हैं। प्रथम तो यह कि **"अब तक शास्त्रार्थ न हो सकने का उत्तरदायित्व आप पर है"** यह वाक्य वस्तु स्थिति के सर्वथा विपरीत है। हम जानना चाहते हैं कि शास्त्रार्थ न हो सकने का उत्तरदायित्व हम पर कैसे है ? यह तो ठीक है कि पहली फरवरी को हमें पत्र मिला था और हम क्यों नहीं आ सके यह भी हम लिख चुके हैं। यदि पौने आठ बजे निमन्त्रण पाकर हम आठ बजे शास्त्रार्थ करने नहीं आ सके तो न आने का उत्तरदायित्व हम पर है, यह एक विचित्र तर्क है, अद्भुत न्याय है।

हमारा दूसरा आक्षेप यह है कि पं० मायादत्तजी का यह लिखना कि **"अब भी आप चार दिन की अवधि का पचड़ा लगाकर अपनी दुर्बलता छुपाने की नीति का आश्रयण न कर आज या कल रात्रि ९ बजे सभा मण्डप में पधारें"** इत्यादि अनुचित तथा सभ्यता विरूद्ध है। यह वाक्य प्रथम तो यह ध्वनित करता है कि चार दिन की अवधि का एक पचड़ा था और दूसरे यह कि हम इस आड़ में अपनी दुर्बलता छिपाना चाहते थे। जहां तक पहली बात का सम्बन्ध है, हम स्पष्ट कहना चाहते हैं कि हमने अपने पहली फरवरी के पत्र में उन्हें लिखा था कि जिस दिन आप शास्त्रार्थ करना चाहते हैं उस दिन से चार दिन पूर्व हमें सूचित करें और पत्र में ही हमने इसके लिये हेतु भी दिया था जिससे हम विद्वानों तथा सर्वसाधारण को सूचित कर सकें। यदि पं० मायादत्तजी यह समझते थे कि यह एक केवल बहाना है तो हमारे हेतु का कुछ समाधान तो करना था, अन्यथा पं० मायादत्तजी का कहना ऐसा ही है जैसे **"मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी"** अर्थात् अपना मुख है कह दो कि हरड़ दश हाथ लम्बी होती है। भाव यह है कि पं० मायादत्तजी का यह एक अनर्गल प्रलाप है। अच्छा, यदि यह मान भी लिया जावे (पं० मायादत्तजी के सन्तोष के लिए) कि यह पचड़ा ही था तो– यह कर्त्तव्य नहीं था कि इसके अनौचित्य पर कुछ प्रकाश डालते। क्या हम पूछ सकते हैं कि आपको इसमें क्या आपत्ति थी कि आप हमें चार दिवस पूर्व सूचना भेज देते ? आपका कार्यक्रम १० तारीख तक तो था ही और आपको हमारा पत्र पहली फरवरी की रात्रि को मिल ही चुका था, यदि आप दूसरी फरवरी को भी उत्तर दे देते तो छठी फरवरी को भी शास्त्रार्थ हो सकता था। आपने ऐसा क्यों नहीं किया ? जो पत्र चार फरवरी को लिखा गया वह दूसरी तारीख को क्यों नहीं लिखा गया ? पं० मायादत्तजी के पास इसका कोई उत्तर नहीं हो सकता। इसका उत्तर कठिन नहीं है। हम कह सकते हैं कि पं० मायादत्त तथा उनके साथी यह नहीं चाहते थे कि सर्वसाधारण जनता इस शास्त्रार्थ को सुन सके और हम भी जनता में शास्त्रार्थ का ऐलान कर सकें। इस प्रकार जनता में अपनी निर्बलता को छुपाने का यत्न सनातनधर्मियों का ही था हमारा नहीं, यहाँ तो हमारे पास निर्बलता है ही नहीं जिसे छिपाने का उद्योग करना पड़े।

पं० मायादत्तजी के पत्र से यह भी ध्वनि निकलती है कि यदि हम पहली फरवरी को नहीं आ सकते थे तो अन्य किसी दिन आ जाते। यह भाव भी अनुचित है, क्योंकि पहली फरवरी के पत्र में उस ही दिन सायं आठ बजे आने का निमन्त्रण था, उसमें यह नहीं लिखा था कि आप किसी दिन भी सायंकाल को आठ बजे आ सकते हैं। ऐसी अवस्था में हमारा अन्य किसी दिन वहाँ जाना अनुचित होता और हमें समय देना या न देना उनकी दया पर निर्भर रहता है– और हमारी दशा वही होती जो कि बिना निमन्त्रण के पहुंचने वाले व्यक्ति की होती है। इन बातों का निर्णय हम पाठकों पर ही छोड़ते हैं। हमने जो इस पत्र का उत्तर दिया वह इस प्रकार है–

आर्य समाज के द्वितीय पत्र की प्रतिलिपि

।।ओ३म्।।

दिल्ली,
४–२–१९४४ ई०

श्रीमन् महाशय पं० मायादत्तजी,
मन्त्री– अखिल भारतीय धर्म संघ, दिल्ली

श्रीमन्महोदय !

आपका पत्र आज साढ़े सात बजे सायं मिला। उत्तर में निवेदन है कि अब तक शास्त्रार्थ न हो सकने का उत्तरदायित्व हम पर नहीं है, क्योंकि घोषणा में समय व स्थान का उल्लेख नहीं था और आपका एक फरवरी का पत्र हमें रात्रि के पौने आठ बजे मिला इसलिये हम आपके लेखानुसार आठ बजे नहीं आ सकते थे। आपका वह पत्र केवल पहली फरवरी को आने के लिए था अन्य किसी दिन आने के लिये नहीं। अतः यह सब आपकी दुर्बलता का परिचायक है, हमने जो आपको चार दिन पूर्व सूचना देने के लिए लिखा था वह यज्ञ की समाप्ति पर नहीं किन्तु पूर्व ही के लिए लिखा था। अब हम आपकी सूचना के अनुसार ७ फरवरी दिन सोमवार को रात्रि ९ बजे आपके सभा मण्डप में पहुंच जावेंगे। आपके पत्र में श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा जी का उल्लेख अनावश्यक है– क्योंकि वे वहां व्यक्तिगत रूप से गये थे किसी आर्यसमाज की ओर से नहीं। कृपया ऊपर लिखित तिथि को निश्चित समय पर शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति देकर अनुगृहीत कीजिये। साथ ही यह भी स्पष्ट बतलाने की कृपा कीजिये कि हमारा स्थान आपके बृहन्मण्डल में किस दिशा में होगा ? क्या मेज कुर्सी आदि हमें स्वयम् लानी होगी या सब प्रबन्ध आप स्वयम् कर देंगे ? हमारी ओर से सामयिक प्रधान का कार्य **"श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी"** करेंगे। क्या आप हमें अपने माईक्रोफोन (ध्वनि विस्तारक यन्त्र) का उपयोग कर लेने देंगे, या हम अपना स्वयम् लेकर आवें ? इस यन्त्र के लगाने की सुविधा आपको प्रदान करनी होगी। पत्र का उत्तर शीघ्र देने की कृपा करें।

भवदीय–

"रामचन्द्र जिज्ञासु"

मन्त्री– आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली

नोट–

हम अपने इस पत्र के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना आवश्यक नहीं समझते। प्रत्येक बात अत्यन्त सुस्पष्ट है। यह पत्र भी हमने चार फरवरी को ही रात्रि के समय श्री पं० मायादत्तजी के पास भिजवा दिया। इसका उत्तर हमें पाँच फरवरी को मिला जो इस प्रकार है–

सनातनधर्म दिग्विजय मंडल के पत्र की प्रतिलिपि

पत्र– ६ श्री हरिः

"श्री सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल देहली"

ता० ५–२–१६४४ ई०

मन्त्री–महाशय, आर्यसमाज !

दीवान हाल, देहली।

आपके ता० ४–२–४४ के पत्र के उत्तर में निवेदन है कि संस्कृत में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने के लिए आप जब भी चाहें आ सकते हैं। रात ६ बजे नित्य हम आपकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, आपके लिखे अनुसार ७ फरवरी सोमवार को भी हम आपके स्वागतार्थ तथैव उपस्थित रहेंगे।

यद्यपि अखिल भारतीय संस्था **"श्री सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल"** की घोषणा के अनुसार तो आपकी **"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा"** ही शास्त्रार्थ के लिये हमारे आतिथ्य की अधिकारिणी हो सकती है, जिससे शास्त्रार्थ का परिणाम समस्त आर्यसमाजों से संबद्ध हो सके और महाशय सुरेन्द्र शर्मा जी के शास्त्रार्थ की भांति आपके द्वारा किया गया शास्त्रार्थ भी एक संस्था विशेष की सीमापर्यन्त ही सीमित न रह सके। तथापि हमने उदारता पूर्वक जैसे आपके प्रतिनिधि भूत श्री सुरेन्द्र जी को निराश नहीं किया, इसी प्रकार आपकी स्थानीय संस्था को भी हम अवसर दे रहे हैं। संस्कृत में लेखबद्ध शास्त्रार्थ होने की दशा में ध्वनि विस्तारक यन्त्र और केवल कुरान के हाफिज मुंशी* रामचन्द्र जी देहलवी के सभापतित्व का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता। अन्य सब सुविधाएं आपको भी हमारी भांति प्राप्त होंगी। इसकी आप चिन्ता न करें। संस्कृत में लेखबद्ध शास्त्रार्थ न कर सकने की असमर्थता यदि आप सुस्पष्ट लिख भेजें तो हिन्दी में मौखिक शास्त्रार्थ होने की भी स्वीकृति दी जा सकती है।

"माधवाचार्य"

(श्री सनातनधर्म दिग्विजय मण्डलेश्वर)

☆☆☆

इस पत्र के ऊपर पं० माधवाचार्य जी के (जो कि अपने आपको सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल का प्रधान कहते हैं) हस्ताक्षर हैं। इस पत्र के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। पत्र के आरम्भ और अन्त के वाक्यों को मिलाने से विदित होता है कि शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में ही तथा लेखबद्ध होना चाहिये और

---

*पण्डित माधवाचार्य जी को मैंने अनेकों शास्त्रार्थों में सुना, उनका यह (कुटिल) स्वभाव जन्मजात ही था कि वह सामने वाले अर्थात् विपक्ष पर अशोभनीय छींटाकसी करते थे, जिससे कि अगला (विपक्षी) अपना धैर्य छोड़ कर आवेश में आ जावे तथा अपनी मूल बात को भूल जावे। अमर स्वामी जी महाराज इस विषय में कहते थे कि यही तो शास्त्रार्थ की कला है कि– **"सामने वाले को ऐसा जोश दिलाये कि वह अपने होश ही खो दे और मूल बात को भूल जावे"** तो बस ! समझो कि अगर ऐसा हो गया तो शास्त्रार्थ में आपकी विजय निश्चित है।

–"लाजपत राय अग्रवाल"

यदि हम यह लिख दें कि हम संस्कृत भाषा में लेख बद्ध शास्त्रार्थ करने को असमर्थ हैं तो हमें हिन्दी में ही मौखिक शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति दी जा सकती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि हम संस्कृत भाषा में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने के लिये विवश हों। यह क्यों ? क्या यह नियम घोषणा में था कि हिन्दी भाषा में शास्त्रार्थ तब हो सकेगा जब कि संस्कृत भाषा में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने में असमर्थता प्रकट की जावे। हम देखते हैं कि शास्त्रार्थ की घोषणा में ऐसा कोई नियम नहीं था। घोषणा के द्वितीय पद्य के प्रथम दो चरणों पर ध्यान दीजिये, वहां यही लिखा है **"यह वाद पण्डितों की सभा में संस्कृत में लेख बद्ध होगा, अथवा अपनी–अपनी रूचि के अनुसार प्राकृत भाषाओं द्वारा भी किया जा सकता है"** इसमें यह कहीं नहीं लिखा कि प्राकृत भाषाओं में शास्त्रार्थ उस ही दशा में हो सकता है जबकि संस्कृत भाषा में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने की असमर्थता प्रकट की जावे। सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल चाहता यह था कि शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में हो जिसे जनता बिल्कुल भी न समझ सके और हमें मनमाने ढंग से यह घोषणा करने का अवसर मिले कि **"सनातन धर्म जीत गया, और आर्य समाज हार गया"** इसीलिये यह चालाकी चली जा रही थी। कम से कम इतना तो इससे स्पष्ट है ही कि जो संस्कृत भाषा में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने की असमर्थता सुस्पष्ट शब्दों में प्रकट नहीं कर सकते उनके लिये सनातन धर्म का द्वार बन्द है। तथा घोषणा में कम से कम यह बात पहली फरवरी के पत्र में ही लिखनी थी या चौथी तारीख के पत्र में लिखनी थी। यह बात पाँच फरवरी को ही कैसे सूझी ? जबकि हम पहली फरवरी के अपने पत्र में स्पष्ट लिख चुके थे कि– **"जनता में शास्त्रार्थ हिन्दी भाषा में तथा मौखिक होगा"** तब यह बात पांच दिन तक प्रकट क्यों नही की गयी ? इसका एक कारण है और वह यह कि उनका विचार तो यह था कि शास्त्रार्थ होगा ही नहीं, इस ही लिये वे कोई निश्चित तिथि हमें बतलाने के लिये उद्यत नहीं थे अपने चार फरवरी के पत्र में हमने निश्चित तिथि (दिन सोमवार ७ फरवरी) नियत कर दी, उन लोगों ने तब समझा कि अब तो ये आ ही धमके, इसलिये शास्त्रार्थ को टालने के लिये किसी नये बहाने को ढूँढना चाहिये। हम इतना तो जानते ही हैं कि दिग्विजय मण्डल का पाण्डित्य कितना है ? यदि कुछ पाण्डित्य का बल होता तो पहली फरवरी का पत्र संस्कृत भाषा में होता– और नहीं तो कम से कम हमारा संस्कृत भाषा का पत्र देखकर तो चार फरवरी का पत्र ही संस्कृत भाषा में होता; पर नहीं, इतना साहस मण्डल में कहाँ ?

पं० माधवाचार्य जी का यह लिखना कि **"रात को ६ बजे नित्य हम आपकी प्रतिक्षा करते रहते हैं"** अत्यन्त उपहासास्पद है। जिसको निमन्त्रण देकर घर न बुलाना हो उसे ऐसा ही कहना चाहिये। इस विषय का पर्याप्त स्पष्टीकरण पहिले ही हो चुका है और अधिक लिखना अनावश्यक है। पं० माधवाचार्य का यह लिखना कि **"यद्यपि अखिल भारतीय संस्था श्री सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल की घोषणा के अनुसार तो आपकी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ही शास्त्रार्थ के लिये हमारे आतिथ्य की अधिकारिणी हो सकती है जिससे शास्त्रार्थ का परिणाम समस्त आर्य समाजों से संबद्ध हो सके और महाशय सुरेन्द्रजी के शास्त्रार्थ की भाँति आपका किया शास्त्रार्थ भी एक संस्था विशेष की सीमा पर्यन्त ही सीमित न रह सके तथापि हमने उदारता पूर्वक जैसे आपके प्रतिनिधि भूत श्री सुरेन्द्र जी को निराश नहीं किया था, इसी प्रकार आपकी स्थानीय संस्था को भी हम अवसर दे रहे हैं"** केवल उन्मत्त प्रलाप है। इस लेख से निम्नलिखित बातें प्रकट होती हैं –

(क) सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल अखिल भारतीय संस्था है। इससे शास्त्रार्थ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ही कर सकती है जिससे परिणाम असीम हो।

(ख) पं० सुरेन्द्र जी हमारे प्रतिनिधि थे।

(ग) हमें समय उदारता पूर्वक दिया जा रहा है।

इन उपरोक्त बातों पर क्रमशः कुछ विचार करना आवश्यक है।

(क) हम यह समझने में असमर्थ हैं कि श्री सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल अखिल भारतीय संस्था कैसे है ? पं० माधवाचार्य को यह विदित नहीं कि अखिल भारतीय संस्था किसे कहते हैं ? ध्यान रहे कि अखिल भारतीय संस्था वही कहलाती है जो प्रान्तीय सभाओं से मिलकर बने और प्रान्तीय सभा वह कहलाती है जो कि स्थानीय संस्थाओं से बने अर्थात् स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधि प्रान्तीय सभाओं में हों और प्रान्तीय सभाओं के प्रतिनिधि अखिल भारतीय सभा में हों। क्या सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल की स्थानीय तथा *प्रान्तीय सभाओं से सृष्टि हुई है ? हमारे सुनने में तो स्थानीय तथा प्रान्तीय सभाओं का नाम नहीं आया।* अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना पं० माधवाचार्य अच्छा जानते हैं। इतना तक तो साहस है ही नहीं कि अपनी संस्था के नाम के आगे **"अखिल भारतीय"** विशेषण ही लिख देते। आर्य सार्वदेशिक सभा न केवल भारतवर्ष के सम्पूर्ण प्रान्तों की प्रान्तीय सभाओं से मिलकर बनी है किन्तु इसके साथ कई विदेशीय संस्थायें भी सम्बद्ध हैं और उनके भी प्रतिनिधि इसमें हैं इसलिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा न केवल अखिल भारतीय संस्था है किन्तु **"सार्वभौम"** संस्था है। सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल का सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ मुकाबला करना ऐसा ही है जैसे **"घटानां निर्मातुःस्त्रिभुवन विधातुश्च कलहः"** अर्थात् कहां घड़ों का बनाने वाला कुम्हार और कहां त्रिभुवन का सृष्टा परमात्मा ! अर्थात् केवल कर्तृत्व की समानता से जिस प्रकार कुम्हार और परमात्मा की तुलना नहीं हो सकती उस ही प्रकार केवल संस्था होने के नाते **"सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल"** और **"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा"** की भी तुलना नहीं हो सकती। कहाँ **"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा"** और कहाँ बेचारा **"सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल"** ?

वास्तविकता यह है कि आर्यसमाज का विरोधमात्र करने के लिये पहले तो बनारस में **"सनातन धर्म महामण्डल"** बनाया गया। उस पर ऐसे ही कुछ व्यक्तियों का अधिकार रहा। वह संस्था चलने पर भी न चली सी ही है। फिर पंजाब में **"सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा"** इस ही उद्देश्य से खोली गयी– उस पर कुछ समझदार व्यक्तियों का अधिकार हो गया जो कि अस्पृश्यता को दूर करने के पक्षपाती थे, वहां पं० माधवाचार्य जैसों की दाल न गली इधर श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (करपात्री जी) ने **"धर्मसंघ"** बनाया– पं० माधवाचार्य जैसों को जब कोई स्थान न मिला और पंजाब में सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा का प्रभाव होने से इनकी पूछ न रही तब ये भी अगतिक, अपने टट्टू पर सवार होकर धर्मसंघ में आ मिले और अपना नाम पाँच सवारों में लिखवा लिया। यह सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल ही पं० माधवाचार्य व उनके साथियों का लंगड़ा टट्टू है। यह तो हम मानते हैं कि **"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा"** के साथ शास्त्रार्थ का प्रभाव सम्पूर्ण आर्य जगत् पर होगा किन्तु यह तो बतलाने की कृपा कीजिये कि क्या **"सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल"** के साथ शास्त्रार्थ का प्रभाव सम्पूर्ण सनातनधर्मियों पर पड़ेगा ? क्या **"सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा"** तथा **"भारत धर्म महामण्डल"** इसके उत्तरदायी होंगें ? क्या जो सनातनधर्म सभायें तथा व्यक्ति जो किसी भी सनातनधर्म सभा से सम्बन्धित नहीं हैं वे इसके लिये उत्तरदायी होंगे ? इन प्रश्नों का उत्तर पं० माधवाचार्य तो क्या देंगे जनता को स्वयम् सोचना चाहिये कि उनकी स्थिति क्या है ?

(ख) दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि क्या पं० सुरेन्द्र शर्मा जी हमारे प्रतिनिधि थे ? हमारा उत्तर

है **"नहीं"** । श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा जी ने भी अपने आपको हमारा प्रतिनिधि नहीं कहा। यह ठीक है कि वे आर्य विद्वान् हैं और आर्यसमाजी हैं। पर वे हमारे प्रतिनिधि नहीं थे सम्भवतः पं० माधवाचार्य **"प्रतिनिधि"** शब्द का अर्थ ही नहीं जानते इस ही कारण यह भूल हुई है। इस सम्बन्ध में स्थानीय ४/२/४४ के **"वीर अर्जुन"** के पृष्ठ ४ कालम १ में जो एक टिप्पणी प्रकाशित हुई है उसकी ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, देखिये—

।। यमुनापार (धर्मनगर) में शास्त्रार्थ ।।

"१ फरवरी की रात को ८ बजे जो शास्त्रार्थ पं० सुरेन्द्र शर्मा ने पौराणिक पण्डितों से किया है उससे दिल्ली आर्यसमाजों का कोई सम्बन्ध नहीं था। वह उन्होंने व्यक्तिगत रूप से किया था। पौराणिक पण्डितों ने जो शास्त्रार्थ घोषणा प्रकाशित की है उसका उत्तर आर्यसमाजियों ने "घोषणा की प्रतिध्वनि" के रूप में दिया है। उसके जवाब में पौराणिक पंडितों ने कल पौने आठ बजे रात को लिखा कि आप आठ बजे शास्त्रार्थ के लिये आ जाइये। उसका प्रत्युत्तर आर्यसमाज दीवान हाल के मन्त्री की ओर से उसी समय भेज दिया गया कि हमें चार दिन पूर्व शास्त्रार्थ के लिये सूचित करें जिससे हम जन समुदाय को सूचित कर सकें। अब सिर्फ १५ मिनट में किसी को सूचना नहीं दी जा सकती।"

इतना ही नहीं, इस सम्बन्ध में श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा जी ने जो हमें पत्र लिखा है उसे भी हम यहां उद्धृत करना चाहते हैं "**ता० १ फरवरी १९४४ को शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञावसर पर महीधर भाष्य अमान्य है पर जो मैंने शास्त्रार्थ किया था वह मेरा वैयक्तिक ही था। मैं किसी भी सभा या समाज की ओर से नहीं गया था और उस शास्त्रार्थ का सब उत्तरदायित्व मुझ पर ही है**"।

निवेदक—

"सुरेन्द्र शर्मा गौड़"
(काव्यतीर्थ)

इन सुस्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी श्री पं० माधवाचार्य का अन्यथा लिखना **"बकरे की तीन टांग होती हैं"** कहने के समान मिथ्या एवं धृष्टतापूर्ण है।

(ग) अब रही तीसरी बात कि समय उदारता पूर्वक दिया जा रहा है। हम इसे भी स्वीकार करने को उद्यत नहीं हैं। यदि हमें समय दिया गया तो यह कोई उदारता नहीं थी। विचारणीय प्रश्न यह है कि निमन्त्रण देने वाला उदारता दिखलाता है या निमन्त्रण को स्वीकार करने वाला ? हो सकता है कि उदारता का भाव दोनों ओर हो— पर अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाला यदि कहता है कि मैंने आप पर उदारता दिखलायी है तो इससे केवल उदारता का भाव ही नष्ट नहीं होता है किन्तु कहने वाला कितना असभ्य है यह भी प्रकट होता है। इस पत्र में पं० माधवाचार्य ने यह भी लिखने की धृष्टता की है कि— **"केवल कुरान के हाफिज मुंशी रामचन्द्र जी देहलवी"** इत्यादि इसका भाव यह है कि आदरणीय श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी केवल कुरान के हाफिज है और इसलिये उन्हें **"पण्डित"** कहने के स्थान में **"मुन्शी"** कहना चाहिये। सबसे प्रथम तो हम यह कहना चाहते हैं कि श्री पं० रामचन्द्रजी देहलवी यदि कुरान के **"हाफिज"** हैं तो यह उनका कोई दूषण नहीं किन्तु भूषण है। श्री देहलवी जी को केवल कुरान का हाफिज कहना भी भूल है। यह तो हम मानने के लिये उद्यत हैं कि श्री देहलवी जी ने बचपन में ही अष्टाध्यायी के सूत्र नहीं रटे न **"महाविद्यालय**

ज्वालापुर" (हरिद्वार)* में दाखिल ही हुए किन्तु श्री देहलवी जी को अपने परिश्रम और अध्यवसाय से संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञान है और इनकी दार्शनिक योग्यता तो इतनी अधिक है कि बनारस तथा नवद्वीप के बड़े से बड़े दार्शनिक भी उनके ज्ञान की थाह नहीं पा सकते। आपकी तार्किक प्रतिभा इतनी कुशाग्र है कि कोई भी विधर्मी उनके सम्मुख ठहरने का साहस नहीं कर सकता। किन्तु इन सनातनधर्मी पण्डितम्मन्यों को अपने तथा अपने साथियों के अतिरिक्त दूसरा कोई पण्डित ही नहीं दिखलायी देता। ठीक है स्टेशनों तथा प्याऊओं पर पानी पिलाने वाले, वैश्यों की दुकानों पर पर्चे चुकाने वाले तथा शूद्रवत् सेवा करने वाले इनके साथी नाम के ब्राह्मण तो पण्डित और दूसरे विद्वान् होते हुए भी पण्डित नहीं। धन्य है इस मनोवृत्ति को पं० माधवाचार्य ने श्री पं० रामचन्द्र जी को मुन्शी लिखा। हम मुंशी शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं लेते पर यह सोचकर कि यदि इस शब्द का अर्थ अच्छा है तो पं० माधवाचार्य भी "**मुंशी**" हैं और यदि अर्थ बुरा है तो यह बुराई भी पं० माधवाचार्य के सिर रहनी चाहिये यह सोचकर हमने जो इस पत्र का उत्तर दिया उसमें हमने भी उन्हें मुंशी पद से सम्बोधित किया है। वह पत्र इस प्रकार है–

दिल्ली

५–२–१६४४ ई०

श्री मुंशी माधवाचार्य जी,

श्री सनातनधर्म दिग्विजय मंडल देहली !

आपका ५–२–४४ का पत्र प्राप्त हुआ। उत्तर में निवेदन है कि आप अपने स्वभाव के अनुसार शास्त्रार्थ को टालने का यत्न विविध प्रकार के बहाने बनाकर कर रहे हैं। आपके बहानों के नमूने तथा उनका निराकरण इस प्रकार है :–

१. आप संस्कृत में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने को जो कहते हैं, यह एक बहाना है तथा ढोंग हैं। क्योंकि आपकी घोषणा जो संस्कृत में प्रकाशित हुई थी उसकी प्रतिध्वनि भी हमने संस्कृत में ही प्रकाशित की थी और उसमें आपसे कुछ प्रश्न भी पूछे गये थे। यदि आपको संस्कृत में ही लेखबद्ध शास्त्रार्थ करना था तो उसका उत्तर प्रकाशित करवाते और इस प्रकार संस्कृत में ही लेखबद्ध शास्त्रार्थ चलता रहता। यह करने में आप असमर्थ रहे और अब तक भी आप उसका उत्तर नहीं दे सके। पं० मायादत्त जी ने एक फरवरी को हिन्दी भाषा में पत्र लिखकर हमें बुलाया था उसमें भी लेखबद्ध संस्कृत भाषा में शास्त्रार्थ होगा यह नहीं लिखा था। अब जबकि हम सात तारीख को आना स्वीकार करते हैं तब आपने यह बहाना लगाकर शास्त्रार्थ को टालने की चेष्टा की है। कल चार तारीख को पं० मायादत्तजी ने जो पत्र लिखा था उसमें भी इस बात की ओर संकेत नहीं था, यद्यपि हम एक तारीख को लिखे हुए पत्र में यह स्पष्ट कर चुके थे कि यदि शास्त्रार्थ जनता में होगा तो वह हिन्दी भाषा में तथा मौखिक होगा, यदि लेखबद्ध होगा तो वह संस्कृत भाषा में। पं० मायादत्तजी अपने चार तारीख के पत्र में इस विषय पर मौन हैं, इसलिये अब इस विषय को उठाना शास्त्रार्थ को टालना ही है।

---

*भारत में यही एकमात्र ऐसी दर्शनीय संस्था है जहां २५० ब्रह्मचारी–निःशुल्क शिक्षा पाते हैं। २७०० रूपये की लागत से इस (दिल्ली–दिग्विजय) पुस्तक के प्रकाशक श्री विश्वम्भरनाथ जी कसेरिया की धर्मपरायणा माता जी ने भी वहाँ एक शिक्षा–भवन बनवाया है। **"हरिदत्त शास्त्री"** (मुख्याधिष्ठाता)

२. आपका यह कहना कि– **"आपकी सार्वदेशिक सभा ही शास्त्रार्थ के लिये हमारे अतिथ्य की अधिकारिणी हो सकती है"** नितान्त उपहासास्पद है, क्योंकि पहली और चौथी तारीख के पत्र श्री मायादत्त जी ने हमें लिखे थे, न कि सार्वदेशिक सभा को। यदि आपको सार्वदेशिक सभा से शास्त्रार्थ करना था तो ये पत्र उन्हें ही लिखे जाने चाहियें थे, पं० सुरेन्द्र जी का शास्त्रार्थ व्यक्तिगत था न कि किसी संस्था की ओर से ! इसलिये उनके शास्त्रार्थ को किसी संस्था से सम्बन्धित करना आपकी भूल है। न जाने श्री पं० सुरेन्द्र जी को आप हमारा प्रतिनिधि किस आधार पर कह रहे हैं ? आपको यह स्पष्ट ध्यान में रखना चाहिये कि यह शास्त्रार्थ **"सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल"** नाम की उत्तरदायित्व विहीन संस्था के साथ नहीं हो रहा है अपितु **"अखिल भारतवर्षीय धर्म संघ"** के साथ। पं० मायादत्तजी ने भी चार तारीख का पत्र अखिल भारतवर्षीय धर्म संघ की ओर से ही लिखा है जिसकी कि हमने स्वीकृति दी है। संस्कृत में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने की असमर्थता आपने प्रकट की है हमने नहीं। इसका प्रमाण यह है कि प्रतिध्वनि का उत्तर संस्कृत में अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। जब तक आप उत्तर प्रकाशित न कर दें आप अपनी असमर्थता को छिपा नहीं सकते। हमने अपना नियम कि– **"यदि जनता में शास्त्रार्थ होगा तो हिन्दी भाषा में तथा मौखिक होगा"** आपने पहली तारीख के पत्र में लिख दिया था जिसका कि पं० मायादत्तजी ने अपने चौथी तारीख के पत्र में उल्लेख नहीं किया जिससे हम यह समझते हैं कि **"मौनं स्वीकृति लक्षणम्"** के नियमानुसार पं० मायादत्तजी ने स्वीकार कर लिया है। संस्कृत में शास्त्रार्थ सर्व साधारण को लाभदायक नहीं। परम आदरणीय श्री पण्डितवर रामचन्द्रजी देहलवी **"शास्त्रार्थ"** में सामयिक प्रधान होंगे यह हमारा निर्णय है। हमें ही अपने प्रधान को चुनने का अधिकार है आपको नहीं। हम सात फरवरी को रात्रि के नौ बजे शास्त्रार्थ करने के लिये धर्मसंघ के विशाल मण्डप में आवेंगे। यदि हमारे लिये आप ध्वनिविस्तारक यन्त्र का प्रबन्ध न कर सकें तो हम स्वयम् कर लेंगे आप हमें लगाने की सुविधा प्रदान करें यही हम चाहते हैं।

भवदीय–

"रामचन्द्र जिज्ञासु"
मन्त्री– आर्यसमाज (दिल्ली)

यह पत्र तो हमने उनके पत्र के उत्तर में भेज दिया, किन्तु हमने सोचा कि इस प्रकार पत्र–व्यवहार में समय अधिक नष्ट होगा और वे नये–नये बहाने बनाकर शास्त्रार्थ को टालने का यत्न करेंगे, इसलिये अच्छा है कि हमारी ओर से कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति उनसे मिलकर सब विवादग्रस्त विषयों का उचित रूप से निर्णय कर लें, इसलिये पांच फरवरी को दोपहर के अनन्तर हमने निम्नलिखित महानुभावों से इस कार्य को सम्पादन करने के लिये प्रार्थना की :–

(१) श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी, आर्यमहोपदेशक, प्रधान आर्य तर्कशालिनी सभा, दिल्ली।

(२) श्री पं० रामचन्द्र जी जिज्ञासु मन्त्री, आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली।

(३) श्री पं० वीरेन्द्र जी शास्त्री सिद्धान्त भूषण पुरोहित आर्यसमाज दीवानहाल तथा मन्त्री आर्य तर्कशालिनी सभा दिल्ली।

हम उक्त महानुभावों के ऋणी हैं कि उन्होंने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर धर्मनगर में जाने का कष्ट किया। वहां क्या बातचीत हुई तथा उसका क्या परिणाम निकला ? यह सब आप श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी के ही शब्दों में पढ़ लीजिये जो कि निम्नलिखित हैं :–

जब इश्तहार और पत्र–व्यवहार द्वारा शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में कुछ भी निर्णय होता दिखाई नहीं दिया तो मैं मन्त्री आर्यसमाज व तर्कशालिनी सभा दीवानहाल के साथ स्वयं यज्ञ के स्थान पर गया और सभा मण्डप में से *श्री पं० माधवाचार्य जी को बुलवाया और इन्क्वायरी आफिस में बैठकर उनसे बातचीत की।* पण्डित जी हम लोगों से बड़ी अच्छी तरह से मिले और जो बातें उनसे हुई वह यह थीं :–

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– कभी हमारे पास अखिल भारतीय धर्मसंघ का पत्र आता है और कभी सनातन धर्म दिग्विजय मंडल का ? हस्ताक्षर भी दोनों पर जुदा–२ हैं। सो कृपा करके बताइये कि शास्त्रार्थ कौन करेगा ?

पण्डित माधवाचार्य– मण्डल और संघ में इस समय कोई भेद नहीं है जो फार्म हाथ में आ जाता है उसी पर लिखकर पत्र भेज दिया जाता है। वास्तव में यह सब कुछ संघ की ओर से ही हो रहा है।

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– यह बात ठीक नहीं, इससे भ्रम पैदा होता है। ऐसे पत्रों के लिखने में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये। हम दोनों को जुदा समझ कर उत्तर भी जुदा दे रहे हैं। दूसरे आप जनता में यह भ्रम पैदा कर रहे हैं कि आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया गया है परन्तु वह नहीं आया। मैंने स्वयम् अपने मुहल्ले के लोगों को ऐसा कहते हुए सुना है।

पण्डित माधवाचार्य– हमने तो केवल यह कहा था कि आर्यसमाज को हम पत्र भेज चुके हैं कि वह ८ बजे रात को शास्त्रार्थ के लिये आ जायें।

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– यही बात तो भ्रम पैदा करने वाली है। क्योंकि आपका यह पत्र हमारे पास रात को पौने आठ बजे पहुँचा (जैसा कि हस्ताक्षर वाली रसीद से स्पष्ट है) और ८ बजे हमको शास्त्रार्थ के लिये बुलाया तो यह कैसे सम्भव हो सकता था कि हम आपके यहाँ आ सकते जबकि आप भलीभांति जानते थे कि आर्यसमाज दीवानहाल का भी उत्सव हो रहा है और हम उसमें लगे हुये हैं। हमसे परामर्श किये बिना शास्त्रार्थ के समय व दिन की केवल अपने मन से ही जनता में घोषणा करनी आपकी अनुचित चेष्टा थी और सर्वसाधारण को धोखे में डालने वाली थीं।

पण्डित माधवाचार्य– आप हमको तो उलाहना दे रहे हैं परन्तु अपने लिये कुछ नहीं कहते। क्या आपके व्यक्ति ने अपने जल्से में यह शब्द हमारे लिये नहीं कहे कि– **"वह बेईमान हैं।"**

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– क्या यह भ्रम उत्पन्न करने वाली उपर्युक्त बात का उत्तर हो सकता है ? यह भूल आपसे हुई है जो नहीं होनी चाहिये थी। हमारे जल्से में आपके सम्बन्ध में यह जरूर कहा गया था कि– **"वह बेईमान हैं"** और उस समय कहा गया था जबकि आपकी ओर से एक पुरूष ने, जिस समय पत्र–व्यवहार सुनाया जा रहा था बड़े जोर से चिल्ला कर यह कहा कि वह आपका इन्तजार कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में आप ही बताइये कि जब पत्रों द्वारा कोई बात तय नहीं हुई हो और पहले से ही यह उड़ा देना कि **"आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया गया और वह नहीं आया"** गुस्सा दिलाने वाली बात थी कि नहीं ?

पण्डित माधवाचार्य– *क्या ऐसे शब्द आपके व्यक्ति को कहने चाहिये थे ?*

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यह शब्द कटु जरूर थे परन्तु अवस्था के अनुकूल और वास्तविकता के द्योतक थे, और मेरे प्रधानत्व में कहे गये थे। खैर इस किस्से को छोड़कर अब

मैं यह जानना चाहता हूं कि आपने इस बात पर क्यों जोर दिया है कि शास्त्रार्थ संस्कृत में ही होगा और लिखित होगा। मैं पूछता हूँ कि जनता को इससे क्या लाभ होगा ?

पण्डित माधवाचार्य– हिन्दी जानने वाली जनता इस योग्य नहीं है और न वह अधिकारी है कि शास्त्र के गूढ़ रहस्य को समझे इसलिये शास्त्रार्थ संस्कृत में ही होना चाहिये।

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– यदि आपका यह कहना ठीक है तो सुबह से रात तक आप जनता को हिन्दी में ही व्याख्यान क्यों सुनाते हैं ? क्या ये शास्त्रों के गूढ़ तत्वों से खाली होते हैं।

पण्डित माधवाचार्य– हम सबका ऐसा ही निर्णय है, इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता है। मैं विवश हूँ।

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– यदि शास्त्रार्थ संस्कृत में करना अनिवार्य है तो जो जनता आपके कथनानुकूल शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को हिन्दी में नहीं समझ सकती और न अधिकारी ही है तो हजारों की संख्या में उसको इकट्ठा करके उसके सामने संस्कृत में शास्त्रार्थ करने का क्या लाभ या संस्कृत में शास्त्रार्थ के समय उनको इकट्ठा करने का क्या लाभ ? यदि लिखित शास्त्रार्थ ही करना है तो घर बैठे पत्रों द्वारा करके पीछे छपवा कर वितरण करवा सकते हैं।

पण्डित माधवाचार्य– तो फिर आप क्या चाहते हैं ?

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– मैं तो आप से पूछता हूँ कि ऐसी अवस्था में आपको क्या करना चाहिये ? मेरी राय तो यह है कि यदि शास्त्रार्थ संस्कृत में करना अनिवार्य है तो इतना और कर दीजिये कि जो कुछ जितने समय में लिखा जाये वह व्याख्या सहित उतने ही समय में सुना दिया जावे। इससे जनता का भी समय नष्ट नहीं होगा और आपकी इच्छा भी पूरी हो जायगी।

पण्डित माधवाचार्य– केवल हम इतनी ही बात मान सकते हैं कि संस्कृत लेख का केवल अनुवाद करके सुना दिया जाय। व्याख्या में एक शब्द भी न कहा जावे।

पण्डित रामचन्द्र देहलवी– व्याख्या करने से किस प्रकार की हानि होगी ?

पण्डित माधवाचार्य– मैं इससे विशेष कुछ भी नहीं कह सकता हूँ। आपकी हमने यह बात मानली है कि हिन्दी में संस्कृत लेख का अनुवाद सुना दिया जावेगा।

नोट–

इसके पीछे शास्त्रार्थ के नियम लिखकर उसकी दो नकलें करके एक पं० माधवाचार्य जी ने अपने हस्ताक्षर करके मन्त्री आर्य तर्कशालिनी सभा दीवानहाल को दे दी और दूसरी मन्त्री तर्कशालिनी सभा ने अपने हस्ताक्षर करके उक्त पण्डित जी को दे दी। फिर हम लोग अपने स्थान पर लौट आये।

हस्ताक्षर– **"रामचन्द्र देहलवी"**

श्री पण्डित रामचन्द्र जी द्वारा हमें जो नियम मिले वे निम्नलिखित हैं :–

श्री हरिः

(१) यह शास्त्रार्थ ता० ७ फरवरी सन् १९४४ ई० को धर्मसंघ सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल के

तत्वावधान में सम्पन्न होगा।

(२) दो घण्टे पूरा शास्त्रार्थ चलेगा जो रात को ६ बजे से ११ बजे तक होगा।

(३) उभय पक्ष पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के अन्तर पर संस्कृत में लेखबद्ध पक्ष-प्रतिपक्ष स्थापित् करके उसे हिन्दी में सुना देंगे। लिखित शब्दों के अतिरिक्त अनुवाद में अपनी ओर से कोई शब्द नहीं बढ़ाया जा सकेगा।

५-२-१९४४ ई० **"माधवाचार्य"**

इस प्रकार निर्णय हो चुकने पर हम सनातनधर्मियों की ओर से किसी अन्य पत्र के आने की प्रतीक्षा में नहीं थे और शास्त्रार्थ के लिये सामग्री एकत्रित करने के प्रयत्न में संलग्न थे। यद्यपि इस निर्णय से हमें अपनी अभिलाषा की पूर्ति की बिल्कुल भी आशा नहीं थी, क्योंकि हम शास्त्रार्थ जनता के लाभ के लिये करना चाहते थे और निःसन्देह जनता इससे पूरा लाभ नहीं उठा सकती थी, तो भी यह विचार कर हम प्रसन्न थे कि हिन्दी भाषा में अनुवाद सुनाया जाने से जनता को भी जितना लाभ पहुँच सके उतना ही अच्छा है। पर हम समझते हैं कि श्री पं० माधवाचार्य जी को तो रात भर नींद नहीं आयी होगी और इस ही उधेड़ बुन में करवटें बदली होंगी कि अब तक के सब बहाने तो निष्फल हो गये अब और कोई नया बहाना ढूंढ निकालना चाहिये। अन्त में **"जिन खोजा तिन पाइयां"** वाली कहावत चारितार्थ हुई और आपको एक बहाना मिल ही गया जो कि निम्नलिखित पत्र में है। यह पत्र हमें रविवार ६ फरवरी को प्रातःकाल मिला। पत्र इस प्रकार है :-

श्रीहरिः

मन्त्री महाशय ! आर्यसमाज, देहली !!

कल आपके प्रतिनिधि श्री महाशय रामचन्द्रादि की उपस्थिति में शास्त्रार्थ विषयक सब समयादि का निर्णय हो चुका है तदनुसार इस दो घण्टे के शास्त्रार्थ में प्रथम एक घण्टा पर्यन्त आपका प्रश्न और हमारा उत्तर रहेगा। आप यथेच्छ विषय ले सकते हैं। किन्तु उस विषय की सूचना हमें शीघ्र प्रदान करें जिससे तदुपयुक्त ग्रन्थादि का संग्रह किया जा सके।

दूसरे घण्टे में हमारी ओर से दयानन्दकृत ग्रन्थों की अवैदिकता विषयक प्रश्न होगा आप तदुपयुक्त ग्रन्थ आदि का प्रबन्ध कर लें।

६-२-१९४४ ई० **"माधवाचार्य"**

(श्री सनातनधर्म दिग्विजय मण्डलेश्वर)

नोट-

इस पत्र के सम्बन्ध में इतना जानना आवश्यक है कि इसमें पं० माधवाचार्य ने एक नई बात उठाई और वह यह थी कि जो दो घण्टे शास्त्रार्थ के लिये नियत हुए थे उसमें से वे हमें प्रश्न करने के लिये केवल एक घण्टा देना चाहते थे और दूसरे घण्टे में स्वयं हमसे प्रश्न करना चाहते थे। पं० माधवाचार्य को यह ध्यान न रहा कि नियमानुसार अपने स्थान पर बुलाकर हमें उत्तरदाता बनाना अनुचित है। यह तो वही कहावत चरितार्थ हुई **"हमारे घर आओगे तो क्या लाओगे और हम तुम्हारे घर आयेंगे तो क्या खिलाओगे"** अस्तु हमने जो इस पत्र का उत्तर दिया वह इस प्रकार है :-

।। ओ३म् ।।

दिल्ली
६–२–१९४४

मन्त्री, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ तथा सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल,
धर्मनगर–देहली !

आपका दिनांक ६–२–४४ का लिखा हुआ पत्र मिला। उत्तर में निवेदन है कि कल हमारे प्रतिनिधि श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी आदि जो निर्णय आपके साथ कर चुके हैं वह अन्तिम है। हम उस सम्बन्ध में और कोई बातचीत करने के लिये उद्यत नहीं है। आप नये–नये बहाने बनाकर शास्त्रार्थ के टालने का यत्न कर रहे हैं यह अनुचित है।

हम जिन विषयों को लेंगे उनका स्पष्ट उल्लेख **"प्रतिध्वनि"** और **"सिंहनाद"** में कर चुके हैं। यदि आपको हमसे प्रश्न करने हों तो आप हमारे स्थान पर आकर करें, जिसके लिये हमारा खुला चैलेंज है।

"रामचन्द्र जिज्ञासु"
(मन्त्री– आर्यसमाज)

इस पत्र के सम्बन्ध में यह कहना अनावश्यक नहीं है कि यदि पं० माधवाचार्य जी को वैदिक धर्म के किसी भी सिद्धान्त के सम्बन्ध में कोई शंका हो तो वे या उनके साथी चाहे जिस दिन अथवा चाहे जिस समय आ सकते हैं। यदि उन्हें लेखबद्ध शास्त्रार्थ करना हो तो वे चाहे जब अपनी शंकाओं को लिखकर भेज सकते हैं उन्हें उत्तर दिया जावेगा। यदि मौखिक करना चाहें तो आने से दो दिन पूर्व हमें सूचित करें जिससे कि हम प्रबन्ध कर सकें। अभी आर्यसमाज दीवान हाल के ५९ वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में आर्य तर्कशालिनी सभा की ओर से खुला चैलेंज प्रकाशित हुआ था, और आर्यसमाज, नयाबांस के उत्सव पर भी खुला चैलेन्ज प्रकाशित हुआ था, पर किसी सनातनधर्म के ठेकेदार को वहां आने का साहस न हुआ। अस्तु।

हमारे पत्र के उत्तर में हमें निम्नलिखित उत्तर श्री पं० चन्द्रशेखर शास्त्री के हस्ताक्षरों से मिला। पत्र पर कोई तारीख नहीं थी। यह पत्र हमें ६ तारीख को सांयकाल मिला। पत्र पर न तो पं० मायादत्त जी के हस्ताक्षर हैं और न पं० माधवाचार्य के ! इसमें भी अवश्य कोई रहस्य ही होगा। पत्र इस प्रकार है :–

मन्त्री आर्यसमाज, देहली ! **श्रीः**

अस्तु, आप अपने सिद्धान्तों पर शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते तो न सही, कल के निर्णय के अनुसार ही पधारें।

हस्ताक्षर– "चन्द्रशेखर शास्त्री"
मन्त्री– सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल, देहली।

सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल के इस अन्तिम पत्र का उत्तर देना आवश्यक नहीं था इसलिये हमने कोई उत्तर नहीं दिया। इसके अनन्तर हम शास्त्रार्थ के उपयोगी ग्रन्थों को तथा अन्य आवश्यक सामग्री के संचय करने में संलग्न हो गये। ७ फरवरी दिन सोमवार को तीसरे पहर लगभग पांच बजे एक व्यक्ति ने (जो कि अपने आप को धर्म–संघ का स्वयंसेवक बतलाता था) निम्नलिखित विज्ञापन की दो प्रति हमें दी। उसकी

इस **"अपूर्व कृपा"** के लिए हम आभारी हैं। इस विज्ञापन का शीर्षक है– **"प्रतिध्वनिध्वान्त विध्वंसनम्"**। यह विज्ञापन हमारी **"प्रतिध्वनि"** के उत्तर में है। यह भी एक ओर संस्कृत पद्यों में तथा दूसरी ओर हिन्दी भाषा में मुद्रित हुआ है। इस विज्ञापन का स्वरूप तथा हिन्दी भाषा में अनुवाद इस प्रकार है। संस्कृत पद्यों का शब्दानुवाद मात्र हमने किया है।

।। श्री हरिः ।।

"प्रतिध्वनिःध्वान्त विध्वंसनम्।"

प्रतिध्वनेःकृत्रिमता प्रसिद्धा, व्यक्तीकृता सा भवतास्वपत्रे।
शार्दूल विक्रीड़ितमेव वादे, विद्वत्सभायां न जयस्यहेतुः।। १।।

युक्तं यस्य वचो महाध्वनि युतं यावन्न कर्णगतं।
तावन्नूत्न समाज चारि करिणो गर्जन्ति गर्वाकुलाः।।२।।

सोऽयं धर्म विरोधि दर्पदलनेदक्षः सपक्षोऽधुना।
वेदारण्य पतिः सदा विजयते श्रीधर्म।। संघो हरिः।। ३।।

त्रासश्चेदथ शास्त्रवादकरणे 'मायेशतो' 'माधवात्'।
पाखण्ड द्रुम खण्ड दाव दहनो देवस्तदा सेव्यताम्।। ४।।

सद्धर्माभ्युदयाय, नास्तिक जनाग्र मार्यब्रुवच्छित्तये।
लोकेदिग्विजयाय मान्य विदुषाँ जागर्ति सन्मण्डलम्।। ५।।

यद्वादभीतःखलु बुद्धदेवः, श्रीमद्दयानन्द विचित्रचित्रम्।
अताडयत्पादतलेन सोऽयं किं माधवश्चोत्तरदत्व हीनः।। ६।।

शैवाःशाक्ता गाणपत्याः, सौराःवैष्णवादयः।
यस्य सर्वेअंग भूता हि सोऽयं धर्म्मः सनातनः।। ७।।

धर्मसंघविधा तृणां, नीति रेषासनातनी।
यथेच्छं कोऽपिकुत्रापि, शास्त्रार्थ कर्तुमर्हति।। ८।।

अथर्वोक्तो महायज्ञो, हिंसाशंकाऽध्वरे वृथा।
मुद्रणस्खलनोल्लेखः पाण्डित्याय न कल्पते।। ९।।

छन्दःसाकर्य संयुक्तं सलाघवम् गौरवम्।
अव्याकृतं बुधैर्निन्द्यं पत्रं छत्राकमेव वः।। १०।।

वशंवदौ वेदविदां धर्मसंधस्य सेवकौ।
माधवाचार्य मायेशौ प्रतिवादि भयंकरौ।। ११।।

सर्वविविच्य प्रतिवादि सज्जनैः स्वकीय केन्द्रीय सभासकाशतः।
दत्वा दलं वाद विनोद हेतवे ग्राह्योऽवकाशः कृतिभिःसदैवहि।। १२।।

निवेदकः–
"माधवाचार्य शास्त्री"
"मायादत्त पाण्डेयश्च"

श्री सनातन धर्म दिग्विजय मण्डलम्
(माघ शुक्ला द्वादसी सम्वत् २०००)

"सिंहनाद अथवा प्रबल प्रमाद"–

शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ के अवसर पर पधारे हुए प्रकाण्ड विद्वानों के द्वारा जनता सत्य सनातन धर्म का परिचय प्राप्त कर सके इस अभिप्राय: से धर्मसंघ के शास्त्र चर्चा विभाग **"श्री सनातन धर्म दिग्विजय मण्डल"** की ओर से संस्कृत लेखबद्ध शास्त्रार्थ घोषणा प्रकाशित की गई थी। जिसके उत्तर में आर्यसमाज की ओर से भी **"घोषणाया: प्रतिध्वनि:"** शीर्षक विज्ञापन निकाला। जिसमें छपे श्लोकों की छन्दों व्याकरण साहित्य सम्बन्धी ३२ पर्वतायमान अशुद्धियाँ देखकर साक्षर जनता ने तो बिना ही शास्त्रार्थ हुए आर्यसमाज की शास्त्रार्थ योग्यता का प्रत्यक्ष दर्शन कर ही लिया है। तथापि आर्यसमाजी मित्र कभी **"सिंहनाद"** और कभी **"सत्य का प्रकाश"** के आभास से जनता में अपनी प्रतिष्ठा रखने के लिये हाथ–पांव मार रहे हैं। इसलिये पुन: इस विषय का स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता अनुभव की गई है।

हम १ फरवरी पुनश्च ४–५ फरवरी को भी हमारे पण्डाल में पहुँचकर शास्त्रार्थ के लिये आर्यसमाज को लिखित निमन्त्रण भेज चुके हैं। इतने पर भी आर्यसमाज, दिग्विजय मण्डल क्या है ?, धर्मसंघ से उनका क्या सम्बन्ध है ?, पं० माधवाचार्य और पं० मायादत्त जी से हम शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते, इत्यादि सार शून्य अवान्तर प्रश्न उपस्थित करते हुए शास्त्रार्थ को टाल रहे हैं। इसलिये हम सडिंडिम घोष पुन: सूचित कर देना चाहते हैं कि घोषणा लिखित नियमानुसार आर्यसमाजी भाई जब भी चाहें शास्त्रार्थ कर सकते हैं।

धर्मनगर–दिल्ली **"माधवाचार्य शास्त्री महारथ:"**

"मायादत्त पाण्डेय शास्त्री कविरत्नम्"

अनुवाद
(प्रतिध्वनि के अन्धकार का नाश)

प्रतिध्वनि की कृत्रिमता प्रसिद्ध है। जिसे हमने अपने पत्र में व्यक्त कर दिया है। विद्वानों की सभा में केवल शार्दूल विक्रीडित ही जय का कारण नहीं होता।।१।।

जिसके युक्तियुक्त महाध्वनि वाले वचन जब तक कान में नहीं पड़ें तब तक गर्वित तथा नये समाज में घूमने वाले हाथी गर्जना करते हैं, वह यह धर्म विरोधियों के दर्प के नष्ट करने में चतुर सपक्ष तथा वेद रूपी जंगल का राजा श्री धर्मसंघ नाम का सिंह सदा विजय को प्राप्त करता है।।२।।

यदि मायेश (मायादत्त) और माधव (माध्वाचार्य) से शास्त्रार्थ करने में डर लगता है तो पाखण्डरूपी वन को जलाने वाले देव की सेवा करो। सत्यधर्म के अभ्युदय के लिये और नास्तिकों के अगुआ अपने आपको आर्य कहने वालों को काटने वालों के लिये तथा संसार में दिग्विजय करने के लिये मान्य विद्वानों का मण्डल जागरूक रहता है।।३।।

जिसके साथ शास्त्रार्थ के डर से बुद्धदेव ने श्रीमद्दयानन्द के विचित्र चित्र को पैर* से मारा था क्या वह माधव (माधवाचार्य) उत्तर देने के योग्य नहीं है ?।।४।।

---

* यह घटना हैदराबाद में हुए एक शास्त्रार्थ की है, जहां पर पं० बुद्धदेव जी विधालंकार जी के साथ मूर्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ हो रहा था, उसमें पं० माधवाचार्य जी ने पं० बुद्धदेव जी को आवेश दिला कर कहा कि– **"अगर आप मूर्तिपूजन नहीं मानते तो यह स्टेज पर रक्खी दयानन्द की मूर्ति है इसे पैर से मारो"**– पं० जी ने आव देखा न ताव उस मूर्ति को पैर से अलग कर दिया, कि यह तो निर्जीव है, इसमें क्या है ? इस घटना से सम्पूर्ण आर्य जगत में पं० बुद्धदेव जी को बड़ा अपयश मिला,

(क्रमश:)

शैव, शाक्त, गणपति के उपासक, सूर्य के उपासक और श्री वैष्णव आदि जिसके सब अंग हैं वह धर्म सनातन है।।५।।

धर्मसंघ के बनाने वालों की यह सनातन नीति है कि कोई कहीं भी यथेच्छ शास्त्रार्थ कर सकता है।।६।।

यह महायज्ञ अथर्व वेदोक्त है। यज्ञ में हिंसा की शंका करना व्यर्थ है। छापे की भूलों का उल्लेख करना पाण्डित्य का कारण नहीं है।।७।।

प्रतिवादी सज्जनों को चाहिये कि सब विचार कर अपनी केन्द्रीय सभा के द्वारा पत्र भेजकर शास्त्रार्थ के लिये सदा समय निश्चित कर लें।।८।।

श्री सनातन धर्म दिग्विजय मण्डलम् — **"माधवाचार्य शास्त्री"**
(माघ शुक्ला द्वादसी सम्वत् २०००) — **"मायादत्त पाण्डेय"**

यह पहले लिखा जा चुका है कि उपर्युक्त विज्ञापन हमें ७ फरवरी की सायंकाल को मिला था और उस ही दिन रात्रि को ८ बजे से शास्त्रार्थ होना था जो न हो सका इसलिये शास्त्रार्थ से निश्चित होकर हमने १० फरवरी को इसका उत्तर प्रकाशित किया जो कि निम्नलिखित है :–

।। ओं तत्सत् ।।

☆ विध्वंसनमोहनाशनम् ☆

प्रतिध्वनि कृत्रिमतास्वरूपंवरन्हरेः किं निनदं न वेत्सि ?।
शार्दूलविक्रीडितमेव वादे संध्य्रङ् क्रियाभिस्तु जयस्य हेतुः।।१।।

युक्तं यस्य वचो निशम्य तरसा विद्रावणं रावणम्।
धैर्य द्राग् गिरिधारि पण्डितवरो मुक्त्वोदतिष्ठत्सभाम्।।२।।

सोऽयं वेदविरोधि मत्तंगजराट् कुम्भाद्रि भेदोद्धुरः।
शास्त्रार्थाहवभीषणो विजयते श्री व्यासदेवो हरिः।।३।।

त्रासः कस्य ? सदा पुराणजमतध्वंसाय सज्जा वयम्।
आस्माकः परपक्षखण्डनविधौ जागर्ति वाचां पविः।।४।।

यत्पातस्य भयेन संस्मरत भोः श्रीधर्म संघाधिपः।
शास्त्रार्थस्य विधानमेव सहसा भंक्तुं तदोद्युक्तवान।।५।।

वह माधवाचार्य की कुटिलता को समझ ही नहीं पाये। जब इस घटना का पता श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के लगा तो उन्होंने अपने एक शास्त्रार्थ की चर्चा की– जिसमें बिल्कुल यही प्रश्न पं० कालूराम जी शास्त्री, शास्त्रार्थ महारथी (अमरोधा–कानपुर) निवासी जो सनातनधर्म के दिग्गज़ शास्त्रार्थ महारथियों में से एक थे, उन्होंने किया था– तो अमर स्वामी जी महाराज ने उत्तर दिया कि– पं० जी आपने जो यह पगड़ी सिर पर बांधी हुई है, यह आपका कोई इष्टदेव तो है नहीं इसलिए आप इसे अपने सामने रख कर इस पर पांच जूते मार दिजीये और अभी नकद एक हजार रूपये इनाम पाईये। उन्होनें ऐसा नहीं किया। अन्त में स्वामी जी महाराज ने समाधान किया कि– **"चित्र पर जूता मारना तथा फूल चढ़ाना दोनों ही एक जैसी मूर्खता हैं"**। परिणामस्वरूप सारी उम्र श्री पं० कालूराम शास्त्री जी ने इस तरह का प्रश्न करने का दुःसाहस नहीं किया। वह भी इस महायज्ञ में मौजूद थे।
निवेदक– "लाजपत राय अग्रवाल"

यो माधवोगालिदपण्डितानामग्र्योऽश्रुत व्याकरणोऽगुणज्ञः।
श्लाघां स्वयं स्वस्यतनोति किं स्यात्समाधवोऽप्युत्तरदत्त्वयोग्यः।। ६।।

स पण्डितांग्र्यः कविबुद्धदेवो नाताडयत्पादतलेन चित्रम्।
महर्षिवर्यस्य, परं विपक्षपक्ष्यस्य भाले न्यधित स्वपादम्।। ७।।

शैवाः शाक्ता वैष्णवाश्च सर्वेअंगानि यतस्ततः।
धर्मः पौराणिकः कश्चिन्निर्वक्तुं नहि शक्यते।। ८।।

केवलं वचसा प्रोक्तं संख्यानं स्खलनस्य नः।
चित्रं प्रतिज्ञामात्रेण स्वीयपक्षः प्रसाध्यते।। ९।।

प्रादर्शि वोऽशुद्धि समष्टिजातं श्रृंगग्रहेणासकृदस्मकाभिः।
भूयोऽपि शास्त्रार्थवचःप्रकाशे प्रवक्ष्यते सर्वमशुद्धिजालम्।। १०।।

मायादत्तोऽपि मायेशः संवृत्तोऽहो गरीयसी।
वैदुषी भवतामस्तु व्यासोऽलं सर्ववादिनाम्।। ११।।

यः शामलीनामनि यज्ञसूत्रं ग्रामेगृहीत्वा व्यतनोत्प्रतिज्ञाम्।
शास्त्रार्थचर्चा न हि चर्चयिष्ये स माधवो व्यासमतेर्नयाति।। १२।।

रूर्कीशहादरास्थान – द्वयेऽत्रापीन्द्रप्रस्थके।
धावन् प्रदर्शयन् पृष्ठं माधवः केन विस्मृतः।। १३।।

पाखण्डनाशाय सदा पताकां दोधूयते व्यासबुधस्तु नित्यम्।
स्मरन्निदं किन्नु भवानवादीत्, "देवस्य" में सेवनमिगिंतेन।। १४।।

अथर्वणाऽयं सम्प्रोक्तो मख एतन्मृषा वचः।
एवं व चेद्दर्शनीयं यत्रैतत्प्रतिपादितम्।। १५।।

कृता अनेका विविधास्तु शंका नाद्यापि या उत्तरिता भवद्भिः।
मुधा भवान् जल्पति यन्निरर्थं ह्णीयते तेन न वः किमात्मा ?।। १६।।

वीरेन्द्रः, निवेदिकाः– **रामचन्द्रो जिज्ञासुः, रामगोपालः**
आर्य तर्क शालिनी सभा मन्त्री आर्यसमाजमन्त्री, आर्ययुवकसंघमंत्री
इन्द्रप्रस्थनगरम्, फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा सं० २००० विक्रमी

।। ओंतत्सत् ।।

विध्वंसन के मोह का नाश तथा आर्यसमाज की विजय

सनातनधर्म दिग्विजय मण्डल तथा धर्मसंघ की ओर से जो शास्त्रार्थ की घोषणा प्रकाशित हुई थी उसका उत्तर हम अपनी प्रतिध्वनि तथा अपने सिंहनाद में दे चुके हैं। अब सनातनधर्म दिग्विजय मंडल की ओर से उनका प्रत्युत्तर देने की विफल चेष्टा की गई है। जब तक यह न बतलाया जावे कि हमारी प्रतिध्वनि में कौन सी अशुद्धियां हैं, केवल यह लिख देना पर्याप्त नहीं है कि ३२ पर्वतायमान अशुद्धियें हैं। हमने जिस

प्रकार अशुद्धियें बतलायी हैं वैसा करने का साहस सनातनधर्मी पण्डितों में नहीं है। शैव, शाक्त, वैष्णवादि सम्प्रदाय सनातनधर्म के अंग हैं यह कहना भूल है क्योंकि ये परस्पर विरूद्ध और एक दूसरे को कटु वाक्य कहते हुये एक दूसरे का खण्डन करते हैं। यह ठीक है कि पतिव्रता स्त्री अपने पति की ही सेवा करती है दूसरे की नहीं। परन्तु यह दृष्टान्त यहां नहीं घटता, क्योंकि ये सम्प्रदाय अपने इष्टदेव की स्तुति ही नहीं करते अपितु दूसरे सम्प्रदाय वालों की निन्दा भी करते हैं। वह स्त्री साध्वी नहीं कहला सकती जो अपने पति की सेवा करती हुई दूसरी स्त्रियों के पतियों को गाली भी दे। इसलिये ये सब सम्प्रदाय सनातनधर्म नहीं कहला सकते। शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ अथर्ववेद के आधार पर है यह कहना सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि अथर्ववेद में इसका विधान कहीं भी नहीं है। इन मिथ्या विश्वासों को हेत्वाभासों से सिद्ध करने का विफल प्रयत्न करते हुवे इन्हें संकोच भी नहीं होता। शोक ! महाशोक !!

इसके अतिरिक्त हमने जो अनेक प्रश्न "**प्रतिध्वनि**" तथा "**सिंहनाद**" में किये थे उन पर महाशय माधवाचार्य जी तथा पं० मायादत्त जी शास्त्री आदि बिल्कुल मौन है। यह आर्यसमाज की विजय है।

विध्वंसन के मोह का नाश–

प्रतिध्वनि को कृत्रिम कहने वालो ! क्या आप लोग सिंहनाद को भूल गये हो। ध्यान रक्खो शार्दूल विक्रीडित ही पाण्डित्य पूर्ण क्रियाओं के साथ शास्त्रार्थ में जय का कारण होता है।।१।।

जिसके युक्तियुक्त किन्तु जल्दी भगा देने वाले तथा शत्रुओं को रूलाने वाले वचनों को सुनकर महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरधर शर्मा जल्दी ही धैर्य का परित्याग कर सभा को छोड़कर खड़े हो गये।।२।।

वह वेद विरोधी मस्त हाथियों के महान् सिरों को तोड़ने में समर्थ तथा शास्त्रार्थ रूपी युद्ध में महाभयंकर श्री व्यास देव रूपी सिंह विजय को प्राप्त करता है।।३।।

किसका डर ? हम सदा पौराणिक मत के नाश के लिये तत्पर हैं। हमारा वाणी का वज्र परपक्ष के खण्डन के लिये सदा जागता रहता है।।४।।

याद करो उस वज्र को जिसके गिरने के डर से धर्मसंघ के सभापति महोदय एकदम शास्त्रार्थ के विधान को ही तोड़ने के लिये उद्यत हो गये।।५।।

जो माधव (पं० माधवाचार्य) गाली देने वाले पण्डितों में अग्रणी है, व्याकरण के ज्ञान से शून्य तथा अगुणज्ञ है और जो स्वयं अपनी बड़ाई करता है, क्या वह माधव (पं० माधवाचार्य) हमारे प्रश्नों के उत्तर देने के योग्य है ? नहीं; कभी नहीं।।६।।

उन पण्डितों में श्रेष्ठ कवि बुद्धदेव ने महर्षि दयानन्द के चित्र पर पैर नहीं रक्खा था, किन्तु अपने विपक्षियों के सिर पर पैर मारा था।।७।।

शैव, शाक्त और वैष्णव आदि इधर उधर बिखरे हुवे जिसके अंग हैं उस पौराणिक धर्म का निर्वचन नहीं हो सकता।।८।।

हमारी भूलों की केवल संख्या ही बतलायी है। आश्चर्य है कि केवल प्रतिज्ञा से अपने पक्ष को सिद्ध करने का यत्न किया जा रहा है।।९।।

हमने आपकी अशुद्धियों को अनेक बार स्पष्टतया पकड़ कर दिखलाया है। और फिर शास्त्रार्थ के मुद्रण के अवसर पर सब अशुद्धियों को दिखलायेंगे।। १०।।

वाह ! क्या कहने हैं ? मायादत्त भी मायेश हो गए। यही आपका बड़ा पाण्डित्य है। अच्छा कोई चिन्ता नहीं। अकेला व्यास सब शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के बल का दमन करने के लिये पर्याप्त है।। ११।।

जिसने शामली नाम के ग्राम में यज्ञोपवीत पकड़ कर यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं शास्त्रार्थ नहीं करूंगा उस माधव (पं० माधवाचार्य) को व्यास कैसे भूल सकता है ?।। १२।।

रूड़की में, शहादरे में और दिल्ली में पीठ दिखाकर भागते हुवे माधव (पं० माधवाचार्य) को कौन भूल सकता है ?।। १३।।

श्री पं० व्यासदेवजी पाखण्ड के नाश के लिए सदा अपनी ध्वजा को फहराते हैं क्या इस ही बात को याद करके आपने इशारे से मुझ **"देव"** (पं० व्यासदेव) की सेवा करने का आदेश नहीं दिया हैं ?।। १४।।

यह बात बिल्कुल झूंठ है कि इस **"शत मुख महा कोटि होमात्मक यज्ञ"** का विधान अथर्ववेद में हैं। अन्यथा वह मन्त्र उपस्थित करें जहां इसका प्रतिपादन हो।। १५।।

हमने बहुत सी शंकायें की थी– जिनका आज तक उत्तर आपने नहीं दिया। यह जो आप व्यर्थ बकवाद करते हैं क्या इससे आपका अन्तरात्मा लज्जित नहीं होता ?।। १६।।

हमने इस विज्ञापन को १० फरवरी को ही प्रकाशित कर यज्ञ भूमि में बंटवा दिया था जिससे कि पण्डित वर्ग तथा साधारण जनता इसे यज्ञ के प्रसाद रूप में दिल्ली से जाने से पूर्व ही ग्रहण कर लें।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह विज्ञापन शास्त्रार्थ के बाद में प्रकाशित हुआ था इसलिये इसके द्वितीय–तृतीय पद्यों में शास्त्रार्थ के समय की घटनाओं के सम्बन्ध में संकेत है। इस विज्ञापन के दो अन्य पद्यों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक है। सबसे प्रथम नवम पद्य है। यह पद्य इसलिये लिखा गया था कि **"प्रतिध्वनि ध्वान्त विध्वंसनम्"** में पं० मायादत्त जी को **"मायेश"** लिखा है। मायादत्त शब्द का अर्थ है **"माया एनेंदेग्रात्"** माया जिसको दे अर्थात् माया का पुत्र और मायेश शब्द का अर्थ **"मायाया ईशः"** अर्थात् माया का पति। भाव यह है कि सनातनधर्मियों की जिस बुद्धि से मायादत्त अर्थात् माया का पुत्र मायेश अर्थात् माया का पति बन गया उसे धन्य है। पुत्र को ही पति बना दिया और क्या चाहिये ?

दूसरा पद्य है तेरहवां। यह पद्य **"प्रतिध्वनि ध्वान्त विध्वनेनम्"** के सप्तम पद्य के प्रथम चरण के उजर में है। वह यह था **"अथर्वोक्तो को महायज्ञः"** अर्थात् यह महान् यज्ञ अथर्ववेद में कहा गया है। यह हमारी प्रतिध्वनि के पञ्चम पद्य के उत्तर में है जिसमें कि हमने पूछा था कि आप जो यह **"शत मुख कोटि होमात्मक यज्ञ"** कर रहे हैं वह किस श्रुति के आधार पर है ? उत्तर हमें मिला है कि अथर्ववेद के आधार पर। अब प्रश्न यह है कि यह उत्तर कहां तक संगत है। इस पर विचार करना चाहिये। अथर्ववेद के किसी भी मन्त्र में हमें शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ का बीज रूप से भी वर्णन नहीं मिला साक्षात् वर्णन का तो कहना ही क्या है ? हमारे देखने में **"श्री गायत्री कोटि होम प्रयोग प्रदीप"** नाम का एक लघु पुस्तक आया है। इसके सम्पादक श्री पं० श्रीधरअण्णा शास्त्री वारे महोदय हैं। पुस्तक संस्कृत भाषा में है। इस पुस्तक के पच्चीसवें पृष्ठ से यह स्पष्ट है कि यह पुस्तक इस महायज्ञ के अवसर पर ही और इस यज्ञ के ही निमित्त से लिखी गई थी। इस

पुस्तक के विद्वान् लेखक महोदय ने कहीं भी यह लिखने का साहस नहीं किया कि यह यज्ञ अथर्ववेदोक्त है। एक विद्वान लेखक यह मिथ्या लेख कैसे लिख सकता था ? यह शुभ कर्म भी श्री पं० माधवाचार्य जी तथा पं० मायादत्त जी ने ही किया, धन्य है। श्री वारे महोदय लिखते हैं कि इस यज्ञ का विधान अथर्ववेद के परिशिष्ट में है। यह परिशिष्ट न तो अथर्ववेद का अंग है और न अपौरूषेय है। इस परिशिष्ट का आरम्भ इस वाक्य से होता है **"ओं अथ कांकायनो भगवन्तमथर्वाणं पप्रच्छ। भगवन्केन कोटि होमं लक्षहोममयुत होमं वा प्रारभमाणः कथमृत्विजो वृणीते, कथंच कुर्युस्तस्मै सहोचाच"**।। अर्थात् कांकायन ने भगवान अथर्वा से पूछा कि हे भगवान ? किस विधान से कोटि होम, लक्षहोम अथवा अयुत होम को आरम्भ करता हुआ किस प्रकार ऋत्विजों का वरण करे और फिर किस प्रकार करे ? अथर्वा ने कांकायन से कहा। इस लेख से यह स्पष्ट है कि उस परिशिष्ट को अथर्वा से सुनकर कांकायन ने लिखा। वह कांकायन कौन था, और क्या वस्तुतः इसने ही इस परिशिष्ट को बनाना था यह हमारे लिये निर्णय करना कठिन है, तो भी जैसा कि परिशिष्ट में लिखा है यह अपौरूषेय नहीं है। इस परिशिष्ट में भी कोटि होम का विधान तो है पर शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ का वर्णन इसमें भी नहीं है इसलिये हमने अपने तेरहवें पद्य में लिखा था कि यह कथन सर्वथा मिथ्या है कि यह यज्ञ अथर्ववेदोक्त है। और यदि हमारा कथन मिथ्या है कि यह यज्ञ अथर्ववेदोक्त है। और यदि हमारा कथन सत्य नहीं है ? तो दिखलाइये कहां लिखा है ? वास्तविकता यह है कि शतमुख कोटि होमात्मक यज्ञ का वर्णन किसी वेद में तो क्या किसी वैदिक ग्रन्थ में भी नहीं है। यह एक केवल पौराणिक यज्ञ है इसे वेदोक्त यज्ञ कहना दुस्साहस–मात्र है।

(जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं कि यह विज्ञापन १० फरवरी को प्रकाशित होकर पण्डित महानुभावों के दिल्ली से प्रस्थान करने से पूर्व ही उनके कर कमलों में पहुँच गया था, और आज तक इसका उत्तर उनकी ओर से प्रकाशित नहीं हुआ इस प्रकार सनातन धर्मियों की ओर से दो विज्ञापन और हमारी ओर से तीन विज्ञापन प्रकाशित हुये।)

यह शास्त्रार्थ का पूर्वरंग है। इसके अनन्तर पाठक वृन्द शास्त्रार्थ के लिखित पत्रों पर विचार करें।

।। इति शम् ।।

☆ ☆ ☆

पूर्व निश्चयानुसार ७ फरवर सन् १९४४ ई० को रात्रि के ८ बजे से ११ बजे तक शास्त्रार्थ होना था। हम लोग भी नियत समय से पूर्व ही यमुना नदी के पार धर्मसंघ के विशाल मण्डप में निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गये। उस समय यज्ञ के कारण तथा अखिलभारतवर्षीय धर्मसंघ के तृतीयाधिवेशन के कारण सम्पूर्ण भारत से सैकड़ों सनातनधर्मी विद्वान् तथा सन्यासी पधारे हुये थे। उनमें से कुछ के नाम निम्न लिखित हैं :–

१. श्री जगद्गुरू श्रीभारती कृष्णतीर्थ जी महाराज।

२. श्री जगद्गुरू ज्योतिष्पीठाधीश ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज।

३. श्री महामहोपाध्याय पं० हरिहर कृपालु जी बनारस।

४. श्री स्वामी हरिहरानन्द जी सरस्वती (करपात्री जी)

५. श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज।

६. श्री महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा जी "चतुर्वेदी" जयपुर।

७. श्री महामहोपाध्याय पं० परमेश्वरानन्द जी शास्त्री।

८. श्री पं० रामजीपाण्डेय व्याकरण–साहित्याचार्य।

६. श्री पं० मथुरानाथ जी शास्त्री साहित्याचार्य।

१०. श्री पं० सभापति जी उपाध्याय–व्याकरणाचार्य।

११. श्री पं० नारायण शास्त्रीजी खिस्ते।

१२. श्री पं० अखिलानन्दजी शर्मा कविरत्न।

१३. श्री पं० कालूराम जी शास्त्री। (अमरोधा) कानपुर।

१४. श्री पं० म० प० प्रभुदत्त जी शास्त्री व्याख्यान वाचस्पति।

१५. श्री पं० गंगाप्रसाद जी शास्त्री तर्करत्न दिल्ली।

१६. श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री, (कौल निवासी)।

१७. श्री पं० मायादत्त जी पाण्डेय शास्त्री।

इस प्रकार उस समय दिल्ली में सनातनधर्म का पूर्ण बल विद्यमान था। आर्यसमाज की ओर से उस समय सभा मण्डप में निम्नलिखित विद्वान् उपस्थित थे :–

१. श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी आर्य महोपदेशक।

२. श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री एम०ए० वेदान्ताचार्य–सप्ततीर्थ (महाविद्यालय ज्वालापुर के मुख्याधिष्ठाता)

३. श्री पं० व्यासदेव जी शास्त्री साहित्याचार्य एम.ए. दिल्ली।

४. श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति (सम्पादक– सार्वदेशिक पत्रिका)।

५. श्री पं० चन्द्रभानु जी शास्त्री नई दिल्ली।

ठीक समय पर श्री पं० माधवाचार्य जी ने यह घोषणा की कि अब शास्त्रार्थ आरम्भ होता है। धर्मसंघ की ओर से मध्यस्थ श्रीकरपात्री जी होंगे तथा सामयिक प्रधान श्री महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा होंगे। तदनन्तर आर्यसमाज दीवान हाल के मन्त्री श्री पं० रामचन्द्रजी जिज्ञासु ने घोषणा की कि आर्यसमाज की ओर से सामयिक प्रधान तार्किक शिरोमणि श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी होंगे। तदनन्तर श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी ने सभा में वे नियम पढ़कर सुनाये जो कि पहिले ही से निश्चित हो चुके थे तथा अन्य नियम भी समझाये। तदनन्तर श्री पं० गिरिधर शर्मा जी ने कहा कि आप उन कागजों पर ही लिखें जिनपर मैं हस्ताक्षर कर दूं। हमारे सब पन्नों पर श्री पं० गिरिधर शर्मा जी के हस्ताक्षर हैं, इस ही प्रकार पौराणिकों के सब पत्रों पर श्री पं० रामचन्द्र देहलवी जी के हस्ताक्षर हैं।

शास्त्रार्थ केवल दो घण्टे होना था और प्रत्येक बारी पन्द्रह–पन्द्रह मिनट की थी इसलिये चार पत्र हमारी ओर से गये और चार पत्र ही उनकी ओर से आये। पत्रों की कार्बन पेपर के द्वारा दो–दो प्रतियां की जाती थी। एक अपने पास रखली जाती थी और दूसरी अपने प्रतिपक्षी को दे दी जातीं थी।

इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज का प्रतिनिधित्व श्री पं० व्यासदेव जी शास्त्री ने किया और सनातन धर्म का प्रतिनिधित्व श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री ने किया। अपने–अपने पत्रों पर हस्ताक्षर इन दोनों महानुभावों के विद्यमान हैं।

आर्य समाज की ओर से जो प्रथम पत्र भेजा गया वह इस प्रकार था :–

आर्य समाज की ओर से प्रथम पत्र–

।। ओं तत्सत् ।।

नमो विराजे सम्राजे स्वराजे राजतेऽजते।
श्वेतभानुबृहद्भानु भानु भासित चक्षुषे।।

अयिमान्य संसत्पते ! निगमागम तरगिंतमतयो यतयः। ध्वस्त रोष दोष निषद्याः पारिषद्याश्च ? अस्मिन् प्रस्तुते वाक् खुरली कलहे वर्त्ततेऽस्माकं सर्वतोऽपि वैदिक सिद्धान्त प्रसारणैषणा। वयं भगवतीं श्रुतिमन्तरा सर्वमेव परतः प्रमाणमिति सिद्धान्तयामः। एवञ्च पुराणादि कुसृष्टयो नास्माकं मते प्रमाणाम्। भवति चेयं जिज्ञासा कोऽयं सनातनो धर्मः। रस प्रपाणक सम्मितोयं धर्मः शैववैष्णवशाक्तादीन् सर्वांनात्मसात्करोति। इमें च धर्माः काकोलूकीयमानाः कोमल मतीन् धर्म जिज्ञासमानान् समोहयन्ति। प्रथमं शांकरं तभिदन्नं चं वैष्णवं मतं परीक्षामहे। इमे हि वैष्णवाः शंकरं प्रच्छन्न बौद्धं वन्दतः तत्र तत्र शठं महातस्करं च बुवाणाः कथं न ह्वेपन्ते। सोऽयं सारमेय कलहः कथं निर्णयः सनातन धर्मावलम्बिभिः। एवमेव जीवस्याणुत्व विभुत्वयोः कतरत् मतं गरीयः। ब्रह्मज्ञाने कस्यानन्तर्यमस्ति, आत्मनः ज्ञातृत्वं न वा ? मुक्तौजीव ब्रह्मणो रैक्य मनैक्यं वा। इत्येवं विरूद्धयोरनयोर्मतयोः किं प्रति पित्सुना प्रतिपत्तव्यम् ?

हस्ताक्षराणि–

"व्यासदेवस्य"

आर्यसमाज के प्रथम पत्र का हिन्दी में अनुवाद–

।। ओंतत्सत् ।।

चन्द्रमा सूर्य तथा अग्नि से जिसका प्रकाश प्रकट है ऐसे विराट्, सम्राट्, स्वराट् तथा दीप्तिमान् अजन्मा प्रभु को नमस्कार है।

माननीय सभापति महोदय ! वेद शास्त्र पारंगत सन्यासीवर्ग ! तथा पक्षपात शून्य सभा में उपस्थित महानुभावों !

इस प्रस्तुत वाग्विनोद में हमारी इच्छा केवल यह है कि सर्वत्र वैदिक धर्म का प्रचार हो। हमारा सिद्धान्त है कि **"वेद के अतिरिक्त सब कुछ परतः प्रमाण है"**। इस प्रकार पुराण आदि बुरी रचनायें हमारे सिद्धान्त में प्रमाण नहीं है। हम यह जानना चाहते हैं कि सनातन धर्म–पद से कौन सा धर्म अभिप्रेत है ? यह धर्म जलजीरे के समान है और शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सब धर्मों को अपने अन्दर रखता है, इन धर्मों के मानने वाले कौओं और उल्लुओं के समान नित्य वैर रखने वाले हैं और धर्म को जानने के इच्छुक कोमल बुद्धि वाले पुरूषों को भ्रम में डालते हैं। यह लोग शंकराचार्य को छिपा हुवा बौद्ध कहते हुवे तथा शठ और महाचोर कहते हुवे क्यों नहीं लज्जित होते ? इस तुकाफजीती का निर्णय सनातनधर्मी किस प्रकार करते हैं ? इस ही प्रकार जीव अणु है या विभु इन दोनों मतों में कौन सा ठीक है ? ब्रह्मज्ञान के होने में किसका आनन्तर्य है ? आत्मा

ज्ञातृत्व धर्म वाला है या नहीं ? मुक्ति में जीव और ब्रह्म की एकता है या अनेकता ? इस प्रकार परस्पर विरूद्ध इन दोनों मतों में से जिज्ञासु को कौन सा मत स्वीकार करना चाहिये ?

विवरण–

साधारण जनता भी हमारे भाव को भली प्रकार समझ सके इसलिए अपने पत्र के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता हैं। हमने सबसे पूर्व एक श्लोक द्वारा परमपिता परमात्मा की स्तुति की जिसकी महती कृपा से कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं। इसके अनन्तर सभापति माहेदय सन्यासियों तथा उपस्थित महानुभावों को सम्बोधन कर हमने कहा कि हमारा धर्म वैदिक है और हम उसका ही प्रचार चाहते हैं। हमारे धर्म में केवल वेद ही स्वतः प्रमाण है, अन्य ग्रन्थ नहीं। हम अन्य आर्ष ग्रन्थों को वेदानुकूल न होने पर प्रमाण नहीं मानते। इस प्रकार वैदिक धर्म का मूल संक्षेप से वर्णन करने के अनन्तर हमने प्रश्न किया कि सनातनधर्म किस धर्म को कहते हैं ? क्योंकि यह धर्म जलजीरे के समान है भाव यह है कि, जलजीरे में सभी रस (मीठा खट्टा–नमकीन–तीखा आदि) मिल जाते हैं और उसका अपना कोई रस नहीं रहता। हां इतनी उसमें विशेषता है कि ये रस परस्पर एक दूसरे के विरोधी नहीं होते किन्तु सनातनधर्म में परस्पर विरोधी मत भी सम्मिलित हैं। हमने पहिले शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित मत तथा वैष्णव मतों की बात छेड़ी। शैव शंकराचार्य को शिव का अवतार तथा जगद्गुरू कहते हैं, अठारह पुराणों में से एक पद्म पुराण है जो कि वैष्णों का पुराण है। उसमें श्री शंकराचार्य जी के सम्बन्ध में लिखा है :–

मायावादमसच्छास्त्र प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मण रूपिणा।।१।।

हे देवि ! कलियुग में ब्राह्मण रूप धरके (धारण करके) मैंने ही झूठे मायावाद को कहा है, यह गुप्तरूप से बौद्ध धर्म कहलाता है।।१।।

अथर्व श्रुति वाक्यानां दर्शयल्लोक गर्हितम्।
कर्मस्वरूप त्याज्यत्वं मुधैव प्रतिपाद्यते।।२।।

श्रुति वाक्यों का अशुद्ध अर्थ दिखलाते हुवे संसार में निन्दित कर्मो का त्याग ही दिखलाया गया है।।२।।

परात्म जीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते।
सर्व कर्म परिभ्रंशा नैष्कर्म्य तत्रवोच्यते।।३।।

परमात्मा और जीव की एकता यहां मैंने कही है। वहां सबकर्मो के त्याग से निष्कर्मता कहलाती है।।३।।

ब्रह्मणेऽत्र परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया।
सर्वस्य जगतो नूनं नाशनार्थं कलौ युगे।।४।।

सम्पूर्ण जगत् का नाश करने के लिये ही कलियुग में मैंने ब्रह्म को निर्गुण बतलाया है।।४।।

वेदार्थवन्महा शास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव कथितं देवि जगतां नाश कारणात्।।५।।

हे देवि ! वेदार्थ से युक्त तथा अवैदिक मायावाद नाम का महाशास्त्र संसार का नाश करने के लिये मैंने ही कहा है।।५।।

इस ही प्रकार श्रीमत्कविकुल तिलक त्रिविक्रम पण्डिताचार्य सुत नारायण पण्डिताचार्य विरचित **"मध्य विजय"** नामक ग्रन्थ में शंकराचार्य जी को **"शठश्चतुर्थाश्रममेष भेजे" तथा "महातस्कर मेनमाहु"** प्रभृति श्लोकों में शठ और महातस्कर कहा है। शंकराचार्य को शंकररूप कहने वाले और उन्हें ही प्रच्छन्न बौद्ध शठ और महातस्कर तक कहने वाले दोनों सनातनधर्मी किस प्रकार हैं ? यह था हमारा प्रथम प्रश्न।

द्वितीय प्रश्न यह था कि शंकराचार्य जी ने जीव को विभु अर्थात् सर्वव्यापक माना है किन्तु माध्वाचार्य जी ने अपने ग्रन्थों में जीव को अणु माना है। इन दोनों बातों में से कौन सा सनातनधर्म है ?

हमारा तीसरा प्रश्न यह था कि ब्रह्मज्ञान किसके अनन्तर होता है ? भाव यह था कि वेदान्त दर्शन के प्रथम सूत्र **"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा"** में अथ शब्द से क्या अभिप्रेत है ? श्री शंकराचार्य तथा श्री रामानुजाचार्य में इस विषय को लेकर बड़ा मतभेद है। यह तो दोनों मानते हैं कि **"अथ"** शब्द का अर्थ यहां आनन्तर्य है परन्तु किसका ? यह विवाद का विषय है। श्री शंकराचार्य लिखते हैं **"नन्विहकर्मावबोधानन्तर्य विशेषः न। धर्म जिज्ञासायाः प्रागप्य धीत वेदान्तस्य ब्रह्म जिज्ञासोपपत्तेः"** अर्थात् क्या कर्मज्ञान के अनन्तर ब्रह्मज्ञान होता है ? नहीं, क्योंकि वेदान्तयज्ञ को धर्म (कर्म) की जिज्ञासा से पहिले भी ब्रह्मज्ञान की इच्छा हो सकती है। यह कह कर अन्त में कहते हैं **"नित्यानित्य वस्तु विवेकः, इहामुत्रार्थ भोग विरागः शमदमादि साधन संपत् मुमुक्षुत्वं च। तेषुहि सत्सु प्रागहि सत्सु प्रागपि धर्म जिज्ञासाया ऊर्ध्व च शक्यते ब्रह्म जिज्ञासितुं ज्ञातुं च न विपर्यये। तस्मादथ शब्देन यथोक्त साधन संपत्त्यानन्तर्यमुपदिश्यते"** अर्थात् नित्य तथा अनित्य वस्तु का ज्ञान, इस लोक तथा परलोक में विषयों के भोगों से वैराग्य, शमदम आदि साधन रूप सम्पत्ति तथा मुक्ति की इच्छा। (इसे ही साधन चतुष्टय कहते हैं) इस चतुष्टय के होने पर धर्म जिज्ञासा से पहले भी और बाद में भी ब्रह्मज्ञान की इच्छा तथा ब्रह्मज्ञान हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये **"अथ"** शब्द से पूर्वोक्त साधन सम्पत्ति के होने के आनन्तर्य का उपदेश है।

इस प्रकार शांकर मत में साधन चतुष्टय का ब्रह्म जिज्ञासा से पूर्व होना आवश्यक है, कर्म मीमांसा अथवा धर्म मीमांसा का नहीं। अब कृपाकर श्री रामानुजाचार्य प्रणीत श्रीभाष्य को देखिये। वे लिखते हैं **"न धर्म विचारापेक्षा ब्रह्म जिज्ञासायाः। अधीत वेदान्तस्यानधिगत कर्मणोऽपि वेदान्त वाक्यार्थ विचारोप पत्तेः"** अर्थात् ब्रह्म जिज्ञासा को धर्म विचार (धर्म मीमांसा) की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि कर्म मीमांसा को बिना जाने भी वेदान्तज्ञ को वेदान्त वाक्यार्थ विचार हो सकता है। इस प्रकार ठीक उस ही सिद्धान्त को (जिसका कि श्री शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में उल्लेख किया है) पूर्व पक्ष मानकर श्री रामानुज खण्डन करते हैं और अन्त में लिखते हैं **"अतोऽपेक्षित कर्म स्वरूपज्ञानं, केवल कर्मणाकल्पास्थिर फलत्व ज्ञानं च कर्म मीमांसावसेयमिति, सैवापेक्षिता ब्रह्म जिज्ञासायाः पूर्ववृत्ताः वक्तव्या"** अर्थात् इसलिये अपेक्षित कर्म स्वरूप का ज्ञान और केवल कर्मों का अल्प तथा अस्थिर फलत्व का ज्ञान कर्ममीमांसा से प्रतिपाद्य होता है, इसलिये वही ब्रह्म जिज्ञासा के लिए अपेक्षित है और पहले होनी चाहिए यह कहना चाहिए। इस प्रकार इन दोनों आचार्यों में इस बात पर महान् मतभेद है। हमारा प्रश्न यह था कि इन दोनों में से सनातनधर्म कौन सा है ?

हमारा चौथा प्रश्न यह था कि आत्मा ज्ञाता है अथवा नहीं ? भाव यह है कि शंकराचार्य के मत में आत्मा

ज्ञाता नहीं है श्री रामानुजाचार्य के मत में आत्मा ज्ञाता है, जैसा शांकर भाष्य तथा श्री भाष्य से प्रकट है। (हम विस्तार के भय से यहां उद्धृत नहीं करते) इन दोनों परस्पर विरूद्ध सिद्धान्तों में से कौन सा सनातनधर्म है ?

हमारा पांचवा प्रश्न यह था कि मुक्ति में जीव और ब्रह्म की एकता है अथवा नहीं ? भाव यह है कि श्री शंकराचार्य के मत अनुसार मुक्ति में जीव और ब्रह्म स्वरूप से एक हो जाता है और उनमें किसी प्रकार का भी भेद नहीं रहता जैसा कि उन्होंने **"तत्तुसमन्वयात्"** इस सूत्र के भाष्य में लिखा है। श्री रामानुजाचार्य के मत में यह एकता नहीं होती, जैसा कि श्री भाष्य में स्पष्ट है। इनके मतानुसार मुक्ति में जीव ब्रह्मवत् तो हो जाता है। किन्तु परब्रह्म नहीं होता। प्रश्न यह है कि इन परस्पर विरूद्ध मतों में से सनातनधर्म कौन सा है ? इस प्रकार हमने अपने प्रथम पत्र में सनातनधर्मियों से पांच प्रश्न किए थे।

शास्त्रार्थ के नियम के अनुसार हमारी ओर से यह पत्र पन्द्रह मिनट में ही लिखा गया और इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद सुना दिया गया। इसके अनन्तर श्री महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा जी (जो उस समय धर्म–संघ की ओर से सामयिक प्रधान थे) खड़े हो गये और जो कुछ उन्होंने कहा उसका भाव यह था (हमें उनके अपने शब्द याद नहीं हैं) कि ओर से अत्यन्त ओजनापूर्ण शब्दों में भाषण किया गया है और अपशब्दों का व्यवहार किया गया है जिसे हम सहन नहीं कर सकते, यदि भविष्य में ऐसा होगा तो मैं शास्त्रार्थ बन्द कर दूंगा। इस पर श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी (जो उस समय आर्यसमाज की ओर से सामयिक प्रधान थे) बोले कि धर्मसंघ की ओर से जो आक्षेप किया गया है वह उचित नहीं क्योंकि आर्यसमाज की ओर से जो कुछ भी कहा गया है वह सब सनातनधर्मियों के ग्रन्थों में विद्यमान है। इस पर श्री महामहोपाध्याय जी बोले कि हमारे ग्रन्थों में ये शब्द कहीं भी लिखे हुये नहीं हैं। तब हमारे सामयिक प्रधान महोदय ने इस नये विवाद में पड़ना अनुचित समझ हमसे कहा कि चाहे सनातनधर्मियों के ग्रन्थों में इन शब्दों का प्रयोग हो या न हो आप उनका प्रयोग न करें। इसके अनन्तर धर्म–संघ की ओर से लिखना आरम्भ किया गया। पूर्व इसके कि हम पाठकों के सम्मुख उस पत्र को उपस्थित करें जो कि धर्म–संघ की ओर से हमारे पत्र के उत्तर में प्रस्तुत किया गया यह उचित प्रतीत होता है कि श्री महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्माजी ने जो आक्षेप किया था उस पर थोड़ा–सा विचार कर लें। जिस समय श्री महामहोपाध्यायजी ने आक्षेप किया था उनके ध्यान में निम्नलिखित वाक्य हो सकते थे :–

१. प्रच्छन्नं बौद्धम्। **२. शठं महातस्करम्।**

३. काकोलूकीय मानाः। **४. सारमेय कलहः।**

(१) इनमें से जहां तक प्रथम शब्द का सम्बन्ध है हम पहिले लिख चुके हैं कि इस शब्द का प्रयोग हमने किस आधार पर किया है। वह पद्मपुराण का श्लोक है और सनातनधर्मियों के विचार से पद्मपुराण के कर्त्ता महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास हैं, जबकि हमने केवल महर्षि व्यास के शब्दों को दुहराया है तब हमारा दोष क्या है ? यह पाठकों को स्वयम् विचार करना चाहिये। हम इतना ही कह सकते हैं कि इसमें हमारा उत्तरदायित्व लेशमात्र भी नहीं है।

(२) दूसरे शठ और महातस्कर शब्दों का प्रयोग है। हम यह भी पूर्व लिख आये हैं कि इन शब्दों का प्रयोग भी हमारा अपना नहीं है। इस सम्बन्ध के मध्य विजय के आवश्यक पद्यांश हम पहले उद्धृत कर चुके हैं। **"मध्य विजय"** के कर्त्ता वैष्णव महोदय हैं। इनकी मधुरभाषिता के नमूने देखिये :–

यो भूरि वैरो मणिमान्मृतः प्राग्वाग्मी बुभूषुः परितोषितेशः।
स संकराख्योऽघ्रितलेषु जज्ञे स्पृधापरे प्यासुरिहासुरेन्द्राः।।

नारायण पण्डिताचार्य के विचार से श्री शंकराचार्य महादेव के अवतार नहीं थे। अपितु अपने पूर्व जन्म में मणिमांन् नाम के राक्षस थे। उनका नाम शंकर नहीं किन्तु **"संकर"** था। यही भाव इस श्लोक में दर्शाया गया है और देखिये :–

सान्नाय्यमव्यक्त हृद् आखुभुग्वा श्वा वा पुरोडाश मसारकामः।
भणिस्रजं वा प्लवगो व्यवस्थो जग्राह वेदादिक मेषः पापः।।

इस श्लोक में श्री शंकर को चूहा खाने वाला (बिलाव), कुत्ता, बन्दर और पापी आदि बड़े मधुर (?) शब्दों से स्मरण किया गया है।

हमारा तीसरा शब्द है **"काकोलूकीयमानाः"** जिसका अर्थ है कौवों और उल्लुओं के समान आचरण करने वाले अर्थात् नित्य वैर रखने वाले। यह प्रयोग भी हमारा अपना नहीं है। मध्य में श्री शंकराचार्य को किन शब्दों से स्मरण किया गया है यह हम पहले दिखला चुके हैं। अब थोड़ी सी **"शंकर दिग्विजय"** की बानगी देखिये। इसके प्रणेता श्री माधवाचार्य हैं जो कि श्री सायणाचार्य के भ्राता थे।

मलिनै श्चेन्न संगस्ते नीचैः काककुलैः पिकः।। १–६५।।

इस श्लोक में कुमारिल भट्ट ने राजा सुधन्वा को कोयल और बौद्धों को कौवा कहा है।

सारंगा इव विश्वकद्रु भिरहंकुर्वभदरूच्छृंखलैः।। ५–७६।।

इस श्लोक में शंकर मत से भिन्न मतानुयायियों को कुत्ता कहा है।

जृम्भान्निम्बफलाशनैकरसिकान्काकानमून् मन्महे।। ५–११६।।

इस श्लोक में विपक्षियों को कौवा कहा गया है।

क्ष्वेड ज्वालां खगकुल पतेः पन्नगाः साभिमानाः।। ६–७८।।

यहां शंकर को गरुड़ और उसके विपक्षियों को सांप कहा गया है।

प्रत्यर्थ्युलूकान् प्रविलापयन्ती।। ६–१०१।।

इस श्लोक में प्रतिपक्षियों को उल्लू कहा गया है।

ये है नमूने उन शब्दों के जिन्हें ये सनातनधर्मी महाविद्वान आपस में एक दूसरे के लिये लिखते हैं।

श्री शंकराचार्य अत्यन्त मधुरभाषी कहलाते हैं। उनके इस गुण की प्रशंसा में **"शंकर दिग्विजय"** में अनेक पद्य हैं। नमूना देखिये :–

विक्रीता मधुना निजा मधुरता दत्ता मुदा द्राक्षया,
क्षीरैः पात्रधिया र्पिता युधि जिताल्लब्धा बलादिक्षुतः।
न्यस्ता चोर भयेन हन्त सुषमा यस्मा दतस्त द्गिरां,
माधुर्यस्य समृद्धिरभुत तरा नान्यत्र सा वीक्ष्यते।। ४–६१।।

अर्थात्– मधु ने अपनी मधुरता उनके हाथ बेच दी है, अंगूरों ने अपनी मधुरता स्वयं दे दी है, दूध ने अपनी मधुरता उन्हें योग्य समझ कर दे दी है, ईख की मधुरता युद्ध में उसे जीतकर छीन ली गयी है, अमृत ने चोरी के डर से अपनी मधुरता वहां रख दी है, यही कारण है जो मधुरता श्री शंकर (शंकराचार्य) की वाणी में है वह कहीं अन्यत्र नहीं दिखायी देती। यह श्लोक माधवाचार्य के उत्कृष्ट कवित्व का द्योतक है, किन्तु वर्णन वास्तविकता के विरूद्ध है। श्री शंकर जी पण्डित मण्डनमिश्र के घर जाते हैं और चुपचाप घर में घुस जाते हैं। मण्डनमिश्र उस समय घर के काम में लीन थे। वहां इन दोनों का (आपस में) जो मधुर भाषण हुवा उस पर विचार कीजिये :–

मण्डनमिश्र :– **कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्द भेनापि दुर्वहाम्।**

शंकर :– **कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्वहाम्।।**

यहां मण्डन मिश्र और शंकर (शंकराचार्य) दोनों एक दूसरे को दुर्बुद्धि कह रहे हैं।।

अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर।
कित्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान् रसम्।।

इस श्लोक में दोनों महानुभाव (शंकर दिग्विजय के कर्त्ता के अनुसार मण्डनमिश्र ब्रह्मा के और शंकर महादेव के अवतार थे) एक दूसरे को शराबी कह रहे हैं। यह है मधुर भाषण! शंकर (शंकराचार्य) जी दिग्विजय प्राप्त करके प्रतिपक्षियों के साथ कैसी भाषा का व्यवहार करते हैं ? इसका एक नमूना और देख लीजिये "**काणाःकाणभुजास्तु सैन्य रजसा**" शंकर की सेना की धूलि से कणाद वाले मत के मानने वाले काणे हो गये। इतने लेख से पाठक समझ सकते हैं कि उस समय महामहोपाध्याय श्री पं० गिरिधर शर्मा जी का घबड़ा उठना अकारण ही था या नहीं ? तथा उनका यह कहना कि इन शब्दों का प्रयोग हमारे ग्रन्थों में नहीं है सत्य था या असत्य ? उपर्युक्त कलहों को यदि सारमेय कलह न कहा जावे तो क्या देव कलह कहा जावे ? इसके लिये सारमेय कलह से अधिक उपयुक्त शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता। क्या मध्यविजय तथा शंकरदिग्विजय साहित्य के उच्च कोटि के ग्रन्थ नहीं है ? क्या उनका लेख सनातनधर्मियों के लिये सदाचार नहीं है ? तदनन्तर सनातनधर्मियों की ओर से जो प्रथम पत्र पढ़कर सुनाया गया तथा हमें भेजा गया वह इस प्रकार था :–

धर्म संघ की ओर से प्रथम पत्र

आर्यसामाजिकैः पञ्चावयव वाक्य विरहतं यल्लिखितं तच्छात्र पद्धति विरूद्धं अतः प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान पतितो भवान् पराजितः। श्रुति स्मृति प्रादिपादितः सनातन धर्म्मः। शंकर वैष्णवादि मतानामुपासक भेदेन सामंजस्यम्। वेदेपि तथैव दर्शनात्। यथा– सर्वेऽपि संप्रदाया वैदिका वेदोक्तत्वात्–यन्नैवं तन्नैवम्।

(क) अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्या शरीरिणः। उपास कानां सिध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।

(ख) इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।

(ग) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

एवमेव जीवस्यापि वस्तुतो विभुत्वमणुत्वंच। अणोरणीयान् महतोमहीयान्। का खलु मुक्तिरत्र भवता पृछ्यते तस्याश्चातुर्विध्यम् प्रसिद्धम्।

"माधवाचार्य्य"

धर्म–संघ के प्रथम पत्र का हिन्दी अनुवाद

आर्यसमाजियों ने पञ्चावयव वाक्य से रहित जो लिखा है वह शास्त्र की पद्धति के विरूद्ध है इसलिये प्रतिज्ञाहानि निग्रह स्थान में आप गिर गये हैं। हरा दिये गये हैं। सनातनधर्म श्रुति तथा स्मृति द्वारा प्रतिपादित है। शंकर तथा वैष्णव आदि मतों की उपासक भेद से समंजसता है। वेद में भी वैसा देखा जाने से। जैसे– सब सम्प्रदाय वैदिक हैं, वेदोक्त होने से, जो ऐसा नहीं है वह वैसा भी नहीं है।

" **(क) अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्या शरीरिणः। उपासकानां सिद्ध्यर्थ ब्रह्मणोरूप कल्पना।**

(ख) इन्द्रोमायाभिः पुरूरूप ईयते।

(ग) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

इस ही प्रकार जीविका भी वस्तुतः विभुत्व तथा औपाधिक अणुत्व है। "**अणोरणीयान् महतोमहीयान्**"। आप कौन सी मुक्ति को पूछते हो ? वह तो चार प्रकार की प्रसिद्ध ही है।

"माधवाचार्य"

विवरण–

सनातनधर्मियों ने हमारे प्रश्नों का क्या उत्तर दिया है ? यह स्पष्ट करने के लिए हम यह लिखना चाहते हैं कि सबसे पूर्व सनातनधर्मियों ने यह आक्षेप किया कि आर्यसमाजियों ने जो कुछ लिखा है वह पञ्चावयव वाक्य से रहित है वह शास्त्र की पद्धति के विरूद्ध है, इसलिये आर्यसमाजी प्रतिज्ञाहानि नाम के निग्रह स्थान में आ गये हैं और हरा दिये गये हैं इसका स्पष्टीकरण करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि श्री पण्डित माधवाचार्य जी के लेख में पाठ है– "**तच्छात्र पद्धति विरूद्धम्**" जिसका अर्थ होता है कि विद्यार्थियों के मार्ग के विरूद्ध है, क्योंकि "**छात्र**" शब्द का अर्थ विद्यार्थी है। हम समझते हैं कि पं० माधवाचार्य जी का यह भाव नहीं था, कारण यह है कि यहां विद्यार्थी समझने का कोई प्रकरण ही नहीं था, इसलिये हमने यदि विद्यार्थियों का आचरण नहीं किया तो इस पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए थी। और जब वे हमसे सभ्यता पूर्वक आचरण की आशा करते थे जैसा कि उनके चतुर्थ पत्र से प्रकट है तब हम यह आशा नहीं करते कि वे हमें छात्र कहने का साहस कर सकते थे। इसलिए हम यह विचार करते हैं कि वे लिखना चाहते थे "**तच्छास्त्र पद्धति विरूद्धम्**" और शीघ्रता में लिखने के कारण वे "**स**" लिखना भूल गये थे, इसलिये हमने अनुवाद करते समय उनके भाव को प्रधानता दी है, अक्षरों को नहीं। अस्तु।

जिस पञ्चावयव वाक्य की ओर पं० माधवाचार्य जी ने संकेत किया है वह महर्षि गौतम प्रणीत न्याय दर्शन के अनुसार "**प्रतिज्ञा–हेतु–उदाहरण–उपनय निगमन**" इन पाञ्चअवयवों के योग से बने हुवे वाक्य का नाम है। न्यायदर्शन के अनुसार "**वाद**" पञ्चावयवोपपन्न होना चाहिए यह ठीक है। पं० माधवाचार्य का यह कथन भी ठीक है कि "**प्रतिज्ञा हानि**" नाम का एक निग्रह स्थान है और निग्रह स्थान पराजय का कारण है। इसके अनन्तर श्री पं० माधवाचार्य जी ने कहा कि सनातनधर्म श्रुति तथा स्मृति द्वारा कहा गया है। इसके लिये उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। सनातनधर्म के शंकर व वैष्णवादि मत उपासकों के भेद से ठीक हैं। इसके लिये हेतु यह दिया कि वेद में भी वैसा ही देखा जाने से। आगे आप लिखते हैं "**जैसे**", यह लिखकर आपने एक अनुमान दिया। हमें तो यह वाक्य किसी वेद में नहीं मिला। हमारा विचार

है कि यह वाक्य उनका अपना बनाया हुआ है और इसे वेद के नाम से लिखकर पण्डित माधवाचार्य जी ने बड़े साहस से काम किया है। अपने ही वाक्य को वेद कहने का साहस सनातनधर्मियों के अतिरिक्त और कौन कर सकता है ?

इसके अनन्तर आपने एक श्लोक लिखा है और वह भी वेद के नाम से। हमें यह श्लोक भी किसी वेद में नहीं मिला। आश्चर्य है पण्डित माधवाचार्य जी के साहस पर ! इसके अनन्तर आपने दो वेद मन्त्रों के अंश दिये हैं, वे पूरे मन्त्र इस प्रकार हैं :–

ओ३म् ! रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश।। १८।।

ओ३म्, इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः।। १९।।

(ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ४७ मंत्र १८ व १९)

इन दोनों मन्त्रों के सम्बन्ध में पं० माधवाचार्य जी ने यह लिखने की कृपा नहीं की कि वे इनसे क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? अस्तु; इसके बाद आपने कठोपनिषद् का एक वाक्य लिखा जो पूर्ण इस प्रकार है :–

अणोरणीयान्महतो महीयान्, आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको, धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः।।

यह उपनिषद् वाक्य पं० माधवाचार्य जी ने हमारे द्वितीय प्रश्न के उत्तर में लिखा और यह बतलाया कि जीवात्मा अणु तथा विभु दोनों हैं। हमारे पञ्चम प्रश्न के उत्तर में आपने यह लिखने की कृपा की है **"आप कौन सी मुक्ति को पूछते हो ? वह चार प्रकार की प्रसिद्ध है।"** हम इस स्थल पर इस पत्र की आलोचना नहीं करना चाहते क्योंकि वह तो हम यथास्थान करेंगे ही। यहां इतना लिखना आवश्यक समझते हैं कि हमने जो यह लिखा था कि वैष्णवों ने श्री शंकराचार्य जी को प्रच्छन्न बौद्ध, शठ तथा महातस्कर लिखा है, वह क्यों ? इसका कोई उत्तर पं० माधवाचार्य जी ने नहीं दिया साथ ही हमारे तृतीय तथा चतुर्थ प्रश्नों को भी बिल्कुल नहीं छूआ, और एक दम पञ्चम प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया। इसका कारण पाठकों को स्वयम् सोचना चाहिये। हमारा कुछ भी लिखना सम्भवतः उचित न हो।

हमने जो इस सनातनधर्मियों के पत्र के उत्तर में लिखा था वह इस प्रकार है :–

आर्य समाज की ओर से द्वितीय पत्र

।। ओं तत्सत्।।

हन्त ! वयमतीव लज्जिताः स्म यदस्मन्मित्रेण प्रतिज्ञाहानि लक्षणमजानतैवास्मासु प्रतिज्ञाहानि रारोपिता। स्पष्टा प्रतिज्ञा यत्सनातनधर्मो न निर्वचनीयता मर्हतीति ! श्रुति प्रतिपादितत्वं सनातनधर्मस्य भणताऽऽत्मनि निग्रहस्थानतारोपिता। अद्यापि साध्यमेतत्। इन्द्रोमायाभिरित्यादि मन्त्रस्य प्रकृति बहुत्वे तात्पर्य न धर्म बहुत्वे। तत्श्रुत्यालम्बः मोह विजृम्भितमेव। मुक्तिः खलु प्रसिद्धैवयदर्थवाचार्यैः ग्रन्था विरचिता। साच कर्ममूला कर्म ज्ञानोभय मूलावेति जिज्ञासा।

अस्माभिरिदमपि जिज्ञास्यम्–यदधियज्ञमधि विवाहं च गवा लम्भनं सनातनधर्माभिमतं न वा। किञ्च येषां शब्दानाँ प्रयोगमाश्रित्य जनतायां भ्रान्तिरारोप्यते यदस्माभिः गाली प्रदान मकरीति, तदनवगत संस्कृत साहित्य रसस्य भवत एव शोभते। प्रमाणित मन्त्रे चैकस्यैव भगवती नाम बहुत्वमुच्यते न धर्म बहुत्वम्। अणोरणीयानिति वाक्यमपि न श्रुतिः। तथापि परमात्मनो विभुत्वमेव द्योतयति।

हस्ताक्षराणि– "व्यासदेवस्य"

आर्यसमाज के द्वितीय पत्र का हिन्दी में अनुवाद

।। ओं तत्सत्।।

शोक ! हम बहुत ही लज्जित हैं कि हमारे मित्र ने प्रतिज्ञा हानि के लक्षण को बिना जाने हुवे ही हम पर प्रतिज्ञा हानि का आरोप किया है। हमारी प्रतिज्ञा स्पष्ट है कि सनातनधर्म का निर्वाचन नहीं हो सकता। सनातनधर्म श्रुति द्वारा प्रतिपादित हैं यह कहते हुवे आपने–अपने ऊपर निग्रह स्थान का आरोप किया है। आज भी यह साध्य है। "**इन्द्रोमायाभि**" इस मन्त्र का तात्पर्य प्रकृति के बहुत्व को सिद्ध करने के लिये है न कि धर्मो का बहुत्व इस मन्त्र का आश्रय लेना अज्ञान के ही कारण है। मुक्ति प्रसिद्ध ही है जिसके उद्देश्य से आचार्यो ने ग्रन्थ बनाये हैं। हम यह जानना चाहते हैं कि उसका कारण कर्म है या कर्म और ज्ञान दोनों।

हम यह जानना चाहते हैं कि यज्ञों में तथा विवाहों में गाय मारना सनातनधर्म को स्वीकृत है या नही ? साथ ही जिन शब्दों के प्रयोग को लेकर आप जनता में यह भ्रान्ति फैलाते हैं, कि हमने गालियाँ दी हैं वह संस्कृत साहित्य के रस को न जानने वाले आपको ही शोभा देता है। जिस मन्त्र का आपने प्रमाण दिया है वह एक परमात्मा के ही बहुत से नाम है यह बतलाता है। धर्मो का बहुत होना नहीं। "**अणोरणीयान्**" यह वाक्य भी श्रुति नहीं है, तो भी परमात्मा के व्यापकत्व को दिखलाता है।

–"व्यासदेव"

हमने इस पत्र में एक तो जो आक्षेप सनातनधर्मियों की ओर से हम पर किये थे उनका उत्तर लिखा है। दूसरे जो हमारे प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया था उसका प्रत्युत्तर दिया है और तीसरे एक नया प्रश्न भी हमने सनातनधर्मियों से पूछा है। अब पाठक हमारे पत्र पर ध्यान देने की कृपा करें :–

सबसे प्रथम आक्षेप यह था कि हम प्रतिज्ञाहानि नाम के निग्रह स्थान में गिर चुके हैं और इसलिये हार गये हैं। वस्तुतः यदि यह सिद्ध हो जावे कि हम प्रतिज्ञा हानि नाम के निग्रह स्थान से निगृहीत हो चुके हैं तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम हार गये। इसलिये यह विचार करना चाहिये कि क्या वस्तुतः हम इस निग्रह स्थान में आ गये थे ? हमारे इस निग्रह स्थान में आने का कारण यह बतलाया गया है कि हमने पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग कर अपने पक्ष की स्थापना नहीं की। बस अब यही विचार करना शेष है कि क्या पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग न करना प्रतिज्ञा हानि नाम का निग्रह स्थान है ? हमारा उत्तर यह है कि जिसने गौतम मुनि प्रणीत न्याय दर्शन को नियमानुसार गुरूमुख से पढ़ा है उसका तो कहना ही क्या जिसने कहीं चलते फिरते भी एक बार न्यायदर्शन को सुन लिया है वह भी यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि पञ्चावयव वाक्य रहित पक्ष स्थापना का नाम प्रतिज्ञाहानि निग्रह स्थान है। देखिये न्यायदर्शन के पञ्चमाध्यायस्य द्वितीय आन्हिक के द्वितीय सूत्र में गौतम मुनि ने "**प्रतिज्ञा हानि**" का लक्षण इस प्रकार किया है :– "।। **प्रति दृष्टान्त धर्मा श्यनुज्ञा स्व**

दृष्टान्ते प्रतिज्ञा हानिः ।।" इसका अर्थ यह है कि अपने पक्ष के विरूद्ध प्रतिवादी जो दृष्टान्त देता है उस प्रतिदृष्टान्त गतधर्म को स्वीकार कर लेना प्रतिज्ञाहानि निग्रह स्थान है, क्योंकि परपक्ष को स्वीकार करना मानो अपने पक्ष का त्याग है। उदाहरण के लिये– वादी ने प्रतिज्ञा की कि इन्द्रियों का विषय होने से घट के समान शब्द अनित्य है, इस पर प्रतिवादी कहता है कि घटत्व, पटत्व, गोत्व आदि जाति भी इन्द्रिय का विषय है और वह नित्य है वैसे ही शब्द भी नित्य क्यों नहीं ? इस पर वादी कहता है कि अस्तु, यदि इन्द्रिय का विषय जाति नित्य है तो शब्द भी नित्य हो। इस दृष्टांत में वादी का पक्ष था कि शब्द अनित्य है, और प्रतिवादी का पक्ष था कि शब्द नित्य है, यहां वादी ने अपने पक्ष अर्थात् प्रतिज्ञा को छोड़कर प्रतिवादी के पक्ष को ग्रहण कर लिया इसलिये वादी प्रतिज्ञा हानि नाम के निग्रह स्थान में गिर गया। अब विज्ञ पाठकों को विचार करना चाहिये कि क्या हमने ऐसा किया है ? यदि नहीं तो हम पर प्रतिज्ञा हानि का आरोप कैसा ? जब तक कि प्रतिवादी ने अपने पक्ष की स्थापना भी नहीं की और उसके उत्तर में वादी के बोलने का अवसर भी नहीं आया तब तक प्रतिज्ञा हानि कैसी ? सनातनधर्मियों के इस अद्‌भुत पाण्डित्य की प्रशंसा तो सनातनधर्मियों का अनन्त जिह्वा वाला शेषनाग भी सम्भवतः पूर्ण रूप से करने में समर्थ नहीं हो सकेगा, ऐसा हमारा विचार है। हे सनातनधर्माभिमानियो ! आपके प्रतिनिधि का यह पाण्डित्य है। यदि न्याय दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम आज जीवित होते और उस समय धर्म–संघ के विशाल मण्डप में उपस्थित होते तो लज्जा से अपना मुख नीचा करके सनातनधर्मियों के इस पाण्डित्य पर दो आँसू बहाये बिना न रहते। इसलिये हमने अपने द्वितीय पत्र के आरम्भ में ही इस अद्‌भुत पाण्डित्य (?) पर शोक तथा लज्जा का प्रकाश किया है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि क्या हमने पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग नहीं किया ? यदि नहीं किया तो क्यों नहीं किया ? यदि किया है तो किस रूप में ? इस पर विचार करने से पूर्व यह जानना आर्वश्यक है कि न्याय दर्शन के अनुसार दो या अधिक व्यक्तियों में जो पक्ष प्रतिपक्ष स्थापना पूर्वक बातचीत होती है उसे **"कथा"** कहते हैं। वह कथा तीन प्रकार की होती है जैसे– (१) वाद, (२) जल्प (३) वितण्डा। इन तीनों के लक्षण महर्षि गौतम ने इस प्रकार किये हैं :– **"प्रमाण तर्क साधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरूद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्ष प्रतिपक्ष परिग्रहो वादः ।।"** इसका भाव यह है कि एक पदार्थ के दो विरोधी धर्मो को लेकर प्रमाण तर्कों द्वारा खण्डन मण्डन सहित सिद्धान्त के विरूद्ध न होकर पञ्चावयव वाक्य सहित जो प्रश्नोत्तर करना है वह **"वाद"** है। **"यथोक्तोपपन्नश्छल जाति निग्रहस्थान साधनोपालम्भो जल्पः ।।"** अर्थात् जिस वाद में प्रमाण तर्क छल जाति निग्रहस्थान से साधन तथा उपालम्भ हो वह **"जल्प"** कहलाता है। तथा **"स प्रतिपक्ष स्थापना हीनो वितण्डा ।।"** अर्थात् यदि जल्प में प्रतिपक्ष की स्थापना न हो तो वह **"वितण्डा"** है। इन सूत्रों की व्याख्या करना हम आवश्यक नहीं समझते। पाठक इतने ही से इस बात को समझ सकते हैं कि इन तीनों में से वितण्डा तो एक व्यर्थ की वस्तु है क्योंकि यदि दो पक्षों की स्थापना ही नही है तो बातचीत कैसी ? वितण्डा केवल झगड़े का पूर्वरूप है। जब तक तराजू में दो पलड़े ही नहीं हैं, तब तक कोई वस्तु कैसे तोली जा सकती है ? वाद और जल्प के स्वरूपों में ही (जैसा कि ऊपर कहा गया है) भिन्नता नहीं है किन्तु उद्देश्यों में भी है वाद तो केवल तत्त्व जिज्ञासा के लिये होता है। जैसे किसी के हृदय में यह जिज्ञासा हुई कि– **"आत्मा नित्य अथवा अनित्य है,"** इस तत्व की जिज्ञासा के लिये वह किसी महापुरूष के समीप गया और वहां जाकर पञ्चावयव वाक्य बनाकर उसने अपनी शंका कही, उस व्यक्ति ने भी प्रतिपक्ष की स्थापना कर उसका उत्तर दे दिया। जिज्ञासु सन्तुष्ट हो गया। यह है **"वाद"**। जल्प का उद्देश्य नहीं होता– वहां तत्व जिज्ञासा नहीं होती, किन्तु एक दूसरे को जीतने की अभिलाषा होती है। इस ही लिये जल्प में छल, जाति, निग्रहस्थान, प्रमाण और तर्क के अंग बन जाते हैं। इनके प्रयोग से परपक्ष का विघात तथा स्वपक्ष की रक्षा

होती है। इसी को **"जल्प"** कहा जाता है।

अब विचार कीजिये कि यह शास्त्रार्थ इन तीन प्रकारों में से किसके अन्तर्भूत है ? यह वितण्डा तो था ही नहीं क्योंकि प्रतिवादी हम नहीं थे, वितण्डा का आरम्भ पक्ष या प्रतिपक्ष की स्थापना न करने से होता है। हमारा काम प्रतिपक्ष की स्थापना करना नहीं था किन्तु स्वपक्ष स्थापना था। वह हम अपने प्रथम पत्र में कर चुके थे। वात्स्यायन मुनि के कथनानुसार स्वपक्ष स्थापना किये बिना परपक्ष खण्डन में प्रवृत्त होना भी **"वितण्डा"** है, इसलिये यदि हम सनातनधर्मियों के विचार के अनुसार स्वपक्ष स्थापना किये बिना ही परपक्ष खण्डन में प्रवृत्त हो गये होते तो हम पर वैतण्डिक होने का आक्षेप करना था। वह किया नहीं और न वे करने का साहस रखते थे, क्योंकि हमारे प्रथम पत्र में पक्ष स्थापना थी। इसलिये यह स्पष्ट है कि यह शास्त्रार्थ वितण्डा नहीं था। यह जल्प भी नहीं था, क्योंकि जल्प जय की इच्छा से होता है और जय की इच्छा यश के लिये होती है यश बलवत्तर के पराजय से होता है। जो पौराणिक धर्म ऋषि दयानन्द के एक प्रहार को भी सहन न कर सका और मरणासन्न अवस्था में पड़ा हुआ अन्तिम श्वास ले रहा है उसके पराजय से यश तो क्या कुछ अपयश ही हो सकता है, जिसके लिये किसी की भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। तो क्या यह वाद था ? नहीं, क्योंकि वाद तत्त्व जिज्ञासा के लिये गुरू शिष्य संवाद रूप होता है। हमें तो यह निश्चय है कि पौराणिक धर्म मिथ्या रीति कपोल कल्पित पुराणादि पर अवलम्बित है, वेदामृत सागर के तो वह तट पर नहीं पहुंचा। इसलिये हमारी धारणा के अनुसार शुक्र वत् मनोरमा की फक्किकाओं को रटने वाले तथा अवच्छेदकावच्छिन्न के चक्कर में आंख मींचकर घूमने वाले पौराणिक महानुभाव वैदिक तत्व निर्णय में समर्थ नहीं हो सकते। इसलिये यह वाद भी नहीं था।

अब यह प्रश्न पैदा होता है कि यह था क्या ? क्या वाद–जल्प–वितण्डा के अतिरिक्त कोई चौथा भेद भी कथा का है ? हमारा उत्तर यह है कि न्याय दर्शन के अनुसार तो है नहीं, किन्तु लौकिक प्रथा के अनुसार है। पाठक जानना चाहेंगे कि यह लौकिक प्रथा कैसी है ? और इसका समर्थन शास्त्रों द्वारा होता है या नहीं हम बल पूर्वक कह सकते हैं कि इसका समर्थन शास्त्र करते हैं। विचार कीजिये, गुरू शिष्य संवाद रूप वाद के उदाहरण उपनिषदों से अच्छे कहीं नहीं मिल सकते। उनमें न्यायदर्शन के अनुसार पञ्चावयव वाक्य हमें कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते। उदाहरण के लिये प्रश्नोपनिषद् को ही देखिए। वहाँ क्या है कि सुकेशा, सत्यकाम प्रभृति ६ ऋषि भगवान् पिप्पलाद के समीप पहुंचे और उनसे ब्रह्मविद्या विषयक जिज्ञासा की। इन ऋषियों ने अपने प्रश्नों में पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग नहीं किया। महर्षि पिप्पलाद ने भी सबके उत्तर दिये और कहीं पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग नहीं किया। यह नहीं कहा जा सकता कि ये ६ ऋषि केवल अज्ञानी बालक थे क्योंकि उपनिषत्कार इन्हें ब्रह्मनिष्ठ कह रहे हैं। हम जानना चाहते हैं कि यह वाद शास्त्रानुकूल था या नहीं ? ऋषियों ने पञ्चावयव वाक्य न कहकर क्या प्रतिज्ञाहानि की थी ? नहीं, इसका उत्तर **"हाँ"** कहकर नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार छान्दोग्य में भी **"इन्द्र और प्रजापति"** **"नारद और सनत्कुमार"** प्रभृति अनेक महात्माओं के वाद हैं किन्तु कहीं भी पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग नहीं है। इस प्रकार क्या इन सबने निग्रहस्थान का आश्रय लिया था ? अच्छा उपनिषत्काल की बात छोड़िये। कलियुग में सबसे बड़ा शास्त्रार्थ जगद्गुरू शंकराचार्य तथा पण्डित मण्डनमिश्र का हुआ।। इसका वर्णन शंकरदिग्विजय नाम के ग्रन्थ में मिलता है। शंकरदिग्विजय के रचयिता वेदभाष्यकार श्री सायणाचार्य या उनके बड़े भाई श्री माधवाचार्य थे। इस ग्रन्थ के अष्टम सर्ग का अनुशीलन कीजिये। हम यहां पर उसके कुछ आवश्यक अंश उद्धृत करते हैं।

प्रवृद्धवादोत्सुकतां तदीयांविज्ञायविज्ञः प्रथमंयतीन्द्रः।
परावरज्ञः सपरावरैक्यपरां प्रतिज्ञामकरोत् स्वकीयाम्।।६०।।

ब्रह्मैकं परमार्थ सच्चिदमलं विश्व प्रपंचात्मना।
शुक्तौ रूप्य परात्मनेव बहला ज्ञानावृतं भासते।।६१।।

तज्ज्ञानान्निखिल प्रपंच निलया स्वात्म व्यवस्था परं।
निर्वाणं जनि मुक्तमभ्युपगतं मान श्रुतेर्मस्तकम्।।६२।।

भाव यह है कि श्री मण्डन की वाद के लिये उत्सुकता देख कर प्रथम सन्यासी शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म की एकता को दिखलाने के लिये अपनी प्रतिज्ञा की। ब्रह्म एक है, परमार्थ है सत् है, चित् है, मल रहित है, यह अपने आप ही प्रपञ्च रूप से आभासित होता है जिस प्रकार सीप चांदी के रूप में। ब्रह्म के ज्ञान से ही सम्पूर्ण प्रपञ्च का नाश होता है, यही मुक्ति है। इस विषय में श्रुति प्रमाण है। पाठक विचार करें कि यह है श्री शंकराचार्यजी का पक्ष स्थापन। इसके अनन्तर आपने कहा कि यदि मैं शास्त्रार्थ में हार जाऊंगा तो भगवे कपड़े त्याग कर श्वेत वस्त्र धारण कर लूंगा। शास्त्रार्थ का निर्णय पण्डित मण्डनमिश्र की पत्नी उमाभारती करें। क्या यहाँ पर श्री शंकराचार्यजी ने पञ्चावयव वाक्य की रचना की है ? नहीं, अब श्री पण्डित मण्डनमिश्र जी का उत्तर देखिये :–

वेदान्ता न प्रमाणं चिति वपुषि पदे तत्र संगत्ययोगात्,
पूर्वो भागः प्रमाणं पदचयगमिते कार्य वस्तुन्य शेषे।
शब्दानां कार्य मात्रं प्रति समधिगता शक्तिरभ्युन्नतानां,
कर्मभ्यो मुक्तिरिष्टा तदिह तनु भृता मायुषः स्यात् समाप्तेः।।६४।।

भाव यह है :– वेदान्त चित्स्वरूप ब्रह्म का व्याख्यान करने में प्रमाणिक नहीं है, वहां संगति न होने से पूर्व भाग वाक्य के द्वारा प्रकटित किये जाने वाले सम्पूर्ण कार्य को प्रकट करता है अतः प्रमाण है। शब्दों की शक्ति कार्य मात्र को प्रकट करने में है। कर्मो से ही मुक्ति होती है। कर्मों का ही अनुष्ठान मनुष्य को आयु की समाप्ति तक करना चाहिये। यह है मण्डनमिश्र का प्रतिपक्ष स्थापन। क्या यहां पर पञ्चावयव वाक्य रचना है ? यदि नहीं तो क्या इस प्रकार श्री शंकराचार्य तथा मण्डनमिश्र दोनों ने ही प्रतिज्ञा हानि नहीं की? श्री मण्डनमिश्र के पराजित हो जाने पर उनकी पत्नी श्रीमती उमाभारती ने भी श्री शंकराचार्य जी से शास्त्रार्थ किया और अन्त में प्रश्न किया :–

कलाः कियन्त्यो वद पुष्पधन्वनः, किमात्मिकाः किंच पदं समाश्रिताः।
पूर्वे च पक्षे कथमन्यथा स्थितिः, कथं युवत्यां कथमेव पुरुषे।।६९।।

यह श्लोक नवम सर्ग का है, जिसका भाव यह है कि बताओ कामदेव की कितनी कला हैं ? उनका रूप क्या हैं ? किस स्थान पर वे रहती हैं ? शुक्लपक्ष वा कृष्णपक्ष अर्थात् वह कहाँ रहती हैं ? स्त्री तथा पुरुष में किस प्रकार इनकी स्थिति है ? इन प्रश्नों का उत्तर श्री शंकर कुछ न दे सके। अब विचारिये कि क्या श्रीमती उमाभारती ने पक्ष की स्थापना की ? पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग किया ? उमाभारती कोई साधारण स्त्री नहीं

थी। महामुनि जैमिनी तथा बादरायणव्यास के कथनानुसार (जैसा कि शंकरदिग्विजय में लिखा है) वह सरस्वती की अवतार थी, और इन दोनों ही मुनियों के प्रस्तावानुसार वह शास्त्रार्थ की मध्यस्था बनी थी। उसने पञ्चावयव वाक्य विरहित पक्ष स्थापना क्यों की ? और श्री शंकराचार्य जी ने यह क्यों नहीं कहा कि आप प्रतिज्ञाहानि नाम के निग्रहस्थान में गिर गई हो और पराजित हो गई हो ? इन बातों पर श्री पं० माधवाचार्य जी को विचार करना चाहिए। हमारा मत इस सम्बन्ध में यह है कि शास्त्रार्थ में पञ्चावयव वाक्य पूर्वक भी पक्ष तथा प्रतिपक्ष की स्थापना हो सकती है और पञ्चावयव वाक्य के बिना भी। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि पक्ष तथा प्रतिपक्ष स्थापना में स्पष्ट रूप से गौतमीय न्याय के अनुसार पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग नहीं भी है और उसमें प्रतिज्ञा आदि अन्य स्वरूप में विद्यमान है तो भी कोई हानि नहीं, यह सदाचार है। पञ्चावयव वाक्य रहित पक्ष स्थापना को प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान कहना तो नितान्त अज्ञान्ता है यह पहले लिख आये हैं। इसलिये पं० माधवाचार्य जी का प्रथम वाक्य सर्वथा अनर्गल है। इसलिये हमने जो इसका उत्तर दिया वह सर्वथा उचित है।

अब प्रश्न यह है कि हमारे प्रथम पत्र में प्रतिज्ञा आदि हैं या नहीं ? हमारा उत्तर है कि– हैं। इसलिये हमने अपने द्वितीय पत्र में लिखा कि हमारी प्रतिज्ञा स्पष्ट है कि– **"सनातनधर्म का निर्वचन नहीं हो सकता"**। यह बात हमारे निम्न लिखित वाक्यों से स्पष्ट होती है :– **"हम यह जानना चाहते हैं कि सनातनधर्म से कौन सा धर्म अभिप्रेत है ? यह धर्म जलजीरे के समान है और शैव, वैष्णव, शाक्त आदि सब धर्मों को अपने अन्दर रखता है।"** अब इस प्रतिज्ञा की सिद्धि में हमारा हेतु भी देखिये। वह है परस्पर विरूद्ध होने से। यह बात इससे प्रकट होती है कि इनका आचरण कौवों और उल्लुओं के समान है तथा इनका कलह सारमेय कलह है। भाव यह है कि जिस प्रकार कौवों और उल्लुओं का नित्य वैर है उनमें कभी एकता सम्भव नहीं, इस ही प्रकार शांकर तथा वैष्णव आदि में भी नित्य वैर है कभी एकता नहीं हो सकती। एक कुत्ता जिस प्रकार दूसरे कुत्ते को नहीं देख सकता उस ही प्रकार शैव तथा वैष्णव आपस में एक दूसरे को नहीं देख सकते। इसके उदाहरण रूप से हमने द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम प्रश्नों को उपस्थित किया था जिनमें शांकर तथा वैष्णव मतों का परस्पर विरोध दिखलाया गया है। इस प्रकार हमारे प्रथम पत्र में प्रतिज्ञा–हेतु–उदाहरण तीनों ही उपस्थित हैं। इस दोष का परिहार करने के अनन्तर हमने सनातनधर्मियों के प्रतिज्ञा–हेतु आदि की परीक्षा की। आपने लिखा सनातनधर्म श्रुति तथा स्मृति द्वारा प्रतिपादित है। यह केवल प्रतिज्ञा है– साध्य का निर्देश है, इसकी सिद्धि में कोई हेतु नहीं दिया गया, इसलिये यह व्यर्थ है। हाँ, **"वेद में भी वैसा देखा जाने से"** यह लिखकर आपने एक अनुमान प्रमाण दिया है। यह वाक्य वेद वाक्य नहीं है। इसे वेद के नाम से लिखना दुःसाहस मात्र है। अच्छा इस अवसर पर जरा विचार करना चाहिये। आपके अनुमान में प्रतिज्ञा है **"सब सम्प्रदाय वैदिक हैं"** इसकी सिद्धि में हेतु लिखा है **"वेदोक्त होने से"**। यहाँ पर हम वैदिक तथा वेदोक्त शब्दों पर विचार करना चाहते हैं। व्याकरण के अनुसार ये दोनों शब्द समानार्थक हैं। इस प्रकार इस हेतु में प्रतिज्ञा को ही दोहरा दिया गया है। भाव यह है कि साध्य को ही हेतु बना दिया गया है। इसे न्याय दर्शन की परिभाषा में **"साध्य सम हेत्वाभासः"** कहा है। इसका लक्षण यह है **"साध्याविशिरः साध्यत्वात्साध्यसमः"** भाव यह है कि जो हेतु साध्य से विशेष न होने से स्वयम् भी साध्य हो वह साध्यसम है। यहाँ वेद प्रोक्तत्व ही साध्य है इसलिये वेदोक्तत्व हेतु नहीं हो सकता। हेत्वाभासों की गणना निग्रह स्थानों में की गई है। इसलिये हमने लिखा था कि सनातनधर्म श्रुति द्वारा प्रतिपादित है यह कहते हुए आपने अपने ऊपर निग्रहस्थान का आरोप किया है। आज भी वह साध्य है। अर्थात् यह साध्यसमहेत्वाभास है।

इसके अनन्तर आपने वेद के नाम से एक श्लोक लिखा है। हम बल पूर्वक कह सकते हैं कि यह पद्य किसी भी वेद में नहीं है। वेद में तो क्या यह किसी आर्षग्रन्थ का भी पद्य नहीं है। इसलिये हमने इस पर विचार करना भी समयापन समझा और इसका कोई उत्तर नहीं दिया। इस श्लोक के अनन्तर आपने एक ऋग्वेद के मन्त्र का अंश लिखा। पर यह नहीं लिखा कि इस मन्त्र से सिद्ध क्या करना चाहते हैं ? तो भी हमने उत्तर दिया कि इस मन्त्र का तात्पर्य प्रकृति के बहुत्व को सिद्ध करने के लिये है न कि धर्मों के बहुत्व को। विचार कीजिये कि हमारा उत्तर ठीक है या नहीं। वह मन्त्र इस प्रकार है :–

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रोमायाभिः पुरूरूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शता दश।।

मन्त्र का अर्थ यह है कि जीवात्मा रूप के प्रति अर्थात् प्रत्येक शरीर में प्रति रूप अर्थात् तत्तत्स्वभाव वाला हो जाता है। जब यह ब्राह्य रूप के देखने की इच्छा करता है तब इसे उसके रूप का ज्ञात हो जाता है। जीवात्मा अनेक विध माया अर्थात् प्रज्ञा से बहुत प्रकार के शरीर धारण करता है। अश्वों के समान इसकी इन्द्रियें अर्थात् इन्द्रियों की वृत्तियें एक सहस्र अर्थात् अनन्त हैं। इस मन्त्र में विचारणीय बात यह है कि यहां इन्द्र शब्द से क्या अभिप्रेत है ? जीवात्मा या परमात्मा। हमारा कहना है कि इन्द्र शब्द से तात्पर्य जीवात्मा का है परमात्मा नहीं। माधवाचार्य जी ने इस पत्र में तो इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। हाँ, आपने अपने द्वितीय पत्र में यह लिखा है कि यहाँ इन्द्र शब्द से परमात्मा का ग्रहण है। इसके लिये कोई युक्ति या प्रमाण आपने नहीं दिया। हम स्वीकार करते हैं कि इन्द्र शब्द के बहुत से अर्थ हैं, जैसे– सूर्य, वायु, मन, बल, वाणी, देवलोक इत्यादि। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि इन्द्र नाम परमात्मा का भी है, और कोई यह कहने का भी साहस नहीं कर सकता कि इन्द्र नाम जीवात्मा का नहीं है। महर्षि यास्क ने भी इन्द्र शब्द के एक दर्जन से अधिक निर्वचन किये हैं। प्रश्न यह है कि इस मंत्र में प्रकरणानुसार कौन सा अर्थ अभिप्रेत है ? श्री सायणाचार्य ने इस मन्त्र के अनेक अर्थ किये हैं, उनमें से एक अर्थ जीवात्मापरक भी किया है, हाँ उन्होंने जीवात्मा को नवीन वेदांतियों के सिद्धान्तानुसार उपाधि से प्रति शरीर में भिन्न–भिन्न माना है। इस मन्त्रस्थ हरि शब्द को भी इन्द्रियपरक माना है। इस प्रकार भी सायणाचार्य के अनुसार इस मन्त्र में जीव का वर्णन है। भाव यह है कि जीवात्मा प्रकृति अर्थात् प्राकृतिक शरीरों की भिन्नता से बहुत रूप वाला दृष्टिगोचर होता है। इसलिये हमारा उत्तर है कि इस मन्त्र में प्रकृति बहुत्व दिखलाया गया है न कि धर्म बहुत्व ! जो कि सर्वथा सुसंगत है। माधवाचार्य जी का अर्थ मनमाना है और प्रकरण के सर्वथा विपरीत है इस ही लिये हमने लिखा था कि उस श्रुति का आश्रय लेना अज्ञान के ही कारण है।

हमने अपने प्रथम पत्र में जो पाँचवाँ प्रश्न मुक्ति के सम्बन्ध में किया था उसका कुछ उत्तर न देकर जो पं० माधवाचार्यजी ने यह कहा था कि आप कौनसी मुक्ति को पूछते हो वह चार प्रकार की प्रसिद्ध है (यद्यपि यह वाक्य निरर्थक है क्योंकि इसमें हमारे प्रश्न को छूआ तक नहीं गया) इसके सम्बन्ध में हमने कहा कि मुक्ति तो प्रसिद्ध ही है जिसकी प्राप्ति के लिये आचार्यों ने ग्रन्थ बनाये हैं। केवल यह कह देना कि मुक्ति चार प्रकार की है पर्याप्त नहीं; मुक्ति के चार प्रकार सिद्ध करने के लिये कोई वेद मन्त्र या उपनिषद् वाक्य प्रमाण में उपस्थित करना था। क्या सनातनधर्मियों के सब आचार्य मुक्ति को चार प्रकार की मानते हैं ? यदि हाँ तो दिखलाओ श्री शंकराचार्यजी ने ये भेद कहाँ लिखे हैं ? यह तो श्री रामानुजाचार्य आदि की कल्पना मात्र है। इस स्थल पर हमने प्रसंगवश एक और प्रश्न कर दिया, वह यह कि मुक्ति केवल कर्मों से होती है ? या केवल

ज्ञान से होती है ? या कर्म और ज्ञान दोनों से होती है ? केवल कर्मों से मुक्ति मानने वाले मण्डनमिश्र प्रभृति हैं। केवल ज्ञान से मुक्ति मानने वाले श्री शंकराचार्य हैं और कर्म और ज्ञान दोनों से मुक्ति श्री रामानुजाचार्य ने मानी है। इनमें से सनातनधर्म कौन सा है ? यह हमारा प्रश्न है। इसके साथ ही साथ हमने एक और प्रश्न भी किया, वह यह था कि यज्ञों में तथा विवाहों में गाय मारना सनातनधर्म को स्वीकृत है या नहीं ? इस प्रश्न की हमने व्याख्या नहीं की और न यहाँ करते हैं, आगे चलकर इस विषय पर विचार करेंगे। हमारे प्रथम पत्र के जिन शब्दों को लेकर यह हल्ला मचाया गया था कि हमें गालियाँ दी गयी हैं उनके सम्बन्ध में हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि वह संस्कृत भाषा के साहित्य का रस न जानने के कारण ही पौराणिक भाइयों ने हल्ला किया था। इस सम्बन्ध में अधिक लिखना अनावश्यक है। इसके अनन्तर हमने उनके लिखे हुए दूसरे वेद मन्त्र का उत्तर दिया, वह मन्त्र इस प्रकार है :–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

मन्त्र का अर्थ यह है कि आत्मवित् पुरुष एक अग्नि (परमात्मा) को ही बहुत से नामों से पुकारते हैं जैसे इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, अग्नि, यम और मातरिश्वा। श्री पं० माधवाचार्यजी ने यह लिखने की कृपा नहीं की कि उन्होंने इस वेद मंत्र को क्या सिद्ध करने के लिये लिखा था ? हमने इसका उत्तर यह दिया कि जिस मन्त्र का आपने प्रमाण दिया है वह एक परमात्मा के ही बहुत से नाम हैं यह बतलाता है। धर्मों का बहुत होना नहीं। पं० माधवाचार्यजी का भाव सम्भवतः यह होगा कि शिव–विष्णु आदि नाम परमात्मा के ही हैं। यह तो हम भी मानते हैं कि परमात्मा का **"ओ३म्"** नाम मुख्य है और उसके अनन्त गुणों के कारण गुणवाचक नाम अनन्त हैं। महर्षि यास्क भी तो यही कहते हैं **"माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते"** अर्थात् देवता यद्यपि एक है तो भी उसके महैश्वर्यवान् होने से उसकी बहुत प्रकार से स्तुति की जाती है। श्री दुर्गाचार्य यास्कमुनि के इस वाक्य का भाष्य करते हुवे इस ही मंत्र को उदाहरण के रूप में उपस्थित करते हैं। क्या इसका ही नाम सनातनधर्म है ? यदि हाँ तो यह बतलाओ कि यदि शिव और विष्णु केवल नाम भेद हैं व्यक्ति भेद नहीं तो इन दोनों के परस्पर युद्ध का वर्णन पुराणों में क्यों लिखा है ? इस बात के सैकड़ों उदाहरण पुराणों में विद्यमान हैं। इसलिये यह श्रुति भी सनातनधर्मियों की सहायक नहीं है।

हमारे द्वितीय प्रश्न के उत्तर में श्री पं० माधवाचार्यजी ने लिखा था वस्तुतः जीव का भी विभुत्व तथा अणुत्व है। उनका भाव यह है कि सनातनधर्म में जीवात्मा के दोनों स्वरूप माने गये हैं। ऐसा है तो साथ में यह भी लिखना था कि इस विरोध का परिहार किस प्रकार होता है ? यह कुछ न लिखकर वेद के नाम से आपने कठोपनिषद् का एक श्लोक लिख मारा जो कि इस प्रकार है :–

अणोरणीयान्महतोमहीयान् आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।।

अर्थ यह है कि यह अणु से भी अणुतर और महान् से ही महत्तर आत्मा जीव की हृदय रूप गुहा में स्थित है। निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की उस महिमा को देखता है और वीत शोक हो जाता है। यह अर्थ हमारा अपना नहीं किन्तु श्रीशंकराचार्य जी के भाष्य के अनुकूल है। हम पाठकों से पूछना चाहते हैं कि इस पद्य में अणु से अणुतर तथा महान् से महत्तर जीव को कहा गया है या परमात्मा

को ? यदि परमात्मा को कहा गया है तब तो श्री पं० माधवाचार्य जी ने हमारे प्रश्न का उत्तर दे दिया है, और यदि जीवात्मा को, तो पं० माधवाचार्यजी ने महान् अनर्थ किया है। हमारा उत्तर इस सम्बन्ध में यह था कि यह उपनिषद् वाक्य परमात्मा के विभुत्त्व को दिखलाता है। अर्थात् इसमें परमात्मा को अणु से अणुतर तथा महान् से महत्तर कहा है। हमारे पास इसके लिये निम्नलिखित युक्तियां हैं :–

(१) अणीयान् और महीयान् आत्मा के विशेषण हैं।

(२) आत्मा को ही हृदय रूपी गुहा में निहित बतलाया है। हृदय रूपी गुहा निःसन्देह जीव की है जिसमें आत्मा रहती है।

(३) उपनिषद् वाक्य में गुहा का सम्बन्ध **"अस्य जन्तोः"** के साथ है और जन्तु शब्द का अर्थ श्री शंकर करते हैं :– **"ब्रह्मादिस्तव पर्यन्तस्य प्राणिजातस्य"** अर्थात् ब्रह्मा से लेकर तृणगुल्म पर्यन्त प्राणि समुदाय। प्राणि समुदाय से जीव ही अपेक्षित हो सकते हैं। जीव अपनी हृदयरूपी गुहा में स्वयम् ही रहता है, यह अर्थ असंगत है। प्रथम दो पादों में एक को प्रथमान्त से कहा है और दूसरे को षष्ठ्यन्त से कहा है। प्रथमान्त से परमात्मा का बोध है और षष्ठ्यन्त से जीव का। अणीयान् और महीयान् प्रथमान्त हैं।

(४) तृतीय पाद में पश्यति क्रिया का कर्त्ता **"अक्रतुः"** और **"वीतशोकः"** इस क्रिया का कर्म है **"महिमानम्"** जो कि चौथे पाद में है। महिमानम् का सम्बन्ध **"आत्मनः"** से है इसलिये आत्मा से अक्रतु और वीत, शोक पृथक् हैं। इन पादों में प्रथमान्त पद जीव के लिये तथा षष्ठ्यन्त आत्मा शब्द परमात्मा के लिये हैं।

इन हेतुओं से इस उपनिषद् वाक्य में अणु से अणुतर तथा महान् से महत्तर परमात्मा को कहा है, जीव को नहीं। यदि दुर्जन संतोष के लिये यह मान भी लिया जावे कि इसमें जीव का ही वर्णन है तो भी इससे जीवात्मा का अणु परिमाण होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि यहाँ पर अणु शब्द से अणु परिमाण विवक्षित नहीं है अपितु सूक्ष्मत्त्व विवक्षित है। यदि सनातनधर्म का यह सिद्धान्त है कि– **"जीवात्मा अणु तथा विभु दोनों हैं"** तो श्री शंकराचार्य जी ने अणुवाद का खण्डन क्यों किया ? वेदान्तदर्शन के भाष्य में इन दोनों आचार्यों का परस्पर विरोध क्यों है ? श्री पं० माधवाचार्य जी का उत्तर सर्वथा निःसार है। इसलिये हमने लिखा था कि यह उपनिषद् वाक्य परमात्मा के व्यापकत्त्व को दिखलाता है। पाठक ध्यान देने की कृपा करें कि हमने एक भी ऐसी बात जो कि श्री माधवाचार्य जी ने अपने पत्र में लिखी थी छोड़ी नहीं किन्तु सबका उत्तर दिया और जिस श्लोक का उत्तर हमने नहीं दिया उसका कारण भी हम यथास्थान दिखला चुके हैं।

हमारे इस द्वितीय पत्र के उत्तर में सनातनधर्मियों का जो पत्र हमें प्राप्त हुआ वह निम्न प्रकार है :–

धर्म संघ की ओर से द्वितीय पत्र

सनातन धर्मः वेद प्रतिपादित इति प्रतिज्ञातम् तद्यथा– सनातनमेनमाहुः उत आद्यःस्यात् पुनर्णणः। (अथर्वे) निगाह स्थानतानास्माभिरारोपिता अपितु निग्रह स्थानं पापितो भवान्। हे पन्ते भवदुक्तं साहित्य परिचायकम्। विद्यां च अविद्यां च इत्यादि श्रुतिषु उभयत्य दर्शनात्। गवालम्भ स्तावद् वेदोक्तः परं न तत्र कश्चित् पशुः हन्यते कस्मिन् वेदे कुत्र गवालम्भो लिखित इत्यपि भवता न दर्शितः। अद्यापि पञ्चावयव वाक्योपन्यासः कृतः किं भवतः। इन्द्रो मायाभिः इत्यत्र इन्द इति परमात्मा स एव पुरुरूपः। प्रकृतेस्तत्र

प्रसंग एवं नास्ति। सत्यार्थप्रकाशे प्रथम संस्करणे गवालम्भोऽवलोकनीयः। इति भवद्भिरुत्तरणीयम्। अस्माकं ग्रन्थेषु यदा भवन्तः प्रमाणं वदिष्यन्ति तदाऽहमुत्तरं दास्यामि। अणोरणीयान् इत्यत्र जीवात्मन प्रसंगः। आत्माऽस्यजन्तो र्निहितो गुहाया मिति वाक्य शेषात्।★

"माधवाचार्य"

धर्म संघ के द्वितीय पत्र•----का हिन्दी में अनुवाद–

सनातन धर्म वेद द्वारा प्रतिपादित है यह प्रतिज्ञा की गयी है जैसे :– **सनातनमेनमाहुरुत आद्यः स्यात् पुनर्णणः।।** अथर्ववेद। हमने निग्रहस्थान का आरोप नहीं किया किन्तु आपको निग्रहस्थान में पहुंचा दिया है।

आपका कहा हुआ "**ह्वेपन्ते**" साहित्य का परिचय कराने वाला है। "**विद्यां च अविद्यां च**" इत्यादि श्रुतियों में दोनों प्रकार से देखा जाने से। "**गवालम्भ**" वेदोक्त है किन्तु वहाँ कोई पशु नहीं मारा जाता, किस वेद में कहाँ पर "**गवालम्भ**" लिखा है ? यह भी आपने नहीं दिखलाया। क्या आज तक भी आपने पञ्चावयव का उपन्यास किया है। "**इन्द्रो मायाभिः**" यहाँ पर इन्द्र परमात्मा है वह ही पुरुरूप है। प्रकृति का वहां पर प्रसंग ही नहीं है। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में "**गवालम्भ**" देखना चाहिये। इसका आपको उत्तर देना चाहिये। हमारे ग्रन्थों में जब आप प्रमाण कहेंगे तब मैं उत्तर दूंगा। "**अणोरणीयान्**" यहाँ पर जीवात्मा का ही प्रसंग है। "**आत्माऽस्य जन्तो र्निहितो गुहायाम्**" इस अन्तिम वाक्य से।

"माधवाचार्य"

साधारण पाठक भी यह समझ सकें कि सनातनधर्मियों ने हमारे पत्र के उत्तर में क्या लिखा था, यहां थोड़ा सा उनके पत्र का स्पष्टीकरण आवश्यक है। सबसे प्रथम श्री माधवाचार्य जी ने लिखा था कि सनातन धर्म वेद द्वारा प्रतिपादित है यह प्रतिज्ञा की गयी थी, वह "**जैसे**"– यह लिखकर आपने एक वेद मन्त्र का अंश उद्धृत किया वह पूरा मन्त्र इस प्रकार है :–

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः।। २३।।

(अथर्ववेद काण्ड–१० सूक्त ८ मन्त्र २३)

इसके अनन्तर आप लिखते हैं कि हमने निग्रहस्थान का आरोप नहीं किया किन्तु आपको निग्रहस्थान में पहुँचा दिया है। यह वाक्य सर्वथा निरर्थक है, शब्द जाल मात्र है, इसके उत्तर की आवश्यकता नहीं। इसके बाद आपने हमारी एक अशुद्धि पकड़ी, जिसके सम्बन्ध में हम आगे लिखेंगे। फिर आपने हमारे द्वितीय पत्र में लिखे हुए एक प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा की है, ऐसा हमारा विचार है, क्योंकि आपने स्पष्ट तो लिखा ही नहीं और उत्तर में एक वेद मन्त्र का अंश लिखा। वह वेद मन्त्र पूरा इस प्रकार है :–

विद्याञ्चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। १४।।

(यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १४)

★ नोट–इस पत्र की संस्कृत महाभ्रष्ट, लचर और अशुद्ध है, "अथर्वे" आदि प्रयोग चिन्त्य हैं।

–"हरिदत्त शास्त्री"

इसके अनन्तर आपने हमारे द्वितीय पत्र के द्वितीय प्रश्न का उत्तर दिया। वह यह कि **"गवालम्भ"** वेदोक्त है किन्तु वहां कोई पशु नहीं मारा जाता। फिर हमसे ही पूछते हैं किस वेद में कहां **"गवालम्भ"** लिखा है ? तदनन्तर फिर आपने वही पञ्चावयव वाक्य की बात गाई और **"इन्द्रो मायाभिः"** इस मंत्र में इन्द्र परमात्मा का वाचक है और वही पुरुरूप है और वहां प्रकृति का प्रसंग ही नहीं है यह कहा। पुनः आपने **"गवालम्भ"** की बात उठाई और लिखा कि सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में **"गवालम्भ"** देखना चाहिये। फिर आप लिखते हैं कि जब आप हमारे ग्रंथों से प्रमाण देंगे तब मैं उत्तर दूंगा। इसके अनंतर आपने **"अणोरणीयान्"** इत्यादि कठोपनिषद् के वाक्य के सम्बंध में लिखा कि इसमें जीवात्मा का ही प्रसंग है, क्योंकि इसमें लिखा है कि **"आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।"** यह थोड़ा सा विस्तार उनके पत्र का हमने किया है। हमने जो इसका उत्तर दिया था वह इस प्रकार है।

आर्यसमाज की ओर से तृतीय पत्र

।। ओ३म्।।

इदं मंत्रं पञ्चावयव वाक्यम्—सनातनधर्मः वेदाप्रतिपादितः, मिथ्या वा। श्रुति विरुद्धत्वात्—इति। एवञ्च निरनुयोज्य निग्रह स्थाने पतितः पराजितश्च भवान्। "छात्र पद्धतिः" "प्रादिपादित" "माधवाचार्य" पदानां कथं साधुत्वम्। सनातनधर्म सम्प्रदाया अवैदिकाः परस्पर विरुद्धार्थ प्रतिपादकत्वात्। यन्नैवं तन्नैवम्। आश्वलायन गृह्य सूत्रे अनुस्तरणीम्—गाम् इत्यादि सूत्राणि तद्भाष्यञ्च गवालम्भनंप्रतिपादयन्ति पारस्कर गृह्यसूत्रं नत्वेवामाँसोऽर्धः स्यात्—अधि यज्ञमधि विवाहं कुरुतेत्वेव ब्रूयात् इत्यादि वाक्यैः स्पष्टं गवालम्भं वक्ति। अणोरणीयानिति वाक्यं परमेश्वरस्य महिमानमाह न जीवस्य। आथर्वणी श्रुतिरपि देवं सनातन पदेन विशिनष्टि न भावत्कं धर्मम्। सत्यार्थ प्रकाशस्य प्रथमं संस्करणम् न प्रमाणमस्मन्मते। मातारूद्राणामिति मन्त्रेस्पष्टंहिंसा निषेधात् कथं गृह्य सूत्रप्रामाण्यं भवन्मते। इदमपि जिज्ञास्यं शिव पुराण विष्णु पुराणयोः परस्पर देवनिंदा दर्शनात् कस्य प्रामाण्यम्।

हस्ताक्षराणि– "व्यासदेवस्य"

आर्यसमाज के तृतीय पत्र का हिन्दी में अनुवाद

यह है पञ्चावयव वाक्य कि सनातनधर्म वेदप्रतिपादित नहीं या मिथ्या है, वेद विरूद्ध होने से। इस प्रकार आप निरनुयोज्य निग्रहस्थान में आ गये और हरा दिये गये हैं। छात्र पद्धतिः प्रादि पादित—माधवाचार्य पद किस प्रकार शुद्ध हैं। सनातनधर्म नाम के सम्प्रदाय अवैदिक हैं—परस्पर विरूद्ध अर्थों के प्रतिपादक होने से—जो ऐसा नहीं है वह वैसा नहीं है। आश्वलायनगृह्यसूत्र में **"अनुस्तरणीम्—गाम्"** इत्यादि सूत्र तथा उनका भाष्य गोहत्या का प्रतिपादन करते हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र में **"नत्वेवामाँसोऽर्घः स्यात्—अधियज्ञमधि विवाहं कुरुतेत्येव ब्रूयात"** इत्यादि वाक्य परमात्मा के महत्त्व को दिखलाता है जीव के नहीं। अथर्ववेद का मंत्र सनातन पद से परमात्मा की विशेषता को दिखलाता है, आपके धर्म का वर्णन नहीं करता। सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण हमारे मत में प्रमाण नहीं है, **"मातारूद्राणाम्"** इस मंत्र में स्पष्ट हिंसा का निषेध होने से। आपके मत में गृह्यसूत्र की प्रामाणिकता किस प्रकार है ?

हम यह भी जानना चाहते हैं कि शिव पुराण तथा विष्णु पुराण में परस्पर देवों की निन्दा दृष्टिगोचर होती है। उनमें से आप किसे प्रमाण मानते हैं ?

"व्यासदेव"

हमने जो कुछ अपने तृतीय पत्र में लिखा था उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है :– हमने पञ्चावयव वाक्य की रचना किस प्रकार की थी अर्थात् किस प्रकार हमारे प्रथम पत्र में प्रतिज्ञा–हेतु–उदाहरण उपस्थित थे यह हम विस्तार के साथ पहिले लिख चुके हैं। हमारा विचार था कि पं० माधवाचार्य समझ गये होंगे, पर ऐसा हुआ नहीं। उन्होंने अपने द्वितीय पत्र में फिर संकेत किया इसलिये हमने जैसा वे चाहते थे वैसा ही वाक्य बना दिया, एक ही नहीं किन्तु दो। उन पर विचार कीजिये। हमारी प्रतिज्ञा है **"सनातनधर्म का वेद प्रतिपादन नहीं करता या सनातनधर्म मिथ्या है"** हेतु है **"वेद विरूद्ध होने से"** भाव यह है कि सनातनधर्म वेदोक्त नहीं ब्लकि मिथ्या है क्योंकि यह वेद विरूद्ध है अर्थात् वेद विरूद्ध पुराणादि प्रतिपाद्य है। हमने अपने दूसरे पञ्चावयव वाक्य में इसको और स्पष्ट किया कि **"सनातनधर्म नाम के सम्प्रदाय अवैदिक हैं क्योंकि वे परस्पर विरूद्ध अर्थों का प्रतिपादन करते हैं"**। जो वैसा नहीं है वह ऐसा नहीं है। इसके अनन्तर हमने सनातनधर्मियों के ऊपर एक आक्षेप किया। वह यह था कि बिना जाने हम पर जो यह आक्षेप किया गया था कि हमने पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग नहीं किया इसलिये हम प्रतिज्ञाहानि नाम के निग्रहस्थान में आ गये हैं। यह आक्षेप बिल्कुल निराधार है जैसा कि हम पहिले विस्तार के साथ लिख चुके हैं, इसलिये हमने लिखा कि आप निरनुयोज्य नाम के निग्रहस्थान से निगृहित हो चुके हैं। यहां पर हमने निग्रहस्थान का नाम संक्षेप से तथा संकेत मात्र से लिखा। हमारा भाव था निरनुयोज्यानुयोग नाम जिसका निग्रहस्थान से। जिसका लक्षण न्यायदर्शन में इस प्रकार है :– **"अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो निरनुयोज्यानुयोगः"** भाव यह है कि निग्रहस्थान लक्षण को मिथ्या समझ कर अर्थात् अन्यथा समझकर दूसरे को यह कहना कि आप निग्रहस्थान में आ गये हो **"निरनुयोज्यानुयोग"** नाम का निग्रहस्थान है। तात्पर्य यह है कि निग्रहस्थान का आरोप निग्रहस्थान के लक्षण को बिना जाने हुए ही यदि लगाया जाता है तो इस प्रकार मिथ्या आरोप करने वाला स्वयम् निग्रहस्थान में फंसा हुआ समझा जाता है। पं० माधवाचार्य ने प्रतिज्ञाहानि नाम के निग्रहस्थान के लक्षण को बिना जाने ही यह लिखा था कि आप प्रतिज्ञाहानि नाम के निग्रहस्थान में गिर गये हो इसलिये हमने कहा हम नहीं, आप स्वयम् **"निरनुयोज्यानुयोग"** नाम के निग्रहस्थान में निगृहीत हैं। इसके अनन्तर हमने उनकी अतिस्थूल तीन अशुद्धियाँ पकड़ी हैं। पहले **"छात्र पद्धति"** इसके विषय में हम पहले लिख चुके हैं। दूसरी है **"प्रादिपादित"**, यह होना चाहिये **"प्रतिपादित"**। प्रादिपादित कोई शब्द ही नहीं होता। तीसरी है **"माधवाचार्य"** इसके सम्बन्ध में हम आगे लिखेंगे।

श्री पं० माधवाचार्य ने हमसे पूछा था कि किस वेद में और कहाँ **"गवालम्भन"** लिखा है ? वास्तविकता यह है कि वेद में **"गवालम्भन"** नहीं है। यह हमारा सिद्धान्त है। जिन ग्रन्थों में **"गवालम्भन"** लिखा है उन्हें हम वेद विरूद्ध होने से प्रमाण नहीं मानते। सनातनधर्म की स्थिति यह है कि सनातनधर्मी उन ग्रन्थों को वेद विरूद्ध कहने का साहस ही नहीं कर सकते, प्रत्युत वेद के समान स्वतः प्रमाण मानते हैं। यह आर्य समाज की विजय ही है कि सनातनधर्मी यह कहने लगे कि **"गवालम्भन"** तो वेद में है पर वहां कोई पशु नहीं मारा जाता। इसलिये हमने अपने पत्र में दो प्रमाण ऐसे उपस्थित किये हैं जिनमें यज्ञ तथा विवाह में गौ हत्या करने का विधान है। सबसे प्रथम हमने आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाण दिया है और दो सूत्र लिखे हैं। **"अनुस्तरणीम्–गाम्"**। ये दोनों सूत्र चतुर्थाध्याय की द्वितीय कण्डिका के है। यहाँ पर प्रकरण शवदाह का है। शवदाह के समय अनुस्तरणी करने का विधान है। अनुस्तरणी किस पशु की करनी चाहिये इस पर कहते हैं **"गाम्"** अर्थात् गाय की अनुस्तरणी करनी चाहिए। फिर कहते हैं **"अजां वैक वर्णाम्"** अर्थात् एक रंग वाली बकरी की। फिर कहते हैं **"कृष्णामेके"** अर्थात् कुछ आचार्यों के मत से काली बकरी की अनुस्तरणी करनी चाहिये। अनुस्तरणी क्या है ? इसके लिये इस ही अध्याय की तृतीय कण्डिका को देखिये वहाँ सूत्र

है **"अनुस्तरण्या वपामुत्खिद्य शिरो मुखं प्रच्छादयेदग्नेर्वर्म परिगोभिर्व्यवस्येत्"** अर्थात् अनुस्तरणी की चर्बी निकालकर उससे शव के सिर तथा मुख को ढक दे और मन्त्र बोले **"अग्नेर्वर्म परिगोभिः"** इत्यादि। आगे लिखते हैं **"वृक्का उद्धृत्य पाण्यो रादध्यादति द्रव सारमेयौ श्वानाविति दक्षिणे दक्षिणं सव्येसव्यम्"** अर्थात् गुर्दों को निकालकर दायें हाथ पर दायां गुर्दा और बायें हाथ पर बांया गुर्दा रक्खे और **"अतिद्रव"** आदि मंत्र बोले। फिर लिखते हैं **"हृदयं हृदये"** अर्थात् अनुस्तरणी के हृदय को शव के हृदय पर रक्खे। फिर दो सूत्र छोड़कर अगला सूत्र है **"सर्वांयथांगं विनिक्षिप्य वर्मणा प्रच्छादयेत्.........."** अर्थात् अंगों पर अंग रखकर अर्थात् सिर पर सिर पैरों पर पैर इत्यादि रखकर चम्मच से घृत की आहुति दे। इस प्रसंग पर कुछ भी टीका टिप्पणी करना हमारी लौह लेखनी के बस का नहीं है। हम अशक्त हैं, पाठक क्षमा करें और सनातनधर्म के इस बीभत्स नंगे नाच को देखें।

हमने दूसरा प्रमाण पारस्कर गृह्यसूत्र का दिया था। उसमें विवाह का प्रकरण है। पाठ इस प्रकार है:– **"आचान्तोदकाय शस्त्रमादाय गौरिति त्रिःप्राह।। प्रत्याह। मातारुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यान ममृतस्यनाभिः। प्रानुवोचं चिकितुषे जनाय मागामनागामदितिं वधिष्ट। मम चामुष्य च पाप्मानं हनोमीति यद्यालभेत। अथ यद्युत्सिसृक्षेन्मम चामुष्य च पाप्मा हत ओमुत्सृजत तृणान्यत्त्विति ब्रूयात्। नत्वेवामांसोऽर्घः स्यात्। अधि यज्ञमधि विवाहं कुरुतेत्येव ब्रूयात्"**।। जिसका भाव यह है कि वर और कन्या यज्ञ की वेदी पर बैठे हैं। कन्या का पिता वर का सत्कार कर रहा है, वर को विष्टर–पाद्य, अर्घ्य आचमनीय और मधुपर्क दिया जा चुका है और मधुपर्क भक्षण के अनन्तर आचमन और अंगन्यास भी कर चुका है, उस समय यजमान अर्थात् कन्या का पिता गाय लाकर और हाथ में तलवार लेकर वर से तीन बार गौः गौः गौः कहता है वर कहता है **"माता रुद्राणा मित्यादि"** अर्थात् इस मन्त्र को पढ़ता है। (इस मन्त्र का व्याख्यान हम आगे करेंगे।) यदि गाय को मारे तो मेरा और इसका पाप मारता हूँ, यह कहे। **"इसका"** कहकर कन्या के पिता का नाम ले। यदि वर गाय को छोड़ना चाहे अर्थात् मारना न चाहे तो मेरा और इसका पाप मारा गया **"ओम् छोड़ दो, घास खाये"** यह कह दे और **"इसका"** कहकर कन्या के पिता का नाम ले। इस प्रकार सब स्थानों पर चाहे गाय मारे या न मारे यह विकल्प प्राप्त हुआ इसलिये नियम कहते हैं **"बिना माँस के अर्घ नहीं होता"** इसलिये यज्ञ और विवाह में **"करो"** ऐसा ही कहे अर्थात् गाय को अवश्य मारे। हम स्पष्ट कहना चाहते हैं कि यह अर्थ हमारा किया हुआ नहीं है। हमारे पास पारस्कर गृह्यसूत्र के ऊपर पाँच भाष्य विद्यमान हैं। **कर्कोपाध्याय जयराम–हरिहर–गदाधर–विश्वनाथ** ये पाँचों भाष्यकार इन सूत्रों का भाष्य करने में एक मत हैं। भाष्यकारों का कोई दोष नहीं है। इन सूत्रों का कुछ और अर्थ करना सम्भव भी नहीं है। श्री पं० माधवाचार्य जी ने यह तो लिखा कि **"आत्माऽस्य जन्तोर्निहितोगुहायाम्"** इस वाक्यशेष से इस उपनिषद् वाक्य में जीवात्मा को ही अणुतर महत्तर कहा है, पर यह लिखने की कृपा नहीं की कि इस वाक्यशेष से यह भाव किस प्रकार प्रकट होता है ? हम इस विषय का कुछ विवेचन श्रीशंकर भाष्य के अनुसार कर चुके हैं, विशेष लिखना पिष्टपेषण मात्र है, इसलिये हमने अपने पत्र में इतना ही लिखा है कि यह वाक्य परमात्मा की महत्ता को प्रकट करता है, जीव की नहीं। श्री पं० माधवाचार्य जी ने सनातन धर्म को वेदोक्त सिद्ध करने के लिये अथर्ववेद के एक मन्त्र का अंश दिया था, अब हम उस पर विचार करते हैं। अथर्ववेद का वह मन्त्र इस प्रकार है :–

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः।।

इस मन्त्र पर इस समय श्री सायणाचार्य का भाष्य उपलब्ध नहीं है। न किसी अन्य विद्वान का भाष्य

ही इस मन्त्र पर हमें मिला। इसलिये हम स्वयम् अर्थ करते हैं। मन्त्र का भाव यह है **"परमात्मा सनातन कहलाता है, वह फिर भी नया है, दिन रात पैदा होते हैं तो भी एक दूसरे के रूपों में समान होते हैं"**। प्रकरणानुसार इस मन्त्र का यही अर्थ है। इस मन्त्र में परमात्मा को सनातन कहा गया है, किसी धर्म विशेष का यहां प्रसंग ही नहीं है। इसलिये हमने अपने पत्र में लिखा है कि **"अथर्ववेद"** का मन्त्र भी सनातन पद से परमात्मा की विशेषता को दिखलाता है आपके धर्म का वर्णन नहीं करता। बात भी ऐसी ही है। यदि सनातन नाम परमात्मा का है तो इतने से सनातनधर्म वेद प्रतिपादित है यह कैसे सिद्ध हो गया ? यह हमारी समझ में नहीं आया, ठीक है इस गूढ़ तत्त्व को समझने के लिये अत्यन्त सूक्ष्म (?) बुद्धि की आवश्यकता है जो परमपिता परमात्मा ने महती दया करके इन सनातनधर्मियों को ही दी है ? श्री पं० माधवाचार्य जी ने अपने पत्र में लिखा था कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में **"गवालम्भ"** देखना चाहिए, इसका आपको उत्तर देना चाहिये। हमने इसका उत्तर यह दिया कि सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण हमारे मत में प्रमाण नहीं है। यदि वहां पर **"गवालम्भ"** का विधान है तो वह वेद विरूद्ध होने से अमान्य है। हमने इस सम्बन्ध में एक वेद मन्त्र की ओर संकेत किया, वह मन्त्र इस प्रकार है :–

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्रानुवोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।।१५।।

(ऋग्वेद मण्डल ८ सूक्त ६० मन्त्र १५)

अर्थात् गाय रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की भगिनी और अमृत का उत्पत्ति स्थान है, पाप रहित तथा अदीना गाय को मत मारो, यह मैं चेतना (ज्ञान) वाले पुरुषों से कहता हूँ।

इस मन्त्र के सम्बन्ध में यह तो विवाद हो सकता है कि रुद्र–वसु–आदित्य किसे कहते हैं ? पर मंत्र के अर्थ के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं। इस प्रकार वेद की आज्ञा है कि गाय को मत मारो। इसलिये जहां भी गाय के मारने का विधान है वह वेद विरूद्ध होने से अमान्य है। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में श्री महर्षि दयानन्द की तथा आर्यसमाज की क्या स्थिति है ? इस विषय पर इस शास्त्रार्थ के अन्य पत्रों में भी विचार हुआ है, इसलिये इस प्रसंग को हम आगे लिखेंगे, यहां इतना ही लिखना पर्याप्त है कि हम सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण को प्रामाणिक नहीं मानते। इसके अनन्तर हमने सनातनधर्मियों से पूछा कि जिन गृह्यसूत्रों में स्पष्ट ही गौ का मारना लिखा है इन्हें आप किस प्रकार प्रमाण मानते हैं ? इस प्रकार सनातनधर्मियों के पत्र की आलोचना करने के अनन्तर हमने एक और प्रश्न सनातनधर्मियों से किया और वह यह कि शिवपुराण तथा विष्णुपुराण में परस्पर देवों की निन्दा दृष्टिगोचर होती है, आप उनमें से किसे प्रामाणिक मानते हैं ?

इस प्रकार हमने अपना तृतीय पत्र भेजा। इसका जो उत्तर सनातनधर्मियों की ओर से आया वह इस प्रकार है :–

धर्म–संघ की ओर से तृतीय पत्र

अहो भवदीया पञ्चावयव वाक्य योजना यत्र श्रुति विरुद्धत्वात्–इति हेतुमुपन्यस्य तस्या साधनं न कृतम्। कां श्रुतिं विरुणद्धि सनातन धर्म इति किमपि भवता न लिखितम्। तस्मात्साध्य समोहेत्वा भासः। अस्माकं निग्रहस्थानानुयोग अद्यापि समीचीन एव। अयमपि हेतुः "परस्पर विरुद्धार्थ प्रतिपादकत्वात् इति

न साधितः। इन्द्रो मायाभिर्मन्त्र सम्बन्धे न किंचिल्लिखितम्। तेन सनातनस्य धर्मस्य श्रौतत्वं सिद्धिमिति भविद्भिरभ्युप गतम्। अणोरणीयान् इति वाक्यं सत्यपि–"आत्मास्य जन्तोरिति वाक्य शेषे कथंपरमेश्वरस्य महिमानमाह इति भवानेव जानाति।

महाशय ! प्रतिज्ञामात्रेण न किमपि सिध्यति किमपि प्रतिपाद्यताम्। सनातनमेनमाहुरित्यत्र यः परमात्मा भवता स्वीकृतः स एव सनातनो धर्मः। धर्म धर्मिणोरभेदात्। अहो सत्यार्थ प्रकाशस्य प्रथम संस्करणं अद्य भवता त्यक्तम्। जीवता दयानन्देन यल्लिखितं तदप्रमाणं चेत् मरणोत्तर लिखित ग्रंथस्य कथं प्रमाण्यम्। गवालम्भनमित्यत्रा लम्भन शब्दस्यार्थः स्पर्शो वा हननंवेति। भवद्भिः प्रतिपाद्यताम्। शिव पुराणादिषु कुत्र निन्दा इति न प्रति पादितम्। छात्र पद्धति, माधवाचार्य इति पदयोः का अशुद्धिरिति कथयताम्।

–"माधवाचार्य"

धर्मसंघ के तृतीय पत्र का हिन्दी में अनुवाद

ओहो ! आपकी पञ्चावयव वाक्य की योजना जहां **"श्रुति विरुद्धत्वात्"** यह हेतु देकर उसको सिद्ध नहीं किया। किस श्रुति के साथ सनातनधर्म का विरोध है ? यह कुछ भी आपने नहीं लिखा। इस कारण से यह साध्यसमहेत्वाभास है। हमारा निग्रहस्थान का कहना आज भी ठीक ही है। यह भी हेतु कि **"परस्पर विरुद्धार्थ प्रतिपादकत्वात्"** नहीं सिद्ध किया।

"इन्द्रो मायाभिः" इस मन्त्र के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। इसलिये सनातनधर्म वैदिक है यह आपने मान ही लिया **"अणोरणीयान्"** यह वाक्य **"आत्मास्य जन्तोः"** इस वाक्यशेष के होते हुए किस प्रकार परमात्मा के महत्व को दर्शाता है ? यह आप ही जानते हैं। महाशय ! केवल प्रतिज्ञामात्र से कुछ सिद्ध नहीं होता, कुछ कहिये। **"सनातनमेनमाहुः"** इसमें आपने जिस परमात्मा को स्वीकार किया है वही सनातनधर्म है। धर्म और धर्मी में भेद न होने से। ओहो ! सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण को आज आपने छोड़ दिया। जीते हुये दयानन्द ने जो लिखा था यदि वह अप्रमाण है तो मरने के बाद लिखे हुये ग्रन्थ को प्रामाणिकता कैसे ? **"गवालम्भन"** शब्द का अर्थ छूना है या मारना यह आपको बतलाना चाहिये ? शिवपुराण आदि में कहां निन्दा है यह नहीं बतलाया ? छात्र पद्धति, माधवाचार्य इन पदों में क्या अशुद्धि है ? यह कहना चाहिये।

–"माधवाचार्य"

श्री पं० माधवाचार्य जी के लेख को साधारण पाठक भी समझ सकें, इसलिये उसका स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। हमने अपने तृतीय पत्र में जो दो पञ्चावयव वाक्य दिये थे उनके सम्बन्ध में श्री पं० माधवाचार्य जी का यह आक्षेप है कि हमने **"श्रुति विरुद्ध होने से"** यह हेतु तो दे दिया पर इसको सिद्ध नहीं किया, अर्थात् हमने यह नहीं लिखा कि सनातनधर्म कौन सी श्रुति के विरूद्ध है ? हमने जो दूसरा हेतु दिया था कि **"परस्पर विरूद्ध अर्थ का प्रतिपादक होने से"** इसके सम्बन्ध में भी श्री पं० माधवाचार्य जी का यह कहना है कि हमने इसे भी सिद्ध नहीं किया, इसलिये हमारे दोनों हेतु साध्यसमहेत्वाभास हैं। हेत्वाभासों की गणना निग्रहस्थानों में है, इसलिये श्री पं० माधवाचार्य जी का कहना है कि उनका निग्रहस्थान सम्बन्धी आक्षेप ठीक है। इसके अनन्तर आप लिखते हैं कि आपने **"इन्द्रो मायाभिः"** इत्यादि मन्त्र के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा इसलिये आपने सनातनधर्म की वैदिकता स्वीकार ही करली है। फिर आपने कठोपनिषद् के **"अणोरणीयान्"** आदि वाक्य के सम्बन्ध में लिखा कि **"आत्माऽस्य जन्तोः"** इस वाक्य शेष के होते हुये यह

किस प्रकार परमात्मा के महत्व को प्रकट करता है यह आप ही जानते हैं। अर्थात् यह वाक्य तो जीवात्मा का ही वर्णन करता है, परमात्मा का नहीं। तदनन्तर आप हमें सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि महाशय कुछ हीं कहो, केवल प्रतिज्ञा से कुछ नहीं होता। भाव यह है कि उनके विचार से अब तक हमने कुछ कहा ही नहीं, केवल यह बतलाया है कि हम क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? अर्थात् हमने अब तक कोई हेतु ही नहीं दिया प्रतिज्ञा मात्र ही की है। फिर आपने अथर्ववेद के उपर्युक्त मन्त्र की ओर संकेत करके कहा कि आपने यह स्वीकार कर लिया है कि सनातन पद परमात्मा का वाचक है, बस वही परमात्मा सनातनधर्म है, क्योंकि धर्म तथा धर्मी में कोई भेद नहीं होता। भाव यह है कि परमात्मा का नाम सनातन है, परमात्मा धर्मी अर्थात् द्रव्य है, सनातनधर्म, धर्म है अर्थात् गुण है–क्योंकि द्रव्य और गुण में कोई भेद नहीं होता इसलिये सनातन परमात्मा (धर्मी) और सनातनधर्म में भी कोई भेद नहीं, जबकि सनातन शब्द वैदिक है, तब सनातनधर्म वैदिक है।

इसके अनन्तर आपने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में कहा कि आज आपने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण का परित्याग कर दिया है, जीते हुये दयानन्द ने जो लिखा वह यदि आपके मत में अप्रमाणिक है तो मरने के बाद जो लिखा गया उसकी प्रामाणिकता कैसे ? श्री पं० माधवाचार्य के कहने का अभिप्राय यह है कि अब तक तो आर्यसमाज सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण को प्रामाणिक मानता था, किन्तु आज हमने उसको प्रमाण मानना छोड़ दिया है। आपके कहने का यह भी भाव है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण को तो स्वामी दयानन्द जी ने स्वयम् अपने जीवन में लिखा था उसे तो आर्यसमाज मानता नहीं और दूसरे संस्करण को जो स्वामी जी के देहावसान के अनन्तर अन्य किसी व्यक्ति ने लिखकर स्वामी जी के नाम से प्रकाशित करवा दिया है, उसे आर्यसमाज प्रमाण मानता है। यह क्यों ?

फिर आप हमसे पूछते हैं कि **"आलम्भन"** शब्द का अर्थ छूना है या मारना यह बतलाना चाहिये ? भाव यह है कि हमने पूछा था कि **"गवालम्भन"** सनातनधर्म को स्वीकृत है या नहीं ? इस सम्बन्ध में आप पूछते हैं कि यह बतलाओ कि **"आलम्भन"** का अर्थ छूना है या मारना ? पं० माधवाचार्य जी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि **"गवालम्भन"** में **"आलम्भन"** का अर्थ छूना है, मारना नहीं; इसलिये जहां **"गवालम्भन"** का विधान है वहाँ गाय को छूने से तात्पर्य है, मारने से नहीं। यद्यपि यह बात श्री पं० माधवाचार्यजी ने स्पष्ट नहीं कही, क्योंकि यह उनके अन्तरात्मा के विरूद्ध थी, पर उनके शब्दों से यही ध्वनि निकल रही है। इसके अनन्तर आप पूछते हैं कि पुराणों में परस्पर विरूद्ध देव निन्दा कहां लिखी है ? आपने यह भी पूछा है कि **"छात्र पद्धति और माधवाचार्य"** पदों में क्या अशुद्धि है ? भाव यह है कि आपको यह भी ज्ञान नहीं कि ये पद शुद्ध हैं या अशुद्ध ? संकेत करने पर तो जानना चाहिये था। **"माधवाचार्य"** पद के अन्त में कम से कम पदत्व लाने को विसर्ग चाहियें। तथा **"छात्र पद्धति"** की जगह **"शास्त्र–पद्धति"** होना चाहिये। यह है श्री माधवाचार्य जी के तृतीय पत्र का स्पष्टीकरण इसके उत्तर में हमने जो चतुर्थ अर्थात् अन्तिम पत्र लिखा था, वह इस प्रकार है :–

आर्यसमाज की ओर से चतुर्थ (अन्तिम) पत्र

अणोरणीयानिति श्रुतौ अग्रे "आत्माऽस्य जन्तोरिति" पदेन स्व स्वामि भावोदर्शितः। तेनाणोरणोयानिति पदेन परमात्मा गृह्यते न जीवः। सत्यार्थप्रकाशस्य प्रथमं संस्करणं दयानन्देनस्वामिना स्वयमेव खण्डितम्–इति–न प्रमाणमस्माकम्। माधवाचार्य पदं विसर्ग रहितम् अतोऽशुद्धम्। "भवता न दर्शितः" "कृतः किं भवता" "भवन्तः प्रमाणं वदष्यति अस्माकं ग्रन्थेषु" इत्यादि वाक्यानि भवतः पाडित्यं व्याकरणस्य

दर्शयन्ति सनातनधर्मस्य श्रुति मूलकत्वं भवतैव प्रतिपादनीयं नास्माभिः। "सनातनमेनमाहुः" इत्यस्य दत्तमेवोत्तरं प्राक्।

गवालम्भ शब्देऽपि आलम्भ पदस्याङ् पूर्वकात् लभधातो घञि सिद्धिरिति लघुकौमदी मात्रपाठी बालोऽपि जानाति। किञ्च आलम्भ पदं न स्पर्शमात्र परं किन्तु हिंसापरमिति पश्वालम्भमीमासायां स्पष्टमेव प्रतिपादितं वामनाचार्य विरचितायाम्। शिव पुराणे "विभूतिर्यस्य नो भाले कन्ठे रुद्राक्ष धारणम्। नास्ये शिवमयी वाणीतं त्यजेदधर्मं यथा।। इति पद्ये वैष्णवानामधमत्वं स्पष्टमेवोक्तम्। पद्मपुराणे" "मोहाद्यः पूजयेदन्यान् स पाखण्डी भविष्यति। इत्यनेन शिव पूजकानां पाखण्डित्वमुक्तम्। एव बहूनि प्रमाणानि सन्ति। किञ्चभवन्मते स्त्रीशूद्राणां यदा न श्रुति गोचरा तदा कथं श्रद्धा शची घोषा गोधादीनामृषित्व मृग्वेदे उपलश्ते। अत्र च भवन्तः कथं स्त्रीः शूद्राँश्च वेदान् श्रावयन्ति। श्रवणे त्रपु जतुभ्यां श्रोत्र परिपूरणमिति शंकर वाक्यं कथन्न पालयन्ति अद्यावधि ये आक्षेपा विहिताः तेषु नैकस्यापि दत्तमुत्तरं भवता।

हस्ताक्षराणि– "व्यासदेवस्य"

आर्यसमाज के चतुर्थ पत्र का हिन्दी में अनुवाद

"**अणोरणीयान्**" इस श्रुति में पहिले "**आत्माऽस्य जन्तोः**" इस पद से स्व स्वामिभाव सम्बन्ध दिखलाया गया है। इसलिये "**अणोरणीयान्**" इस पद से परमात्मा का ग्रहण होता है जीव का नहीं। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण का स्वामी दयानन्द ने स्वयम् ही खण्डन किया है। इसलिये हम उसे प्रामाणिक नहीं समझते। माधवाचार्य पद विसर्ग रहित होने से अशुद्ध है। "**भवता न दर्शितः–कृतः किं भवता–भवन्तः प्रमाणं वदिष्यति अस्माकं ग्रन्थेषु**" इत्यादि वाक्य आपके व्याकरण के पांडित्य को दिखलाते हैं। सनातनधर्म का मूल वेद है यह आपको ही स्वयं सिद्ध करना चाहिये हमें नहीं। "**सनातनमेन माहुः**" का उत्तर पहिले दे ही चुके हैं।

"**गवालम्भ**" शब्द में भी आलम्भ पद आङ् पूर्वक लभ धातु से घञ प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है, यह बात तो लघुकौमुदी पढ़ने वाला बालक भी जानता है। "**आलम्भ**" शब्द का केवल छूना अर्थ नहीं है किन्तु हिंसा है यह वामनाचार्य की बनाई हुई पश्वालम्भमीमाँसा नाम की पुस्तक में स्पष्ट लिखा है।

शिवपुराण में "**विभूतिर्यस्य ना भाले नांगे रुद्राक्षधारणम्। नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदधर्मं यथा**" इस श्लोक में वैष्णवों को स्पष्ट ही अधम कहा है। पद्मपुराण में "**मोहाद्यः पूजयेदन्यान् स पाखण्डी भविष्यतिः**" इस श्लोक से शिव के पूजकों को पाखण्डी कहा है। इस प्रकार बहुत से प्रमाण हैं। तथा आपके मत में जब कि स्त्रियों तथा शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं है तब किस प्रकार श्रद्धा–शची–घोषा–गोधा आदि स्त्रियाँ ऋग्वेद की ऋषि उपलब्ध होती हैं। इसी प्रकार यहाँ यज्ञ में आप स्त्रियों को तथा शूद्रों को वेद क्यों सुनाते हैं ? "**स्त्रियों व शूद्रों के द्वारा वेदमन्त्र सुन लेने पर रांगा तथा लाख से उनके कान भर दे**" इस शंकर के वाक्य का पालन क्यों नहीं करते ? अब तक जितने भी आक्षेप हमने किये हैं उनमें से एक का भी उत्तर आपसे नहीं बन पड़ा।

"**व्यासदेव**"

हमने जो कुछ अपने चौथे पत्र में लिखा है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। श्री पं० माधवाचार्य जी ने अपने तृतीय पत्र के आरम्भ में हम पर यह आक्षेप किया था कि हमने अपने हेतुओं को सिद्ध नहीं किया,

इसलिये हमारे हेतु **"साध्यसमहेत्वाभास"** हैं यह बिल्कुल अनर्गल वाक्य था। यह वाक्य सिद्ध करता है कि श्री पं० माधवाचार्य जी ने न्यायदर्शन के दर्शन भी नहीं किये, उन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि हेतु और हेत्वाभास किसे कहते हैं ? न्यायदर्शन के अनुसार हम पहिले लक्षण लिख चुके हैं। हमने इस आक्षेप का उत्तर देना आवश्यक ही नहीं किन्तु केवल कालयापन ही समझा। सनातनधर्मियों के परस्पर विरोध के अनेक उदाहरण देकर हम अपने प्रथम पत्र में परस्पर विरूद्धार्थ प्रतिपादकत्व हेतु को आवश्यकता से अधिक सिद्ध कर चुके हैं। वे प्रश्न दार्शनिक थे, श्री पं० माधवाचार्य उनको छूने का भी साहस न कर सके, उत्तर देना तो दूर रहा।

दूसरा आक्षेप हम पर यह किया गया है कि हमने अपने तृतीय पत्र में ऋग्वेद के **"इन्द्रो मायाभिः"** इत्यादि मन्त्र के संबंध में कुछ नहीं लिखा, इसलिये हमने सनातनधर्म की श्रुति मूलकता स्वीकार कर ली। धन्य है इस बुद्धि को। हम इस मन्त्र का उत्तर अपने द्वितीय पत्र में ही दे चुके थे, हमने लिखा था कि वहां प्रकृति बहुत्व से तात्पर्य है धर्म बहुत्व से नहीं, आप कहते हैं कि यहाँ प्रकृति का प्रसंग ही नहीं है, इस हठधर्मी का क्या उत्तर हो सकता है ? जब तक पण्डित माधवाचार्य जी यह सिद्ध न कर दें कि इस मन्त्र में **"इन्द्र"** शब्द परमात्मा का वाचक है, उस समय तक हमें इस मन्त्र के सम्बन्ध में कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये हमने इस वाक्य को भी श्री पं० माधवाचार्य जी के सुख की निरंकुशता समझ कर छोड़ दिया है। श्री पं० माधवाचार्य ने यह तो दिखलाने का कष्ट नहीं किया कि **"आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्"** इस वाक्यशेष से किस प्रकार कठोपनिषद् के **"अणोरणीयान्"** इत्यादि पदों में जीवात्मा को अणुतर तथा महत्तर कहा है, परन्तु इस वाक्य को बार–बार दुहराते रहे। हमने इस पत्र में उत्तर दिया कि इस वाक्य शेष से स्वस्वामिभाव प्रकट होता है। वह इस प्रकार कि इस वाक्य का अर्थ तो यही है– जैसा कि श्रीशंकराचार्य लिखते हैं **"सचात्मास्य जन्तोर्ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्तस्य प्राणि जातस्य गुहायां हृदयेनिहित आत्मभूतः स्थित इत्यर्थः।"** अर्थात् वह आत्मा इस जन्तु के अर्थात् ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त प्राणियों के गुहा में अर्थात् हृदय में निहित है अर्थात् आत्मारूप से स्थित है। यहां पर **"अस्य जन्तोः"** इन दोनों पदों के सम्बन्ध में **"षष्ठी"** विभक्ति है, तथा **"अस्य"** विशेषण है और **"जन्तोः"** विशेष्य ही है, सम्बन्ध यहां पर स्वस्वामिभाव ही विवक्षित है। श्री पं० माधवाचार्य जी को यह सिद्ध करने के लिये कि इस कठोपनिषद् के वाक्य में जीव को ही अणोर्नियान् तथा महीयान् कहा है इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण या युक्ति देनी चाहिये थी, ऐसा उन्होंने नहीं किया। यहां पर हमने जो इस कठोपनिषद् वाक्य को श्रुति कहा है, वह सनातनधर्मियों के विचार से है न कि अपने सिद्धान्त से।

श्री पं० माधवाचार्य जी ने जो कुछ सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में कहा है उसका विस्तृत उत्तर तो हम आगे चलकर लिखेंगे, परन्तु अपने पत्र में हमने इतना संकेत कर दिया है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण का स्वामी दयानन्द ने स्वयं ही खण्डन किया है, इसलिये हम उसे प्रमाण नहीं मानते। हमने जो अपने पत्र में श्री पं० माधवाचार्य जी की तीन अशुद्धियाँ दिखलाई थीं, उनमें से **"प्रादिपादित"** के सम्बन्ध में तो आप चुप हो गये। किन्तु आपने **"छात्र पद्धति और माधवाचार्य"** के सम्बन्ध में हमसे पूछा कि इनमें क्या अशुद्धि हैं ? इनमें से छात्र पद्धति के सम्बन्ध में तो हम पहले लिख चुके हैं, और माधवाचार्य पद विसर्ग रहित होने से अशुद्ध है। भाव यह है कि श्री पं० माधवाचार्य जी ने अपने प्रथम–द्वितीय और तृतीय पत्रों के अन्त में केवल **"माधवाचार्य"** लिखा था। यदि पत्र हिन्दी भाषा में होते तब तो कोई अशुद्धि नहीं थी चूंकि पत्र संस्कृत भाषा में था इसलिये माधवाचार्य शब्द का विभक्तिरहित प्रयोग अशुद्ध था। संस्कृत भाषा का नियम है कि बिना विभक्ति के शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये, **"अपदं न प्रयुञ्जीत"** माधवाचार्य

पद में केवल संबोधन के एक वचन में ही विभक्ति का लोप हो सकता है, अन्यत्र नहीं। उस स्थल पर श्री पं० माधवाचार्य जी अपने आपको सम्बोधन तो कर ही नहीं रहे थे, इसलिये या तो लिखना था कि **"माधवार्यस्य"** अर्थात् माधवाचार्य के और **"हस्ताक्षराणि"** पद का अध्याहार किया जाता या **"माधवाचार्यः"** ऐसा विसर्ग सहित लिखना था और **"लेखकः"** पद का अध्याहार होता। यह आपने कुछ भी नहीं किया, इसलिये यह प्रयोग अशुद्ध था हमारे इस चतुर्थ पत्र के लेख का परिणाम यह निकला कि आपने अपने चतुर्थ पत्र के अंत में अपना नाम विसर्ग सहित लिखा जो कि शुद्ध था। इसके अतिरिक्त हमने श्री पं० माधवाचार्य जी की तीन और भी व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियाँ पकड़ी, जिनका विवरण हम अन्यत्र लिखेंगे। इसके अनन्तर हमने स्पष्ट लिखा कि सनातनधर्म को वेदोक्त सिद्ध करना आपका काम है हमारा नहीं। अर्थववेद की श्रुति का उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं, श्री पं० माधवाचार्य ने जो धर्म और धर्मी का अभेद बतलाकर परमात्मवाचक सनातन शब्द से सनातनधर्म की वैदिकता सिद्ध करने का यत्न किया था यह सर्वथा अनर्गल तथा निरंकुशतापूर्ण था– इसका उत्तर देना भी व्यर्थ समय नष्ट करना था। विचार कीजिये कि श्री पं० माधवाचार्य जी के इस वाक्य में दो बातें साध्य हैं। प्रथम तो यह है कि सनातनधर्म–सनातनपद वाच्य परमात्मा का धर्म है, दूसरे यह कि धर्म और धर्मी में भेद नहीं होता। वस्तुतः ये दोनों ही बातें अत्यन्त भ्रमपूर्ण हैं। वस्तुतः जो धर्म परस्पर विरूद्ध आदि असंख्य दोषों से परिपूर्ण है वह परमात्मा का गुण कैसे हो सकता है ? हमने तो अपने प्रथम पत्र में ही पूछा था कि शंकरमत सनातनधर्म है अथवा रामानुजीय सनातनधर्म हैं यदि दोनों में से एक सनातनधर्म है तो दूसरा अवैदिक होना चाहिये और यदि दोनों सनातनधर्म हैं तो ये दोनों आचार्य एक दूसरे का खण्डन क्यों करते हैं ? यदि खण्डन नहीं करते यह कहा जावे तो सर्वथा प्रत्यक्ष विरूद्ध है, मिथ्या है, उन्मत्त प्रलाप है, मुख की निरंकुशता है। इसलिये यह पक्ष सिद्ध ही नहीं हो सकता, जब यही सिद्ध नहीं तो धर्म और धर्मी का अभेद है इसका खण्डन करना अनावश्यक है। यदि हम दुर्जनतोषन्याय से यह थोड़ी देर के लिये मान भी लें तो यह कथन भी सिद्ध नहीं हो सकता कि धर्म और धर्मी में भेद नहीं होता। श्री पं० माधवाचार्य जी के कथन का भाव यह है कि द्रव्य और गुण में कोई भेद नहीं अर्थात् इन दोनों में कोई भेद नहीं। इस पर भी कुछ विचार करना चाहिये। यदि यह स्वीकार कर लिया जावे कि द्रव्य तथा गुण में कोई भेद नहीं है तो इसका परिणाम यह होगा कि द्रव्य और गुण नाम के दो पदार्थ नहीं रहेंगे और ये दोनों एक ही वस्तु के नाम हो जायेंगे। इससे हानि यह होगी कि गुण के नाश से द्रव्य का नाश मानना पड़ेगा, जो कि प्रत्यक्ष विरूद्ध है। हम देखते है कि आज कपड़ा श्वेत है और कल उसे रंग देने पर वह काला हो जाता है। यहाँ गुण के बदल जाने पर कपड़ा नहीं बदला, यह तब ही हो सकता है जबकि द्रव्य और गुण को पृथक्–पृथक् स्वीकार किया जावे, यदि गुणों के समुदाय को ही द्रव्य माना जावे और द्रव्य नाम का कोई पदार्थ स्वीकार न किया जावे तो अवयव के नाश से अवयवी का नाश मानना पड़ेगा जो कि प्रत्यक्ष विरूद्ध है, क्योंकि रूप के बदल जाने पर घट पटादि का नाश नहीं होता, इसलिये द्रव्य और गुण पृथक्–पृथक् सत्ता हैं। हाँ इन दोनों का समवाय सम्बन्ध है जो कि नित्य है। भाव यह है कि द्रव्य कभी निर्गुण नहीं हो सकता और गुण कभी द्रव्य के आधार बिना नहीं रह सकता किन्तु समवाय सम्बन्ध कभी पदार्थों का अभेद नहीं करता। समवाय सम्बन्ध की वास्तविकता को न जान द्रव्य और गुण का अभेद कहना भ्रान्तिपूर्ण ही हैं हमारा ऊपर का दृष्टान्त अनित्य द्रव्य तथा गुण के सम्बन्ध में है, किन्तु द्रव्यत्व तथा गुणत्व सामान्य नित्य तथा अनित्य दोनों पदार्थों में समान होने से नित्य द्रव्य तथा नित्य गुण का भी पार्थक्य सिद्ध करता है। इसके अनन्तर आपने हमसे पूछा था कि **"आलम्भ"** शब्द का अर्थ क्या है ? यह प्रश्न व्यर्थ था तो भी हमने बतलाया कि आङ् उपसर्ग पूर्वक लभ धातु से घञ् प्रत्यय करने पर **"आलम्भ"** शब्द बनता है, यदि **"ल्युट्"** प्रत्यय किया जाय तो **"आलम्भन"** शब्द

बन जायेगा। इतना ज्ञान तो उस व्यक्ति को भी होना चाहिये जिसने केवल लघुकौमुदी पढ़ी है। यहां पर यह विचारणीय है कि हमसे **"आलम्बन"** शब्द पूछा गया था हमने **"आलम्भ"** का उत्तर क्यों दिया ? इसका एक कारण यह है कि श्री पं० माधवाचार्य जी ने मौलिक भाषण में **"आलम्भ"** शब्द का ही प्रयोग किया था वही हमारे ध्यान में रहा, सम्भव है हमारे सुनने का दोष रहा हो। दूसरा कारण यह भी था कि श्री पं० माधवाचार्यजी ने अपने दूसरे पत्र में **"गवालम्ब"** शब्द का ही प्रयोग किया था और कहा था कि **"गवालम्भस्तावद्वेदोक्तः"** इसलिये हमने **"आलम्भ"** शब्द का निर्वचन किया। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि **"आलम्भ"** तथा **"आलम्भन"** शब्दों में प्रत्ययों की भिन्नता से धात्वर्थ में कोई भिन्नता नहीं आती। यदि **"आलम्भन"** शब्द का अर्थ स्पर्श या हिंसा है तो **"आलम्भ"** शब्द का भी वही अर्थ है। विचारणीय विषय तो यह है कि **"आङ्"** उपसर्ग पूर्वक **"लभ्"** धातु का अर्थ केवल स्पर्श है अथवा स्पर्श और हिंसा दोनों हैं ? श्री पं० माधवाचार्य जी ने यद्यपि स्पष्ट नहीं कहा तो भी उनका भाव यह था कि इसका अर्थ स्पर्शमात्र है। जो कि भूल है। हमारा पक्ष यह है कि **"आङ्"** उपसर्ग पूर्वक **"लभ"** धातु स्पर्श तथा हिंसा दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रकरण के अनुकूल अर्थ करना चाहिये। देखिये पारस्करगृह्यसूत्र की द्वितीय कण्डिका में यज्ञोपवीत संस्कार की विधि लिखी है वहाँ पाठ है **"अथास्य दक्षिणांसमधि हृदयमालभते"** यहां पर भी **"आङ्"** उपसर्ग पूर्वक **"लभ्"** धातु का प्रयोग है, किन्तु प्रकरणानुसार अर्थ है कि आचार्य माणवक के दक्षिण कन्धे के ऊपर अपना हाथ ले जाकर माणवक के हृदय को छूता है। यहाँ स्पष्ट ही स्पर्श अर्थ है, हिंसा अर्थ करना अत्यन्त अप्रामाणिक है। किन्तु यदि यह स्वीकार कर लिया जावे कि इसका अर्थ छूना ही है हिंसा नहीं तो निम्नलिखित श्लोक पर विचार कीजिये :—

अश्वालम्भं गवालम्भं सन्यासं पल पैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्ति कलौपञ्च विवर्जयेत्।।

यह पाराशरस्मृति का श्लोक है जिसका भाव यह है कि— घोड़ा मारना—गाय मारना—सन्यास—श्राद्ध में मांस भोजन तथा देवर से पुत्रोत्पत्ति इन पाञ्च कर्मों को कलियुग में न करे। यही वह श्लोक है जिसके आधार पर गृह्य सूत्रों में स्पष्ट गो हत्या का विधान होते हुए भी आजकल उत्तर भारत के सनातनधर्मी पण्डित यह कर्म नहीं करते। यदि इस श्लोक में भी **"आङ्"** पूर्वक **"लभ्"** धातु का अर्थ स्पर्श लिया जावेगा तो कलियुग में घोड़े का छूना और गाय का छूना भी वर्जित होगा। परिणाम यह होगा कि न तो घोड़े की सवारी हो सकेगी और गाय को बिना स्पर्श किये दूध कैसे प्राप्त होगा ? इसलिये इस श्लोक में **"आलम्भ"** शब्द का अर्थ हिंसा ही है स्पर्श नहीं। अब विचार यह करना चाहिये कि जहाँ यज्ञों तथा विवाहों में **"गवालम्भ"** का विधान है वहाँ छूना अर्थ है या हिंसा ? इसके लिये हमने अपने पत्र में लिखा था कि— वहाँ **"आलम्भ"** शब्द का अर्थ छूना नहीं किन्तु हिंसा करना है यह बात श्री वामनाचार्य की बनाई हुई **"पश्वालम्भ मीमांसा"** नाम की पुस्तक में स्पष्ट ही लिखी है। यह पुस्तक आनन्दाश्रमग्रन्थावलि पूना से प्रकाशित हुई हैं। भूमिका लेखक श्रीमज्जगदगुरू शंकराचार्य संस्कृत पाठशाला, धारवाड़ के अध्यापक श्री नागेश शास्त्री महोदय है आप भूमिका के सप्तम पृष्ठ पर लिखते हैं, देखिये—

"यच्चाभिहितम्—अग्नीषोमीयादि वाक्येत्वालभतिर्नैव हिंसामभिधत्ते किन्तु वत्समालभेतेति वाक्य इव स्पर्शमात्रम्, इत्यादि तदप्य पेशलम्। अग्नी—षोमीयं पशुमालभेतेत्यादौ सोऽस्य देवतेत्यधिकृतेनच्छ प्रत्ययेन प्रतीयमानो द्रव्य देवता सम्बन्धो यागं विनाऽनुपपन्न इति यागवाचकपदमावश्यकम्। लाघवा

दालभतिनैव यागो लक्ष्यत इति शब्द बोध्यत्वमेव हिंसाया न पुनः स्पर्श वाचकत्वमालभतेः। अथ चेदभिनि विशसेशक्त्या नैव हिंसाऽऽ लभतिना बोध्यते, आक्षेपत एव च यागोपपत्त्यर्थं कल्प्या सेति तदाः निभालय चक्षुषी विस्फार्य "वपामुत्खिदति पार्श्वत आच्छ यतिघ्नन्तिहवाएतत्पशुं संज्ञपयन्ति पशुविंशसति हृदयस्याग्रऽवद्यति अथ जिह्वाया अथवक्षसः" इत्यादीनि सुस्पष्टमेव पशु मारणमाचक्षणानि वचो जातानि। अथ शंकेथाः– वत्स मा लभेतेत्यत्र कथमालभतिः स्पर्शमाचष्ट इति। तदा याग तात्पर्य ग्राहको द्रव्य देवता संबन्धस्तत्र न प्रतीयत इति समाधानं मन्वीथाः।।"

भावार्थ यह है कि– यह जो कहा गया है कि "**अग्निषोमीयादि**" वाक्यों में "**आलभति**" का अर्थ हिंसा नहीं है किन्तु "**वत्समालभेत**" इस वाक्य के समान स्पर्श मात्र अर्थ है यह भी ठीक नहीं। "**अग्निषोमीयं पशुमालभेत**" इत्यादि में "**सास्य देवता**" इस अधिकार के "**छ**" प्रत्यय से प्रकट होने वाला द्रव्य देवता सम्बन्ध बिना याग के पूरा नहीं होता इसलिये यागवाचक पद आवश्यक है। "**लाघव**" से "**आलभति**" ही उसको प्रकट करता है। यदि यह कहो कि "**आलभति**" का शब्दार्थ हिंसा नहीं है उसकी तो केवल याग की उत्पत्ति के लिये आक्षेप से कल्पना ही की जाती तो आंख फाड़कर "**चर्बी को उखाड़ता है–पार्श्व से काटता है–उस पशु को मारते हैं–पशु को पकाते हैं–पहिले हृदय को काटता है–फिर जीभ को काटता है–फिर छाती को काटता है**" इत्यादि अत्यन्त स्पष्ट हिंसा को कहने वाले वाक्यों को देखो यदि यह शंका हो कि "**वत्समालभेत**" इस वाक्य में "**आलभति**" का स्पर्श अर्थ क्यों है ? तो यह समाधान करो कि वहाँ पर यज्ञ के तात्पर्य को ग्रहण कराने वाला द्रव्य देवता सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। ग्रन्थ लेखक श्री वामनशास्त्री ने भी ग्रन्थ के उन्नीसवें तथा बीसवें पृष्ठ पर यही प्रतिपादन किया है और "**अग्नीषोमीयादि**" वाक्यों में "**आङ्**" पूर्वक "**लभ्**" धातु का अर्थ स्पर्श कहने वालों को उन्मत्त (पागल) कहा है। ये दोनों लेखक सनातनधर्मी विद्वान् हैं और यज्ञों में पशुहिंसा का विधान स्वीकार करते हैं। "**पश्वालम्भ मीमांसा**" के इस लेख से यह विवाद तो समाप्त हो जाता है कि यज्ञ में "**आङ्**" पूर्वक "**लभ्**" धातु पशुओं के छूने के अर्थ को नहीं किन्तु हिंसा के अर्थ को प्रकट करती है। हमारे विचारानुसार इस शास्त्रार्थ में यह विवाद अत्यन्त अनावश्यक था कि "**आलम्भन**" का अर्थ स्पर्श है या हिंसा ? क्योंकि हमने कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया था जिसमें "**आङ्**" उपसर्ग पूर्वक "**लभ्**" धातु का प्रयोग हो। हमने तो आश्वलायनगृह्यसूत्र तथा पारस्करगृह्यसूत्रों के प्रमाण दिये थे जिनमें स्पष्ट ही गौ का मारना और काटना लिखा है, वहाँ "**आङ्**" पूर्वक "**लभ्**" धातु का प्रयोग ही नहीं है जो छूना अर्थ हो सके। पं० माधवाचार्य जी ने उन गृह्यसूत्रों के प्रमाणों को छुआ तक नहीं। इध र उधर की हाँक कर समय काटते रहे, इसका नाम है सनातनधर्म ? हमारा पक्ष तो इस सम्बन्ध में यह है कि वेद पशुहिंसा की आज्ञा नहीं देता किन्तु पशुओं की रक्षा करने का उपदेश देता है इसलिये जिस ग्रन्थ में भी पशुहिंसा का विधान है वह वेद विरूद्ध होने से अमान्य तथा त्याज्य है। इसलिये आर्यसमाज गृह्यसूत्रों के इन वाक्यों को त्याज्य समझता है। बहुत से सनातनधर्मी यज्ञों में गौ आदि पशुओं का हनन शास्त्रानुकूल मानते हैं, गाय के सम्बन्ध में कहते हैं– सत्युग–त्रेता–द्वापर में गौ से ही यज्ञ होना चाहिये–कलियुग में बकरे आदि से ही–और वेद ऐसा कहता भी है। दक्षिण में तथा काशी आदि स्थानों में अब भी ऐसे यज्ञ होते हैं– उत्तर भारत के कुछ सनातनधर्मी पशु हिंसा के सम्बन्ध में टाल मटोल करने का यत्न करते हैं–न तो वे हिंसा को स्वीकार करते हैं और न इन ग्रन्थों को त्याज्य ही करते हैं। श्री पं० माधवाचार्य जी भी ऐसे ही पण्डितों में हैं।

श्री पं० माधवाचार्यजी ने कहा था कि शिव पुराण आदि में निन्दा कहाँ है यह नहीं बतलाया। हमने सोचा

था कि यह विषय अत्यन्त स्पष्ट है इसलिये अपने तृतीय पत्र में हमने कोई प्रमाण नहीं दिया था प्रश्न मात्र किया था। इस चौथे पत्र में हमने दो प्रमाण दिये। पहला यह था :–

विभूतिर्यस्य नो भाले कण्ठे रुद्राक्षधारणम्।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदधमं यथा।।

यह शिव पुराण का श्लोक है। भाव यह है जिसके मस्तक पर विभूति नहीं, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला नहीं और मुख में **"शिव–शिव"** रूप वाणी नहीं उसको नीच के समान छोड़ दे। इस श्लोक में वैष्णवों की स्पष्ट निन्दा है।

दूसरा प्रमाण यह था :– **मोहाद्यः पूजयेदन्यान्स पाखण्डी भविष्यति।।** यह पद्म पुराण के श्लोक का आधा भाग है। जिसका अर्थ है कि जो विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवों की पूजा करता है वह पाखण्डी होगा। इस श्लोक में शैवों की निन्दा है। इस प्रकार सनातनधर्मियों की सब बातों का उत्तर देने के अनन्तर हमने एक नया प्रश्न और कर दिया– वह यह था कि **"आपके मत में स्त्री तथा शूद्र को वेद सुनने का अधिकार नहीं है"** जैसा कि भागवत में लिखा है :– **स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा, धर्म श्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह। इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्।** (श्रीमद्भागवत पुराण प्रथम स्कन्ध चतुर्थाध्याय) जिसका भावार्थ यह है कि स्त्रियों तथा शूद्रों को वेद सुनने का अधिकार नहीं है। उनका भी कल्याण हो जावे इसलिये महर्षि व्यास ने महाभारत बनाया। हम यह जानना चाहते हैं कि जब आपका यह सिद्धान्त है तब,–श्रद्धा–शची–घोषा–गोधा आदि स्त्रियाँ ऋग्वेद की ऋषि कैसे हो गयीं, और इस यज्ञ में स्त्रियों को तथा शूद्रों को वेद क्यों सुनवाते हैं ? वास्तविकता यह थी कि शतमुखकोटि होमात्मक यज्ञ में उसे मण्डप के दोनों ओर कुछ पण्डित बैठे हुए ऊँचे स्वर से वेद पाठ करते थे और वहाँ जाकर मनुष्य मात्र को सुनने की आज्ञा थी। सनातनधर्म के सिद्धान्तानुसार स्त्रियों तथा शूद्रों के वहां जाने पर प्रतिबन्ध होना चाहिये था। यही हमारा आक्षेप था। साथ ही हमने यह भी पूछा कि श्री शंकराचार्य की आज्ञा है कि शूद्र के कानों में वेद का शब्द पड़ जावे तो उसके कानों में रांगा और लाख भर दे। आप इस आज्ञा का पालन क्यों नहीं करते ? इसके लिये वेदान्तदर्शन के **"श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च"** (श्री शंकर इस सूत्र में योग विभाग नहीं मानते और श्री रामानुज योग विभाग मानकर दो सूत्र मानते हैं) इन सूत्रों पर शंकर भाष्य तथा श्री भाष्य को देखिये। दोनों आचार्य स्मृतियों के आधार पर शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकारी नहीं मानते और यदि शूद्र किसी प्रकार वेद को सुन लें तो उसके कान रांगे तथा लाख से भर देने चाहिये यह आदेश देते हैं। इस प्रश्न के अनन्तर हमने लिखा था कि अब तक जितने आक्षेप हमने किये थे उनमें से एक का भी उत्तर आपने नहीं दिया।

इस प्रकार हमने अपने चतुर्थ पत्र को समाप्त किया। इसके उत्तर में हमें जो सनातनधर्म की ओर से उनका अन्तिम अर्थात् चतुर्थ पत्र मिला वह इस प्रकार था:–

धर्मसंघ की ओर से चतुर्थ पत्र।

श्रीः

भवतां प्रथम पत्रे तिस्रः द्वितीय पत्रेऽपितिस्रस्तृतीये चैका अशुद्धयः सन्ति। या मुद्रणावसरे भवतः पाण्डित्य मुद घोषयिष्यन्ति। आलम्भन पदमस्माभिः पृष्टम्। घञन्तता च भवद्भिरुत्तरिता इत्यहो लघुकौमुदी ज्ञानं भवतः। आत्मास्य जन्तोरिति पदेन स्वस्वाभिभावः कुत्र दर्शितः। आलम्भनं न स्पर्शस्तत्र किन्तु हिंसा

इत्यत्र किमपि प्रमाणं न दत्तम्। विभूतिर्यस्यनो भाल इत्यादि श्लोके शिव भक्तानां विभूति रुद्राक्षधारणमावश्यकं इत्यतदेव प्रतिपादिता। नात्र निन्दा प्रसंगः। पद्म पुराणे च मोहाद्यः पूजयेदन्यान् इति मदुक्तं पतिव्रता सादृश्यमेव स्पष्ट मुक्तम्। अहो पठित्वा भवान् न जानाति। भवता त्वं शब्देन सम्बोधितोऽहमियमेव सामाजिकी सभ्यता भवता शिक्षिता।

अस्माकं ग्रन्थेषु "श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः इति समुदाये सर्वेषां श्रवणं स्पष्टमुक्तम्। सत्यार्थप्रकाशस्य अप्रमाण्यं स्वामिदयानन्देन कदापि नोद्घुष्टम्। केवलं श्राद्ध विषयकमेकं पत्रं प्रकाशितम्। सर्वेषां भवदाक्षेपाणां सयुक्ति स प्रमाणञ्चोत्तरं मया दत्तम्। तस्मात् पंचावयव वाक्य रहितः पक्षो भवदीयः। जारधर्मः सत्यार्थप्रकाशे।

"माधवाचार्यः"

धर्म संघ के चतुर्थ पत्र का हिन्दी में अनुवाद

आपके प्रथम पत्र में तीन, द्वितीय पत्र में भी तीन और तीसरे पत्र में एक अशुद्धि है। जो छपने के समय आपके पाण्डित्य को दिखलावेंगी। हमने **"आलम्भन"** पद पूछा था, आपने **"घञ्"** अन्त वाला उत्तर में कहा। ओहो आपका लघुकौमुदी ज्ञान है ? **"आत्माऽस्य जन्तोः"** इस पद से स्वस्वामिभाव कहां दिखलाया है? **"आलम्भन"** शब्द का अर्थ वहां छूना नहीं है। किन्तु मारना है इसके लिये कोई प्रमाण नहीं दिया। **"विभूतिर्यस्य नोभाले"** इत्यादि श्लोक में शिव–भक्तों के लिये विभूति तथा रुद्राक्ष धारण करना आवश्यक है इतना ही कहा गया है। यहां पर निन्दा का प्रसंग नहीं है और पद्मपुराण में **"मोहाद्यः पूजयेदन्यान्"** यह मुझसे कहे हुवे पतिव्रता के समान ही स्पष्ट कहा गया है। अहो पढ़कर भी आप नहीं जानते। आपने मुझे **"त्वम्"** तू शब्द से सम्बोधित किया है, यही आपने समाज की सभ्यता सीखी है ? हमारे ग्रन्थों में **"श्रावयेञ्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः"** यह समुदाय में सबका सुनना स्पष्ट कहा है। सत्यार्थप्रकाश की अप्रमाणिकता की घोषणा स्वामी दयानन्द ने कभी नहीं की। केवल श्राद्ध विषय का एक पत्र प्रकाशित किया था। आपके सब आक्षेपों का युक्ति तथा प्रमाण सहित मैंने उत्तर दिया। इस कारण से आपका पञ्चावयव वाक्य रहित पक्ष है। जार धर्म सत्यार्थप्रकाश में लिखित है।

"माधवाचार्य"

श्री पं० माधवाचार्यजी के इस अन्तिम पत्र का स्पष्टीकरण इस प्रकार है :–

सबसे प्रथम श्री पं० माधवाचार्य जी ने कहा कि आपके प्रथम पत्र में तीन अशुद्धि हैं, दूसरे पत्र में भी तीन और तीसरे पत्र में एक। इस अवसर पर पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिये। कि सनातनधर्मियों का यह अन्तिम पत्र था और शास्त्रार्थ के नियम के अनुसार इसका उत्तर देने का हमें अवसर नहीं मिला इसलिये हम उनके पत्र का स्पष्टीकरण करते हुये उनके लेख की निःसारता भी प्रकट करना आवश्यक समझते हैं। अशुद्धियों की संख्या मात्र लिख देना बड़ा सरल कार्य है किन्तु उनका सींग पकड़–पकड़कर गिनवाना पांडित्य की अपेक्षा रखता है। श्री पं० माधवाचार्य जी ने हमारी एक ही अशुद्धि अपने द्वितीय पत्र में बतलाई थी, इसके उत्तर में हमने आधे दर्जन के लगभग उनकी अशुद्धियें सींग पकड़–पकड़कर दिखलायीं। अशुद्धियों का विवेचन हम पृथक् प्रकरण में करेंगे। पं० माधवाचार्य जी ने लिखा है मुद्रण के अवसर पर वे अशुद्धियां हमारे पाण्डित्य की घोषणा करेंगी। इस समय तक तो **"शास्त्रार्थ"** मुद्रित नहीं हुआ, हम इसकी

प्रतीक्षा में रहे, अब हमें ही छपवाना पड़ रहा है। इसके अनन्तर आपने **"आलम्भ"** तथा **"आलम्भन"** का प्रश्न उठाया जिसका कि हम पहिले उत्तर दे चुके हैं। **"पश्वालम्भं गवालम्भं"** इत्यादि वाक्यों में भी **"गवालम्भ"** पद है **"गवालम्भन"** नहीं। उस ही की सिद्धि हमने की है– नहीं तो **"घञन्त"** की जगह **"ल्युडन्त"** कहने में क्या देरी थी ? आप फिर पूछते हैं कि **"आत्माऽस्य जन्तोः"** इसमें स्वस्वामिभाव कहाँ दिखलाया है ? हमारा उत्तर है कि **"जन्तोः"** पद में **"षष्ठी"** विभक्ति सम्बन्ध वाचक है वह जन्तु और गुहा का स्वस्वामिभाव वाला भाव ही प्रकट करती है। यदि अब भी समझ में नहीं आया तो श्री शंकर का भाष्य देखें। तदनन्तर आपने लिखा कि वहाँ पर **"आलम्भन"** का अर्थ स्पर्श नहीं किन्तु हिंसा है इसके लिए आपने कोई प्रमाण नहीं दिया। इसके उत्तर दो हैं– प्रथम तो यह कि हमने कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया था जिसमें **"आलम्भन या आलम्भ"** पद आया हो– इसलिये हमारे लिये यह आवश्यक नहीं था कि हम इसके लिये प्रमाण देते– यह तो श्री पं० माधवाचार्यजी को सिद्ध करना था कि **"आलम्भन"** शब्द का अर्थ स्पर्श है हिंसा नही। दूसरे यह कि हमने श्री वामनशास्त्री रचित **"पश्वालम्भ मीमांसा"** का प्रमाण दिया था, यदि आपको यह स्वीकार नहीं था तो यही लिखते, हमने कोई प्रमाण ही नहीं दिया यह लिखना घोर भ्रम है। हमने जो शिवपुराण का प्रमाण दिया था, उस सम्बन्ध में श्री पं० माधवाचार्यजी लिखते हैं कि इस श्लोक में शिवभक्तों के लिये विभूति और रुद्राक्ष धारण करना आवश्यक है यही बतलाया गया है, यहां निन्दा का प्रसंग नहीं है। हमारा कहना यह है कि निन्दा का प्रसंग क्यों नहीं ? जो शिवभक्त नहीं है उसे अधम अर्थात् नीच के समान त्याज्य क्यों कहा ? क्या सनातनधर्म के अनुसार जो शिव के भक्त नहीं–विभूति और रुद्राक्ष को धारण नहीं करते–वे वैष्णव क्या अधम हैं–नीच के समान त्याज्य हैं। यह हीनोपमा वैष्णवों को देना क्या निन्दा नहीं है ? पद्मपुराण वाले श्लोक के सम्बन्ध में श्री पं० माधवाचार्य जी लिखते हैं कि यह तो पतिव्रता के समान है। भाव यह है कि जिस प्रकार एक पतिव्रता नारी अपने पति ही की पूजा करना अपना कर्तव्य समझती है अन्य पुरुषों की पूजा करना नहीं इस ही प्रकार एक वैष्णव केवल विष्णु की ही पूजा करना अपना धर्म समझता है हम यह स्वीकार करते हैं कि पतिव्रता नारी का धर्म अपने पति की ही सेवा करना है, पर यह दृष्टान्त विषम है यहाँ नहीं घटता यह दृष्टान्त उपयुक्त होता यदि पद्मपुराण में केवल विष्णु की ही पूजा का विधान होता या केवल विष्णु के उपासकों की ही प्रशंसा होती, पर यहाँ केवल वैष्णवों की प्रशंसा ही तो नहीं है अपितु विष्णु भिन्न देवों वाले उपासकों की निन्दा भी है उन्हें पाखण्डी कहकर गाली दी गई है। उस नारी को पतिव्रता कौन कह सकता है जो अन्य पुरुषों को गाली देने में लज्जा भी अनुभव न करती हो। हम तो कहेंगे कि वह कुलटा है, सती नहीं है। इसलिये श्री पं० माधवाचार्य जी का उत्तर निःसार है। आपने अपने पत्र के अन्त में यह भी लिखा है जार धर्म सत्यार्थप्रकाश में है। हमें तो कहीं सत्यार्थप्रकाश में जार धर्म नहीं मिला। हाँ महाभारत में तथा पुराणों में व्यभिचारपूर्ण कथाओं की कमी नहीं है, जिनको यहां उद्धृत कर हम इस पुस्तक को गन्दी करना नहीं चाहते। इसके अनन्तर आप लिखते हैं कि **"आपने मुझे "तू" शब्द से सम्बोधित किया है, क्या यही समाज की सभ्यता आपने सीखी है ?"** यह एक विचित्र आक्षेप है जो श्री पं० माधवाचार्य जी ने किया है। संस्कृत भाषा में **"तू"** के लिये **"त्वम्"** शब्द का प्रयोग होता है जो कि **"युष्मद्"** शब्द की प्रथमा का एक वचन है, **"युष्मद्"** को ही मध्यम पुरुष भी कहते हैं। हम अपने सम्पूर्ण बल के साथ यह कहना चाहते हैं कि यदि कोई महानुभाव शास्त्रार्थ के हमारे चारों पत्रों में कहीं भी **"युष्मद्"** शब्द के एक वचन का प्रयोग दिखला दें या मध्यम पुरुष के एक वचन की किसी क्रिया का प्रयोग दिखला दें तो हम अपने आपको असभ्य तथा श्री पं० माधवाचार्य जी को सभ्य स्वीकार कर लेंगे। इससे अधिक हम कुछ नहीं कहना चाहते। हाँ इतना अवश्य है कि महाभारत में, रामायण में, पुराणों में तथा अन्य संस्कृतसाहित्य के ग्रन्थों में और दर्शनों के भाष्यों में तथा स्वतन्त्र दार्शनिक ग्रन्थों में जिस–जिस ऋषि

ने, कवि ने या सम्प्रदायप्रवर्त्तक आचार्यों ने तथा विद्वानों ने अपने से छोटे के लिए नहीं किन्तु अपने से बड़े के लिये अथवा प्रतिपक्षी के लिये **"युष्मद्"** शब्द का एक वचनान्त प्रयोग किया है अथवा मध्यम पुरूष की एक वचनान्त क्रिया का प्रयोग किया है उन्हें भी हमारे समान ही असभ्य कहना होगा। इस दृष्टि से हमारे पत्रों को देखने की इच्छा करने वाले महानुभाव का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह देख लें कि उपर्युक्त ग्रन्थों में ऐसे प्रयोग हैं अथवा नहीं ? हम उन महानुभावों को यह सूचित करना अपना कर्तव्य समझते हैं कि इन ग्रन्थों में तो ऐसे प्रयोग उन्हें इतने मिलेंगे कि वे उनकी संख्या भी नहीं कर सकेंगे और हमारे पत्रों में उन्हें एक भी ऐसा प्रयोग नहीं मिलेगा। यदि हमारा कथन सत्य सिद्ध हो जावे तो अधिक नहीं वे महानुभाव श्री पं० माधवाचार्य जी को इस सत्य भाषण (?) तथा सत्य लेखन (?) पर सप्रेम (?) साधुवाद (?) अवश्य लिख भेजें।

तदनन्तर श्री पं० माधवाचार्य जी ने हमारे **"शूद्रों को वेद श्रवणाधिकार सम्बन्धी"** प्रश्न का उत्तर दिया और लिखा कि समुदाय में सबको सुनने का अधिकार है और प्रमाण रूप से निम्नलिखित आधा श्लोक उपस्थित किया :– **"श्रावयेच्चतुरोवर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः"** यह महाभारत में शान्तिपर्व के एक श्लोक का अंश है महर्षि व्यास अपने शिष्यों को विदाई के समय आदेश दे रहे हैं कि– ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को वेद सुनावें। इस उत्तर को पाकर हम गद्गद हो उठे और सहसा हमारे मुख से निकल गया कि **"जादू वह जो सिर चढ़के बोले"**– यही है आर्यसमाज की विजय। कारण यह है कि अब तक सनातनधर्मी शूद्रों को वेद सुनने का अधिकार नहीं समझते थे, इस विषय पर आर्यसाज के साथ शास्त्रार्थ करते थे– क्योंकि आर्यसमाज का सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य जो पढ़ाने पर वेद पढ़ सकता है और समझ सकता है वह वेद पढ़ने का अधिकारी है– मनुष्यों में कोई भी अपने जन्म मात्र के कारण वेद पढ़ने का अधिकारी नहीं है। शास्त्रार्थों में तथा लेखों में अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये आर्यसमाज जो प्रमाण उपस्थित किया करता था उसे ही एक सनातनधर्मी पण्डित के मुख से सुनकर हमें प्रसन्नता क्यों न हो ? आज सनातनधर्मियों के समुदाय में शूद्रों को वेद सुनने का अधिकार न केवल लेख में स्वीकार किया है अपितु क्रियात्मक रूप से भी शतमुखकोटि होमात्मकयज्ञ में प्रदर्शित किया है, एक दिन वह भी आवेगा जब कि गुरुमुख से शूद्र वेदाध्ययन अधिकारी हैं यह भी स्वीकार किया जावेगा।*

हाँ, उस समय निम्नलिखित शंकर वाक्य की क्या गति होगी यह सनातनधर्मियों को सोचना चाहिये? वेदान्त दर्शन के **"श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च"** इस सूत्र के भाष्य के अन्त में श्री शंकराचार्य लिखते हैं **"श्रावयेञ्चतुरो वर्णान्" इति चेतिहास पुराणाधिगमे चातुर्वर्ण्यस्याधिकार स्मरणात्। वेदपूर्वक स्तु नास्त्यधिकारः शूद्राणामिति स्थितम्"**। भाव यह है कि यह जो कहा गया है कि **"चारों वर्णों को सुनावे"** उसका तात्पर्य यह है कि इतिहास पुराण के पढ़ लेने में चारों वर्णों का अधिकार है। वेदपूर्वक पढ़ने में शूद्रों का अधिकार नहीं है यह सिद्धान्त स्थिर है। श्रीशंकर ने जिस श्लोक की ओर इस वाक्य में संकेत किया है उसे ही श्री पं० माधवाचार्य जी ने प्रमाणरूप से उपस्थित किया है। श्रीशंकर का कथन है कि इस श्लोक का तात्पर्य–इतिहास पुराण के पढ़ने में है और श्री पं० माधवाचार्य कहते हैं कि केवल समुदाय में वेद सुनने का अधिकार है। हम इन दोनों में से किसे ठीक मानें ? यहां तो परस्पर विरोध है। हमारे विचार में तो ये दोनों भ्रान्त हैं– न तो यहां पुराण तथा इतिहास का वर्णन है और न समुदाय का वर्णन है। यह श्लोक तो स्पष्ट

---

*यह दिन आ चुका है क्योंकि हिन्दू–यूनिवर्सिटी–बनारस, **"कल्याणीदेवी"** को वेद पढ़ाना स्वीकार कर चुकी है।
–"हरिदत्त शास्त्री"

रूप से चारों वर्णों को वेद सुनाने की आज्ञा दे रहा है, यहां किसी प्रकार की भी अन्यथा कल्पना करना न केवल भ्रान्तिपूर्ण है अपितु महर्षि व्यास के साधिकार आदेश की निर्दयता पूर्वक हत्या करना है। तदनन्तर श्री पं० माधवाचार्य जी ने लिखा कि सत्यार्थप्रकाश की अप्रामाणिकता की घोषणा स्वामी दयानन्द ने कभी नहीं की, केवल श्राद्धविषयक एक पत्र प्रकाशित किया था। यद्यपि श्री पं० माधवाचार्य जी ने यहां पर प्रथम संस्करण की ओर संकेत नहीं किया तथापि हम समझते हैं कि उनका तात्पर्य सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण से ही था। यह अन्तिम वाक्य है जो कि श्री पं० माधवाचार्य जी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में कहा। इस प्रकार श्री पं० माधवाचार्य जी के निम्नलिखित वाक्य इस सम्बन्ध में है :–

(१) सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में **"गवालम्भ"** देखना चाहिये। **(द्वितीय पत्र में)**

(२) ओहो ! सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण आज आपने छोड़ दिया। जीते हुये दयानन्द ने जो लिखा वह यदि अप्रामाणिक है तो मरने के बाद लिखा हुआ प्रामाणिक कैसे ? **(तृतीय पत्र में)**

सत्यार्थप्रकाश की अप्रामाणिकता की स्वामी दयानन्द ने कभी घोषणा नहीं की। केवल श्राद्ध विषयक एक पत्र प्रकाशित किया था। इन बातों पर विचार करने के लिये पाठकों को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिये :–

१. सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण सन् १८७५ ई० में स्टार प्रेस, बनारस में मुरादाबाद निवासी श्री राजा जयकृष्णदास के व्यय से छपा था।

२. सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण सन् १८८४ ई० में वैदिकयन्त्रालय, प्रयाग में मुद्रित हुआ था और उसका ही पुनर्मुद्रण प्रयाग तथा अजमेर आदि नगरों में हुआ, यही वह सत्यार्थप्रकाश है जो कि ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज को मान्य है।

३. ऋषि दयानन्द का देहावसान ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० तदनुसार दीपावली संवत् १९४० विक्रमी को हुआ था।

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिये कि उसका निर्माण किस प्रकार हुआ ? यह स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि काठियावाड़ (गुजरात) में थी, इसलिये उनकी मातृभाषा गुजराती थी। उन्होंने अध्ययन संस्कृत भाषा में किया था इसलिये वे संस्कृत भाषा भी जानते थे। इन दो भाषाओं के अतिरिक्त उन्होंने कोई विदेशी भाषा अथवा भारत की प्रान्तीय भाषा भी सीखी इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसलिये ऋषि दयानन्द गुजराती तथा संस्कृत भाषायें ही जानते थे यह निश्चय है। ऋषि ने सन् १९३४ ई० में विद्याध्ययन समाप्त किया और स्वामी विरजानन्द जी से विदाई ली, उस समय से लेकर मई सन् १८७४ ई० तक उत्तर भारत में ऋषि दयानन्द संस्कृत भाषा में ही व्याख्यान देते रहे और कोई संस्कृतज्ञ विद्वान् उनके व्याख्यान का प्रान्तीय भाषा में अनुवाद किया करता था। इन ही दिनों में कलकत्ते में एक विशेष घटना हुई। २३ मार्च सन् १८७३ ई० को ऋषि ने एक व्याख्यान संस्कृत भाषा में कलकत्ते में महाशय गोराचांद के मकान पर दिया। ब्रह्मसमाज के प्रमुख नेता श्री केशवचन्द्रसेन भी उस व्याख्यान में उपस्थित थे। व्याख्यान का बंगला भाषा में अनुवाद पं० महेशचन्द्रन्यायरत्न ने किया। अनुवाद के समय संस्कृत कालेज कलकत्ता के विद्यार्थियों ने यह आपत्ति उठाई कि न्यायरत्न महोदय स्वामीजी के अभिप्राय का अन्यथा वर्णन कर रहे हैं और ऐसी बातें कर रहे हैं जो स्वामी जी ने नहीं कही। इस पर श्री केशवचन्द्रसेन

ने स्वामी जी को सम्मति दी कि वे प्रान्तीय भाषा सीखकर उसमें ही व्याख्यान दिया करें स्वामीजी ने इस सम्मति को स्वीकार कर लिया और हिन्दी भाषा सीखनी आरम्भ की। सबसे पहले स्वामी जी ने मई सन् १८७४ ई० में बनारस के अन्दर हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने का यत्न किया। इससे यह स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी महाराज उस समय तक हिन्दी भाषा नहीं जानते थे। उन दिनों श्री राजा जयकृष्णदास जी बनारस में डिप्टी कलक्टर थे। आपने स्वामीजी से अपने विचारों को पुस्तकाकार करने की प्रार्थना की, स्वामी जी ने इसे स्वीकार कर लिया, तब राजा साहिब ने पं० चन्द्रशेखर नाम के व्यक्ति को पुस्तक लिखने के लिये नियुक्त कर दिया। स्वामी जी अपनी भाषा में बोलते थे और पं० चन्द्रशेखर लिखते थे। स्वामी जी हिन्दी तो जानते ही नहीं थे अवश्य संस्कृत में बोलते होंगे, और पं० चन्द्रशेखर हिन्दी में अनुवाद करके लिखते होंगे। इस प्रकार सत्यार्थप्रकाश का निर्माण जून सन् १८७४ ई० को आरम्भ हुआ और वह सन् १८७५ ई० में बनारस में ही छपा। इसके दो वर्ष के अनन्तर अर्थात् सन् १८७७ ई० में श्री स्वामी जी एक स्थान पर मृतक श्राद्ध पर व्याख्यान दे रहे थे और उसका खण्डन कर रहे थे। इतने में ही एक व्यक्ति जनता में से ही एक पुस्तक लिखला कर बोला कि स्वामी जी ने पुस्तक में तो मृतक श्राद्ध का मण्डन किया है और व्याख्यान में खण्डन कर रहे हैं, स्वामी जी के पूछने पर उसने सत्यार्थप्रकाश दिखला दिया। स्वामी जी ने तुरन्त उत्तर दिया कि आक्षेप उचित है और लेखकों ने मेरे आशय के विरूद्ध पुस्तक में लिख दिया है। इस पर श्री स्वामी जी ने कुछ मास पश्चात् ही सन् १८७८ ई० में एक नोटिस छपवाया जो कि यजुर्वेद भाष्य के प्रथम अंक के टाइटिल (मुखपृष्ठ) पर मुद्रित हुआ। वह नोटिस इस प्रकार था :–

नोटिस

"सबको विदित हो कि जो जो बातें वेदों और उनके अनुकूल हैं, उनको मैं मानता हूँ विरूद्ध बातों को नहीं। इससे जो जो मेरे बनाए सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हुए हैं, वे उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं, उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरूद्ध का अप्रमाण मानता हूँ। जो जो बात वेदार्थ से निकलती है उन सबको प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो जो ब्रह्माजी से लेकर जैमिनीमुनि पर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूँ। और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ वें पृष्ठ की २५ वीं पंक्ति में–पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जो मर गये हैं उनका तो अवश्य करें। तथा पृष्ठ ४७ पर पंक्ति २१ में मरे हुये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि– "जीवितों की श्रद्धा सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परमधर्म है, और जो जो मर गये हों, उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता है और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुवा कि– जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम "तर्पण" और "श्राद्ध" है अन्य नहीं। इस विषय में वेद मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ वें अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।"

इस विज्ञापन से एक तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में जो अन्य ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं वे केवल उन आचार्यों के विचार प्रकट करने के लिये हैं, यदि वे वेदानुकूल हैं तो स्वामी

जी को मान्य हैं अन्यथा नहीं। यह एक सामान्य बात स्वामीजी ने कही। दूसरी विशेष बात मृतकश्राद्ध के संबंध में कही क्योंकि उस समय तक मृतकश्राद्ध का प्रकरण ही उनकी दृष्टि में आया था। यह विज्ञापन ऋग्वेद भाष्य के अंक के मुख पृष्ठ पर भी प्रकाशित हुआ था। इसके अनन्तर जिस जिस बात की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया गया उन उनके संबन्ध में भी स्वामी जी ने विज्ञापन उक्त प्रकार से ही प्रकाशित करवाये। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में जहाँ भी ऐसे लेख हैं जिन पर पं० माधवाचार्य जी ने आक्षेप किये हैं वे स्वामी जी की भाषा में नहीं– अपितु गृह्यसूत्र अथवा ब्राह्मणग्रन्थों के उद्धरणों के अनुवाद मात्र हैं, इसलिये स्वामी जी का सामान्य नियम उन पर लागू होता है। स्वामी जी उन्हें मान्य नहीं समझते–आर्यसमाज भी मान्य नहीं समझता। इसलिये पं० माधवाचार्य जी के आक्षेप का कोई महत्व नहीं है। अब सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण के संबन्ध में विचार कीजिये। श्री स्वामी जी ने इसकी भूमिका उदयपुर में भाद्रपद सम्वत् १६३६ विक्रमी में समाप्त कर दी थी जैसा कि भूमिका के अन्त में छपा है। निःसन्देह यह ग्रन्थ स्वामी जी की मृत्यु तिथि दीपावली सम्वत् १६४० विक्रमी से एक वर्ष पूर्व ही लिखा जा चुका था, और इसका मुद्रण भी बहुत कुछ स्वामी जी के जीवनकाल में ही हो चुका था। जैसा कि निम्नलिखित प्रमाणों से स्पष्ट है :–

(१) श्री स्वामी जी ने एक पत्र मुन्शी समर्थदान जी को लिखा जो कि उस समय वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के प्रबन्धक थे। वह पत्र इस प्रकार है, देखिये :–

"पत्र तुम्हारा २६ अगस्त का आया आज यहां से २४८ से लेके २७६ तक सत्यार्थप्रकाश और १८४० से लेके १६५१ तक ऋग्वेद के पत्रे भाषा बनाने के लिये भेजे हैं पहुँचने पर ज्वालादत्त को दे देना और रसीद भेज देना प्रथम सत्यार्थप्रकाश के पन्ने २५ तक तुम्हारे पास भेजे थे और तीन पृष्ठ रामसनेही के विषय के पश्चात् धरे हैं सो ४८–४६–५० अंक धरे हैं तुमको भ्रम न हो परन्तु इतना अवश्य करना कि जो वहाँ २५० पृष्ठ हैं उसके अन्त और २५८ पृष्ठ के आदि की संगति तुम मिला लेना और २५१ पृष्ठ आदि और जो अब २५० वाँ भेजा है उसकी सभी संगति मिला लेना और ११ समुल्लास की समाप्ति तक सब पन्ने भेज दिये हैं...................."

जोधपुर राज्य, (मारवाड) "दयानन्द सरस्वती"
मिति भाद्रबदि ३० सं० १६४०,

नोट–

(१) यह पत्र श्री स्वामी जी ने अपने देहावसान से दो मास पूर्व लिखा था, यह पत्र निश्चय से सिद्ध करता है, श्री स्वामी जी के जीवनकाल में ही सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण के ग्यारह समुल्लास छप चुके थे।

(२) श्री स्वामी जी महाराज ने एक और भी पत्र मुंशीसमर्थदान जी को लिखा था जो कि इस प्रकार है :–

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

एक भूमिका का पृष्ठ और ३२० से लेके ३४४ तक तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश का भेजते हैं संभाल लेना..........।

जोधपुर राज्य, (मारवाड) "दयानन्द सरस्वती"
मिति आश्विन बदि १३ शनि सं० १६४०,

नोट–

इस उपर्युक्त पत्र से यह स्पष्ट है कि ऋषि के जीवनकाल में ही सत्यार्थप्रकाश ३४४ पृष्ठ तक छप चुका था। तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास में है। यह पत्र श्री स्वामीजी ने अपनी मृत्यु से एक मास पूर्व लिखा था।

(३) स्वर्गीय श्री महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्दजी) ने श्री पं० लेखराम जी द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर श्री स्वामी दयानन्दजी का एक जीवनचरित्र उर्दू भाषा में लिखा था। उसमें एक घटना का वर्णन इस प्रकार है :–

"मैंने स्वामीजी से नया सत्यार्थप्रकाश जो इस वक्त ३६४ सफे तक छप चुका था, ठाकुर गिरधारीसिंह जी रईस के वास्ते खरीदा। और पाँच रूपये उसकी कीमत दी थी।"

(पृष्ठ आठ सौ बासठ)

यह बयान चारणनवलदान मुलाजिम राव राज्य तेजसिंह ने दिया था। यह घटना ३१ मई सन् १८८३ ई० से लेकर १६ अक्तुबर सन् १८८३ ई० तक घटी थी और श्री स्वामीजी महाराज का देहावसान ३० अक्तुबर सन् १८८३ ई० को हुआ था। इससे स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु से पन्द्रह दिवस पूर्व ही सत्यार्थप्रकाश के ३६४ पृष्ठ छप चुके थे। अब यह निर्णय करना पाठकों का कर्त्तव्य है कि क्या सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण स्वामीजी की मृत्यु के बाद लिखा गया था या उनके जीवनकाल में ही उसके ३६४ पृष्ठ मुद्रित हो चुके थे ? यह भी निर्णय करना चाहिये कि स्वामी जी का उपर्युक्त विज्ञापन क्या केवल **"श्राद्ध विषयक"** है और उसके प्रारम्भ में कोई सामान्य नियम उन्होंने अपने ग्रन्थों के सम्बन्ध में नहीं लिखा ? इतने लेख से यह स्पष्ट हो गया कि श्री पं० माधवाचार्य जी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह अप्रामाणिक है। श्री पं० माधवाचार्य जी ने यह भी लिखने की कृपा की है कि मैंने आपके सब आक्षेपों का युक्ति तथा प्रमाण सहित उत्तर दे दिया है। इसलिये आपका पक्ष पञ्चावयव वाक्य रहित होने से निर्बल है। जहाँ तक पञ्चावयव वाक्य का सम्बन्ध है हम इस विषय में पहिले लिख चुके हैं, अधिक लिखना आवश्यक नहीं। हाँ ! श्री पं० माधवाचार्य जी के इस कथन के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहिये कि आपके सब आक्षेपों का युक्ति तथा प्रमाण सहित उत्तर दे दिया है। श्री पं० माधवाचार्यजी की युक्तियों तथा प्रमाणों का अवलोकन तो आपने कर ही लिया और यह जान लिया है कि उनमें कितना बल है ? हम इस स्थल पर अपने उन प्रश्नों की ओर संकेत करते हैं जिनके संबंध में श्री पं० माधवाचार्य जी ने एक शब्द भी लिखने का साहस नहीं किया। युक्ति और प्रमाण सहित उत्तर देना तो दूर रहा।

(क) हमारे प्रथम पत्र के निम्नलिखित प्रश्नों को श्री पं० माधवाचार्य जी ने छूआ तक नहीं।

(१) वैष्णव मतानुयायी, श्री शंकराचार्य को प्रछन्न बौद्ध, शठ और महातस्कर क्यों कहते हैं ?

(२) ब्रह्मज्ञान किसके अनन्तर होता है ?

(३) आत्मा ज्ञाता है अथवा नहीं ?

(४) मुक्ति में जीव और ब्रह्म की एकता है या नहीं ?

(ख) हमने अपने तृतीय पत्र में दो प्रमाण–एक आश्वलायनगृह्यसूत्र का और दूसरा पारस्करगृह्यसूत्र का–दिया था, उन्हें श्री पं० माधवाचार्यजी ने छुआ तक नहीं।

(ग) हमने अपने चतुर्थ पत्र में स्त्रियों के वेदाधिकार के सम्बन्ध में प्रश्न किया था और पूछा था कि— जब स्त्रियों को वेदाध्ययन का सनातनधर्म के अनुसार अधिकार नहीं है तब गोधा—श्रद्धा—शची प्रभृति स्त्रियें वेदों की ऋषि कैसे हैं ? इस प्रश्न को भी श्री पं० माधवाचार्यजी ने छुआ तक नहीं।

इस रीति से हमारे सात प्रश्न ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में श्री पं० माधवाचार्य जी ने अपनी लेखिनी को थोड़ा—सा भी कष्ट नहीं दिया। हाँ, हमने भी उनके एक प्रमाण का उत्तर नहीं दिया वह है उनके प्रथम पत्र में लिखित एक श्लोक "**अचिन्त्यस्या प्रमेयस्य निर्गुणस्या शरीरिणः। उपासकानां सिद्धयर्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना**" पं० माधवाचार्यजी ने इसे वेद के नाम से लिखा है, जबकि यह चारों वेदों में मौजूद नहीं है। हम नहीं कह सकते कि यह श्लोक कहां का है ? इसलिये हमने इसे किसी अनार्ष ग्रन्थ का पद्य समझ कर इसका उत्तर नहीं दिया।

।। इतिशम् ।।

उपसंहार

शास्त्रार्थ के अपने अन्तिम पत्र को सुना चुकने के अनन्तर श्री पं० माधवाचार्य जी ने आर्यसमाज से ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों की वैदिकता के सम्बन्ध में यज्ञ के मण्डप में ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की। हमारी ओर से सामयिक प्रधान "**श्री पं० रामचन्द्रजी देहलवी**" ने उत्तर दिया कि हमारे सिद्धान्तों पर यहाँ शास्त्रार्थ करना आपको शोभा नहीं देता, क्योंकि हम आपके अतिथि हैं। हमें खिलाने के स्थान पर आप हमारा ही हिस्सा खाना चाहें यह अच्छी बात नहीं। (करतल ध्वनि) आप जब हमारे स्थान पर पधारेंगे और हमारे अतिथि होंगे तब आर्यसमाज के जिस विषय पर आप शास्त्रार्थ करना चाहेंगे कर सकेंगे। आर्य समाज मन्दिर दीवानहाल आपके स्वागत के लिये विद्यमान है। आप भी यहीं रहते हैं और हम भी। यदि आप चाहते हैं कि इसी स्थान पर और शास्त्रार्थ हो तो आप अपने ही किसी अन्य सिद्धान्त की परीक्षा का हमें अवसर दें, जिससे इतना बड़ा यज्ञ जो किया गया है वह विशेष सार्थक हो। श्री पं० माधवाचार्यजी इस बात के लिये सहमत न हुए और अन्त में दोनों पक्षों की ओर से एक दूसरे को धन्यवाद देकर सभा की समाप्ति की घोषणा की गयी।

सनातनधर्मी पण्डितों का ज्ञान

सनातनधर्मियों की ओर से जो शास्त्रार्थ की घोषणा प्रकाशित हुई थी, उसका उत्तर लिखते हुए हमने अपनी "**प्रतिध्वनि**" के ग्यारहवें पद्य में "**घोषणा**" की कुछ अशुद्धियों की ओर संकेत किया था। भाव यह था "**महाधिवेशन—आस्नाय—प्राकृता**" पद अशुद्ध हैं। और "**मण्डल—धर्म नगर**" प्रभृति शब्द पद शून्य होने से अशुद्ध हैं। हमारी प्रतिध्वनि का उत्तर देते हुए "**प्रतिध्वनि ध्वान्त विध्वंसनम्**" के सप्तम श्लोक के उत्तरार्द्ध में सनातनधर्मियों ने लिखा कि मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियों का उल्लेख करना पाण्डित्य का कारण नहीं। ठीक है, हम भी कहते हैं कि मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियें हो ही जाती है, हमने इन अशुद्धियों की ओर संकेत अपने पाण्डित्य को प्रदर्शित करने के लिये नहीं किया था, किन्तु केवल इसलिये कि जो महानुभाव सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों की छापे की भूलों की ओर संकेत कर ऊधम मचाते हैं वे एक पृष्ठ भी शुद्ध नहीं मुद्रित करा सकते। हमारा विचार है कि "**महाधिवेशन—आस्नाय—वादोऽपम्**" प्रभृति छापे की भूलें हो सकती हैं। किन्तु "**मण्डल—धर्मनगर**" प्रभृति शब्दों की पद्शून्यता मुद्रण सम्बन्धी भूल नहीं है। "**विध्वंसन**" के अष्टम पद्य में आप लिखते हैं कि छन्दों की संकरता तथा लघुता से युक्त और गौरव रहित—व्याकरण से अशुद्ध तथा

पण्डितों से निन्दित आपका पत्र छत्रांक (सांप की छतरी) ही है। इस पद्य में हमारी किसी भी भूल की ओर संकेत नहीं है, केवल अनिश्चित बात कही गई है। इस ही प्रकार अपने भाषा के लेख में भी केवल यह लिखकर सन्तोष कर लिया गया है कि छन्दों व्याकरण सम्बन्धी ३२ पर्वतायमान अशुद्धियें हैं। हमें शौक है कि इस अवसर पर सनातनधर्म के उद्भट विद्वान् दर्जनों की संख्या में उपस्थित थे वे हमारे पत्र की पर्वतायमान ३२ अशुद्धियों में से एक की ओर भी संकेत न कर सके। आश्चर्यम् ? महदाश्चर्यम् ? यदि हमारी अशुद्धियों की ओर संकेत किया गया होता तो या तो हम उनका समाधान करके सनांतनधर्मियों के पाण्डित्य की पोल खोल देते या अपनी अशुद्धि स्वीकार कर लेते। हमें दुःख है कि सनातनधर्मियों ने हमें यह अवसर नहीं दिया।

(१) हमारे द्वितीय पद्य का द्वितीय पाद इस प्रकार है :– **"मिथ्यारीति कपोलकल्पित पुराणाद्यैरूपबृंहितम्"** यह शार्दूल विक्रीडित छन्द है। इसका लक्षण इस प्रकार है **"सूर्याश्वैर्मसजस्तताः स गुरवः"** अर्थात् जिस छन्द में क्रम से मगण, सगण, जगण, तगण, नगण और गुरू हो तथा बारह और सात वर्णों पर **"यति"** हो वह **"शार्दूल"** छन्द है। इस लक्षण के अनुसार इस पाद में एक भूल है। वह यह कि यहां पर **"यति"** बारहवें अक्षर पर होनी चाहिये जो नहीं है। इस आक्षेप के सम्बन्ध में हमारा यह वक्तव्य है कि इस पाद में **"यति"** भंग अवश्य है। किन्तु यह दोष बड़े–बड़े कवियों के पद्यों में है अतः नगण्य है।

(२) देखिये गंगालहरी के चतुर्थ पद्य का चतुर्थ पाद इस प्रकार है :– **"निराधारोहारोदिभि कथम केबामिहपुरः"** यह शिखरणी छन्द है इसमें छः और ग्यारह वर्णों पर **"यति"** होनी चाहिये–छठा वर्ण **"रो"** है– इसलिये यहां **"यति"** भंग है।

गंगालहरी के सप्तम पद्य का तृतीय पाद इस प्रकार है :– **"मृगास्तावद्वैमानिक शतसहस्त्रैः परिवृताः"** यह शिखरिणी है। छठे वर्ण **"मा"** पर **"यति"** होनी चाहिये जो नहीं है। इसलिये यहाँ भी **"यति"** भंग है।

ये दो उदाहरण पण्डितराज जगन्नाथ के हैं। रघुवंश के चौदहवे सर्ग के चालीसवें पद्य का उत्तरार्द्ध है:– **"छाहाहि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमत प्रजाभिः"**

यहां पर तृतीय पाद की समाप्ति **"त्वे"** पर होती है किन्तु पद पूरा नहीं होता, इसका शेष भाग चतुर्थ पाद में चला जाता है। यह है **"यति"** भंग का उदाहरण, जो कवि कुल शिरोमणि कालिदास का है।

(३) हमारी प्रतिध्वनि के सप्तम पद्य में पूर्वार्द्ध **"शार्दूलविक्रीडित"** का है और उत्तरार्द्ध **"स्त्रग्धरा"** का है। हमने जानबूझकर इस विचित्र छन्द की सृष्टि की है, पाठक विचारें।

(४) हमारे **"विध्वंसन मोहनाशनम्"**, के नवम पद्य में पाठ है **"व्यासोऽलं सर्ववादिनाम्,"** कोई कह सकता है कि यहां **"अलम्"** के योग में चतुर्थी होनी चाहिये, षष्ठी नहीं। शंका ठीक है, पर यहां पर **"पराजयाय"** इस चतुर्थ्यन्त पद अध्याहार करना चाहिये। अर्थात् **"व्यासः सर्ववादिनां पराजयाय अलम्"**। इसके अनन्तर हम शास्त्रार्थ के पत्रों पर विचार आरम्भ करते हैं। हमने अपने प्रथम पत्र में **"ह्वेपन्ते"** क्रिया का प्रयोग किया। श्री पं० माधवाचार्य जी ने अपने द्वितीय पत्र में इसकी ओर संकेत करते हुए लिखा था कि आपका कहा हुआ **"ह्वेपन्ते"** साहित्य का परिचायक है। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि इस पद में साहित्य सम्बन्धी कैसे भूल है ? हाँ, व्याकरण सम्बन्धी कही जा सकती है। हम शीघ्रता में लिखने के कारण **"य"** लिखना भूल गये। पद होना चाहिये **"ह्वेपन्ते"**। तत्वबोधिनीकार ने **"अर्त्ति ह्वीव्ली री क्नूयी क्ष्माय्यातां**

पुङ्णौ" इस सूत्र की व्याख्या करते हुए "**ह्रपयति**" रूप तो लिखा ही है। "**णिचश्च**" इस सूत्र से वैकल्पिक आत्मनेपद होने पर "**ह्रेपयन्ते**" रूप बन जायेगा। इस एक भूल के अतिरिक्त श्री पं० माधवाचार्य जी ने हमारी और कोई भूल नहीं पकड़ी। शीघ्रता के कारण हमारे पत्रों में और भी भूलें हो गई हैं–जो न तो व्याकरण सम्बन्धी है और न साहित्य सम्बन्धी। केवल कहीं–कहीं अक्षर टूट गये हैं तो भी उनका निर्देश हम स्वयं इस स्थल पर किये देते हैं।

प्रथम पत्र

हमारे पत्र में "**ह्रेपन्ते**" में "**य**" छूट जाने के अतिरिक्त और कोई अशुद्धि नहीं है।

द्वितीय पत्र

हमारे दूसरे पत्र में भी एक अशुद्धि है। वहाँ पाठ है "**भ्रान्तिरोप्यते**", होना चाहिये था "**भ्रान्तिरारोप्यते**" यहां पर "**रा**" छूट गया है।

तृतीय पत्र

हमारे तृतीय पत्र में कोई अशुद्धि नहीं है।

चतुर्थ पत्र

हमारे चतुर्थ पत्र में लेख है "**यदान श्रुति गोचरा**" यहाँ पर विशेष्य छूट गया है। पाठ इस प्रकार होना चाहिये "**यदा न त्रयी श्रुति गोचरा**"।

उपर्युक्त अशुद्धियों के अतिरिक्त हमारे शास्त्रार्थ के चारों पत्रों में कोई भी और अशुद्धि नहीं है। हाँ, "**वाक्ये सा विवक्षामपेक्षते**" इस संहिता विषयक नियम के आश्रय से कहीं–कहीं खर् और अवसान के न होने पर भी हमने विसर्ग लिखे हैं और श्री पं० माधवाचार्य जी ने भी लिखे हैं। इसलिये अपनी या उनकी ऐसी अशुद्धियों की ओर कोई संकेत नहीं किया है।

सनातनधर्मियों के पत्रों की अशुद्धियाँ

शास्त्रार्थ के समय भी हमने श्री पं० माधवाचार्य जी के पत्रों की अशुद्धियों की ओर संकेत किया था पर उन्होंने उनका कोई समाधान नहीं किया, केवल यह कहकर सन्तोष कर लिया कि आपके प्रथम पत्र में तीन और दूसरे पत्र में तीन और तीसरे पत्र में एक अशुद्धि हैं। चतुर्थ पत्र के सम्बन्ध में आप मौन रहे। यदि हम दुर्जनतोषन्याय से यह मान भी लें कि पं० माधवाचार्यजी का कथन सत्य है तो भी हमारे पत्रों में केवल सात अशुद्धियें हैं–जोकि वास्तविकता के विरूद्ध हैं। अब हम यहां पर पं० माधवाचार्य जी के पत्रों की अशुद्धियों को सींग पकड़–पकड़ कर गिनवाते हैं।

प्रथम पत्र

(१) **तच्छात्र पद्धति** = लिखना चाहिये था–**तच्छास्त्र पद्धति**, इस पर हम पहिले टिप्पणी लिख चुके हैं।

(२) **विरुद्धं अतः** = लिखना चाहिये था–**विरुद्धमतः**–यहां **"मोऽनुस्वारः"** से अच् परे होने पर अनुस्वार नहीं हो सकता।

(३) **प्रादिपादितः** = लिखना चाहिये था–**प्रतिपादितः**।

(४) **सिध्यर्थम्** = लिखना चाहिये था– **सिद्ध्यर्थम्**।

(५) **एवमेवा जीवस्य** = लिखना चाहिये था–**एकमेव जीवस्य**।

(६) **वहुधा** = लिखना चाहिये था–**बहुधा**।

(७) **विभुत्वं मणुत्वं च** = होना चाहिये था–**विभुत्वमणुत्वं च**।

(८) **पृछयते** = लिखना चाहिये था– **पृछ्यते**।

(९) **माधवाचार्य** = लिखना चाहिये था–**माधवाचार्यः** अथवा **माधवाचार्यस्य** (द्वितीय पत्र)।

(१०) **पुनर्णणः** = लिखना चाहिये था–**पुनर्णवः**।

द्वितीय पत्र

(११) **अथव** = लिखना चाहिये था– **"अथर्वणि"** क्योंकि यह शब्द अकारान्त नहीं है किंतु नकरान्त अथर्वन् शब्द है, इसका सप्तमी के एक वचन में **"अथर्वणि"** रूप होता है।

(१२) **प्रपितः** = लिखना चाहिये था– **प्रापितः**।

(१३) **न दर्शितः** = लिखना चाहिये था– **"न दर्शितम्"** **"सामान्ये नपुंसकम्"** इस नियम से नपुंसकलिंग का प्रयोग होना चाहिये था।

(१४) **कृतः किंभवतः** = लिखना चाहिये था– **"कृतः किं भवता"** यहां कर्त्ता में तृतीया होनी चाहिये षष्ठी नहीं।

(१५) **इन्द्रो मायाभि इत्यत्र** = लिखना चाहिये था– **"इन्द्रोमायाभिरित्यत्र"** यहां रेफ लोप नहीं हो सकता।

(१६) **इन्द इति** = लिखना चाहिये था– **इन्द्र इति**।

(१७) **स्वस्करणे** = लिखना चाहिये था– **"संस्करणे"**।

(१८) **गवालाम्भोऽवलोकनीयः** = लिखना चाहिये था– **"गवालम्भोऽवलोकनीयः"**।

(१९) **अस्माकं ग्रन्थेषु यदा भवन्तः प्रमाणं वदिष्यन्ति** = लिखना चाहिये था– **"ग्रन्थेभ्यः"** क्योंकि अपादान में पञ्चमी होती है सप्तमी नहीं।

(२०) **माधवाचार्य** – देखों नं० ९।

तृतीय पत्र

(२१) **विद्वत्वात्** = लिखना चाहिये था– **विरुद्धत्वात्**।

(२२) **तस्या साधनं न कृतम्** = लिखना चाहिये था– "**तस्य साधनं न कृतम्**" पुलिंग "**तद्**" शब्द का षष्ठी के एक वचन में "**तस्य**" रूप बनता है "**तस्या**" नहीं।

(२३) **निग्रहस्थानानुयोग अद्यापि** = लिखना चाहिये था– "**निग्रहस्थानानुयोगोऽद्यापि**"।

(२४) **इन्द्रो मायाभिर्** = लिखना चाहिये था– "**इन्द्रो मय्याभिर**"।

(२५) **धर्म धर्म्मणोरभेदात्** = लिखना चाहिये था– "**धर्मधर्मिणोरभेदात्**"।

(२६) **संस्करणं अद्य** = लिखना चाहिये था– "**संस्करणमद्य**"।

(२७) **यल्लिखित** = लिखना चाहिये था– "**यल्लिखितम्**"।

(२८) **हनन वेति** = लिखना चाहिये था– "**हननं वेति**"।

(२९) **माधवाचार्य्य** = देखों नं० ६।

चतुर्थ पत्र

(३०) **यस्य ना भाले** = लिखना चाहिये था– "**यस्य नो भाले**"।

(३१) **आवश्यकं इत्वत देव प्रतिपादिता**। इस वाक्य में तीन भूल हैं।

प्रथम तो "**मोऽनुस्वारः**" की प्रवृत्ति नहीं, अनुस्वार करना भूल है।

दूसरे "**इत्यतावदेव**" अशुद्ध है– लिखना चाहिये था– "**इत्येतावदेव**" अथवा **इत्येतदेव**।

तीसरे **प्रतिपादिता**– यहाँ स्त्रीलिंग का प्रयोग प्रामादिक हैं, "**सामान्ये नपुंसकम्**" इस नियम से नपुंसक लिंग का प्रयोग "**प्रतिपादितम्**" लिखना चाहिये था।

(३२) **सम्बोधितोऽहं मियमेव** = लिखना चाहिये था– **सम्बोधितोऽहमियमेव**। अनुस्वार और "**म्**" दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते।

यह कुछ अशुद्धियें नमूने के रूप में दिखलाई हैं। हम इस चिन्ता में हैं कि सनातनधर्म के महोपदेशक श्री पं० माधवाचार्य जी के इस अलौकिक तथा अश्रुत पूर्व पाण्डित्य को इनके लिए उत्तरदायी ठहरावें जिनके पाण्डित्य के भय से सजीव बेचारे आर्यसमाजी पण्डितों का तो कहना ही क्या जड़ पत्थर भी रोने लगते हैं और वज्र का हृदय भी पिंघल जाता है, या उन महानुभाव पण्डितों को ठहरावें जो कि शतमुखकोटि होमात्मकयज्ञ में तथा धर्मसंघ के तृतीयाधिवेशन में दिल्ली पधारे थे और जिन्होंने श्री पं० माधवाचार्य को शास्त्रार्थ करने के लिए अपना प्रतिनिधि चुना था। क्या इसी लोक विश्रुत (?) तथा अगाध पाण्डित्य (?) के भरोसे पर संस्कृत भाषा में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने का हठ किया गया था ? और हमसे संस्कृत भाषा में लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने की असमर्थता सुस्पष्ट शब्दों में लेखबद्ध मांगी गई थी।

।। इति शम्।।

एक सौ उन्नतीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : (धर्मशाला) फाफामऊ, जिला प्रयाग (उ0प्र0)

दिनांक : ६ सितम्बर सन् १६३४ ई0

विषय : क्या "शिवलिंग" शिवजी की मुत्रेन्द्रिय नहीं है ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य, कटरा (प्रयाग)

आर्यसमाज की ओर से मध्यस्थ : श्री पण्डित रामदत्त जी शास्त्री,
उपदेशक–
(आर्यसभा–प्रयाग)

सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित हनुमतदत्त त्रिवेदी, इस्माइलगंज, (प्रयाग)

सनातनधर्म की ओर से मध्यस्थ : श्री पं0 जयकिशोर, व्याकरणाचार्य, तीर्थ,
वेदान्त शास्त्री, साहित्य निस्नातिशूरिः

शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता : श्री महाशय बनारसीलाल अग्रवाल, साकिन
: इस्माइलगंज, जिला प्रयाग,
: तथा प्रशासनिक–सुरक्षाकर्मी

नोट– यह उपर्युक्त प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री, **"श्री श्यामकिशोर आर्य"** सिद्धान्त शास्त्री निवासी–३०७/२२०ए/3, चौखण्डी–कीटगंज, इलाहाबाद (उ0प्र0) द्वारा प्राप्त हुई, जिनके हम हृदय से आभारी हैं ! वैसे इस शास्त्रार्थ को सन् १६४६ ई0 में तीसरी बार– ट्रैक्ट विभाग, आर्यसमाज–चौक, (प्रयाग) ने प्रकाशित किया था !

निवेदक –

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

हिन्दु जनता में शिवलिंग की पूजा का बड़ा प्रचार है। परन्तु बहुत कम भाई यह जानते हैं कि – **"शिवलिंग पूजा"*** क्या है? यह कब से आरम्भ हुई? यदि वे भाई इस शिवलिंग पूजा के तत्व को समझ जावें तो वे इस घृणित कर्म (पूजा) को तत्काल छोड़ देंगे !

यहाँ पर हमारे पौराणिक भाई अपनी मुफ्त की दाल–रोटी मारने तथा अय्याशी व मौजमस्ती के चक्कर में इस तरह के कुकृत्य करवाकर तथा उनके सम्बन्ध में पुराणों की दुहाई दे–देकर जगह–जगह इसका प्रचार किया करते हैं, तथा आर्य समाज को भर पेट गाली दे–देकर अपने मन की भड़ास निकाला करते हैं, क्योंकि आर्य समाज उनके रास्ते का रोड़ा(रूकावट) है, वह सच्ची बात कहता है, इन पाखण्डियों की पोल खोलता है। इन लोगों से यत्र–तत्र सैद्धान्तिक टकराव भी होता रहता है परन्तु इन्हें सिद्धान्त वा शास्त्रों से क्या मतलब? बस अपना उल्लु सीधा होना चाहिये ! और मैं अधिक क्या कहूँ भारत की जनता भी इतनी नासमझ है कि वह भी अपना उद्धार इन्हीं पाखण्डियों के द्वारा लुट–पिट कर होना मानती है।

शिवलिंग पूजा पर यहां एक विवाद छिड़ गया, तब कुछ पौराणिक तो उसे दबाने में लग गये, परन्तु हम लोग चाहते थे कि इनकी यह सब करतूतें सार्वजनिक रूप में जनता के समक्ष आनी चाहियें। इसी भाव को लेकर हमने उस सुलगी हुई आग को हवा दी, हमने अपने कई साथियों को पौराणिक समुदाय का हितैषि बनाकर उनके साथ जोड़ा, तो उन लोगों ने उनको हिम्मत बधाई तथा इस विषय पर शस्त्रार्थ करने के लिए तैयार कर लिया। बस ! फिर क्या था? हमारा प्रयोजन सिद्ध हो गया, हम लोगों ने आनन–फानन में अपनी समाज में सभा कर सभी विशिष्ट व्यक्तियों को इकट्ठा किया, और उसमें शास्त्रार्थ सम्बन्धी सभी नियम व निर्देश एवं शास्त्रार्थ की पूर्ण योजना तैयार की गयी स्थानीय पुलिस अधिकारियों को भी इसकी सूचना दी गयी, जहां से हमें भरपूर सहयोग देने का आश्वासन प्राप्त हुआ।

तदनन्तर यह क्रम धीमी गति से चलता रहा, अन्त में दिनांक ६ सितम्बर सन् १६३४ ई0 को वह शुभ घड़ी आ ही गई जिसका हम लोगों को इन्तज़ार था ! हुआ यूँ कि हमने एक इश्तहार तारीख ८ सितम्बर को नगर में बँटवा दिया जो इस प्रकार था–

---

*हमारे द्वारा प्रकाशित तथा खण्डन मण्डनात्मक ग्रन्थों के यशस्वी प्रणेता **"श्री डा0 श्रीरामजी आर्य"** द्वारा लिखित– **"शिवलिंग पूजा क्यों?"** इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने हेतु अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। प्रकाशन से मंगवाकर अवश्य पढ़ें !

निवेदक –

"लाजपत राय अग्रवाल"

सनातनधर्मी भाइयों को शास्त्रार्थ के लिए खुला चैलेंज

विषय – क्या **"शिवलिंग"** शिवजी की मुत्रेन्द्रिय नही है ?

काफी समय से इस विषय पर वार्तालाप चल रहा है, परन्तु हमारे सनातनधर्मी विद्वान श्री पण्डित हनुमतदत्त त्रिवेदी (निवासी– इस्माइलगंज) प्रयाग आज तक शास्त्रार्थ के लिए उद्यत्त नही हुए, अगर वह कल दिनांक ६ सितम्बर तक उपस्थित नही हुए तो उनको हारा हुआ समझा जावेगा।

नोट– शास्त्रार्थ में यह शर्त रहेगी कि– अगर श्री पण्डित हनुमतदत्त जी ने शिवलिंग को मुत्रेन्द्रिय साबित नही होने दिया तो श्री पण्डित प्रभुदयाल जी आर्य को सनातनधर्मी बनना पड़ेगा। अन्यथा श्री पण्डित हनुमतदत्त जी को आर्यों का धर्म स्वीकार करना होगा।

निवेदक –

"महाशय प्रभुदयाल आर्य"
(अवैतनिक उपदेशक)
द्वारा– श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा, संयुक्त प्रान्त
आर्य भवन– 458 कटरा (प्रयाग)

उपरोक्त इश्तहार के देखते ही मानो जैसे सनातनधर्मियों में आग सी लग गयी, और वह 20–25 व्यक्ति 8 ता0 की सायं ही धर्मशाला **"फाफामऊ"** में आ धमके। जहाँ उस समय समाज का प्रचार कार्य चल रहा था। उस समय उनके जोश का ठिकाना नही था, परन्तु उनकी नियत शास्त्रार्थ करने की नही बल्कि गालियां देकर अपमानित करने की थी ! परन्तु उसी समय ऐसी कुछ स्थिति बनी कि अगले दिन दिनांक 9 सितम्बर को शास्त्रार्थ होना निश्चय हो गया ! स्थान भी तय(निश्चित) हो गया, स्थानीय पुलिस को भी इस अगले दिन की शास्त्रार्थ योजना के बारे में इत्तला दे दी गयी !

अब भाइयों ! अगले दिन क्या हुआ ? आप खुद ही पढ़िये ! तथा इस शास्त्रार्थ का क्या प्रभाव पड़ा ? यह भी आपको इस शास्त्रार्थ के अन्त में पढ़ने को मिलेगा !

वैदिक धर्म का सेवक–
"प्रभुदयाल आर्य"

शास्त्रार्थ आरम्भ

नोट – इस आयोजन के लिए प्रथम तो सभी अधिकारियों को नियुक्त किया गया, जिनके नाम शास्त्रार्थ के मुख पृष्ठ पर दिये गये हैं, तथा पुलिस का अच्छा प्रबन्ध था, श्रोताओं की संख्या भी पांच सौ से कम नहीं थी, जो अधिकतर ग्रामीण जनता थी, शास्त्रार्थ लगभग दो घंटे तक चला जिसमें किसी तरह की कोई गड़बड़ी नही हुई। शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता श्री महाशय बनारसीलाल अग्रवाल, साकिन,इस्माइलगंज, जिला प्रयाग नियत्त किये गये, उन्हीं के आदेश पर मुझे ही प्रथम बोलने के लिए कहा गया–

श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य –

(वेद मन्त्रोच्चारण .... के बाद) उपस्थित विद्वत समुदाय एवं मंचाशीन अधिकारीगण एवं मेरे प्रिय श्रोताओं ! आज वह घड़ी आ गयी है जिसका हमें काफी समय से इन्तज़ार था, आप लोगों को भी इससे काफी बातों का पता लगेगा कि आखिर **"शिवलिंग"** क्या है? इसकी पूजा क्यों की जाती है ? तथा यह परम्परा कब से आरम्भ हुई ? इस विषय में हमारे शास्त्र क्या कहते हैं ? आप लोग अगर शान्ति बनाये रखोगे तो सभी को अपार लाभ होगा। यह ज्ञान का अखाड़ा है, आज दूध का दूध और पानी का पानी होकर रहेगा, तथा हम सभी का आज से यह कर्त्तव्य होगा कि आज के शास्त्रार्थ में शास्त्रों के द्वारा जो भी निर्णय होगा, हम सभी उसी के अनुसार चलेगें, उसके विपरीत कदापि नही !

अब सर्वप्रथम मैं अपने प्रतिद्वन्दी के रूप में खड़े हुए श्री पण्डित हनुमतदत्त त्रिवेदी जी से यह पूछना चाहुंगा कि– यदि **"शिवलिंग"** मुत्रेन्द्रिय नही है तो उसका मुत्रेन्द्रिय का आकार क्यों बनाया जाता है? और **"जलहरी"** (जल हरने वाली) में जो योनि का चिन्ह है उसमें उसका प्रवेश क्यों किया जाता है? देखिये– **"शिवपुराण के पृष्ठ ६८ कोटि रूद्र संहिता ४ अध्याय १२ भाषा के श्लोक ३ से ४८ तक रूद्र अध्याय"** (वैंक्टेश्वर प्रेस) मेरे हाथ में मौजूद है, मैं इसमें से कुछ अंश जो **"दारूबन की कथा"** के नाम से प्रसिद्ध है, का केवल हिन्दी अनुवाद (१) पढ़कर सुनाता हूँ, सभी लोग ध्यानपूर्वक सुनें–

(१) तुमने जो कहा कि लोक में **"लिंग पूजन"** किया जाता है यह क्या कारण है?

(२) **सूत जी बोले**– हे ऋषि श्रेष्ठों मैने कल्पभेद से अनेक प्रकार की कथा सुनी है, सो कहता हूँ।

(३) जो दारूबन में कथा हुई है वह ब्राह्मणों की कथा सम्यक् प्रकार से सुनाता हूँ, जैसे मैने सुना है वैसे ही आप भी सुनिये।

(४) हे ऋषि श्रेष्ठ ! सुन्दर दारूबन में शिवभक्त ध्यानी ब्राह्मण रहा करते थे।

(५) वे त्रिकालों में निरन्तर शिवजी की पूजा करते रहते थे। और हे ऋषियों ! वे ब्राह्मण अनेक प्रकार के स्त्रोत पाठ करते थे।

(६) इस प्रकार ध्यानमार्ग में परायण हो शिवजी की सेवा करते थे, उसी के अनन्तर एक समय ऐसा आया जब वह ब्राह्मण (देवयज्ञ) हेतु समिधा लेने को बन(जंगल) में गये।

---

(१) पुराणों का मूल पाठ (संस्कृत) पुस्तक के अन्त में दिया गया है, पाठक वृन्द वहाँ देख सकते हैं !

– **"लाजपत राय अग्रवाल"**

(७) उसी दौरान उन ब्राह्मणों की अनुपस्थिति में अवसर पाकर साक्षात् शिवजी शिव रूप धारण कर उनकी परीक्षा के निमित्त वहाँ पर आये।

(८) दिगम्बर, तेजस्वी, विभूतिभूषण धारण किये कटाक्षयुक्त चेष्टा किये हाथ में लिंग लिये।

(९) स्त्रियों के मन मोहित करते हुए स्वयं भगवान शिव वहाँ आये, उनको इस अवस्था में देखकर ऋषि पत्नियाँ बहुत ही त्रसित हुई।

(१०) विह्वल और विस्मित हो उस स्थान में आई और वे हस्त (हाथ) में धारण करके एक दूसरे को आलिंगन करने लगी।

(११) और ब्राह्मणों (ऋषियों) के बन में चले जाने पर उनकी पत्नियाँ उस शिव के लिंग को हाथों से पकड़कर परस्पर प्रेम से आलिंगन करने लगी ! इसी प्रकार उस आलिंगन से वे सभी ऋषि पत्नियाँ अत्यन्त प्रसन्न हुई तभी इसी बीच वन में गये ऋषि लोग समिधा लेकर वापिस आ गये।

(१२) और अपनी–२ स्त्रियों की यह विरूद्धवृत्ति देखकर वे ऋषि महाक्रोधित हुए। तथा अत्यन्त दुखित होते हुए आपस में वार्तालाप करने लगे कि आखिर यह दूषित कर्म करने वाला व्यक्ति कौन है?

(१३) जब ऋषियों की बात का उस व्यक्ति(शिवजी) ने कोई प्रत्युत्तर नही दिया तब वे ऋषि उस पुरूष से बोले कि– तुम यह क्या वेदविरूद्ध कार्य करते हो?

(१४) तब ऋषियों ने उस पुरूष को शाप दिया कि– यह तुम्हारा लिंग कटकर भूमि पर गिर पड़े, उन ऋषियों के ऐसा कहते ही उस पुरूष(शिवजी) का लिंग कटकर भूमि पर पतित हो गिर गया, परिणाम स्वरूप जो कुछ भी उस स्थान पर मौजूद था जहां पर लिंग गिरा था, वहाँ की सभी वस्तुएं उस अग्नि स्वरूप लिंग के कारण दग्ध(जलने) होने लगी।

(१५) और तब एक ऐसी विचित्र स्थिति पैदा हो गयी कि वह (अग्निरूप) लिंग जहां–२ गया वहीं–२ उसने उस जगह पर मौजूद समस्त वस्तुओं को जलाकर राख करने लगा।

(१६) तीनों लोकों(पाताल, स्वर्ग, पृथ्वी) में उस अग्नि रूप लिंग ने आग लगा दी, वह कहीं पर भी स्थिर नहीं रह सका !

(१७) इस स्थिति को देखते हुए वे ऋषि जिन्होंने उस पुरूष को शाप दिया था, अत्यन्त व्याकुल एवं दुखित होने लगे।

(१८) यहाँ तक कि वह देवता ऋषि उस पुरूष(शिवरूप) को न पहचान कर अनभिज्ञता में, घबराये हुए अत्यन्त व्याकुल दशा में ब्रह्मा जी की शरण में गये।

(१९) और वहाँ जाकर ब्रह्मा जी से यह सारा वृतान्त सुनाया, तब ब्रह्मा जी उन ऋषि श्रेष्ठों से बोले।

(२०) ब्रह्मा जी ने उन ऋषियों से कहा कि– तुम सब मिलकर तथा जानबूझकर यह गर्हित कार्य कर रहे हो। और जब तुम जैसे ऋषि श्रेष्ठ भी ऐसा कार्य करेंगे तो फिर अन्य न जानने वालों(सामान्य व्यक्तियों) की क्या बात कहें?

(२१) ब्रह्मा जी बोले– भला देव शंकर से दुनिया में विरोध पैदा करके कोई सुखी रह सकता है? कदापि नहीं ! जो कोई साधारण अतिथि भी अपने यहाँ आवे और हम उस आने वाले का अपमान कर दें तो वह अतिथि अपने पाप हमारे यहां छोड़कर हमारे पुण्य लेकर वापिस चला जाता है।

(२२) और फिर उस शिवजी की तो बात ही क्या है?

(२३) जब तक यह लिंग स्थिर नहीं होगा तब तक त्रिलोक का मंगल नही होगा, इसमें किन्चित भी सन्देह नहीं, मैं सत्य कहता हूँ। ऐसे वचन ब्रह्मा जी ने उन ऋषियों से कहे।

(२४) और आपको भी वही अभिप्रेत है जिससे यह सकल जगत् स्वस्थ हो। ब्रह्मा जी के ऐसा दिशा निर्देश देने पर वहां उपस्थित वे सभी ऋषि श्रेष्ठ हाथ जोड़कर ब्रह्मा जी से बोले– भगवन् अब आप ही हमें आज्ञा दीजिये कि इस संकट की घड़ी में हमारे लिए क्या आज्ञा है?

(२५) उन ऋषियों के द्वारा ऐसी विनती करने पर ब्रह्मा जी बोले तुम गिरिजा देवी(पार्वती) की प्रार्थना व आराधना करो।

(२६) कि वे योनि रूप हो जायें, जिससे वह अग्निरूप लिंग स्थिर हो जाये, जब तक देवी प्रसन्न न हो जाये तब तक तुम ऐसा ही करते रहो।

(२७) देवी के प्रसन्न होने पर तुम एक घड़े की स्थापना करो जो आठ दल सहित हो उसके ऊपर औषद्दियों सहित उसे रखो।

(२८) दूर्वा और जवांकुर सहित तीर्थ जल से उसे भरो और उस उत्तम कुम्भ को वेद मन्त्रों से उपयुक्त करो, और उसी जल से उस लिंग का सिंचन करो तथा शतइन्द्रिय,

(२९) मन्त्रों से उसका प्रोक्षण करो अर्थात् उसे नहलाओ, तब कहीं जाकर यह लिंग शान्ति को प्राप्त होगा।

(३०) जब गिरिजा देवी(पार्वती) योनिरूप हो जाये तब इस लिंग की स्थापना उसमें कर दो, तथा फिर उसे अभिमन्त्रित करते रहो।

(३१) गन्ध, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप–नैवैद्य से पूजा और आरती द्वारा शंकर को प्रसन्न करो।

(३२) प्रणिपात, स्तोत्रवाद्य, गाना और स्वस्तिवाचन का पाठ कर जय का उच्चारण करो।

(३३) और उस शंकर से प्रार्थना और याचना करते हुए कहो कि– हे जगत्पते ! जगत के स्वामी, सकल आनन्द के देने हारे आप हमारे ऊपर प्रसन्न होवो ! तुम ही इस जगत के पालनकर्त्ता, और संहार करने वाले हो।

(३४) तुम्हीं जगत के आदि, जगत के योनि, जगत के अन्दर व बाहर मौजूद हो। हे शंकर आपसे हम ऋषि लोग प्रार्थना करते हैं कि आप तीनों लोकों का पालन करते हुए शान्त होवो।

(३५) ऐसा करने पर निःसन्देह सबका कल्याण होगा, और त्रिलोक में शान्ति स्थापित् होगी, ऐसा ब्रह्मा जी ने उन ऋषि श्रेष्ठों को करने का आदेश दिया, तब इस आदेश को सुन वह सभी ऋषि लोग ब्रह्मा जी को प्रणाम कर वहाँ से चले गये।

(३६) ब्रह्मा जी के पास से आकर वह सभी ऋषि सीधे शंकर की शरण में जाकर प्रार्थना करने लगे, और परम् भक्ति से पूजन किया तब शंकर जी प्रसन्न हुए।

(३७) तब शंकर जी ने कहा कि पार्वती के बिना उस लिंग को धारण करने की क्षमता इस जगत में किसी के अन्दर नही है। अतः उसी के धारण करने से वह अग्निरूप लिंग शान्ति को प्राप्त हो सकता है।

(३८) तब उन सभी ऋषियों ने ब्रह्मा जी को साथ लेकर पार्वती की आराधना व प्रार्थना की काफी तपस्या के बाद उन दोनों (शिव व पार्वती) को प्रसन्न करके।

(३६) और ब्रह्मा जी द्वारा कही गई पूर्वोक्त विधि के द्वारा उन देवताओं ने मन्त्रोक्त विधान से उस लिंग की स्थापना की।

(४०) स्तुति, पूजा, अर्चना तथा वेद मन्त्रोच्चारण से शिवजी को सन्तुष्ट कर और सबके धर्म के निमित्त उस कार्य को सम्पन्न करते हुए वे सभी देवता लोग शिवजी से आशीर्वचन की कामना करने लगे।

(४१) तब शिवजी ने उन पर कृपा करते हुए यह परम वचन बोले कि – तुम सभी देवता लोग, मुझे अब प्रसन्न हुआ जानो तथा आप सभी निश्चिन्त रहें अब से सदा सभी जगत के प्राणियों को सुख प्राप्त होगा।

(४२) शिवजी के ऐसा कहने पर वे सभी देवता प्रसन्न हुए तथा प्रसन्नचित्त हुए उन ऋषियों ने शंकर जी की स्तुति कर उन्हें बारम्बार प्रणाम किया।

(४३) ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र ने जो महादयालु व कृपालु हैं, यह सब सुखदायक कार्य किया।

(४४) लिंग के स्थापित् करने में लोकों का कल्याण हुआ। इस लिंग के प्रसिद्ध होने से यह **"लिंगार्चन"** ही प्रसिद्ध हुआ।।

भाइयों ! यह कथा है इस शिवपुराण में जो भाई चाहे आकर मेरे पास देख सकता है, अब मैं श्री पण्डित हनुमतदत्त जी से प्रार्थना करता हूँ कि इस लिंग का मूत्रेन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य कोई अर्थ हो तो कीजिये।

श्री पण्डित हनुमतदत्त जी त्रिवेदी –

भाइयों ! आपने महाशय जी द्वारा बखान की गई लम्बी–चौड़ी कथा सुनी, जबकि पण्डित जी को पता होना चाहिये कि यह सब बातें अलंकारिक रूप में कही गयी हैं। पर पण्डित जी को तो हमारे ऊपर कीचड़ उछालना है। .... (बीच में) जरा एक गिलास पानी लाइये .... पानी दिया गया, ... पानी पीकर फिर बोले......... भाईयों ! यहां पर लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय नही है। **'लिंग'** शब्द हमारे शास्त्रों में अनेक अर्थों में आया है, देखिये .... (लिंग के अनेक अर्थ बताते हुए) .... बीच में ही महाशय प्रभु दयाल जी आर्य गर्जकर बोले–

श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य–

पण्डित जी महाराज ! लिंग शब्द के अनेक अर्थ जो आपने किये हैं तथा कर रहे हैं वह सब मुझे स्वीकार हैं, परन्तु इस कथा में जो मैने शिवपुराण के अन्दर से पढ़कर सुनाई है इसमें मूत्रेन्द्रिय के अलावा लिंग के अर्थ जो भी आप समझते हों वह कीजिये, मैं आपके धर्म को शास्त्रार्थ की शर्त के अनुसार धारण करने को तैयार हूँ। वरना आज आपको आर्यसमाजी बनना पड़ेगा। चारों ओर सन्नाटा .... आज्ञा हो तो एक गिलास पानी और मंगवाया जाये .... चारों ओर जबर्दस्त हँसी का वातावरण .... !

श्री पण्डित हनुमतदत्त जी त्रिवेदी –

धीमी आवाज़ में बोलते हुए .... भाईयों देखिये सौर पुराण में कहा है कि .... (बीच में ही) ......

श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य –

पण्डित जी ! कहाँ क्या कहा है इसे छोड़िये, केवल जो कथा मैने शिवपुराण की कही है, उसमें – **"लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय के अतिरिक्त कुछ हो तो बताइये, अन्यथा समय खराब मत कीजिये"** मैं आपको इधर–उद्दर भागने नहीं दूंगा, यह आप निश्चित समझिये।

श्री पण्डित हनुमतदत्त जी त्रिवेदी –

(उस कथा का अलंकारिक वर्णन अपनी ओर से करने लगे तभी बीच में महाशय जी फिर बोलने लगे) .... पण्डित जी आँय–बाँय घूमने के सीधे–सीधे रास्ते पर क्यों नहीं चलते? साफ कहो, साफ–साफ क्यों नहीं कहते?......... चारो ओर हो हल्ला ....।

श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य –

भाइयों ! वैसे तो इस कथा की भाषा इतनी कठिन या कोई विचित्र भाषा नहीं है जिसे पण्डित जी उलट–पलट कर पेश करना भी चाहें तो नहीं कर सकते, आज सबके समक्ष झूठ की पोल खुल गयी है, हमारे पण्डित जी को जब तक यह मान्य नही होगा, तथा शास्त्रार्थ की शर्त पूरी नही होगी तब तक यहां से कोई भी उठकर नहीं जायेगा, मैं अपनी ओर से नियत किये गये मध्यस्थ रूप में **"श्री पण्डित रामदत्त शास्त्री"** जी से प्रार्थना करता हूँ कि **"यह वैंकटेश्वर प्रेस– मुम्बई का छपा हुआ शिव पुराण"** मेरे हाथ में मौजूद है जिसमें मूल श्लोक, संस्कृत और भाषा दोनों मौजूद हैं इसे लेकर उनके मध्यस्थ रूप में नियत महाविद्वान **"श्री पण्डित जयकिशोर जी व्याकरणाचार्य"** जी के समक्ष प्रस्तुत कर मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये पाठ की पुष्टी कराने की कृपा करें। हो सकता है मेरे से भूलवश पाठ के पढ़ने में अशुद्धि हो गयी हो, आप कृपा कर ठीक–२ पढ़ दीजिये। .... जनता में चारों तरफ तालियों की गड़गड़ाहट .... (पुस्तक श्री पण्डित जयकिशोर जी व्याकरणाचार्य जी के पास पहुँचाई गयी) .... तभी मध्यस्थ जी ने बिना पुस्तक खोले ही इधर–उद्दर की बातें करने लगे और उठकर चलने लगे .... तभी बीच में ही उनको पकड़कर बैठलाया गया तथा उनकी सम्मति मांगी गयी तब उन्होनें खड़े होकर कहा –

श्री पण्डित जयकिशोर जी व्याकरणाचार्य –

भाइयों ! मैं तो इस आयोजन में आने को ही तैयार नहीं था, मुझे तो जबर्दस्ती लाया गया है। तथा यहां सनातन धर्मियों की ओर से मध्यस्थ बनाकर बैठा दिया गया है। मेरा तो यही कहना है कि– इस शास्त्रार्थ में न तो श्री पण्डित हनुमतदत्त जी त्रिवेदी आर्य समाजी होगें और न श्री महाशय प्रभुदयाल जी पौराणिक(सनातनद्दर्मी) होगें, बस ! यह शास्त्रार्थ यहीं पर समाप्त होना चाहिये........... बीच में ही महाशय प्रभु दयाल जी बोले ....

श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य –

ऊँची आवाज़ में चिल्लाकर बोले........... **"यदि शिवलिंग मूत्रेन्द्रिय प्रमाणित न हो तो मैं आपके मत को स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ"**.......... चारों ओर हँसी व तालियाँ .... बोलो वैदिक धर्म की जय !

महर्षि दयानन्द की जय !! के नारों से आकाश गूँज उठा। .... तभी शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता(सभापति) खड़े हुए और कहने लगे –

श्री महाशय बनारसीलाल जी अग्रवाल –

सभी को बैठाते हुए बोले .... भाईयों मैं आज इस सभा के विसर्जन की घोषणा करते हुए आप सभी महानुभावों का विद्वत मन्डल का एवं पुलिस अधिकारियों व कर्मचारियों का धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने–२ कर्त्तव्यों का भलीभांति पालन किया है। .... बीच में ही पण्डित हनुमत दत्त जी उठकर बोले .....

श्री पण्डित हनुमतदत्त जी त्रिवेदी –

झल्लाते हुए क्रोधित होकर .... महाशय प्रभुदयाल जी आर्य की ओर संकेत करते हुए .... कि आपने दारूबन की कथा क्यों उपस्थित की? .... इसी बीच सभा विसर्जित हो गयी। .... तभी श्री महाशय प्रभु दयाल जी आर्य ने कहा–

श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य –

पण्डित जी महाराज ! यह है आर्य समाज की सभासदी का फार्म ! कृपया इसे तो कम से कम भरते जाइयेगा .... इतना सुनते ही पण्डित हनुमतदत्त जी त्रिवेदी झल्लाते हुए चले गये .... ।

नोट –

इस प्रकार सत्य की विजय हुई। ग्रामीण जनता बहुत प्रसन्न हुई, इस शास्त्रार्थ का यह प्रभाव पड़ा कि पौराणिक पण्डितों को मुह दिखाना दूभर हो गया,और चहुँ ओर आर्य समाज एवं महर्षि दयानन्द की जय–जयकार होने लगी। झूठ का पर्दाफाश होते हुए प्रत्येक श्रोता ने सरे आम देखा।

वैदिक धर्म का सेवक –

..............."महाशय प्रभुदयाल आर्य"

शास्त्रार्थ के अन्त में

नोट :–

शास्त्रार्थ समाप्त होने के बाद सैकड़ों श्रोतागण वहीं सभा स्थल पर जमे रहे तथा श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य जी से इस सम्बन्ध में सविस्तार जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रार्थना करने लगे, तब श्री आर्य जी ने सभी श्रोताओं को शान्तचित्त बैठाकर इस कथा को सविस्तार समझाया तथा बतलाया जो निम्न प्रकार है–

श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य –

भाईयों ! इस शास्त्रार्थ में पौराणिकों की क्या गत हुई ? यह तो अब किसी से छुपा नहीं रहा। मैं अब आपको बतलाता हूँ कि इस दारूबन की कथा के अतिरिक्त भी मेरे पास अनेकों प्रमाण शिवलिंग के मूत्रेन्द्रिय होने के पक्ष में मौजूद है, जिनको प्रस्तुत करने का अवसर ही नहीं मिला देखिये मैं अब आप लोगों के समक्ष उपस्थित करता हूँ।

(१) वैष्णव लोग क्यों शिवलिंग को नहीं देखते? उनका कहना है कि जो श्री उनके मस्तिष्क पर लगी रहती है वह उस लिंग को देखकर लज्जित होती है। मैं पूछता हूँ क्या अब भी उस लिंग का मूत्रेन्द्रिय होने में कोई सन्देह है?

(२) नागों(नागा–बाबाओं) की मूत्रेन्द्रिय क्यों **"शिवलिंग"** कह कर पूजी जाती है?

(३) शिवलिंग पर चढ़ा हुआ खाया नही जाता, उसका खाना मना है उसे अपवित्र समझा जाता है।

(४) जल का घड़ा शिवलिंग पर क्यों लटकाया जाता है? इसका भी विस्तृत विवरण आपको शिवपुराण की इस दारूबन की कथा में ही मिल जायेगा, – आप वहां पर पढ़ सकते हैं।

पाठक वृन्द ! आप ही विचारें कि – किसी को विषय भोग करते हुए देखना क्या कोई अच्छी बात है? इससे अधिक निर्लज्जता और क्या हो सकती है? क्या इसकी पूजा मिट्टी–पत्थर आदि का आकार बनाकर करनी चाहिये? मिष्ठान, दूध या धतूरा, बेलपत्र आदि का चढान्त क्या उचित है? यह शिवलिंग खाने की इन्द्रिय नही है। खाने की इन्द्रिय तो मुख है। परन्तु इन सबमें क्या रहस्य अथवा वैज्ञानिकता छुपी हुई है, यह समझ में नही आया। मगर वाह रे ! अन्ध विश्वास तेरा नाश हो ! लोग लिंग पर मुकुट भी लगाते हैं। देखो कल्याणी देवी–प्रयाग के मेले में लोकनाथ के शिवलिंग पर मुकुट रखा हुआ मिलेगा। हम पूछते हैं कि क्या यह सिर है जो इस पर मुकुट धारण किया गया है? अरे ! विचार से काम लो !!

अब जो हुआ सो हुआ, इस गन्दी वाहयात शिवलिंग पूजा की रीति को छोड़ो जिससे आपका किसी भी तरह से कल्याण होने वाला नही है। और आत्मिक व बौद्धिक शुद्धि के लिए प्रातः, सायं, सन्ध्या किया करो जिसके द्वारा आपको आत्मिक एवं मानसिक सभी रूप से शान्ति प्राप्त होगी तथा बुद्धि का विकास होगा, इसी में मानवमात्र का कल्याण निहित है। ओ3म् शम्।। अब शान्ति पाठ के पश्चात् आज का यह आयोजन समाप्त किया जाता है। **"ओ3म् द्यौ शान्ति, अन्तरिक्षं शान्ति, पृथ्वी शान्ति ...."**।।

नोट –

इस शास्त्रार्थ में श्री महाशय प्रभुदयाल जी आर्य द्वारा जो दारूबन की कथा उपस्थित की गयी उसका कुछ मूल पाठ यहां दिया जाता है। अधिक विस्तृत जानकारी के लिए आप शिवपुराण का अध्ययन कर सकते हैं, देखिये –

दारूवन की कथा

दारू नाम का एक उपवन(बाग) था, जिसमें महर्षि भृगु का आश्रम स्थित था उस आश्रम में बहुत से शिवभक्त तपस्वीजन निवास करते थे .... वहाँ एक बार उनके साथ क्या घटना घटित हुई ? ...... देखिये– **"शिवपुराण, कोटिरूद्र संहिता 4 अध्याय 12 के कुछ अंश"** –

एतस्मिन्नतरे साक्षात् शंकरों नीललोहितः।
विरूपं च समाधाय परीक्षार्थ समागतः ।।९।।

दिगम्बरोति तेजस्वी भूति भूषण विभूतिषतः।
सचेष्टां सकदक्षां च हस्तेलिंग विधारयन्।।१०।।

मनसा च प्रियं तेषां कर्तु वै वनवासिनामं।
जगाम तद्वनं प्रीत्या भक्त प्रोतोहरः स्वयम्।।११।।

तदृष्ट्वा ऋषि पत्न्यस्ताः परं त्रास सुपागताः विह्वना।
विस्मिताश्चान्यास्समाजम्मुस्तथा पुनः।।१२।।

आलिलिंगस्तथाचान्याः करैर्धृत्वा तथा परः।
परस्परन्तु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा।।१३।।

एतस्मिनेव समये ऋषिवर्य्याः समागमन्।
विरूद्धं तं च ते दृष्टवा दुःखिता क्रोध मूर्छिताः।।१४।।

तदा दुःखमनुप्राप्तः कोयं–कोयं तथा ब्रूवन।
समस्ता ऋषस्ते व शिवमाया विमोहिता।।१५।।

यदा च नोक्तवान् किंचित्सोवधूतो दिगम्बरः।
उचुस्तं पुरूर्षा भीमं तदा ते परमर्षयः।।१६।।

त्वया विरूद्धं क्रियते वेदमार्ग विलोपियत्।
ततस्तवदीयं तलिंल्लगं पततां पृथ्वीतले।।१७।।

सूत उवाच हत्युक्ते तु तदातैश्चलिंगं च पतितंक्षनात।
अवधूतस्य तस्याशु शिवास्याद्भुत रूपिनः।।१८।।

तल्लिगं चाग्नि वन्सर्व यद्दोह पुरास्थितम्।
यत्र–यत्र च तद्याति तत्र–तत्र च दहेत्पुनः।।१९।।

पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चाति तथैव च।

भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापिस्थिरं हि तत्।।२०।।
लोकांश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेति दुःखिता।
न शर्मा लेभिरे केचिछेवाश्च ऋषयस्तथा।।२१।।
दुःखिता मिलिताश्शीघ्रं ब्राह्मणं ययुः।।२२।।
मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा।।३१।।
आराध्य गिरजां देवी प्रार्थयन्तु सुरांशिवम्।
योनि रूपा भवेच्चेद्वै तथ्दा ततस्थिरतां व्रजेत।।३२।।
पूजितः परमाभक्तया प्रार्थितः शंकरस्तदा।
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः।।४४।।
हे देवाः ऋषयः सर्वेमद्वचः श्रुयतामदरात्।
योनि रूपेण मल्लिंगं धृत चेत्स्यात्तदा सुखम्।।४५।।
पार्वती च बिना नान्या लिंग धारयितुं क्षमा।
तयाधृतं मल्लिंगं द्रुतं शान्तिं गमिष्यति।।४६।।
तच्छुत्वा ऋषिभिदेवैस्सुप्रखनैर्मुनीश्वराः।
गृहीत्वा चैव ब्राह्मणं गिरिजा प्रार्थिता तदा।।४७।।
प्रसन्ना गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च।
पूर्वेक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम्।।४८।।

(शिव पुराण, कोटि रूद्र संहिता 4 अध्याय 12)

प्रस्तुतकर्त्ता –

"लाजपत राय अग्रवाल"

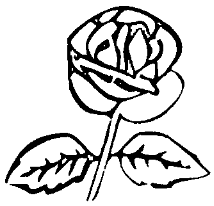

एक सौ तीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "हुगली", जिला– चौबिसपरगना (बंगाल)

दिनांक : ८ अप्रैल सन् १८७३ ई०(दिन मंगलवार)

विषय : प्रतिमापूजन विचार

प्रतिमा पूजन के पक्ष में शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित ताराचन्द जी तर्करत्न

प्रतिमा पूजन के विपक्ष में शास्त्रार्थकर्ता : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

अन्य उपस्थित विद्वान : (१) श्री वृन्दावन चन्द्र जी

: (२) श्री भूदेव मुकुर्ज्या

: (३) श्री हरिहर तर्कसिद्धान्ती आदि–२

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के सम्पादक एवं प्रकाशक का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जिवित रखने का प्रयास किया।

– "**लाजपत राय अग्रवाल**"

शास्त्रार्थ से पहले

– "डॉ0 भवानी लाल भारतीय"

काशी नरेश के सभा–पण्डित ताराचरण तर्करत्न से स्वामी दयानन्द सरस्वती का **"प्रतिमा–पूजन की वैदिकता या अवैदिकता"** ? पर सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ चैत्र शुक्ला ११ सम्वत् १६३० विक्रमी दिन मंगलवार को **"हुगली"** में हुआ। पण्डित ताराचरण अपने युग के प्रसिद्ध नैयायिक विद्वान थे। स्वामी जी से उनका साम्मुख्य काशी–शास्त्रार्थ के प्रसंग में भी हो चुका था। चौबीस परगना(बंगाल) जिले के हुगली नदी के बांये तट पर विद्यमान **"भाटपाड़ा"** ग्राम निवासी पण्डित ताराचरण से श्रीमहाराज का यह शास्त्रार्थ ८ अप्रैल सन् १८७३ ई0 को दिन मंगलवार हुगली नगर में वृन्दावनचन्द्र मण्डल के निवास–स्थान पर हुआ था। श्री पण्डित लेखराम जी ने श्रीमहाराज के उर्दू जीवन–चरित में इस शास्त्रार्थ के प्रसंग में लिखा था –

"सम्वत् १६३० में यह शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में हुआ। उसी समय उसका अनुवाद बंगला भाषा में मुद्रित किया गया। और बहुत शीघ्र ही सम्वत् १६३० विक्रमी (सन् १८७३ ई0) में "लाइट प्रेस बनारस" से २८ पृष्ठ का बाबू हरिश्चन्द्र एक मूर्तिपूजक ने जो कि गोकुलिया गोस्वामी मत में था, उसे शब्दशः आर्यभाषा में छपवा कर मुद्रित किया। वह आज तक पांच बार छप चुका है, परन्तु पृथक् पुस्तक (अर्थात् हुगली शास्त्रार्थ) विक्रयार्थ नहीं मिलता। "दृष्टव्य–उर्दू (दयानन्द) जीवन–चरित पृष्ठ ७६१, १८६७ तथा हिन्दी संस्करण पृष्ठ ८१७"।

उपर्युक्त उल्लेख से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं– हुगली–शास्त्रार्थ का विवरण सर्वप्रथम बंगला भाषा में मुद्रित हुआ, परन्तु उस बंगला पुस्तक का कुछ अता–पता आज तक नहीं चल सका*। जिन हरिश्चन्द्र ने उसे आर्यभाषा(हिन्दी) में अनूदित कर प्रकाशित किया, वे हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और लेखक स्वनाम–धन्य श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ही थे। उनके द्वारा प्रकाशित **"प्रतिमा–पूजन–विचार"** शीर्षक यह शास्त्रार्थ १८X२२ के आठ पृष्ठ वाले आकार में २८ पृष्ठों में छपा। उनके मुख–पृष्ठ का ब्यौरा इस प्रकार था–

प्रतिमा–पूजन–विचार

"श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ, जो कि "हुगली" में हुआ था, उसे बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञा से "बनारस लाइट छापेखाने" में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया सम्वत् १६३०"।

Printed At— "THE LIGHT PRESS" BANARAS, 1873

पं0 लेखराम के कथनानुसार इस पुस्तक के पांच संस्करण उस समय तक निकल चुके थे। इस पुस्तक

नोट–

*इसकी एक प्रति पण्डित भगवद्दत्त रिसर्च स्कालर (RESEARCH SCHOLAR) जी के माडल टाउन–लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) स्थित पुस्तक संग्रह (पुस्तकालय) में मौजूद थी। जो सन् १६४७ ई0 के उपद्रवों में वह पुस्तक–संग्रह (पुस्तकालय) नष्ट हो गया था।

– "अमर स्वामी सरस्वती"

का द्वितीय संस्करण भारतेन्दु जी की मृत्यु (सन् १८८५ ई0) के तीन वर्ष पश्चात् सन् १८८८ ई0 में **"खड्गविलास प्रेस"** बांकीपुर, पटना से प्रकाशित हुआ। इसके मुख पृष्ठ पर निम्न बातें अंकित हैं–

Reg. under Act of 1847

प्रतिमा–पूजन–विचार

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ

जो कि हुगली में हुआ था।

भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत,

जिसको हिन्दी भाषा के प्रेमी तथा रसिकजनों के मनोविलास के लिए

क्षत्रिय–पत्रिका सम्पादक श्री म0 कु0 बाबू रामदीन सिंह ने प्रकाशित किया।

पटना खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर से

साहिबप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया।

सन् १८८८ ई0 (मूल्य =)

इस द्वितीय संस्करण की एक प्रति आर्यसमाज अजमेर के **"श्री मुन्नालाल नागरीप्रचारिणी पुस्तकालय"** में विद्यमान है।

जिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८६६ ई0 के काशी–शास्त्रार्थ के तुरन्त बाद ही **"दूषण- पालिका"** लिखकर स्वामी जी पर आक्षेपों वृष्टि की थी, उन्हीं बल्लभ–सम्प्रदायानुयायी भारतेन्दु ने सन् १८७३ ई0 में उन्हीं स्वामी दयानन्द के प्रतिमा–पूजन विषयक शास्त्रार्थ को प्रकाशित किया, इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है ? इससे यह सहज निष्कर्ष निकलता है कि प्रगतिशील विचारधारा के अनुयायी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वामी दयानन्द के युग–परिवर्तनकारी क्रान्तिकारी विचारों के अन्तःकरण से समर्थक थे[1] ? मुन्शी बख्तावर सिंह सम्पादित **"आर्य–दर्पण"** के फरवरी सन् १८८० ई0 के अंक में **"शास्त्रार्थ–हुगली"** जो सम्वत् १६२६ *विक्रमी में स्वामी दयानन्द सरस्वती और पंडित ताराचरण के बीच हुआ था। इस शीर्षक से पृष्ठ ३५ से पृष्ठ ४२ पर्यन्त उर्दू तथा हिन्दी में समानान्तर कालमों में प्रकाशित हुआ। परन्तु यह उस पुस्तक का पूर्वार्द्ध मात्र ही था, जिसमें स्वामी जी तथा पण्डित तर्करत्न के शास्त्रार्थ का विवरण दिया गया है। **"प्रतिमा–पूजन–विचार"** शीर्षक के अन्तर्गत जो प्रतिमा शब्द तथा तत् सम्बन्धी अन्य विषयों का शास्त्रीय विवेचन स्वामीजी ने किया, वह इस पत्र में प्रकाशित नहीं हुआ। पण्डित लेखराम द्वारा रचित उर्दू जीवन चरित तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संगृहीत जीवन चरित में भी ग्रन्थ का पूर्वभाग (संक्षिप्त रूप से) क्रमशः पृष्ठ २०१-२०८ तथा पृष्ठ २७०-२७३ (द्वितीय भाग) दिया गया है। परन्तु पाठ भेद सर्वत्र है। पूर्वार्द्ध

नोट–

[1]श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित "हरिश्चन्द्र पत्रिका" के सम्पादक मण्डल में "स्वामी दयानन्द" का नाम भी रहता था। द्रष्टव्य– धर्मयुग, १२ सितम्बर सन् १६७६ ई0, पृष्ठ २१,

*यहां सम्वत् १६३० विक्रमी होना चाहिये।

"युधिष्ठिर मिमांसक"

का यही अंश पण्डित गोपालराव शर्मा अथवा (पण्डित गोपालशास्त्री शर्मा) रचित **"दयानन्द दिग्विजयार्क"** प्रथम खण्ड के तृतीय मयूखान्तर्गत भी प्रकाशित हुआ। इसके अन्त में **"दिग्विजयार्क"** के लेखक की निम्न टिप्पणी बड़ी मार्मिक है देखिये–

"आर्यगण ! पं. ताराचरणजी जो अपने असत्य–भाषण का कारण अपना पेट दिखाते हैं, सो बहुत ही ठीक है। यही हाल देश भर के पण्डित और पुजारी, वैरागियों का जानो कि बिचारे पेट के मारे चारनाचार (?) असत्य को सत्य ठहरा रहे हैं, परन्तु नहीं मालूम कि इनको छोड़ बाकी रहे लोग किमर्थम् अन्धे, बहरे बन रहे हैं। ये वही राजपंडित हैं जो प्रथम काशी के शास्त्रार्थ में अगुआ बन बोले थे।"

"आर्य दर्पण" पण्डित लेखराम रचित जीवन चरित तथा **"दयानन्द दिग्विजयार्क"** में उद्धृत हुगली–शास्त्रार्थ पूर्वार्द्ध के पाठ में पर्याप्त भेद है। उसका कारण लिपि–कर्त्ताओं की भूल ही मानी जा सकती है। परन्तु ग्रन्थ का मूल सही पाठ वही है, जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सन् १८७३ ई0 में प्रकाशित किया गया था, तथा जिसका द्वितीय संस्करण सन् १८८८ ई में पटना से प्रकाशित हुआ था। इसे ही पण्डित भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित **"ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन"** (द्वितीय संस्करण सम्वत् २०१२ विक्रमी) में पृष्ठ ५-१७ पर्यन्त[1] तथा पण्डित जगतकुमार शास्त्री सम्पादित **"ऋषि–दयानन्द–ग्रन्थ–संग्रह"** में पृष्ठ ३०३-३१३ पर्यन्त प्रकाशित किया गया है। आर्यजगत के प्रमुख प्रकाशक **"मैसर्स विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली"** ने इसे पृथक् पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया था। **"प्रतिमा–पूजन–विचार"** के **"प्रतिमा"** तथा **"पुराण"** विषयक विवेचनीय अंशों को भी मुन्शी बख्तावर सिंह ने **"आर्य–दर्पण"** के मार्च सन् १८८० ई0 (पृष्ठ ५०-५३) तथा जून सन् १८८० ई0 (पृष्ठ १२५-१२७) के अंकों में उर्दू, हिन्दी के समानान्तर कालमों में **"यथार्थ–प्रकाश"** ३-४ शीर्षक से प्रकाशित किया था। ग्रन्थान्त के निम्न श्लोक तथा पुष्पिका के वाक्य से इस ग्रन्थ का मूल संस्कृत भाग श्रीमहाराज ने स्वयं बनाया होगा, ऐसा अनुमान होता है –

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यवचना।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रि[2] शरणा,
स को दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः।।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितमिदमिति विज्ञेयम्।।

यहां भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहित **"प्रतिमा–पूजन–विचार"** का मूल पाठ **"शास्त्रार्थ–हुगली"** शीर्षक से आगे दिया जा रहा है।

"सम्पादक"

---

१. नये तृतीय संस्करण में पृष्ठ ६ से ३१ तक छपा है।

२. "राष्ट्रिन" शब्दो निघण्टौ (२/२२) ईश्वरनामसु पठितम्।

– "युधिष्ठिर मिमांसक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

चैत्र शुक्ला एकादशी सम्वत् १६३० विक्रमी अर्थात् ८ अप्रैल सन् १८७३ ई०

– "स्वामी दयानन्द सरस्वती"

एक पण्डित ताराचरण तर्करत्न नामक भाटपाड़ा* ग्राम के निवासी हैं, जो कि ग्राम हुगली के पास है। उस ग्राम में उनकी जन्मभूमि है, परन्तु आज–कल श्रीयुत् काशीराज महाराज के पास रहते हैं। संवत् १६२६ विक्रमी में वे अपनी जन्मभूमि में गये थे। वहां से कलिकाता में भी गये थे और किसी स्थान में ठहरे थे। जिनके स्थान में मैं ठहरा था, उनका नाम श्रीयुत राजा ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर तथा श्रीयुत राजा शौरिन्द्रमोहन ठाकुर हैं। उनके पास तीन बार जा–जा करके ताराचरण ने प्रतिज्ञा की थी कि हम आज अवश्य शास्त्रार्थ करने को चलेंगे। ऐसे ही तीन दिन तक कहते रहे, परन्तु एक बार भी न आये। इससे बुद्धिमान् लोगों ने उनकी बात झूठी ही जान ली। मैं कलिकाता से हुगली में आया और श्रीयुत वृन्दावनचन्द्र मण्डल जी के बाग में ठहरा था। सो एक दिन उन्होंने अपने स्थान में सभा की। उसमें मैं भी वक्तृत्व करने के लिए गया था, तथा बहुत पुरूष सुनने को आये थे। उनसे मैं अपना अभिप्राय कहता था, वे सब लोग सुनते थे। उसी समय में ताराचरण पण्डित जी भी वहां आये। तब उनसे वृन्दावनचन्द्रादिकों ने कहा कि आप सभा में आइए, इच्छा हो सो कहिए। परन्तु सभा के बीच में पण्डित ताराचरण नहीं आए, किन्तु ऊपर जाकर दूर से गर्जते थे। वहां भी उन्होंने जान लिया पण्डित जी कहते तो हैं परन्तु समीप क्यों नहीं जाते ? इससे जैसे वे ताराचरण जी थे, वैसे ही उन्होंने जान लिये। फिर जब नव घण्टा बज गया, तब लोगों ने मेरे से कहा कि अब समय दश घण्टा का है। उठना चाहिए, बहुत रात आ गई। फिर मैं और सब सभास्थ लोग उठे, उठके अपने –अपने स्थान में चले गये। फिर मैं बाग में चला आया। उसके दूसरे दिन वृन्दावनचन्द्र मंडल जी ने मेरे से कहा कि उस वक्त ताराचरण भी आये थे। जब मैंने उनसे कहा कि सभा में क्यों नहीं आए ? उन्होंने कहा कि वे तो बड़ा अभिमान करते हैं। तब मैंने उनसे कहा– जो अभिमान करता है, सो पण्डित नहीं होता, किन्तु वह काम मूर्ख का ही है। और जो पण्डित होता है, सो तो कभी अपने मुख से अपनी बड़ाई नहीं करता। जो ताराचरण पण्डित जी अभिमान में डूबे जावें, तब तो उनको मेरे पास एक बार ले आइये। फिर वे अभिमान–समुद्र में डूबने से बच जायें तो अच्छा हो। तब वृन्दावनचन्द्रादिकों ने कहा कि आप बाग में चलिए, और जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा शास्त्रार्थ कीजिए। पण्डित जी की कुछ इच्छा न देखी, तब वृन्दावनचन्द्र से मैंने कहा कि आप उनसे कहें कि कुछ चिन्ता आप न करें। स्वामी जी ने हमसे कह दिया है कि पण्डित जी प्रसन्नता से आवें, मैं किसी से विरोध नहीं रखता। तब तो पण्डित जी ने कहा–हम चलेंगे।

सो मंगलवार की संध्या समय में बहुत लोग नगर से शास्त्रार्थ सुनने को आये[1]। वृन्दावनचन्द्र भी बहुत लोगों के साथ आये। तथा पाठशालाओं के अध्यक्ष श्री भूदेव मुकुर्ज्या आये, तथा श्री हरिहर तर्कसिद्धान्त

---

*"भाटपाड़ा" ग्राम हुगली नदी के बांये तट पर है, और हुगली ग्राम दाहिने तट पर स्थित है।

१. चैत्र सुदी ११ सम्वत् १६३० विक्रमी अर्थात् ८ अप्रैल सन् १८७३ ई०।

– "सम्पादक"

पण्डित भी आये। उसके पीछे पंडित ताराचरण जी सशिष्य तथा अपने ग्राम–निवासियों के साथ आये, जो कि उनके पक्षपाती थे। ये सब लोग आ करके सभा के स्थान में इकट्ठे हो गये। तब मैं(दयानन्द सरस्वती) भी उस स्थान में आया, फिर सब यथायोग्य बैठे। तब ताराचरण जी ने प्रतिज्ञा की कि हम प्रतिमा का स्थापन पक्ष लेते हैं। फिर मैंने कहा कि जो आपकी इच्छा हो सो लीजिये, मैं तो इस बात का खण्डन ही करूँगा।

तब उन्होंने मुझसे कहा कि इस संवाद में वाद होना ठीक है, वा जल्प अथवा वितण्डा? उनसे मैंने कहा कि वाद ही होना उचित है, क्योंकि जल्प और वितण्डा सज्जनों को करना कभी उचित नहीं, (किन्तु) वाद गोतमोक्त[1] लेना। तब उन्होंने भी स्वीकार किया। फिर दूसरी यह प्रतिज्ञा उस समय में की गई कि चार वेद तथा चार उपवेद, छः वेदों के अंग और छः दर्शन मुनियों के किये, तथा मुनि और ऋषियों के किये छः शास्त्रों के व्याख्यान, उन्हों के वचन प्रमाण से ही कहना, अन्य कोई किसी ग्रन्थ का प्रमाण नहीं। तब उन्होंने भी स्वीकार किया, मैंने भी।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न–

"चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्कः। इति व्यासवचनम्"।। (पात०जलयोगसूत्रम्)

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

तर्करत्न[2] के हाथ में पुस्तक भी थी, उसको देखा, तब भी मिथ्या ही उन्होंने लिखा। क्योंकि योगशास्त्र पढ़ा होय, तब उस शास्त्र को जान सकता है। तर्करत्न ने पढ़ा तो था नहीं, इससे उन्होंने अशुद्ध लिखा। जो पढ़ा हुआ होता है, सो ऐसा भ्रष्ट कभी नहीं लिखता[3]। देखना चाहिये कि ऐसा पातन्जल–शास्त्र में सूत्र ही नहीं है। किन्तु ऐसा सूत्र तो है–

"विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी[4]"।........................इति[5]।।

सो इस सूत्र के व्याख्यान में **"नासिकाग्रे धारयतः"** इत्यादिक वहां लिखा है। यह तो उनने जाना भी नहीं, इससे उनका लिखना भ्रष्ट है। फिर लिखते हैं कि– **"इति व्यासवचनम्"**। इस प्रकार का वचन व्यास जी ने कहीं भी योगशास्त्र की व्याख्या में नहीं लिखा। इससे यह भी उनका वचन भ्रष्ट ही है। फिर यह लिखा कि ....

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

स्वरूपे साक्षाद्वती प्रज्ञा आभोगः स च स्थूलविषयत्वात् स्थूलः, इत्यादि।

---

१. अर्थात् न्यायशास्त्र–प्रतिपादित–"प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरूद्धः पन्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः।" न्यायदर्शन १/२/१,

२. यहां से अगला पाठ स्वामी जी का समालोचनात्मक लेख रूप में है।

३. इस पद से तथा आगे प्रयुक्त ऐसे शब्दों से विदित्त होता है कि यह शास्त्रार्थ लिखित (रूप में) ही हुआ था।

४. योग दर्शन १-३५.

५. संस्कृत–शास्त्रार्थ के संकेत मात्र यहां उद्धृत हैं। पूरा पाठ अनुवादक ने सम्भवतः छोड़ दिया है।

"युधिष्ठिर मिमांसक"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यह भी उनका लिखना अशुद्ध ही है। क्योंकि प्रतिज्ञा तो ऐसी पूर्व की गई थी कि वेदादिक शास्त्र–वचनों से ही प्रतिमा–पूजन का स्थापन हम करेंगे, और वचन फिर लिखा वाचस्पति का। इससे तर्करत्न की प्रतिज्ञा–हानि हो गई। प्रतिज्ञा की हानि होने से उनका पराजय हो गया। क्योंकि– **"प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरम्[१]"** इत्यादिक निग्रहस्थान होते हैं यद्यपि हमको जय और पराजय की इच्छा कभी नहीं है, तथापि गोतम मुनिजी ने छब्बीस निग्रहस्थान लिखे हैं। निग्रहस्थान सब पराजय के स्थान ही होते हैं। और पहिले प्रतिज्ञा की थी कि **"जल्प"** और **"वितण्डा"** न करेंगे, फिर जाति–साधन से प्रतिमा का स्थापन करने लगे, क्योंकि प्रतिमा भी स्थूल–साधर्म्य से आती है। **"यावान् जागरितावस्थाविषयः तावान् सर्वः स्थूलः कुतः?"** इत्यादि। मैंने उनको ज्ञापक से जना दिया कि ये गृहस्थ हैं, इनकी अप्रतिष्ठा न हो जाय, तदापि उनने कुछ भी नहीं जाना। जानें तो तब जब कुछ शास्त्र पढ़ा हो, अथवा बुद्धि शुद्ध हो। **"साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्ष0[२]"** इत्यादिक चौबीस प्रकार का शास्त्रार्थ जाति के विषय में गौतम मुनि जी ने लिखा है। इसके नहीं जानने से जल्प और वितण्डा तर्करत्न ने किये। क्योंकि– **यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ।। १।। स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा[३] ।। २।।** जैसा कि इन सूत्रों का अभिप्राय है, वैसा ही तर्करत्न जी ने प्रतिमा–पूजन का स्थापन करने में जल्प और वितण्डा ही किया। इससे दूसरे बेर (बार) प्रतिज्ञाहानि उनने (उन्होनें) की। अतः द्वितीय पराजय उनका हुआ।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

यदुक्तं भवता तेनैव प्रतिमापूजनमेव सिद्ध्यत्येव तस्य स्थूलत्वात।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

इसमें तीन बेर (बार) **"एव"** शब्द लिखने से यह जाना गया कि ताराचरण जी को संस्कृत का यथावत् बोध भी नहीं है। इससे तर्करत्न जी अभिमान में डूबे जाते हैं। क्योंकि हम बड़े पण्डित हैं, इस प्रकार का जो स्वमुख से कहना है, सोई विद्याहीनता को जनाता है। फिर **"लोकान्तरस्थ"** शब्द से मैंने उनको जनाया कि जो चतुर्भुज को आप लेते हो, सो तो वैकुण्ठ में सुने जाते हैं, (उनकी) **"उप"** अर्थात् समीप **"आसना"** अर्थात् स्थिति सो मनुष्यलोक में रहने वाला कैसे कर सकेगा? कभी नहीं। और जो पाषाणादिक की मूर्ति शिल्पी की रची भई, सो तो विष्णु है नहीं। तब भी पण्डित जी कुछ नहीं समझे। क्योंकि जो कुछ विद्या पढ़ी होती अथवा सत्पुरूषों का संग किया होता, तो समझ जाते। सो तो कभी किया नहीं, इससे ताराचरण जी उस बात को न समझ सके। फिर एक कहीं से सुनी सुनाई ब्राहण कीश्रुति बिना प्रसंग से पढ़ी। सो यह है–

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

"अब स यदा पितृनावाहयति पितृलोकेन तेन सम्पन्नो महीयते"। इस श्रुति से लोकान्तरस्थ की भी उपासना आती है, इस अभिप्राय से देखना चाहिए।

---

१. न्यायदर्शन ५-२-११,

२. न्यायदर्शन ५-१-१,

३. न्यायदर्शन १-२-२-३,

"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

इस श्रुति में उपासना लेशमात्र नहीं आती, क्योंकि यह श्रुति जिस योगी को अणिमादिक सिद्धि हो गई हैं, वह सिद्ध जिस–जिस लोक में जाने की इच्छा करता है, उस–उस लोक को उसी समय प्राप्त होता है। सो जब पितृलोक में जाने की इच्छा करता है, पितृलोक को प्राप्त होके आनन्द करता है। क्योंकि– **"तेन पितृलोकेन महीयते इत्युक्तत्वात्"**। ऐसे इच्छा मात्र से ही ब्रह्मलोकादिक में बिहार करता है। इससे इस श्रुति में मरकर उस लोक में जाता है, अथवा पितरों की उपासना इस लोक में करता है, इस अभिप्राय के नहीं होने से ताराचरण जी का कहना मिथ्या ही है। इससे क्या आया कि अर्थान्तर का जो कहना है, सो **"निग्रहस्थान"** ही है। निग्रहस्थान के होने से पराजय हो गया। **"सर्वः स्थूल इत्यनेन" इत्यादिदेहान्तरगतस्य प्राप्तित्वादिति दिव्ययोगदेहप्राप्तित्वाद्योगिनो न तु प्राकृतदेहस्य माहात्मयमिदमित्यर्थस्य जागरूकत्वात् देहान्तरम्"**। अर्थात् जो दिव्य योग–सिद्धियों से प्राप्त होता है, उस देह से यह बात होती है। और जो अयोगी का देह नाम शरीर उससे कभी यह बात नहीं होती।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

प्रथमतः अस्माभिरित्यादि............... ।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

दूषण अथवा भूषण का ज्ञान तो विद्या होने से होता है। अन्यथा नहीं। क्योंकि दूषण तो आपके वचनों में हैं, परन्तु आपने नहीं जाने। यह आपकी बुद्धि का दोष है, जो आपने प्रत्यक्ष दिखाये दूषणों को भी नहीं जाना। ऐसे दूषणों को तो बालक भी जान सकता है।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

तन्मध्ये प्रतिमापि वर्तते इत्येव, इत्यादि।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

आप देख लीजिये कि हम वाद ही पर रहे, जल्प और वितण्डा कभी नहीं। फिर बार–बार स्थूलत्व–सादृर्म्य से ही प्रतिमा–पूजन स्थापन किया चाहते हो, सो अपनी प्रतिज्ञा को आप ही नाश करते हो, और फिर चाहते हो कि हमारा विजय होवे, सो कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि विजय तो पूर्ण विद्या और सत्य–भाषण करने से होता है, सो आप में एक भी नहीं। इससे आप विजय की इच्छा कभी मत करो, किन्तु आपको अपने पराजय की इच्छा करनी उचित है। किंच जो आप लोगों की इच्छा होवे, तो वेदादिक सत्यशास्त्रों को अर्थ–ज्ञान सहित पढ़ेंगे, तथा पढ़ावेंगे, तब फिर आप लोगों का पराजय कभी न होगा, किन्तु सर्वत्र विजय ही होगा, अन्यथा नहीं।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

दृष्टान्तत्वेनेत्यादि.......... छान्दोग्य........... दहरविद्यायामित्यादि........... चेति।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

उस श्रुति का एक अंश दृष्टान्त में नहीं मिलने से यह आपका कहना मिथ्या ही है। सो मैंने कह दिया

है, पहिले उससे जान लेना। यह किसने कहा कि जीवता पुरूषों को उपासना का अधिकार नहीं है ? सो यह आपका कहना मिथ्या ही है। क्योंकि ब्रह्मविद्या का और पाषाणादिक मूर्तिपूजन का क्या प्रसंग है ? कुछ भी नहीं। इससे यह भी अर्थान्तर है, अर्थान्तर के होने से निग्रहस्थान अर्थात् पराजय–स्थान आपका है। सो आप यथावत् विचार करके जान लेवें।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

प्रथमतः अस्माभिः यत् भवत्पक्ष इत्यादि, तत्र प्रतिमापि वर्त्तते इत्येवेति।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

आप जान लेवें कि साधर्म्य–हेतु प्रमाण से ही बोलते हैं। इससे आपके कहे जितने दूषण हैं, वे सब आपके ऊपर ही आ गये। क्योंकि आपकी प्रतिज्ञा अर्थात् वाद ही हम करेंगे, ऐसी प्रथमतः कर चुके हैं, फिर भी जल्प और वितण्डा ही बारम्बार करते हैं। इससे अपना पराजय आप ही कर चुके। क्योंकि आपको जो विद्या और बुद्धि होती, तो कभी ऐसी भ्रष्ट बात न करते और निग्रहस्थान में बारम्बार न आते। आपको संस्कृत भाषण करने का भी यथावत् ज्ञान नहीं है। क्योंकि "**प्रथमतः अस्माभिः यत्**" ऐसा भ्रष्ट[1] असम्बद्ध भाषण कभी न करते। "**किंच प्रथमतोऽस्माभिर्यत्**" ऐसा श्रेष्ठ और सम्बद्ध संस्कृत ही कहते।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

दृष्टान्ते सर्वविषयाणां साम्यप्रयोजनं नास्तीति।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

यह भी आपका कहना भ्रष्ट ही है। क्योंकि मैंने कब ऐसा कहा था कि सब प्रकार से दृष्टान्त मिलता है ? वह श्रुति एक अंश से आपके अभिप्राय से मिलती नहीं। इसमें मैंने कहा कि इस श्रुति का पढ़ना आपका मिथ्या ही है। ऐसा ही आपका कहना सब भ्रष्ट है। "**भवत्पक्ष इत्यादि तत्र प्रतिमापि वर्त्तते**[2]........."। यह आप का जो कहना है, सो प्रतिज्ञान्तर ही है। क्योंकि स्थूलत्व तुल्य जो प्रतिमा में और गर्दभादिकों में है, इस हेतु से ही प्रतिमा–पूजन का स्थापन करा चाहते हो। सो फिर भी जल्प और वितण्डा ही आती है, वाद नहीं। इससे बारम्बार आपका पराजय होता गया, फिर भी आपको बुद्धि वा लज्जा न आई। यह बड़ा आश्चर्य जानना चाहिये कि अभिमान तो पण्डितता का करें, और काम करें अपण्डित का।

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न –

प्रतिमापि वर्त्तते इत्यादि, अयं तु प्रकृतविषयस्य साधकः, न तु प्रतिज्ञान्तरम्, इत्यादि।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती –

प्रकृत विषय यही है कि प्रतिमा–पूजन का स्थापन, सो स्थापन वाद से और वेदादिक सत्यशास्त्रों के

---

१. सन्ध्यभावरूप भ्रष्ट।

२. यह ताराचरण का कथन है।

– "लाजपत राय अग्रवाल"

प्रमाण से ही करना। फिर उस प्रतिज्ञा को छोड़ के जल्प, तथा वितण्डा और मिथ्या–कल्पित वचन ये वाचस्पत्यादिकों के उनसे स्थापन करने में लग गये। अहो अत्याश्चर्य कि ताराचरण जी की बुद्धि विद्या के बिना बहुत छोटी है, जो प्रतिज्ञा करके शीघ्र ही भूल जाती है। यह आपका दोष नहीं, किन्तु आपकी बुद्धि का दोष है, और आपके काम, क्रोध, अविद्या, लोभ, मोह, भय विषयासक्त्यादिक दोषों का दोष है। तर्करत्न जी ! यह आप देख लीजिये कि कितने बड़े–बड़े दोष आप में हैं ? प्रथम तो प्रतिमा–पूजन का स्थापन पक्ष लेके फिर जब कुछ भी स्थापन न हो सका, तब **"उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्**[1]**।"** (इस प्रकार) अपने आप ही खण्डन प्रतिमा–पूजन का करने लगे कि भ्रममूल अर्थात् प्रतिमा–पूजन मिथ्या ही है। इससे आपके पक्ष का आपने ही खण्डन कर दिया, फिर मिथ्या ग्रन्थ जो **"पन्चदशी"**, उसके प्रमाण देने लग गये। और जो प्रथम वेदादिक जो बीस[2] सनातन ऋषि मुनियों के किये मूल और व्याख्यान तथा परमेश्वर के किये चार वेद इनके प्रमाण से बोलेंगे, सो आपकी प्रतिज्ञा मिथ्या हो गई। प्रतिज्ञा के मिथ्या होने से आपका पराजय भी हो गया। फिर– **"भ्रान्तिरस्माकं न दूषणीया"** यह भी पहिले आपका कहना है, सो कोई भी पण्डित न कहेगा कि भ्रान्ति भूषण होता है। यह तो आपकी भ्रान्त बुद्धि का ही वैभव है, और जो सज्जन लोग हैं, वे तो भ्रान्ति को दूषण ही जानते है। तथा– **"भ्रमः खलु द्विविधः**[3]**........"** इत्यादि यह पन्चदशी का वचन है। यह भी प्रतिज्ञा से विरूद्ध ही है, क्योंकि वेदादि शास्त्रों में इसकी गणना नहीं है। पाषाणादि की रचित मूर्त्ति में देवबुद्धि का जो करना है, सो दीपप्रभा में मणिभ्रम की नांई ही है, क्योंकि दीप तो कभी मणि न होगा, और मणि तो सदा मणि ही रहेगा। सो आपने मुख से कहा परन्तु हृदय में शून्यता के होने से कुछ भी नहीं जाना। ऐसा ही आपका सब कथन भ्रष्ट है। आपको जो कुछ भी ज्ञान होय तब तो जान सकते, अन्यथा नहीं। तर्करत्न जी ने आगे–आगे जो कुछ कहा है, सो–सो भ्रष्ट ही है। बुद्धिमान् लोग विचार लेवें। ताराचरण जी इस प्रकार के मनुष्य हैं कि कोई बुद्धिमान् (के) सामने जैसा बालक। और भाषण वा श्रवण करने के योग्य भी नहीं, क्योंकि जिसको बुद्धि और विद्या होती है, सोई कहने वा श्रवण में समर्थ होता है। सो तर्करत्न जो (में) न बुद्धि है, और न कुछ विद्या है, इससे न कहने न सुनने में समर्थ हो सकते हैं। इनका नाम जो तर्करत्न कोई ने रखा है, सो अयोग्य ही रखा है। क्योंकि **"अविज्ञाते तत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः**[4]**"**। यह गौतम मुनि जी का सूत्र है। इसका यह अभिप्राय है कि जिस पदार्थ का तत्त्वज्ञान अर्थात् जिसका यथावत् स्वरूपज्ञान न होवे, उसके ज्ञान के वास्ते कारण अर्थात् हेतु और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की उपपत्ति अर्थात् यथावत् युक्ति से ऊह नाम वितर्क अर्थात् विविध चार और युक्तिपूर्वक विविध वाक्य कहना विनयपूर्वक श्रेष्ठों से, उसे **"तर्क"** कहते हैं। तर्क– सो इसका लेशमात्र सम्बन्ध भी ताराचरण जी में नहीं होने से **"तर्करत्न"** तो नाम अनर्थक है। किन्तु इनके कथन में थोड़े से दोष मैंने दिखाये हैं, जैसा कि समुद्र के आगे एक बिन्दु। किन्तु उनके भाषण में केवल दोष ही हैं, गुण एक भी नहीं, सो विद्वान् लोग विचार कर लेवें। वेई (वही) ये ताराचरण जी हैं कि जब काशी नगर के पण्डितों से आनन्द बाग(अर्थात् काशी शास्त्रार्थ) में सभा भई (हुई) थी, उसमें विशुद्धानन्द स्वामी तथा बालशास्त्री इत्यादिक पण्डित आये थे। उनके सामने डेढ़ पहर तक एक बात में मौन करके बैठे रहे थे, दूसरी बात भी मुखसे नहीं निकाली थी। और जो उनका कुछ भी सामर्थ्य होता, तो अन्य पण्डित लोग क्यों शास्त्रार्थ

---

१. ताराचरण का कथन,

२. पूर्व पृष्ठों में गिनाये गये ६ शास्त्रों की व्याख्याओं का सम्बन्ध करने से २६ होते हैं,

३. ताराचरण का कथन,

४. न्यायदर्शन १-१-४०,

– "लाजपत राय अग्रवाल"

करते? जब उनने (उन्होंने)– **"उपासनामात्रमेव भ्रममूलम्"** (कहा, तब) उसी वक्त श्री भूदेव मुख्र्ज्या आदिक श्रेष्ठ लोग उठ गये कि पण्डित आये तो प्रतिमा–पूजन का स्थापन करने को किन्तु वह अपना आप खण्डन कर चुके। ये पण्डित कुछ भी नहीं जानते हैं, ऐसा कहके उठ के चले गये। फिर अन्य पुरूषों से उनने (उन्होंने) कहा कि पण्डित हार गया। **"श्रीमत्कथनेनैव प्रतिमापूजनविधातो जात एवेति शिष्टा विचारयन्तु"**–ताराचरण जी से मैंने कहा कि आपके कहने से ही प्रतिमा–पूजन का विघात अर्थात् खण्डन हो गया, (यह भद्र जन विचार लें) और मैं तो खण्डन करता ही हूं।

फिर पण्डित जी चुप होके ऊपर के स्थान में चले गये। उसके पीछे मैं भी ऊपर जाने को चला। तब पण्डित सीढ़ी में मिले। मैंने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि ऊपर आओ। फिर ऊपर जाके सब वृन्दावनचन्द्रादिकों के सामने उन पण्डित ताराचरण से मैंने कहा कि आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं? तब वे बोले कि–

श्री पण्डित ताराचरण जी तर्करत्न–

"मैं तो काक–भाषा का खण्डन करता हूँ, और सत्यशास्त्र पढ़ने तथा पढ़ाने का उपदेश भी करता हूँ, और पाषाणादिक मूर्त्ति–पूजन भी मिथ्या ही जानता हूँ। परन्तु मैं जो सत्य–सत्य कहूँ, तो मेरी आजीविका नष्ट हो जाये, तथा काशीराज महाराज जो सुनें तो मुझको निकाल बाहर कर देवें। इससे मैं सत्य–सत्य नहीं कह सकता हूँ, जैसे कि आप सत्य–सत्य कहते हैं।"

देखना चाहिए कि इस प्रकार के मनुष्योंसे जगत् का उपकार तो कुछ नहीं बनता, किन्तु अनुपकार ही सदा बनता है। बिना सत्य उपदेश के उपकार कभी नहीं हो सकता। इतना मुझको अवकाश नहीं है कि मिथ्यावादी पुरूषों के साथ सम्भाषण किया करूँ। जो–जो मैंने लिखा है, इसमें इसी से सज्जन लोग जान लेवें।

नोट :–

यहां तक शास्त्रार्थ का वृतान्त है। इससे आगे "प्रतिमा–पूजन" की विस्तृत आलोचना है।

– "लाजपत राय अग्रवाल"

प्रतिमादि–शब्द–विचार

– स्वामी दयानन्द सरस्वती

इसके आगे जिन शब्दों के अर्थ के नहीं जानने से टीकाकारों को भ्रम हो गया है, तथा नवीन ग्रन्थ बनाने वाले और कहने वाले तथा सुनने वाले को भी भ्रम होता है, उन शब्दों का शास्त्र–रीति तथा प्रमाण और युक्ति से जो ठीक–ठीक अर्थ है, उन्हीं का प्रकाश संक्षेप से लिखा जाता है।

प्रथम तो एक "प्रतिमा" शब्द है –

"प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा अर्थात् प्रतिमानम्"– जिससे प्रमाण अर्थात् परिमाण किया जाये, उसको कहना **"प्रतिमा"**। जैसे कि छटांक, आधपाव, पावसेर, सेर, पंसेरी इत्यादि और यज्ञ के चमसादिक पात्र। क्योंकि इनसे पदार्थों के परिमाण किये जाते हैं, इससे इन्हों का ही नाम है– **"प्रतिमा"**। यही अर्थ मनु भगवान् ने मनुस्मृति में लिखा है–

तुलामानं प्रतिमानं, सर्व च स्यात् सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु, पुनरेव परीक्षयेत्[१]।।

पक्ष–पक्ष में वा मास–मास में, अथवा छठ–छठवें मास तुला की राजा परीक्षा करे। क्योंकि तराजू की दण्डी में भीतर छिद्र करके पारा उसमें डाल देते हैं। जब कोई पदार्थ को तौल के लेने लगते हैं, तब दण्डी को पीछे नमा देते हैं, फिर पारा पीछे जाने से चीज अधिक आती है। और जब देने के समय में दंडी आगे नमा देते हैं, उससे चीज थोड़ी जाती है। इससे तुला की परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। तथा प्रतिमान अर्थात् प्रतिमा की परीक्षा (राजा) अवश्य करें जिससे कि अधिक न्यून प्रतिमा अर्थात् दुकान के बाट जितने हैं, उन्हों का नाम **"प्रतिमा"**। इसी वास्ते प्रतिमा के भेदक अर्थात् घाट– बाढ़ तौलने वाले के ऊपर (मनुस्मृति में) दण्ड देना लिखा है :–

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः।
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च[२]।।

यह मनु जी का श्लोक है। इसका अभिप्राय यह है कि संक्रम अर्थात् रथ, उस रथ के ध्वजा की यष्टि, जिसके ऊपर ध्वजा बांधी जाती है, और प्रतिमा छटांक आदिक बटखरे इन तीनों को जो तोड़ डाले वा अधिक न्यून कर देवे, उनको उससे राजा बनवा लेवे, और जैसा जिसका ऐश्वर्य उसके योग्य दण्ड करे। जो दरिद्र होवे तो उससे पांच सौ पैसा राजा दण्ड लेवे। जो कुछ धनाढय होवे तो पांच सौ रूपया उससे दण्ड लेवे। और जो बहुत धनाढय होवे तो उससे पांच सौ अशर्फी दण्ड लेवे। रथादिकों को उसी के हाथ से बनवा लेवे। इससे सज्जन लोग बटखरा तथा चमसादिक यज्ञ के पात्र उन्हों को ही **"प्रतिमा"** शब्द से निश्चित जानें।

---

१. मनुस्मृति अध्याय ८, श्लोक ४०३,

२. मनुस्मृति अध्याय ९, श्लोक २८५,

– "लाजपतराय अग्रवाल"

दूसरा "पुराण" शब्द है –

पुराभवं पुराभवा वा पुराभवश्च इति पुराणं पुराणी पुराणः।

जो पुराण पदार्थ होवे, उसको कहते हैं पुराणा। सो सदा विशेषण वाची ही रहता है, तथा पुरातन, प्राचीन और प्राक्तन आदिक सब शब्द हैं। तथा उनके विरोधी विशेषणवाची नूतन, नवीन, अद्यतन, अर्वाचीन आदिक शब्द हैं। जो विशेषणवाची शब्द होते हैं, वे सब परस्पर व्यावर्तक होते हैं। जैसे कि यह चीज पुरानी है, तथा यह चीज नवीन है। पुराण शब्द जो है सो नवीन शब्द की व्यावृत्ति कर देता है। यह पदार्थ पुराना है अर्थात् नया नहीं, और यह पदार्थ नया है अर्थात् पुराना नहीं।

जहां–जहां वेदादिकों में पुराणादिक शब्द आते हैं, वहां–वहां इन अर्थों के वाचक ही आते हैं, अन्यथा नहीं। ऐसा ही अर्थ गौतम मुनि जी के किये सूत्रों के ऊपर जो वात्स्यायन मुनि का किया भाष्य, उसमें लिखा है[1]। वहां ब्राह्मण पुस्तक जो शतपथादिक, उनों(उन सभी) का ही नाम "पुराण" है तथा शंकराचार्य जी ने भी शारीरिक–भाष्य में और उपनिषद्–भाष्य में ब्राह्मण और ब्रह्मविद्या का ही "पुराण" शब्द से ग्रहण किया है[2]। जो देखना चाहे, सो उन शास्त्रों में देख लेवे। वह इस प्रकार से कहा है कि जहां–जहां प्रश्न और उत्तरपूर्वक कथा होवे, उसका नाम "इतिहास" है। और जहां–जहां वंश–कथा होवे ब्राह्मण पुस्तकों में, उसका नाम "पुराण" है। और ऐसे जो कहते हैं कि अठारह ग्रन्थों का नाम पुराण है, यह बात तो अत्यन्त अयुक्त है। क्योंकि उस बात का वेदादिक सत्यशास्त्रों में प्रमाण कहीं नहीं है, और कथा भी इनों में अयुक्त ही है। इनों का नाम कोई पुराण रखे, तो इनों से पूछना चाहिये कि वेद क्या नवीन हो सकते हैं ? सब ग्रन्थों से वेद ही पुराने हैं। और यह बात कहते हैं कि अश्वमेध की जो पूर्ति हो जाय, उसके स दिन पुराण की कथा यजमान सुनें[3]। सो तो ठीक–ठीक है कि ब्राह्मण पुस्तक की कथा सुने, और जो ऐसा कहे कि ब्रह्मवैवर्तादिकों की क्यों नहीं सुने? उससे पूछना चाहिये कि सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जब–जब अश्वमेध भये थे, तब–तब किसकी कथा सुनी थी ? क्योंकि उस वक्त व्यास जी का जन्म भी नहीं भया था। तब पुराण कहां थे ? और जो ऐसा कहे कि व्यास जी युग–युग में थे, यह बात भी उसकी मिथ्या है। क्योंकि अब तक युद्दिष्ठिरादिकों का निशान दिल्ली आदिकों में देख पड़ता है[4]। उसी वक्त व्यास जी और व्यास जी की माता आदिक वर्तमान थे। इससे यह भी उनका कहना मिथ्या ही है। पुराण जितने हैं ब्रह्मवैवर्त्तादिक, वे सब सम्प्रदायी लोगों ने

---

१. "लोकव्यवस्थापनमितिहासपुराणस्य........" ४-१-६२.

२. बृहदारण्यक उपनिषद २-४-१० में पठित इतिहास पुराण के उदाहरण ब्राह्मण ग्रन्थों के ही दिये हैं ! यथा – **"इतिहास इति – उर्वशीपुरूरवसोः संवादादिः, "उर्वशी ह्मप्सराः" इत्यादि ब्राह्मणमेव। पुराणम् – "असद्वा इदमग्र आसीत्"** इत्यादि। सायणाचार्य ने भी तैतरीय आरण्यक ८-२१ के भाष्य में स्पष्ट लिखा है– **"ब्राह्मणं चाष्टधा भिन्नम्। तद्भेदास्तु बाजसनेयिभिराम्नायन्ते–इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि"** (बृहदारण्यक उपनिषद २-४-१०) इति। आगे सायण ने भी शंकराचार्य के समान ही इनके उदाहरणों के रूप में ब्राह्मण वाक्य ही उद्धृत किये हैं।

३. शतपथ में अश्वमेध के नवम दिन पुराण सुनने का विधान है– **"अथ नवमेऽहन् तानुपदिशति पुराणं वेदः सोयमिति किन्चिंत् पुराणमाचक्षीत"**। शतपथ ब्राह्मण १३-४-३-१३, शांखयायन श्रौतसूत्र १६-२-२५ से २७ में भी नवम दिन में पुराण पाठ का निर्देश है। आश्वत्रायन श्रौत सूत्र १०-७ में अष्टम दिन में पुराण श्रवण का विधान है।

४. यहां सम्भवतः पाण्डवों के किले की ओर यह संकेत है।

– *"लाजपत राय अग्रवाल"*

अपने–अपने मतलब के वास्ते बना लिये हैं। व्यास जी का वा अन्य ऋषि–मुनियों का किया एक भी पुराण नहीं है, क्योंकि वे बड़े विद्वान् थे और धर्मात्मा। उनका वचन सत्य ही है, तथा छः दर्शनों में उनों के सत्यवचन देखने में आते हैं, मिथ्या एक नहीं। और पुराणों में मिथ्या कथा तथा परस्पर विरोद ही है। और जैसे वे सम्प्रदायी लोग हैं, वैसे ही उनके बनाये पुराण भी सब नष्ट (भ्रष्ट) हैं। सो सज्जनों का ऐसा ही जानना उचित है, अन्यथा नहीं।

तीसरा "देवालय", और चौथा "देवपूजा" शब्द है–

देवालय, देवायतन, देवागार तथा देवमन्दिर इत्यादिक सब नाम यज्ञशालाओं के ही हैं। क्योंकि जिस स्थान में देवपूजा होवे, उनके नाम हैं देवालयादिक। और देव संज्ञा है परमेश्वर की, तथा परमेश्वर की आज्ञा जो वेद उसके मन्त्रों की भी देव संज्ञा है। देव जो होता है, सोई देवता है। यह बात पूर्वमीमांसा शास्त्र में विस्तार से लिखी है[1]। जिसको देखने की इच्छा हो, वह उस शास्त्र में देख ले, जो कि शास्त्र कर्मकाण्ड़ के ऊपर है, वे जैमिनि मुनि के किये सूत्र हैं। यहां तक उसमें लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिक देव जो देवलोक में रहते हैं, उनका भी पूजन कभी न करना चाहिये,[2] एक परमेश्वर के बिना। सो वेद में इस प्रकार से निषेध किया है कि – **"यज्ञेन न यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्[3]"**। यह यजुर्वेद की श्रुति है। ब्रह्मादिक जो देव वे जब यज्ञ करते हैं, तब उनों से अन्य कौन देव हैं, जो कि उनके यज्ञों में आके भाग लेवें। सो उनों से आगे कोई देव नहीं है। और जो कोई मानेगा तो उसके मत में अनवस्था दोष आवेगा। इससे परमेश्वर और वेदों के मन्त्र उनों को ही देव और देवता मानना उचित है, अन्य कोई नहीं। **"अग्निर्देवता[4]"**– इत्यादिक जो यजुर्वेद में लिखा है, सो अग्नि आदिक सब नाम परमेश्वर ही के हैं, क्योंकि देवता शब्द के विशेषण देने से। इसमें मनुस्मृति का प्रमाण है–

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणम्।।१।।

प्रशसितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रूक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरूष परम्।।२।।

एतमग्निं वदन्त्येके, मनुमेके प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्[5]।।३।।

इन श्लोकों से आत्मा–जो परमेश्वर–उसी का देवता नाम है, और अग्न्यादिक जितने नाम हैं, वे भी परमेश्वर के ही हैं। परन्तु जहां–जहां ऐसा प्रकरण हो कि उपासना, स्तुति, प्रार्थना तथा इस प्रकार के

---

१. मीमांसादर्शन, ६-१-६-६, के मन्त्र–देवताधिकरण में मन्त्र को ही देवता माना गया है।

२. मीमांसादर्शन, ६-१-६-६, के मन्त्र–देवताधिकरण में विग्रहवती–शरीरधारी देवता का खण्डन स्पष्ट शब्दों में किया गया है। इससे स्पष्ट है कि यदि ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिक कोई देव लोक में रहने वाले देवता हों, तो भी वे यज्ञ में आहूत–बुलाये नहीं जाते।

३. यजुर्वेद, अध्याय–३१ मन्त्र १६,

४. यजुर्वेद, अध्याय–१४ मन्त्र २०,

५. मनुस्मृति, अध्याय–१२ श्लोक ११९, १२२ व १२३, (श्लोक १२३ पाठान्तर से है)

– "लाजपतराय अग्रवाल"

विशेषण, वहां–वहां परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, अन्यत्र नहीं[१]। किन्तु **"सर्वमात्मन्यवस्थितम्"** सिवाय परमेश्वर के कोई में सब जगह नहीं ठहर सकता, और **"प्रशासितारं सर्वेषाम्"** इत्यादिक विशेषणों से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है, अन्य का नहीं, क्योंकि सबका शासन करने वाला बिना परमेश्वर से (के) कोई नहीं, तथा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म और पर–पुरूष परमेश्वर से भिन्न ऐसा कोई नहीं हो सकता है।

निरूक्त में भी यह लिखा है कि – **"यत्र देवतोच्यते तत्र तल्लिङ.गों मन्त्रः[२]।"** जहां–जहां देवता शब्द आवे, तहां–तहां उस नाम वाले मन्त्र को ही लेना। जैसा कि– **"अग्निर्देवता[३]"** इसमें अग्नि शब्द आया सो जिस मन्त्र में अग्नि शब्द होवे, उस मन्त्र का ही ग्रहण करना। **"अग्निमीडे पुरोहितम्[४]"** इति, यह मन्त्र ही देवता है, अन्य कोई नहीं। इससे क्या आया कि परमेश्वर और वेदों के मन्त्र ही **"देव"** और **"देवता"** हैं। जिस स्थान में होम, परमेश्वर का विचार ध्यान और समाधि करें, उसके नाम हैं देवालयादिक। इसमें मनुस्मृति का प्रमाण भी है–

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिसेवनम्।।१।।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितन् श्राद्धैर्नृ नन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा[५]।।२।।

इन श्लोकों से क्या आया कि होम जो है सोई देवपूजा है, अन्य कोई नहीं। और होम–स्थान जितने हैं वे ही देवालयादिक शब्दों से लिये जाते हैं। **"पूजा"** नाम **"सत्कार,"** क्योंकि **"अतिथिपूजनम्"**, **"होमैर्देवानर्चयेत्"**– अतिथियों का पूजन नाम सत्कार करना, तथा देव परमेश्वर और मन्त्र इन्हों का सत्कार इसका नाम है **"पूजा"**, अन्य का नहीं। और पाषाणादि–मूर्ति–स्थान देवालयादिक शब्दों से भी नहीं लेना। तथा घण्टानादादि पूजा शब्द से भी कभी नहीं लेना। **"देवल"** और **"देवलक"** शब्द का अर्थ है कि –

यद्वित्तं यज्ञशीलानां, देवस्वं तद्विदुर्बुधाः।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं प्रचक्षते[६]।।

यह मनु का श्लोक है। इसका यह अभिप्राय है कि जिन्हों का यज्ञ करने का शील अर्थात् स्वभाव होवे, उनका सब धन यज्ञ के वास्ते ही होता है अर्थात् देवार्थ धन है। **"यद्दैवं तदेव देवस्वम्"** अर्थात् होम के लिये जो धन होवे उसका नाम "देवस्व" है। सो भिक्षा अथवा प्रतिग्रह करके यज्ञ के नाम से धन लेके यज्ञ तो करे नहीं, और उस धन से अपना व्यवहार करे, इसका नाम है **"देवल"**। सो इसकी शास्त्र में निन्दा लिखी है। देवपितृकार्य में उसको निमन्त्रण कभी न करना चाहिये, ऐसा उसका निषेध लिखा है। और जो यज्ञ के धन

१. तुलना करो "सत्यार्थप्रकाश" के प्रथम समुल्लास से,

२. "निरूक्त" में ऐसा साक्षात् वचन नहीं है। यह तदर्थ–प्रतिपादक वचन है। "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में भी ऐसा ही वचन पढ़ा है।

३. यजुर्वेद, अध्याय, १४ मन्त्र २०,

४. ऋग्वेद, मण्डल–१, सूक्त १, मन्त्र १,

५. मनुस्मृति, अध्याय ३, श्लोक ७० व ८१,

६. मनुस्मृति अध्याय–११ श्लोक २०, ("यद्धनं"–पाठ भेद से)

– "सम्पादक"

की चोरी करता है, वह होता है– **"देवलक"** (देखिये) यथा–**"कुत्सितो[1] देवलो "देवलकः"। कुत्सिते इत्यनेन कन् प्रत्ययः"**। **"देवलक"** तो अत्यन्त निन्दित है। एक यह अन्धकार लोगों का देखना चाहिये कि– **"विद्वान् भोजनीयः सत्कर्तव्यश्चेति"**– विद्वान् को भेजन कराना चाहिये और उसका सत्कार भी करना चाहिये। इससे कोई की ऐसी बुद्धि न होगी कि पाषाणादिक मूर्ति को भोजन कराना वा उसका सत्कार करना चाहिये। वह भी बात ऐसी ही है। एक बात वे लोग कहते हैं कि– **"पाषाणदिक तो देव नहीं हैं, परन्तु भाव से वे देव हो जाते हैं"**। उनसे पूछना चाहिये कि भाव सत्य होता है वा मिथ्या[2] ? जो वे कहें कि भाव सत्य होता है, फिर उनसे पूछना चाहिये कि कोई भी मनुष्य दुःख का भाव नहीं करता, फिर उसको क्यों दुःख होता है? और सुख का भाव सब मनुष्य चाहते हैं, फिर उनको सुख सदा क्यों नहीं होता? फिर वे कहते हैं कि यह बात तो कर्म से होती है। अच्छा तो आपका भाव कुछ भी नहीं ठहरा, अर्थात् मिथ्या ही हुआ है, सत्य नहीं हुआ। आपसे मैं पूछता हूं कि अग्नि में जल का भाव करके हाथ डाले, तो क्या वह न जल जायेगा ? किन्तु जल ही जायेगा। इससे क्या आया–पाषाण को पाषाण ही मानना और देव को देव मानना चाहिये, अन्यथा नहीं। इससे जो जैसा पदार्थ है, वैसा ही उसको सज्जन लोग मानें।

काश्यादिक स्थान, गंगादिक तीर्थ, एकादशी आदिक व्रत, राम, शिव, कृष्णादिक नाम स्मरण, तथा तोबा शब्द वा यीसू के विश्वास से पापों का छूटना और मुक्ति का होना, तिलक छाप, माला धारण, तथा शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, क्रिश्चन और मुहम्मदी और नानक, कबीर आदिक सम्प्रदाय, इन्हों से पाप सब छूट जाते हैं और मुक्ति भी हो जाती है– यह अन्यथा बुद्धि ही है। क्योंकि इस प्रकार के सुनने और मिथ्या निश्चय के होने से सब लोग पापों में प्रवृत्त हो जाते हैं, कोई न भी होगा। कभी कोई मनुष्य पाप करने में भय नहीं करते हैं। जैसे–

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं, काशीक्षेत्रे विनश्यति।
काशीक्षेत्रे कृतं पापं पंचक्रोश्यां विनश्यति।।१।।

पंचक्रोश्यां कृतं पापमन्तर्गृह्यां विनश्यति।
अन्तर्गृह्यां कृतं पापमविमुक्ते विनश्यति।।२।।

अविमुक्ते कृतं पापं स्मरणादेव नश्यति।
काश्यां तु मरणान्मुक्तिर्नात्र कार्या विचारणा।।३।।

इत्यादि श्लोक काशीखण्डादिकों में लिखे हैं। **"काश्यां मरणान्मुक्तिः"** कोई पुरूष इसको श्रुति कहता है। सो यह वचन उसका मिथ्या ही है, क्योंकि चारों वेदों के बीच में कहीं नहीं है। कोई ने मिथ्या जाबालोपनिषद्[3] रच लिया है, किन्तु अथर्ववेद के संहिता में तथा कोई वेद के ब्राह्मण में इस प्रकार की श्रुति है नहीं। इनसे यह श्रुति तो कभी नहीं हो सकती, किन्तु कोई ने मिथ्या कल्पना कर ली है, जैसे कि– **"अन्यक्षेत्रे कृतं पापं........"** इत्यादि मिथ्याश्लोक बना लिये हैं। इस प्रकार के श्लोकों को सुनने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रष्ट होने से सदा पाप–प्रवृत्त हो जाते हैं। इससे सब सज्जन लोगों को निश्चित जानना चाहिये

---

१. अष्टाध्यायी, ५-३-७४,

२. यह विचार "सत्यार्थ प्रकाश" के ग्यारहवें समुल्लास में भी किया गया है।

३. जाबालोपनिषद–२ तथा मुक्तिकोपनिषद-१-१६ दोनों स्थानों पर वह भाव है, पाठ नहीं।

– "सम्पादक"

कि जितने–जितने इस प्रकार के माहात्म्य लिखे हैं, वे सब मिथ्या ही हैं। इन्हीं से मनुष्य का बड़ा अनुपकार होता है। जो कोई धर्मात्मा बुद्धिमान् राजा होवे, तो इन पुस्तकों का पठन–पाठन, सुनना–सुनाना बन्द कर दे, और वेदादि सत्य शास्त्रों की यथावत् प्रवृत्ति करा देवे, तब इस उपद्रव की यथावत् शांति होने से सब मनुष्य शिष्ट हो जायें, अन्यथा नहीं। **"विषयवती वा प्रवृत्तिरूत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी।** (योगदर्शन समाद्दिपाद सूत्र ३५) इस सूत्र के भाष्य में लिखा है कि – **"एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपरत्नादिषु प्रवृत्तिरूत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्येति"**। इससे प्रतिमा–पूजन कभी नहीं आ सकता, क्योंकि इन्हों में देवबुद्धि करना नहीं लिखा। किन्तु जैसे वे जड़ हैं, वैसे ही योगी लोग उनको जानते हैं। और ब्राह्यमुख जो वृत्ति उसको भीतरमुख करने के वास्ते योगशास्त्र की प्रवृत्ति है। बाहर के पदार्थ का ध्यान करना योगी लोग (लोगों) को नहीं लिखा। क्योंकि जितने सावयव पदार्थ हैं, उनमें कभी चित्त की स्थिरता नहीं होती। और जो होवे तो मूर्तिमान् धन पुत्र दारादिक के ध्यान में सब संसार लगा ही है, परन्तु चित्त की स्थिरता कोई की भी नहीं होती। इस वास्ते यह सूत्र लिखा– **"विशोका वा ज्योतिष्मती"**। (योगदर्शन समाधिपाद् सूत्र 36) इसका यह भाष्य है–

"प्रवृत्तिरूत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीत्यनुवर्त्तते। हृदयपुण्डरीके धारयतो बुद्धिसंवित् बुद्धसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पन्तत्र स्थिति–वैशारद्यात् प्रवृत्तिः सूर्येन्दुग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते। तथास्मितायां समापन्नं चित्त निस्तरंगमहोदधिकल्पं शान्तमनन्त–मस्मितामात्रं भवति। यत्रेदमुक्तम्–तमणुमात्रमात्मा– नमनुविद्या–स्मीति एवं तावत् संप्रजानीत इति। एषा द्वयी विशोका विषयवती, अस्मितामात्रा च प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते, यया योगिनश्चित्तं स्थितिपदं लभत इति"।

इसमें यह देखना चाहिये कि हृदय में धारणा चित्त की लिखी। इससे निर्मल प्रकाशस्वरूप चित्त होता है। जैसा सूक्ष्म विभु आकाश है, वैसी ही योगी की बुद्धि होती है। तत्र नाम अपने हृदय में विशाल स्थिति के होने से बुद्धि की जो शुद्ध प्रवृत्ति, सोई बुद्धि सूर्य, चन्द्र, ग्रह, मणि इन्हों की जैसी प्रभा, वैसी ही योगी की बुद्धि समाधि में होती है। तथा अस्मितामात्रा अर्थात् यही मेरा स्वरूप है, ऐसा साक्षात्कार स्वरूप का ज्ञान बुद्धि को जब होता है, तब चित्त निस्तरंग अर्थात् निष्कम्प समुद्र की नाई एक रस व्यापक होता है। तथा शान्त, निरूपद्रव, अनन्त अर्थात् जिसकी सीमा न होवे यही मेरा स्वरूप है, अर्थात् मेरा आत्मा है–सो विगत अर्थात् शोकरहित जो प्रवृत्ति वही विषयवती प्रवृत्ति कहाती है। उसको अस्मितामात्र प्रवृत्ति कहते हैं, तथा ज्योतिष्मती भी उसी को कहते हैं। योगी का जो चित्त है, सोई चन्द्रादित्य आदिक स्वरूप हो जाता है।

सूत्र–स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा.......... (योगदर्शन समाधिपाद सूत्र ३८)

भाष्य–स्वप्नज्ञानालम्बनं निद्राज्ञानावलम्बनं वा तदाकार योगिनश्चित्तंस्थितिपदं लभत इति।

जैसे स्वप्नावस्था में चित्त ज्ञानस्वरूप होके पूर्वानुभूत संस्कारों को यथावत् देखता है, तथा निद्रा अर्थात् सुषुप्ति में आनन्दस्वरूप ज्ञानवान् चित्त होता है, ऐसा ही जागृतावस्था में जब योगी ध्यान करता है इस प्रकार आलम्ब से तब योगी का चित्त स्थिर हो जाता है।

सूत्र–यथाभिमतध्यानाद्वा................ (योगदर्शन समाधिपाद सूत्र ३९)

भाष्य–यदेवाभिमतं तदेव ध्यायेत्, तत्र लब्धस्थितिकमन्यत्रापि स्थितिपदं लभत इति।

"नासिकाग्रे धारयतो (ऽस्य) या (दिव्य) गन्धसंवित्" (व्यास भाष्य समाधिपाद सूत्र ३५) इससे लेके **"निद्राज्ञानालम्बनं वा"** (व्यास भाष्य सामधिपाद सूत्र ३८) यहां तक शरीर में जितने चित्त के स्थिर करने के वास्ते स्थान लिखे हैं, इन्हों में से कोई स्थान में योगी चित्त को धारण करे। जिस स्थान में अपनी अभिमति,

उसमें चित्त को ठहराये।

सूत्र–देशबन्धश्चित्तस्य धारणा............... (योगदर्शन विभूतिपाद सूत्र १)

भाष्य–नाभिचक्र हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति। बन्धो धारणा नाभि–हृदय–मूर्द्धा–ज्योति............।

अर्थात् नेत्र, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि देशों के बीच में चित्त को योगी धारण करे। तथा ब्राह्य विषय जैसा कि ओंकार वा गायत्री मन्त्र, इसमें चित्त लगावे, हृदय से क्योंकि–

सूत्र–तज्जपस्तदर्थभावनम्............... (योगदर्शन विभूतिपाद सूत्र २८)

यह सूत्र है योग का। इस (ओंकार) का योगी जप अर्थात् चित्त से पुनः–पुनः आवृत्ति करे, और इसका अर्थ जो ईश्वर उसको हृदय में विचारे।

सूत्र–तस्य वाचकः प्रणवः............... (योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २७)

ओंकार का वाच्य ईश्वर है। और उसका वाचक ओंकार है। बाह्य विषय से इनको ही लेना, और कोई को नहीं। क्योंकि अन्य में प्रमाण कहीं नहीं।

सूत्र– तत्र प्रत्ययैंकतानता ध्यानम्............. (योगदर्शन विभूतिपाद सूत्र २)

भाष्य–तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्।

तीन देशों में अर्थात् नाभि आदिकों में, ध्येय जो आत्मा उस आलम्बन की और चित्त की एकतानता, अर्थात् परस्पर दोनों की एकता, चित्त आत्मा से भिन्न न रहे तथा आत्मा चित्त से पृथक् न रहे, उसका नाम है–सदृशप्रवाह। जब चित्त से प्रत्येक चेतन से ही युक्त रहे, अन्य प्रत्यय कोई पदार्थान्तर का स्मरण न रहे, तब जानना कि ध्यान ठीक हुआ।

सूत्र–तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

(योगदर्शन विभूतिपाद सूत्र ३)

जब ध्याता ध्यान और ध्येय इन तीनों का पृथक् भाव न रहे, तब जानना कि समाधि सिद्ध हो गयी।

सूत्र–त्रयमन्तरंग पूर्वेभ्यः............... (योगदर्शन विभूतिपाद सूत्र ७)

यमादिक पांच अंगों से धारणा ध्यान और समाधि ये तीन अन्तरंग है, और यमादिक बहिरंग हैं।

सूत्र–भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्।।२६।।चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम्।।२७।।ध्रुवे तद्गतिज्ञानम्।।२८।। नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्।।२९।। मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्।।३२।। प्रातिभाद्वा सर्वम्।।३३।।

(योगदर्शन विभूतिपाद)

इत्यादिक सूत्रों से यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणादिक तीन अंग आभ्यन्तर के हैं। सो हृदय में ही योगी परमाणु–पर्यन्त जितने पदार्थ हैं, उनको योग–ज्ञान से ही जानता है। बाहर के पदार्थों से किंचिन्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता, किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है और से नहीं। इस विषय में जो कोई अन्यथा कहे, सो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें। क्योंकि :–

सूत्र–योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः............... (योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २)

सूत्र–तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्............. (योगदर्शन समाधिपाद सूत्र ३)

जब योगी चित्तवृत्तियों का निरोध करता है बाहर और भीतर से, उसी वक्त द्रष्टा जो आत्मा उस चेतन स्वरूप में ही स्थित हो जाता है, अन्यत्र नहीं।

सूत्र–विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्.....(योगदर्शन समाधिपाद सूत्र ८)

विपरीत ज्ञान जो होता है, उसी को मिथ्याज्ञान कहते हैं। उसको तो योगी छोड़ के ही होता है, अन्यथा कभी नहीं। इससे क्या आया कि– **"कोई योगशास्त्र से पाषाणादिक मूर्ति का पूजन कहे, सो मिथ्या ही कहता है,"** इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

श्लोक

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यवचना।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटिगुणा [1]राष्ट्रिशरणा,
स को दान्तः शान्तो विदितविदितौ वेद्यविदितः।।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितमिदमिति विज्ञेयम्।।

---

१. "राष्ट्रिन्" शब्द निघण्टु (२-२२) में ईश्वर–नामों में पढ़ा है।

एक सौ इकतीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान	:	मेला–चांदापुर (शहाजहांपुर) उ0प्र0
दिनांक	:	१६ व २० मार्च सन् १८७७ ई0
विषय	:	(१) ईश्वर ने जगत को किस वस्तु से, किस समय और किस उद्देश्य से रचा ?
		(२) मुक्ति क्या पदार्थ है और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?
मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता	:	सर्वश्री मौलवी मुहम्मद कासिम साहब,
ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता	:	पादरी स्काट साहब,
	:	पादरी नोबिल साहब,
आर्यों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता	:	स्वामी दयानन्द सरस्वती,
	:	मुंशी इन्द्रमणि जी,
शास्त्रार्थ के आयोजनकर्ता	:	रहीस (कायस्थ) मुंशी प्यारेलाल साहब, कबीर पन्थी

(क्रमशः)

प्रशासनिक स्वीकृतिदाता	: कलक्टर ज़नाब, मिस्टर रार्बट साहिब, हाकिम।
शास्त्रार्थ में उपस्थित अतिसम्मानीय भद्रजन "शहाजहांपुर" से पधारे	: (१)–सर्वश्री बाबु हरगोविन्द साहब, हैड क्लर्क–कलक्टर, (२)–मौलवी मियाँ मोती साहब, (३)–लाला रामप्रसाद साहब आनरेरी मजिस्ट्रेट, (४)–लाला बनवारी लाल, (५)– बाबु बिहारी लाल, (६)– मुंशी सोहन लाल, (७)– मौहम्मद हैदरअली मुख्त्यार, (८)–हाफ़िज उल्ला खाँ, (९)– मुहम्मद अली साहब, (१०)– सखावत हुसैन साहब, वकील।
"लखनऊ" से पधारे	: श्री राजाराम खजांची तथा अन्य बहुत से रईस।
"मुरादाबाद" से पधारे	: श्री मुंशी जगन्नाथप्रसाद साहब, रईस आदि।
"अमरोहा" से पधारे	: श्री पण्डित बद्रीदास जी आदि रईस।
"अलीगढ़" से पधारे	: श्री कुंवर मुकुन्दसिंह जी रईस आदि।
"बरेली" से पधारे	: श्री पण्डित मथुराप्रसाद जी रईस आदि।
"बनारस" से पधारे	: श्री मुंशी दयाशंकर साहब डिप्टी आदि
"देहली" से पधारे	: श्री मौलवी अब्दुल मन्सूर आदि अनेकों प्रतिष्ठाप्राप्त सज्जन इस शास्त्रार्थ में "सत्यासत्य" के जानने की जिज्ञासा लेकर उपस्थित हुए थे।

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "सम्पादक" एवं "प्रकाशक" का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जिवित रखने का प्रयास किया।

– "लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

– "डॉ0 भवानी लाल भारतीय"

उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर जिलान्तर्गत "चांदापुर" कस्बे में मुन्शी प्यारेलाल नामक एक कबीरपन्थी कायस्थ जमींदार निवास करते थे। उन्होंने परस्पर धर्म–चर्चा के लिये दिनांक १६ व २० मार्च सन् १८७७ ई0 (तदनुसार चैत्र शुक्ल ५ व ६ सम्वत् १६३४ विक्रमी) को एक मेले का आयोजन किया। इस धर्म–चर्चा–प्रसंग में ईसाई–पादरी, मुसलमान–मौलवी तथा पण्डित–गण एकत्रित हुए। आर्य धर्म का प्रतिनिधित्व **"स्वामी दयानन्द"** तथा **"मुन्शी इन्द्रमणि"** मुरादाबादी ने किया। स्वामी जी की हार्दिक इच्छा थी कि यह मेला निरन्तर दो सप्ताह तक चलता रहे, ताकि सभी विचारणीय एवं विवादाग्रस्त विषयों पर तात्त्विक–निर्णय हो सके, परन्तु मौलवियों और पादरियों की असहमति के कारण यह मेला अधिक दिन तक नहीं चल सका। इसमें निम्नलिखित विचारणीय विषय रक्खे गये थे–

१. ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय और किस उद्देश्य से रचा ?

२. ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं ?

३. ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४. वेद, बाइबिल और कुरान के (इलहामी) ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है ?

५. मुक्ति क्या पदार्थ है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

समय के अभाव में केवल प्रथम तथा प०चम विषय पर ही विचार हो सका। "मेला–चांदापुर" के नाम से जो पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसके अन्त में ग्रन्थ–रचना के समय का सूचक निम्न श्लोक मिलता है–

ऋषिकालांकब्रह्माब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मंगलवारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया।।

अर्थात सम्वत् १६३७ विक्रमी श्रावण शुक्ला द्वादशी दिन मंगलवार (१७ अगस्त सन् १८८० ई0) को यह ग्रन्थ लिखा गया।

दिनांक १२ अप्रैल सन् १८७८ ई0 के ऋषि के एक पत्र से विदित होता है कि मेला–चांदापुर के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त उर्दू भाषा में लिखा जाकर उक्त तिथि से पूर्व ही प्रकाशित हो गया था, तथा उसका मूल्य पांच पैसे था[1]। परन्तु उक्त उर्दू–संस्करण के उपलब्ध न होने से यह ज्ञात नहीं होता कि उसका लेखक तथा प्रकाशक कौन था ? मार्च सन् १८८० ई0[2] के **"आर्य–दर्पण"** मासिक पत्र में मुन्शी बख्तावरसिंह ने **"सत्यधर्म विचार"** शीर्षक से इस शास्त्रार्थ का विवरण उर्दू और हिन्दी में पृथक्–पृथक् समानान्तर कालमों में प्रकाशित किया था। यह विवरण उक्त पत्र के पृष्ठ ५३ से पृष्ठ ६० तक छपा था। इसी विवरण को उसी प्रकार उर्दू

नोट–

१. दृष्टव्य–**"ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन"** पृष्ठ १४५, तृतीय संस्करण। यहां पुराना **"पांच पैसा"** अभिप्रेत है। यह वर्तमान के साढ़े सात पैसे के बराबर था।

२. इस तारीख का पूर्वोक्त पुस्तक के लेखनकाल से विरोध पड़ता है। इस पर विचार होना चाहिये।

– "युधिष्ठिर मीमांसक"

व हिन्दी में "**वैदिक यन्त्रालय**" काशी द्वारा सम्वत् १६३७ विक्रमी में पृथक पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। यही इस शास्त्रार्थ का प्रथम संस्करण माना जा सकता है। थोड़े समय पश्चात् इसका पृथक् उर्दू संस्करण भी छपा, जिसकी सूचना हमें "**दयानन्द दिग्विजयार्क**" खण्ड २ पृष्ठ ५ पर छपे विज्ञापन से मिलती है। यहां इस उर्दू संस्करण को "**सत्यासत्य–विवेक**" का नाम दिया गया है। यद्यपि स्वामी जी के प्रकाशित शास्त्रार्थों में पादरी टी0जी0 स्काट से हुये बरेली के शास्त्रार्थ को "**सत्यासत्य विवेक**" के नाम से प्रकाशित किया गया है। बात यह है कि उस युग में–"**सत्य–धर्म विचार,**" "**सत्यासत्य विवेक**" **तथा** "**सत्यमत–निरूपण**" जैसे नाम सामान्यतया हर ऐसे ग्रन्थ के लिये प्रयुक्त होते थे, जिनमें परस्पर धर्म–चर्चा या वास्तविक धर्म–जिज्ञासा निहित रहती थी। मेला–चांदापुर में हुए इस शास्त्रार्थ का विवरण मुसलमानों की ओर से "**मुबाहसा शहाजहांपुर**" नाम से उर्दू में प्रकाशित हुआ था। "**मुजतबाई प्रेस**" दिल्ली में छपी इस पुस्तक को पण्डित महेशप्रसाद जी मौलवी[1] ने सन् १६१४ ई0 में देखा था। "**चांदापुर–शास्त्रार्थ**" का संक्षिप्त विवरण श्रीपण्डित गोपाल शास्त्री, शर्मा द्वारा रचित "**दयानन्ददिग्विजयार्क**" भाग १ के मयूख ६ में छपा है। उसे हम पाठकों के मनोरंजनार्थ यहां उद्धृत करते हैं–

खुलासा हाल–मेला चांदापुर, जिला शहाजहांपुर (उ0प्र0)

यह मेला कबीरपन्थी मुन्शी प्यारेलाल साहब रईस कौम कायस्थ ने अपना हजारहा रूपया लगाकर सत्य–धर्म के निर्णयार्थ अपने ग्राम "**चांदापुर**" में लगाया था। इसकी मन्जूरी जनाब मिस्टर राबर्ट साहिब हाकिम जिला से लेकर इश्तिहार बहुत दिन पहले से सर्वत्र भेजा गया था, कि जो साहब इस मेले में आयेंगे उनका बहुत अच्छी प्रकार आतिथ्य होगा। तदनुसार चारों तरफ से हजारों आलिम व फाजिल आर्य व मुसलमान व ईसाई आदि लोग एकत्र हुये थे, उनमें से विशेष प्रसिद्धों का नाम अन्त में लिखा गया है।

मिती चैत्र सुदी चौथ व पंचमी संवत् १६३४ विक्रमी मुताबिक तारीख १६ व २० मार्च सन् १८७७ ई0 को यह अपूर्व मेला बड़ी धूमधाम और आनन्द के साथ (आयोजित) हुआ था। प्रथम दिवस मेला के प्रबन्ध और नियम इस प्रकार बांधे गये कि ईसाई व मुसलमानों में से पांच–पांच और आर्यों में से केवल दो मनुष्य अर्थात् श्रीयुत स्वामीजी (स्वामीदयानन्द जी) व मुन्शी इन्द्रमणि जी शास्त्रार्थ करने को प्रधान सभासद रहें। और ये लोग मुन्शी प्यारेलाल जी के अधोलिखित पांचों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार अपने–अपने मतानुसार प्रीतिपूर्वक देवें कि जिससे हाजिरीन (श्रौता) जलसा तृप्त होवें। और इन तीनों में से किसका मत (मजहब) सत्य है ? यह अच्छी प्रकार सबको प्रतीति हो जावे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्रथम पादरी नोविल वा स्काट साहब आदि, बाद मौलवी कासिम साहब आदि, पश्चात स्वामी जी महाराज देवें। जो कोई किसी पर प्रश्न करे वह १० मिनट में करे और हर एक का उत्तर आधे घन्टे में पूरा हो जाया करे।

दूसरे दिन बाग में दिन के साढ़े सात बजे से ११ बजे तक और १ बजे से ४ बजे तक शास्त्रार्थ होकर मेला समाप्त हुआ। स्वामीजी चाहते थे कि और भी कुछ दिन इसकी यथेच्छ चर्चा रहे, परन्तु पादरी व मौलवी लोग न जमे (तैयार हुए)। तथापि उतने ही अवसर में सबको निश्चित हो गया कि सच्चा धर्म वैदिक ही है।

---

१. यह अरबी फ़ारसी विभाग, हिन्दु विश्वविद्यालय, काशी के अध्यक्ष भी रहे, तथा अमर स्वामी जी महाराज के गुरू भाई–आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरा के सहपाठी थे, इन्होंने ईरान की यात्रा भी की, तथा बहुत सी विद्वतापूर्ण पुस्तकें भी लिखी जैसे– "**महर्षि दयानन्द कब और कहाँ**" आदि–आदि।।

– 'लाजपत राय अग्रवाल'

सब लोग स्वामी जी के गुणों की तारीफ करते व उनको अन्तःकरण से समर्पित धन्यवाद देते हुये निज–निज स्थानों को गये। समाप्ति के समय मौलवी लोगों ने बड़ा गड़बड़ डाल दिया था। इसलिये कि गमारों (नासमझों वा अज्ञानियों) को अपनी जीत प्रकाशित होवे, परन्तु तारीफ है पादरी लोगों की कि जिनने (जिन्होंने) सिर तक ऊपर नहीं किया, बल्कि शास्त्रार्थ के समय मौलवी लोगों से स्पष्ट कहा कि– **"भाई मौलवी लोगो ! स्वामीजी ऐसी बातों का उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं। हम तुम हजारों मिलकर भी इनसे बातें करें तो भी इनके बराबर नहीं हो सकते। इसलिये इस विषय में अब अधिक खींचातानी करना सभ्यधर्म नहीं"।** इसके बाद पादरी लोग रात को स्वामीजी के डेरे पर गये, वहां अपनी तरफ से पुनर्जन्म पर चार घण्टा वार्ता करके निःसन्देह (निःशंक) होकर वापिस चले गये।

तारीख २१ व २२ को खत बनाम मुन्शी इन्द्रमणि जी मोतीमियां साहब रईस शाहजहांपुर इस मजमून के भेजे कि आप स्वामीजी को साथ ले इसी जगह तशरीफ लावें, तो आपसे मौलवी अहमद अली साहब पुनर्जन्म के बारे में बहस करेंगे। उसके अनुसार ये दोनों साहब तारीख २२ की दोपहर को शाहजहांपुर पहुंच कर डिप्टी साहिब के मकान पर तारीख २३ के दोपहर तक ठहरे और इन्तजार किया, परन्तु कोई भी सामने नहीं आया। क्या आते ? वह तो केवल मुसलमानों की गीदड़भभकी थी।

नाम शख्श मोतबिरान हाज़िरीन मेला चांदापुर

(मेला चांदापुर में पधारे विशिष्ठ व्यक्तियों की सूची)

शहाजहांपुर से पधारे हुए–

१. सर्वश्री बाबु हरगौविन्द साहब, हैड कलर्क–कलक्टरी।

२. मौलवी मोतीमियाँ साहब।

३. लाला रामप्रसाद साहब, आनरेरी मजिस्ट्रेट।

४. लाला बनवारी लाल।

५. बाबु बिहारी लाल।

६. मुन्शी सोहन लाल।

७. मौहम्मद हैदरअली मुख्त्यार।

८. हाफ़िजउल्ला खाँ।

६. मौहम्मद अली साहब।

१०. सखावत हुसैन साहब वकील।

११. राजाराम खजान्ची तथा अन्य बहुत से रईस, (लखनऊ से)

१२. मुन्शी जगन्नाथ प्रसाद साहब रईस आदि, (मुरादाबाद)

१३. पण्डित बद्रीदास जी आदि रईस, (अमरोहा)

१४. कुंवर मुकुन्द सिंह जी रईस आदि (अलीगढ़)

१५. पण्डित मथुराप्रसाद आदि रईस, (बरेली)

१६. मुंशी दयाशंकर साहब डिप्टी आदि (बनारस)

१७. मौलवी अब्दुल मन्सूर आदि (देहली)

इस प्रकार और भी कानपुर व फर्रूखाबाद आदि नगरों के बहुत से सभ्य एवं प्रतिष्ठा प्राप्त लोग इस आयोजन में मौजूद थे।

जिसको इस मेले की कैफियत विस्तारपूर्वक देखनी होवे वह दो आना (वर्तमान के दस रूपये) भेजकर इसकी जुदा बनी हुई किताब "**वैदिक–यन्त्रालय**" इलाहाबाद से मंगवा लेवे, जो देखने के लायक और नागरी लिपि की भी मिलेगी।

"**सत्य–धर्म–विचार**" के निम्न संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं–

१. वैदिक–यंत्रालय का संस्करण।

२. आर्य साहित्य–मण्डल (लिमिटेड) अजमेर।

३. गोविन्दराम हासानन्द,[1] नई सड़क, दिल्ली का संस्करण। सम्पादक–पं0 जगत्कुमार शास्त्री।

4. **"Mela Chandapur"** (Translated into English) by the late Bawa Arjun Singh, Editor Arya Patrika and Revised by Bawa Chhajju Singh. अंग्रेजी का यह संस्करण The Aryan Printing, Publishing and General Trading Company Limited, Lahore द्वारा प्रकाशित हुआ था।

यहाँ आगे "**सत्यधर्मविचार**" जो वैदिक यंत्रालय द्वारा प्रकाशित किया गया था, उसी के आधार पर यह पाठ दिया जाता है।

——— : 0 : ———

१. यह संस्था आजकल मैसर्स "**विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द**" के नाम से प्रसिद्ध है।

'लाजपत राय अग्रवाल'

शास्त्रार्थ आरम्भ

("सत्यधर्म–विचार"–मेला–चांदापुर)

[illegible] मार्च सन् १८७७ ई०=चैत्र सुदी ४-५, सम्वत् १६३४ विक्रमी

(जिसको मुन्शी बखतावरसिंह एडीटर "**आर्य–दर्पण**" ने शोधकर भाषा और उर्दू में "**वैदिक यन्त्रालय**" काशी में अपने प्रबन्ध से छापकर प्रकाशित किया था)

भूमिका

धर्मचर्चा अर्थात् "**ब्रह्मविचार**"–मेला चांदापुर,[1] कि जिसमें बड़े बड़े विद्वान्[2] आर्य्यों, ईसाइयों और मुसलमानों की ओर से एक सत्य के निर्णय के लिए, इकट्ठे हुए थे; सज्जन पाठकगणों के हितार्थ मुद्रित किया जाता है कि जिससे प्रत्येक मतों का अभिप्राय सब पर प्रकाशित हो जावे। सब सज्जनों को (वह चाहे) किसी मत के भी क्यों न हो, उचित है कि पक्षपातरहित होकर इसको सुहृद्भाव से देखें। विदित हो कि यह मेला दो दिन रहा। मेले के आरम्भ से पूर्व कई लोगों ने स्वामीजी के समीप जाकर कहा कि आर्य और मुसलमान मिल के ईसाइयों का खण्डन करें तो अच्छा है इस पर स्वामी दयानन्द ने कहा–

स्वामीदयानन्द सरस्वती–

यह मेला सत्य और असत्य के निर्णय के लिये किया गया है। इसलिए हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़कर प्रीतिपूर्वक सत्य का निश्चय करें, किसी से विरोध करना कदापि योग्य नहीं।

इसके पश्चात् विचार का समय नियत किया गया। पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते, और यही विज्ञापन में भी छापा गया था। इस पर स्वामीजी ने कहा कि हम इस प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम पांच और अधिक से अधिक आठ दिन तक रहेगा। क्योंकि इतने दिनों में सब मतों का पर्याय अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकता है। जब इस प्रकार वे लोग प्रसन्न न हुये तब मुन्शी इन्द्रमणिजी ने कहा कि स्वामीजी ! आप निश्चिन्त रहें। सच्चा मत एक दिन में ही प्रकट हो जावेगा। फिर निम्नलिखित पांच प्रश्नों पर विचार करना सबने स्वीकार किया।

१–सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज से किस समय और किस लिये बनाया ?

२–ईश्वर सबमें व्यापक है वा नहीं ?

३–ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४–वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त (इलहामी) होने में क्या प्रमाण है ?

५–मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

यह विषय तय करके पहले दिन की सभा आरम्भ की गई।

---

१. यहां यह मेला मुन्शी प्यारेलाल साहब की ओर से प्रतिवर्ष हुआ करता है।

२. इस धर्मचर्चा में आर्य्यों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मुन्शी इन्द्रमणिजी तथा ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहब, पादरी नोबिल साहब, पादरी पार्कर साहब और पादरी जान्सन साहब और मुसलमानों की ओर से मौलवी मौहम्मद कासम साहब, सैयद अब्दुल मंसूर साहब विचार के लिये आये थे। "सम्पादक"

पहिले दिन की सभा

मुन्शी प्यारेलाल साहब–

खड़े होकर सबसे पहिले कहा– प्रथम ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्य्यामी है। हम लोगों के बड़े भाग्य हैं कि उसने हम सबको ऐसे राजप्रबन्ध के समय में उत्पन्न किया कि जिसमें सब लोक निर्विघ्नता से निर्भय होकर मतमतान्तरों का विचार कर सकते हैं। धन्य है इस आज के दिन को और बड़े भाग्य हैं इस भूमि के, कि ऐसे सज्जन पुरूष और ऐसे–ऐसे विद्वान् मतमतान्तरों के जानने वाले यहां सुशोभित हुए हैं। आशा है कि सब विद्वान् अपने–अपने मतों की वार्ताओं को कोमल वाणी से कहेंगे, कि जिससे सत्य और असत्य का निर्णय होकर मनुष्यों की सत्यमार्ग में प्रवृत्ति हो जावेगी। इसके पश्चात् जब मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से पांच–पांच मनुष्य और आर्यों की ओर से **स्वामी दयानन्दजी सरस्वती** और **मुन्शी इन्द्रमणिजी** दो ही विचार के लिये नियत किये गए, तब मौलवियों और पादरियों ने हठ किया कि आर्य्यों की ओर से भी पांच मनुष्य होने चाहिये। इस पर स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने कहा कि आर्य्यों की ओर से हम दो ही बहुत हैं। तब मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी का नाम अपने ही आप पादरियों से लिखवाना चाहा। तब स्वामीजी ने उनसे तो यह कहा कि आप लोगों को अपनी अपनी ओर के मनुष्यों के लिखवाने का अधिकार है, हमारी ओर का कुछ नहीं, और पण्डितजी से यह कहा कि आप नहीं जानते, ये लोग हमारे और तुम्हारे बीच विरोध कराके आप तमाशा देखना चाहते हैं। इस बात के कहने पर भी एक मौलवी ने पण्डितजी का हाथ पकड़ के उनसे कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवा दो, इनके कहने से क्या होता है ? तिस पर स्वामी जी ने कहा, कि अच्छा जो सब आर्य्य लोगों की सम्मति हो तो इनका भी नाम लिखवा दो, नहीं तो केवल आप लोगों के कहने से इनका नाम नहीं लिखा जावेगा। फिर एक मौलवी साहब उठकर बोले कि सब हिन्दुओं से पूछा जावे कि इन दोनों के नाम लिखने में सब की सम्मति है वा नहीं ? इस पर स्वामी जी ने कहा कि जैसे आपको सिवाए फिर्के सुन्नत जमानत के अहले शिया आदि फिर्कों ने सम्मति करके नहीं बिठलाया, और जैसे कि पादरी साहब को रोमन कैथोलिक फिर्कों ने नियत नहीं किया, ऐसे ही आर्य्य लोगों में भी बहुतसों की हमारे बिठलाने में सम्मति और बहुतसों की असम्मति होगी। परन्तु आप लोगों को हमारे बीच गड़बड़ मचाने का कुछ अधिकार नहीं है। मुन्शी इन्द्रमणिजी ने कहा कि हम सब आर्य्य लोग वेदादि शास्त्रों को मानते हैं, और पण्डितजी भी इन्हीं को मानते हैं। जो किसी का मत आर्य्य लोगों से वेदादि शास्त्रों के विरूद्ध हो, तो चौथा पन्थ नियत करके भले ही बिठला दीजियेगा।

इन बातों से मौलवियों का यह अभिप्राय था कि ये लोग आपस में झगड़ें, तो हम तमाशा देखें। पण्डितजी का नाम लिखना आर्य्य लोगों ने योग्य न समझा। फिर मौलवी लोग नमाज पढ़ने को चले गये, और जब लौट करे आये तब उनमें से मौलवी मुहम्मद कासम साहब ने कहा कि प्रथम मैं एक घन्टे तक उन प्रश्नों के सिवाए और कुछ अपने मत के अनुसार कहना चाहता हूं। उसमें जो किसी की कुछ शंका होगी तो उसका मैं समाधान करूँगा। इसको सबने स्वीकार किया। मौलवी साहब के कथन का तात्पर्य यह है–

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् यह कहा कि– जिस–जिस समय में जो जो हाकिम हो उसी की सेवा करनी उचित है। जैसे कि इस समय जो गवर्नर है, उसी की सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं, और

जिसकी कि आज्ञापालन का समय व्यतीत हो गया, न कोई उसकी सेवा करता है और न उसकी आज्ञा को मानता है। और जैसे जब कोई कानून व्यर्थ हो जाता है, तो उसके अनुसार कोई नहीं चलता; परन्तु जो कानून उसकी जगह नियत किया जाता है, उसी के अनुसार सबको चलना होता है। तो इन्हीं दृष्टान्तों के समान जो जो अवतार और पैगम्बर पूर्व समय में थे और जो जो पुस्तकें तौरेत, ज़बूर, बाईबल, उनके समय में उतरी थीं, अब उनके अनुसार न चलना चाहिये। इस समय के सबसे पिछले पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब हैं, इसलिये उनको पैगम्बर मानना चाहिए, और जो ईश्वरवाक्य अर्थात् कुरान उनके समय में उतरा है उस पर विश्वास करना चाहिए। और हम श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि और ईसामसीह की निन्दा नहीं करते, क्योंकि वे अपने अपने समय में अवतार और पैगम्बर थे, परन्तु इस समय तो हजरत मुहम्मद साहब का ही हुकुम चलता है, दूसरे का नहीं। जो कोई हमारे मजहब वा कुरान शरीफ वा हजरत मुहम्मद साहब को बुरा करेगा, वह मारे जाने के योग्य है।

पादरी नोबिल साहब–

मुहम्मद साहब के पैगम्बर और कुरान के ईश्वरीय वाक्य होने में सन्देह है, क्योंकि कुरान में जो जो बातें लिखी हैं सो–सो बाइबिल की हैं, इसलिये कुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता। और हजरत ईसामसीह के अवतार होने में कुछ सन्देह नहीं, क्योंकि उसके व्याख्यान से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सत्य मार्ग बतलाने वाला था। केवल उसके व्याख्यान से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है, और उसने चमत्कार भी दिखलाये थे।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

हम हजरत ईसा को अवतार तो मानते हैं, और बाइबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं, परन्तु ईसाइयों ने उसमें बहुत कुछ घटत बढ़त कर दी है, इसलिये यह वही मूल नहीं है। और जो कि उसका कुरान ने खण्डन भी कर दिया है, इसलिये वह विश्वास के योग्य नहीं रही। और हमारे हजरत पैगम्बर साहब का अवतार सबसे पिछला है, इसलिये हमारा मत सच्चा है। फिर और मौलवियों ने बाइबिल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई, और कहा कि देखिये आप ही लोगों ने लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता।

पादरी नोबिल साहब–

जिस मनुष्य ने यह लिखा है, वह सत्यवादी था, जो उसने लेखक–भूल को प्रसिद्ध कर दिया, तो कुछ बुरा नहीं किया। और हम लोग सत्य को चाहते हैं, असत्य को नहीं, इसलिये हमारा मत सत्य है।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

यह तो ठीक है कि कुछ बुरा नहीं किया, परन्तु जबकि किसी पुस्तक में वा दस्तावेज में एक भी बात झूठ लिखी हुई विदित हो जावे, तो वह पुस्तक कदाचित् माननीय नहीं रहती, और न वह दस्तावेज ही अदालत में स्वीकार हो सकता है।

पादरी नोबिल साहब–

क्या कुरान में लेखक–दोष नहीं हो सकता ? इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं। और जो हम सत्य ही को मानते हैं और सत्य ही की खोज करते हैं, इस कारण उस लेखक–भूल को हमने स्वीकार कर लिया।

और तुम्हारे कुरान में बहुत घटत बढ़त हुई, जिसके प्रमाण में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा और सूरतों के प्रमाण दिये।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

आप बड़े सत्य के खोजी हैं ! (मुख बनाकर) जो आप सत्य ही को स्वीकार करते हैं तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो ?

पादरी नोबिल साहब–

हम तीन ईश्वर नहीं मानते, वे तीनों एक ही हैं, अर्थात् केवल एक ईश्वर से ही प्रयोजन है। ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरता दोनों थी, इस कारण वह दोनों व्यवहारों को करता है, अर्थात् मनुष्य के आत्मा से मनुष्यों का व्यवहार और ईश्वर के आत्मा से ईश्वर का व्यवहार अर्थात् चमत्कार दिखलाना।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

वाह ! वाह ! एक घर (म्यान) में दो तलवार क्योंकर रह सकती है ? यह कहना पादरी साहब का अत्यन्त मिथ्या है। उसने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूँ, तुम हठ से उसको ईश्वर बनाते हो।

पादरी नोबिल साहब–

एक आयत अंजील की पढ़ी, और कहा कि यह एक आयत है जिसमें मसीह ने अपने आपको ईश्वर कहा है, और कई एक चमत्कार भी दिखलाये हैं। इससे उसके ईश्वर होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

जो वह ईश्वर था, तो अपने आपको फांसी से क्यों न बचा सका ?

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब–

कुरान में कई एक आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया, और कहा कि हुकुम का खण्डन हो सकता है, समाचार का नहीं हो सकता। सो आपके कुरान में समाचारों का खण्डन है। पहिले वैतूलमुकद्दस की ओर शिर नमाते थे, फिर काबे की ओर नमाने लगे। और कई आयतों का अर्थ भी सुनाया, और कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाये बिना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती। और तुम्हारे कुरान में बाइबिल का और ईसामसीह का मानना लिखा है। तुम लोग क्यों नहीं मानते हो ? ऐसी ही बातों के होते होते सन्ध्या हो गयी।

दूसरे दिन की सभा

प्रातःकाल के साढ़े सात बजे सब लोग आये, और वे पाँच प्रश्न कि जो स्वीकार हो चुके थे पढ़े गये। वे पांच प्रश्न ये हैं–

१-सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज से किस समय और किसलिए बनाया ?

२-ईश्वर सबमें व्यापक है वा नहीं ?

३-ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४-वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?

५-मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

इसके पश्चात् कुछ देर तक यह बात आपस में होती रही कि एक दूसरे को कहता था कि पहिले वह वर्णन करे। तदनन्तर पादरी स्काट साहब ने पहिले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया, और यह भी कहा यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं। मेरी समझ में ऐसे प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है, परन्तु जबकि सबकी सम्मति है तो मैं इसका उत्तर देता हूँ–

पादरी स्काट साहब–

यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस चीज से बनाया है ? परन्तु इतना हम जान सकते हैं कि अभाव से भाव में लाया है, क्योंकि पहिले सिवाय ईश्वर के दूसरा पदार्थ कुछ न था। उसने अपने हुकुम से सृष्टि को रचा है। यद्यपि यह भी हम जान नहीं सकते कि उसने कब संसार को रचा, परन्तु उसका आदि तो है। वर्षों की गणना हमको नहीं जान पड़ती, और न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है। इसलिए इस बात पर अधिक कहना ठीक नहीं। ईश्वर ने किसलिए इस जगत् को रचा ? यद्यपि इसका भी उत्तर हम लोग ठीक–ठीक नहीं जान सकते, परन्तु इतना हम जानते हैं कि संसार के सुख के लिये ईश्वर ने यह सृष्टि की है, कि जिसमें हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

उसने अपने शरीर से प्रकट अर्थात् उत्पन्न किया। उससे हम अलग नहीं, जो अलग होते तो उसकी प्रभुता में न होते। कब से यह संसार बना, यह कहना व्यर्थ है, क्योंकि हमको रोटी खाने से काम है; न यह कि रोटी कब बनी है ? यह जगत् सृष्टि के लिये रचा गया है, क्योंकि सब पदार्थ मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचे हैं। और हमको अपनी भक्ति के लिए ईश्वर ने रचा है। देखो ! पृथिवी हमारे लिए है, हम पृथिवी के लिए नहीं, क्योंकि जो हम न हों तो पृथिवी की कुछ हानि नहीं, परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है। ऐसे ही जल, वायु, अग्नि आदि सब पदार्थ मनुष्य के लिए रचे गये हैं। मनुष्य सब सृष्टि में श्रेष्ठ है, उसको बुद्धि भी इसी श्रेष्ठता की परीक्षा के लिए दी है, अर्थात् मनुष्य को अपनी भक्ति के लिए और इस जगत् को मनुष्य के लिए ईश्वर ने रचा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

पहिले मेरी सब मुसलमानों और ईसाइयों और सुनने वालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिए किया गया है। और यह ही मेला करने वालों का प्रयोजन है कि देखें सब मतों में कौन सा मत सत्य है ? जिसको सत्य समझें उसको अंगीकार करें। इसलिये यहां हार और जीत की अभिलाषा किसी को न करनी चाहिये, क्योंकि सज्जनों का यह ही मत होना चाहिये कि सत्य की सर्वदा जीत और असत्य की सर्वदा हार होती रहे। परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि पादरी साहब ने यह बात झूठ कही ऐसे ही ईसाई कहते हैं कि मौलवी साहब ने यह बात झूठी कही, ऐसी वार्ता करना उचित नहीं। विद्वानों के बीच यह नियम होना चाहिये कि अपने अपने ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन कोमल वाणी के साथ करें, कि जिससे सब लोग प्रीति से मिलकर सत्य का प्रकाश करें। एक दूसरे की निन्दा करना, बुरे बुरे वचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि वह हारा और मैं जीता, ऐसा नियम कदाचित्

न होना चाहिये। सब प्रकार पक्षपात छोड़कर सत्यभाषण करना उचित है, और एक दूसरे से विरोधवाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है, विद्वानों का नहीं। मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में अथवा और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें। अब मैं इस पहले प्रश्न का उत्तर कि–**"ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किसलिये रचा है ?"** अपनी छोटी सी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूँ।

परमात्मा ने सब संसार को प्रकृति से अर्थात् जिसको अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु नामों से कहते हैं, रचा है। सो यह ही जगत् का उपादान कारण है, जिसका वेदादि शास्त्रों में नित्य करके निर्णय किया है, और यह सनातन है। जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् कारण भी अनादि है। जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं, वैसे ही इस जगत् के कारण का भी आदि और अन्त नहीं है। जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं, उनके कारण से एक परमाणु भी अधिक वा न्यून कभी नहीं होता। जब ईश्वर इस जगत् को रचता है, तब कारण से कार्य रचता है, सो जैसा कि यह कार्यजगत् दीखता है, वैसा ही इसका कारण है। सूक्ष्म द्रव्यों को मिलाकर स्थूल द्रव्यों को रचता है, तब स्थूल द्रव्य होकर देखने और व्यवहार के योग्य होते हैं। और यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है, उसको इसी कारण से ईश्वर ने रचा है। जब प्रलय करता है, तब इस स्थूल के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक्–पृथक् कर देता है। क्योंकि जो जो स्थूल से सूक्ष्म होता है, वह आंखों से दीखने में नहीं आता; तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि वह द्रव्य नहीं रहा। परन्तु वह सूक्ष्म होकर आकाश में ही रहता है, क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता। और नाश अदर्शन को कहते हैं, अर्थात् वह देखने में न आवे। जब एक एक परमाणु पृथक्–पृथक् हो जाते हैं, तब उनका दर्शन[1] नहीं होता। फिर जब वे ही परमाणु मिलकर स्थूल द्रव्य होते हैं, तब दृष्टि में आते हैं। यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है, और ऐसे ही सदा करता जायेगा। इसकी संख्या नहीं कि कितनी बार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की, और कितनी बार कर सकेगा। इस बात को कोई नहीं कह सकता।

अब इस विषय को जानना चाहिये कि जो लोग **"नास्ति"** अर्थात् अभाव से **"अस्ति"** अर्थात् भाव मानते हैं, और शब्द[2] से जगत् की उत्पत्ति जानते हैं, उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि अभाव से भाव का होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई कहे कि वन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आंखों से देखा, तो जो उसके पुत्र होता तो वन्ध्या क्यों कहलाती ? फिर उसके पुत्र का अभाव होने से उसके पुत्र का विवाह कब हो सकता है ? और जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान में नहीं था और यहां आया हूं, अथवा सर्प बिल में न था और निकल भी आया, तो ऐसी वार्ता विद्वानों की नहीं होती। इसमें कोई प्रमाण नहीं, क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं फिर वह क्यों कर हो सकती है ? जैसे कि हम लोग अपने–अपने स्थानों में न होते तो यहां चांदापुर

---

१. जब कोई वस्तु अत्यन्त छोटी हो जाती है, तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है। जो किसी वस्तु के टुकड़े करते–करते उसको इतना छोटा कर दें कि फिर उसके टुकड़े होना असम्भव हो जावे तो उसको **"परमाणु"** कहते हैं। जितनी वस्तुएं संसार में हैं, वे सब परमाणु से बनती हैं। जब किसी पत्थर को तोड़ डालते हैं, और उसके अत्यन्त छोटे–छोटे टुकड़ों को पृथक–पृथक् कर देते हैं, तो वे परमाणु कि जिनके इकट्ठे होने से फिर पत्थर बनता है, सदा किसी न किसी स्वरूप से बने रहते हैं। एक परमाणु का भी इस संसार में से अभाव नहीं होता, केवल स्वरूप और गुणों में भेद हुआ करता है। जब मोम की बत्ती को जलाते हैं, तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़ी देर में सब बत्ती नहीं रहती, न जाने कि क्या हो गयी। परन्तु वे परमाणु जितने बत्ती में थे और ही प्रकार रूप में वायु के सदृश हो जाते हैं। उनमें के एक परमाणु का भी अभाव कदाचित् नहीं होता।

२. "कुन" या "हो जा" कहने से। **"सम्पादक"**

में कभी न आ सकते। देखो शास्त्र में भी लिखा है कि– **"नासत आत्मलाभः, न सत आत्महानम्"**[1] अर्थात् जो है सो आगे को होता है, और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता। क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका कारण कोई न हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि भाव से भाव अर्थात् अस्ति से अस्ति होता है। नास्ति से अस्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। यह **"वदतो व्याघात"** अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के सदृश बात है। पहिले किसी वस्तु का अत्यन्त अभाव कहकर फिर यह कहना कि उसका भाव हो गया, पूर्वापर विरोध है। इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता, और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध कर सकता है कि बिना कारण के कोई कार्य हो सके। इसलिये अभाव से भाव अर्थात् नास्ति से वा हुकुम से जगत् की उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है। इससे यह जानना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से ही सब संसार को रचा है, अन्यथा नहीं। यहां दो प्रकार का विचार (उप) स्थित होता है।

पहला–यह कि जो जगत् का कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत का रूप हुआ; तो ज्ञान, सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग, बन्ध और मोक्ष सब ईश्वर में ही घटते हैं। फिर कुत्ता, बिल्ली, चोर, दुष्ट आदि सब ईश्वर ही बन गया।

दूसरा–यह कि जो सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है। तो उत्तर यह है कि–कारण तीन प्रकार का होता है।

१- उपादान कारण– कि जिसको ग्रहण करके किसी पदार्थ को बनावें। जैसे मिट्टी लेकर घड़ा और सोना लेकर गहना और रूई लेकर कपड़ा बनाया जाय।

२-निमित्त कारण– जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है।

३-साधारण कारण– जैसे चाक आदि साधन और दिशा, काल इत्यादि।

अब जो ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत्रूप बनता है, क्योंकि मिट्टी से घड़ा अलग नहीं हो सकता। और जो निमित्त माने तो जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बना सकता और जो साधारण मानें जैसे मिट्टी से अपने आप बिना कुम्हार के घड़ा नहीं बन सकता। इन दोनों व्यवस्थाओं में वह पराधीन वा जड़ ठहरता है। इसलिये जो यह कहते हैं कि ईश्वर जगत् रूप बन गया है, तो उनके कहने से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है। इससे ऐसी व्यवस्था माननी चाहिये कि जगत् का कारण अनादि है, और नाना प्रकार के जगत् को बनाने वाला परमात्मा है। और इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं, और स्थूल कार्य जगत् तथा जीवों के कर्म नित्यप्रवाह से अनादि हैं। ऐसे माने बिना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता। अब यह कि **"ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुये कितने वर्ष हो गये"**? इस दूसरे प्रश्न का उत्तर दिया जाता है–

सुनो भाइयो ! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं, आप लोग नहीं दे सकते। क्योंकि जब आप लोगों के मतों में से कोई अठारहसौ वर्ष से, कोई तेरहसौ वर्ष से और कोई पांचसौ वर्ष से उत्पत्ति कहता है, तो फिर आप लोगों के मत में जगत् के इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता। और हम

---

१. **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ १६॥ (भगवदगीता अध्याय, २ श्लोक १६)

– "लाजपत राय अग्रवाल"

आर्य लोग सदा से कि जब से यह सृष्टि हुई बराबर विद्वान् होते चले आये हैं। देखो ! इस देश से और सब देशों में विद्या गई है। इस बात में सब देश वालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्यावर्त्त देश से मिस्र देश में और वहां से यूनान और यूनान से योरोप आदि में विद्या फैली है। इसलिए इसका इतिहास किसी दूसरे मत में नहीं हो सकता। देखो ! हम आर्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में वेद आदि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं, कि हजार चतुर्युगियों का एक ब्राह्मदिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्म–रात्रि होती है। अर्थात् जगत् की उत्पत्ति होके जब तक कि वर्त्तमान होता है, उसका नाम ब्राह्म–दिन है। और प्रलय होके जब तक हजार चतुर्युगी पर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती, उसक नाम ब्राह्म–रात्रि है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते हैं, और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है[1]। सो इस समय सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर वर्त्तमान हो (चल) रहा है। और इससे पहिले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं–स्वायम्भव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष। अर्थात् १,९६,०८,५२,९७६ वर्षों[2] का भोग हो चुका है, और अब २,३३,३२,२७,०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं। सो हमारे देश के इतिहासों में यथार्थ क्रम से बातें लिखी हैं। और ज्योतिष शास्त्र में भी मितीवार प्रति संवत् घटाते बढ़ाते रहे हैं। और ज्योतिष की रीति से जो वर्षपत्र बनता है उसमें भी यथावत् सबको क्रम से लिखते चले आते हैं। अर्थात् एक–एक वर्ष घटाते और एक–एक वर्ष भोगने में आज तक बढ़ाते आये हैं। इस बात में सब आर्य्यावर्त्त देश के इतिहास एक हैं। किसी में कुछ विरोध नहीं।

फिर जबकि जैन मतवाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे, तब आर्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया। सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिसको संकल्प कहते हैं, और वह यह है:– **"ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्तान्तरैकदेशेऽमुकनगरेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्ष–दिननक्षत्रलग्नमुहूर्त्तेऽत्रेदं कार्यं कृतं क्रियते वा"**। जो इसको ही विचार लें, तो इससे सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है। जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते, तो उसका उत्तर यह है कि–जो परम्परा से मितीवार दिन चढ़ाते चले आते हैं, और जबकि इतिहासों और ज्योतिषशास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है, तो फिर इसको मिथ्या कोई नहीं कह सकता। जैसे कि बही्खाते में प्रतिदिन मितीवार लिखते हैं और उसको कोई झूठ नहीं कह सकता। और जो यह कहता है उससे भी पूछना चाहिये कि तुम्हारे

१. एक ब्राह्म दिन में १४ मन्वन्तर, १ मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी = १४X७१=९९४ चतुर्युगियां इस गणना से होती हैं। ऊपर १००० चतुर्युगियों का ब्राह्म दिन और ब्राह्म रात्रि स्पष्ट निर्दिष्ट है। यह ६ चतुर्युगियों के बराबर का काल प्रत्येक मन्वन्तर में होने वाली अवान्तर प्रलयों के सन्धिकाल का है। इस सन्धिकाल एक कृतयुग के बराबर = १७२८००० वर्ष का होता है। एक ब्राह्मदिन के १४ मन्वन्तरों के आद्यन्त की १५ सन्धियां होती हैं।

२. इसी प्रकार की वर्ष–गणना **"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"*** और **"सत्यार्थप्रकाश"*** में भी उपलब्ध होती है। परन्तु ऋषि दयानन्द ने जिन **"सूर्य–सिद्धान्त"*** और **"मनुस्मृति"*** के आधार पर यह गणना लिखी है, उनमें प्रतिमन्वन्तर के पश्चात् सन्धिकाल का निर्देश है। तदनुसार उपरिलिखित काल–संख्या में गत ७ सन्धियों का १२०१६००० वर्ष और जोड़ने से वास्तविक गत काल १९७२९४८९७६ होता है। इसी प्रकार अवशिष्ट उत्तरकाल गणना में ८ सन्धियों का १३८२४००० काल सम्मिलित करने पर २३४७०५१०२४ वर्ष सृष्टि के शेष रहते हैं। इस विषय के लिये **"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"*** पृष्ठ २६-२७ देखें।

– **"सम्पादक"**

नोट– *उपरोक्त टिप्पणी में दिये गये सभी ग्रन्थ–**"अमर स्वामी प्रकाशन विभाग–गाजियाबाद"** के शोरूम में विक्रयार्थ उपलब्ध हैं, जो भी सज्जन चाहें वह यहां से प्राप्त कर सकते हैं। –**"लाजपत राय अग्रवाल"**

मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए हैं ? तब वह या तो छः हजार या सात हजार या आठ हजार वर्ष बतलावेगा। तो वह भी अपने पुस्तकों के अनुसार कहता है, तो इसी प्रकार उसको भी कोई नहीं मानेगा, क्योंकि यह पुस्तक की बात है। और देखो ! भूगर्भविद्या से जो देखा जाता है उससे भी यह ही गणना ठीक आती है। इसलिये हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है, और किसी के मत में कदाचित् नहीं। इसलिये यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सबको ठीक माननी उचित है। अब यह कि– **"ईश्वर ने किसलिए सृष्टि को उत्पन्न किया"** ? इस तीसरे प्रश्न का उत्तर दिया जाता है–

जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि, और जीव के कर्म तथा कार्य जगत् नित्यप्रवाह से अनादि हैं। जब प्रलय होता है तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं, तो उनके भोग कराने के लिए और फल देने के लिए ईश्वर सृष्टि को रचता है, और अपने पक्षपात रहित न्याय को प्रकाशित करता है। ईश्वर में जो ज्ञान, बल, दया आदि और रचने की अनन्त शक्ति है, उनके सफल करने के लिए उसने सृष्टि रची है। जैसे आंख देखने के लिए और कान सुनने के लिये हैं, वैसे ही रचनाशक्ति रचने के लिये है। सो अपनी सामर्थ्य की सफलता करने के लिए ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं। इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन है, कि जो समय कम रहने से अब नहीं कहे जा सकते। विद्वान् लोग आप जान लेंगे।

पादरी स्काट साहब–

जिसकी सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता। जगत् की सीमा का निरूपण है, इसलिये वह अनादि नहीं हो सकता। कोई पदार्थ अपने आपको नहीं रच सकता, परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से रचा है। कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस पदार्थ से रचा है, और पंडित जी ने भी नहीं बताया कि किस पदार्थ से जगत् को रचा ?

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

जबकि सब पदार्थ सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है। कोई उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

(पादरी साहब के उत्तर में)– पादरी साहब मेरे कहने को नहीं समझे। मैं तो केवल जगत् के कारण को ही अनादि कहता हूं, और जो कार्य है सो अनादि नहीं होता। जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है, सो उत्पन्न होने से पहिले ऐसा न था और न नाश होने के पश्चात् ही ऐसा रहेगा। पर इसमें जितने परमाणु हैं वे नष्ट नहीं होते। इस शरीर के परमाणु पृथक्–पृथक होकर आकाश में बने रहते हैं, और उन परमाणुओं में जो संयोग और वियोग[1] की शक्ति है, तो वह सदा उनमें रहती है। जैसे मिट्टी से घड़ा बनाया जो कि बनाने से

---

१. सब लोग देखते है कि अग्नि में बहुत से पदार्थ जल जाते हैं। अब विचार करना चाहिये कि जब कोई पदार्थ जल जाता है, तो क्या हो जाता है ? देखने में आता है कि लकड़ी जल कर थोड़ी सी राख रह जाती है। तो अब यह विचारना चाहिये कि जलने से वह पदार्थ ही नष्ट हो जाता है, वा उसका स्वरूप ही बदल जाता है ? जब मोमबत्ती जलाते हैं, तो देखने में वह मोम नहीं रहता। यह नहीं जान पड़ता कि कहां गया ? परन्तु उस मोम का स्वरूप बदल कर वायु के सदृश हो जाता है, और इसी कारण वायु में मिल जाने से दृष्टि में नहीं आता। क्रमशः (अगले पृष्ठ पर)

पहिले नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा, परन्तु उसमें जो मिट्टी है वह नष्ट नहीं होती। और जो गुण अर्थात् चिकनापन उसमें है कि जिससे वह पिण्डाकार होता है, वह भी मिट्टी में सदा से है। इससे यह समझना चाहिये कि जिन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है वे द्रव्य अनादि हैं, कार्य द्रव्य नहीं। और मैंने यह कब कहा था कि जगत् के पदार्थ स्वयं अपने को बना सकते हैं। मेरा कहना तो था कि ईश्वर ने उस कारण से जगत् को रचा है। और जो पादरी साहब ने कहा कि शक्ति से जगत् को रचा है, तो मैं पूछता हूं कि शक्ति कोई वस्तु है वा नहीं ? जो कहो कि है, तो वह अनादि हुई, और जो कहो कि नहीं, तो उससे आगे को दूसरी कोई वस्तु भी नहीं बन सकती। और जो पादरी साहब ने यह कहा कि पण्डितजी ने यह नहीं बताया कि किससे यह जगत् बना है ? कदाचित् पादरी साहब ने नहीं सुना होगा। मैंने तो जिससे यह कार्य जगत् बना है उसको प्रकृति आदि नामों से कि जिसको परमाणु भी कहते हैं; कहा था। अब आप **"मौलवी साहब के उत्तर में सुनिये"**– सब पदार्थों का कारण अनादि है, तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है, क्योंकि मिट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाये। जो कारण होता है वह आप कार्यरूप नहीं बन सकता, क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता। और कोई जीव भी उसको नहीं बना सकता, आज तक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई। जैसा कि यह मेरा रोम है, ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता। और आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उनसे ऐसी वस्तु बना सके। कोई दो त्रसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर की ही यह सामर्थ्य है कि अब जगत् को रचे। देखो ! एक आंख की रचना में ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है। आज तक बड़े बड़े वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं, तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है। कोई नहीं जानता कि किस–किस प्रकार और क्या–क्या गुण ईश्वर ने उसमें रक्खे हैं। इसलिये सूर्य, चांद आदि जगत् का रचना और धारण करना ईश्वर ही का काम है। तथा जीवों के कर्म्मों के फल का पहुंचाना, यह भी परमात्मा ही का काम है, किसी दूसरे का नहीं। इससे ईश्वर को मानना अवश्य है।

(हिन्दुस्तानी) पादरी साहब–

जब दो वस्तु हैं– एक **"कार्य"** दूसरा **"कारण"** तो दोनों **"अनादि"** नहीं हो सकते। इससे ईश्वर ने **"नास्ति"** से **"अस्ति"** अपनी सामर्थ्य से की है।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

गुण दो प्रकार के होते हैं–एक **"अन्तस्थ,"** दूसरे **"बाह्य"**। अन्तस्थ तो अपने में होते हैं, और बाह्य

(पृष्ठ १६० का बाकी)

इसकी परीक्षा के लिए एक बोतल के भीतर मोमबत्ती जलाओ और उसका मुख बन्द कर दो, तो उस बत्ती का जितना भाग वायु के सदृश हो जावेगा, वह बोतल से बाहर नहीं जा सकेगा। पर थोड़ी देर के पीछे यह दिखलाई देगा कि वह बत्ती बुझ गई। अब यह सोचना चाहिये कि बत्ती क्यों बुझ गई ? और बोतल के वायु में अब कुछ भेद हुआ वा नहीं ? इस बात की परीक्षा इस प्रकार होगी कि थोड़ा सा चूने का पानी उस बोतल में, और एक और बोतल में कि जिसमें केवल वायु भरा हुआ हो और उसमें कोई बत्ती न जली हो, डालो; तो दिखलाई देगा कि जिस बोतल में बत्ती जली है उसमें चूने का रंग दूध सा हो जावेगा, और दूसरी बोतल का जैसे का तैसा रहेगा। इससे सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कोई नई वस्तु बोतल के वायु में मिल गई है। वह एक वस्तु वायु के सदृश है कि दृष्टि में नहीं आता। अब देखना चाहिये कि मोमबत्ती का कोई परमाणु नष्ट नहीं होता, पर जिन पदार्थों से वह बत्ती बनी है उनका स्वरूप भिन्न हो जाता है।

– "सम्पादक"

दूसरे से अपने में आते हैं। और अन्तस्थ गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं, परन्तु जिसके गुण होते हैं वह उससे पृथक् होता है जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस बर्तन में पड़ता है वैसा ही बन जाता है, परन्तु सूर्य नहीं हो जाता। वैसे ही ईश्वर ने हमको अपनी इच्छा से बनाया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

(ईसाई साहब के उत्तर में)–आप दोनों के अनादि होने में क्यों शंका करते हैं ? क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने है, उन सबका कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि हैं। और जीव भी अनादि हैं, कि जिनकी संख्या कोई नहीं बता सकता। और नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती, सो मैं पहिले कह चुका हूं। परन्तु आप जो कहते हैं कि शक्ति से बनाया, तो बतलाओ कि शक्ति क्या वस्तु है ? जो कहो कि कोई वस्तु है, तो फिर वही कारण ठहरने से अनादि हुई। और ईश्वर के नाम, गुण, कर्म सब अनादि हैं, कोई अब नये नहीं बने। अब **"मौलवी साहब के उत्तर में"** सुनिये– आप जो यह कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है, तो भी नहीं हो सकता, क्योंकि गुण द्रव्य के बिना अलग नहीं रह सकते, और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता। जब भीतर के गुणों से जगत् बना है, तो जगत् भी ईश्वर हुआ। जो यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना, जो ईश्वर के सिवाय आपको भी वे गुण और द्रव्य अनादि मानने पड़ेंगे। और जो यह कहो कि इच्छा से हम लोग बन गये, तो मेरा यह प्रश्न है कि इच्छा कोई वस्तु है वा गुण हैं ? जो वस्तु कहोगे तो वह अनादि ठहर जायेगी, और जो गुण मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता, परन्तु मिट्टी से बनता है, तो वैसे ही इच्छा से हम लोग नहीं बन सकते।

पादरी स्काट साहब–

हम लोग इतना जानते हैं कि नास्ति से अस्ति को ईश्वर ने बनाया। यह हम नहीं जानते किस पदार्थ से और किस प्रकार यह जगत् बनाया। इसको ईश्वर ही जानता है। मनुष्य कोई नहीं जान सकता।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

ईश्वर ने अपने प्रकाश से जगत् बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

(पादरी साहब के उत्तर में)– कार्य को देखकर कारण को जानना चाहिये कि जो वस्तु कार्य है वैसा ही उसका कारण होता है। जैसे घड़े को देखकर उसका कारण मिट्टी जान लिया जाता है कि जो वस्तु घड़ा है वही वस्तु मिट्टी है। आप कहते हैं कि अपनी शक्ति से जगत् को रचा, सो मेरा यह प्रश्न कि वह शक्ति अनादि है वा पीछे से बनी है ? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उसको मान लो, तो उसी को जगत् का अनादि कारण मानना चाहिये। अब **"मौलवी साहब के उत्तर में"** देखिये–नूर कहते हैं प्रकाश को, उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता। परन्तु वह नूर मूर्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध=दिखला सकता है, और वह प्रकाश करने वाले पदार्थ के बिना अलग नहीं रह सकता। इससे जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है, उसको माने बिना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। और हम लोग भी कार्य को अनादि नहीं मानते, परन्तु जिससे कार्य बना है उस कारण को अनादि मानते हैं।

(हिन्दुस्तानी) ईसाई साहब–

जो ईश्वर ने अपनी प्रकृति से सब संसार को रचा, तो उसकी प्रकृति में सब संसार सनातन था, और वह उसकी प्रकृति में अनादि था, तो ईश्वर की सीमा हो गई।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जबकि ईश्वर की प्रकृति में सब जगत् था, तब ही तो वह अनादि हुआ, और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई अर्थात् लम्बा–चौड़ा, बड़ा–छोटा आदि सब प्रकार का ईश्वर ने उसमें से बनाया। इसलिये रचे जाने से केवल जगत् ही की सीमा हुई, ईश्वर की नहीं। अब देखिये मैंने जो पहिले कहा था कि **"नास्ति"** से **"अस्ति"** कभी नहीं हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है, सो आप लोगों के कहने से भी वह बात सिद्ध हो गई कि जगत् का कारण **"अनादि"** है।

(हिन्दुस्तानी) ईसाई साहब–

सुनो भाई मौलवी साहबो ! कि पण्डितजी इसका उत्तर हजार प्रकार से दे सकते हैं। हम और तुम हजारों मिलकर भी इनसे बात करें तो भी पण्डितजी बराबर उत्तर दे सकते हैं। इसलिये इस विषय में अद्दिक कहना उचित नहीं।

नोट–

ग्यारह बजे तक यह वार्ता सिद्ध हुई। फिर सब लोग अपने अपने डेरों को चले गये। और सब जगह मेले में यही बातचीत होती थी कि जैसा पण्डितजी को सुनते थे, उससे सहस्रगुणा पाया।

दोपहर के पश्चात् की सभा

फिर एक बजे सब लोग आये और इस पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा और बातें बहुत बाकी हैं, इसलिये केवल मुक्ति विषय पर विचार करना उचित है। प्रथम थोड़ी देर तक ये बातें होती रहीं कि पहिले कौन वर्णन करें ? एक दूसरे पर टालता था। तब स्वामीजी ने कहा कि उसी क्रम से भाषण होना चाहिये, अर्थात् पहिले पादरी साहब, फिर मौलवी साहब और फिर मैं। परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने कहा कि हम पहिले न बोलेंगे, तब स्वामी जी ने ही पहिले कहना स्वीकार किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मुक्ति कहते हैं छूट जाने को, अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे सब (प्रकार) छूटकर एक सच्चिदानन्द–स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना, और फिर जन्म–मरण आदि दुःखसागर में नहीं गिरना[1], इसी का नाम "मुक्ति" है। वह किस प्रकार से होती है ? इसका पहला साधन सत्य का आचरण, और वह सत्य

१. इन शब्दों का तात्पर्य मुक्ति के काल तक सीमित है। **"सर्वत्वँ वाऽऽधिकारिकम्"** (१।२।१६) इस मीमांसा सूत्र के अनुसार सदा नित्य शाश्वत् आदि शब्द सापेक्ष हैं। जैसे प्यासे को पानी पिलाकर पूछो कि और कुछ चाहिये ? वह कहेगा कि बस सब कुछ पा लिया। **"सर्वरसा अनुप्राप्ताः पानीयम्"** (निरुक्त १।१६)। इसकी विशेष व्याख्या **"सत्यार्थप्रकाश"** के नवम समुल्लास में देखनी चाहिये।

– **"सम्पादक"**

आत्मा और परमात्मा की साक्षी से निश्चय करना चाहिये, अर्थात् जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो, वह असत्य है। जैसे किसी ने चोरी की, जब वह पकड़ा गया उससे राजपुरूष ने पूछा कि तूने चोरी की या नहीं ? तब वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की। परन्तु उसका आत्मा भीतर से कह रहा है कि मैंने चोरी की है। तथा जब कोई झूठ की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उसको जता देता है कि यह बुरी बात है, इसको तू मत कर। और लज्जा शंका और भय आदि उसके आत्मा में उत्पन्न कर देता है। और जब सत्य की इच्छा करता है तब उसके आत्मा में आनन्द कर देता है, और प्रेरणा करता है कि यह काम तू कर। अपना आत्मा जैसे सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है, वैसे झूठ में नहीं होता। जब परमात्मा की आज्ञा को तोड़कर बुरा काम कर लेता है, तब उसकी मुक्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। और उसी को असुर, दुष्ट, दैत्य और नीच कहते हैं इसमें वेद का प्रमाण है कि–

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।। ३।।

(यजुर्वेद, अध्याय, ४०, मन्त्र, ३)

आत्मा का हिंसन करने वाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा को तोड़ता है, अपने आत्मा के ज्ञान के विरूद्ध बोलता करता और मानता है, उसी का नाम असुर, राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है। मुक्ति के मिलने के साधन ये (निम्न प्रकार) हैं–

१-सत्य का आचरण।

२-सत्यविद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना।

३-सत्यपुरूष ज्ञानियों का संग करना।

४-योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना।

५-परमेश्वर की स्तुति करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना।

६-प्रार्थना कि जो इस प्रकार होती है कि–हे जगदीश्वर ! हे कृपानिधे ! हे अस्मत्पितः ! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर कर, और हे भगवान् ! हमको अन्धकार अज्ञान और अधर्म आदि दुष्ट कामों से अलग करके विद्या और धर्म आदि श्रेष्ठ कामों में सदा के लिये स्थापन कर, और हे ब्रह्म ! हमको जन्म मरणरूप संसार के दुःखों से छुड़ाकर अपनी कृपाकटाक्ष से अमृत अर्थात्मोक्ष को प्राप्त कर[1]।

जब सत्य मन से अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है, तब वह करूणामय परमेश्वर उसको अपने आनन्द में स्थिर कर देता है। जैसे जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता–पिता के पास नीचे आना चाहता है वा नीचे के ऊपर उनके पास जाना चाहता है, तब हजारों आवश्यकता के कामों को भी माता–पिता छोड़कर और दौड़कर अपने लड़के को उठाकर गोद में लेते है, कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़ेगा तो उसको चोट लगने से उसको दुःख होगा। और जैसे माता–पिता अपने

---

१. *"असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय"* इति।

बच्चों को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरूषार्थ सदा करते रहते हैं, वैसे ही परम कृपानिधि परमेश्वर की ओर जब कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है, तब वह अनन्तशक्तिरूप हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिये रखता है, फिर उसको किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है, और वह सदा आनन्द में रहता है। पक्षपात को छोड़कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके अर्थ को सिद्ध करना चाहिये। देखो ! सब अन्याय अधर्म और पक्षपात से होता है। जैसे कि मौलवी साहब का वस्त्र बहुत अच्छा है, मुझको मिले तो मैं उसको ओढ़कर सुख पाऊं। इसमें अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख दुःख का कुछ विचार न किया। इसी प्रकार पक्षपात से ही नित्य अधर्म होता है। अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को "**अनर्थ**" कहते हैं। और धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इसी को "**काम**" कहते हैं। और अधर्म अर्थात् अनर्थ से काम को सिद्ध करना इसको "**कुकाम**" कहते हैं। इसलिये इन तीनों अर्थात् धर्म, अर्थ और काम से मोक्ष को सिद्ध करना उचित है। इसमें यह बात है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इसको "**धर्म**" और उसकी आज्ञा को तोड़ना इसको "**अधर्म**" कहते हैं। सो धर्म आदि ही मुक्ति के साधन हैं, और कोई नहीं। और मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है, अन्यथा नहीं।

पादरी स्काट साहब–

पण्डितजी ने कहा कि सब दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है, परन्तु मैं कहता हूं कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुंचने का नाम मुक्ति है। कारण यह कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था, परन्तु शैतान ने उसको बहका के उससे पाप करा दिया, इससे उसकी सब सन्तान भी पापी हैं। जैसे घड़ी बनाने वाले ने उसकी चाल स्वतन्त्र रक्खी है और वह आप ही चलती है, ऐसे ही मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं, तो फिर अपने ऐश्वर्य से मुक्ति नहीं पा सकते और न पापों से बच सकते हैं। इसलिये प्रभु ईसामसीह पर विश्वास किये बिना मुक्ति नहीं हो सकती। जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों को पाप कराके बिगाड़ता है, इससे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। परन्तु ईसामसीह पर विश्वास करने से वे भी बच सकते हैं। प्रभु ईसामसीह जिस देश में गये, अर्थात् उसकी शिक्षा जहां जहाँ गई है, वहाँ–वहाँ मनुष्य पापों से बचते जाते हैं। देखो ! इस समय सिवाय ईसाइयों के और किसी के मत में भलाई और अच्छे गुणों की उन्नत्ति है ? मैं एक दृष्टान्त देता हूं कि जैसे पण्डितजी बलवान् हैं, ऐसे ही इंगलिस्तान में एक मनुष्य बलवान था। परन्तु वह मद्यपान, चोरी, व्यभिचार आदि बुरे काम करता था। जब वह ईसामसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया। और मैंने भी जब मसीह पर विश्वास किया, तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया। सो ईसामसीह की आज्ञा के विरूद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती। इसलिये सबको ईसामसीह पर विश्वास लाना चाहिये। उसी से मुक्ति हो सकती है, और किसी प्रकार नहीं।

मौलवी मुहम्मद कासम साहब–

हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डितजी ने जो मुक्ति के साधन कहे, केवल उनसे ही मुक्ति हो सकती है। क्योंकि ईश्वर की इच्छा है, जिसको चाहे उसको मुक्ति दे और जिसको न चाहे न दे। जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी से प्रसन्न हो उसको छोड़ दे, और जिससे अप्रसन्न हो उसको कैद में डाल दे। उसकी इच्छा है जो चाहे सो करे, उस पर हमारा ऐश्वर्य नहीं है। न जाने ईश्वर क्या करेगा। पर समय के हाकिम पर विश्वास रखना चाहिये। इस समय का हाकिम हमारा पैगम्बर है, उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है। हां ! यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं, परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

(पादरी साहब के उत्तर में)– आपने जो यह कहा कि दुःखों से छूटना मुक्ति नहीं। पापों से छूटने का नाम मुक्ति है। सो मेरे अभिप्राय को न समझ कर यह बात कही है। क्योंकि मैं तो पहिले साधन में ही सब पापों अर्थात् असत्य कामों से बचना कह चुका हूं। और बुरे कामों का फल भी दुःख कहाता है, अर्थात् जब पाप करेगा तो दुःख से नहीं बच सकता। इसके अनन्तर और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि **"अधर्म छोड़कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है"।** जो पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदाचित् ऐसी बात न कहते। दूसरे, जो आप यह कहते हैं कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था, परन्तु शैतान ने बहकाकर पाप करा दिया, तो उसकी संतान भी इसी कारण से पापी हो गई। सो यह ठीक नहीं है, क्योंकि आप लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते ही हैं। सो जबकि ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड़ दिया, और ईश्वर के राज्य में विघ्न करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला, तो इससे ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता। और ईश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता है। और एक आदम ने पाप किया, तो उसकी सारी सन्तान पापी हो गई, यह सर्वथा असम्भव और मिथ्या है। जो पाप करता है वही दुःख पाता है, दूसरा कोई नहीं पा सकता। और ऐसी बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा। और देखो एक आदम और हव्वा से किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोष की बात है। इसलिये ऐसी व्यवस्था मानना चाहिये कि सृष्टि के आदि में बहुत से पुरूष और स्त्री परमेश्वर ने रचे। और जो यह कहा कि– **"शैतान बहकाता है,"** तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सबको बहकाया तो फिर शैतान को किसने बहकाया ? जो कहो कि शैतान आप से आप ही बहक गया; तो सब जीव भी आप से आप ही बहक गये होंगे, फिर शैतान को बहकाने वाला मानना व्यर्थ है। जो कहो कि शैतान को भी किसी ने बहकाया है, तो सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई बहकाने वाला शैतान को नहीं है। तो फिर जब ईश्वर ने ही सबको बहकाया, तब मुक्ति देने वाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पाने वाला। क्योंकि जब परमात्मा ही बहकाने वाला ठहरा, तो बचाने वाला कोई नहीं हो सकता। और यह बात परमात्मा के स्वभाव से भी विरूद्ध है, क्योंकि वह न्यायकारी और सत्य कामों का कर्त्ता है तथा अच्छे कामों में ही प्रसन्न होता है। वह किसी को दुःख देने वाला और बहकाने वाला नहीं। और देखो ! कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि शैतान ईश्वर के राज्य में इतना गड़बड़ करता है, फिर भी ईश्वर उसको न दण्ड देता है, न मारता है, न कारागृह में डालता है। इससे स्पष्ट परमात्मा की निर्बलता पाई जाती है। और विदित होता है कि परमात्मा ही को बहकाने की इच्छा है। इससे यह बात ठीक नहीं। और न शैतान कोई मनुष्य है। जब तक शैतान के मानने वाले शैतान को मानना न छोड़ेंगे, तब तक पाप करने से नहीं बच सकते, क्योंकि वे समझते हैं कि हम तो पापी ही नहीं। जैसा शैतान ने आदम को और उसकी सन्तान को बहका के पापी किया, वैसा ही परमात्मा ने आदम की सन्तान के पाप के बदले में अपने एकलोते बेटे को शूली पर चढ़ा दिया, फिर हमको क्या डर है ? और जो हमसे कुछ पाप भी होता है, तो हमारा विश्वास ईसामसीह पर है, वह आप क्षमा कर देगा, क्योंकि उसने हमारे पापों के बदले में जान दी है। इसलिये ऐसी व्यवस्था मानने वाले पापों से नहीं बच सकते। और जो घड़ी का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है, क्योंकि सब अपने–अपने काम करने में स्वतन्त्र हैं। परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों के करने के लिये है, बुरे के लिये नहीं। और जो आपने यह कहा कि स्वर्ग में पहुंचना मुक्ति है। शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि पापों से छूट कर मुक्ति पा सकें, यह बात भी ठीक नहीं। क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र हैं और शैतान कोई मनुष्य नहीं, तो

आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति को पा सकते हैं। और स्वर्ग से आदम गेहूं खाने के कारण निकाला गया, और यह ही आदम को पाप हुआ कि गेहूं खाया, तो मैं आप से पूछता हूं कि आदम ने तो गेहूं खाया और पापी हो गया और स्वर्ग से निकाला गया। आप लोग जो स्वर्ग की इच्छा करते हैं, तो क्या आप लोग वहां सब पदार्थ खावेंगे ? तो क्या पाप नहीं होगा ? और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इससे यह बात भी ठीक नहीं हो सकती। और आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य के सदृश माना होगा, अर्थात् जैसे मनुष्य सर्वज्ञ नहीं वैसे ही आपने परमात्मा को भी माना होगा कि जिससे आप वहां गवाही और वकील की आवश्यकता बतलाते हैं। परन्तु आपके ऐसे कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब नष्ट हो जाती है। वह सब कुछ जानता है, उसको गवाही और वकील की कुछ आवश्यकता नहीं है। और उसको किसी की सिफारिश की भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि सिफारिश न जानने वाले से की जाती है। और देखिये ! आपके कहने से परमात्मा पराधीन ठहरता हैं, क्योंकि बिना ईसामसीह की गवाही वा सिफारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता, और कुछ भी नहीं जानता। इससे परमात्मा में अल्पज्ञता आती है कि जिससे वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता। और देखो जबकि वह न्यायकारी है, तो किसी की सिफारिश और मिथ्या प्रशंसा से न्याय के विरूद्ध कदाचित् नहीं कर सकता, जो विरूद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता। इसी प्रकार जो आप मनुष्य हाकिम के सदृश ईश्वर के दरबार में फरिश्तों का होना मानोगे, तो और बहुत से दोष ईश्वर में आवेंगे। इससे ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता, क्योंकि जो सर्वव्यापक है तो शरीर वाला न होना चाहिये। और जो सर्वव्यापक नहीं है, तो अवश्य है कि शरीर वाला हो, और शरीर वाला होने से उसकी शक्ति सब पर घेरने वाली न हुई। और शरीरवाला जितना दूर का ज्ञान रखता है पर उसको पकड़ और मार नहीं सकता। और जो शरीरवाला होगा उसका जन्म और मरण भी अवश्य होगा। इसलिए ईश्वर को किसी एक जगह पर और फरिश्तों का उसके दरबार में होना, ऐसी बातें मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता। नहीं तो ईश्वर की सीमा हो जायेगी। देखो ! हम आर्य्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् पढ़े बिना लोगों को उल्टा निश्चय हो जाता है, अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है। जो पादरी साहब ने कलियुग के विषय में कहा, सो ठीक नहीं। क्योंकि हम आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते। इसमें ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि–

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृत सम्पद्यते चरन्।।५।।

(ऐतरेय ब्राह्मण, पंजिका ७, कण्डिका १५)

अर्थात् जो पुरूष सर्वथा अधर्म करता है और नाममात्र धर्म करता है उसको कलि, और जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसको द्वापर, और एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसको त्रेता, और जो सर्वथा धर्म करता है उसको सतयुग कहते हैं। इसके जाने बिना कोई बात कह देना ठीक नहीं हो सकती। इससे जो कोई बुरा काम करता है, वह दुःख पाने से कदाचित् नहीं बच सकता। और जो कोई अच्छा काम करता है, वह दुःख पाने से बच जाता है, किसी ही देश में चाहे क्यों न हो ?

क्या ईसामसीह के बिना ईश्वर अपने सामर्थ्य से भक्तों को नहीं बचा सकता ? वह अपने भक्तों को सब प्रकार से बचा सकता है। उसको किसी पैगम्बर की आवश्यकता नहीं। हाँ यह सच है कि जब जिस–जिस देश में शिक्षा करने वाले धर्मात्मा उत्तम पुरूष होते हैं उस–उस देश के मनुष्य पापों से बच जाते है, और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है। यह भी सब लोगों के लिए सुधार है, इसका कुछ मत से प्रयोजन

नहीं। देखो ! आर्य्य लोगों में पूर्व उपदेश की व्यवस्था अच्छी थी। इससे उस समय में वे सुधरे हुए थे। इस समय में अनेक कारणों से सत्य उपदेश कम होने से जो किसी बात का बिगाड़ हो तो इससे आर्य लोगों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आ सकता। क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ले के आज तक आर्य्यों ही का मत चला आता है। वह कुछ बहुत नहीं बिगड़ा। देखो ! जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों में आपस के विरोध से फिरके हो गये हैं, उनके सामने जो १६,६०,८५,२६७६ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में बिगाड़ हुआ तो वह बहुत ही कम है। और आप लोगों में हितना सुधार है सो मत के कारण नहीं, किन्तु पार्लियामेण्ट आदि के उत्तम प्रबन्ध से है, जो ये न रहें, मत से कुछ भी सुधार न हो। और पादरी साहब ने जो इंगलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिलाकर दिया, सो इस प्रकार कहना उनको योग्य न था। परन्तु न जाने किस प्रकार से यह बात भूल से उनके मुख से निकली।

स्वामी दयानन्द सरस्वती–

(मौलवी साहब के उत्तर में)–ईश्वर चाहे सो करे, ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि वह पूर्ण विद्या और ठीक–ठीक न्याय पर सदा रहता है। किसी का पक्षपात नहीं करता। इस कहने से कि जो चाहे सो करे, यह भी आता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है, यह कहना ईश्वर में नहीं बनता। ईश्वर जो कोई मुक्ति का काम करता है उसी को मुक्ति देता है। मुक्ति के काम के बिना किसी को मुक्ति नहीं देता, क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता। जो बिना पाप–पुण्य के देखे जिसको चाहे दुःख देवे और जिसको चाहे सुख, तो ईश्वर में अन्याय आदि प्रमाद लगता है। सो वह ऐसा कभी नहीं करता। जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलाने का है, इनके विरूद्ध नहीं कर सकता, वैसे ही परमात्मा भी अपने न्याय के स्वभाव से विरूद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं कर सकता। सब समय का हाकिम मुक्ति के लिये परमेश्वर ही है, दूसरा कोई नहीं। और जो कोई दूसरे को माने, उसका मानना व्यर्थ है। मुक्ति दूसरे पर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ईश्वर जो मुक्ति देने में दूसरों के अधीन है, या दूसरे के कहने से दे सकता है, तो मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है, तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। वह किसी का सहाय अपने काम में नहीं लेता, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है। मैं जानता हूं कि सब विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे। जो पक्षपात से औरों के दिखाने को न मानते हों तो दूसरी बात है। इसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है कि परमात्मा को **"लाशरीक"** भी मानते हैं, और फिर पैगम्बरों को भी मुक्ति देने में उनके साथ मिला देते हैं। यह बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर, धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति के काम करने से मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है, किसी की सहायता से अधीन नहीं। मनुष्य को ही आपस में सहायता की आवश्यकता है; ईश्वर को नहीं। न वह मिथ्या प्रसन्न होने वाला है, जो मिथ्या प्रसन्न होकर अन्याय करे। वह तो अपने सत्य धर्म और न्याय के सदा युक्त है, और अपने सत्य प्रेम से भरे हुए भक्तों को यथावत् मुक्ति देकर और सब दुःखों से बचाकर सदा के लिये आनन्द में रखता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं।।

नोट–

इतने में चार बज गये। स्वामीजी ने कहा कि– **"अभी हमारा व्याख्यान बाकी है"**। तथा मौलवी साहब ने कहा कि– **"हमारे नमाज का समय आ गया"**। और पादरी स्काट साहब ने स्वामीजी से कहा कि– **"हमको आपसे एकान्त में कुछ कहना है"**। सो वे दोनों तो उधर गये। इधर एक ओर तो एक मौलवी मेज

पर जूता पहने हुए खड़े होकर और दूसरी ओर पादरी अपने मत का व्याख्यान देने लगे। और कितने ही लोगों ने यह उड़ा दिया कि मेला हो चुका। तब स्वामीजी ने पादरी और आर्य लोगों से पूछा कि– **"यह क्या गड़बड़ हो रहा है"**? मौलवी लोग नमाज पढ़कर आये वा नहीं ? उन्होंने उत्तर दिया कि– **"मेला हो चुका"**। इस पर स्वामीजी बोले कि– **"ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया ? न किसी की सम्मति ली गई, न किसी से पूछा गया। अब आगे कुछ बातचीत होगी वा नहीं "**? जब वहां बहुत गड़बड़ देखी और संवाद की कोई व्यवस्था न जान पड़ी, तो लोगों ने स्वामीजी से कहा कि– **"आप भी चलिये। मेला पूरा हो ही गया"**। इस पर स्वामीजी ने कहा कि– **"हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन मेला रहता"**। इसके उत्तर में पादरी साहबों ने कहा कि–**"हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते"**। फिर स्वामीजी आकर अपने डेरे पर धर्मसंवाद करने लगे। उस दिन रात को पादरी स्काट साहब और दो पादरियों के साथ स्वामीजी के डेरे पर आये। स्वामीजी ने कुरसियां बिछवा कर आदरपूर्वक उनको बिठलाया और आप भी बैठ गये। फिर आपस में बातचीत होने लगी–

पादरी साहबों ने पूछा कि–

आवागमन सत्य है वा असत्य ? और इसका क्या प्रमाण है ?

स्वामी दयानन्द जी ने कहा कि–

आवागमन सत्य है, और जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है। जो अच्छे काम करता है तो मनुष्य का, और जो बुरे करता है तो पक्षी आदि का शरीर पाता है। और जो बहुत उत्तम काम करता है वह देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। देखो ! जब बालक उत्पन्न होता है, तब उसी समय अपनी माता का दूध पीने लगता है। कारण यही है कि उसकी पहिले जन्म का अभ्यास बना रहता है। यह भी एक प्रमाण है। और धनाढ्य, कंगाल, सुखी, दुःखी अनेक प्रकार के ऊंच–नीच देखने से विदित होता है कि कर्मों का फल है। कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है। जीव अनादि हैं कि जिनका आदि और अन्त नहीं। जिस योनि में जीव जन्म लेता है उसका कुछ स्वभाव भी बना रहता है। इसी कारण मनुष्य आदि विचित्र स्वभाव और प्रकृति आदि के होते हैं। इससे भी आवागमन सिद्ध होता है। इसी प्रकार और बहुत से प्रमाण आवागमन के हैं। परन्तु जीव का एक बार उत्पन्न होना और फिर कभी न होना, इसका कुछ प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि जो मैंने कहा उसके विरूद्ध होना चाहिये था, सो ऐसा होना असंभव है। और फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब कयामत होगी तब उसका हिसाब किताब होगा, तब तक बेचारा हवालात में रहा (ऐसा) मानना अच्छा नहीं।

फिर पादरी साहब चले गये। मौलवियों ने शहाजहांपुर जाकर **"मुन्शी इन्द्रमणिजी"** को लिखा कि– **"जो आप यहां आवें तो हम आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं,"** परन्तु जब स्वामीजी और मुन्शीजी वहां पहुंचे, तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक भी न लिया।

ऋषिकालांकब्रह्माब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मंगले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया।।

——— 0 ———

एक सौ बत्तीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "जालन्धर" (पंजाब)

दिनांक : २४ सितम्बर सन् १८७७ ई0 (दिन सोमवार)

विषय : चमत्कारों की सत्यता ?

आर्यों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब,

अन्य सम्मानित उपस्थित सज्जन : श्री सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया

: श्री लाला अमीचन्द साहब

: श्री मुंशी मुहम्मदहुसैन महमूद साहब,
एवं शहर के अन्य सम्मान प्राप्त हिन्दू व मुसलमान भाई इस मुबाहसे (शास्त्रार्थ) में मौजूद थे।

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– **"दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह"** नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के **"सम्पादक"** एवं **"प्रकाशक"** दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

– **"लाजपत राय अग्रवाल"**

शास्त्रार्थ से पहले

– "डॉ0 भवानीलाल भारतीय"

पण्डित सुन्दरलाल जी का नाम ऋषि दयानन्द के द्वारा लिखे गये १३ मई सन् १८८२ ई0 के पत्र से ज्ञात होता है कि "**जालन्धर की बहस**" शीर्षक कोई पुस्तक प्रकाशित हुई थी। निश्चय ही उसमें उस शास्त्रार्थ का उल्लेख था, जो २४ सितम्बर सन् १८७७ ई0 (आश्विन कृष्ण २, सम्वत् १९३४ विक्रमी दिन सोमवार) को प्रातः ७ बजे जालन्धर में श्री मौलवी अहमद हुसैन से हुआ था। शास्त्रार्थ का विषय था "**पुनर्जन्म और चमत्कार**" यह शास्त्रार्थ सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया की उपस्थिति में हुआ। पण्डित लेखराम द्वारा संगृहीत ऋषि के उर्दू जीवन चरित में इस शास्त्रार्थ के विषय में निम्न उल्लेख पाया जाता है–

"यह शास्त्रार्थ पहली बार दिसम्बर सन् १८७७ ई0 में पंजाबी प्रेस, लाहौर में छपा था, दूसरी बार जुलाई सन् १८७८ ई0 के "आर्य दर्पण" में छपा, तीसरी बार मिर्जा महोदय ने अपने वजीर प्रेस, स्यालकोट में छपवाया, चौथी बार लाहौर और पांचवी बार आर्यसमाज अमृतसर ने सन् १८८६ ई0 में छपवाया। खुद मुसलमानों का फैंसला है कि मौलवी साहब कामयाब नहीं हुये और करामात सिद्ध नहीं कर सके।"

पण्डित गोपाल शास्त्री शर्मा लिखित "**श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क**" के प्रथम खण्ड पंचम मयूख में फकीर मुहम्मद मीर जामू (मिर्जा ?) जालन्धरी द्वारा प्रकाशित उपर्युक्त "**शास्त्रार्थ की भूमिका**" छपी है। इसे हम पाठकों के लिये उपयोगी समझकर यहाँ नीचे उद्धृत कर रहे हैं। भूमिका की भाषा उर्दू है। कठिन उर्दू फारसी शब्दों का अर्थ पाठकों की सुविधा के लिये नीचे टिप्पणी रूप में दिया गया है–

"फकीर मुहम्मद मीर जामू (मिर्जा ?) जालन्धरी सभ्यगणों को इस रिसाले[1] के तैयार होने के कारणों से आगाह[2] करता है कि तारीख १३ सितम्बर सन् १८७७ ई0 को दयानन्द सरस्वती जी साहब जालन्धर में भी बतौर दौरे[3] के तशरीफ लाये, और जनाब फैजमाब[4] सरदार बावकार विक्रमसिंह साहब अहलूवालिया की कोठी में करोकश[5] होकर वेद के मुताबिक जिसको वह कलामेइलाही[6] तसव्वुर[7] करते हैं, कथा सुनाने लगे कि फकीर ने सरदार साहब ममदह की खिदमत आलिया[8] में दरख्वास्त[9] की कि स्वामी साहब और मौलवी अहमद हुसैन की गुफ्तगू[10] भी किसी माकूली मसले[11] में सुननी चाहिये। जनाब ममदह ने पसन्द किया और स्वामी जी ने भी कुबूल करके २४ सितम्बर के ७ बजे सुबह का करार दिया मौलवी साहब वक्त मुअय्यनह[12] पर खास व आम हिन्दू व मुसलमान शहर के आ गये। मुबाहसा अर्थात् शास्त्रार्थ हस्ब ख्वाहिश[13] मौलवी साहब मसले तनासुख[14] और स्वामीजी की मर्जी के मुताबिक मसले करामात[15] मुकर्रर हुआ। यानी स्वामीजी तनासुख (पुनर्जन्म) को साबित करें, और मौलवी साहब उनकी तरदीद (खण्डन) करें, और मौलवी साहिब अहले अल्लाह[16] की करामात साबित

नोट–

१. पुस्तक (अखबार)। २. परिचित करना। ३. भ्रमण करते हुए। ४. परोपकारमूर्ति। ५. विराजमान होकर। ६. ईश्वरीय ज्ञान। ७. मानते हैं। ८. शुभ सेवा में। ९. निवेदन किया। १०. वार्तालाप। ११. उचित विषय। १२. निश्चित समय। १३. इच्छानुसार। १४. पुनर्जन्म। १५. चमत्कार। १६. ईश्वर भक्तों के।

"सम्पादक"

करें और स्वामी साहिब उसकी तरदीद (खण्डन) करें। गुफ्तगू शुरू होने से यह बात भी करार पायी कि तुर्फैन (दोनों तर्फ) से कोई शख्स खिलाफेतहजीब (सभ्यता के विरूद्ध) गुफ्तगू न करेगा और स्वामीजी की तरफ से यह भी प्रकाशित हुआ कि कोई साहब इस गुफ्तगू खत्म होने पर हार जीत तसव्वुर[1] न करें। अगर करेगा तो मुतअस्सिब (पक्षपाती) और जाहिल[2] समझा जायेगा, क्योंकि यह मसाइल[3] ऐसे नहीं हैं कि दो तीन दिन की गुफ्तगू में तसफिया[4] हो जाये, या हार जीत तसव्वुर हो। मगर हां, जब रिसाला गुफ्तगू बाहमी तबै[5] होगा (छपेगा) तो खुद हाथ के कंगन को आरसी का मसला होगा और आकिला खुद मेदान्द का जहूर[6]। जो सवाल जवाब होंगे वह बाद दस्तखत लाला अमीचन्द साहब और मुन्शी मुहम्मद हुसैन महमूद तबा होंगे (छापेंगे)। बाद खतम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब की तरफ से खिलाफे अम्ल आलमा सरजद[7] हुआ, और वह यह है कि बाद तमाम होने गुफ्तगू के मौलवी साहब इमाम नासिरूद्दीन के दरवाजे पर गये और कुछ फखरिया बाज सुनाकर[8] मुसलमान हाजरीन से अपने नमूद के बेवजूद की शुहरत के तलबगार हुये[9]। अर्थात् मुसलमानों से कहा कि आप लोग अभी कोई ऐसी तजवीज[10] करें कि जिसमें मैं जीता नहीं तो भी मेरी ही जीत प्रसिद्ध हो जाये। अगर्चि अहले अज्म[11] और वजादार[12] मुसलमान इस शुहरत (मिथ्या–प्रसिद्धि) की ख्वाहिश को जाहिलों का खेल समझकर किनाराकश[13] हो गये, मगर जुलाहे आदि वे लोग जो मुर्ग, लाल और बटेर और अगन वगैरह की लड़ाई के आदी और हारजीत के शुहरत के शायक हैं[14], उन्होंने मौलवी साहिब को बाजीयाफता[15] करार दिया, और घोड़े पर चढ़ा कर शहर के गलीकूचों में खूब फिराया और जीत हार का गुल मचाया। मगर खास वजादार और मुअज्जिज[16] आदमियों ने इसे बहुत नापसन्द किया। इस[17] मुबाहिसे की "सवाल–जवाब" नाम की एक किताब है उसकी दीबाचा अर्थात् भूमिका की यह नकल है, जो ऊपर लिखी है। चूंकि इसके देखने ही से असल हाल खुल जाता है, इसलिये अगाड़ी से सवाल जवाब नहीं लिखे गये। उक्त किताब के अन्त में बड़े दो प्रतिष्ठित रईसों ने यह इबारत लिख दस्तखत किये हैं कि हमारे रौबरू जो मरातिब गुफ्तगू मुअय्यन हुए थे, वह वाकई यही थे जो दीबाचा में दर्ज हैं।

दस्तखत–	दस्तखत–
"लाला अमीचन्द साहब"	"मुहम्मद हुसैन महमूद"

नोट–

"दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह" (संग्रहिता–कविराज रघुनन्दन सिंह निर्मल) के पृष्ठ ११४-१२३ के अनुसार इस शास्त्रार्थ का पाठ, जो पण्डित लेखराम संग्रहीत उर्दू जीवन चरित पर आधारित है, यहां आगे "शास्त्रार्थ जालन्धर" नामक शीर्षक से दिया जा रहा है।

"डॉ0 भवानीलाल भारतीय"

नोट–

१. ख्याल न करें। २. मूर्ख। ३. विषय। ४. निर्णय। ५. प्रकाशित होगा। ६. बुद्धिमान् स्वयं इसको पढ़कर निर्णय कर सकेंगे। ७. विद्वानों को परिपाटी के विरूद्ध जो कार्य हुआ। ८. प्रशंसात्मक उपदेश देकर। ९. प्रशंसा के इच्छुक हुये। १०. व्यवस्था। ११. विद्वान्। १२. समझदार। १३. पृथक् हो गये। १४. ख्याति के इच्छुक। १५. विजयी। १६. प्रतिष्ठित। १७. यहां से अगली पंक्तियां पण्डित गोपालदास की हैं।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

"चमत्कार" के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मौलवी अहमद हुसैन साहब के मध्य होने वाले प्रश्नोत्तर

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
चमत्कार आप किसको कहते हैं ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–
मनुष्य के स्वभाव के विरूद्ध जो अद्भुत कार्य मनुष्य से सम्पन्न हो।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
स्वभाव आप किसको मानते हैं ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–
मनुष्य की प्राकृतिक इच्छा को स्वभाव कहते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
जो मनुष्य की शक्ति से बाहर है, वह किस प्रकार उससे हुआ ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–
मनुष्य से होने वाले कार्य दो प्रकार के हैं–एक तो वह कि मनुष्य को जिनका प्रकट करने वाला कहा जाता है; और दूसरे वह कि मनुष्य स्वयं जिनका कर्त्ता होता है। पहली प्रकार के कार्यों में मनुष्य को वास्तविक कर्त्ता नहीं समझा जाता। उदाहरणार्थ जैसे कठपुतली का नाच। ऐसे कार्य खुदा की ओर से मनुष्य के द्वारा प्रकट होते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
सब मनुष्यों में यह दोनों प्रकार के कार्य हैं, अथवा किसी एक में ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–
प्रत्येक में नहीं, कुछ में होते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
ईश्वर उल्टे काम कर और करा सकता है या नहीं ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–
मनुष्य के स्वभाव के विरूद्ध करा सकता है, परन्तु वह काम ईश्वर के स्वभाव के विरूद्ध नहीं होता, और

स्वयं अपने स्वभाव के विरूद्ध नहीं करता।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

ईश्वर के काम उल्टे होते हैं वा नहीं ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

खुदा के कार्य कभी उसके स्वभाव के विरूद्ध नहीं होते, यद्यपि मनुष्यों के स्वभाव की अपेक्षा वह विरूद्ध समझे जा सकते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

चमत्कार सृष्टि के स्वभाव के अनुसार होता है या नहीं अर्थात् प्रकृति की इच्छा के विरूद्ध ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

चमत्कार में यह आवश्यक नहीं कि समस्त सृष्टि के स्वभाव के विरूद्ध हो, यद्यपि यह सम्भव है कि किसी नबी (पैगम्बर) या वली (ईश्वर को प्राप्त करने वाला) से कोई ऐसा कार्य हो कि जो समस्त सृष्टि के अनुकूल न हो।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

चमत्कार किसी ने दिखाया अथवा (कोई) दिखावेगा, इसका क्या प्रमाण है ?

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

यह प्रश्न ऐसा है जैसे कहा जावे कि किसी के मुख पर जो दाढ़ी आई है, उसके आने का क्या प्रमाण है ? जब चमत्कार के विषय में यह कह दिया गया कि वह कार्य जो मनुष्य से मनुष्य के स्वभाव के विरूद्ध हो। उसका कार्य मनुष्य के स्वभाव के विरूद्ध होता है, यही चमत्कार का प्रमाण है। बहुत से मनुष्यों ने, जो दयालु ईश्वर की सृष्टि में सम्मानित और प्रतिष्ठित हैं और ईश्वर ने जिनको सृष्टि के उपकार के लिए भेजा है, पूर्वकाल में चमत्कार दिखाये और भविष्य में भी दिखायेंगे। जैसा कि अल्लाह के रसूल हजरत मोहम्मद साहब ने भी बहुत से चमत्कार करके दिखाये, और ऐसे ही उनसे पूर्व हजरत ईसा ने भी बहुत से चमत्कार करके दिखाये। सिद्धि इस बात की दो प्रकार से होती है– एक तो सच्चे समाचारदाताओं के द्वारा और दूसरे स्वयं देखने से। जैसा कि ऊपर दोनों महापुरूषों का वर्णन किया। जो लोग उनके समय में विद्यमान थे, उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा, और हम लोग जो इस समय के हैं, उनको इसका ज्ञान सच्चे समाचारदाताओं के वचनों और लेखों से हुआ।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यह ठीक–ठीक युक्ति से सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि सुनना, कहना और लिखना दो प्रकार से होता है– सच्चा और झूठा। अब यह चमत्कार की बात सच्ची है, इसका क्या प्रमाण है ? जैसे कार्य को देख के कारण की पहचान होती है, अर्थात् नदी के प्रवाह को देखकर विदित होता है कि ऊपर वर्षा हुई है; इसी प्रकार चमत्कार हुआ, इसकी सिद्धि में इस समय क्या युक्ति है ? कदाचित् वह झूठा ही लिखा, कहा अथवा सुना

हो, क्योंकि जैसे अब कोई स्वार्थी मनुष्य झूठी बातों से बहका सुना कर अपना प्रयोजन सिद्ध करता है (वैसा ही यह भी हो)। जैसे इस समय में भी दो चार चमत्कारिक अवतार हुये हैं। आगरे में शिवदयाल और रामसिंह कूका, जो काले पानी चले गये हैं। एक अकलकोट का स्वामी दक्षिण में विद्यमान है, और एक देव मामलादार ने सात दिन वैकुंठ में रहकर फिर आकर सुनाया कि मैं नारायण से बात करके आया हूँ, और जो–जो आज्ञा हुई वह तुमको सुनाता हूँ। अब लाखों मनुष्य उसके चरणों में इतना नमस्कार करते हैं कि उसका पैर सूज गया है। जैसे यह बात अब झूठ इन्द्रजालवत् है, ऐसी पहले भी होगी।

अब इस समय इतने मनुष्यों के बीच में कोई चमत्कार दिखाने वाला विद्यमान हो तो दिखलाइये, और जो अब नहीं तो पहले भी नहीं था, और आगे भी नहीं होवेगा। क्योंकि कार्य को देखे बिना कारण की सिद्धि नहीं होती अथवा कारण के देखे बिना कार्य की।

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

जब यह सिद्ध हो चुका कि चमत्कार पवित्र ईश्वर का एक कर्म है, यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से वह असम्भव होता है, तथापि परमात्मा की अपेक्षा से वह असम्भव नहीं। क्योंकि यदि खुदा की अपेक्षा से वह असम्भव हो जाये तो उड़ना पक्षी का कभी न पाये जाये। इसके अतिरिक्त स्वभाव के विरूद्ध समस्त कर्म यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा से असम्भव दिखाई देते है, परन्तु परमात्मा की अपेक्षा से असम्भव नहीं है। जब खुदा एक के बारे में वह अवसर उत्पन्न करता है, तो दूसरे शरीर के बारे में भी उत्पन्न कर सकता है। इसका अस्वीकार करना मानो परमात्मा की शक्ति का अस्वीकार करना है। यदि समाचार प्रत्येक चीज का झूठ हो, तो हमको चाहिये कि कलकत्ता, लन्दन अथवा और कोई नगर जिसको हमने अपनी आंखों से नहीं देखा है उसका विश्वास न करें। इसलिए सिद्धि चमत्कार की इसी प्रकार से है, जिस प्रकार आप वेद को सिद्ध करते हैं, अर्थात् जिससे आप यह कह सकते हैं कि वेद वही पुस्तक है जो ईश्वर की ओर से आई थी, अन्यथा उस पर कोई मुहर खुदा की लगी हुई नहीं है, जिससे कहा जावे कि यह वेद वही पुस्तक है। वेद सिद्धि में जो युक्तियां आप देंगे, वही चमत्कार के विषय में भी होंगी।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मैंने यह पूछा था कि ईश्वर के अमुक–अमुक व्यक्ति के द्वारा चमत्कार दिखाये–इसका क्या प्रमाण है ? चमत्कार परमेश्वर अपने स्वभाव के विरूद्ध नहीं करता, इसका दृष्टान्त सब सृष्टि का रचना, धारण करना, प्रलय करना आदि है। वह न्याय, दया तथा अनन्त विद्या वाला है– कभी अपने स्वभाव के विरूद्ध नहीं करता। इसका उदाहरण समस्त सृष्टि है। जैसे इस समय मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होता है, पशु नहीं होता। इसी प्रकार परमेश्वर के काम में कभी भूल नहीं रहती। इसीलिए परमेश्वर की शक्ति मानना चमत्कार पर अवलम्बित नहीं। और जो कोई चमत्कार मानता है, वह वर्त्तमान समय में किसी चमत्कार दिखाने वाले का उदाहरण दे। और परमेश्वर की शक्ति की भी कुछ न कुछ सीमा है, जैसे ईश्वर मर नहीं सकता, अज्ञानी नहीं हो सकता, बुरा काम नहीं कर सकता, क्योंकि वह न्यायकारी और अविनाशी है। यह उदाहरण चमत्कार पर लागू नहीं हो सकता, क्योंकि कोई कहे कि बम्बई नहीं, तो वह बराबर बम्बई को दिखा सकता है। ऐसे ही जो वह उदाहरण सच्चा हो तो बम्बई के समान चमत्कार को भी दिखा दे। वेद का ईश्वरकृत होना असम्भव नहीं, क्योंकि वह अन्तर्यामी और पूर्ण विद्वान् दयालु तथा न्यायकारी है। वह बराबर जीवात्मा में अन्तर्यामी रूप

से अपना प्रकाश कर सकता है, जैसे इस समय भी बराबर अन्यायकारी की आत्मा में भय और लज्जा और न्यायकारी की आत्मा में हर्ष तथा उत्साह का प्रकाश करता है। इसलिए वेद का उदाहरण चमत्कार से सम्बन्धित नहीं। और मेरा अभिप्राय इस विषय के बारे में कि यह पुस्तक ईश्वरकृत है–यह है कि जैसा ईश्वर का स्वभाव, जैसा सृष्टि का क्रम प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है, और अनन्त विद्या का प्रकाश निर्दोषता आदि है–ईश्वर की रचना सिद्ध करने में सब मुहरें हैं। और जो आप कहें कि और प्रकार की मुहर चाहिए तो पृथिवी, सूर्य, चन्द्र और मनुष्य पर ईश्वरकृत होने की मुहर क्या है ? जब मुहर से ईश्वर की रचना सिद्ध करनी है, तो कहीं मुहर दिखाई नहीं देती। ईश्वर का स्वभाव क्या है ? जो ईश्वर मनुष्य के स्वभाव से उल्टा करा सकता है, तो किसी मनुष्य को पांव से खिलाया और पिलाया है, और मुख से पांव का काम लिया है या लिवाया है ? मुझको ऐसा विदित होता है कि सब सम्प्रदाय वालों ने यह चमत्कार तथा भविष्यवाणी जैसे कि *रसायन आदि का लोभ दिखा के बहुत लोगों को फंसाया है। परमेश्वर कृपा करे, सबके आत्मा में विद्या का* प्रकाश हो कि मनुष्य ऐसे जाल–फन्दों से छूट कर सत्य को मानें और झूठ से अलग रहें।

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

हम पहले कह चुके हैं कि चमत्कार का कार्य मनुष्य के स्वभाव के विरूद्ध कराना असम्भव बात नहीं है, जिससे कहा जावे कि परमात्मा की शक्ति के बाहर है। यदि किसी को सन्देह हो तो मक्का नगर अथवा शाम देश में जाकर उन चालीस मनुष्यों को देख ले कि जो चमत्कार के दिखाने वाले हैं। वेद के अतिरिक्त ऐसी बहुत सी पुस्तकें हैं, जिनको कह सकते हैं कि मनुष्य के स्वभाव के विरूद्ध हैं। जैसे शिक्षा के विषय में **"गुलिस्ताँ"**[१] और **"बोस्ताँ"** इत्यादि। किन्तु यह कहना कि इसमें सब विद्यायें हैं–यह दावा युक्तिशून्य है, क्योंकि इसमें इल्मे इजतराब (उद्विजन–विद्या) कहां है ? अनोखी बातों का ज्ञान और निर्मित पदार्थों के ईश्वरकृत होने का प्रमाण यह है कि वह निर्माण किये हुए हैं, और यह निर्माण ही मानो खुदा की मुहर है। यह पुस्तक तौरेत के काल से निस्सन्देह पहले की है। इसमें वह समाचार है जो आज के दिन प्राप्त होता है। पुस्तक दानियाल अध्याय ११ पाठ १० से १६ तक भी प्रमाण है कि वह भविष्यवाणी जो सैकड़ों वर्ष पूर्व लिखी गई थी अब पूरी हुई। दूसरे कुरान शरीफ के बारे में मुसलमानों का तेरह सौ वर्ष से सारे सम्प्रदायों के विरूद्ध यह दावा है कि इस कुरान शरीफ के समान एक पंक्ति भी बना कर कोई मनुष्य दिखावे। जैसा कि–**"फातू बिसूरतिम् मिम्मिस्लिहि"** तो इसकी सी एक सूरत बना कर ले आओ। अब तक किसी से बना नहीं, न बनेगा। यदि पंडित साहब को यह चमत्कार स्वीकार नहीं तो इसके समान एक पंक्ति बनाकर दिखायें। चमत्कार का प्रदर्शन मानो हमने इस सभा में कर दिया। अब हम पवित्र परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि वह समस्त सृष्टि को दृढ़ मार्ग पर लावे, और उनकी दृष्टि से पक्षपात को दूर करे।

---

१. **"गुलिस्ताँ"** और **"बोस्ताँ"** इरान निवासी श्री शेखसादी द्वारा रचित फारसी भाषा की दो प्रख्यात पुस्तकें थी, जिनमें बड़ी–बड़ी अद्‌भुत शिक्षाप्रद कहानियों का समावेश है, अब इनका हिन्दी रूपान्तर भी उपलब्ध है। जिन सज्जनों को यह पुस्तकें चाहियें, वह हमारे यहाँ प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

एक सौ तैंतीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "जालन्धर" (पंजाब)

दिनांक : २४ सितम्बर सन् १८७७ ई० (दिन सोमवार)

विषय : पुनर्जन्म की वास्तविकता ?

आर्यों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब,

अन्य सम्मानित उपस्थित सज्जन : श्री सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया

: श्री लाला अमीचन्द साहब

: श्री मुंशी मुहम्मदहुसैन महमूद साहब,

एवं शहर के अन्य सम्मान प्राप्त हिन्दू व मुसलमान भाई इस मुबाहसे (शास्त्रार्थ) में मौजूद थे।

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– **"दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह"** नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के **"सम्पादक"** एवं **"प्रकाशक"** दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

– **"लाजपत राय अग्रवाल"**

शास्त्रार्थ आरम्भ

"पुनर्जन्म" के विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और मौलवी अहमद हुसैन साहब के मध्य होने वाले प्रश्नोत्तर

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

वर्त्तमान आकार के बिना सत्ता का होना सम्भव नहीं। जब आकार की सत्ता विनाशी है, तो अवश्य प्रकृति भी नाशवान् होनी चाहिये, क्योंकि प्रकृति को सत्ता आकार के द्वारा प्राप्त हुई। द्रव्य की अपेक्षा द्रव्य का कारण प्रधान होता तो पुनर्जन्म मानने वालों के लिये जगत् का विनाशी मानना आवश्यक हो जाता है, परन्तु उन्होंने ऐसा माना था कि वह संनातन है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

आकृति दो प्रकार की होती है–एक ज्ञान से ग्रहण होती है, और एक चक्षु आदि इन्द्रियों से। कारण में ही आकृति की स्थिति है, परन्तु वह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होती। क्योंकि जो सूक्ष्म वस्तु होती है, जब वह स्वयं ही नहीं दिखाई देती, तो उसका आकार क्या दिखाई देगा ? और जो कारण में आकृति न हो तो कार्य में नहीं आ सकती, क्योंकि जो कारण के गुण हैं, वही कार्य में आते हैं। जैसे एक तिल के दाने में तेल होता है, वह करोड़ों दानों में भी बराबर होता है। लोहे के एक अणु में तेल नहीं होता, तो वह मन भर में भी नहीं होता। जो वस्तु नित्य है उसके गुण भी नित्य हैं। कारण का होना न होना नहीं कहा जाता–वह तो सनातन है। और जो वस्तु सनातन है उसकी आकृति भी कारणावस्था में सनातन है। आकृति बिना द्रव्य के पृथक, नहीं रह सकती। वह आकृति उसी द्रव्य की है, इससे सिद्ध है कि कारण–"**सनातन**" है।

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

यह नहीं कि जो चीज सिवाय किसी चीज के न पाई जाये, तो वह उसका रूप ही हो। उदाहरणार्थ जैसे चेष्टा हाथ और चाबी की। चेष्टा चाबी के बिना हाथ की चेष्टा के नहीं पाई जाती, प्रत्युत जब चेष्टा चाबी की होगी तो चेष्टा हाथ की होगी, और जब चेष्टा हाथ की होगी तो चेष्टा चाबी की होगी, अर्थात् इन दोनों चेष्टाओं में कोई काल किसी का किसी से पहले या पीछे नहीं निकलता। और निस्सन्देह उत्कृष्ट बुद्धि जानती है कि कुंजी की चेष्टा बिना हाथ के नहीं, अर्थात् चेष्टा कुंजी की हाथ की चेष्टा पर निर्भर है, यद्यपि वर्त्तमान समय में इकट्ठी है। ऐसे ही प्रकृति और उसका रूप है। यद्यपि काल में एकता है, परन्तु बुद्धि इस बात को जानती है कि प्रकृति के आकार की अपेक्षा प्रकृति सनातन है। क्योंकि गुणी और मानने वाला गुण और माने हुये की अपेक्षा सनातन होता है। प्रकृति की सत्ता अर्थात् उसका अनुभव होना और दिखाई देना किसी चीज के लगने से होता है। या तो आकृति के लगने से होता है या किसी और चीज के लगने से। प्रत्येक अवस्था में वह पदार्थ जिसके लगने से वह प्रकृति संसार में इस प्रकार स्थित हुई कि अनुभव हो और दिखाई दे, वह किसी ऐसे कारण से हुई जो पीछे से आकर प्रकृति को लगा। और जो उत्तर में यह लिखा गया कि कारण का होना अथवा न होना नहीं कहा जाता, तो यह चीज अद्भुत है जिसका उपादान कारण में होना

या न होना नहीं कह सकते। वह वस्तु जिसका उपादान कारण ऐसा हो, उसका होना किस प्रकार हो सकता है ? अर्थात् वर्त्तमान वस्तु अभाव से नहीं बन सकती। और यदि उसके सनातन होने से कोई मनुष्य यह कहे कि वह विद्यमान भी होगा, तो यह गलत है, इसलिए कि अभाव से भाव का होना। उदाहरणार्थ जैसे कोई कहे कि "ज़ैद" के तत्वों को एक विशेष आकार प्राप्त हुआ है, जिसके कारण उसका "ज़ैद" नाम रखा गया, तो वह विशेष आकार इस आकार से पहले कभी विद्यमान न था, इसलिये उसको अर्थात् उसके अभाव को सनातन कहा जावेगा। रूप के जो दो प्रकार कहे–एक वह कि जिसको आकृति कहते हैं, और एक उसके अतिरिक्त, इससे विदित हुआ कि आकार प्रकृति रहित है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

स्वाभाविक गुण रूप आदि वस्तु के पीछे कभी नहीं होते, और जो पीछे हो उसको स्वाभाविक नहीं कहते। जैसे अग्नि के परमाणुओं का स्वाभाविक अतीन्द्रिय रूप अर्थात् आंख से अनुभव न होना स्वाभाविक सब काल उसके साथ है। निमित्त कारण के संयोग पर परमाणुओं का संयोग करने से स्थूल कार्य होने से उसका इन्द्रिय–ग्राह्य रूप प्रकट होता है। जैसे जल के परमाणु आकाश में उड़कर ठहरते हैं, और जब तक बादल नहीं बनते तब तक नहीं दीख पड़ते। हमारा अभिप्राय यह नहीं कि वह प्रकृति नहीं है या प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहीं है। उदाहरणार्थ जैसे लड़के का होना और लड़के का न होना। जैसा कार्य में यह होना या न होना गुण है, वैसा कारण में नहीं है। जो कारण और कारण के स्वाभाविक गुण हैं वह अनादि हैं। कार्य वह है जो कि संयोग से हो, और वियोग के पीछे न रहे। वह जो एक संयोगजन्य आकृति है, वह कार्य की आकृति कहलाती है। उसका प्रवाह से अनादिपन है, स्वरूप से नहीं। और ईश्वर जो कि सर्वज्ञ है उसका निमित्त कारण अर्थात् बनाने वाला है। उसके ज्ञान में सदा है और रहेगा। (अन्तिम वाक्य का उत्तर ऊपर आ गया)।

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

पदोत्कर्ष अर्थात् पहले होना दो प्रकार का होता है– एक निजी और एक सामयिक। निजी जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि चेष्टा हाथ की और चाबी की, और ऐसा ही उत्कर्ष गुणी का अपने समवायी गुणों पर। उदाहरणार्थ उत्कर्ष पानी का अपने बहने पर। उत्कृष्ट बुद्धि जानती है कि बहने की स्थिति पानी के साथ है। इस उत्कर्ष को निजी उत्कर्ष कहा जावेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि उत्कर्ष गुणी का उन गुणों पर जो उसके अपने गुण हैं, निजी उत्कर्ष कहलाता है। क्योंकि गुणी अपने गुणों से अवश्य उत्कृष्ट होता है। और सन्देह तब उत्पन्न होते हैं, जब उत्कर्ष सामयिक हो। दूसरा सामयिक उत्कर्ष वह है–जैसा कि बाप का अपने बेटे पर होता है। गुणी का गुणों से रिक्त होना तब आवश्यक होता है जब उत्कर्ष सामयिक हो। तात्पर्य यह है कि अपने आकार पर जो उत्कर्ष प्रकृति का है वह निजी उत्कर्ष है, क्योंकि गुणी, गुणों से उत्कृष्ट होना चाहिये।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

द्रव्य उसको कहते हैं कि जिसमें गुण, क्रिया, संयोग, वियोग होने का स्वभाव पाया जावे, परन्तु जो द्रव्य परिच्छिन्न अर्थात् पृथक्–पृथक् हैं, उनका यह लक्षण है। जो विभु व्यापक द्रव्य है वह संयोग वियोग के

स्वभाव से पृथक् होता है। किसी व्यापक में गुण ही प्रधान होते हैं, क्रिया नहीं। जैसे कि परमेश्वर उसमें संयोग वियोग नहीं होता परन्तु क्रिया और गुण हैं, और आकाश, दिशा, काल यह व्यापक हैं परन्तु इनमें क्रिया नहीं, केवल गुण हैं।

श्री मौलवी अहमद हुसैन साहब–

यह उत्तर पहले प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। क्योंकि इस उत्तर में निजी और सामयिक भेद नहीं किया गया। ज्ञानस्थ आकृति की अपेक्षा से "जैद" का विशेष प्रकार का अभाव अर्थात् उसके नियत शरीर का एक नियत काल से जो सम्बन्ध था, उस शरीर की उत्पत्ति के पूर्व उसका पूर्ण अभाव था। और यह विचार जो प्रकट किया गया कि पूर्ण अभाव उस शरीर विशेष का नहीं है–उसकी आकृति ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान है, यह बिल्कुल गलत है, क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में यह शरीर विशेष तो विद्यमान नहीं, जो तीन हाथ का है। किसी वस्तु के अनादि होने से किसी वस्तु की उत्पत्ति तो सिद्ध नहीं होती। ज्ञानस्थ आकृति के बारे में बात यह है कि ईश्वर का ज्ञान ज्ञानस्थ आकृति के साथ नहीं है, क्योंकि ज्ञानस्थ आकृति वह होती है जो बाहरी वस्तु के देखने से प्राप्त होती है।

जब आकार विशेष को अनादि नहीं माना जाता, तो ईश्वर के ज्ञान में वह ज्ञानस्थ आकृति कहां से प्राप्त हुई ? यदि कोई वस्तु अनादि थी, तो आपके मन्तव्य के अनुसार प्रकृति अनादि थी, और जिस वस्तु का साधनों द्वारा अनुभव न किया जा सके जैसे की आप प्रकृति और आकार को मानते हैं कि प्रथम अवस्था में अनुभव के योग्य न था, तो उसका ज्ञान किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि किसी पदार्थ को जानने की विधि यही है कि किसी की चेष्टा के द्वारा ज्ञानेन्द्रिय में उसका आकार प्राप्त हो, उसी को ज्ञानस्थ आकृति कहा जाता है। और जहां तक जल के परमाणुओं का सूक्ष्म होकर वाष्प बन जाने का प्रश्न है, तो यद्यपि वह दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर भी किसी न किसी चेष्टा के द्वारा वह जानने के योग्य है।

प्रत्येक अवस्था में जो आकार इस प्रकार का माना गया है कि जिसका ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता, तो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं हैं। जब अनादित्व ही गलत सिद्ध हुआ तो पुनर्जन्म कहां रह गया ? यदि यूं कहा जाता है कि एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने का कारण उसके वे कर्म हैं जो प्रथम शरीर में किये थे, तो यह प्रकट है कि कर्म चेष्टा द्वारा होते हैं और चेष्टा काल पर निर्भर है, और काल का आदि अन्त और मध्य इकट्ठा नहीं रह सकता। इसके अतिरिक्त कर्म जो किसी समय के द्वारा किये गये वह नष्ट हो गये। अथवा दूसरे शरीर से सम्बन्ध किसी उत्कर्षक की ओर से न होगा। जब आत्मा का शरीरों से समान सम्बन्ध है, तो विशेष सम्बन्ध होने से उत्कर्षता बिना उत्कर्षक के बाधक होगी, इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध से बहुत सी हानियां उत्पन्न होंगी, क्योंकि विशेषतायें जो प्रथम शरीर में प्राप्त की थीं वह दूर हो गई।

और उदाहरणतया यदि दूसरा सम्बन्ध कुत्ते अथवा गधे से हो तो उस कुत्ते और गधे के शरीर में वह विशेषतायें प्राप्त नहीं कर सकता जो मनुष्य के शरीर में प्राप्त कर सकता था। अब आपको उचित है कि प्रथम विद्याओं के प्राप्त करने की विधि निश्चित कीजिये, फिर उसके पश्चात् सम्बन्ध का कारण निश्चित किया जावे, तब उस पर आक्षेप किया जा सकता है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

दस इन्द्रियों के विषय में मौलवी साहब का कहना ठीक नहीं, जैसा कि जीवात्मा किसी इन्द्रिय से नहीं देखा जाता ? परन्तु अस्तित्व उसका है। जो मौलवी साहब ने कहा कि अनादि वस्तु झूठी है–यह किसने कहा है ? क्या यह बात आपने अपने दिल से जोड़ ली है ? क्योंकि जब मैं लिखवा चुका कि परमेश्वर, जीव और जगत् का कारण यह तीनों सनातन हैं, इससे अनादित्व सिद्ध है। और अभाव से भाव कभी नहीं होता, यदि कोई कहता है तो उसका प्रमाण नहीं हैं। गधे और कुत्ते के शरीर में मनुष्य का जीव जाने से मौलवी साहब कहते हैं कि बड़ी हानि होती है, क्योंकि सब कमाई की हुई चली जाती है। यदि मौलवी साहब ऐसा मानते हैं, तो मौलवी साहब को कभी सोना न चाहिये, क्योंकि निद्रा में जाग्रत की कमाई सब भूल जाती है। यदि मौलवी साहब कहें कि फिर जागने से यह ज्ञान आ जाता है, तो कुत्ते गधे के शरीर में भी आ जायेगा। और ज्ञान फिर प्राप्त कर सकता है जैसे कि मनुष्य निद्रा से जाग कर करता है। इसलिये मैं जानता हूं कि मौलवी साहब के भाषण और मेरे भाषण को बुद्धिमान् लोग स्वयं ही देख लेंगे। और एक जन्म इन बातों से सिद्ध नहीं होता, परन्तु "**पुनर्जन्म**" सिद्ध है।

हस्ताक्षर अंग्रेजी–

"लाला अमीचन्द"

हमारे समक्ष जो बातचीत के विषय निश्चित हुये, वह वास्तव में यही थे, जो इस भूमिका में लिखे हैं।

हस्ताक्षर–

"मौहम्मद हुसैन महमूद"

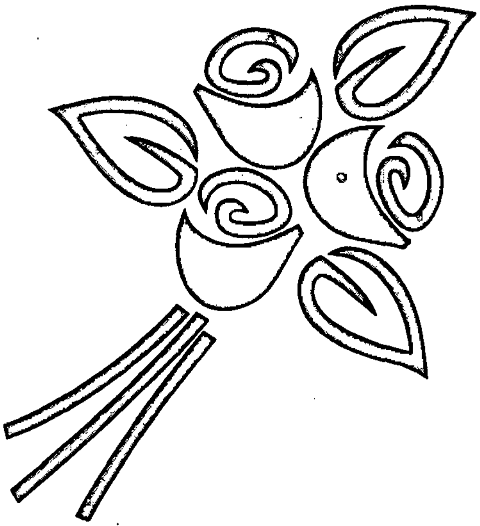

एक सौ चौंतीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "अजमेर" (राजस्थान)

दिनांक : २८ नवम्बर सन् १८७८ ई0 (दिन सोमवार)

विषय : क्या तौरेत और इंजील ईश्वरीयकृत पुस्तकें हो सकती हैं ?

ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पादरी ग्रे साहब,

विपक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,

अन्य उपस्थित विद्वान सज्जन : १. श्री सरदार बहादुर मुंशी अमीचन्द साहब "जज"

: २. श्री पण्डित भागरामजी, एक्सट्रा असिस्टैंट कमिश्नर

: ३. श्री मुंशी समर्थदान जी, (स्वामी जी के अनन्य भक्त– एवं प्रबन्धक "**वैदिकयन्त्रालय**" अजमेर,

: ४. श्री डाक्टर हसबैण्ड साहब,

: ५. श्री सरदार भगतसिंह जी, चीफइन्जीनियर,

शास्त्रार्थ के लेखक : १. श्री बाबू रामनाथ जी (हैड मास्टर–राजपूत स्कूल, जयपुर)

: २. श्री बाबु चन्दुलाल वकील (गुड़गाँवा)

: ३. श्री हाफ़िज मौहम्मद हुसैन दरोगा, चुंगी (अजमेर)

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रंखला को जिवित रखने का प्रयास किया।

"लाजपत राय अग्रवाल"

सम्पादकीय

अजमेर में ऋषि दयानन्द का पादरी ग्रे के साथ शास्त्रार्थ हुआ। इसका विवरण पण्डित लेखराम द्वारा संग्रहीत स्वामीजी के उर्दू जीवन चरित में पृष्ठ ७१४ से ७१६ (हिन्दी संस्करण पृष्ठ ७३७-७४४) तक दिया गया है। **"दयानन्द–दिग्विजयार्क"** भाग १ मयूख ६ में भी **"किरानी मत खण्डन"** शीर्षक के अन्तर्गत इस शास्त्रार्थ का विवरण प्रकाशित हुआ है।

मुन्शी बख्तावरसिंह द्वारा सम्पादित **"आर्य दर्पण"** मासिक के जून १८८० के अंक में पृष्ठ १३६ से १४६ पर्यन्त यही विवरण हिन्दी तथा उर्दू में समानान्तर कालमों में प्रकाशित हुआ।

इस विवरण के लेखक ऋषि दयानन्द के अनन्यभक्त एवं ऋषि के अन्तिम वर्षों में **"वैदिक यन्त्रालय"** के प्रबन्धक **"मुन्शी समर्थदान"** थे। जैसा कि नीचे उद्‌धृत सम्पादक **"आर्यदर्पण"** के नाम लिखित मुन्शी समर्थदान के पत्र से ज्ञात होता है। यहां इस शास्त्रार्थ का **"आर्य दर्पण"** में प्रकाशित विवरण दिया जा रहा है। पण्डित लेखराम द्वारा संकलित विवरण **"आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट"** से प्रकाशित **"दयानन्द शास्त्रार्थ ग्रह"** के पृष्ठ १५५-१६२ तक प्रकाशित हुआ है, अतः उसे यहां देना हमने अनावश्यक समझा।

"मुन्शी समर्थदान" का पत्र– सम्पादक "आर्य दर्पण" के नाम–

नमस्ते !

मैं आपके पास यह शास्त्रार्थ भेजता हूं। कृपा करके अपने बहुमूल्य पत्र में इसको स्थान दीजिये। इसमें जितने प्रश्नोत्तर हैं, वे सब उसी समय के लिखे हुये हैं, क्योंकि उस समय तीन लेखक इसी कार्यार्थ बिठलाये गये थे, उन्होंने बराबर अक्षर–अक्षर करके लिखा। उसकी एक प्रति पादरी साहब ने ली और दो स्वामी जी महाराज ने। इन दोनों प्रतियों पर सरदार बहादुर मुन्शी अमीचन्द साहब और पण्डित भागराम जी के हस्ताक्षर भी हैं।

मैं वहां शास्त्रार्थ में उपस्थित था, इसलिये स्वामी जी महाराज ने दोनों प्रति मुझे दे दी थी और आज्ञा की थी कि इनके अनुसार छपवा देना और सब वृत्तान्त भी लिख देना।

महाराज की आज्ञानुसार मैंने सब वृत्तान्त लिखा, सो भेजता हूं। मैंने कितने ही स्थानों में पादरी साहब का पूर्वापर विरुद्ध भाषण प्रकट होने के लिये नोट भी कर दिये हैं।

भवदीय–

"समर्थदान"

शास्त्रार्थ से पहले

विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कार्तिक सुदी १३ सम्वत् १६३५ विक्रमी, दिन सोमवार को अजमेर में आये थे। थोड़े दिनों के पीछे वेदादि सत्य शास्त्रोक्त धर्म–विषय में व्याख्यान देने लगे। **"ईश्वर–विषय"** के पीछे दूसरा **"वेद–विषय"** का व्याख्यान था। उस दिन अजमेर के बड़े पादरी ग्रे साहब और डाक्टर हसबैण्ड साहब भी आये थे। उसमें स्वामीजी ने शास्त्र और युक्ति से यह सिद्ध किया कि– **"ईश्वरकृत पुस्तक केवल चार वेद ही हैं, अन्य कोई नहीं"**। इसके पीछे एक बड़ा सूचीपत्र तौरेत, इंजील और कुरान की अशुद्धता का पढ़ कर सुनाया, और कहा कि–

"मैंने यह सूचीपत्र किसी को चिढ़ाने के लिए नहीं सुनाया है, किन्तु इसलिये कि सब लोग पक्षपात रहित होकर विचारें कि जिन पुस्तकों में ऐसी–ऐसी बातें लिखी हों, वे "ईश्वरकृत" हो सकती हैं वा नहीं" ?

इस बात पर पादरी ग्रे साहब ने कहा कि– आपने जो तौरेत और इंजील की बातें सुनाई, इनमें प्रश्न लिखकर आप मेरे पास भेजें, मैं इनका उत्तर दूंगा।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मैं तो यही चाहता हूं और सदैव मेरी यही इच्छा रहा करती है कि आप जैसे बुद्धिमान् पुरूष मिल के सत्यासत्य का निर्णय करें।

श्री पादरी ग्रे साहब–

सत्य का निर्णय जब होगा कि आप मेरे पास प्रश्न भेजेंगे और मैं उत्तर दूंगा।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

लिखकर दोनों ओर से प्रश्नोत्तर भेजने में काल बहुत लगता है, और मनुष्यों को भी इससे लाभ नहीं पहुंचता। इसलिये यही बात अच्छी है, कि आप भी यहां आवें और मैं प्रश्न करूं और आप उत्तर दें।

श्री पादरी ग्रे साहब–

आप प्रश्न मेरे पास भेज देवें, जब मैं दो चार दिन में उनको विचार लूंगा, तब पीछे आपको उत्तर यहां आकर दूंगा।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

प्रश्न तो मैं नहीं भेजूंगा, परन्तु मुझको जहां–जहां इंजील और तौरेत में शंका है, उनमें से थोड़े से वाक्य लिखकर भेज दूंगा। उनको जब आप विचार लेंगे, तो उन्हीं में, मैं प्रश्न करूंगा, आप उत्तर देना।

नोट–

फिर इतनी बात होने के पीछे पादरी ग्रे साहब चले गये। उसके दूसरे दिन स्वामीजी ने तौरेत और इंजील के साठ वाक्य लिखकर पण्डित भागराम साहब एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर के द्वारा पादरी साहब

के पास भेज दिये[1]। फिर नौ दस दिन पीछे जब पादरी साहब ने उनको विचार लिया और व्याख्यान हो चुके, तब एक दिन प्रश्नोत्तर के लिये नियत हुआ।

उस दिन नोटिस दे दिया था, इस कारण से बहुत लोग आये। सरदार मुन्शी अमीचन्द साहब जज, पण्डित भागराम साहब एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर, सरदार भगतसिंह साहब इंजीनियर इत्यादि प्रतिष्ठित पुरूष आये थे। जब समय हुआ तब स्वामीजी चारों वेदों के पुस्तक लेकर आये और पादरी साहब भी बहुत सी पुस्तकें लेकर आये। पादरी साहब के साथ डाक्टर हसबैण्ड साहब भी आये।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मैंने कितनी ही जगह पादरी लोगों से बातचीत की है, कभी किसी प्रकार का कुछ गड़बड़ नहीं हुआ। आज भी मैं जानता हूं कि पादरी साहब से वार्तालाप निर्विघ्नता से पूरा होगा।

नोट–

फिर पादरी साहब ने भी निर्विघ्नता से बातचीत होने की आशा प्रकट की, और कहा कि–

श्री पादरी ग्रे साहब–

स्वामी जी ने जो वाक्य लिख कर हमारे पास भेजे हैं वे बहुत हैं, और समय केवल दो अढ़ाई घण्टे का है। इसलिये प्रत्येक वाक्य पर दो बार ही प्रश्नोत्तर होना ठीक है।

नोट–

इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर होने लगे। और तीन लेखक[2] भी बिठला लिये। इन तीनों को स्वामीजी और पादरी साहब बोलते समय अक्षर–अक्षर लिखवाते जाते थे।

"सम्पादक"

नोट–

१. इन वाक्यों के साथ वेद–भाष्य भी भेजा था, क्योंकि पादरी साहब ने कहा था कि आप बाईबिल में प्रश्न करें, मैं उत्तर दूंगा, और मैं वेदों में कितनी ही बातों पर प्रश्न करूंगा, आप उत्तर देना। पादरी साहब ने वेद–भाष्य देखा होगा, परन्तु प्रश्न नहीं किये।

२. बाबू रामनाथ, हैडमास्टर राजपूत स्कूल जयपुर, बाबू चन्दूलाल, वकील गुड़गाँवा; हाफिज मोहम्मद हुसैन, दरोगा चुंगी, अजमेर।

"समर्थदान"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

तौरेत उत्पत्ति की पुस्तक पर्व १ आयत २ में लिखा है कि–"**पृथ्वी बेडोल थी**"। अब देखना चाहिये कि परमेश्वर सर्वज्ञ है, सब विद्या उसमें पूरी हैं। उसकी विद्या के काम में बेडोलता कभी नहीं हो सकती, क्योंकि उसके सब काम बेभूल हैं। बेडोलता मनुष्यों के काम में हो सकती है, क्योंकि उनकी पूरी विद्या और सर्वज्ञता नहीं है। इससे जीव के काम में बेडोलता रह सकती है, ईश्वर के काम में नहीं।

श्री पादरी ग्रे साहब–

यहां अभिप्राय "**बेडोल**" से नहीं है किन्तु "**उजाड़**" से है। आयूब की किताब बाब २ आयत २४ में है कि–"**बिना मार्ग जंगल में उन्हें भ्रमना है,**" यहां जिस शब्द का अर्थ है, उसी का अर्थ वहां "**बेडोल**" है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

इससे पहली आयत में यह बात आती है कि– "**आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा और पृथिवी बेडौल व सूनी थी। गहराव पर अंधियारा था,**" इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उजाड़ का अर्थ यहां नहीं ले सकते, क्योंकि लिखा है कि "**सूनी थी**"। बेडोल के अर्थ उजाड़ के होते तो "**सूनी थी**" इस शब्द की कुछ आवश्यकता नहीं थी। और जबकि ईश्वर ने ही पृथिवी को रचा है, सो प्रथम ही अपने ज्ञान से बेड़ोल की जगह डोलवाली क्या नहीं रच सकता था ?

श्री पादरी ग्रे साहब–

दो शब्द एक ही अर्थ के सब भाषाओं में एक दूसरे के पीछे बहुधा आते हैं। जैसे इब्रानी में "**तोहू बोहू**"[1] फारसी में "**बूदो–बाश**" ये सब एक अर्थ के वाची हैं। इसी प्रकार उर्दू में यह अर्थ ठीक है कि– "**जमीन बीरान और सुनसान थी**"।

नोट–

स्वामी जी इस बात पर और प्रश्न करना चाहते थे। इतने में पादरी ग्रे साहब ने कहा कि–

श्री पादरी ग्रे साहब–

एक–एक वाक्य पर दो–दो प्रश्न और दो–दो उत्तर होने चाहियें। क्योंकि वाक्य बहुत हैं, नहीं तो सब प्रश्न आज न हो सकेंगे।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यह अवश्य नहीं है कि आज ही सब वाक्यों पर प्रश्नोत्तर हो जायें, कुछ आज होंगे। फिर इसी प्रकार दो चार दिन अथवा जब तक ये वाक्य पूरे न हों, तब तक प्रश्नोत्तर होते रहेंगे।

---

१. देखिये, पण्डित लेखराम जी कृत जीवन चरित में "**हो ब्रह्मे**"। हिन्दी संस्करण पृष्ठ ७३६।

"लाजपत राय अग्रवाल"

नोट–

पादरी साहब ने इस बात को स्वीकार नहीं किया।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यदि अधिक न हों तो एक वाक्य पर दस बार प्रश्न होने चाहियें।

नोट–

पादरी साहब ने यह भी स्वीकार न किया।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

प्रत्येक वाक्य पर कम से कम तीन बार प्रश्नोत्तर तो होने ही चाहियें।

श्री पादरी ग्रे साहब–

हमको दो बार से अधिक प्रश्नोत्तर करना कदाचित् स्वीकार नहीं है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

हमको इसमें कुछ हठ नहीं है, सभा की जैसी सम्मति हो वैसा किया जाये।

नोट–

स्वामी जी की इस बात पर कोई कुछ न बोला। परन्तु डाक्टर हसबैण्ड साहब ने कहा कि यदि सभा से प्रत्येक विषय में पूछेंगे, तो चार सौ मनुष्य हैं उसमें से किस–किस से पूछा जायेगा ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यदि पादरी साहब को तीन प्रश्न करना स्वीकार नहीं है, तो जाने दो, हम दो करेंगे, क्योंकि इतने मनुष्य विज्ञापन देख कर इकट्ठे हुये हैं, जो यहां कुछ बात न हुई तो अच्छा नहीं। फिर स्वामीजी ने दूसरे वाक्य पर प्रश्न किया[१]–

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वही पर्व और वही आयत– **"और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था"**। पहली आयत से विदित होता है कि ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को रचा, यहां जल की उत्पत्ति नहीं कही, तो जल कहां से हो गया ? ईश्वर आत्मस्वरूप है वा जैसे कि हम शरीर वाले हैं वैसा ? जो शरीर वाला है तो उसका सामर्थ्य आकाश और पृथिवी बनाने का नहीं हो सकता। क्योंकि शरीरवाले के शरीर के अवयवों से परमाणु आदि को ग्रहण करके रचना में लाना असम्भव है, और वह व्यापक भी नहीं हो सकता। जब उसका आत्मा जल पर

---

[१] देखो यह सत्य के निर्णय के लिये की गई थी, और सत्य का निर्णय तब ही होता है कि जब एक वाक्य पर अच्छी प्रकार प्रश्नोत्तर हो जायें, किन्तु पादरी साहब ने ऐसा न करके दो प्रश्न और दो उत्तर करने की ही हठ की, परन्तु फिर भी अपना बचाव न कर सके, आखिर कलई खुल ही गई।

"समर्थदान"

डोलता था, तब उसका शरीर कहां था ?

श्री पादरी ग्रे साहब–

जब पृथिवी को सृजा तो पृथिवी में जल भी आ गया। और दूसरी बात का उत्तर यह है कि परमेश्वर आत्मस्वरूप है। तौरेत के आरम्भ से इंजील के अन्त तक परमेश्वर आत्मस्वरूप कहलाया।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

ईश्वर का वर्णन तौरेत से लेकर इंजील पर्यन्त में बहुत ठिकानों में ऐसा है कि– वह किसी प्रकार का शरीर भी रखता है, क्योंकि आदम की बाडी को बनाना, वहां आना, फिर से ऊपर चढ़ जाना, सनाई पर्वत पर जाना, मूसा, इब्राहीम और उनकी स्त्री सरी से बातचीत करना, डेरे में जाना, याकूब से मल्लयुद्ध करना, इत्यादि बातों में पाया जाता है कि अवश्य किसी प्रकार का शरीर वह रखता है, वा उसी दम अपना शरीर बना लेता है।

श्री पादरी ग्रे साहब–

ये सब बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखती हैं, केवल अंजानपने से कही जाती हैं। इसका यह ही उत्तर है कि यहूदी, ईसाई और मुसलमान जो तौरेत को मानते हैं, इस पर एक सम्मत हैं कि खुदा रूह (आत्मा) है[1]।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

पर्व वही आयत २६–"**तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें**"। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि ईश्वर भी आदम के स्वरूप जैसा था। जैसा कि आदम आत्मा और शरीर युक्त था, ईश्वर को भी इस आयत से वैसा ही समझना चाहिये। जब वह शरीर जैसा स्वरूप नहीं रखता, तो अपने स्वरूप में आदम को कैसे बना सका ?

श्री पादरी ग्रे साहब–

इस आयत में शरीर का कुछ कथन नहीं, परमेश्वर ने आदम को पवित्र ज्ञानवान् और आनन्दित रचा। वह सच्चिदानन्द ईश्वर है, और आदम को अपने स्वरूप में बनाया। जब आदम ने पाप किया तो परमेश्वर के स्वरूप से पतित हो गया। जैसे पहले प्रश्नोत्तर के २४ और ३०[2] प्रश्न से विदित होता है। देखो–कोल्लोस्सियों

---

१. पाठकों ! पहले उत्तर में तो पादरी साहब कहते हैं कि "**तौरेत के आरम्भ से इंजील के अंत तक परमेश्वर आत्मस्वरूप कहलाया**"। जब स्वामी जी ने उसी पुस्तक में दिखला दिया कि ईश्वर का शरीर वाला होना सिद्ध है, तब पादरी साहब कहते हैं कि ये सब बातें इस आयत से कुछ सम्बन्ध नहीं रखती। और फिर पुस्तक के वर्णन को छोड़ यहूदी, ईसाई और मुसलमानों के मत पर दौड़ जाते हैं। यहां यह प्रश्न होता है कि उक्त लिखे तीनों मत वाले खुदा को रूह मानते हैं, तो क्या बाईबिल के विरूद्ध नहीं हैं, कि जिससे ईश्वर का शरीर वाला होना सिद्ध होता है ?

२. यही "**२४ और ३०**" संख्या पण्डित लेखरामकृत जीवन चरित हिन्दी संस्करण पृष्ठ ७४० पर भी है। इसका भाव हमारी समझ में नहीं आया।

"भवानी लाल भारतीय"

की पत्री, तीसरा पर्व, ६ और १० आयत–"**एक दूसरे से झूठ मत बोलो, क्योंकि तुमने पुराने मनुष्यता को उसके कार्यों समेत उतार फेंका है और नये मनुष्यता को जो ज्ञान में अपने सृजनहारे के स्वरूप के समान नये बन रहे हैं, पहना है**"। इससे विदित होता है कि ज्ञान और पवित्रता में परमेश्वर के समान बनाया गया, और नये सिरे से हम लोगों को बनाया। कुरिन्थियों का तीसरा पर्व, १७ और १८ आयत– "**और प्रभु ही आत्मा है, और जहां कहीं प्रभु का आत्मा है वहीं निर्विघ्नता है, और हम सब बिना परदा प्रभु के तेज को दर्पण में देख–देख प्रभु के आत्मा के द्वारा तेज से तेजलों उसके स्वरूप में बदलते जाते हैं।**" इससे ज्ञात होता है कि विश्वासी लोग बदल के फिर परमेश्वर के स्वरूप में बन जाते हैं, अर्थात् ज्ञान, पवित्रता और आनन्द में, क्योंकि धर्मी होने से मनुष्य के शरीर का रूप नहीं बदलता है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

परमात्मा के सदृश आदम के बनने से सिद्ध होता है कि ईश्वर भी शरीर वाला होना चाहिये। जो परमेश्वर ने आदम को पवित्र और आनन्दित रचा था, तो उसने ईश्वर की आज्ञा क्यों तोड़ी ? और जो आज्ञा तोड़ी तो विदित होता है कि वह ज्ञानवान् नहीं था। और–"**जब उसने ज्ञान के पेड़ का फल खाया तब उसकी आंख खुल गई**"–इससे जाना जाता है वह ज्ञानवान् पीछे से हुआ। जो पहले ही से ज्ञानवान् था, तो फल के खाने के पीछे ज्ञान हुआ, यह बात नहीं बन सकती। और प्रथम परमेश्वर ने उसको आशीर्वाद दिया था कि तुम फलो फूलो आनन्दित रहो, और फिर जब उसने ईश्वर की आज्ञा के बिना उस पेड़ का फल खाया, तब उसकी आंखे खुलने से उसको ज्ञान हुआ कि हम नंगे हैं, गूलर के पत्ते अपने शरीर पर पहने। अब देखना चाहिये–जो वह ईश्वर के समान ज्ञान में और पवित्रता में होता, तो उसको नंगा और ढका रहना क्यों नहीं जान पड़ता ? क्या उसको इतनी भी सुध नहीं थी ? जब परमेश्वर के समान वह ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित था, तो उसको सर्वज्ञ और नित्य शुद्ध और आनन्दित रहना चाहिये, और उसके पास दुःख कुछ भी कभी न आना चाहिये। क्योंकि वह परमेश्वर के समान इन ऊपर लिखी तीनों बातों में है, तो वह पतित किसी प्रकार से नहीं हो सकता, और जो पतित हुआ तो परमेश्वर के समान नहीं हुआ, क्योंकि परमेश्वर ज्ञानादि गुणों से पतित कभी नहीं होता। फिर बतलाइये कि जैसे आदम प्रथम ज्ञान आदि तीनों गुणों में परमेश्वर के समान होके फिर उनसे पतित हो गया, वैसे ही विश्वासी लोग ज्ञानी, पवित्र और आनन्दित होंगे वा अधिक कम ? जो वैसे ही होंगे, तो फिर जैसे आदम पतित हो गया, वैसे ही विश्वासी भी हो जावेंगे, क्योंकि वह तीनों बातों में परमात्मा के समान होकर पतित हो गया।

श्री पादरी ग्रे साहब–

बहुधा बातों में पहला उत्तर बहुत है। अब रहा यह कि–"**यदि आदम पवित्र था तो आज्ञा क्यों तोड़ी ?**" उत्तर यह है कि "**वह पहले पवित्र था तो आज्ञा तोड़ के पापी हुआ**[१]। फिर यह कहा कि–ज्ञानवान् पीछे से हुआ, यह बात नहीं है। जब भले बुरे के ज्ञान के पेड़ का फल खाया[२] तब बुराई जान पड़ी, पहले न जानता था। "**आंखें खुल गई और उसको जान पड़ा कि मैं नंगा हूं**"–इसका उत्तर यह है कि

१. देखिये, क्या विचित्र उत्तर है ?

२. यहां यह प्रश्न होता है कि वह परमेश्वर के समान ज्ञानी था, तो भले बुरे के ज्ञान के पेड़ को क्यों नहीं जानता था ? जो यह कहो कि पहले नहीं जानता था, तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि ज्ञानी नहीं था।

पापी होके उसको लज्जा आने लगी। फिर यह कि—यदि परमात्मा के समान होता तो पतित न होता, इसका उत्तर यह है कि वह परमात्मा के समान बनाया गया, न कि उसके तुल्य। यदि परमात्मा के तुल्य होता तो पाप में न गिरता। अन्त में जो पूछा कि— विश्वासी लोग आदम से अधिक पवित्र हो जायेंगे, इसका उत्तर यह है कि—अधिक और कम पवित्र होने में प्रश्न नहीं है, किन्तु स्वरूप के विषय में है कि परमेश्वर का रूप शारीरिक था वा नहीं ? यदि वह स्वरूप जिसका कथन होता है, शारीरिक होता तो धर्मी लोग जब परमेश्वर के स्वरूप में नये सिरे से बन जाते हैं, अपने शरीर को बदल डालते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती—

तौरेत का पर्व २, आयत ३—"**उसने सातवें दिन अपने सब कार्य करके विश्राम किया, और ईश्वर ने सातवें दिन को आशीर्वाद दिया, और उसे पवित्र ठहराया।**" ईश्वर को सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप होने से परिश्रम जगत् के रचने में कुछ भी नहीं हो सकता, फिर सातवें दिन विश्राम करने की क्या आवश्यकता थी ? और विश्राम किया तो छः दिन तक बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा ? और सातवें दिन को आशीर्वाद दिया तो छः दिनों को क्या दिया ? हम नहीं कह सकते कि परमेश्वर को एक क्षण भी जगत् के रचने में लगे वा उसने कुछ भी परिश्रम किया हो।

नोट—

जब स्वामी जी ने यह प्रश्न किया, तब पादरी साहब ने कहा कि—

श्री पादरी ग्रे साहब—

अब समय हो चुका, इससे अधिक हम नहीं ठहर सकते, और बोलते समय लिखाना पड़ता है, इससे देर बहुत लगती है, इसलिये हम कल भी प्रश्नोत्तर नहीं करना चाहते। जो बोलते समय लिखा न जाये, तो हम कर सकते हैं। यदि स्वामीजी को लिख कर प्रश्नोत्तर करना है, तो हमारे पास प्रश्न लिखकर भेज दें, हम लिख कर उत्तर भिजवा देंगे।

नोट—

इस पर डाक्टर हसबैण्ड साहब के कहने से सरदार बहादुर अमीचन्द साहब ने कहा कि— मेरी भी यही सम्मति है कि प्रश्नोत्तर लिख कर पत्र द्वारा किया करें। आज की नाई किये जायेंगे, तो छः महीने तक भी पूरे न होंगे।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती—

प्रश्नोत्तर के लिखे बिना बहुत हानि है, जैसे अभी थोड़ी देर के पश्चात् अपने में से कोई अपनी कही हुई बात के लिये कह सकता है कि मैंने यह बात नहीं कही। दूसरे बातचीत हुये पीछे और लोगों के हितार्थ छपा कर भी प्रकट नहीं कर सकते जो यदि कोई छपावे भी तो उसके जी में जो आवे सो छपवा सकता है। और जो मकान पर प्रश्नोत्तर लिख—लिख कर किया करें, तो इसमें काल बहुत लगेगा। और जो कहा जाये कि इस प्रकार छः महीने में पूरा न होगा, सो मैं कहता हूं कि इसमें छः मास का कुछ काम नहीं है। हां, जो मकान पर पत्र द्वारा करेंगे, तो तीन वर्ष में भी पूरा न होगा, और जो मनुष्य सभी सामने सुन रहे हैं, ये नहीं सुन सकेंगे। इसलिये यही अच्छा है कि सबके सामने प्रश्नोत्तर किये जायें और लिखाया भी जाये।

श्री पादरी ग्रे साहब–

यहां प्रश्नोत्तर करने में लोगों के सुनने का लाभ बतलाया, परन्तु मैं जानता हूं कि आज की वार्ता में यहां इतने लोग बैठे हैं, इनमें से थोड़े ही समझे होंगे।

नोट–

पादरी साहब की इस बात को सुनकर एक साहब मुसलमान कि जो प्रश्नोत्तर लिखने को बैठे थे और दो मुसलमान लोग कहने लगे कि हम कुछ भी नहीं समझे[1]। इस बात पर पादरी साहब ने कहा कि–देखिये लिखने वाला ही नहीं समझा, तो और कौन समझ सकता था ? फिर स्वामीजी ने जो दो दूसरे लिखने वाले थे, उनसे पूछा कि तुम समझे वा नहीं ? उन्होंने कहा कि हां हम बराबर समझे। हमने जो कुछ लिखा है उसको अच्छी प्रकार कह सकते हैं। तब स्वामीजी ने कहा कि दो लिखने वाले तो समझे और एक नहीं समझा। अन्त में पादरी साहब ने दूसरे दिन प्रश्नोत्तर का लिखा जाना स्वीकार नहीं किया।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

आज के प्रश्नोत्तर की तीन प्रति लिखी गई हैं। इन पर आप हस्ताक्षर कर दीजिये और मैं भी करे देता हूं, और प्रधान सभा से भी कराकर एक प्रति आपके पास, एक मेरे पास, और एक प्रधान के पास रहेगी।

श्री पादरी ग्रे साहब–

हम ऐसी बातों पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहते[2]।

नोट–

इतनी वार्ता के पश्चात् सभा उठ खड़ी हुई और सब लोग अपने–अपने मकानों को चले गये। परन्तु स्वामी जी महाराज, सरदार बहादुर, अमीचन्द साहब और पण्डित भागराम साहब, सरदार भगतसिंह जी के मकान पर कि जो सभा के मकान के पास था, ठहरे। उस समय प्रश्नोत्तर की दो प्रतियों पर, कि जो स्वामी जी के पास रहीं थी, उक्त दोनों साहबों के हस्ताक्षर भी करा लिये, और कुछ वार्तालाप करके सब साहब अपने–अपने मकानों को पधारे। दूसरे दिन पादरी साहब ने स्वामीजी के पास पत्र लिख कर भेजा कि–

श्री पादरी ग्रे साहब–

आप प्रश्नोत्तर करेंगे वा नहीं ? यदि करना हो तो किया जाये, परन्तु लिखा न जाये, और लिखना हो तो पत्र द्वारा किये जावें। स्वामीजी ने उसके उत्तर में लिख भेजा कि–

---

[1] मुसलमान लोग भी लिखने के प्रबन्ध को नहीं चाहते थे, क्योंकि उनका भी यह अभिप्राय था कि यदि यह प्रतिज्ञा न रहे तो किसी मौलवी को लाकर हम भी वादानुवाद करावें, और पीछे जो जी चाहे वैसा उल्टा सुलटा छपवा देवें। इस समय पोप लोग भी गड़बड़ करते थे कि हम भी शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु मौलवी साहब और पोप जी कोई भी न आया जियाफत वा ब्रह्मभोज का काम होता तो सभी आते। यहां तो शास्त्रार्थ का काम था, कि लिखवाये पीछे पलट भी न सकते थे।

[2] क्या इसीलिये लिखवाने से भय करते थे ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

प्रश्नोत्तर सबके सामने–सामने किये जावें, और लिखे भी जावें। इस प्रकार हमको स्वीकार है अन्यथा नहीं। क्योंकि दूसरी प्रकार करने मे बहुत हानि है, जो कि हम पहले कह चुके हैं। अब यदि आपको लिखा कर प्रश्नोत्तर करने हों, तो मुझको लिखिये, मैं जब तक आप कहें यहां रहूं और प्रश्नोत्तर करूं। और यदि आपको इस प्रकार न करना हो, तो सरदार भगत सिंह जी को लिख भेजो कि अब प्रश्नोत्तर न होंगे, क्योंकि सभा के लिये जो उन्होंने प्रबन्ध कर रक्खा है, उसे उठवा दें।

नोट–

पादरी साहब ने सरदार भगतसिंह जी को इसी प्रकार कहला भेजा, तब उन्होंने सब प्रबन्ध उठवा दिया। इसके पश्चात् स्वामीजी तीन चार दिन अजमेर में और रहे। मसूदा और नसीराबाद थोड़े दिन रह कर जयपुर पधारे।

जब स्वामीजी अजमेर से चले गये, उसके दूसरे दिन पादरी साहब ने मिशन स्कूल में कितने ही शहर के लोगों और मिशन स्कूल के विद्यार्थियों को इकट्ठा करके, स्वामीजी ने जो वाक्य लिखकर तौरेत और इंजील के भेजे थे, उनके उत्तर सुनाये कि जिससे ईसाई मत का कच्चापन किसी पर प्रकट न हो! इसके पीछे पादरी साहब को बाजार में वाज (उपदेश) करते समय कितने ही आदमियों ने कहा कि साहब ! आप यहां हम मूर्ख लोगों के साथ प्रतिदिन घंटों तक सिर दुखाया करते हैं, परन्तु जब आप स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से प्रश्नोत्तर करते थे। तब तो आपने यह कहा था कि हमको इतना समय नहीं कि प्रश्नोत्तर करते समय लिखाते जाएं।

यदि आप स्वामी जी को अपने मत की कोई भी बात स्वीकार करा देते, तो उनके पीछे हजारों आपकी बात को स्वीकार करते। अब आपके व्यर्थ कहने से क्या होता है ?

"समर्थदान"

———————0———————

एक सौ पैंतीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "बरेली" (उत्तर–प्रदेश)

दिनांक : २५ अगस्त सन् १८७९ ई० (प्रथम दिवस)
विषय : पुनर्जन्म होता है वा नहीं ?
वैदिकधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,
ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पादरी टी०जी० स्काट साहब,
मध्यस्थ : श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी खजान्ची, रईस–बरेली,
नोट : शेष पात्रों की जानकारी शास्त्रार्थ के मध्य में प्राप्त हो जायेगी।

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ शृंखला को जिवित रखने का प्रयास किया।

–"**लाजपत राय अग्रवाल**"

शास्त्रार्थ से पहले

– "डॉ0 भवानी लाल भारतीय"

स्वामी दयानन्द जी का एक महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ बरेली के **"श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब"** के साथ भाद्रपद शुक्ला ७, ८, ६ विक्रमी संवत् १६३६ तदनुसार दिनांक २५, २६ और २७ अगस्त सन् १८७६ ई0 को हुआ। शास्त्रार्थ में विचारणीय विषय निम्नलिखित थे –

(१) तारीख २५ अगस्त का – **"आवागमन विषय"**।

(२) तारीख २६ अगस्त का – **"ईश्वर देह धारण करता है, या नहीं ?"**

(३) तारीख २७ अगस्त का – **"ईश्वर अपराध क्षमा करता है, या नहीं ?"**

बरेली के **"लाला लक्ष्मीनारायण जी, खजान्जी"** शास्त्रार्थ–सभा के **"मध्यस्थ"** थे। शास्त्रार्थ **"लिखित"** रूप में हुआ था, तथा तीन लेखकों ने क्रमशः स्वामीजी, पादरी साहब तथा सभापति की ओर बैठकर सम्पूर्ण शास्त्रार्थ को अक्षरशः लेखबद्ध किया। इस प्रकार तीन प्रतियां तैयार हुई, एक–एक प्रति स्वामीजी, पादरी महाशय तथा सभापति के पास रहीं। श्री पण्डित लेखराम जी कृत स्वामीजी के जीवनचरित के अनुसार– **"स्वामी जी तथा पादरी महाशय की दस्तखती असली तहरीर की अक्षरशः प्रतिलिपि छपाई जाती है। पाठक अपनी बुद्धि से विचार कर अंतिम निर्णय निकाल लें"।**

"सत्यासत्य विवेक" के विभिन्न संस्करण –

यह शास्त्रार्थ असली लिखित प्रति के अनुसार **"सत्यासत्य विवेक"** के नाम से उर्दू में **"आर्य भूषण प्रेस"** शाहजहांपुर से प्रकाशित हुआ। इस प्रथम संस्करण का प्रकाशनकाल सितम्बर सन् १८७६ ई0 था। द्वितीय बार यह पुस्तक **"आर्यदर्पण प्रेस"** शाहजहांपुर से छपी। चतुर्थ और पंचम बार उर्दू तथा हिन्दी में **"लाहौर"** से प्रकाशित हुई। श्री पण्डित लेखराम ने इस पुस्तक को स्वलिखित महर्षि के उर्दू जीवन चरित में संग्रहीत किया था। वहां से लेकर श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री ने स्वसम्पादित **"श्रीमद्दयानन्द ग्रंथ–संग्रह"** में स्थान दिया। आर्यजगत के प्रमुख प्रकाशक मैसर्स विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क– दिल्ली के द्वारा यह पृथक् पुस्तकाकार भी छपा था। **"सत्यासत्य विवेक"** का विज्ञापन ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के आश्विन सम्वत् १६३६ विक्रमी के ११वें अंक में छपा था। विज्ञापन निम्न प्रकार था –

"सत्यासत्य विवेक" (विज्ञापन)–

"इस पुस्तक में सविस्तार वृत्तान्त तीनों दिन के शास्त्रार्थ का", कि जो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और पादरी टी0 जी0 स्काट साहब का राजकीय पुस्तकालय बरेली[1] में, इस प्रकार कि प्रथम दिन अनेक जन्म के विषय में, दूसरे दिन अवतार अर्थात् ईश्वर देह धारण कर सकता है इस विषय में, और तीसरे दिन इस विषय में कि ईश्वर पाप क्षमा कर सकता है, हुआ था। बहुत उत्तम फारसी लिपि और उर्दू भाषा में मुद्रित हुआ था। इस शास्त्रार्थ में प्रत्येक विषय पर उत्तम प्रकार से खण्डन–मण्डन हुआ है, कि जिसके देखने से

---

१. जहां आजकल म्युनिसिपलबोर्ड बरेली का दफ्तर है, पहिले यहां पर ही यह पुस्तकालय था, जिसमें यह शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ था।

"लाजपत राय अग्रवाल"

सत्यप्रेमी जनों को सत्य और असत्य प्रकट होता है। जो विद्यार्थी मिशन स्कूलों में पढ़ते हैं और बहुत करके गुमराह होते हैं, उनको यह पुस्तक गुमराही से बचाती है। डाक महसूल सहित एक आना, मूल्य भेज कर मंगवायें। तथा "**दयानन्द दिग्विजयार्क**" खण्ड १ मयूख ६ में भी इस शास्त्रार्थ का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। श्री पण्डित लेखराम जी कृत उर्दू जीवन चरित में "**शास्त्रार्थ बरेली**" के विषय में निम्न उपयोगी विवरण दिया गया है –

आरम्भिक निवेदन

"**विदित हो कि यह लिखित शास्त्रार्थ बड़े आनन्द के साथ, जैसा कि प्रायः सुसभ्य, सुयोग्य और विद्वान पुरुषों में हुआ करता है, और जैसा कि वास्तव में होना भी चाहिये, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी और पादरी टी0 जी0 स्काट साहब के मध्य राजकीय पुस्तकालय बरेली में तीन दिन तक तारीख २५-२६ और २७ अगस्त सन् १६७६ ई0 को लाला लक्ष्मीनारायण साहेब खजांची रईस बरेली की अध्यक्षता में हुआ।**" अन्य नियमों के साथ ही इस शास्त्रार्थ के मुख्य नियम इस प्रकार थे– शास्त्रार्थ लिखित होगा। तीन लेखक – एक स्वामीजी की तरफ, दूसरा पादरी साहब की तरफ और तीसरा अध्यक्ष महोदय की तरफ बैठकर शास्त्रार्थ के प्रत्येक शब्द को सावधानी के साथ ज्यों का त्यों लिखते जायेंगे। जिस समय एक विद्वान निश्चित समय के अन्दर अपना कथन समाप्त कर चुके, तो उसका लिखा हुआ वक्तव्य सभा में उपस्थित पुरुषों को सुना दिया जावे, और तीनों प्रतियों पर उसके हस्ताक्षर कराये जावें। और जब शास्त्रार्थ समाप्त हो, तो उस पर अध्यक्ष महोदय के हस्ताक्षर भी कराये जावें। इन तीन प्रतियों में से एक स्वामीजी के पास, दूसरी पादरी साहब के पास और तीसरी अध्यक्ष महोदय के पास प्रमाण स्वरूप रहे, जिससे कि बाद में भी उनमें किसी प्रकार की घटा–बढ़ी न हो सके। इसके बाद फिर प्रार्थना के रूप में लेख है। हम इस शास्त्रार्थ को अक्षरशः मूल के, कि जिस पर स्वामी जी और पादरी साहब के हस्ताक्षर हैं, अनुसार करके और स्वामी जी के आदेशानुसार तैयार करके, इसको छापेखाने में छपवाते हैं। इसमें किसी अक्षर का भी परिवर्तन नहीं किया है। इसको शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिये यहां तक सावधानता रखी गई है कि जहां जिस विद्वान के हस्ताक्षर थे, वहां हस्ताक्षर का शब्द लिखकर उसी का नाम लिख दिया है। पाठक दोनों विद्वानों के लेखों अथवा वक्तव्यों को सत्यासत्य–विवेचक दृष्टि से देखें, और किसी प्रकार के पक्षपात को पास न आने दें, जिससे कि सत्य और असत्य का प्रकाश भली प्रकार हो जावे। कुछ सज्जनों का कथन है कि इन शास्त्रार्थों के अन्त में निर्णय भी निकाल देना चाहिए। परन्तु हमने अपनी सम्मति प्रकाशित करना उचित नहीं समझा। निर्णय करने का काम पाठकों की सत्यता प्रेमी बुद्धि पर ही छोड़ा जाता है।

नोट –

इस भूमिका और प्रार्थना आदि की शब्द रचना से ज्ञात होता है कि यह लेख श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी, जो कि शास्त्रार्थ के अध्यक्ष थे, की ओर से ही हैं, और उन्होंने ही इस विवरण को सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इस पुस्तक के विषय में धर्मवीर श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर कृत महर्षि के बृहद् उर्दू जीवन चरित्र में पृष्ठ ७६८ पर तथा हिन्दी संस्करण पृष्ठ ८२४ पर लिखा है– बड़ी सावधानी के साथ प्रथमवार मास सितम्बर सन् १८७६ ई0 में "**आर्यभूषण यन्त्रालय**" शाहजहांपुर में मुद्रित हुआ। और दोबारा "**आर्यदर्पण प्रेस**" शाहजहांपुर में और चौथी तथा पांचवीं बार उर्दू व हिन्दी में "**लाहौर**" में मुद्रित हुआ। इस शास्त्रार्थ का मूल पाठ "**श्रीमद्दयानन्द ग्रंथ संग्रह**" जिसके सम्पादक (श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री जी) के अनुसार "**सत्यासत्य विवेक**" अर्थात् "**शास्त्रार्थ बरेली**" शीर्षक से आगे दिया जाता है।

शास्त्रार्थ आरम्भ

"सत्यासत्य विवेक"–शास्त्रार्थ बरेली

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जीव और जीव के स्वाभाविक गुण, कर्म और स्वभाव अनादि है और परमेश्वर के न्याय करना आदि गुण भी अनादि हैं। जो कोई, मानता है कि जीव की और उसके गुण आदि की उत्पत्ति होती है, उसको उसका नाश मानना भी अवश्य होगा; और तिस के कारण आदि का भी निश्चय करना और कराना होगा। क्योंकि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। जो–जो जीव के पाप और पुण्य आदि कर्म प्रवाह से अनादि चले आते हैं, उनका ठीक–ठीक फल पहुंचाना ईश्वर का काम है; और जीवों का बिना स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर के सुख–दुख का भोग करना असम्भव है। जब यह बात हुई, तब बारम्बार शरीर का धारण करना भी जीव को अवश्य है। क्योंकि क्रियामाण कर्म नये–नये करता जाता है, उनका संचित और प्रारब्ध भी नया–नया होता चला जाता है। जब इस सृष्टि में विद्या की आंख से मनुष्य देखे, तो सृष्टिक्रम और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक–ठीक सिद्ध होता है कि देखो जो आज सोमवार है, वही फिर भी आता है। महीना, रात, दिन आदि भी पुनः पुनः आते हैं; और गेहुं का बीज बोने से फिर वही गेहूं आता है।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब –

इस आवागमन के विषय में केवल सत्य के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। हार जीत की इसमें कोई बात नहीं है। यह सिद्धान्त पुराना तो है, परन्तु संसार में से मिटा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जितने जीवात्मा हैं, वे सदैव जन्म लेते रहते हैं। कभी मनुष्य की योनि में, कभी बैल की योनि में, कभी बन्दर की और कभी कीड़े–मकौड़े की योनि में उत्पन्न होते हैं। परन्तु यह ऐसा सिद्धान्त है कि सुशिक्षित और उन्नत जातियां इसको छोड़ती जाती हैं। प्राचीन मिस्र के लोगों ने पहले इसे माना हुआ था, फिर छोड़ दिया। इसी प्रकार यूनानियों ने और रोमियों ने और अंग्रेजों ने भी छोड़ दिया। हमारे पुराने द्रविड़ लोग भी, जो कि हमारे गुरु थे, यही सिखलाते थे, और हम लोग सब के सब मानते थे। परन्तु रोशनी के फैलने से और विद्या प्राप्त करने से, इस पुराने और निराधार सिद्धान्त को छोड़ दिया। सो हमारा सवाल पण्डितजी से यह है कि इस सिद्धान्त को मानने के लिये कौन सी युक्तियां हैं? जब कोई विशेष प्रमाण दिया जायेगा, तो हम उसका खण्डन करने के लिये आक्षेप करेंगे। फिर भी कुछ प्रश्न यहां पर हैं देखिये–

(१) ईश्वर की आत्मा के अतिरिक्त और आत्मायें भी अनादिकाल से अर्थात् अजल से हैं कि नहीं?

(२) इस जन्म लेने से कभी छुटकारा मिलेगा, या नहीं?

(३) आपका यह कथन है कि सब दुख जो संसार में होते हैं, दण्ड देने के लिए ही हैं। सो पुनर्जन्म केवल दण्ड के लिये है, या इसका कोई और अन्य कारण है?

(४) यह भी एक प्रश्न है कि परमेश्वर हर समय सगुण है, या कभी निर्गुण भी होता है?

(५) यह जन्म लेना उसी की खास कुदरत से हर समय होता रहता है, या किसी कुदरती कानून से होता है ? जैसे कि बीज का उगना, फल का पकना, पानी का बरसना, इत्यादि।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

तीन पदार्थ अनादि हैं – एक ईश्वर, एक कारण और सब जीव। जीव जन्म से कभी छुटकारा न पायेंगे। पुनर्जन्म, दण्ड और पुरस्कार दोनों के लिये है। परमेश्वर सगुण भी है और निर्गुण भी, और वह सदैव रहता है। कुदरती नियम उसका यही है कि– जैसा जिसने पाप या पुण्य किया है, उसको वैसा ही अपने सत्य न्याय से फल देता है। अब पादरी साहब ने जो कहा था कि पुनर्जन्म का प्राचीन सिद्धान्त हमारे बीच में भी था। इससे सिद्ध हुआ कि सब देशों में पुनर्जन्म का सिद्वान्त प्रचलित था। और जो यह कहा कि जो जातियां सुधरती जाती हैं, वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को छोड़ती जाती हैं। अब इस पर एक सवाल है कि– प्राचीन सभी बातें झूठी हैं, या उनमें से कुछ सत्य भी हैं ? और नये सिद्धान्त सभी सत्य हैं, अथवा उनमें कुछ मिथ्या भी हैं ? यदि पादरी साहेब कहें कि प्राचीन बातें और सिद्धान्त अब मानने के योग्य नहीं हैं ? तब तो तौरेत और जबूर इत्यादि ग्रंथ और बाईबिल व इंजील की शिक्षायें आज की अपेक्षा से बहुत पुरानी हैं, वे भी अब न माननी चाहियें। यह कोई मानने योग्य प्रमाण की बात नहीं है, कि पहिले मानते थे और अब नहीं मानते, इसलिये सच्ची या झूठी हैं। या पहिले नहीं मानते थे अब मानते हैं, इसीलिये झूठी या सच्ची हैं।

अब पादरी साहब ने कहा कि कुछ प्रमाण दें, तो हम उस पर आक्षेप करें। प्रमाण के लिए मैंने पहले ही लिख दिया है कि – इस जीव के कर्म इत्यादि अनादि हैं, और ईश्वर का न्याय करना इत्यादि भी अनादि हैं। जो कर्म का सिद्धान्त न माना जाये, तो सृष्टि में बुद्धिमान, निर्बुद्धि और दरिद्र, राजा और कंगाल की अवस्था ईश्वर किस प्रकार कर सके ? क्योंकि इसमें तरफदारी आती है, और पक्षपात से उसका न्याय ही नष्ट हो जाता है। जब कर्म के फल हैं, तो परमेश्वर पूर्ण न्यायकारी बनता है, अन्यथा नहीं। और ईश्वर अन्याय कभी नहीं करता।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

पण्डित जी के कहने से तमाम जीव अनादि हैं, अर्थात् अजल से हैं। तो इस हिसाब से हमारी और ईश्वर की अनादिता में कोई भेद नहीं, अर्थात् दो वस्तुएं अनादि काल से हैं। एक प्रकार से दो ईश्वर हुए। मेरा प्रश्न यह है कि ऐसा मानना तौरेत, जबूर और इंजील के सर्वथा विरूद्ध है। मैं पूछता हूं कि कौन सा सिद्धांत अधिक संतोषजनक है ? अर्थात् एक यह है कि हमारे जीवात्मा सदैव आवागमन के चक्कर में भ्रमते फिरते रहेंगे, और कभी बैल के शरीर में जायेंगे, कभी बंदर के, कभी अत्यन्त नीच योनि वाले कीड़े–मकोड़े के और कभी किसी अच्छे शरीर में, इस अनादिकाल से चल रहे चक्कर में अधिक संतोष है कि तौरेत, जबूर और इंजील के सिद्धान्त में ! कि अन्ततोगत्वा जो लोग नेकी करते और नेक बनते हैं, वे एक ऐसे सुखपूर्ण स्थान में पहुचेंगे कि उन्हें फिर कभी जन्म न लेना होगा, न ही उन्हें किसी प्रकार का कष्ट होगा। विचार कीजिये कि किस ग्रंथ की शिक्षा अधिक सन्तोषजनक है ? इसके अतिरिक्त ईश्वर निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार का कैसे हो

सकता है ? अर्थात् वह विशेषणों वाला भी है और विशेषणों से रहित भी है। वह कौन सी वस्तु है कि जो विशेषणों से रहित है ? बताइये यदि उसमें न्याय करने का गुण न हो, तो न्याय क्यों कर करे, और पुनर्जन्म के रूप में लोगों को दण्ड किस प्रकार देवे ? ऐसे ही निराधार विचारों पर आधारित होने के कारण सुशिक्षित जातियां इस सिद्धान्त को छोड़ती जाती हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह पुनर्जन्म दण्डस्वरूप है, तो इसमें दण्ड क्या हुआ ? उदाहरण के लिए जब बन्दर यह जानता ही नहीं कि मैंने क्या अपराध किया है, या कोई पादरी साहब, या पण्डित साहब अत्यन्त तुच्छ कीड़े–मकौड़े के शरीर में उत्पन्न हुआ; तो उसको दण्ड कैसा हुआ ? वे तो जानते ही नहीं कि हमने क्या–क्या अपराध किये हैं ? क्या कभी किसी को याद आया है या आता है, कि मैं अमुक काल में बन्दर था अथवा मैं किसी समय में गीदड़ था ? और जब कुल दुनियां में किसी को भी याद नहीं है, तो फिर ऐसे पुनर्जन्म में किसी के लिए क्या दण्ड की बात रह जाती है ? हम तो यह मानते हैं कि दु:ख कभी–कभी दण्डस्वरूप होता है, और कभी नहीं भी।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

दोनों अनादि होने से बराबर नहीं होते, जब तक कि उनके सब गुण बराबर न हों। परमेश्वर अनन्त है और जीव सान्त; परमेश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ। परमेश्वर सदा पवित्र और मुक्त तथा जीव कभी पवित्र, कभी बद्ध और कभी मुक्त। इसलिए दोनों बराबर नहीं हो सकते। तौरेत, जबूर और इंजील के विरूद्ध होने से ही कोई बात सच्ची और झूठी नहीं हो सकती। क्योंकि तौरेत आदि में भ्रम से सच को झूठ और झूठ को सच बहुत जगह लिखा है। सच्ची तो उस किताब की बात हो सकती है ; कि जिसमें आरम्भ से अन्त तक एक भी बात झूठ न हो। ऐसी किताब वेदों के अतिरिक्त भूगोल में ईश्वरकृत और कोई नहीं। क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव से अनुकूल केवल वेद ही एक ऐसी पुस्तक है, दूसरी नहीं। सिवाय वेद के उपदेश के किसी भी किताब में ठीक–ठीक सब बातों का निश्चय नजर नहीं आता है। इसलिए सबसे उत्तम वेद की ही शिक्षा है, दूसरे की नहीं। परमेश्वर अपने गुणों से सगुण है, अर्थात् सर्वज्ञ आदि गुणों से; और निर्गुण–कारण से जड़ आदि गुणों तथा जीव के अज्ञान, जन्म–मरण, भ्रम आदि गुणों से रहित होने से परमात्मा निर्गुण है। इसलिए यह निश्चय जानना चाहिये कि कोई भी पदार्थ इस रीति से सगुणता और निर्गुणता से रहित नहीं है। जब जीव का पाप अधिक और पुण्य कम होता है : तब उसे बन्दर आदि का शरीर धारण करना पड़ता है; और जब पाप पुण्य बराबर होते हैं, तब मनुष्य का; और जब पाप कम और पुण्य अधिक होता है, तब विद्वान इत्यादि का।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

सब पुराने सिद्धान्त मिथ्या नहीं हैं, और न ही सब नये सिद्धान्त सत्य हैं, परन्तु जब सुशिक्षित जातियां भली प्रकार विचार विमर्श करके किसी सिद्धान्त को मिथ्या उद्घोषित करती हैं, तो यह दृढ़ प्रमाण है कि वह

सिद्धान्त मिथ्या है। और एक ही बार के जन्म लेने के विषय में सोच लीजिए। तौरेत नई नहीं है, यह भी बहुत पुरानी है। तौरेत किसी प्रकार भी वेद से नई नहीं है उसमें पुनर्जन्म का कुछ भी उल्लेख नहीं है। तौरेत और इंजील सत्य हैं वा मिथ्या ? यह आज का विषय नहीं है। इस विषय को व्यर्थ ही खण्डित करना कि ये मिथ्या नहीं, अथ्वा वेद के विषय में कुछ नहीं कहना है। क्योंकि यह भी आज का विषय नहीं। परन्तु इस बात पर ध्यान दीजिये कि सुशिक्षित और उन्नत जातियां तौरेत और इंजील की शिक्षाओं पर दृढ़ रहती हैं। इसके प्रतिकूल हिन्दू लोग ज्यों–ज्यों उन्नत और सुशिक्षित होते जाते हैं, वे लोग त्यों त्यों वेद को छोड़ते जाते हैं। आवश्यकता हो, तो मैं सैकड़ों प्रमाण दे सकता हूं। और यह कहना कि कर्म अनादि काल से है, इसलिए पुनर्जन्म होता है, तब तो परमेश्वर को भी जन्म लेना चाहिए। और यदि कोई कहे कि उसके सब कर्म अच्छे हैं, तो क्या कठिन है कि उसकी दया और कृपा से हम लोग भी ऐसे दृढ़ और उत्तम हो जावें कि हमें बन्दर या गीदड़ बनना न पड़े। जैसा कि हमारे पवित्र धर्म ग्रंथ में लिखा है – **"एक बार मनुष्य के लिए मरना है, बाद इसके न्याय"**। निर्गुण और सगुण के विषय में स्वामी जी के अर्थ को मैं नहीं मानता। निर्गुण का यह अर्थ नहीं है कि कोई गुण न हो। जब उसमें गुण नहीं है, तब तो वह सगुण भी नहीं हो सकता। फिर इस समय जन्म–मरण का प्रबन्ध कौन करता है ? अब फिर मैं पूछता हूं कि यदि दण्ड–भोग के लिये जन्म लेता है, तो यह चाहिये कि दण्ड भोगने वाला यह जाने कि मुझे दण्ड क्यों भोगना पड़ा है ? अन्यथा दण्ड भोग की सब बात ही व्यर्थ हो जाती है। मैं फिर पूछता हूं कि किसी को याद क्यों नहीं रहता कि तुम बन्दर या गीदड़ पिछले जन्म में थे।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी० जी० स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

(पहले प्रश्न के विषय में उत्तर)– जीव अल्पज्ञ है, इसलिये पूर्वजन्म की बात को याद नहीं रख सकता। पादरी साहब को विचार करना चाहिये कि ऐसी बात क्यों पूछते हैं ? क्योंकि इसी जन्म में जन्म के पांच वर्ष तक की बातें भी क्यों नहीं याद रहतीं ? और सुषुप्ति अर्थात् गहरी नींद में जब सो जाता है, तब जागृत अवस्था की बात एक भी याद नहीं रहती। और कार्य कारण के अनुमान से अर्थात् कार्य का निश्चय कर लिया। सब विद्वान् लोग मानते हैं कि जब पाप पुण्य का फल सुख दुख, नीच ऊंच जगत् में दीखता है तो कारण जो पूर्वजन्म का कर्म है, सो क्यों नहीं ? पुरानी और नई शिक्षा या सिद्धान्त की बात दृष्टान्त के लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि वह सर्वथा सत्य नहीं। और जिनको आप सुशिक्षित कहते हैं, उन जातियों में से कोई मनुष्य अर्थात् दार्शनिक वा विचारक बन्दर से मनुष्य का होना मानता है, यह सर्वथा मिथ्या है। ये वेद की ही बातें हैं कि– **"वेदी का बनाना"**। इब्राहीम को ईश्वर ने कहा कि इससे मैं प्रसन्न होता हूं, तुम यज्ञ किया करो। इत्यादि वेदों की बातें बाईबिल में मौजूद हैं। और ईसा ने साक्षी दी है कि– **"इसका एक बिन्दु भी झूठ नहीं है"**। इसलिए और भी एक प्रमाण देता हूं कि– आजकल (जर्मन निवासी) मोक्षमूलर MAXMULAR (व्याख्याता) अपने ग्रंथों में लिखते हैं कि– **"ऋग्वेद से प्राचीन कोई भी पुस्तक संसार में नहीं है"**। अब मैं सैकड़ों साक्षियां दे सकता हूं कि– **"बाइबिल इन इण्डिया"** के बनाने वाले इत्यादि और आजकल के सैकड़ों विचारकों की वाणी से मैंने सुना है कि वे लोग बाईबिल वा इंजील को नहीं मानते। और कर्नल अल्काट इत्यादि ने भी बाईबिल की शिक्षा को सर्वथा त्याग दिया है। और हमारे आर्य लोग– एफ० ए०, बी० ए०, एम०

ए0, एल0 डी0 लाखों लोग बाईबिल को सर्वथा नहीं मानते और वे सभी सुशिक्षित हैं। अस्तु; पादरी साहब का यह कथन पर्याप्त नहीं है। परमेश्वर का पुनर्जन्म नहीं होता, क्योंकि वह अनन्त और सर्वव्यापक है। वह शरीर में नहीं आ सकता। वह तो नित्यमुक्त है। बन्धन का काम कभी नहीं करता।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

पण्डित जी का पक्ष, बालक के उदाहरण से कि वह किसी बात को याद नहीं रखता, जो कि बचपन में हुई हो, मिथ्या सिद्ध होता है; इसलिये कि बच्चे कुछ न कुछ तो याद रख ही लेते हैं। और फिर यह भी प्रश्न होता है कि जब हमारे आत्मा अनादिकाल से हैं, तब तो हम भी बच्चे की अपेक्षा से कुछ बढ़ गये हैं। हमें कुछ न कुछ तो वृत्तान्त ज्ञात होना ही चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता। इस युक्ति पर विचार कीजिए। यह सम्भव प्रतीत नहीं होता कि हम अनादिकाल से चले आ रहे हैं। और जन्म ग्रहण करके यदि सब बातें भूल गए हैं, तब तो जन्म धारण करने का दण्डग्रहण करने का भी कुछ अर्थ न निकला। और नींद का जो वर्णन किया गया, सो इस उत्तर से सिद्ध होता है कि नींद की बात भी याद रहती है। कतिपय तो नींद के समय बड़े उत्तमोत्तम विचार प्रकट करते हैं। यहां पर मैं एक पुष्ट प्रश्न और करना चाहता हूं। वह यह कि– इस शिक्षा से संसार में पाप को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। क्योंकि लोग कहते हैं कि जो चाहें सो करें, भोगेंगे तो फिर कभी किसी अन्य योनि में ही, अच्छा जन्म भी कभी होगा। यह भी कहते हैं कि यह परम्परा सदैव चलती रहेगी, क्या करें। हम मानते हैं कि संसार में जो दुख हैं, उनका कोई न कोई कारण अवश्य है। कभी बुरों को दण्ड के लिए, और कभी अच्छों को कि उनको अनेक प्रकार की शिक्षा मिलती है। कहानी इस प्रकार है कि– "**एक बादशाह का लड़का था उसे पण्डित के पास पढ़ने के लिये भेजा गया। पण्डित ने उसको सब प्रकार से सुशिक्षित करके योग्य बनाया। फिर वापिस बादशाह के पास लाया। और उससे कहा कि केवल एक ही काम बाकी है। उसने पूछा कि इसने कोई अपराध किया ? कहा कि नहीं। तब कहा कि मुझे चाबुक देना। और खुद सवार होकर लड़के से कहा कि दौड़ो। और उसको खूब मारता गया, फिर बादशाह के पास ले आया। बादशाह ने कहा कि ऐसा क्यों किया ? पण्डित जी ने कहा कि इसलिये कि दूसरों पर दया करना सीखे और दयालु व कृपालु बन जाये।**" सो यह सम्भावना है कि अच्छे मनुष्यों को भी कष्ट भोगना पड़े, किसी अच्छे उद्देश्य के लिए। यह कुछ आवश्यक नहीं है कि पुराने जन्म के कारण से। डारविन साहब पुनर्जन्म को नहीं मानते। केवल यही कहते हैं कि संसार में विकास क्रम से नीची योनियों के प्राणी ऊंची योनियों को प्राप्त हो गये हैं। उनका यह अभिप्राय नहीं है कि कोई प्राणी जो अब है, वह पहिले भी था। कर्नल अल्काट साहब की जो चर्चा चली है, सो उसका जो पक्ष है, वह सुन लीजिये। तब मालूम होगा कि वे कैसे आदमी हैं ?

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

लड़के के उदाहरण से मेरा यह अभिप्राय है कि वह जो कुछ सुख–दुःख भोगता है, उसकी स्मृति उसे स्वयमेव नहीं होती, कहीं किसी के कहने से होती है। और जीव का स्वाभाविक गुण एकसा रहता है, परन्तु

नैमित्तिक गुण घटते–बढ़ते रहते हैं। इसलिए जीव एक से हैं, परन्तु उसके ज्ञान की सामग्री पांच वर्ष के पश्चात् बढ़ जाती है। अब यदि पादरी साहब को या मुझको कोई पूछे कि दस वर्ष से पहिले किसी से एक दिन भर बातचीत क्या की ? क्या वह सम्पूर्ण पदों और अक्षरों सहित याद है ? तो यही कहना पड़ेगा कि ठीक–ठीक याद नहीं है। जब सदा से जीव नहीं आते, तो फिर कहां से हुए ? जेलखाने के कैदियों को यद्यपि सब लोग ठीक–ठीक नहीं जानते, तथापि अनुमान करते हैं कि किसी अपराध के करने से जेलखाने में पड़े हैं। इससे हम कभी भी अपराध न करें। अन्यथा हमारा भी यही हाल होगा। पादरी साहब मेरे अभिप्राय को नहीं समझे। वह स्वप्न की बात नहीं, सुषुप्ति की बात है कि जिस नींद में कुछ भी स्मरण नहीं रहता। बस नींद में कोई एक भी विचार कोई भी स्मरण नहीं रख सकता। जो पुनर्जन्म को नहीं मानते, उनकी शिक्षा से संसार में पापों की वृद्धि होती है, क्योंकि फिर आगे जन्म लेने की बात तो वे मानते ही नहीं हैं। जो मन में आवे, वही करते हैं, और मरने पर व्यर्थ ही हवालाती के समान पड़े रहते हैं। आज मरे, कयामत तक हवालात में रहे। कचहरी के द्वार बन्द हैं, और खुदा बेकार बैठा है। जो दोजख में गया, वह वहां का हो गया, जो जन्नत में गया, वह वहां का हो गया। और कर्म तो ससीम किये जाते हैं, परन्तु उसका फल असीम प्राप्त होता है, इस प्रकार ईश्वर बड़ा अन्यायी ठहरता है। और आशावादिता के बिना मनुष्य सुधर नहीं सकते। केवल रंज में दुःख का कारण क्या है ? और यदि शिक्षण के लिये उसको कष्ट दिया जाता है, वह सुधार के लिये है, परन्तु उसका फल तो विद्या आदि हैं। और पादरी साहब ने कहा था कि एक स्थान में सदैव सुख दुःख भोगेंगे, हम जानना चाहते हैं कि वह स्थान कौन सा है ?

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

कर्नल अल्काट साहब का एक कागज मेरे पास है कि जिसमें ईसाइयों की और पादरियों की, ईसाई दीन की व्यर्थ ही कठोर भाषा में बहुत बुराई लिखी है। वह इतनी अधिक कठोर है कि मैं किसी बाजारी व बदमाश के लिए भी न बकता। कहते हैं कि– ये कठोर और निर्दयी हैं। यह ईसाई दीन संसार में सारी बुराई और खराबी की जड़ है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार से कठोर भाषा का प्रयोग किया गया है। जरा विचार कीजिये इस व्यक्ति का हृदय और उसकी बुद्धि किस प्रकार की होगी ? यह बात सिद्ध नहीं होती कि वेद तौरेत की अपेक्षा अधिक पुराना है। इस वास्ते कि तौरेत में यज्ञ का वर्णन है, और हम दावे से कह सकते हैं कि सर्वप्रथम तौरेत में ही यज्ञ का वर्णन हुआ और वेद वालों ने वहां से ले लिया ? दोनों बातों का दोनों में ही वर्णन है। निश्चय से कोई नहीं कह सकता कि किसने किससे ले किया। और, यह कहना कि कुछ गुण स्थायी हैं और कुछ अस्थायी, इसलिए इस जन्म की बातें हमें याद नहीं रहती। कुछ गुण तो स्थायी हैं ही, अतः यह अवश्य ही होना चाहिए कि पिछले जन्म की कोई बात तो याद हो। यदि हमारी और पण्डितजी की बातचीत इस वर्ष कहीं हुई हों, तो कुछ बातें तो अवश्य ही याद रहती हैं।

निद्रा का उदाहरण ठीक नहीं है। क्योंकि कभी–कभी नींद में बात याद नहीं रहतीं, और कभी–कभी याद रहती भी हैं। जेलखाने का उदाहरण भी पूरा ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें दण्ड का केवल एक ही अभिप्राय प्रकट होता है। दण्ड के दो अभिप्राय हैं– एक तो दण्डित व्यक्ति का सुधार और दूसरे देखने वालों को शिक्षा। परन्तु इस पुनर्जन्म में तो केवल देखने वालों की शिक्षा की ही कुछ व्यवस्था मानी जा सकती है। यह नहीं

कि उसे यह दण्ड क्यों मिला है ? रहा यह प्रश्न कि आत्मायें (रूहें) कहां से आई ? शिक्षित जातियों में आजकल यह सिद्धान्त है कि जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज उत्पन्न होते हैं, और कोई भी यह नहीं कहता कि पहिले वृक्ष हुआ, अथवा पहिले बीज हुआ है; इसी प्रकार रूह से शरीर और शरीर से रूह उत्पन्न होते हैं। तथापि यह बात हमारे लिए बुद्धिगम्य नहीं है कि ऐसा किस प्रकार होता है ? परन्तु ऐसा नहीं है कि जो रूह अब मौजूद है, वह पहिले किसी अन्य शरीर में थी। वह अभी पैदा हुई है, और जब यहां से जावेगी तो उसका यथोचित न्याय होगा, कर्मानुसार। इससे परमेश्वर अन्यायी नहीं है, अपितु इससे भी परमेश्वर का न्याय सिद्ध होता है। यह कहना कि रूह सदा कहां रहती है ? हम यह नहीं कहते कि हम परोक्ष की बातें जानने वाले हैं कि सुख वा दुख के स्थान बतावें। ईश्वर सर्वशक्तिमान है, वह रूह को सभी स्थानों पर सुख अथवा दुःख दे सकता है। हमारा जानना या न जानना क्या हुआ ?

हस्ताक्षर –

"पादरी टी० जी० स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जो कर्नल अल्काट साहब के विषय में पादरी साहब ने कहा कि वह अच्छा मनुष्य नहीं है, सो मैं ठीक नहीं मान सकता। क्योंकि जिनका जिनसे विरोध होता है, वे उनके विषय में उल्टा सूधा कहा ही करते हैं। वेद तौरेत की अपेक्षा बहुत पुराना है, और जिसकी बात पूरी से अधूरी दूसरी में लिखी हो तो दूसरी ही पुस्तक बाद की होती है। बालकपन में नैमित्तिक गुण कर्म थे, और स्वाभाविक गुण एक से हर समय रहते हैं, इस बात को पादरी साहब ठीक–ठीक नहीं समझे। जो कि आग के संयोग से जल में उष्णता आती है वह नैमित्तिक और जो आग में उष्णता आती वा दाहकता है, वह स्वाभाविक हैं। जो–जो जीव के स्वाभाविक गुण है, वे न्यूनाधिक कभी नहीं होते। और पादरी साहब ने कहा कि– जेलखाने के कैदियों को देखकर देखने वालों को भय होता है कि मैं ऐसा कर्म न करूं। परन्तु जिसको दण्ड पूर्वजन्म के कर्मों का मिलता है, उसको याद ही नहीं ! जैसे और लोग कार्य कारण को जानते हैं, क्या वे न जानेंगे कि दण्ड अवश्य ही कर्मों का फल होता है ?

एक वैद्य को ज्वर आया और एक मूढ़ गंवार को भी। वैद्य ने अपनी विद्या के प्रभाव से ज्वर के कारण को जान लिया कि अमुक कारण है, परन्तु उस गंवार ने न जाना, फिर भी ज्वर का कष्ट तो दोनों ही अनुभव करते हैं। फिर भी गंवार इतना अवश्य ही जानता है कि कोई न कोई बदपरहेजी अवश्य हुई है, और इसीलिए यह ज्वर आया है। इससे उसे दण्ड द्वारा सुधारने का फल प्राप्त होता है कि जो मैं बुरा काम करूँगा, तो बुरा फल जैसा कि उसको है, मुझे भी प्राप्त होगा। जब जीव से शरीर और शरीर से जीव पैदा होते हैं, तो आपका बनाने वाला परमेश्वर नहीं। इससे आपका कथन ठीक नहीं रहा। और आपके कथनानुसार जो जीव प्रथम–प्रथम उत्पन्न हुए, वे किन शरीरों से हुए ? जो कहें परमेश्वर, (तो परमेश्वर) भी आदमी, घोड़े और वृक्ष तथा पत्थर के समान हुआ, क्योंकि जिसका कार्य जैसा होता है, उसका कारण भी वैसा ही होता है। और जीवों को मध्य में हवालातियों के समान दौरा सुपुर्द करना बहुत दिन तक– कि जो दण्ड से भी भारी है, फिर उसको स्वर्ग मान के किन कर्मों से मिल सकता है ? कोई भी नहीं। जब आप सर्वज्ञ नहीं हैं, तो फिर ऐसा क्यों कहते हैं कि पुनर्जन्म नहीं होता। इससे आपका एक जन्म सिद्ध नहीं हुआ और पुनर्जन्म सिद्ध हो गया।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

एक सौ छत्तीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "बरेली" (उत्तर–प्रदेश)

दिनांक	: २६ अगस्त सन् १८७६ ई0 (द्वितीय दिवस)
विषय	: क्या ईश्वर देह धारण करता है ?
वैदिकधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	: श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,
ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	: श्री पादरी टी0जी0 स्काट साहब,
मध्यस्थ	: श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी खजान्ची, रईस–बरेली,
नोट	: शेष पात्रों की जानकारी शास्त्रार्थ के मध्य में प्राप्त हो जायेगी।

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जिवित रखने का प्रयास किया।

– "**लाजपत राय अग्रवाल**"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पादरी टी० जी० स्काट साहब–

आज का सवाल यह है कि परमेश्वर देह धारण करता है अर्थात् **"साकार"** होता है या नहीं ? उचित यह है कि इस विषय में अत्यन्त सावधानी से और गम्भीरतापूर्वक विचार विमर्श और प्रश्नोत्तर किया जावे। जब उस सर्वेश्वर के विषय में वार्तालाप हो, तो मनुष्य को चाहिए कि बहुत सोच समझकर गम्भीरता के साथ बोले। इस विषय में अहंकार और अभिमान की कुछ भी गुन्जाईश नहीं है। किसी को भी ऐसा घमण्ड नहीं करना चाहिए कि हम ईश्वर के विषय में सब कुछ जानते हैं। कवि का कथन है–

अर्श से ले फर्श तक, जिसका कि यह सामान है।
हिम्द् उसकी गर लिखा, चाहूं तो क्या अमकानं है।।

जब पैगम्बर ने कहा हो, मैंने पहिचाना नहीं।
फिर कोई दावा करे, उसका, वो बड़ा नादान है[1]।।

विचार कीजिए कि ईश्वर की अनादिता के विषय में हम क्या जानते हैं ? सो, इसी प्रकार हम सर्वशक्तिमान के विषय में क्या जानते हैं ? वह सर्वव्यापक अर्थात् प्रत्येक स्थान पर मौजूद है, उसके विषय में हम क्या जानते हैं ? हां, इन शब्दों के कुछ–कुछ अर्थ हम जानते हैं। परन्तु यह कथन तो मूर्खों का ही है कि ईश्वर के विषय में हम सब कुछ जानते हैं। आज के वार्तालाप में दो प्रश्न ये हैं कि– क्या ईश्वर देह धारण कर सकता है ? दूसरे यह कि– ऐसा कभी हुआ है कि नहीं ? विशेष रूप से पहली बात का ही विचार इस समय है। पहले प्रश्न का भाव यह है कि क्या यह सम्भव है कि ईश्वर अपने आपको कभी स देह रूप में प्रकट करे ? ध्यान दीजिये, यह भाव कदापि नहीं है कि ईश्वर स देह बन जाये। प्रथम पक्ष यह है कि देह धारण करने की सम्भावना है। आत्मा और परमात्मा (इन्सानी रूप और इलाही रूप) बहुत सी बातों में समान है। अपितु यह कहना चाहिये कि दोनों की एक ही जाति है। क्योंकि ईश्वर की वाणी में लिखा है कि– **"खुदा ने इन्सान को अपनी सूरत पर बनाया"**। यह नहीं कि शारीरिक रूप में अपने जैसा बनाया, अपितु भाव यह है कि आध्यात्मिक रूप में। अर्थात् बहुत से गुण कर्म और स्वभाव जो ईश्वर में हैं, वे ही मनुष्य में भी हैं, अर्थात् दया, न्याय तथा और भी अनेक प्रकार की धार्मिक विशेषतायें। इस कारण ईश्वर के साथ मनुष्य मेल कर सकता है। ऐसी अवस्था में हम लोग जो कि स्वयं सशरीर हैं, क्यों अहंकार करें कि ईश्वर साकार न हो। यदि उसकी इच्छा हो कि स देह रूप में प्रकट हो, तो क्या बाधा है ?

हस्ताक्षर –

"पादरी टी० जी० स्काट"

---

१. भावार्थ–

आकाश से लेकर पृथ्वी पर्यन्त यह नाना प्रकार का जड़ जंगम स्वरूप संसार जिसका है, मैं यदि उसकी महिमा का गान करना भी चाहूं तो कैसे करूं ? उसके गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ तो अनन्त हैं। और मेरी सामर्थ्य बहुत ही अल्प है।

"सम्पादक"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जो पादरी साहब ने कहा उसकी परीक्षा हम नहीं कर सकते। इस पर सवाल यह है कि सर्वथा नहीं कर सकते, या कुछ कुछ कर सकते हैं ? वैसे सर्वव्यापक के विषय में कुछ जानते हैं, या नहीं ? और जो कुछ जानते हैं तो कितना ? जो किसी का कहना हो कि मैं ईश्वर को जानता हूं तो वह मूर्ख है, और जो यह पादरी साहब का कहना है, तो उसके जानने में वश नहीं रहा। और पादरी साहब अपने पहले कथन के विरूद्ध बोले हैं, वह यह है कि– ईश्वर देह धारण करता है। कर सकता है या नहीं, ऐसा नहीं ? लेकिन देह धारण करता है। यहां प्रश्न होता है कि–

(१) उसको क्या आवश्यकता देह धारण करने की है ?

(२) उसकी इच्छा में कोई बन्धन है या नहीं ?

(३) वह निराकार है या साकार ?

(४) वह सर्वव्यापक है या एक देशी ? जीव और ईश्वर के गुण दया आदि क्या ठीक–ठीक मिलते हैं, या नहीं ? बहुत से जीवों में भी दया देखने में आती है।

(५) वे दोनों एक हैं, तो दोनों ही खुदा हैं। इसका क्या उत्तर है ? आध्यात्मिक पक्ष में जो परमेश्वर देह धारी होता है, तब वह सम्पूर्ण ही देह में आ जाता है, या टुकड़े–टुकड़े होकर आता है ? यदि टुकड़े–टुकड़े होकर आता है, तो नाशवाला हुआ। और जो वह सम्पूर्ण आ जाता है, तो शरीर से छोटा हुआ। फिर तो ईश्वर ही नहीं हो सकता। जीव तथा ईश्वर में कुछ भी भेद नहीं आ सकता है। और यदि वह एकदेशी है, तो एक स्थान पर रहता है, या घूमता फिरता है ? यदि कहो कि एक स्थान पर रहता है, तो उसको सब स्थानों की खबर रहना असम्भव है। और जो घूमता–फिरता है, तो कहीं अटक भी जाता होगा, और धक्का और शस्त्र भी लगता होगा ?

(६) जब परमेश्वर सृष्टि (रचना) करता है, तब निराकार स्वरूप से या साकार से ? जो कहो कि निराकार स्वरूप से तो ठीक है, और जो कहो कि देहधारी होकर, तो उसका सृष्टि रचना करना सर्वथा असम्भव है। क्योंकि परमाणु आदि पदार्थ सृष्टि का कारण रूप, उसके वश में कभी नहीं आ सकते हैं।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

हम नहीं कहते हैं कि ईश्वर को सर्वथा जान ही नहीं सकते। लेकिन तो भी बहुत बातें हैं, जो हम सर्वथा नहीं जान सकते। सर्वव्यापक के विषय में यह सिद्धान्त है कि वह ऐसा है, परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि इसका पूर्ण अभिप्राय हमको मालूम है। वह तो कह सकते हैं कि ईश्वर ने देह धारण किया। परन्तु उसका अपने आपका देह में धारण करना एक रहस्य है; अपितु हमारे आत्मा का विषय भी शरीर के साथ रहस्यमय है। रहा यह प्रश्न कि– ईश्वर की इच्छा में बन्धन है, या नहीं ? पण्डित जी इस बात को कुछ और स्पष्ट करने की कृपा करें। मैं कहता हूं कि परमात्मा अर्थात् खुदा की रूह और इन्सान की रूह सर्वथा एक जैसी ही नहीं हैं। एक ससीम है और दूसरी असीम। इसलिए दो खुदा नहीं हैं। इनमें एक रचने वाला है, और दूसरा रचा गया है। परन्तु ईश्वर की इच्छा हुई और उसने इन्सान को अपने जैसा ही बनाया है।

रहा यह प्रश्न कि ईश्वर सम्पूर्ण देह में आ जाता है ? हां, आ जाता है, मगर तो भी बाहिर भी रहा। वह सर्वव्यापक है, तो उस देह के अन्दर क्यों नहीं है ? हम यह नहीं कहते कि केवल शरीर में ही है, और कहीं नहीं है। विचार कीजिये कि इस कमरे के अन्दर वह सर्वशक्तिमान इस समय मौजूद है। वह अनादि परमेश्वर इस समय मौजूद है। अर्थात् ईश्वर अपने सब गुणों सहित इस कमरे में मौजूद है, इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। तो इसमें क्या कठिनाई है ? यदि उसकी इच्छा यूँ ही हुई कि अपने आपको एक शरीर में प्रकट करे। यह असम्भव नहीं है, उसकी इच्छा है, जब भी आवश्यकता हो। अपनी लाचारी से नहीं करता; अपितु हम लोगों के लिये। क्योंकि हमारी बुद्धि यदि बहकाना जानती है, तो आगे चलकर हम देख लेंगे कि कोई उचित कारण है अथवा नहीं कि परमेश्वर देह धारण करे। यदि कोई कहे कि देह धारण करना उसकी महिमा के विरूद्ध है, तो यह भ्रान्तिपूर्ण है। यह किस बात में उसकी महिमा के प्रतिकूल है ? देह में कुछ त्रुटि है या कुछ अपवित्र है ? अथवा कोई अशुद्ध वस्तु है कि ईश्वर उससे घृणा करे ? देह को किसने बनाया है ? क्या वह अब सर्वव्यापक नहीं है ? अर्थात् क्या वह अब भी प्रत्येक देह में वर्तमान नहीं है ?

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

पादरी साहब ने मेरे प्रश्नों के ठीक–ठीक उत्तर नहीं दिये। जब वह सर्वव्यापक है, तो एक देह में आना या एक देह से निकलना सर्वथा असम्भव है। ईश्वर ने देह धारण किया, इसकी क्या आवश्यकता है ? यह मैंने पूछा था। इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। और इसका भी कुछ जवाब नहीं दिया कि ईश्वर और जीव आध्यात्मिक रूप में सर्वथा समान हैं अथवा उनमें भिन्नता है, पादरी साहब पहिले कह चुके हैं कि इन्सान की देह अपने शरीर में बनाई। इसके विरूद्ध पीछे कहा कि वे पृथक–पृथक हैं, एक नहीं। मुझसे पूछा कि पण्डित जी इसका स्पष्टीकरण करें। मैं पादरी साहब के अभिप्राय का स्पष्टीकरण क्यों करूं ? यह तो वे ही स्वयं बतावें। यह मैं भी जानता हूं कि ईश्वर सर्वव्यापक है। इस कारण से वह अवतार धारण नहीं कर सकता। क्योंकि क्या पहले वह उसमें न था ? या उसमें एक था ? अब दूसरा, तीसरा इससे उसमें हजारों घुस गये। जब वह असीम है, तो ससीम शरीर में देह धारण करना सर्वथा झूठ। और जो पादरी साहब ने कहा कि उसने मनुष्य की रूह अपने स्वरूप में बनाई, तो मैं पूछता हूं कि बन्दर किसके स्वरूप में बनाये ? क्या बन्दरों का खुदा कोई दूसरा है ? इस प्रकार से तो हाथी, घोड़े, आदि सबके ही खुदा, जुदा–जुदा हो जायेंगे। जब सर्वव्यापक है, तो उसने देह धारण करता है सर्वथा मिथ्या प्रमाणित हो जाता है। क्या वह पहिले देह धारण नहीं किया, अपितु उसने तो संसार का अणु–अणु धारण कर रखा है। पादरी साहब का यह कहना कि वह देह धारण नहीं करता था ? क्या सर्वशक्तिमान परमात्मा अपनी इच्छा से देह धारण करता है ? यदि हां, तो मैं पूछता हूं कि वह अपनी इच्छा से देह छोड़ भी देता होगा ? क्योंकि जो कोई पकड़ेगा, वह कभी न कभी अवश्य ही छोड़ेगा। और वह कभी अपने आपको मारने की भी शक्ति रखता है, या नहीं ? तब तो वह आपके कथनानुसार सर्वशक्तिमान भी न रहेगा। जैसे अविद्या आदि और अन्याय करने आदि का उसका स्वभाव ही नहीं है, सो यह ही उसके जन्म और मरण में भी प्रतिबन्धक है। क्योंकि वह अपने स्वभाव के विरूद्ध कोई कार्य चरितार्थ नहीं कर सकता।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

मेरा प्रश्न यह ही है कि– क्या पण्डित जी का यह अभिप्राय है कि अब परमेश्वर देहधारी है ? क्योंकि उनकी युक्ति से प्रतीत होता है। वह यह दावा करते हैं कि परमेश्वर अब देह में है। और अब जो ये सूरतें सब दृष्टिगोचर होती हैं, सब उसका देह ही हैं। यदि ऐसा है, तब तो मेरा दावा सिद्ध ही हो गया। अब उसमें बाकी ही क्या रहा ? देह धारण करने का क्या अर्थ है ? इस वार्तालाप में मैंने, जो देह पशु, पत्थर इत्यादि हैं, आनदि काल से हैं। परमेश्वर सर्वव्यापक तो है; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस प्रकार से देहधारी है। जैसे जब कोई कहे कि अमुक व्यक्ति परमेश्वर का अवतार है, तो पण्डित जी इसमें झगड़ा क्यों करते हैं ? देह धारण करने का अर्थ कौन नहीं जानता ? और यह कहना कि इस विशेष अर्थ में ईश्वर के देहधारी होकर आने–जाने का कुछ कथन नहीं है। अपितु केवल यही अर्थ है कि वह हमारे लिये शरीर में प्रकट हुआ। जब वह शरीर लुप्त हो जाता है, तब भी ईश्वर वहां वर्तमान रहता है। परन्तु वह ईश्वर की आत्मा उस समय भी उस शरीर में हैवानी आत्मा नहीं है। अभी रूह इस शरीर में प्रकट हुई। यह कोई आने या जाने का मामला ही नहीं है। मैंने साफ–साफ कहा है कि जो मनुष्य का आत्मा ईश्वर के आत्मा के समान है, परन्तु है सर्वथा भिन्न। बन्दर की स्थिति और है। उसकी चर्चा करने की यहां क्या आवश्यकता है ? रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने बन्दर को किसके स्वरूप पर बनाया ? सो जैसी उसकी इच्छा हुई, वैसा उसने बनाया। अर्थात् बन्दर की सूरत और गीदड़ की सूरत और बैल की सूरत और इन्सान को अपनी सूरत में ? तब इसमें आक्षेप की क्या बात है ? अब रहा यह प्रश्न कि ईश्वर ने क्यों देह धारण की ? इसका उत्तर देता हूँ– उसकी सम्भावना का होना तो कुछ असम्भव नहीं है। मकान के उदाहरण को स्मरण कीजिए। और यह भी कि देह धारण करने का अर्थ यह है कि अपने आपको एक देह में प्रकट करना। यदि इस घटना अथवा गति को आप समझ सकें, तो समझिये। हम डरते नहीं कि यह कहने लगें कि ईश्वर के गुण तो गति करते ही नहीं हैं। तो क्या वह जड़ पत्थर है ? अथवा निर्गुण है ? उसका आना–जाना कुछ न हुआ, जीना–मरना कुछ न हुआ। केवल मनुष्य की अल्प सामर्थ्य के कारण अवतार होना अर्थात् देह धारण करना। देह धारण करने में लाभ यह है कि मनुष्य के लिये किसी पूर्ण गुरु, पथप्रदर्शक और आदर्श की जरूरत है। जब गुरू पूर्ण और आदर्श भी सर्वथा दोष–रहित हो, तभी मनुष्य उन्नति करता है। अन्यथा जैसी चाहिये, वैसी उन्नति नहीं करता। क्योंकि उन्नति का साधन या माध्यम अच्छा नहीं होता।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जो पादरी साहब ने कहा कि पण्डित जी के दावे ने मेरे दावे को साबित किया, यह बात गलत है। क्योंकि देह धारण करता है, इसका अर्थ यह है कि पहले वह देह में नहीं था। इस कथन ने तो पादरी साहब के दावे को ही खारिज किया है, न कि साबित।

जो कि सर्वव्यापक है, वह देह धारण करता है या करे या छोड़े, यह कहना सर्वथा असम्भव है। और जब वह सर्वव्यापक है, तब देह धारण करने को कहां से आया ? क्या ऊपर या नीचे से, अथवा बाहिर या बगल से। जो कहें कि किसी तरफ से आया, तो फिर तो वह सर्वव्यापक न हुआ। और जो कहें कि सर्वव्यापक

है, तो कहीं से आना साबित नहीं हो सकता। जाहिर होने में, मैं पादरी साहब से पूछता हूं कि क्या पहले गुम था कि आंख से नहीं दीखा ? जाहिर होने में दीख पड़ा। क्या रूह आंख से देखने का विषय है ? जो कहें नहीं, तो फिर जाहिर होने का क्या अर्थ है ? जैसे सांप बिल में से निकल कर, जाहिर होकर फिर गुम हो जावे ? वैसे ही मैंने पूछा था कि बन्दर को किसकी सूरत में बनाया ? उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। क्या बन्दर और आदमी आदि का बनाने वाला एक ही खुदा है अथवा दो जुदा–जुदा हैं ? जब उसके देह धारण करने में पादरी साहब कुछ विशेष मामला नहीं दिखला सकते, तो बस पादरी साहब का तो मामला ही खारिज हो गया। जो पादरी साहब ने कहा कि परमेश्वर के गुण गति करते हैं, यह सर्वथा झूठी बात है। क्योंकि वह गुण है, द्रव्य नहीं। गतिशील द्रव्य होता है, गुण नहीं। जो पादरी साहब कहें कि देह धारण करना जरूर है, तब तो उसकी जरूरत की बात भी ठीक–ठीक अवश्य ही बतलावें। और जो यह कहा कि मनुष्य की उन्नति के लिये देह धारण करता है, तब तो पहले कहे हुए सभी दोष पादरी साहब के कथन में आते हैं। और मैं पूछता हूं कि वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक क्या अपनी सामर्थ्य से जीवों की उन्नति नहीं करा सकता ? जो कहें कि करा सकता है, तो देह धारण करना व्यर्थ हुआ। जो कहें कि नहीं करा सकता, तो सर्वशक्तिमान नहीं रहा। और जो मैंने दोष दिये थे कि पादरी साहब के कथनानुसार देह धारण करने पर तो परमाणु आदि को अपनी पकड़ में लाने का सामर्थ्य ही उसमें नहीं हो सकता। इतने दोष मौजूद रहे।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

प्रत्येक बात में यह कहना कि यह झूठ है। सो शिष्टाचार के कुछ प्रतिकूल प्रतीत होता है, क्योंकि झूठ बेईमानी और फरेब है। और भी बहुत सी मिथ्या बातें हैं, जिनको कि झूठ कहना जरा शिष्टाचार के विरूद्ध प्रतीत होता है। ईश्वर तो बन्दर की देह में सर्वव्यापक के रूप में है। परन्तु कोई उसको गीदड़ बतादे, वैसे ही कोई उसको बन्दर बता दे। परन्तु हां, अद्वैतवादी ही कहेंगे, परन्तु पण्डित जी तो द्वैतवादी हैं। यह मैं पूछता हूं पण्डित जी से कि– परमेश्वर के अतिरिक्त और भी कोई पदार्थ है वा नहीं ? संसार में नहीं। परन्तु जब ईश्वर का कोई खास अवतार हो, तो उस देह में वह सर्वव्यापक है। और परमेश्वर के सिवा और कोई जीव उसमें नहीं, उसको अवतार कहते हैं। कुछ आने जाने का यह मामला नहीं है। कोई स्याही ऐसी होती है कि जब उससे लिखते हैं, तो कुछ नजर नहीं आता, परन्तु वह लिखाई मौजूद होती है या नहीं ? स्याही मौजूद है, अक्षर मौजूद हैं, उनको जरा आग के सामने दिखाओ, तो कुल लिखाई नजर आती है। पहले भी मौजूद तो थी, परन्तु नजर नहीं आती थी। इसी प्रकार परमेश्वर का नजर न आना, कुछ आने जाने का मामला नहीं है। उसने अपने आपको केवल हमारी कमजोरी के वास्ते इस शरीर में प्रकट किया है। वह कहीं गुम नहीं था, कहीं से आया नहीं। फिर इस विषय में, मैं यह कथन करूंगा कि गुण का गति करना यह है कि वह कार्य का रूप धारण करे, उपयोग में आवे। जैसे कि प्रेम और दया का रखना और न्याय करना। और यह कहना कि देह धारण करने से परमेश्वर की लाचारी मालूम होती है, भ्रान्तिपूर्ण है। पण्डित जी का सिद्धान्त यह है कि जन्म लेने से मनुष्य सुधर जाता है। तो इसमें भी परमेश्वर लाचार है, या उसकी इच्छा है ? यदि वह सर्वशक्तिमान है, तब तो ऐसा नहीं कहना चाहिये कि लाचार है, पण्डित जी के कथनानुसार। और यदि उसकी इच्छा है, तो अपनी इच्छा से वह जानता है कि मनुष्य के विषय में कौन सा उपाय उत्तम है। परन्तु

कुछ कुछ बातों के विषय में हम मानते हैं कि परमेश्वर लाचार है। ध्यान दीजिये– यदि वह सर्वशक्तिमान है, तो वह एक दम ही रूह को पवित्र क्यों नहीं कर देता ? क्यों मनुष्यों को अनेक प्रकार के दुःख देता है। विचार करना चाहिये कि मनुष्य कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र है, और खुदा उसके विषय में बलात्कार नहीं करता है। खुदा चाहता तो है कि वह सुधर जावे, परन्तु उसका सुधारना केवल खुदा के वश में नहीं है। खुदा ने इन्सान को ऐसा ही बनाया है। और कार्य करने में स्वतन्त्र होना यह मनुष्य के महत्व का सूचक है, तो इससे वह अपनी बहुत बड़ी हानि भी कर सकता है। ईश्वर ने उचित यही समझा कि मनुष्य को सुधारने के लिए पूर्ण आदर्श नमूने के तौर पर उसको दिखावे। खुदा के गुम होने से नहीं, अपितु इन्सान के गुम होने से। और बातों को छोड़कर आगे चल कर अधिक निवेदन करूंगा।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी० जी० स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जो पादरी साहब ने शिष्टाचार के विषय में कहा, सो ठीक है। परन्तु सत्य के कहने में अशिष्टता कभी नहीं हो सकती। अशिष्टता तो झूठ के कहने में होती हैं। और जो पादरी साहब ने मुझे द्वैतवादी बताया, सो ठीक नहीं है। मैं अद्वैतवादी हूं, क्योंकि मैं ईश्वर को एक मानता हूं। जो पादरी साहब ने कहा कि बन्दर और गीदड़ आदि के शरीर में ईश्वर के सर्वव्यापक होने से बन्दर और गीदड़ नहीं कहा जा सकता, तो आदमी के शरीर में व्यापक होने से आदमी भी उसे नहीं कहना चाहिये। और कहा कि– शरीर में ईश्वर ने अवतार लिया, उसमें दूसरा जीव नहीं था। तो मैं पूछता हूं कि– उसमें पहले ईश्वर था कि नहीं ? जो कहें कि था तो उसका आना–जाना असम्भव है। और जो कहें कि नहीं था, तो उसका सर्वव्यापक होना नहीं हो सकता। जो मैंने जाहिर होने के विषय में पूछा था, उसका ठीक–ठीक उत्तर पादरी साहब ने नहीं दिया, गोलाकार कर गये। जो ईश्वर दृश्य नहीं, तो उसको जाहिर होना कहना व्यर्थ है। और जो कहे कि दृश्य है, तो सर्वव्यापक नहीं। और जो पादरी साहब ने कहा कि– हमारी कमजोरी के कारण वह अवतार लेता है। तो हमारी कमजोरी के कारण ही क्या वह सर्वव्यापक हमारा काम नहीं कर सकता ? जो कहें, कि नहीं कर सकता, तो इसमें क्या युक्ति है ? और फिर वह सर्वशक्तिमान भी नहीं रहता। और जो कहें कि कर सकता है, तो जन्म धारण करना ही व्यर्थ हो जाता है। और जो कहा कि– प्रीति का रखना। सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि यहां प्रीति गुण और प्रीति करने वाला चेतन द्रव्य है। इसलिए पादरी साहब का कहना ठीक नहीं है। परमेश्वर अपने स्वाभाविक गुण के अनुकूल काम करने में लाचार कभी नहीं है परन्तु अवतार के धारण करने में तो लाचार ही मानना होगा। जैसे की पादरी साहब ने कहा कि– वह आदमी को नहीं सुधार सकता। अब मैं पूछता हूं कि सर्वशक्तिमान का क्या अर्थ है ? पादरी साहब क्या चाहते हैं ? जैसे पादरी साहब ने कहा कि कुछ बातों में लाचार है, वैसे ही अवतार लेने में भी लाचार है, क्योंकि सर्वव्यापक का आना जाना प्रकट करना सर्वथा असम्भव है। जब वह दुःख नाश नहीं करता, तो पादरी साहब के कहने से ही पादरी साहब की बात कट जाती है, जो कहते हैं कि अवतार लेकर मनुष्यों का दुःख काटता है। और जो कहा कि दुःख क्यों देता है ? इसका उत्तर यह है कि वह न्यायाधीश है। जीवों के जैसे पाप पुण्य होते हैं, वैसा ही उनका फल देना अवश्य है, क्योंकि वह सच्चा न्यायकारी है।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी० जी० स्काट साहब–

द्वैतवादी वे होते हैं, जो कि दो पदार्थ मानते हैं– एक तो ईश्वर और दूसरे ईश्वर से भिन्न यह कार्यजगत्। अद्वैतवादी वे होते हैं, जो कि एक ही पदार्थ ईश्वर को मानते हैं, और कुछ नहीं। सो ज्ञात नहीं कि पण्डित जी एक ही पदार्थ मानते हैं, वा दो। ईश्वर अनदेखा तो है, परन्तु जब अपने आपको प्रकट करना चाहता है, तो प्रकट कर देता है। शारीरिक अर्थात् शरीर में तो आत्मा से हम आपके शरीर को देखते हैं, आत्मा को नहीं। परन्तु उस प्रकार से होने पर ईश्वर का हाल बहुत अधिक जानते हैं। क्योंकि एक नमूना पवित्र और पूर्ण हमारी दृष्टि में होता है। इसलिये ईश्वर का अवतार होता है। ईश्वर ने देख लिया कि मनुष्य के लिए उचित यही है, इसलिए ऐसा ही हुआ और होता है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान तो है, परन्तु तब भी इसका अर्थ यह नहीं है, कि कोई बात उसके वश से बाहर नहीं। वह अधर्माचरण नहीं कर सकता, झूठ नहीं बोल सकता। दो और दो को वह पांच नहीं मान सकता। इससे यह नहीं हो सकता कि एक वस्तु हो भी और न भी हो। अर्थात् एक अर्थ से उसकी शक्ति की भी सीमा है। मैंने यह कहा कि यदि मनुष्य की इच्छा नहीं है, तो ईश्वर उसे सुधार नहीं सकता। सुधार का सर्वोत्तम उपाय यही है कि देह धारण करे ओर एक पूर्ण आदर्श मनुष्य के सामने प्रस्तुत करे। मनुष्य तो आदर्श को चाहता ही है। संसार में सर्वश्रेष्ठ और पवित्र गुरु कोई ऐसा है कि जिसने कभी भी पापाचरण न किया हो। कोई गुरू ऐसा नहीं है, जो सब बातों में पूर्ण हो। केवल ईश्वर ही देह धारण करके मनुष्य के सामने ऐसा नमूना पेश कर सकता है, जिसे ठीक–ठीक धर्म का मार्ग प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त हो सके, और वह हर बात में नेकी और पुण्य को जान सके। यह बहुत रहस्य की बात है। कौन नहीं जानता कि मनुष्य अनुकरणप्रिय है। नमूने को देखकर उसके अनुसार कार्य करता है। पाठशालाओं और सेनाओं में देखो, और घर में भी देखो। जब नमूना अच्छा है, गूरु पूर्ण है, तब उन्नति भी बहुत अच्छी होती है। क्या यह बात उत्तम और रहस्यमयी नहीं है कि ईश्वर देह धारण करके इन्सान के लिये एक पूर्ण और पर्याप्त नमूना दिखावे कि जिससे मनुष्य अपनी मोक्ष प्राप्ति में समर्थ हो सके ? ईश्वर की इच्छा यूं है और यही मेरा भी अभिप्राय है कि खुला करके कह देना कोई अच्छी बात नहीं है। उसमें सावधानता होनी ही चाहिये। यदि ईश्वर ने अपनी इच्छा से ऐसा किया, क्योंकि उसको यही उत्तम प्रतीत हुआ, तो फिर हम इसके विरूद्ध क्यों बोलें ?

अब शब्द प्रमाण को लीजिए। इंजील में लिखा है कि– **"आरम्भ में शब्द था। और शब्द खुदा के साथ था। और शब्द खुदा था। और शब्द साकार हुआ"**[१]। अर्थात् वही खुदा शरीर धारण करके प्रकट हुआ, यह लिखा है। और जिस किताब में यह लिखा है। ऐसी उत्तम किताब है। और वह अपना प्रमाण कि वह ईश्वर की ओर से है। और जो कुछ कि उसमें लिखा है, वह बुद्धिपूर्वक, तर्कसंगत और प्रमाणयुक्त है। और यह कहा कि बहुत से लोग इसको झूठ समझ कर छोड़ देते हैं, जैसा कि वेद को। क्योंकि वह सर्वथा

१.– देखिये इस विषय पर **"मुबाहिसा–अमृतसर"** जो लगातार आठ दिनों तक श्री पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी तथा श्री पादरी अब्दुल हक़ जी के बीच अमृतसर में हुआ, इसका पूर्ण विवरण इसी ग्रन्थ **"निर्णय के तट पर"** की श्रृंखला के अगले भाग में दिया गया है।

विदुषामनुचरः–

"लाजपत राय अग्रवाल"

मिथ्या है, और उसके समर्थन में कोई भी युक्ति वा प्रमाण नहीं है।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

अद्वैत विशेषण परमेश्वर का है, किसी दूसरे का नहीं। इसके कहने से यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर एक है। जीव अनेक हैं और जगत् का कारण अनेक प्रकार का है। और जो पादरी साहब कहें कि ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा और कोई न था। तो फिर जीव और यह जगत कहां से आया? जो कहें कि ईश्वर से, तो जीव ईश्वर हुआ। जो कहें कि कारण से, तो पादरी साहब को भी कारण मानना पड़ेगा। और यदि जीव की उत्पत्ति मानी जाये, तब तो उसका नाश भी अवश्य ही मानना होगा। यह बात कई बार चली, परन्तु अभी तक ठीक–ठीक उत्तर नहीं दिया गया कि उसको देह धारण करने की आवश्यकता ही क्या है ? और इसके बिना ही वह अपना काम क्यों नहीं कर सकता ? इसका कुछ जवाब नहीं हुआ।

जब उसकी शक्ति की सीमा है, तो फिर ईश्वर की भी सीमा क्यों नहीं है ? जो कहें ईश्वर की भी सीमा है, तो सर्वव्यापक नहीं। और यह बात पादरी साहब के पहले कथन के भी विरूद्ध होगी। जब परमेश्वर की सब बातों को नहीं जानते, तो फिर पादरी साहब ने ऐसा क्यों कहा था कि ईश्वर अवतार लेता है ? और वे अब इस बात में ज़िद क्यों करते हैं ? और जब अवतार लेने से पहिले उसे कोई जान ही नहीं सकता, तो उसी ने अवतार लिया यह कहना भी व्यर्थ ही है। क्योंकि वही पुरुष या पादरी साहब आज भी हैं, जो कि कल के शास्त्रार्थ में थे। जबकि अवतार होने से पहिले कभी देखा या जाना ही नहीं, तो फिर उसी ने अवतार लिया है, यह कहना भी तो अनुचित और अयुक्त ही है। क्या पादरी साहब ने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य, शरीर आदि भी तो ईश्वरीय शक्ति के ही नमूने हैं ? और एक साढ़े तीन हाथ के शरीर में आकर खा, पी, बढ़, घटकर मर जाना भी क्या कोई बड़ा नमूना है ? और जो इंजील के लेख की बात कही कि– **"वह शब्द अवतार हुआ"**। यह कथन सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि शब्द गुण होता है और वह द्रव्य कभी भी नहीं हो सकता। ऐसी मिथ्या बात जिस इंजील में लिखी है, वह सत्य कभी नहीं हो सकती, और न ही कभी उत्तम हो सकती है। पादरी साहब की इंजील में योहन्ना के स्वप्न के प्रकाशित वाक्य की कथा सर्वथा असम्भव है, कि– **"जो पोथी के एक बन्धन के खोलने पर उसमें से एक सवार घोड़े सहित निकला"**। क्या ऐसा कभी हो सकता है ? ऐसी–ऐसी कई झूठ बातें हैं। क्या पादरी साहब ने ये कभी भी नहीं देखी होगी ? फिर भी ऐसी किताब के सत्य होने का दावा करते हैं। सो ज़िद करने के सिवा और कुछ नहीं है। इसलिये पादरी साहब और सब सज्जन पुरुषों को चाहिये कि सब सर्वथा सत्य, ईश्वरकृत वेदों की शरण लेकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि अवश्य करें।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

योहन्ना के विषय में **"मकाशफत की पुस्तक"** में लिखा है। उसके विषय में यदि पण्डितजी की बुद्धि ऐसी ही है, तो मैं क्या उत्तर दे सकता हूं ? ईश्वर ने अपनी सामर्थ्य से इस सम्पूर्ण सृष्टि को अभाव से भाव

रूप में रचा है। उचित यही है कि वह जब भी चाहे इसका नाश कर दे। जब तक यह सृष्टि स्थिर है, तब तक ईश्वर इसमें सर्वव्यापक नहीं है, वह तो इससे पृथक है। और मैंने बार–बार यह कहा कि उसने जो अवतार लिया, इसका कारण था। सो आप फिर से, पहले लेख को देख लीजिये। ईश्वर की शक्ति की सीमा यही है कि वह अपने विरूद्ध कुछ भी नहीं कर सकता।

हम दावा करते हैं कि हम सबके शरीर में भी उसका प्रकाश होता है। और सब कामों के लिये उसने एक पूर्ण नमूना भी हमें दिया है। मनुष्य के लिये उसकी महिमा चांद, सूर्य, सितारे से अधिक है।

शब्द का भाव यह है कि वह ईश्वर को प्रकाशित करने वाला हो। जैसे कि शब्द ही मनुष्य के अर्थ को भी प्रकट करता है। उसी प्रकार मसीह जैसे अवतार ईश्वर की महिमा और अर्थ को प्रकट करते हैं। अब देखिये कि लोग बाइबिल के विषय में कितने पुरुषार्थी और सावधान हैं, और इस पुस्तक को कैसी दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हैं ? पच्चीस सोसाइटियां हैं, जो कि इसकी छपाई में संलग्न हैं। दो सौ भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं।

उदाहरण के रूप में दो सोसाइटियों के कार्यों को लें। एक वर्ष में इंग्लिस्तान में एक ने बाईस लाख, छियानवे हजार, एक सौ तीस प्रतियां छपवाईं। और बतलाइये ! अमरीका में एक सोसाइटी में सत्तर बड़ी–बड़ी मशीनें छापने के लिये हैं, चार सौ कार्यकर्ता हैं। उसमें बीस हजार पांच सौ प्रतियां एक ही दिन में तैयार की जाती हैं। कौन कह सकता है कि इस किताब को नहीं मानते ? सो मैंने सिद्ध कर दिया कि–

"ईश्वर की देह धारण करने की पूर्ण सम्भावना है। ऐसा होना बुद्धि से परे की बात नहीं ; अपितु यह युक्तिसंगत और उचित है"।

उसका बहुत आवश्यक कारण भी मैंने बता दिया। और इस पुस्तक का वचन सत्य प्रमाणित सिद्ध होता है।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी० जी० स्काट"

———————: 0 :———————

एक सौ सैंतीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "बरेली" (उत्तर–प्रदेश)

दिनांक : २७ अगस्त सन् १८७६ ई० (तृतीय दिवस)

विषय : क्या ईश्वर पाप क्षमा भी करता है ?

वैदिकधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,

ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पादरी टी० जी० स्काट साहब,

मध्यस्थ : श्री लाला लक्ष्मीनारायण जी खजान्ची, रईस–बरेली,

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जिवित रखने का प्रयास किया।

– "**लाजपत राय अग्रवाल**"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

मेरा यह दावा नहीं है कि ईश्वर दण्ड नहीं देता, दण्ड भी वह अवश्य ही देता है। परन्तु मेरा निवेदन यह है कि वह समय–समय पर, जब भी और जैसा भी उसको उचित प्रतीत होता है, मनुष्य के कल्याण के लिये पाप को क्षमा कर सकता है। जब कोई ईश्वर है, वह सर्वगुण–सम्पन्न है, और चेतन भी है, और भी उसमें अनेक प्रकार के गुण, कर्म और स्वभाव विद्यमान हैं; तो यह भी अवश्य ही समझना चाहिये कि वह हमको देखता है, हमारे लिए चिन्तन करता है, हमारा कल्याण चाहता है, और हमको सुधारना चाहता है। सो यह दावा अनुचित कोई नहीं है। बहुत सी बातों से हमारी ईश्वर से समानता है, अर्थात हम धर्म की बातें जैसे– कि न्याय और अन्याय इत्यादि जानते हैं। ईश्वर में अनेक प्रकार की विशेषतायें हैं, जैसा कि न्याय, प्रेम, दया इत्यादि सो ये मनुष्य में भी पाई जाती हैं। जब हम इस बात पर विचार करें कि बहुत सी बातों में हम और ईश्वर एक ही हैं, तब हम ईश्वर की सत्ता को कुछ–कुछ जान सकते हैं। हमें यह भी समझना चाहिये कि ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध ऐसा है, जैसा कि हम आपस में रखते हैं। अर्थात् ईश्वर हमारा शासक है, वह हमारा शासन करता है, वह हमारा पिता है, उसने हमको उत्पन्न किया है, वही हमारा पालन और संरक्षण करता है। जब हम इन बातों पर विचार करते हैं, तब हम ईश्वर के विषय में अधिकाधिक बोध प्राप्त करते हैं। औरं वेदों में तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में भी पिता तथा शासक आदि के रूप में ईश्वर का उल्लेख किया गया है। अब विचारना चाहिये कि– जब सभी धर्म ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है, तो इसमें कुछ न कुछ बात हमारे समझने–समझाने की भी है। हमें यह समझना चाहिये कि जिस प्रकार उसके साथ हमारा शासक वा पिता के रूप में सम्बन्ध है, उसी प्रकार वह पिता और शासक के कर्तव्य कर्मों का पालन भी अवश्य ही करता है। अब विचारिये कि पिता और शासक का काम क्या क्या होता है ? इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि ये दण्ड देने वाले भी होते ही हैं। दण्ड देने का भी एक उत्तम उद्देश्य होता है, और वह यह कि दण्ड देकर अपराधी सन्तान वा प्रजा को सुधारा जाये, और इस प्रकार दूसरों को भी शिक्षा मिले। हम और आप यह भी कहते ही हैं कि बदले की भावना से दण्ड न दिया जावे। दण्ड उतना ही दिया जावे, जितना कि आवश्यक हो, और शिक्षादायक हो। फिर भी यदि पिता वा शासक चाहें तो क्षमा कर दें, और इसीलिये क्षमा होती है।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

पादरी साहब का पक्ष यह था कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है। क्षमा कर सकता है, ऐसा पक्ष नहीं। फिर पादरी साहब ने दूसरी प्रकार से क्यों कहा ? और यह कहा कि दण्ड भी अवश्य देता है। यह तो परस्पर विरोधी कथन है। क्या आधा दण्ड देता है, और आधा क्षमा कर देता है, या कुछ कम अधिक करता है ? जैसे ईश्वर सब बातें जानता है, क्या जीव लोग भी वैसे ही जानते हैं, अथवा कम अधिक जानते हैं ? जैसे हमारे बीच में न्यायाधीश न्यायकारी होता है। और अन्यायकारी भी होता है, क्या ईश्वर भी वैसा ही है, अथवा ईश्वर केवल न्यायकारी है ? जो न्यायकारी है, तो फिर क्षमा करना कहां रहा ? क्योंकि न्याय उसका नाम है जिसने

जितना जैसा काम किया, उसको उतना वैसा ही फल देना। जो ईश्वर को थोड़ा बहुत कुछ न कुछ जानते हैं, तो मैं पूछता हूं कि–ईश्वर की सब बातों में ऐसी ही रीति है, या कुछ कम–अधिक ? यह मैं भी मानता हूं कि ईश्वर के साथ हमारा राजा और पिता का सा सम्बन्ध है। परन्तु यह सम्बन्ध क्या अन्याय करने के लिये है ? ऐसा कभी नहीं हो सकता। वेद आदि पुस्तकों में क्षमा करना कहीं नहीं लिखा है। ईश्वर के न्याय करने का क्या अर्थ है ? न्यायाधीश और सभा आदि के दण्ड और पुरस्कार आदि सुधार आदि के लिये होते हैं, अथवा इनका कुछ और अर्थ है ? और जो क्षमा करता है, तो किस किस काम पर क्षमा करता है, और किस किस पर नहीं ? जब क्षमा करता है, तब तो ईश्वर पाप का बढाने वाला होता है। क्योंकि वह जीवों को पाप करने में उत्साहित करता है। जब ईश्वर सर्वज्ञ है, तो उसके न्याय आदि गुण और कर्म भी भूल और भ्रान्ति आदि सब दोषों से रहित हैं। इसलिए जब ईश्वर अपने स्वभाव के विरुद्ध कोई कार्य कभी नहीं कर सकता, तो फिर न्याय के प्रतिकूल क्षमा वह कैसे कर सकता है ? और ईश्वर जो दयालु है, तो दया का भी वही अर्थ है, जो कि न्याय का है। क्षमा करना दया नहीं है। जैसे कि एक डाकू पर कोई दया करे अर्थात् क्षमा करे, तो क्या वह दयालु गिना जा सकता है ? कभी नहीं। क्योंकि हजारों जीवों को उसने दुःख दिया है। जब डाकू क्षमा कर दिया जावेगा, तब तो वह बड़े साहस के साथ और भी खूब डाके मारेगा। इसलिये दया का मतलब भी और ही है, जो पादरी साहब जानते हैं वह नहीं।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

पण्डित जी जल्दी न करें। मेरा मतलब बेईमानी पर कमर बांधने का नहीं है। जब ईश्वर क्षमा करता है तो उसमें **"सकता या नहीं सकता"** का उल्लेख आरम्भ में इसलिये किया गया है कि इस प्रकार की सम्भावना प्रतीत होती है। निस्सन्देह आज का विषय तो यही है कि–**"वह क्षमा करता है"**। हम यह नहीं कह सकते कि वह कहां तक दण्ड देता है, और कहां तक क्षमा करता है। यह उसका काम है, हमारा नहीं। परन्तु जब वह सर्वज्ञ है, और हम लोगों के समान भूल भी कभी नहीं करता। हम लोग तो अपने कामों में भूल किया ही करते हैं। ईश्वर अपनी अच्छी बातों में, और उसकी सभी बातें अच्छी हैं, भूल कभी नहीं करता। ईश्वर तो सब कुछ जानता है, हम वास्तव में कुछ भी नहीं जानते। उसके क्षमा करने में भी अवश्य ही कोई भेद है, क्योंकि क्षमा करना सदा ही एक सूक्ष्म विवेक का कार्य होता है। ईसाई लोग दृढतापूर्वक कहा करते हैं कि वह बिना किसी सिफारिश के और बिना किसी न्याय के क्षमा किया करता है। परन्तु जब वह दयालु है और न्यायकारी भी है, तो वह सर्वथा एक ही बात है, अर्थात् दया और न्याय एक ही बात है। परन्तु जरा न्यायकारी बन कर सोचिये। दया में कुछ न कुछ मतलब ऐसा भी जरूर होगा जो कि न्याय में नहीं है। वेद में वह जरूर लिखा है–**"ईश्वर पापों को क्षमा करता है।"** अब मैं यहाँ पर एक पुस्तक म्यूर साहब की कि जिसमें लिखा है–**"अदिति पाप को क्षमा करती है"** का प्रमाण देता हूं। पण्डित जी कहेंगे कि यह अर्थ गलत है। अब अंग्रेजी जानने वालों का यह काम है कि वे म्यूर साहब की पुस्तक देखकर न्याय करें। मैं यह पूछना चाहता हूं कि–क्या क्षमा शब्द का विचार वेद वालों को कभी नहीं सूझा ? क्या वे क्षमा का अर्थ नहीं जानते थे ? और क्या क्षमा करना भूल है ? मैं यह सिद्ध करूंगा कि समय समय पर क्षमा करना बहुत ही श्रेष्ठ कार्य है। यदि इसे संसार में से हटा दिया जाये, तो संसार की अवस्था बहुत ही बिगड़ जायेगी। और यह तो

अनुमान से प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि क्षमा से संसार में बहुत अच्छे अच्छे परिणाम होते हैं। कौन जानता है कि माता पिता के बीच में और बेटा बेटी के बीच में क्या वास्ता है ? और परस्पर एक का दूसरे से तथा मित्र का मित्र से क्या सम्बन्ध है ? यदि इन सबके बीच में क्षमा करने का भाव कभी भी सर्वथा न आवे, तो ये सम्बन्ध जरा भी न चलें। और यह कहना कि—क्षमा करने से पाप बढ़ जाता है, तो यह ठीक है, यदि क्षमा सदा ही क्षमा हो, और वह कभी किसी भी रूप में दण्ड न हो। और यह भी ठीक है कि कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं कि जिनमें किसी को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहियें, जैसा कि डाकुओं के विषय में। संसार में सभी बातें इस प्रकार की नहीं हैं कि हम क्षमा को संसार से सदा के लिये सर्वथा दूर कर दें। जो अनादि और न्यायकारी है, वह भी जानता है कि कब और किस पर क्षमा और दया आदि का व्यवहार किस प्रकार करना चाहिये। आगे चलकर मैं यह भी बताऊंगा कि क्षमा करने से पाप वासना का अन्त हो जाता है। और साथ ही यह भी कि दण्ड देने से पाप की प्रवृत्ति बढ़ जाती है, और इस प्रकार मनुष्य और भी अधिक निडर तथा बड़ा शैतान बन जाता है।

हस्ताक्षर —

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती—

जो शास्त्रार्थ का विषय है, और जिसको सिद्ध करने की प्रतिज्ञा प्रथम पादरी साहब ने की थी, उससे दूसरा कथन करना न्याय शास्त्र के अनुसार पराजय का सूचक है। इस प्रकार की पराजय को दार्शनिक भाषा में **"प्रतिज्ञान्तर"** अर्थात् वादा खिलाफी कहा जाता है। पादरी साहब ने कहा कि—असल विषय वही है कि ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऐसे अवसर पर पादरी साहब को अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए विशेष बल देना चाहिये था। जब पूर्ण निश्चय से नहीं जानते, तो फिर उसका प्रतिपादन या समर्थन कैसा ? मैं पूछता हूं कि जितने अंश में क्षमा करना पादरी साहब मानते हैं, उसको भी ठीक ठीक जानते हैं, या नहीं ? क्या आपके मत में ईश्वर डाकू आदि को क्षमा नहीं करता ? आप डाकू आदि को क्षमा करने का उपदेश नहीं करते ? और यदि ईश्वर किसी के वसीले से क्षमा करता है, तब तो वह पराधीन ठहरता है। और भी बतायें कि ईश्वर किसके वसीले से क्षमा करता है ? वह वसीला आपका है, या किसी दूसरे का ? यदि कहो कि अपने आपका वसीला है, तो झूठ है और यदि कहो कि किसी दूसरे का है, तो फिर ईश्वर स्वतन्त्र नहीं रहा। और जो पादरी साहब ने कहा कि—**"अदिति माता क्षमा करती है, यह वेद में लिखा है। तो मैं पूछता हूं कि अदिति किसका नाम है ? और क्षमा करना तो चारों वेदों में कहीं भी नहीं लिखा। जब क्षमा करना है ही व्यर्थ, तो फिर ऐसी मिथ्या बातों का उपदेश वेदों में क्यों कर हो सकता है ? यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजी जानने वाले वेदों के सिद्धान्तों का निर्णय करें। यह बात तो ऐसी ही है, जैसे कि कोई संस्कृत पढ़कर अंग्रेजी के सिद्धान्तों का निर्णय करें।"** और जो माता पिता क्षमा करते हैं, ऐसा पादरी साहब का कथन है। सो वे भी पूर्णतया क्षमा करते हैं, या कुछ कुछ ? जो कहें कि कुछ कुछ तब भी ठीक नहीं है। क्योंकि पाप करने से क्या माता पिता अपने अन्तरात्मा में अपने सन्तान के प्रति प्रसन्न होते हैं ? यदि हां, तो फिर वे बालकों की ताड़ना क्यों करते हैं ? यही तो दण्ड है। जब बालक कुछ समर्थ हो जाते हैं, और पांच वर्ष से बड़े हो जाते हैं, तब माता पिता बालकों के साधारण पाप वा अपराध भी क्षमा नहीं किया करते। और जो क्षमा करते हैं, तो कभी कभी माता पिता और सन्तान में वैर

विरोध क्यों होता है ? इससे पादरी साहब का दृष्टान्त गलत ठहरता है। हां, यदि सब माता पिता क्षमा करते, तब तो पादरी साहब का दृष्टान्त भी ठीक होता और कथन भी। आपके मत के अनुसार–शैतान ने बहुत अपराध किये हैं। परन्तु ईश्वर ने उसको आज तक कोई दण्ड दिया कि नहीं ? और भविष्य में भी उसको कोई दण्ड देगा या नहीं ? जब शैतान को बनाया, तब तो वह पवित्र था। फिर जब उसने पाप किया तब ईश्वर ने उसे क्षमा क्यों नहीं किया ? और आगे भी करेगा या नहीं ?

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

हमारे सुयोग्य विद्वान् और प्रिय मित्र स्वामी दयानन्द जी घबरायें नहीं। मैं विषय से बचकर न चलूंगा। परन्तु यह मुझे अधिकार है कि मैं जिस प्रकार भी उचित समझूं, उसी प्रकार अपनी युक्ति का आधार स्थिर करूं। पहिले मैं बुद्धि से यह सिद्ध कर रहा हूं कि क्षमा की सम्भावना है। फिर आगे चलकर देख लेना, मैं शास्त्रीय प्रमाणों से भी यह सिद्ध करूंगा कि– ईश्वर पाप क्षमा करता है। अर्थात् आज का विषय है कि– **"ईश्वर पाप क्षमा भी करता है"**, वह बुद्धिपूर्वक है कि नहीं ? और फिर इसका विशेष कथन न करूंगा। मेरी युक्ति तीन प्रकार की है– बुद्धिपूर्वक है, शास्त्र–सिद्ध है और अनुभव से भी पुष्ट है। वह डाकू का उदाहरण इस प्रकार से है कि अनुशासन को स्थिर रखने के लिये डाकू को क्षमा करना अच्छा नहीं है। परन्तु कौन नहीं जानता कि कभी–कभी डाकुओं को क्षमा करने के भी बड़े उत्तम–उत्तम परिणाम निकलते हैं। एक उदाहरण है देखिये –

"योहन्ना रसूल ने एक आदमी को ईसाई धर्म में दीक्षित[1] किया वह डाकू था। बाद में वह धर्म से बहिष्कृत किया गया और जंगल में भाग गया, तथा बड़े–बड़े डाकूओं का काम करने लगा। योहन्ना उसकी खोज करने जंगल में गया। पहले तो डाकू ने उसे मार डालना चाहा, परन्तु योहन्ना बूढ़ा था। वह उससे न डरा, और पास जाकर बोला कि मैं तो बूढ़ा आदमी हूं, मुझे क्यों मारते हो ? डाकू का हृदय परिवर्तन हो गया। उसने डाकुओं का साथ छोड़ दिया, और योहन्ना के साथ चला आया। फिर वही डाकू बहुत उत्साही प्रचारक और साधु पुरुष बन गया। उसने फिर कभी कोई अपराध नहीं किया और अपना जीवन बहुत पवित्रता से व्यतीत किया।"

डाकुओं आदि के विषय में जबकि मनुष्य भी क्षमा पूर्ण व्यवहार करते ही हैं, तब यह भी सम्भावना है कि ईश्वर भी क्षमा कर देता है। और यह पूर्णतया सम्भव है। ईश्वर तो मनोगत बातों को भी जानने वाला है। ईसाइयों का सिद्धान्त यह है कि वह वसीला, जिससे क्षमा प्राप्त होती है, निष्कलंक अवतार ईसामसीह का इस संसार में पैदा होना है।

मैं पण्डित जी से पूछता हूं कि– **"अदिति का क्या अर्थ है ?"** म्यूर साहब की पुस्तक का जो जिकर मैंने किया है, सो स्वामी जी जल्दी में किसी बात को उल्टी न समझें। मैं कोई मूर्ख नहीं हूं। म्यूर साहब की पुस्तक अंग्रेजी में है, परन्तु उसमें साथ ही संस्कृत श्लोक भी वेद के भरे हुये हैं। अंग्रेजी जानने वाले सज्जन

१.– ईसाई लोग इस प्रक्रिया को अर्थात् ईसाई धर्म में दीक्षित होने को– **"बप्तस्मा"** अर्थात् धर्म दीक्षा के नाम से पुकारते हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

म्यूर साहब के प्रमाणों और युक्तियों को अंग्रेजी में भी देख सकते हैं और अपनी संस्कृत में भी समझ सकते हैं। शैतान का जो हाल है, सो हम नहीं जानते। शायद उसको बीस बार क्षमा मिल चुकी है, और अब उसे क्षमा मिलने की कोई आशा नहीं है। फिर भी कौन जानता है ? हाँ, इतना हम जानते हैं कि आज शैतान का विषय नहीं है। मैं पण्डित जी से यह पूछता हूं कि क्या क्षमा कभी भी नहीं होनी चाहिये ? क्या मनुष्य के हृदय में क्षमा करने वा क्षमा चाहने का कुछ भी विचार कभी नहीं होता ? क्या क्षमा शब्द का संसार में कुछ भी काम नहीं है ? पण्डित जी इस बात पर विचार करें।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मैं कब घबराया हूं ? जो आपने कहा कि घबरावें नहीं। जब पहिले कहा कि ईश्वर पापों को माफ भी करता है और अब कहा कि कर सकता है, तो क्या ये दोनों परस्पर विरोधी बातें नहीं हैं ? और क्या इस प्रकार आप प्रतिज्ञा हानि नहीं कर रहे ? तर्क शास्त्र प्रमाण और अनुभव प्राप्त पुरुषों का ही सत्य होता है, प्रत्येक जनसाधारण का नहीं। जब डाकू का कहीं–कहीं क्षमा करना अच्छा है, तो आजकल की सरकार को भी चाहिये कि किसी अवसर पर डाकुओं को क्षमा करे। **"योहन्ना"** के क्षमा करने से, क्या प्रत्येक अपराधी क्षमा के योग्य हुआ ? उसने भयवश या किसी स्वार्थवश क्षमा किया होगा। तो क्या उसने यह कोई अच्छा काम किया ? और जब तक उसने डाका मारना न छोड़ा था, तब तक अपने साथ क्यों न रखा ? और जो कहो कि क्षमा करने से लिया, तो यह बात सत्य नहीं है। क्योंकि जब उसने डाके का काम छोड़ दिया, और अच्छे काम करके अच्छा आदमी बना, तब साथ रखा। भले और बुरे दोनों प्रकार के कामों का फल ईश्वर यथायोग्य देता है। जब पादरी साहब का सिद्धान्त यह है कि– ईश्वर पापों को क्षमा भी करता है। फिर उसके विरूद्ध पादरी साहब ने कथन किया कि जब कभी हम क्षमा करते हैं, तो ईश्वर क्षमा नहीं करता। और जब हम क्षमा नहीं करते, तो ईश्वर क्षमा करता है। पादरी साहब ने मुझसे **"अदिति"** का अर्थ पूछा है। सो पृथ्वी, अन्तरिक्ष, माता, पिता और ईश्वर आदि अर्थ है। जैसे किसी हल जोतने वाले के सामने या विद्या वाले के सामने रत्नों की या और–और विद्याओं की बात करें, तो क्या वह व्यर्थ नहीं है ? जो शैतान का पाप क्षमा न किया जायेगा, तब तो शैतान के विषय में आपका सिद्धान्त अटक गया। क्षमा शब्द किसी और मुहावरे के लिये है। दण्ड तो दिया जाना है, परन्तु समर्थ को जैसा दण्ड दिया जाता है, वैसा असमर्थ को नहीं। जैसे कि पागलों को पागलखाने में भेजा जाता है। यदि ईश्वर ईसा के वसीले से क्षमा करता है, तो क्या वह खुशामदी नहीं है ? क्या आप ईश्वर के सामने भी वकील आदि की आवश्यकता समझते हैं ? क्या आप उसे सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान नहीं मानते ? और यदि आप ईसा के वसीले से पापों का क्षमा होना मानते हैं, तो ईसा ने जो पाप किये, उनको क्षमा करने का वसीला क्या है ?

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी0 जी0 स्काट साहब–

अब यहां पर कुछ विचार करना उचित है। क्षमा करना और बात है तथा दिल को पवित्र करना और

बात है। इसलिये मनुष्य की क्षमा और ईश्वर की क्षमा में बहुत भेद है। जब मनुष्य तोबा करे और उस नियम पर चले, जो कि उसके लिए नियत और विहित है, तब ईश्वर उसको क्षमा कर देता है, और उसके हृदय को भी पवित्र कर देता है। और मेरा भाव यह है कि ईश्वर ने किसी को क्षमा किया और उसके हृदय को भी पवित्र किया, इसकी पूर्ण सम्भावना है। परन्तु फिर भी मनुष्य की स्वतन्त्रता और धर्मशास्त्र के कारण नियम के अनुसार वह क्षमा नहीं होता। यह मेरा अभिप्राय है। और क्षमा का लाभ इसमें प्रतीत होता है कि बीसियों विचारवान् युक्ति–तर्क–विशेषज्ञ भली प्रकार जानते हैं कि क्षमा का परिणाम बहुत उत्तम निकलता है। कोई हठ वा दुराग्रहवश इस सिद्धांत से इन्कार करे, तो करे। पण्डित जी का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर किसी को भी बिना दण्ड दिये छोड़ता नहीं। परन्तु योहन्ना ने उस डाकू को दण्ड नही दिलाया, क्षमा कर दिया। और हमारा यह सिद्धान्त है कि ईश्वर जब भी उसे उचित प्रतीत होता है, क्षमा कर देता है, जैसा कि धर्म–शास्त्र में लिखा है। पण्डित जी ने अदिति के अर्थ **"परमेश्वर"** भी लिखे हैं। और म्यूर साहब का दावा है कि अदिति वेद के प्रमाण से पापों को क्षमा भी कर देती है। यदि शैतान अभी तक माफ नहीं किया गया, तो यह किसी प्रकार भी मेरे दावे के विरूद्ध नहीं है। क्योंकि आज के विषय में एक शब्द **"भी"** मौजूद है, और यह **"भी"** अवस्था और परिस्थिति के अनुसार कभी दण्ड और कभी क्षमा इन दोनों को बताता है। परन्तु पण्डित जी का दावा है कि ईश्वर कभी भी क्षमा नहीं करता, अतः **"क्षमा"** शब्द को संसार से हटा दो। इसके प्रतिकूल यदि ईश्वर किसी एक पाप को क्षमा भी करता है, तो केवल उसी से मेरा पक्ष सिद्ध हो जाता है। मेरा पक्ष यह नहीं है कि ईश्वर क्षमा ही करता है, अपितु यह मेरा पक्ष है कि ईश्वर क्षमा भी करता है। इस **"भी"** पर विशेष ध्यान दीजिये। ईसा के वसीले का विषय आज नहीं है, इसलिये इस विषय में मैं आज कुछ नहीं कहता। हमारे लिये आज यह जान लेना ही बहुत है कि किस वसीले से पाप क्षमा होता है। उदाहरण के लिये देखिये– दवाई से दर्द हट जाता है। हम दवाई के विषय में विशेष कुछ नहीं जानते, परन्तु न जानने से क्या भेद पड़ता है ? दर्द तो दूर हो ही जाता है। इसी प्रकार क्षमा होने की भी एक शर्त तो है। अब शास्त्रीय प्रमाण आरम्भ होता है। इसमें मैं अधिक कुछ नही लिखता। जो लोग इस विषय में कुछ विशेष जानना चाहें, और प्रमाण पूछें, वे कल की लिखित बात पर विचार करें। तथा तौरेत में **"खरूज की किताब"** अध्याय चौंतीस, आयत आठ, और **"गिनती की किताब"** अध्याय चौदह, आयत अट्ठारह को पढ़ें एवं विचार करें।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

क्षमा करना, पवित्र होना है या नहीं ? क्या क्षमा करना पवित्र होने के लिए है ? जो कहें कि पवित्र होने के लिये है, तो ठीक नहीं। क्योंकि क्षमा करने से पाप की निवृति संसार में देखने में नहीं आती। और जो अशुद्ध होने के लिये क्षमा होना कहा जाये, तब तो क्षमा करना ही सर्वथा व्यर्थ हो जाये। जब हमारे क्षमा करने और ईश्वर के क्षमा करने में भेद है, तो आपने पहिले क्यों कहा था कि हम भी दयालु हैं और ईश्वर तुल्य हैं ? और ईश्वर के सामने क्षमा कराने वाला योहन्ना मौजूद है। तब तो ईश्वर भी खुशामद को पसन्द करने वाला तथा बेसमझ सिद्ध होता है। क्या **"योहन्ना"** मनुष्य नहीं था कि जिसने **"क्षमा"** किया ? क्या योहन्ना कोई राजा था ? वह राजा या ईश्वर नहीं था, यह मैं जानता हूं। न्याय दण्ड देने से छोड़ता नहीं है और छोड़ता भी है,

यह बात परस्पर विरूद्ध है। जो पादरी साहब ने यहां मनुष्यों के राज के विषय में यह कहा कि– **"कानून की पाबन्दी करनी आवश्यक है"**, अतः डाकुओं को क्षमा नहीं किया जा सकता। तो मैं पूछता हूं कि क्या ईश्वर के घर में कानून की पाबन्दी नहीं है ? क्या कोई कह सकता है कि ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है ? यदि नहीं, तो फिर योहन्ना के कहने फुसलाने और खुशामद करने से वह क्षमा करने को राजी क्यों हो गया ? ऐसी बातों से तो ईश्वर की सर्वज्ञता नष्ट होती है। और जो पादरी साहब ने कहा कि ईश्वर कभी दण्ड देता है और कभी क्षमा भी करता है। यह बात ऐसी ही मिथ्या है, जैसे कि अग्नि कभी गर्म होती है और कभी ठण्डी हो जाती है। और जो यह बात कही कि– **"आज ईसा मसीह का विषय नहीं है"**। सो आपने ही आज ईसा का विषय बीच में छेड़ा है। क्योंकि आपने कहा कि ईश्वर ईसा के वसीले से पापों को क्षमा करता है। यहां मैं पूछता हूं कि– **"ईसा जीव था या ईश्वर ?"** जो कहें कि जीव था, तो सभी आदमी जीव हैं, सभी ईश्वर के सामने क्षमा कराने वाले हुए। फिर आप एकमात्र ईसा का नाम ही क्यों लेते हैं ? और जो कहो कि ईसा ईश्वर था, तो अपने आप ही वह वसीला अथवा साक्षी कभी नहीं बन सकता। जो कहें कि उसमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों थे। तो दोनों के क्या–क्या काम थे ? और दोनों साथ–साथ थे या पृथक्–पृथक् ? जो कहें कि पृथक थे, तो व्याप्य–व्यापकता न रही। जो कहें कि व्याप्य–व्यापकता है, तो ईसा में और इन सब जीवों में क्या भेद है ? जो कहें कि विद्या पढ़े थे, सो भी ठीक नहीं। क्योंकि इंजील के लेख से मालूम होता है कि वह विद्वान नहीं था, परन्तु एक साधु पुरुष था।

जो लोग ईसा को मानते हैं, उनके सिद्धान्तानुसार जब यहूदियों ने ईसा को फांसी पर चढ़ाया, तो उसने ईश्वर से प्रार्थना की थी कि– **"हे ईश्वर ! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया ?"** ऐसी बातों से उसमें केवल साधारण जीव ही गति करता था, ईश्वर नहीं। किन्तु ईश्वर तो जैसे सब में व्यापक है, वैसे ही उसमें था। जो कहें कि– उसने मुरदों को जीवित किया, अन्धों को आंखें दीं और कोढ़ियों को चंगा किया, भूत निकाले, इसलिये वह ईश्वर था। यहां मैं कहता हूं कि ये बातें प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों और सृष्टिक्रम आदि से विरूद्ध होने से विद्वानों के मानने योग्य न कभी थीं, न हैं और न कभी होंगी। हां, ये बातें पौराणिकों के अनुसार हैं। (जैसे) पक्षी बोला, पशु, हाथी आदि आदमी की बोली में बोले, जैसा कि तौरेत में लिखा है कि– गधा आदमी की बोली बोला। क्या इन बातों को कोई विद्वान मान सकता है ? अथवा किसी विद्वान से इन बातों को मनवा सकता है ? और जो यह कहा कि– दवा खाने से रोग छूट जाते हैं, वैसा ही यह पापों को क्षमा करना भी है। तो क्या दवा का नियम से सेवन करना, परहेज करना, वैद्य के कहने के अनुसार चलना, अपनी मर्जी से न चलना, यह सब दण्ड नहीं है ? अब तीन दिन में मुझसे और पादरी साहब से जो वार्तालाप हुआ है, उसके विषय में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार यह समझता हूं कि मैंने पुनर्जन्म का सिद्धान्त सिद्ध कर दिया। पादरी साहब उसका खण्डन नहीं कर सके। और पादरी साहब अपने सिद्धान्तों का मण्डन करने में तथा उसके विषय में मेरे प्रश्नों के युक्ति और प्रमाण से उत्तर देने में भी समर्थ नहीं हुए।

हस्ताक्षर –

"दयानन्द सरस्वती"

श्री पादरी टी० जी० स्काट साहब–

अब विचार करने वाले भाई विचार करें। क्योंकि इस लिखाई के बीच में शास्त्रार्थ के नियमों के विरूद्ध बहुत सी बातें कही गयी हैं और वे लिखी नहीं गई। इसका परिणाम वही हुआ है कि जिसके ऊपर झगड़ा

हुआ। अर्थात् केवल अर्थ मिलाने के लिए मैं एक वाक्य सुनाना चाहता था, परन्तु मैंने यह आवश्यक न समझा कि लिखने वाले से उसे लिखने के लिए भी कहूं। अब मैं केवल उस प्रमाण का ही उल्लेख करता हूं। भाषा के शब्दों का विचार मैं न करूंगा। जो चाहें वे पुस्तक में स्थल को निकाल कर देख लें। हां, यह मैं लिखवा दूंगा कि मैं प्रमाण किस उद्देश्य से देता हूं। पण्डित जी का यह कहना कि मेरी दलील पक्की नहीं है, और मैंने यूं सिद्ध किया है, इत्यादि। इसमें कुछ भी सार नहीं है, मैं भी इस प्रकार कह सकता हूं। अब यह सुनने वालों का काम है कि वे विचार करके स्वयमेव निर्णय करें। और यह भी स्मरण रखना चाहिये कि मैं यह नहीं चाहता कि इस विषय में किसी प्रकार का पक्षपात किया जाये। पण्डित जी ने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया कि– "क्षमा" शब्द को संसार से बहिष्कृत क्यों नहीं कर दिया जाता? यह एक व्यर्थ और हानिकारक शब्द है। इससे सदा सभी की हानि ही होती है। यदि पण्डित जी के कथनानुसार यही बात है, तो बहिष्कार जरूरी है। मैं तो निःसन्देह यह कहता हूं कि क्षमा करने से भगवान की महिमा का प्रकाश होता है। ईश्वर की बड़ाई इसी में है कि वह मनुष्य को क्षमा करें। क्योंकि मैंने कहा कि वह सब गुप्त भेदों को भी यथावत् जानता है, और क्षमा करने के देश काल तथा पात्र को भली प्रकार जानता है, और क्षमा करने के कारणों को भी पूर्णतया जानता है। ईश्वर के घर में न तो कुछ कमी है, और न ही किसी प्रकार की भूल या भ्रान्ति की कोई सम्भावना है। ये सब कमियां और त्रुटियां इस संसार में ही हैं। देखो, संसार में कितना पाप, अन्याय, घमण्ड और रक्तपात तथा और भी अनेकविध अनाचार दृष्टिगोचर हो रहा है। पण्डित जी इसे स्वीकार नहीं करेंगे; परन्तु प्रत्यक्ष ही संसार में भारी कमी और त्रुटि देखने को आ रही है। जैसा कि अंग्रेजी सरकार ने इसका यथोचित प्रबन्ध किया है, ईश्वर भी इसका प्रबन्ध करेगा। मैं निःसंदेह मसीह के विषय में कोई वार्ता न चलाऊंगा। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस पवित्र धर्मग्रन्थ में जिसके अन्दर क्षमा करने का उल्लेख है, वह उसी वसीले से है। यह दर्द का जिक्र तो है, परन्तु दर्द का विवरण यह नहीं है कि कहां–कहां, कैसे–कैसे है? जब कभी इस विषय पर वार्ता चलेगी; तब आप इसे यथार्थरूप में देख लेंगे। युक्ति और प्रमाण के आधार पर मेरा निवेदन यही है कि क्षमा होती है। और तोबा के सिद्धान्त से भी यही प्रमाणित होता है, कि क्षमा होती है। उपाय को खूब जानना और ईश्वरीय पुस्तक के विषय में इस प्रकार से हंसी–ठट्टा करना यदि पण्डित जी को उचित प्रतीत होता है ओर वे प्रत्येक बात को उल्टे रूप में ही समझना चाहते हैं, तो वे जानें। वेद की अनेकानेक बातें हैं; परन्तु यहां उनके विषय में मैं विशेष कुछ कहना नहीं चाहता। अब आप मेरे इन उत्तरों को कृपया देख लीजिये–

"गिनती की पुस्तक" अध्याय १४, आयत १८ का अर्थ इस प्रकार है कि– **"ईश्वर पापों को क्षमा करता है"**। देखिये –

"लूका की इंजील" अध्याय ६, आयत ४ तथा अध्याय १५ और आयत १०, इसी प्रकार **"योहन्ना का पहिला पत्र"** अध्याय १, आयत ६ इनका अर्थ यह है कि– **"पापों को क्षमा किया जाता है"**। फिर मसीह ने अपने चेले को समझाया कि अपनी प्रार्थना में इस प्रकार से बोलो–**"हे ईश्वर हमारे पापों को क्षमा कर"**।

अब अनुभवसिद्ध प्रमाणों पर भी विचार कीजिये। अनुभव के आधार पर सत्य को जानना बहुत बड़ी बात है, और अपना अनुभव सत्यासत्य का निर्णय करने की सबसे बड़ी कसौटी है। मनुष्य कह सकता है कि मेरा पाप क्षमा किया जाये। और इसके साथ ही ऐसा कथन निराधार है। क्योंकि जैसे पण्डित जी ने स्वयं भी एक उदाहरण में बताया है कि प्रत्येक पापी को दण्ड अवश्य ही मिलेगा। वह पाप भी है। फिर जब तोबा–तोबा

कहा तब भी वही पाप मौजूद है। फिर खुदा के बेटे का नाम लिया, तब भी पाप वर्तमान है। मैं यह मान लेता हूं कि मनुष्य मिथ्या कथन न करें। कल्पना करो कि वे सच्ची तोबा करके सन्मार्ग पर आ जावेंगे, और प्रत्यक्ष देख भी लें कि अब वह पहिले जैसी बात नहीं है। अब मन में सन्तोष है और शान्ति है। प्रकाश ही प्रकाश है, न कोई सन्देह है, न चिन्ता है और न ही कोई आशंका है।

अब देख लीजिये कि ऐसे हजारों आदमी संसार में हैं कि जिनका यही अनुभव है। और उन्होंने अपने अनुभव से यह भली प्रकार जान लिया है कि ईश्वर ने मेरे पापों को क्षमा कर दिया है। वे अब पूर्णतया सन्तुष्ट हैं। उनके हृदय पर न तो पाप की छाप शेष है, और न ही पाप का कोई भार है। पापाचरण की किसी प्रकार की इच्छा वा कल्पना भी नहीं है। एक क्षणमात्र में हृदय परिवर्तन हो गया है।

मेरी ओर से इंजील के अनुसार प्रमाण मिल चुका है। यह कहना बहुत ही आसान है कि यह मिथ्या है, ऐसा है और ऐसा नहीं। परन्तु जानने वाले जानते हैं, जिसका दर्द सर्वथा चला गया हैं, वह जानता है। परन्तु मेरे धर्म के मानने वाले इकतालीस करोड़ ईसाई संसार में हैं। उनमें से बहुत से तो झूठे ही हैं। यह मैं स्वीकार करता हूं, उनका कथन भी झूठ ही हैं। परन्तु सच्चे आदमी भी बहुत हैं और उनका कथन भी पूर्णतया यथार्थ है, सत्य है। उनकी जीवनचर्या से यह भली भांति प्रमाणित हो जाता है कि उनके सब पाप सर्वथा लुप्त हो चुके हैं। उनके पापों को क्षमा किया गया है। हां, इसको जानने और समझने के लिये अपना अनुभव होना भी आवश्यक है। यह कार्य अभ्यास से होगा।

मैं फिर कहता हूं कि वह अपने अनुभव का प्रमाण सबसे बढ़ कर और पक्का प्रमाण है। युक्ति और तर्क की पुष्टि से भी बढ़कर यह पुष्टि है, कि जिसको अपने अनुभव के आधार पर अपना अन्तरात्मा भी पुष्ट करता है। बात यह नहीं है कि हम केवल मौखिक कथनमात्र ही करते हैं, ऐसा कथन तो मिथ्या भी हो सकता है। परन्तु जिसके पाप तोबा करने के बाद अपना अस्तित्व सर्वथा खो चुके हैं, कि वह नहीं जानता कि जैसे कि कोई पिता अपने पुत्र से क्षमा का वचन कहे, तो क्या वह पुत्र यह नहीं समझता कि पिता ने उसे क्षमा कर दिया है, और अब चिन्ताओं की कोई आवश्यकता नहीं है।

मानव–हृदय की भी इसी प्रकार अवस्था है। मैंने तर्क युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा तथा मनुष्यों के अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि **"ईश्वर पापों को क्षमा करता है"**।

हस्ताक्षर –

"पादरी टी0 जी0 स्काट"

——————— : 0 : ———————

एक सौ अड़तीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान	:	"मसूदा" जिला–अजमेर (राजस्थान)
दिनांक	:	१३ जौलाई सन् १८८१ ई० (दिन बुधवार)
विषय	:	जैन सम्प्रदाय की मान्यताएँ ?
वैदिकधर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता	:	श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती
जैन सम्प्रदाय की ओर से शास्त्रार्थकर्ता	:	श्री जैन साधु सिद्धकरण जी,
अन्य उपस्थित महानुभाव	:	मसूदा राज्य के अधिपति– श्री "रावबहादुर सिंह जी" आदि
लेखक	:	श्री पण्डित वृद्धिचन्द श्रीमाली, (श्री रावसाहब के मन्त्री)

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

– "**लाजपत राय अग्रवाल**"

सम्पादकीय

– डा0 भवानीलाल भारतीय

ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज विषयक पुरातन सामग्री की शोध के प्रसंग में आर्यसमाज अजमेर द्वारा प्रकाशित **"देश हितैषी"** मासिक पत्र की संचिकायें देखने का अवसर मिला। यह पत्र **वैशाख** सम्वत् १९३६ विक्रमी में प्रकाशित होना आरम्भ हुआ था। **"देश–हितैषी"** के कतिपय अंकों में महर्षि दयानन्द के **"मसूदा"** (जिला–अजमेर) ग्राम में निवास का विस्तृत विवरण उपलब्ध हुआ। मसूदा के अधिपति स्वर्गीय राव बहादुर सिंह जी, स्वामी दयानन्द के निष्ठावान् अनुयायी तथा भक्त थे। उन्हीं के आमन्त्रण पर स्वामीजी एकाधिक बार मसूदा गये थे। यद्यपि स्वामीजी के मसूदा पधारने तथा वहां जैन साधु सिद्धकरण से शास्त्रार्थ करने का विवरण पण्डित देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा संकलित तथा पण्ड़ित घासीराम जी द्वारा लिखित श्री महाराज के जीवन चरित में भी उपलब्ध होता है, परन्तु वह अत्यन्त संक्षिप्त है। **"देश–हितैषी"** के निम्न अंकों में यह विवरण धारावाही रूप से प्रकाशित हुआ था–ज्येष्ठ १९३६ (अंक २ खण्ड १), श्रावण १९३६ (अंक ४ खण्ड १), भाद्रपद १९३६ (अंक ५ खण्ड १), आश्विन १९३६ (अंक ६ खण्ड १), कार्तिक १९३६ (अंक ७ खण्ड १), मार्गशीर्ष १९३६ (अंक ८ खण्ड १), अर्थात् उक्त ६ अंकों में मसूदा के शास्त्रार्थों का वृत्तान्त प्रकाशित हुआ था। इस वृत्तान्त के प्रेषक पण्डित वृद्धिचन्द्र श्रीमाली नामक एक श्रीमाली ब्राह्मण थे। **"मसूदा के मंगल–समाचार"** शीर्षक से प्रकाशित इस विवरण में तीन शास्त्रार्थों का उल्लेख हुआ है।

प्रथम शास्त्रार्थ– जैन साधु सिद्धकरण तथा स्वामी जी के मध्य।

द्वितीय शास्त्रार्थ– राव बहादुरसिंह जी तथा ब्यावर निवासी पादरी बिहारीलाल के बीच।

तृतीय शास्त्रार्थ– स्वामी जी एवं एक कबीर पन्थी साधु के बीच हुआ था।

जैन साधु सिद्धकरण श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की स्थानकवासी शाखा के अनुयायी थे। इस शाखा के साधु मुख पर श्वेत पट्टी बांधते हैं। राजस्थान में इन्हें **"२२ टोला"** भी कहा जाता है। शास्त्रार्थ विवरण के अतिरिक्त भी मसूदा के इस इतिवृत्त से ऋषि दयानन्द विषयक कतिपय महत्त्वपूर्ण बातों का परिज्ञान होता है। यथा–मसूदा में स्वामीजी ने धर्म, राजनीति, पुनर्विवाह, सत्यशास्त्रादि विषयों पर १६ व्याख्यान तो अपने प्रथम बार के निवास के समय ही दिये थे। क्या ही अच्छा होता, यदि इन व्याख्यानों का विवरण उपलब्ध हो सकता। पादरी शूलब्रेड तथा पादरी बिहारीलाल के समक्ष भी उनका व्याख्यान **"राजनीति"** विषय पर ही हुआ था। स्वामीजी के राजनैतिक विचार और भी स्पष्ट हो जाते, यदि हमें इन व्याख्यानों का विवरण उपलब्ध होता। पण्डित वृद्धिचन्द्र द्वारा लिखित विवरण की भाषा को यथासाध्य उसी रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। जिसमें वह आज से ८८ वर्ष (आज सन् २००१ में एक सौ बीस वर्ष) पूर्व प्रकाशित हुआ था। उस समय खड़ी बोली का गद्य पूर्णतया परिष्कृत नहीं था। शब्दों के स्वरूप तथा वर्तनी का निर्धारण भी नहीं हुआ था, और न विराम–चिन्हों का ही प्रयोग किया जाता था। फिर भी मैंने यथासम्भव शब्दों की वर्तनी को शुद्ध कर दिया है, तथा यत्र तत्र विराम चिन्ह भी लगा दिये हैं, तथापि भाषा के पुराने रूप को देखा जा सकता है। यत्र तत्र आवश्यक पाद–टिप्पणियां भी दे दी गई हैं।

मसूदा रावसाहब के पुराने **"इतिवृत्त संग्रह"** में महर्षि विषयक और भी महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होने की पूर्ण सम्भावना है। मसूदा के सैकड़ों निवासी स्वामीजी के अमृतमय उपदेशों को सुनकर वैदिक धर्म में दीक्षित हो गये थे। ऐसे लोगों में जैन मतावलम्बी कोठारी परिवार के लोगों की संख्या यथेष्ट थी। अतः इस विवरण में उल्लिखित उन लोगों के नामों की सूची भी महत्वपूर्ण है, जिन्होंने श्रीमहाराज के करकमलों से यज्ञोपवीत दीक्षा धारण की थी। मेरा प्रयास मसूदा विषयक शेष सामग्री को भी प्रकाश में लाने का है। जिसके लिये आर्यसमाज के अनुसन्धानप्रिय पाठकों को प्रतीक्षा करनी होगी।

शास्त्रार्थ से पहले

विदित होय कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के अजमेर में पदार्पण करने के समाचार राव बहादुर सिंह जी मसूदा के कर्णगत हुए। तत्काल ही उक्त रावसाहब ने श्रीस्वामीजी महाराज को निमन्त्रण पत्र सहित श्री पण्डित वृद्धिचन्द्र जी को अजमेर भेजा। उक्त पण्डितजी ने रावसाहब का निमन्त्रण पत्र स्वामीजी को दे सर्वव्यवस्था कह सुनाई। तब स्वामीजी ने मसूदा की ओर पधारना स्वीकार किया। इसके पश्चात् जब अजमेर में स्वामीजी के व्याख्यानादि समाप्त हो चुके, तब उक्त महाराज ने अत्यन्त कृपा करके अपने प्रण के अनुसार आषाढ़ बदी १२, सम्वत् १९३८ विक्रमी, बृहस्पतिवार को ६ बजे दिन के अजमेर स्टेशन से मसूदा की ओर प्रस्थान कर, नसीराबाद स्टेशन पर उतर, रथपर चढ़ ६ बजे रात्रि को मसूदा में जा विराजे।

फिर आषाढ़ बदी ३० सम्वत् १९३८ विक्रमी से उक्त महाराजजी के व्याख्यान महलों में होने आरम्भ हुये। तात्पर्य यह कि १६ व्याख्यान अर्थात् प्रथम धर्म विषय, फिर राजनीति, पुनर्विवाह, सत्यशास्त्रादि और मोक्ष विषय में होकर फिर दो तीन दिवस इसी प्रकार बाहर बाग में आनन्द मंगल होते रहे। इसके पश्चात् अर्थात् आषाढ़ सुदी २ मंगलवार को पादरी शूलब्रेड और बाबू बिहारीलाल ईसाई नये शहर[1] (ब्यावर) से स्वामीजी से मिलने को आये।

उक्त महाराज ने उक्त पादरी साहब और बाबूजी को आदर सहित बिठाया, फिर वार्तालाप होने लगी। फिर स्वामीजी ने प्रसंगानुकूल पादरी साहब से उनके धर्म विषय में प्रश्न किये, जिनका कुछ उत्तर न देकर (वे) कहने लगे कि स्वामी जी ! मैं आपसे शास्त्रार्थ करने नहीं आया हूं, वरंच आपके मुखारविंद से कुछ व्याख्यान सुनने की अभिलाषा है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

बहुत अच्छा, मैं व्याख्यान देता हूं। आप श्रवण कीजिये।

श्री पादरी शूलब्रेड़ साहब–

मैं बीस मिनट से अधिक नहीं ठहरूंगा। आप व्याख्यान दीजिए !

नोट–

स्वामी जी महाराज ने राजनीति पर व्याख्यान दिया।

श्री पादरी शूलब्रेड़ साहब–

वेदों में गो (मेध) और अश्वमेध लिखा है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

ऐसा नहीं है, कहीं भी वेदों में इस तरह की बातें नहीं लिखी हैं। हमारे पास चारों वेदों की पुस्तक हैं

---

१. वर्तमान "ब्यावर नगर" को "नया शहर" भी कहा जाता है।

"सम्पादक"

आप उनमें बतलाइये।

श्री पादरी शूलब्रेड़ साहब–

मेरी पुस्तकें तो नये शहर (ब्यावर) में हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

किसी मनुष्य को भेज दो, ले आवेगा।

श्री पादरी शूलब्रेड़ साहब–

इस समय नहीं मंगवा सकता।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

कारण ?

श्री पादरी शूलब्रेड़ साहब–

अवकाश नहीं है।

नोट–

इतना कह पादरी साहब तो नये शहर (ब्यावर) को चल दिये। फिर स्वामीजी और रावसाहब ने जैनियों से, जो उस समय वहां उपस्थित थे, कहा कि– तुम लोग अपने किसी विद्वान् पण्डित वा मतावलम्बी को बुलाओ, उससे शास्त्रार्थ होगा। तब जैनियों ने कहा कि– हम अपने **"साधुं सिद्धकरण"** को बुलाते हैं, वे आपसे शास्त्रार्थ करेंगे। फिर जैनियों ने उक्त साधु को आषाढ़ सुदी १०, सम्वत् १६३८ विक्रमी को पत्र भेजा, सो दूसरे दिन मसूदा में आ गया। एक दिन अर्थात् आषाढ़ सुदी १३ को, जब स्वामीजी महाराज अपने नियमानुसार भ्रमण को गये, तो सिद्धकरण साधु से भी, जो शौचादि से निवृत्त होकर आते थे, मार्ग में भेंट हो गई। साधु ने स्वामी जी के निकट आकर कहा कि–

श्री जैन साधु सिद्धकरण जी–

आपका क्या नाम और कहां से पधारना हुआ ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है, और अजमेर से आया हूँ। आपका क्या नाम है और कहां से आना हुआ ?

श्री जैन साधु सिद्धकरण जी–

मेरा नाम सिद्धकरण है, और सरवाड़ से आया हूँ, चार मास यहीं रहूंगा।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यहां पर आप कहां ठहरे हैं ?

श्री जैन साधु सिद्धकरण जी–

एक उपासरे[1] में।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

क्या आप ही को जैनियों ने बुलवाया है ?

श्री जैन साधु सिद्धकरण जी–

हां, मुझ ही को। स्वामी जी आपका पेट तो बड़ा मोटा है, क्या इसमें ज्ञान भरा है ? आप लोहे का तवा बांध लीजिए, नहीं तो फट जायेगा।

नोट–

स्वामी जी ने इसका उस समय उत्तर देना अनुचित समझ उस जैन साधु से यह प्रश्न किया कि–

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

आप लोग मुख पर पट्टी क्यों बांधते और गरम जल क्यों पीते हो ?

श्री जैन साधु सिद्धकरण जी–

जो आप भी मुख पर पट्टी बांधे, तो मैं इसका उत्तर दूं।

नोट–

अभी इनमें परस्पर वादानुवाद हो ही रहा था कि रावसाहब ने जो बहुधा अपने महलों की छत पर बैठकर प्रातःकाल दूरवीक्षण द्वारा स्वामीजी को भ्रमण करते देखा करते थे। जब उन्होंने यह देखा कि स्वामी जी किसी से वार्तालाप कर रहे हैं, तो वहां से चल कर स्वामीजी के निकट आ उपस्थित हुये। रावसाहब को देखकर वह जैन साधु चलने लगा। तब रावसाहब ने साधु जी से कहा कि–ठहरो, प्रश्न करो, क्यों जाते हो ? अन्त को रावसाहब के आते ही साधुजी चले ही गये, और स्वामीजी महाराज वा[2] राव बहादुर सिंह जी मार्ग में परस्पर वार्ता करते हुए निज स्थान को पधारे।

श्री जैन साधु सिद्धकरण और श्री स्वामी दयानन्द जी के प्रश्नोत्तर

स्वामी जी ने श्रावण बदी २ सम्वत् १९३८ विक्रमी को निम्नलिखित प्रश्न, पण्डित छगनलाल कामदार वा जोशी जगन्नाथ और सरदार वा और पण्डित लोगों के हस्ते सिद्धकरण साधु के पास भेजे। प्रश्न यह हैं–

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

प्रश्न १– जैन मतान्तर्गत तुम लोत ढूंढिये, जो मुख पर पट्टी बान्धना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी

---

१. स्थानक वासी जैन बन्धुओं के ठहरने का स्थान **"उपासरा"** (उपाश्रम) कहलाता है।

२. **"वा"** का प्रयोग सर्वत्र **"और"** के अर्थ में हुआ है **"अथवा"** के अर्थ में नहीं।

"सम्पादक"

बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणादि की रीति से सिद्ध नहीं है। इसमें जो तुम ऐसा मानते हो कि–मुख की वायु से जीव मरते हैं। तो भी ठीक नहीं। क्योंकि जीव अजर, अमर है, **"और तुम भी ऐसा ही मानते होंगे"** जो तुम कहो कि– जीव तो नहीं मरता, परन्तु जो उनको पीड़ा अर्थात् दुःख देवें वे पापभागी होते हैं। सो भी सर्वथा ठीक नहीं, क्योंकि पीड़ा दिये बिना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। इसमें जो तुम कहते हो कि–जहां तक बन सके तहां तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये, कारण सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं, इसलिये हम लोग मुख पर कपड़ा बान्धते हैं कि मुख से उष्ण वायु निकलने से बहुत जीवों को दुःख, और बान्धने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है। सो यह भी कहना आप लोगों का अयुक्त है, क्योंकि कपड़ा बान्धने से जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है। कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बान्धनें से गरमी रूकने से उष्णता अधिक होती है। जैसे किसी मकान का दरवाजा बंद हो वा परदा डाला जाये, तो उसमें गर्मी अधिक होती है, और खुला रहने से कम होती है। इससे विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बान्धने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है। इसलिये जो कोई मुख पर कपड़ा बान्धते हैं, वे जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं। जो नहीं बान्धते, वे उन बान्धने वालों से अच्छे हैं। किन्तु जब तुम मुख पर कपड़ा बान्धते हो, तो मुख द्वारा वायु रूक कर नाक के छिद्र से अधिक वेग से जो बाहर निकलती है, वह जीवों के लिये अधिक दुःखदाई होती है। जैसे कोई मुख से अग्नि फूंके और कोई नली से, तो नली से वायु चारों ओर से रूक, अधिक बलवान् हो अग्नि में लगती है। इसी प्रकार नाक का वायु जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाता है। इससे तुम अधिक हिंसक हो। जो तुम कहो कि–हम नाक और मुंह पर एक कपड़ा बांधेगे। तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका दोनों की गरमी बढ़ कर द्विगुण हिंसा होगी। उससे मुख वा नासिका पर कपड़ा बांधना कदापि योग्य नहीं। दूसरे, कपड़ा बांधने से बोला भी ठीक–ठीक नहीं जाता। निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक[1] कर देना दोष है, उधर दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है, क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है। शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्धयुक्त ही है। जब वह रोका जाये तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है, जैसा कि बंद जाजरूर[2]। इसी प्रकार मुखादि का प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बांधने से अधिक दुर्गन्ध होकर अधिक रोग उत्पन्न करता है, जैसा कि मेला आदि में। और न्यून दुर्गन्ध से विशेष रोग नहीं होता, यह बात प्रत्यक्ष है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है। जैसा कि आप लोग दन्तधावन और स्नानादिक न करने से दुर्गन्ध बढ़ाते हो, जिस से रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरूषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान में बाधक होते हो। जैसा कि जाजरूर (शौचालयों) के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है, वैसे ही आप लोगों की क्यों नहीं होती होगी ? जब दुर्गन्धयुक्त पुरूष की बुद्धि अतिमन्द, तो उसके संगियों की क्यों नहीं होती होगी ?

प्रश्न २– जो तुम लोग कच्चा जल पीने आदि में दोष गिनते और उष्ण में नहीं, यह भी तुमको अत्यन्त भ्रम हुआ है। क्योंकि ठण्डे जल के जीव उष्ण जल करने में अधिक दुःख पाते हैं, और उनके शरीर रन्ध्र जल में घुट जाते हैं, जैसे सौंफ का अर्क। सिद्ध हुआ कि उक्त जल के पीने वाले मानों मांस का जल पीते हैं। और जो ठंडा जल पान करते हैं वे (उन जीवों को) गर्म जल पीने वालों की अपेक्षा थोड़ा दुःख देते हैं। दूसरे वे जीव जठराग्नि में प्राप्त होकर भी बहुत से प्राण वायु के साथ बाहर भी निकल जाते हैं। इससे ठंडा जल पीने

१. मुख पर पट्टी बांधने वाले जैन साधुओं का उच्चारण अधिकांश में **"सानुनासिक"** हो जाता है।
२. इस शब्द का प्रयोग **"शौचालय"** के अर्थ में होता है।

वाले तुमसे बहुत कम जीवों को दु:ख देने वाले ठहरते हैं। जो तुम कहो कि– न हम जल गर्म करते और न हम किसी को अपने लिये शिक्षा उष्ण करने की करते हैं। तो भी तुम इस अपराध से नहीं छूट सकते, क्योंकि जो तुम गर्म जल न लेते, न पीते और न उष्ण करने की शिक्षा करते तो, वे अधिक जल क्यों गर्म करते ? जो ऐसा कहो कि– पाप करने वालों को दोष लगता है, अन्य को नहीं। यह भी कथन ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि चोरी करने वाला तो आप ही चोरी करता है परन्तु शिक्षा करने वाले बहुतों को चोर बना देते हैं, इसलिये तुम ही अधिक पापी हुए। फिर जल के गर्म करने में अग्नि जलाने और उस जल से भाप ऊपर उड़ने से भी जीवों को बहुत दु:ख पहुंचता है, इस कारण यह भी तुम्हारा कथन व्यर्थ हुआ।

प्रश्न ३– तुम्हारे मत में ऐसी–ऐसी बहुत–सी बातें अयुक्त हैं, जैसे–एक छोटे से अर्थात् पैसे भर के कंद में अनन्त जीवों का रहना। इसमें जो कोई तुमसे प्रश्न करे कि जिसमें जीव रहते हैं जब उसका अन्त है, तो उसमें रहने वालों का अन्त क्यों नहीं ? फिर तुमसे इसके उत्तर में केवल चुप वा हठ के और कुछ न बन पड़ेगा। यह थोड़ा सा अर्थात् समुद्र में से बिन्दुवत् तुम्हारे मत में दोष दिखलाया है। जो तुम सन्मुख बैठ कर चर्चा करो, तो तुमको और तुम्हारे साथियों को तुम्हारे मत के दोष भली भांति विदित हो जायें। परन्तु जब कोई विद्वान तुम्हारे सन्मुख मत के खण्डन विषय में चर्चा करना चाहें, तो भी तुम कभी न चाहोगे। क्योंकि जो तुम्हारा मत निर्दोष होता, तो दूसरे मत वालों से सम्वाद करने में कभी न डरते। इसका दृष्टान्त यह है कि तुम अपनी पुस्तकों को बहुत गुप्त रखते और अपने मत वालों के सिवाय दूसरों को देखने के लिये नहीं देते। यह तुम्हारा सिद्धान्त पुस्तक और तुम्हारे सिद्धान्तों को तुम्हारी ही बातें झूंठ कर देती हैं। जिसका चांदी का रूपया है, वह सर्राफ वा सुनारादि के दिखलाने में क्यों डरेगा ? देखो हमारा वेद मत सच्चा है, इससे हमको किसी के साथ चर्चा करने में डर नहीं होता। जैसा तुम डर के कारण हठ करते हो कि मुख पर कपड़ा बांधे बिना तुम से बात नहीं करते, यह तुम्हारा केवल छल है, **"क्योंकि नाच न आवे आंगन टेढ़ा"**।

हस्ताक्षर–
"दयानन्द सरस्वती"

नोट–

जब पूर्वोक्त पुरूष उक्त प्रश्नों को लेकर साधुजी के स्थान पर पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि साधुजी बहुत–सी स्त्री और पुरूषों के मध्य में बखान[1] कर रहे हैं। तब यह लोग वहां जा बैठे। जब बखान पूर्ण हुआ, तब पण्डित छगनलाल जी मन्त्री राव मसूदा ने, जो उक्त प्रश्न ले गये थे, सब लोगों के सन्मुख पढ़ कर सुना दिये। और कहा कि इनका उत्तर देना आपको योग्य है। इस पर साधुजी ने कहा कि–जो तुम लोग मुख पर पट्टी बांधो तो मैं उत्तर दूं। तब इन लोगों ने कहा कि–हम मुख पर पट्टी बांधना पाप गिनते हैं। प्रथम आप इन प्रश्नों का उत्तर दें। पट्टी का बांधना सिद्ध कर देंगे, तब हम प्रसन्नतापूर्वक यही क्या जैसा आप हमसे कहेंगे, स्वीकार करेंगे। ये सुन साधु ने कहा कि–तो मैं उत्तर नहीं दे सकता, और उठकर भीतर की ओर चले गये। फिर यह लोग अपने गृह की ओर चले आये, और सब वृत्तान्त स्वामीजी तथा राव साहब को सुनाये, तत्पश्चात अपने अपने निज स्थान को पधारे।

---

१. जैन साधुओं के धर्मोपदेश को राजस्थान में **"बखाण"** (व्याख्यान की अपभ्रंश) कहते हैं।

जैन साधु सिद्धकरण के द्वारा स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर

फिर साधुजी ने तीसरे दिन सुजानमल कोठारी के हस्ते स्वामीजी के प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित भेजा–

श्री जैन साधु सिद्धकरण जी–

प्रश्न–

मुंह बांधने में क्या धर्म है[1] ? हमको तो पाप मालूम होता है, इत्यादि।

उत्तर–

जबकि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, उस मकान के दरवाजे में होकर हवा भीतर जाती है, तो हवा के जीव सब मर जाते हैं, और बाहर उस ज्वाला का तेज कपड़े की ओट से ठंडा होकर जाता है। जैसा कि ऊना[2] (गर्म) जल की भाप बाहर एक ऊनी करी हुई चीज की भाप के निकलते समय कपड़ा की ओट दो, तो फिर ओट से बच कर भाप जावेगी, वह फिर वैसी गर्म कभी न रहेगी। वा आडा हाथ देकर देखो, तो पहला हाथ देगा उसका जलेगा वही जल की भाप निकलेगी तो दूसरी तरफ जो आजू बाजू हाथ रहेगा, कभी वैसा नहीं जल सकता, यह तो प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। और जीव–अजर–अमर है लेकिन वायु के जीव का शरीर है, बिना शरीर के जीव नहीं रह सकता।

दूसरे खुले मुख रहने से प्रत्यक्ष दोष भी है, कि उसको सब कोई समझ सकता है, क्योंकि जो कोई बड़े आदमी के निकट बात करे तो मुंह के पल्ला लगा लेता है, क्योंकि जिससे थूक न उछले, वा अपनी दुर्गन्धता का स्वास उनके द्वारा न पहुंचे। तो आप सरीखे बुद्धिमान् होकर यह क्या सवाल पूछा ? आप को भी यह तो ख्याल होना चाहिये कि वेद की पुस्तकों को खुले मुंह बांचना, क्या पुस्तक के ऊपर थूक वा दुर्गन्ध स्वास नहीं पहुंचती होगी ? इस वास्ते जरूर आपको उगाड़े (खुले) मुंह रहना लाजिम नहीं। और हम तो साधु हैं, हम बेफायदा झोड़[3] नहीं करते, क्योंकि यह बात पक्षपात कहलाती है। सिवाय धर्म के साधु को कुछ वास्ता नहीं। कोई हमारे निकट आवे और सुनना चाहे तो सुने, जाने आने का कुछ प्रयोजन नहीं। हां, यह पक्की दीखे कि कुछ धर्म की बात मानेंगे, तो जा सकते हैं।

दस्तखत–

"सिद्धकरण"

स्वामीजी के द्वारा जैन साधु सिद्धकरण के प्रश्नों का उत्तर

स्वामीजी ने इन पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर दूसरे दिन, पण्डित वृद्धिचन्द्र जी, जगन्नाथ जोशी, व्यास रामनारायण और बाबू बिहारी लाल और अन्य सरदार लोगों के हस्ते निम्नलिखित पत्र के रूप में भेजा–

---

१. यह प्रश्न भी जैसे के तैसे लिख दिये हैं, जिससे जैन मत के साधुओं की विद्या भी पाठकों पर भलीभांति प्रकट हो जाये।

२. **"उष्ण"** को मारवाड़ी में **"ऊना"** कहते हैं।

३. **"झोड़"** विवाद के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

उत्तर–

जब कि मकान में अग्नि की ज्वाला निकलती है, इत्यादि। यह तुम्हारा मुख की पट्टी बान्धने का उत्तर अविद्यारूप है, क्योंकि बाहर का वायु ही सब प्राणियों का जीवन–हेतु है। बिना इसके संयोग के कोई भी प्राणी नहीं जी सकता, और उसके सम्बन्ध के बिना अग्नि भी नहीं जल सकता। जैसे किसी प्राणी वा जलते अग्नि को बाहर के वायु से वियुक्त करें, तो वह उसी समय मर जाता और दीपादि अग्नि भी बुझ जाता है। इससे उसको जिलाने और जलाने आदि का कारण बाहर का वायु ही है। न मानो तो बंद कर देख लो। इसलिये तुम्हारा अविद्यारूपी ही उत्तर सिद्ध होता है। यद्यपि ऐसी अन्यथा बातों पर लिखना व्यर्थ है, क्योंकि जो किसी से हो ही नहीं सकता।

देखो ! जो मकान के दरवाजे और छिद्र बिल्कुल बंद कर दिए जायें, तो अग्नि कभी न जले। और एक ओर से ओट किया जाए, तो दूसरी ओर से जहां कि मार्ग पाता है, वहां अति वेग से चलकर वहीं वायु के जीवों को उसका सम्बन्ध होता है। और कपड़े की ओट से भी वह कभी ठंडा नहीं हो सकता, किन्तु वह एक और रूककर दूसरी ओर गर्म हो जाता है। ज्वाला की जितनी गर्मी है, वह जब तक बाहर के वायु से सम्बन्ध वा संघात छूट एक–एक परमाणु पृथक्–पृथक् होकर न मिल जायें, तब तक अग्नि ठंडा कैसे हो सकता है ? और सर्वत्र वायु में विद्युत् रूप अग्नि भी (कि जहां वायु के शरीर वाले जीव हैं) व्याप्त हो रहा है, फिर वायुस्थ जीव क्यों नहीं मर जाते ?

जब एक ओर कपड़े आदि से आड़ा[1] किया जाए, तो दूसरी ओर गर्म वायु अधिक इकट्ठा फैलने और पटकने आदि से शीघ्र ठंडा नहीं होता, किन्तु जो चारों ओर से खुला रहे तो शीघ्र ठंडा हो जाता है, जैसा कि मैदान की अग्नि।

जब अग्नि की ओर आडा हाथ दिया जाए, तो हाथ की आड़ से दूसरी ओर गर्मी फैलेगी। आड़े हाथ करने से गर्मी कुछ भी कम नहीं हो सकती। इससे यह अविद्वानों की बात है। देखो ! कोई सूर्य की ओर हाथ करे, तो क्या सूर्य की गर्मी घट जाती है ? और क्या जिस बर्तन में गर्म जल किया जाता है, उसका मुख खुला रखने से अधिक गर्मी और आधा वा तीन–भाग बन्द करने से अर्थात् आधे वा चौथे भाग से भाप अधिक और जोर से निकल कर बाहर के वायु में नहीं फैलती ? और जो उसका मुख सर्वथा बन्द किया जाए, तो क्या बर्तन टूट फूट वा न उड़ जायेगा ? क्या जिसने अग्नि की ज्वाला के सामने आड़ की, तो उसकी ओर गर्मी कम होने से अग्नि के दूसरी ओर जिस किसी का हाथ वा कोई वस्तु हो, तो वह अधिक तप्त नहीं होती ? और जब चारों ओर से आड़ कर अग्नि रोका जाये, तो गोलाकार होकर ऊपर को क्यों नहीं चढ़ेगा ? और भाप के दूसरे बाजू हाथ जैसा कि इधर का जलता है वैसा उधर का न जलेगा ? और हाथ की आड़ के हाथ में गर्मी इसलिए अधिक नहीं लगती कि वह गर्मी अगल बगल होके ऊपर उड़ जाती है।

देखो ! तुम्हारी अत्यन्त भूल है, क्योंकि जो वायु के शरीर वाले जीव गर्म वायु से मर जाते, तो वैशाख और ज्येष्ठ मास में जब कि वायु अत्यन्त तप्त होय लू चलता है, तब वे क्या सब मर जाते हैं ? और गर्म वायु

---

१. "आडा" करने का अर्थ ओट करने से है।

के जीव जब कि पौष मास में अति शीत पड़ता है, तब वे क्या सब मर जाते हैं ? इससे यह बात सृष्टिक्रम से विरूद्ध होने से मिथ्या ही है। क्योंकि जो ऐसा होता, तो ईश्वर इस सृष्टि में अग्नि और सूर्यादि को क्यों रचता ? इससे जो तुम सत्यासत्य बातों का निश्चय करना चाहो, तो वेदादि सत्य शास्त्र पढ़ो और सुनो। जिससे यथार्थ ज्ञान पाके, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल को प्राप्त हो सको। ऐसा न करके अपने मत के ग्रन्थों के विश्वास में रहोगे, तो यह उत्तम मनुष्यजन्म व्यर्थ ही नष्ट करोगे।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि, जीवों को अजर अमर मान कर फिर उनका मरण भी मानते हो। जो तुम खुला मुख रखने में प्रत्यक्ष दोष लिखते हो, तो प्रतीत होता है कि आप प्रत्यक्ष के लक्षणादि विद्या को ही नहीं जानते। इसी से किसी बड़े आदमी से बातें करने में पल्ला लगाना अच्छा समझते हो। जो ऐसा है, तो फिर वैसा क्यों नहीं करते ? क्यों छोटे आदमी के सन्मुख हर वक्त मुख को बांधे रहते हो ? क्या बड़े आदमी का थूंकार छोटे आदमी के लग जाना अच्छा समझते हो ? क्या बड़े आदमी के मुख में कस्तूरी घुली होती है, और छोटे के नहीं ? यदि बड़े छोटों का विचार है, तो अपने चेलों के सन्मुख मुख क्यों बांधते हो ? क्योंकि जब किसी बड़े आदमी से बोला करो, तो बांध लिया करो, सदैव ये व्यर्थ बातें क्यों किया करते हो ?

देखो, इस बात को तुम नहीं जानते। बड़े आदमियों से सम्भाषण करते समय पल्ला लगाने से यह प्रयोजन है कि सभा में कभी–कभी गुप्त वार्ता करनी पड़ती है। यदि मुख खुला रखा जाये अर्थात् कपड़ा न लगावें, तो अन्य मनुष्य जो निकट बैठे होवें तो, अवश्य सुन लें। जहां कोई तीसरा मनुष्य नहीं होता वहां बातें करने में पल्ला नहीं लगाते। और क्या पल्ला लगाने से दुर्गन्ध रूक सकता है ? इसमें इतना ही प्रयोजन है कि जो वायु को रोक के न बातें करें, तो उसके फैलने के साथ ही शब्द भी फैल जाये और कान में वायु लगने से ठीक–ठीक सुना भी न जाए। जैसा कि वायु के वेग से चलने में ठीक–ठीकं सुना नहीं जाता। देखो ! कैसे अंधेरे की बात है ? क्या दुर्गन्ध को कान ग्रहण कर सकता है ? किन्तु सुगन्ध दुर्गन्ध का ग्रहण नासिका ही से होता है। इस बात का आपने प्रयोजन ही नहीं समझा है, जैसे गान विद्या न जानने वाला ध्रुपद को समझ नहीं सकता क्योंकि जो तो विद्या की बातें हैं, उनको विद्या से ही समझ सकता है, अविद्वान् नहीं। हम शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को वेद समझते हैं, कागज स्याही को नहीं। और कागज स्याही को (जड़ होने से) सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान वा सम्बन्ध नहीं होता। क्या जो तुम्हारे जैनी लोगों के ग्रन्थ वा पुस्तकों के कागज लाख आदि हैं। तब तो उनको बनाने और लाने वालों ने मुख बन्द कर बनाया और लिखा होगा ?

हम खुले मुख से वेदों का पाठ करना अत्युत्तम समझते हैं ? क्योंकि मुख बांधने से स्पष्ट यथार्थ उच्चारण नहीं होता, जैसा कि तुम्हारा सब अक्षरों का नासिका से अशुद्ध उच्चारण होता है। उसका उत्तर हमने पहिले ही लिख दिया था कि निरनुनासिक को मुख बांधकर सदैव सानुनासिक बोलना शुद्ध नहीं, परन्तु इसके समझने को विद्या चाहिये। और जो आप साधु बनते हो, तो साधु के लक्षण क्या हैं ? और आप स्वार्थी हो वा परमार्थी ? जो परमार्थी हो तो स्वार्थ की इच्छा अर्थात् बेफायदा हम नहीं बोलते, ऐसा क्यों कहते ? और जो स्वार्थी हो तो साधु क्यों बनते हो ? जो आपको पक्षपात नहीं होता, तो मुख पर पट्टी बांधने का झूठा आग्रह क्यों करते ? कि बिना मुख पर पट्टी बांधने के हम नहीं बोलते। यदि ऐसा नियम था, तो प्रथम ही प्रथम (जंगल में भ्रमण करते समय) हमसे क्यों बोले थे, कि आपका नाम क्या है ? इत्यादि खुले मुख बोले। और अन्य जनों से भी बातें क्यों किया करते हो ? और भोजन समय में (स्वप्रयोजन के लिये) क्यों मुख खोलते हो ? क्या तुम अपने शरीर–पोषण, भोजन–छादन, मल विसर्जनादि कर्म भी मौन सिवाय नहीं समझते होंगे ? यह बात मिथ्या है, क्योंकि जब हम सुनना चाहते थे, तब तो तुम सुनाने को खड़े भी न हुये। और जो तुम कहीं आते

जाते नहीं, तो यहां कहां से आ गये ? क्या एक ही ठौर शिलावत् स्थित रहते हो ? भला जिसका रूपया चांदी का है, उसको कच्चेपन का क्या भय है ? क्या सबके सामने दिखलाने से ताम्र का हो जाता है ? क्या तुम वहीं जाते हो जहां तुम्हारी बातें बिना समझे बूझे मान लेवें ? हां ठीक है, तुम तो उन्हीं गोबर–गणेशों को सुना सकते हो, जो सुनते ही सत्यार्थ और प्रमाण शब्दों से हल्ला करके तुमको सन्तुष्ट किया करें। चाहे सत्य कहो वा असत्य, मान ही लें, जैसे दिल्ली की मिठाई। न पूछें न शंका करें न झूठ का खण्डन करें। ठीक समझ लिया, जैसे तुम और तुम्हारे सिद्धान्त हैं, मानो बालकों का खेल। जो यह मुख की पट्टी बांधने का सहज उत्तर तुम नहीं दे सकते, तो छोटे से कन्द में अनन्त जीवों के होने आदि का उत्तर तुम क्या दोगे ? किन्तु तुम्हारे तीर्थकरों ने भी इन विद्या की बातों को नहीं समझा था। जो समझते होते, तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिख जाते ? सत्य है, जबसे तुम लोग वेद विरोधी होके तदुक्त सत्य मत को छोड़ के कपोल कल्पित असत्य मत को ग्रहण किया है, तभी से विद्यारूप प्रकाश से पृथक् होकर अविद्यारूप अंधकार में प्रविष्ट हो गये हो। इसी से ईश्वर जीव और पृथिवी आदि तत्वों को यथावत् नहीं जान सकते हो। आओ, अब भी क्यों झूठे पक्षपात करके वेदोक्त सत्य मत को स्वीकार नहीं करते ? और मुख पर पट्टी बांधने आदि विद्या विरूद्ध कपोल कल्पित बातों को क्यों नहीं छोड़ते ? और अन्यथा आग्रह करते जाते हो।

सत्य है कि, जो तुम लोगों के आत्माओं में वेद विद्या का थोड़ा भी प्रकाश होता, तो ऐसी निर्मूल झूठी बातों को लिखने में लेखनी कभी नहीं चलती। और जो तुम्हारे सिद्धान्त सत्य होते, तो चर्चा करने में ऐसे झूठे हीले बहाने क्यों पकड़ते ? और ऐसे अशुद्ध लेख में व्यर्थ परिश्रम क्यों करते वा कराते ? अब भी जो सच्चे हो तो सन्मुख आकर थोड़े काल में सत्यासत्य का यथार्थ निश्चय क्यों नहीं कर लेते ? क्योंकि **"वादिप्रतिवादिभ्यां निर्णीतीऽर्थः सिद्धान्तः"**–जो वाद–प्रतिवाद से बात सिद्ध होती है, वही मानने योग्य है। जिस किसी ने मतमतान्तर वालों से पक्ष–प्रतिपक्षपूर्वक वादानुवाद नहीं किया, वह सत्यासत्य को ठीक–ठीक कभी नहीं जान सकता। इसीलिए तुम भी ऐसा क्यों नहीं करते ? परन्तु क्या करो, **"नाच न जाने आंगन टेढ़ा"**।

हस्ताक्षर–

"दयानन्द सरस्वती"

नोट–

यंह उक्त पत्र पूर्वोक्त पुरूष जब लेकर, चले, तो अनुमान २०० आदमियों के और एकत्र हो गये थे। उन्होंने पहुंचते ही साधु जी को उक्त पत्र पढ़ सुनाया, और निवेदन किया कि अब आप इसका फिर उत्तर दीजिये।

परन्तु पाठकगण ! उत्तर देने को तो विद्या चाहिये। न जाने पहले किसकी सहायता से उत्तर लिखा था ? विशेष क्या लिखूं। साधु जी के छक्के छूट गये। अन्त को बहुत इन लोगों ने कहा सुना, तो यही मुख से निकला कि–**"म्हारे से तो कोई नहीं बने, आपां तो साधु हैं"**[1]। जब लोगों ने देखा कि जब साधु ही ने अपने मुख से हार मान ली, तो अब विशेष कहना उचित नहीं। यह समझ कर **"नमस्ते"** कह के चले आये, और सर्व वृत्तान्त रावसाहब और स्वामी जी से निवेदन कर अपने अपने निज स्थानों को चले गये।

हस्ताक्षर–

"पण्डित वृद्धिचन्द श्रीमाली,
मसूदा (राजस्थान)

---

१. यह वाक्य मारवाड़ी भाषा का है।

"सम्पादक"

एक सौ उन्तालीसवाँ शास्त्रार्थ—

स्थान : "मसूदा" जिला—अजमेर (राजस्थान)

दिनांक : ३० जौलाई सन् १८८१ ई० (दिन शनिवार)

विषय : ईसाई मत की तालीम ?

प्रश्नकर्त्ता के रूप में : श्री रावसाहब बहादुरसिंह जी,

उत्तरदाता के रूप में : श्री बाबु बिहारीलाल ईसाई

मध्यस्थ : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

उपस्थित विद्वान : श्री वृद्धिचन्द श्रीमाली

नोट—

यह शास्त्रार्थ सामग्री— "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

— "**लाजपत राय अग्रवाल**"

शास्त्रार्थ से पहले

नोट–

यह शास्त्रार्थ बाबु बिहारीलाल ईसाई के साथ राव साहब बहादुरसिंह जी मसूदा का श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती की मध्यस्थता में सम्पन्न हुआ।

इसके पश्चात् सावन सुदी ४ सम्वत् १६३८ विक्रमी को फिर बाबु बिहारीलाल ईसाई नये शहर (ब्यावर) से स्वामीजी से मिलने को आया। थोड़ी देर के पश्चात् बातों ही बातों में धर्म विषय की चर्चा होने लगी। तिस पर श्रीयुत रावसाहब ने बाबु बिहारीलाल से कहा कि–आइये, मेरी और आपकी परस्पर वार्ता होनी उचित है। क्योंकि यदि आपके पादरी साहब आते, तो उनसे स्वामीजी वार्तालाप करते। सो अब न्याययुक्त उचित यही है कि आप पादरी साहब के शिष्य और मैं स्वामीजी का ! इसलिये मुझसे और आपसे ही वार्ता होनी अत्युत्तम है, और स्वामीजी हम दोनों के मध्यस्थ रहेंगे। यह बात रावसाहब की बाबु बिहारीलाल ने स्वीकार कर स्वामीजी को मध्यस्थ किया, और इस प्रकार से प्रश्नोत्तर होने लगे–

श्री रावसाहब बहादुर सिंह जी–

तुम्हारा ईमान पूरा है वा नहीं ?

श्री बाबु बिहारीलाल ईसाई–

हमारा विश्वास प्रभु परमेश्वर पर है।

श्री रावसाहब बहादुर सिंह जी –

तुम्हारा विश्वास पूरा है, वा अधूरा ?

श्री बाबु बिहारीलाल ईसाई–

हमारा विश्वास पूरा है।

श्री रावसाहब बहादुर सिंह जी–

जो तुम्हारा पूरा विश्वास है, तो इस पहाड़ को यहां से हटा दो, क्योंकि आप लोगों के नये नियम के पर्व १० आयत २० में मसीह उपदेश करते हैं कि–"**अगर तुम लोगों में राई बराबर विश्वास होय तो, इस पहाड़ को उठाय दूर ले जा सकते हो।**"

श्री बाबु बिहारीलाल ईसाई–

विश्वास दो तरह का है, उनमें से आप कौन सा पूछते हो ?

श्री रावसाहब बहादुर सिंह जी–

वे दो विश्वास कौन–कौन से हैं ?

श्री बाबु बिहारीलाल ईसाई–

पहला विश्वास यह है कि–ईश्वर को अपना सृजनहार समझना। दूसरा यह कि–किसी की बड़ाई की तरफ झुक कर विश्वास करना। जैसे एक आदमी ने "कोसालस" के पास आकर कुछ रूपये नजर किये, और कहा कि मुझे भी यही ताकत मिले। उसने कहा कि ताकत ईश्वर की रूपये पैसे से नहीं मिलती।

श्री रावसाहब बहादुर सिंह जी–

आप चाहे जौन से विश्वास व ईमान से पहाड़ को हटा दो। यदि नहीं हटा सकते, तो आप में राई बराबर भी विश्वास नहीं।

श्री बाबु बिहारीलाल ईसाई–

इस प्रश्न का तात्पर्य हर एक ईसाई पर नहीं लग सकता। इसलिए कि उस वक्त मसीह के शागिर्ददाँ अपना बड़प्पन पाने के लिये यह अरज की, ताहम भी उनका विश्वास प्रभु पर था। और यह बात उनके बड़प्पन पर थी, और मसीह ने भी उस बड़प्पन पर जवाब दिया। अब मेरा विश्वास, जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं, प्रभु परमेश्वर पर पूरा है कि–वह हमारा पैदा करने वाला और मुक्तिदाता है। और इस बात की अभिलाषा हम नहीं रखते कि हम करामाती हो जायें।

श्री रावसाहब बहादुर सिंह जी–

हर एक ईसाई का विश्वास माननीय एक सा है वा भिन्न–भिन्न ? जो एक सा है, तो सब ईसाइयों में उस विश्वास के राई भर अंश का फल कहने मात्र से पहाड़ का हट जाना क्यों नहीं ? और परमेश्वर पर आपका पूर्ण विश्वास है, तो क्या उस विश्वास में वह सामर्थ्य नहीं है ? और ईसामसीह जिस विश्वास के बल से आश्चर्य कर्म करते थे, वह विश्वास यही आपका है जिसको आप मानते हैं, वा दूसरा ? यदि दूसरा अर्थात् भिन्न है तो ईसामसीह ने आप लोगों से कपट रक्खा, कि किसी को अपना विश्वास न बताया, और जो बताया तो उनमें और आप लोगों में उस विश्वास का फल इस वक्त क्यों नहीं दृष्टि पड़ता ? मुझको तो यह निश्चय होता है कि ईसामसीह में किसी का वह विश्वास पूरा प्राप्त कराने का सामर्थ्य नहीं है। जो होता तो उनके साथ बारह शिष्य प्रत्यक्ष थे।

जब उनका ही विश्वास पूरा न करा सका तो अब आप लोगों का विश्वास पूरा क्यों कर हो सकता है, वा करा सकता है ?

जब ऐसा है, तो तुम लोगों को ईसामसीह मुक्ति आदि भी नहीं दे सकता। जो आप उसके पैदा किये हुए है, तो मर भी जायेंगे। क्योंकि जो पैदा होता है, उसका नाश भी अवश्य होता है। जब नाश हुआ तो जिस पर आप विश्वास कर रहे हैं कि हमको मुक्ति मिलेगी, वह व्यर्थ हो जायेगी। क्योंकि मुक्ति का भोगना नाशधर्म वाला है, तो नित्य–सुख जो आपके मतानुसार है, उसको कौन भोगेगा ? जो आप कहें कि उत्पत्ति तो होती ही है, नाश नहीं होता।

यह बात सृष्टिक्रम और विद्या के विरूद्ध है कि जिसकी उत्पत्ति तो होंय और नाश न हो। प्रभु के पूरे विश्वास से बड़प्पन और करामात प्राप्त होती है, वा नहीं ? जो होती, तो आपको इस पहाड़ को हटा देना

अवश्य होगा, और जो नहीं तो परमेश्वर–विश्वास में वैसा बड़प्पन नहीं रहा। तो अब आप बतलाइए कि वह फिर दूसरा विश्वास कौन सा है, कि जिससे बड़प्पन और करामात प्राप्त होती है ? क्या परमेश्वर के विश्वास से भी किसी अन्य का विश्वास बड़ा है ? और क्या परमेश्वर से भी कोई वस्तु उत्तम है ? वा परमेश्वर में करामात है वा नहीं ? जो है तो अपने ही विश्वास से वा अन्य के ? और उसके विश्वासियों में भी वैसा ही उचित होता है वा अन्य ?

जब खुद ईसामसीह ने उनसे कहा कि जो तुम में राई भर ईमान होता, तो इस पहाड़ से कहते कि यहां से चला जा, तो वह चला जाता।

इससे सिद्ध होता है कि उनमें राई भर भी ईमान न था। तो ईमानरहितों की एकत्र की वा बनाई वा लिखी हुई इंजील भी विश्वास के योग्य कैसे हो सकती है ? जो कहो कि–ईसामसीह के मरने के पश्चात् (१२ शागिर्दों का) ईमान दुरूस्त हो गया था। पश्चात् इंजील बनाई। यह भी ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि जो उसके सामने अर्थात् जिनको ईसामसीह ईमानदार बनाना चाहता और परिश्रम करता था, वे तो भी नहीं बन सके, तो पश्चात् कैसे बन सकते हैं ?

श्री बाबु बिहारीलाल ईसाई–

स्वामी जी महाराज ! मैं इसका उत्तर अभी नहीं दे सकता। अब मैं अपने गृह नयेशहर (ब्यावर) को जाता हूँ। पादरी साहब[1] से पूछ कर उत्तर दूंगा।

नोट–

अन्त में इतना कह बाबु बिहारीलाल ईसाई थोड़ी देर पश्चात अपने गृह की ओर पधारे। परन्तु उक्त लेख का उत्तर फिर आकर अर्थात् आज की तारीख तक न दिया।

हस्ताक्षर–

"पण्डित वृद्धिचन्द श्रीमाली"

मसूदा–(राजस्थान)

---

१. पादरी साहब से अभिप्राय **"यूरोपियन पादरी शूलब्रेड़ साहब"** से है।

"सम्पादक"

एक सौ चालीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "मसूदा" (अजमेर) राजस्थान

दिनांक : १० अगस्त सन् १८८१ ई0

विषय : कबीरपन्थ की मान्यताएँ ?

प्रश्नकर्त्ता के रूप में : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,

उत्तरदाता के रूप में : श्री साधु कबीरपन्थी

अन्य उपस्थित विद्वान : अनेकों महानुभाव मौजूद थे

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

– "लाजपत राय अग्रवाल"

नोट–

एक साधु कबीरपन्थी नयेशहर (ब्यावर) से स्वामी जी के पास आया, और परस्पर प्रश्नोत्तर होने लगे, प्रथम स्वामी जी ने कहा कि–

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

आपके मत के कितने ग्रन्थ हैं ?

श्री कबीरपन्थी साधु–

चौदह करोड़ पुस्तक हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यह बात मिथ्या है, कारण, इतने ग्रन्थों की संख्या और रखने को कितनी जगह चाहिये ? तथा बताइये कि तुम्हारे कबीर कौन थे ? और जब तुम कबीर मत में होते हो, तब तुम उनकी प्रसादी और गुरू का उच्छिष्ट (झूठा) भी खाते हो कि नहीं ?

श्री कबीरपन्थी साधु–

उच्छिष्ट खाते हैं। कबीर का जन्म नहीं है, वह अजन्मा है, उसके माँ–बाप भी नहीं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

कबीर जी काशी में कुकर्म से पैदा हुए थे[1]। इस कारण उसकी माँ ने उसे घर से बाहर फैंक दिया था। उसी समय वहां पर (जहां कबीर पड़ा था) एक जुलाहा जो जाति का मुसलमान था उधर आ निकला और कबीर को उठाकर घर में ले आया और निज पुत्र सा जान उसको पाला, और उसको समर्थवान किया। अब देखिये कि उसका जन्म भी हुआ, और माँ–बाप भी ठहरे।

नोट–

इस बात को सुन साधु चुप हो रहा और कुछ उत्तर न दिया। फिर श्रावण सुदी १५ सम्वत् १९३८ विक्रमी को रावसाहब की ओर से सोमनगरी पर बड़ी धूमधाम और उत्साह सहित हवन हुआ, जिसमें पांच सौ व्यक्तियों के लगभग एकत्र थे। हवन के पश्चात ब्रह्मभोज भी सत्कारपूर्वक कराया गया। फिर निम्नलिखित पुरूषों ने प्रणपूर्वक सबके सम्मुख वेद धर्म को स्वीकार किया। फिर उसी समय स्वामी जी से उचित पुरूषों ने यज्ञोपवीत लेने की अभिलाषा प्रकट की। इस कारण श्री स्वामी जी महाराज ने योग्य पुरूषों को यज्ञोपवीत भी दिया। यज्ञोपवीत लेने वाले महानुभावों में निम्नलिखित के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं–

ठाकुर महानुभाव–

१. सर्वश्री प्रताप सिंह केलूके, २. अखे सिंह जी, वेगलियावासके, ३. चैन सिंह जी आसीन, ४. प्रताप

---

१. कबीर के बारे में यह बात प्रसिद्ध है कि वे एक विधवा ब्राह्मणी की ज़ारज़ (नाजायज) सन्तान थे।

"लाजपत राय अग्रवाल"

सिंह जी वखाड़े, ५. माधो सिंह जी वेगलियावास, ६. अदूल सिंह जी किपाय, ७. प्रताप सिंह जी मेरता, ८. नाहरसिंह जी जामोड़ा, ६. उगमसिंह जी किशनगढ़, १०. चतुर सिंह जी गहलोत मसूदा, ११. हरिसिंह जी मेरता, १२. लखे सिंह जी किपाय, १३. गम्भीर जी थावड़ा, १४. नामदेव जी जगपुरा, १५. बलवन्त सिंह जी किपाय, १६. महताब जी थावड़ा वाला।

जैनी महानुभाव—

१. सर्वश्री राजमल्ल जी कोठारी, २. किशन जी कोठारी, ३. अनन्त जी कोठारी, ४. श्योदान जी कोठारी, ५. हीरालाल जी तातेड़, ६. कजोड़ जी चोरड़िया, ७. छगनजी बोहरा, ८. पानजी कोठारी, ६. अमरसिंह जी कोठारी, १०. बल्लभ जी, ११. राजजी मेहता, १२. ऋषभदासजी वापना, १३. हंसराज जी कोठारी, १४. बालकिशन जी मेहता, १५. किशन जी कोठारी, १६. श्योदानजी मेहता, १७. श्योबागजी कोठारी, १८. रामचन्द्र जी अग्रवाल, १६. ओनाडजी पिरोहित, २०. लालजी पिरोहित लोढ़ाने का, २१. बालकिशन जी मेहता, २२. औतारजी सोकला, २३. कल्याण सिंह जी कोठारी, २४. जसवन्त सिंह जी कोठारी, २५. किसनाजी, २६. छगन जी कोठारी, २७. कजोड़ी मल्ल जी नार, २८. गोपाल जी धूत।

अन्य महानुभाव—

१. सर्वश्री चम्पापाल जी कायस्थ, २. छुट्टनलाल जी कायस्थ, ३. कल्लूजी चारण, ४. रामदयालजी ब्राह्मण, ५. श्योबख्शजी आदि।

उपसंहार—

इसी प्रकार यहां आनन्द मंगल होते रहे। इसी अवसर में रायपुर के ठाकुर का निमंत्रणपत्र स्वामीजी के पास आया। इस कारण श्रीमद् आर्यकुलभूषण दिग्विजयी श्री स्वामी जी महाराज ने रायपुर जाने का विचार ठाना। तब श्री रावसाहब जी ने श्री स्वामी जी से निवेदन किया कि महाराज ! आपका एक व्याख्यान महलों में हो जाए, तो अति उत्तम है। इस बात को श्री स्वामीजी ने स्वीकार किया और भाद्र बदी ८ को महाराज का व्याख्यान राजनीति विषय पर महलों में हुआ। तहां बड़ा आनन्द रहा। व्याख्यान के पश्चात् श्री रावसाहब ने पाँच सौ रूपये वेद भाष्य की सहायता के निमित्त स्वामी जी की भेंट किये।

"मसूदा, संवत् १६३८ विक्रमी"

हस्ताक्षर—

"पण्डित वृद्धिचन्द श्रीमाली"

एक सौ इकतालीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "उदयपुर" (मेवाड़–राज्य) राजस्थान

दिनांक : ११ सितम्बर सन् १८८२ ई० (दिन–सोमवार)

विषय : १. इलहामी पुस्तक कौन सी है ?

२. संसार के सब मनुष्य एक ही जाति के हैं, वा कई जातियों के ?

३. मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

प्रश्नकर्त्ता के रूप में : श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब, सुपरिटेन्डेन्ट–पुलिस

सहायक : न्यायाधीश, न्यायालय–उदयपुर (मेवाड़ राज्य)

उत्तरदाता के रूप में : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,

लेखक : १. श्री पण्डित ब्रजनाथजी हाकिम्, सायर–मुल्क मेवाड़

२. श्री मिर्जा मोहम्मद खाँ वकील, हाल मेम्बर कौंसिल टोंक (राजस्थान)

३. श्री मुंशी रामनारायणजी सरिश्तेदार–बागे कलां सरकारी,

अनुवादक : श्री पाण्डया मोहनलाल जी,

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

– "**लाजपत राय अग्रवाल**"

शास्त्रार्थ से पहले

– "डा० भवानीलाल भारतीय"

महर्षि के उदयपुर निवास के समय मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस तथा जज अदालत उदयपुर के साथ स्वामीजी का यह शास्त्रार्थ लिखित रूप में हुआ था। शास्त्रार्थ के विषय तथा तिथियां निम्नलिखित थीं–

दिनांक : ११ सितम्बर, सन् १८८२ ई0, दिन सोमवार।

विषय : १.- इलहामी पुस्तक कौन सी है ?

२.- संसार के सब मनुष्य एक ही जाति के हैं वा कई जातियों के ?

३.- मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

दिनांक : १३ सितम्बर, सन् १८८२ ई0, बुधवार।

विषय : १.- वेद किसकी रचना है ? २.- पुराण, मत की पुस्तक हैं या विद्या की ?

दिनांक : १७ सितम्बर, सन् १८८२ ई0, रविवार।

विषय : वेद में अन्य धर्मों की पुस्तकों से क्या विशेषता है ?

उपर्युक्त शास्त्रार्थ का उल्लेख ऋषि के भाद्रपद शुदि (?) सम्वत् १६३६ विक्रमी के पत्र में भी मिलता है। पत्र में लिखा है–"**यहां श्री महाराणा जी प्रतिदिन मिलते हैं और समागम करते हैं। और एक मौलवी से प्रश्नोत्तर प्रतिदिन होते हैं, और वे लिखे भी जाते हैं, सो तुम्हारे पास भेजेंगे**"। यह शास्त्रार्थ पण्डित लेखराम द्वारा संग्रहीत ऋषि के जीवन चरित में अक्षरशः प्रकाशित हुआ है। उसके प्रारम्भ में लेखराम जी ने निम्न टिप्पणी लिखी है :–

"मुबाहिसा स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिन्टेन्डेन्ट व जज अदालत उदयपुर, मुल्क मेवाड़"।

पण्डित ब्रजनाथ जी हाकिम सायर, मुल्क मेवाड़ (जो उस वक्त इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे) ने बयान किया कि मैं उस वक्त स्वामी जी के दरमियान मुतर्जब (अनुवादक) भी था। अरबी के दकीक (क्लिष्ट) अल्फाजों का तर्जुमा स्वामी जी को और संस्कृत के दकीक अल्फाज का तर्जुमा मौलवी जी को बता दिया करता था। यह मुबाहिसा मैंने उस वक्त अपने हाथ से लिखा, जिसकी दो असल कापी मेरे पास पैन्सिल से लिखी हुई अभी तक मौजूद हैं।

तीन आदमी इस मुबाहिसा के लिखने वाले थे। एक पण्डित ब्रजनाथ जी हाकिम सायर, दूसरे मिर्जा मोहम्मद खां वकील, हाल मेम्बर कौंसिल टोंक, तीसरे मुंशी रामनारायण जी सरिश्तेदार बागे कलां सरकारी, जिनमें से पहले और तीसरे साहिबान की असल कापियां हमको मिली हैं, और जिनकी मौलवी साहब ने भी तस्दीक की। मगर उनकी दानाई और ईमानदारी पर अफसोस है।

उस वक्त तो कोई माकूल जवाब न बन आया और न बाजे अजां, दिसम्बर सन् १८८६ ई0 में बेबुनियाद

और झूठे हवाले से कुछ का कुछ असल तहरीर के खिलाफ शाया करके अपनी दीन दारी का शवोफां दिखलाया। इस मुबाहिसा के रोज सामईन हिन्दू मुसलमान खास आम की बहुत कसरत थी। यहां तक कि श्री दरबार वैकुण्ठवासी महाराज सज्जनसिंह जी भी मुबाहिसा समाअत फर्माने को तशरीफ फर्मा हुये थे।

इस टिप्पणी के पश्चात् पण्डित लेखराम द्वारा संग्रहीत जीवन चरित में शास्त्रार्थ का पाठ प्रकाशित हुआ है, और अन्त में एक नोट इस प्रकार पुनः लिखा गया है–

"पाण्ड्या मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के मुबाहिसा के अव्वल रोज तो राणासाहब नहीं आये थे, मगर उन्होंने मुबाहिसा तहरीरी होना मंजूर फरमाया था। आखिरी रोज श्री हजूर तशरीफ लाये थे, और मौलवी साहब की जिद्द देखकर दरबार ने इर्शाद फरमाया कि जो कुछ स्वामीजी ने कहा है वह बेशक ठीक है। फिर मुबाहिसा नहीं हुआ। कविराज श्यामलदास जी ने भी इसकी ताईद की"।

पण्डित लेखराम द्वारा संगृहीत् जीवन चरित में उद्घृत होने के अतिरिक्त यह शास्त्रार्थ अभी तक पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ है। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने स्वसंगृहीत जीवन चरित में इसका संक्षेप में उल्लेख किया है। यहां **"दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह"** (कविराज रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा सम्पादित) से यह **"शास्त्रार्थ उदयपुर"** उद्घृत किया जाता है।

नोट–

यह तीन दिन के शास्त्रार्थ ११, १३ व १७ सितम्बर सन् १८८२ ई0 दिन सोमवार, बुद्धवार, तथा रविवार को समापन हुए, जिनका विवरण उक्त छपी पुस्तक में एक साथ दिया गया है, परन्तु हमने समय व विषय की विभिन्नता को देखते हुए इन शास्त्रार्थों का विवरण अलग–अलग क्रम से दिया है।

निवेदक–

"लाजपत राय अग्रवाल"

———— : 0 : ————

शास्त्रार्थ आरम्भ

स्वामी दयानन्द जी महाराज और मौलवी अब्दुर्रहमान साहब सुपरिन्टेन्डेंट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर, मेवाड़ देश के मध्य में होने वाला शास्त्रार्थ। (११ सितम्बर सन् १८८२ ई०, भादों बदी चौदस, सम्वत् १६३६ विक्रमी, दिन सोमवार)

–प्रथम प्रश्न–

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

ऐसा कौन सा मत है, जिसकी मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो ? जब बड़े–बड़े मतों पर विचार किया जाता है, जैसे भारतीय वेद, पुराण, या चीन वाले चीनी, जापानी, बर्मी बौद्ध वाले, पारसी, जिन्द (अवेस्ता) वाले, यहूदी तौरेत् वाले, नसरानी इन्जील वाले, मौहम्मदी कुरान वाले, तो प्रकट होता है कि उनके धार्मिक नियम और मूल विशेष एक देश में एक भाषा के द्वारा एक प्रकार से ऐसे बनाये गये हैं, जो एक दूसरे से नहीं मिलते। और इन मतों में से प्रत्येक मत के समस्त गुण और विशेष चमत्कार उसी देश तक सीमित हैं, जहां वह बना है। जिनमें से कोई एक लक्षण तथा चिन्ह उसी देश के अतिरिक्त दूसरे देश में नहीं पाया जाता, प्रत्युत दूसरे देश वाले अनभिज्ञता के कारण उसे बुरा जानकर उसके प्रति मानवी व्यवहार तो क्या उसका मुख तक देखना नहीं चाहते। ऐसी दशा में सब मतों में से कौन सा मत सत्य समझना चाहिये ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मतों की पुस्तकों में से विश्वास के योग्य एक भी नहीं, क्योंकि (वे सब) पक्षपात से पूर्ण हैं। जो विद्या की पुस्तक पक्षपात से रहित है, वह मेरे विचार में सत्य हैं। और ऐसी पुस्तक का साधारण प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध न होना भी आवश्यक है। मैंने जो खोज की है, उसके अनुसार वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक ऐसी नहीं है जो विश्वास के योग्य हो। क्योंकि समस्त पुस्तकें किसी न किसी देश विशेष की भाषा में हैं, और वेद की भाषा किसी देश की विशेष भाषा नहीं, केवल विद्या की भाषा है। क्योंकि यह विद्या की पुस्तक है, इसी कारण से किसी मत विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक समस्त देशीय भाषाओं का मूल कारण है,[1] और पूर्ण होने से प्रसिद्ध भलाइयों तथा निषिद्ध बुराइयों की परिचायक है, और समस्त प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

क्या वेद मत की पुस्तक नहीं है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वेद मत की पुस्तक नहीं है, प्रत्युत विद्या की पुस्तक है।

---

१. यही बात "**सत्यार्थप्रकाश**" और "**पूना प्रवचन**" में भी कही है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–
मत का आप क्या अर्थ करते हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
पक्षपात सहित को मत कहते हैं, इसी कारण से मत की पुस्तक सर्वथा मान्य नहीं हो सकती।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–
हमारे पूछने का अभिप्राय यह है कि समस्त मनुष्यों की भाषाओं पर तथा समस्त मनुष्यों के आचार पर, और समस्त प्राकृतिक नियमों पर कौन सी पुस्तक पूर्ण है ? सो आपने वेद निश्चित किया। सो वेद इस योग्य है वा नहीं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
हाँ, है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–
आपने कहा कि वेद किसी देश की भाषा में नहीं। जो किसी देश की भाषा नहीं होती, उसके अन्तर्गत समस्त भाषायें कैसे हो सकती हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
जो किसी देश विशेष की भाषा होती है, वह किसी दूसरी देश भाषा में व्यापक नहीं हो सकती। क्योंकि उसी में बद्ध (सीमित) है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–
जब एक देश की भाषा होने से वह दूसरे देश में नहीं मिलती, तो जब वह किसी देश की है ही नहीं, तो सब में व्यापक कैसे हो सकती है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
जो एक देश की भाषा है, उसका व्यापक कहना सर्वथा विरूद्ध है। और जो किसी देश विशेष की भाषा नहीं वह सब भाषाओं में व्यापक है, जैसे आकाश किसी देश विशेष का नहीं है इसी से सब देशों में व्यापक है। ऐसे ही वेद की भाषा भी किसी देश विशेष से सम्बन्ध न रखने से व्यापक है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–
यह भाषा किसकी है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–
विद्या की।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–
बोलने वाला इनका कौन है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

इसका बोलने वाला सर्वदेशी है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

तो वह कौन है?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वह परब्रह्म है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

यह किसको सम्बोधन की गई है?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

आदि सृष्टि में इसके सुनने वाले चार ऋषि थे, जिनका नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा था। इन चारों ने ईश्वर से शिक्षा प्राप्त करके दूसरों को सुनाया।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इन चारों को ही विशेष रूप से क्यों सुनाया?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वह चार ही सब में पुण्यात्मा और उत्तम थे?

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

क्या इस बोली को वह जानते थे?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

उस जनाने वाले ने उसी समय उनको भाषा भी जना दी थी, अर्थात् उस शिक्षक ने उसी समय उनको भाषा का ज्ञान दे दिया।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इसको आप किन युक्तियों से सिद्ध कर सकते हैं?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

बिना कारण के कार्य कोई नहीं हो सकता।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

बिना कारण के कार्य होता है या नहीं?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

नहीं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इस बात की क्या साक्षी है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

ब्रह्मादिक अनेक ऋषियों की साक्षी है, और उनके ग्रन्थ भी विद्यमान हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

यह साक्षी सन्देहात्मक और बुद्धि विरुद्ध है। कारण कथन कीजिये।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इसी प्रकार सब मतवाले भी अपनी–अपनी पुस्तकों में कहते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

ऐसी बात दूसरे मतवालों की पुस्तकों में नहीं हैं, और न वह सिद्ध कर सकते हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

पुस्तक वाले सभी सिद्ध कर सकते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मैं पहले से कह चुका हूं कि मतवाले ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते, और यदि कर सकते हैं तो बताइये कि मोहम्मद साहब के पास कुरान कैसे पहुंचा ?

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

जैसे चारों ऋषियों के पास वेद आया।

नोट–

खेद है कि मौलवी साहब ने बिना सोचे समझे ऐसा कह दिया। यह किसी प्रकार भी ठीक नहीं। न तो कुरान ही आदि सृष्टि में मोहम्मद साहब की आत्मा में प्रकाशित हुआ और न उसमें वर्णित कहानियां ही ऐसी हैं, जो आदि सृष्टि से सम्बन्धित हों, और न उसकी भाषा ही ऐसी है। मोहम्मद साहब और खुदा के मध्य में तीसरा जिबराइल और असंख्य फरिश्तों की चौकीदारी और पहरा और आकाश से उतरना आदि समस्त बातें ऐसी हैं जिनसे कोई मोहम्मदी भाई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिये कुरान किसी प्रकार भी इस विशेषण का पात्र नहीं हो सकता, और उस्मान और कुरानों के बदलने की कहानी इसके अतिरिक्त है।

"सम्पादक"

–दूसरा प्रश्न–

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

समस्त संसार के मनुष्य एक जाति के हैं, अथवा कई जातियों के ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जुदी–जुदी जातियों के हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

किस युक्ति से ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

सृष्टि के आदि में ईश्वरीय सृष्टि में उतने जीव मनुष्य–शरीर धारण करते हैं कि जितने गर्भ सृष्टि में शरीर धारण करने के योग्य होते हैं और वह जीव असंख्य होने से अनेक हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

अब भी सब ही अनेक मां–बाप के पुत्र हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इसके विश्वसनीय प्रमाण कहिए।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

प्रत्यक्षादि आठों प्रमाण।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

वह कौन से हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इन आठों में से एक–एक का उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए।

नोट–

इस प्रश्न का उत्तर नहीं है कारण अज्ञात है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

यह जो आकार मनुष्यों के हैं, इनके शरीर एक प्रकार के बने अथवा भिन्न–भिन्न प्रकार के बने ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

मुख आदियों में एक से हैं, रंगों में कुछ भेद हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

किस–किस के रंग में क्या–क्या भेद हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

छोटाई–बड़ाई में किंचिन्मात्र अन्तर है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

यह अन्तर एक देश अथवा एक जाति में एक ही प्रकार के हैं, अथवा भिन्न–भिन्न देशों में भिन्न–भिन्न प्रकार के हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

एक एक देश में अनेक हैं, जैसे एक माँ बाप के पुत्रों में भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

हम जब संसार की अवस्था पर दृष्टिपात करते हैं, तो आपके कथनानुसार नहीं पाते। एक ही देश में कई जातियां जैसे हिन्दी, हब्शी, चीनी इत्यादि देखने में पृथक्–पृथक् विदित होती हैं–अर्थात् चीन वाले दाढ़ी नहीं रखते और तिकौने मुंह के होते हैं। हब्शी, मलन्गाई, चीनी, तीनों की आकृतियां परस्पर नहीं मिलती। एक ही देश में यह भेद क्योंकर है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

उनमें भी अन्तर है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

दाढ़ी न निकलने का क्या कारण है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

देश काल और मां बाप आदि के शरीरों में कुछ–कुछ भेद है। समस्त शरीर रज वीर्य्य के अनुसार बनते हैं। वात, पित्त, कफ आदि धातुओं के संयोग वियोग से भी कुछ–कुछ भेद होते हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

हम समस्त संसार में तीन प्रकार के मनुष्य देखते हैं। जिनका विभाजन इस प्रकार है– दाढ़ी वाले, बिना दाढ़ी के, घूंघरू बाल वाले। दाढ़ी वाले भारतीय, फिरंगी, अर्बी, मिश्री आदि। बेदाढ़ी वाले चीनी, जापानी,

कैमिस्टका के। घूंघरू बाल वाले हब्शी। इन तीनों की बनावट और प्रकार में बहुत सा भेद है। एक दूसरे से नहीं मिलता। और यह भेद आपके कथन अनुसार ऊपर वाले कारणों से है। यदि एक देश में रहने वाले यह तीनों प्रकार के मनुष्य दूसरे देश में जाकर रहें तो कभी भेद नहीं होता, जाति समान है। इस अवस्था में संसार के मूलरूप आपके कथनानुसार तीन हुये अधिक नहीं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

भोटियों को किसमें मिलाते हैं। वह किसी से नहीं मिलते। इस प्रकार तीन से अधिक जाति विदित होती हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

जैसा भेद इन तीनों में है वैसा दूसरे में नहीं। तीनों जातियों का परस्पर मिल जाना इस थोड़े भेद का कारण है परन्तु इन तीनों की आकृति एक दूसरे से नहीं मिलती।

–तीसरा प्रश्न–

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

मनुष्य की उत्पत्ति कब से है, और अन्त कब होगा ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

एक अरब छियानवे करोड़ और कितने लाख वर्ष उत्पत्ति को हुये, और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक रहेगी।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इसका क्या कारण और प्रमाण है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

इसका हिसाब विद्या और ज्योतिष शास्त्र से है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

वह हिसाब बतलाइये ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

भूमिका[1] के पहले अंक में लिखा है, और हमारे ज्योतिष शास्त्र से सिद्ध हैं, देख लो।

---

१. अर्थात् "**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**" के अंक में। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण मासिक अंकों के रूप में छपा था।

"सम्पादक"

एक सौ बयालीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "उदयपुर" (मेवाड़–राज्य) राजस्थान

दिनांक : १३ सितम्बर सन् १८८२ ई० (दिन–बुधवार)

विषय : १. वेद किसकी रचना है ?
२. पुराण मत की पुस्तक है, या विद्या की ?

प्रश्नकर्त्ता के रूप में : श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब, सुपरिटेन्डेन्ट–पुलिस

सहायक : न्यायाधीश, न्यायालय–उदयपुर (मेवाड़ राज्य)

उत्तरदाता के रूप में : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,

लेखक : १. श्री पण्डित ब्रजनाथजी हाकिम, सायर–मुल्क मेवाड़
२. श्री मिर्जा मोहम्मद ख़ाँ वकील, हाल मेम्बर कौंसिल टोंक (राजस्थान)
३. श्री मुंशी रामनारायणजी सरिश्तेदार–बागे कलां सरकारी,

अनुवादक : श्री पाण्डया मोहनलाल जी,

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– "**दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह**" नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के "**सम्पादक**" एवं "**प्रकाशक**" दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

– "लाजपत राय अग्रवाल"

–प्रथम प्रश्न–

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

आप धर्म के नेता हैं या विद्या के अर्थात् आप किसी धर्म के मानने वाले हैं, या नहीं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जो धर्म विद्या से सिद्ध होता है, उसको मानते हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

आपने किस प्रकार जाना कि ब्रह्म ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

प्रदान किये गये वेदों के पढ़ने से और विश्वसनीय विद्वानों की साक्षी से।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

यह साक्षी आप तक किस प्रकार पहुंची ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

शब्दानुक्रम से और उनके ग्रन्थों से।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

प्रश्नों से पूर्व परसों यह निश्चित हुआ था कि उत्तर बुद्धि के आधार पर दिए जाऐंगे, पुस्तकों के आधार पर नहीं। अब आप उसके विरूद्ध ग्रन्थों की साक्षी देते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

बुद्धि के अनुकूल वह है जो विद्या से सिद्ध हो, चाहे वह लिखित हो अथवा वाणी द्वारा कहा जावे। समस्त बुद्धिमान् इसको मानते हैं, और आप भी।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इस कथन के अनुसार ब्रह्म का चारों ऋषियों को वेद की शिक्षा देना, विद्या अथवा बुद्धि द्वारा किस प्रकार सिद्ध होता है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता, इसलिये विद्या का भी कोई कारण चाहिये ? और विद्या का कारण वह है कि जो सनातन हो। यह सनातन विद्या परमेश्वर में उसकी कारीगरी को देखने से सिद्ध होती है। जिस प्रकार वह समस्त सृष्टि का निमित्त कारण है, उसी प्रकार उसकी विद्या भी समस्त मनुष्यों की विद्या का कारण है। यदि वह उन ऋषियों को शिक्षा न देता, तो सृष्टि नियम के अनुकूल यह जो विद्या की पुस्तक है, इसका क्रम ही न चलता।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

ब्रह्म ने वेद चारों ऋषियों को पृथक्–पृथक् पढ़ाया अथवा एक साथ क्रमशः शिक्षा दी अथवा एक काल

में पढ़ाया ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

ब्रह्म व्यापक होने के कारण चारों को पृथक्–पृथक् और क्रमशः पढ़ाता गया, क्योंकि वह चारों परिमित बुद्धि वाले होने के कारण एक ही समय में कई विद्याओं को नहीं सीख सकते थे। और प्रत्येक की बुद्धि प्राप्ति की शक्ति भिन्न–भिन्न होने के कारण कभी चारों एक समय में और कभी पृथक्–पृथक् समझ कर एक साथ पढ़ते रहे। जिस प्रकार चारों वेद पृथक्–पृथक् हैं, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को एक–एक वेद पढ़ाया।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

शिक्षा देने में कितना समय लगा ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जितना समय उनकी बुद्धि की दृढ़ता के लिये आवश्यक था[1]।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

पढ़ाना मानसिक प्रेरणा के द्वारा था अथवा शब्द अक्षर आदि के द्वारा, जो वेद में लिखे हुऐ हैं, अर्थात् क्या शब्द अर्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाया ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वही अक्षर जो वेद में लिखे हुए हैं, शब्दार्थ सम्बन्ध सहित पढ़ाए गये।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

शब्द बोलने के लिए मुख, जिह्वादि साधनों की अपेक्षा है। शिक्षा देने वाले में यह साधन हैं या नहीं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

उसमें यह साधन नहीं हैं, क्योंकि वह निराकार है। शिक्षा देने के लिये परमेश्वर अवयवों तथा बोलने के साधनादि से रहित है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

शब्द कैसे बोला गया ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जैसे आत्मा और मन में बोला, सुना और समझा जाता है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

भाषा को जाने बिना शब्द किस प्रकार उनके मन में आये ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

ईश्वर के डालने से, क्योंकि वह सर्वव्यापक है।

---

१. पूना–प्रवचन पृष्ठ ६० में "**पांच वर्ष**" का संकेत है।

"सम्पादक"

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

इस सारे वार्तालाप में दो बातें बुद्धि के विरूद्ध हैं। प्रथम यह कि ब्रह्म ने केवल चार ही मनुष्यों को उस भाषा में वेद की शिक्षा दी, जो किसी देश अथवा जाति की भाषा नहीं। दूसरे यह कि उच्चारित शब्द जो पहले से जाने हुए न थे। दिल में डाले गए और उन्होंने ठीक समझे। यदि यह स्वीकार किया जावे, तो फिर समस्त बुद्धि विरूद्ध बातें जैसे चमत्कार आदि सब मतों के सत्य स्वीकार करने चाहिये।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

यह दोनों बातें बुद्धिविरूद्ध नहीं, क्योंकि यह दोनों ही सच्ची हैं। जो कुछ जिह्वा से अथवा आत्मा से बताया जावे, वह शब्दों के बिना नहीं हो सकता। उसने जब शब्द बतलाये तो उनमें ग्रहण करने की शक्ति थी। उसके द्वारा उन्होंने परमेश्वर के ग्रहण कराने से अपनी योग्यतानुसार ग्रहण किया। और बोलने के साधनों की आवश्यकता बोलने और सुनने वाले के अलग (दूर) होने पर होती है, क्योंकि जो वक्ता मुख से न कहे और श्रोता के कान न हों, तो न कोई शिक्षा कर सकता है और न कोई श्रवण। परमेश्वर चूंकि सर्वव्यापक है, इसलिए उनके आत्मा में भी विद्यमान था, पृथक् न था[1]। परमेश्वर ने अपनी सनातन विद्या के शब्दों को उनके अर्थात् चारों के आत्माओं में प्रकट किया और सिखाया। जैसे किसी अन्य देश की भाषा का ज्ञाता किसी अन्य देश के अनभिज्ञ मनुष्य को जिसने उस भाषा का कोई शब्द नहीं सुना–सिखा देता है, उसी प्रकार परमेश्वर ने जिसकी विद्या व्यापक है, और जो उस विद्या की भाषा को भी जानता था। उनको सिखा दिया। यह बातें बुद्धि विरूद्ध नहीं। जो इनको बुद्धिविरूद्ध करे वह अपने दावे को युक्तियों द्वारा सिद्ध करे। पुराण जो पुरानी पुस्तकें हैं अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं। वह वहीं तक सत्य हैं जहां तक वेद के विरूद्ध न हों। और जो अठारह पुराण नवीन हैं जैसे भागवत, पद्मपुराणादि वह प्राकृतिक नियमों और विद्या के विरूद्ध

टिप्पणी-

१. ईश्वर ने चारों ऋषियों को वेदों का उपदेश कैसे और कितने काल में दिया ? प्रश्नों के जो उत्तर छपे हैं, उनके सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सन् १८७५ ई० के प्रथम संस्करण के पृष्ठ २८३ और पूना के छठे प्रवचन में इस विषय पर प्रकाश डाला है। दोनों स्थानों के शब्दों में तो भेद है परन्तु भाव एक ही है। जो इस प्रकार है–

आदि सृष्टि में मनुष्य युवा उत्पन्न हुए परन्तु उनकी शारीरिक चेष्टाएं बाल्यकाल के समान थीं। वे इन्द्रियों के द्वारा सामान्य रूप से क्रिया करते थे अच्छे बुरे का उन्हें ज्ञान नहीं था। यह अवस्था पांच वर्ष तक चलती रही। फिर परमेश्वर ने मनुष्यों को वेद–ज्ञान दिया।

विशेष–

सत्यार्थप्रकाश, पूना–प्रवचन तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में **"आदि सृष्टि"** शब्द का प्रयोग मिलता है। इन स्थानों में **"आदि सृष्टि"** से तात्पर्य सृष्टि के प्रारम्भ के पांच वर्षों से है। आरम्भ के पांच वर्षों की उक्त संज्ञा ऋषि दयानन्द द्वारा परिभाषित है। वे पूना प्रवचन के छठे प्रवचन में लिखते हैं–

जिस स्थिति में आजकल सृष्टि है, उसी अवस्था में प्रारम्भ में सृष्टि नहीं थी। इसलिये वर्तमान सृष्टि को "उत्तर सृष्टि" ऐसी संज्ञा देता हूँ। और पूर्व सृष्टि को "आदि सृष्टि" ऐसी संज्ञा देता हूँ। जिससे सबकी समझ में आ जाये।

इस स्पष्टीकरण के बिना ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा गया **"आदि सृष्टि"** शब्द समझ में नहीं आता है। **"आदि सृष्टि"** शब्द को सामान्य शब्द मानने पर **"सृष्टेरादिः"** विग्रह करके षष्ठ्यन्त सृष्टि शब्द के परनिपात की कल्पना करनी पड़ेगी। ऋषि दयानन्द की पारिभाषिक **"आदि सृष्टि"** संज्ञा मानने पर **"आदिश्चेयं सृष्टिश्च"** में कर्मधारय समास सरलता से उत्पन्न हो जाता है।

"युधिष्ठिर मिमांसक"

होने से सत्य नहीं, ब्लकि नितान्त झूठे हैं।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

पुराण मत की पुस्तकें हैं या विद्या की ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वह प्राचीन पुस्तकें अर्थात् चारों ब्राह्मण विद्या की और पिछली भागवतादि पुराण मत की पुस्तकें हैं, जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

जब वेद विद्या की पुस्तक है और पुराण मत की पुस्तकें हैं, और आपके कथनानुसार असत्य हैं, तो आर्यो का धर्म क्या है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

धर्म वह है जिसमें निष्पक्षता, न्याय और सत्य का स्वीकार और असत्य का अस्वीकार हो। वेदों में भी उसी का वर्णन हैं, और वही आर्यों का प्राचीन धर्म है। और पुराण केवल पक्षपातपूर्ण सम्प्रदायों अर्थात् शैव, वैष्णवादि से सम्बन्धित हैं, जैसे कि अन्य मत के ग्रन्थ।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

पक्षपात आप किसको कहते हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जो अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, कुसंग से किसी अपने स्वार्थ के लिए न्याय और सत्य को छोड़कर असत्य और अन्याय को धारण करना है वह **"पक्षपात"** कहलाता है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

यदि कोई इन गुणों से रहित हो, आर्य्य न हो, तो आर्य्य लोग उसके साथ भोजन और विवाहादि व्यवहार करेंगे या नहीं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

विद्वान् पुरूष भोजन तथा विवाह को धर्म अथवा धर्म से सम्बन्धित नहीं मानते, प्रत्युत इसका सम्बन्ध विशेष रीतियों, देश तथा समीपस्थ वर्गों से है। इसके ग्रहण अथवा त्याग से धर्म की उन्नति अथवा हानि नहीं होती, परन्तु किसी देश अथवा वर्ग में रहकर किसी अन्य मत वाले के साथ इन दोनों कार्यों में सम्मिलित होना हानिकारक है, इसलिए करना अनुचित है। जो लोग भोजन तथा विवाहादि पर ही धर्म अथवा अधर्म का आधार समझते हैं, उनका सुधार करना विद्वानों को आवश्यक है। और यदि कोई विद्वान् उनसे पृथक् हो जावे, तो वर्ग को उससे घृणा होगी और यह घृणा उसको शिक्षा का लाभ उठाने से वंचित रखेगी। सब विद्याओं का निष्कर्ष यह है कि दूसरों को लाभ पहुंचाना। और दूसरों को हानि पहुंचाना उचित नहीं।

एक सौ तैंतालीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "उदयपुर" (मेवाड़–राज्य) राजस्थान

दिनांक : १७ सितम्बर सन् १८८२ ई० (दिन–रविवार)

विषय : वेद में अन्य धर्मों की पुस्तकों से अलग क्या विशेषता है ?

प्रश्नकर्त्ता के रूप में : श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब, सुपरिटेन्डेन्ट–पुलिस

सहायक : न्यायाधीश, न्यायालय–उदयपुर (मेवाड़ राज्य)

उत्तरदाता के रूप में : श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती,

लेखक : १. श्री पण्डित ब्रजनाथजी हाकिम्, सायर–मुल्क मेवाड़

२. श्री मिर्जा मोहम्मद खाँ वकील, हाल मेम्बर कौंसिल टोंक (राजस्थान)

३. श्री मुंशी रामनारायण जी सरिश्तेदार–बागे कलां सरकारी,

अनुवादक : श्री पाण्डया मोहनलाल जी,

नोट–

यह शास्त्रार्थ सामग्री– **"दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह"** नामक ग्रन्थ से संग्रहीत की गई है। उक्त ग्रन्थ के **"सम्पादक"** एवं **"प्रकाशक"** दोनों का हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इस शास्त्रार्थ श्रृंखला को जीवित रखने का प्रयास किया।

– **"लाजपत राय अग्रवाल"**

–प्रथम प्रश्न–

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

समस्त धर्म वाले अपनी धार्मिक पुस्तकों को सबसे उत्तम और उनकी भाषा को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, और उसको उस कारण का कार्य भी कहते हैं। जिस प्रकार की बौद्धिक युक्तियां वह देते हैं, उसी प्रकार आपने भी वेद के विषय में कहा। कोई प्रमाण प्रकट न किया, फिर वेद में क्या विशेषता है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

पहले भी इसका उत्तर दे दिया गया है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों और प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध विषय जिन पुस्तकों में होंगे, वह सर्वज्ञ की बनाई हुई नहीं हो सकती। और कार्य का होना कारण के बिना असम्भव है। चार मत जो कि समस्त मतों का मूल हैं, अर्थात् पुराणी, जैनी, इंजील व तौरेत वाले किरानी, कुरानी–इनकी पुस्तकें मैंने कुछ देखी हैं और इस समय भी मेरे पास हैं। और मैं इनके बारे में कुछ कह भी सकता हूं, और पुस्तक भी दिखा सकता हूं। उदाहरणार्थः– पुराण वाले एक शरीर से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं, यह अशुद्ध है, क्योंकि शरीर संयोगज है, इसलिए वह कार्य है, उसके लिए कर्ता की अपेक्षा है। जिन्होंने इस कार्य को इस प्रकार सनातन माना है कि कोई इसका रचयिता नहीं, वह भी अशुद्ध है, क्योंकि संयोगज पदार्थ स्वयं नहीं बनता। इंजील और कुरान में अभाव से भाव माना है। यह चारों बातें उदाहरणार्थ विद्या के नियमों के विरूद्ध हैं, इसलिए इनकी वेद से समता नहीं कर सकते। वेदों में कारण से कार्य को माना है, और कारण को अनादि कहा है। कार्य को प्रवाह से अनादि और संयोगज होने के कारण सान्त बताया है। इसको समस्त बुद्धिमान् मानते हैं। मैं सत्य और असत्य वचनों के कारण वेद की सत्यता और मतस्थ पुस्तकों की असत्यता कथन करता हूं। यदि कोई सज्जन इसको प्रकट रूप में देखना चाहें तो, मैं किसी दिन तीन घंटे के भीतर उन मतों की पुस्तकों को प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध सिद्ध करके दिखा सकता हूं। यदि कोई नास्तिक वेद में से प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध कोई बात दिखायेगा, तो उसको विचार करने के पश्चात् केवल अपनी अज्ञानता ही स्वीकार करनी पड़ेगी। इसलिए **"वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं"**, न कि किसी मत विशेष की।

–दूसरा प्रश्न–

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

क्या प्रकृति अनादि है ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

उपादान कारण अनादि है।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

अनादि आप कितने पदार्थों को मानते हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

तीन–परमात्मा, जीव और सृष्टि का कारण यह तीनों स्वभाव से अनादि हैं। इनका संयोग, वियोग, कर्म तथा उनका फल भोग प्रवाह से अनादि है। कारण का उदाहरण:– जैसे घड़ा कार्य, उसका उपादान कारण मिट्टी, बनाने वाला अर्थात् निमित्त कारण कुम्हार, चक्र, दंडादि साधारण कारण, काल तथा आकाश समवाय कारण।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

वह वस्तु जिसको हमारी बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती, हम उसको अनादि क्यों कर मान सकते हैं ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

जो वस्तु नहीं है, वह कभी नहीं हो सकती, और जो है वही होती है। जैसे इस सभा के मनुष्य जो थे तो यहां आये। यहां हैं तो फिर कहीं होंगे। बिना कारण के कार्य का मानना ऐसा है, जैसे वन्ध्या के पुत्र उत्पन्न होने की बात कहना। कार्य वस्तु से चारों कारण, जिनका ऊपर वर्णन किया है, पहले मानने पड़ेंगे। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसके पूर्वकथित चार कारण न हों।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

सम्भव है कि जगत् का कारण, जिसे आप अनादि कहते हैं, कदाचित् वह भी किसी अन्य वस्तु का कार्य हो। जैसे कि बिजली के बनने में कई साधारण वस्तुयें मिलकर ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है जो अत्यन्त महान् है। इस वार्तालाप के परिणाम से प्रकट है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कोई कारण चाहिए। तो कारण के लिए भी कोई कारण अवश्य होगा।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

अनादि कारण उसका नाम है, जो किसी का कार्य न हो। जो किसी का कार्य हो उसको अनादि अथवा सनातन कारण नहीं कह सकते, किन्तु वह परम्परा और पूर्वापर सम्बन्ध से कार्य कारण नाम वाला होता है। यह बात सब विद्वानों को जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते हैं, स्वीकरणीय है। किसी वस्तु को चाहे जहां तक अवस्थान्तर में विभक्त करते चले जावें, चाहे वे सूक्ष्म हों चाहे स्थूल, जो उसकी अन्तिम अवस्था होगी उसको कारण कहते हैं। और यह जो बिजली का दृष्टान्त दिया वह भी निश्चित कारणों से होता है, जो उसके लिए आवश्यक हैं। अन्य कारणों से वह नहीं हो सकती।

–तीसरा प्रश्न–

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

यदि वेद ईश्वर का बनाया होता, तो अन्य प्राकृतिक पदार्थों सूर्य, जल तथा वायु के समान संसार के समस्त साधारण मनुष्यों को उसका लाभ पहुंचना चाहिए था ?

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

सूर्यादि सृष्टि के समान ही वेदों से सबको लाभ पहुंचता है, क्योंकि सब मतों और विद्या की पुस्तकों

का आदिकारण वेद ही हैं। और इन पुस्तकों में विद्या के विरूद्ध जो बातें हैं, वह अविद्या के सम्बन्ध से हैं। क्योंकि यह सब पुस्तकें वेद के पीछे बनी हैं। वेद के अनादि होने का प्रमाण यह है कि अन्य प्रत्येक मत की पुस्तक में वेद की बात गौण अथवा प्रत्यक्ष रूप से पाई जाती है, और वेदों में किसी का खण्डन मण्डन नहीं। जैसे सृष्टिविद्या वाले सूर्यादि से अधिक उपकार लेते हैं, वैसे ही वेद के पढ़ने वाले भी वेद से अधिक उपकार लेते हैं, और नहीं पढ़ने वाले कम।

श्री मौलवी अब्दुर्रहमान साहब–

कोई इस दावे को स्वीकार नहीं करता कि किसी काल में वेद को समस्त मनुष्यों ने माना हो। और न किसी मत की पुस्तक में प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से वेदों का खंडन मंडन पाया जाता है।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती–

वेद का खण्डन मण्डन पुस्तकों में है, जैसे क़ुरान में बेकिताब वाले और एक ऊती ईश्वर के मानने वाले, जैसे बाइबिल में पिता, पुत्र और पवित्रात्मा, होम की भेंट, ईश्वर को प्रिय, याजक, महायाजक, यज्ञ, महायज्ञ आदि शब्द आते हैं। जितने मतों के पुस्तक बने हुए हैं, बीच के काल के हैं। उस समय के इतिहास से सिद्ध है कि मुसलमान, ईसाई आदि जंगली थे, तो जंगलियों को विद्या से क्या काम ? पूर्व के विद्वान् पुरूष वेदों को मानते थे, और वर्तमान समय में शब्द विद्या (फिलालोजी) के परीक्षक मोक्षमूलर आदि विद्वान् भी संस्कृत भाषा तथा ऋग्वेदादि को सब भाषाओं का मूल निश्चित करते हैं[१]। जब बाइबिल, क़ुरान नहीं बने थे, तब वेद के अतिरिक्त दूसरी मानने योग्य पुस्तक कोई भी नहीं थी। मनुष्य की उत्पत्ति का आदि काल ही ऋषियों की वेदप्राप्ति का समय है, जिसको १,९६,०८,५२,९७७ वर्ष हुए। इससे प्राचीन कोई पुस्तक नहीं है।

नोट–

पाण्डे मोहनलाल जी ने कहा कि मौलवी साहब के शास्त्रार्थ के प्रथम दिन तो राणा साहब नहीं आये थे, परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थ लिखित होना स्वीकार किया था। अन्तिम दिन श्री महाराज पधारे और मौलवी साहब की हठ देखकर श्री दरबार साहब ने कहा कि– **"जो कुछ स्वामी जी ने कहा है वह निस्सन्देह ठीक है"**। फिर शास्त्रार्थ नहीं हुआ। कविराज श्यामलदास जी ने भी इसका समर्थन किया।

---

१. योरोप में जब संस्कृत भाषा पहुंची, तब प्रारम्भ में अनेक विद्वानों ने यही मत प्रकट किया, परन्तु कुछ काल पीछे यहूदी ईसाई मत के पक्षपात और राजनीतिक कारणों से योरोपियन भाषा–वैज्ञानिकों ने संस्कृत से पूर्व एक काल्पनिक भाषा की सत्ता स्वीकार करके संस्कृत और लैटिन आदि भाषा को बराबर का दर्जा दे दिया।

"सम्पादक"

एक सौ चवालीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान : "हापुड़" जिला–गाजियाबाद (उत्तर–प्रदेश)

दिनांक : सन् १६६३ ई०

विषय : वैदिक मान्यताओं की सत्यता ?

आर्यसमाज की ओर से उत्तरदाता : प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी श्री अमर स्वामी जी महाराज,

माध्यम : १. श्री डॉ० वीरपाल जी विद्यालंकार

२. श्री ठाकुर विक्रम सिंह जी एम.ए.

सनातनधर्म की ओर से प्रश्नकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

नोट :– यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री पूज्य अमरस्वामी जी महाराज के पुराने हस्तलेखों से प्राप्त हुई।

"लाजपतराय अग्रवाल"

हापुड़ में टकराव

श्री पण्डित माधवाचार्य जी सन् १६६० ई0 में हापुड़ आये, और सनातनधर्म सभा की ओर से उनके कई भाषण हुए। आर्य समाज मन्दिर, हापुड़ में उन दिनों एक आर्योपदेशक विद्यालय था, जिसका संचालन एवं स्थापना श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी आर्य पथिक जो बाद में सन्यासी होने के बाद महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के नाम से विख्यात हुए, के द्वारा हुई थी। पण्डित माधवाचार्य जी ने अपने स्वभावानुसार अपने व्याख्यानों के बीच आर्य समाज पर कीचड़ उछालना आरम्भ कर दिया। तथा उन्होंने कुछ बातें अपने व्याख्यानों के बीच इस प्रकार सभा में कही जो इस प्रकार थी–

(१)– सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि– **सृष्टि के आरम्भ में सब मनुष्य जवान उत्पन्न हुए और आकाश से धड़ाम–धड़ाम जमीन पर गिर पड़े।**

(२)– स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जब गुरूकुल कांगड़ी खोला, तब मैं उनके पास गया, और मैंने कहा कि– स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि– **"गुरूकुल शूद्रों के लिए होता है"**। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कहा कि मैंने तो सत्यार्थ प्रकाश बहुत बार पढ़ा है, परन्तु मैंने तो उसमें कहीं भी ऐसा लिखा हुआ नहीं देखा है। तब मैंने कहा कि आपने एक आंख से पढ़ा है, मैंने दो आखों से पढ़ा है, और मैने सत्यार्थ प्रकाश में से वह स्थल निकाल कर दिखलाया, तो श्रद्धानन्द अवाक् रह गये, उनसे उत्तर नहीं बन सका।

(३)– तीसरी बात यह कही कि– आर्य समाजियों को **"ओ३म्"** लिखना भी नहीं आता है, ये लोग ओ, तीन म् अर्थात् **(ओ३म्)** लिखते हैं।

इस सूचना के मिलते ही श्री ठाकुर अमर सिंह जी ने एक विज्ञापन छपवाया उसमें पुराणों के प्रमाणों से बताया कि– कौन–कौन जवान पैदा हुए, कौन–कौन दाढ़ी मूछों वाले उत्पन्न हुए तथा कौन–कौन पैदा होते ही युद्ध करने लग गये और कौन–कौन उत्पन्न होते ही माता के पास से चले गये, आदि–आदि।।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी आर्य पथिक जी ने अपने प्रिय शिष्य वीर पाल जी और विक्रम सिंह जी को पण्डित माधवाचार्य जी के पास भेजा कि– तुम पण्डित माधवाचार्य जी के भाषण के बाद बड़ी सभ्यता और शिष्टाचार के साथ कहना कि–

(१)– गुरूकुल काँगड़ी श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने नहीं ब्लकि श्री लाला मुन्शी राम जी ने खोला फिर आप स्वामी श्रद्धानन्द जी के पास कहां से चले गये ? तथा लाला मुन्शी राम जी ने गुरूकुल काँगड़ी को सन् १६०२ ई0 में खोला था, उस समय आपकी आयु क्या थी ? आपकी आयु तो इतनी है नहीं जो उस समय आप ऐसे प्रश्नोत्तर करने के योग्य हों। या आप जवान उत्पन्न हुए थे ? जो जन्म लेते ही सत्यार्थ प्रकाश पढ़ कर सीधे उनके पास पहुंचे गये।

(२)– आपने यह कहा कि– स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश एक आंख से पढ़ा था, विक्रम सिंह जी व वीर पाल जी को श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का चित्र भी दिया था कि– यह चित्र पण्डित माधवाचार्य जी को दिखलाना कि– श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के दोनों आंखे थी, तब उन्होंने एक आंख से क्यों पढ़ा होगा ? स्पष्ट है कि आपके द्वारा कही गई यह सारी कहानी झूठी है।

(३)– सत्यार्थ प्रकाश उनके सामने रखकर उनसे कहना कि इसमें से वह स्थल दिखलाइये जहाँ यह

लिखा हुआ है कि— सृष्टि के आरम्भ में जवान मनुष्य धड़ाम—धड़ाम भूमि पर गिरे।

(४)— यजुर्वेद महिधर और उव्वट के भाष्यों सहित उन अपने दोनों शिष्यों को देकर उनसे यह कहा कि तुम लोग भरी सभा में इनको पण्डित माधवाचार्य जी को दिखलाना, कि इसके मूल में भी तथा दोनों भाष्यों में भी ओम् (ओ३म्) ऐसा ही छपा हुआ है, कहो आपके इन आचार्यों को ओम् लिखना नहीं आता था, यह मानो।

(५)— वह छपा हुआ विज्ञापन भी उनको देने के लिए अपने दोनों शिष्यों को दिया, जिसमें जवान उत्पन्न हुए लोगों के नाम पुराणों के सहित छपाये गये थे।

(६)— एक विज्ञापन यह भी था कि— कल रात्री को आर्य समाज हापुड़ के विशाल प्राँगण में ८ से ११ बजे तक पण्डित माधवाचार्य जी के साथ शास्त्रार्थ होगा, आप लोग ध्यान रक्खें, कहीं पण्डित जी भाग न जायें।

वहां सभा में जाकर पण्डित माधवाचार्यजी के भाषण के उपरान्त उन दोनों शिष्यों ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, पण्डित माधवाचार्य उनके एक प्रश्न का भी उत्तर न दे सके। सारी सभा यह देखकर अवाक् रह गयी, और बुरी तरह से पण्डित जी की गत बनी तथा उनको वहां बैठना दूभर हो गया। अन्ततः सारी सभा भंग हो गयी।

नोट—

दूसरे दिन शास्त्रार्थ के चेलेन्ज के समय से बारह घण्टे पहिले ही पण्डित माधवाचार्य जी हापुड़ से भाग खड़े हुए, और आर्य समाज मन्दिर के प्राँगण में बड़ी भारी भीड़ जमा हो गयी, तब सबने पण्डित जी की असलियत को पहचाना, तथा वहां पर श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी आर्य पथिक जी का जोरदार लैकचर हुआ, जिसे सुनकर उपस्थित जनता पर आर्य समाज का बेहद असर पड़ा।

(इसके लेखक के स्थान पर **"लाला जीवन राम"** जी हापुड़ निवासी का नाम अंकित था)

प्रस्तुतकर्त्ता—

"लाजपत राय अग्रवाल"

"हापुड़" में ही एक और टकराव

एक स्वामी अद्वैतानन्द नामी हापुड़ में आये, उनके अद्वैतवाद पर तीन भाषण हुए, तीसरे व्याख्यान में श्री लाला अमोलक राम जी प्रधान—आर्य समाज हापुड़, श्रोता बनकर गये। स्वामी जी के व्याख्यान के पीछे बड़ी सभ्यता और शिष्टाचार के साथ हाथ जोड़ कर श्री लाला अमोलक राम जी ने अद्वैतवाद पर कुछ प्रश्न किये, उन प्रश्नों पर स्वामी जी बहुत बिगड़े और उन्होंने कहा कि— आर्य समाजी अज्ञानी, और नास्तिक होते हैं, हम उनके साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। हम त्रैतवाद मानने वाले आर्य समाजियों की पोल खोलकर रख देंगे।

श्री लाला अमोलक राम जी ने आर्य समाज मन्दिर हापुड़ में आकर श्री पण्डित अमर सिह जी आर्य पथिक, शास्त्रार्थ केशरी जी को सारा वृतान्त सुनाया। इस पर रात्रि में ही शास्त्रार्थ की घोषणा का पत्रक लिखा गया, प्रातःकाल उसको छपवाकर सारे कस्बे में बटवा दिया गया। उसमें लिखा था कि—

"आर्य समाज हापुड़ के प्राँगण में अद्वैतवाद पर श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी के साथ श्री पण्डित अमर सिंह जी आर्य पथिक, शास्त्रार्थ केसरी जी का शास्त्रार्थ होगा"।

हापुड़ के सनातनधर्मियों ने उस विज्ञापन को पढ़ते ही स्वामी अद्वैतानन्द जी को भगा दिया। आर्य समाज के विशाल प्रांगण में श्रौताओं की भारी भीड़ जमा हो गयी, तब उस भीड़ के सम्मुख शास्त्रार्थ केशरी श्री पण्डित अमर सिंह जी का अद्वैतवाद के विरूद्ध महान पाण्डित्यपूर्ण भाषण हुआ, जिसके कुछ अंश देखिये–

प्रश्न– परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इससे भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा, जीव वैसा ही करेगा, इससे जीव स्वतन्त्र नहीं, और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता, क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित्त किया है वैसा ही जीव करता है।

उत्तर– ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है। क्योंकि जो होकर न रहे वह "**भूत काल**" और न हो के होवे वह "**भविष्यत काल**" कहलाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान हो के नहीं रहता ? तथा न हो के होता है। इसलिए परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् ये सब जीवों के लिए हैं। "**हाँ ! जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है, वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है। और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है,**" अर्थात् भूत भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किंचित वर्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है, वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं, क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है ? इसलिए "**इसमें कोई भी दोष नहीं आता**"। देखिये– "**सत्यार्थ प्रकाश सप्तम् समुल्लास पृष्ठ–१८१**" पर। अब आगे अष्ठम् समुल्लास में देखिये–

प्रश्न– प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे ?

उत्तर– इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था, और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे, क्योंकि आर्य लोग सृष्टि के आदि में, कुछ काल के पश्चात्त, तिब्बत से सीधे इसी देश में आकर बस गये थे।

इस व्याख्यान का इतना भारी प्रभाव हुआ कि सनातनधर्मियों ने फिर भूलकर भी किसी अद्वैतवादी को बुलाने का नाम तक नहीं लिया।

निवेदक–
"अमोलक राम"
प्रधान–आर्यसमाज, "**हापुड़**"
जिला–गाजियाबाद (उ0प्र0)

एक सौ पैंतालीसवाँ शास्त्रार्थ–

स्थान	:	"टपरी" जिला–सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)
दिनांक	:	२५ तथा २६ जून से ४ जौलाई सन् १६०६ ई०
इस्लाम की ओर से आर्यसमाज पर	:	१. जीव और प्रकृति का अनादित्व
एतराज सम्बन्धी "विषय"	:	२. क्या कानूने कुदरत के खिलाफ़ खुदा अमल नहीं करा सकता ?
	:	३. क्या बिना कारण के कार्य का इज़हार नहीं हो सकता ?
	:	४. खुदा को त्रिकालदर्शी कहना ज़हालत है।
आर्यसमाज की ओर से इस्लाम पर	:	१. अल्लाह साकार है या निराकार ?
एतराज सम्बन्धी "विषय"	:	२. कुरान शरीफ में वर्णित चमत्कार–कानूने कुदरत व फ़ितरत के खिलाफ़ है या मुवाफ़िक ?
	:	३. प्रकृति और जीव के नई पैदा होने वाली वस्तु का सबूत कुरान शरीफ से साबित करना।
	:	४. क्या कुरान शरीफ़ इलहामी किताब है ?
आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	रईसुल मनाज़िरीन् श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर, (संचालक– मुसाफ़िर विद्यालय आगरा)
आर्य समाज की ओर से सेक्रेटरी	:	श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा, (संचालक–संस्कृत गुरुकुल महाविद्यालय सिकन्द्राबाद, उ0प्र0)
आर्य समाज की ओर से प्रधान	:	श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर
आर्य समाज की ओर से उपप्रधान	:	श्री मुन्शी दुर्गा प्रसाद जी (जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा, सहारनपुर)
शास्त्रार्थ के अध्यक्ष	:	१. श्री चौधरी नेअमत सिंह जी (प्रधान–ग्राम, टपरी)
		२. श्री जमना प्रसाद जी, सहारनपुर
आर्य समाज की ओर से अन्य उपस्थित	:	श्री लाला उग्रसैन जी, खलफुर्रशीद
अधिकारी साहेबान	:	श्री ठाकुर उत्तम सिंह जी पठान, ईरान निवासी (विद्यार्थी–मुसाफिर विद्यालय, आगरा)
	:	श्री मास्टर गंगा प्रसाद जी
	:	श्री बाबु हरकिशन लाल साहब वकील
	:	श्री मास्टर लक्षमणदास जी रामनगरी
	:	श्री मुन्शी कूड़ा मल्ल साहब
इस्लाम की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता	:	१. मशहूर मनाज़िर श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब (सैक्रेटरी–अंजुमन हिमायते इस्लामी, देहली)
	:	२. श्री मौलवी अब्दुल समद साहब

: ३. श्री मुन्शी अब्दुल अज़ीज उर्फ़ जगदम्बा प्रसाद

: ४. श्री शेख अब्दुल अजीज साहब

: ५. श्री मौलवी अहमद अली साहब, मेरठी (मन्तिकदान–मदरसये मेरठ)

: ६. श्री मौलवी अहमद हसन साहब

: ७. श्री मौलवी अब्दुल हक़ साहब, देहलवी (कुरान के भाष्यकार)

: ८. श्री मौलाना अबु मौहम्मद साहब–इमाम सहारनपुर

: ९. श्री मौलवी महमूद हसन साहब (संचालक–अरबी मदरसा, देवबन्द)

: १०. श्री मौलाना अब्दुल मौहम्मद हसन साहब, अरबी फ़ाज़िल

: ११. श्री हकीम इरतज़ा अली साहब, मशहूर मनाजरकर्त्ता

इस्लाम की ओर से प्रेजीडेन्ट : श्री मुन्शी अजीजबेग साहब

इस्लाम की ओर से सैक्रेटरी : १. श्री मौलवी अब्दुल हादी साहब

: २. श्री मिर्जा अज़ीज बेग साहब (मेम्बर–अन्जुमन–हिमायते इस्लामी देहली)

आम हाज़रीन की संख्या : लगभग पन्द्रह हजार

नोट : यह शास्त्रार्थ उर्दू में छपा हुआ था, इसको निम्न
विद्वानों ने उर्दू से अनेकों लुग़त (कोश) की मदद से हिन्दी
भाषा में रूपान्तर किया, क्योंकि इसमें अरबी व फ़ारसी के
शब्दों को अधिक प्रयोग किया गया था।

उर्दू से हिन्दी रूपान्तरकर्त्ता विद्वान : १. श्री मौलाना पण्डित शिवराज सिंह शास्त्री अरबी फ़ाजिल, बम्बई

: २. श्री मौलाना, प्रोफेसर अब्दुल कादरी साहब–बनारस

: ३. श्री ज़नाब जाफ़र अली विद्यार्थी–बिजनौर

: ४. श्री दुर्गा प्रसाद जी "**प्रशान्त**" (पूर्व सहायक शिक्षा अधिकारी–केन्द्रिय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली)

नोट–

यह शास्त्रार्थ मुसाफिर प्रैस–आगरा द्वारा उर्दू में सन् १९०६ ई० का छपा हुआ हमें "**श्री राजाराम जी जिज्ञासु**" स्वाध्याय संस्थान, बदायूँ द्वारा प्राप्त हुआ, जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस अमूल्य अति प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री को हमें भेज कर अपूर्व सहयोग का परिचय दिया।

विदुषामनुचरः–

"लाजपत राय अग्रवाल"

सम्पादकीय

यह अदभुत ऐतिहासिक शास्त्रार्थ उर्दू में सन् १६०६ ई० का छपा हुआ प्राप्त हुआ था, जिसको मैंने यथा समय ही उर्दू के जानने वाले आर्य औलूमाये (विद्वानों) के पास भिजवा दिया था, ताकि वे इसका हिन्दी रूपान्तर कर प्रकाशनार्थ मेरे पास भिजवा दें, परन्तु मुझे खेद है कि काफी समय बर्बाद करने पर भी उन्होंने इसका अनुवाद करने में असमर्थता ज़ाहिर की। तथा साथ ही अनेकों प्रकार की व्यक्तिगत मजबूरियां दर्शाकर अपना पल्ला झाड़ लिया, ब्लकि कई जगहों से तो फोटो काफी रूप में भेजी गई असल कापी भी मुझे वापिस प्राप्त नहीं हुई। मुझे बड़ी ही खिन्नता व निराशा का आभास हुआ, मेरे सारे प्रयत्न विफल हो गये, तब मैंने अन्त में व्यापारिक तरीके से ही इसका अनुवाद कराना उपयुक्त समझा, जबकि ऐसा नहीं है कि मैं अपने विद्वानों से यह कार्य मुफ्त में कराता जो भी उनका आदेश होता, उसका अवश्य पालन करता, परन्तु न जाने क्यों यह बेल मढ़े न चढ़ी–

मरीजे जुर्रत पर, लानत खुदा की।
मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की।।

मैं इस विषय में ज्यादा नहीं कहना चाहता, मुझे किसी राजनीति में नहीं पड़ना है, मुझे तो यह समाज का कार्य अपना समझ कर पूर्ण करना है, अतः मेरा अन्तिम तरीका ही आखिर कारगर सिद्ध हुआ। मैंने उन विद्वानों को अनेकों उर्दू व अरबी तथा फारसी के लुगत उपलब्ध कराये जिससे कि भाष्य अच्छे से अच्छा तैयार हो सके; और उन विद्वानों ने इसमें अपने अदभुत पाण्डित्य का परिचय दिया। वैसे तो वे सभी विद्वान प्रशंसा के पात्र है परन्तु विशेषकर में **"श्री दुर्गाप्रसाद जी प्रशान्त"** तथा **"जनाब जाफ़रअली विद्यार्थी"** का आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इस कार्य को व्यापारिक न समझ कर जनहित का कार्य समझा, और अपना अमूल्य समय इस पुनीत कार्य में लगाया।

आर्य विद्वानों ने आश्वासन तो बहुत दिये परन्तु वह मात्र आश्वासन ही बनकर रह गये। यह समाज की अमूल्य निधि हैं, ऐसा मान कर मैंने इसमें अपना समय व धन आदि लगाकर इस कार्य को पूर्ण कर अपना संकल्प पूर्ण करने की ओर कदम बढ़ाया है। शेष शास्त्रार्थों के अनुवाद का कार्य भी चल रहा हैं, जो शीघ्र ही पूर्ण कर लिया जायेगा।

अन्त में मैं उन सभी महानुभाव का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस शास्त्रार्थ को पूर्ण कराने में मेरा सहयोग दिया, भले ही चाहे वह आश्वासन ही क्यों न रहे हों ! क्योंकि आश्वासन भी तो किसी कार्य के करने का एक सहारा होता है। पुनः सभी का धन्यवाद !!

विदुषामनुचरः–

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य वीरों ! हमारे कुछ मुस्लिम भाई काफी अरसे से परन्तु सदाकत (सच्चाई) से बहुत दूर यह सोचकर कि हम सब कुछ जानते हैं, तथा हम जो कुछ भी जानते व मानते हैं वही शहन्शाहे सदाकत है इसी गफलत में बैठे निडर व लापरवाह हालत में जहालतभरी गहरी नींद की गोद में निश्चेष्ट पड़े थे, तथा वह अपनी इस जहालत की कमजोरी के कारण यह समझे बैठे थे कि इस अकबरी मजबूत किले में जहां हमारे पास सभी साधन मौजूद हैं अब धर्मचर्चा के लिए हमें कौन ललकार सकता है ? क्योंकि उनको यह भ्रम हो चला था कि अब तो हमने शाहे सदाकत से पूर्ण स्वतन्त्रता हासिल कर ली है। परन्तु अचानक बादशाहे सदाकत के अनुयायियों (आर्य समाजियों) ने उनके निकट स्थान "टपरी"[१] जिला सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) ने मौका तलाशकर अपना डेरा आ जमाया तथा इसी डेरे पर श्री चौधरी नेअमत सिंह जी की कमान के नीचे आर्य समाज का भगवा ओ३म् वाला झन्डा बादशाहे सदाकत के हक़ में लहराने लगा। तथा उस झन्डे के नीचे प्रत्येक आर्य वीर अपना–अपना फ़न (करतब) दिखलाने लगा। बस ! फिर क्या था ? चारों ओर सदाकत अर्थात् सत्यता की गूँज गूंजने लगी। परन्तु इसी बीच एक सदाकत का दुश्मन, पथ भृष्ट, विद्रोही अपनी उस गफलत की नींद से जाग कर उस अकबरी किले के बाहर आ निकला, तथा अपने साथ मौलाना हादी एवं अन्य बहुत से मौलवियों को अगुवा करके वहां आ धमका, और उन छुपे हुए जिहादियों[२] ने सामने आकर बारी–बारी से अपनी तेज धार वाली तलवार से जौहर दिखलाने शुरू कर दिये। तमाम इलाके में इस ज़िहाद (धार्मिक लड़ाई) की खबर आग की तरह फैल गयी, बस ! फिर क्या था ? चारों ओर से हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बड़े–बड़े जमींदार, व उनके कारिन्दे, तथा बड़े–बड़े ओहदों पर आसीन अफसरान तथा कुछ अंग्रेज अफसर, पुलिस, व तमाम इलाके भर के धनाड्य एवं व्यापारी वर्ग हजारों की संख्या में उस ज़िहादी मैदान (धार्मिक स्थल) पर ज़मा होने लगे।

वादी और प्रतिवादी दोनों अपने–अपने अचूक निशानों का वार एक दूसरे पर कर रहे थे, पर कोई नतीजा निकलता दिखलाई नहीं दे रहा था, अन्त में श्री चौधरी नेअमत सिंह जी प्रधान, ग्राम टपरी की अध्यक्षता में एक जबर्दस्त मिटिंग हुई, जिसमें सर्वसम्मति से निम्न शर्तों के अनुसार दोनों पक्षों के महान दिग्गज़ कहलाने वाले शास्त्रार्थ महारथियों को खोज–खोज कर शहनशाहे सदाकत के लिए इस मैदान में लाना स्वीकार किया गया, जिसके लिए तारीख २५ जून सन् १६०६ ई0 का दिन प्रतिद्वन्दता अर्थात् शास्त्रार्थ के लिए मुकर्रर किया गया। शास्त्रार्थ के लिए जो नियम व शर्तें तय की गई वह इस प्रकार थीं–

---

१. "टपरी" यह स्थान सहारनपुर–दिल्ली के मुख्य रेलमार्ग पर सहारनपुर से मात्र सात किलोमीटर की दूरी पर अगला स्टेशन है। यह बड़ा रेलवे स्टेशन न होने के कारण यहां पर केवल सवारी गाड़ियां ही रूकती हैं।

२. "ज़िहादियों" अपने दीन (धर्म) के लिए काफ़िरों अर्थात् गैर मुस्लिमों से लड़ना "ज़िहाद" कहलाता है, तथा जो–जो व्यक्ति इस धर्मयुद्ध में शामिल रहते हैं वह ज़िहादी कहलाते हैं। वह लड़ाई जो ज़िहाद के लिए की जाती है उसे अल्ला मियाँ ने प्रत्येक मुसलमान के लिए फ़र्ज करार दिया है। इलहामी किताब अर्थात् कुरान शरीफ़ में अल्ला मियां फरमाते हैं कि– इसमें (जिहाद में) धन–जन की हानी होने से भले ही यह बुरा लगता हो लेकिन वह मुसलमानों के हक़ में हैं, तुम्हारे लिए क्या बुरा है तथा क्या भला है ? यह सिर्फ अल्लाह ही जानता है।

"लाजपत राय अग्रवाल"

(१)– यदि प्रमाण की आवश्यकता होगी तो वह प्रमाणित ग्रन्थों से ही लिए जायेंगे, तथा प्रमाण तर्क से पहले ही पेश करने होंगे।

(२)– "वादी" इस्लाम धर्म की ओर से होगा।

(३)– एक वक्ता के बोलते समय बीच में ही दूसरे वक्ता को बोलने का अधिकार नहीं होगा।

(४)– शास्त्रार्थ पूर्ण व्यवस्था के साथ निर्धारित सिद्धान्तों व नियमों के अन्तर्गत ही होगा।

(५)– निश्चित किये गये नियमों के विरूद्ध तथा विषयों के खिलाफ बोलने की सख़्त मनाही होगी।

(६)– शास्त्रार्थ मौखिक रूप से किया जावेगा, यदि उसे लिखने की जरूरत महसूस होगी तो उसे सभी महानुभावों की उपस्थिति में ही लिखवाया जायेगा।

(७)– शास्त्रार्थकर्त्ताओं के नाम शास्त्रार्थ आरम्भ करने से पूर्व ही नोट करा दिये जावेंगे कि किस पक्ष की ओर से कौन–कौन शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में शास्त्रार्थ करेंगे ?

(८)– इस्लाम पक्ष की ओर से प्रबन्धक के रूप में श्री मौलवी हादी साहब, वादी की ओर से निश्चित रहेंगे।

(९)– आर्य समाज के पक्ष की ओर से प्रबन्धकर्त्ता के रूप में श्री चौधरी नेअमत सिंह जी प्रतिवादी की ओर से कार्यभार संभालेंगे।

(१०)– शास्त्र चर्चा अर्थात् शास्त्रार्थ तारीख २५ जून सन् १९०६ ई0 से आरम्भ होगा।

(११)– जिस पक्ष के शास्त्रार्थ का आयोजन कराने वाले महानुभाव नियत की गई तारीख पर शास्त्रार्थ करने हेतु उपस्थित नहीं होंगे, तथा जिस पक्ष की ओर से पूर्व किये गये निर्धारित नियमों व शर्तों का पालन नियमों के अन्तर्गत नहीं किया जावेगा उस पक्ष को हारा हुआ माना जावेगा।

अलअब्द (बन्दा)....................दस्तख़्त– अलअब्द (बन्दा)....................दस्तख़्त–

"चौधरी नेअमत सिंह" **"मौहम्मद हादी"**

(तारीख– १६ जून सन् १९०६ ई0) (स्वयं लिखित)

इस प्रकार घमण्डी दृष्टि वाले चौधरी नेअमत सिंह साहब, जिन्होंने मुंशी दुर्गा प्रसाद जी, जो सहारनपुर आर्यसभा के उपप्रधान थे, उनके माध्यम से श्री पण्डित धर्मवीर आर्यमुसाफिर (श्री धर्मवीर पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर) जी को मुसाफिर उपदेशक विद्यालय–आगरा (उत्तर प्रदेश) को सहायता व शास्त्रार्थ के लिए तार भेजकर इस धार्मिक युद्ध स्थल में आमन्त्रित किया। श्री मुसाफिर जी, जो पहले से ही इस मौके की इन्तजार में थे, यह खबर मिलते ही आनन–फानन में तैयार होकर तुरन्त इस युद्ध के मैदान में आ धमके। और जब मुसाफिर जी ने आते ही शहन्शाहे सदाकत के दुश्मनों को युद्ध के लिए ललकारा तो कुछ टाल–मटोल के बाद दबे पाँव वह सामने आ ही गये, और सबसे पहले देहली का एक टेढ़ा, तेज तर्रार जाँबाज मौलाना, श्री मुसाफिर जी के सामने बहस के लिए खड़ा किया गया, जिसका नाम **"श्री मौलवी अब्दुल मजीद"** था। जिसकी असली तस्वीर आगे शास्त्रार्थ में देखने को मिलेगी, वह चारों हथियारों से लैस पाया गया, अन्ततः वह देहली का मौलवी बांका ही साबित हुआ जो एक रोज में ही चारों खाने चित्त आ पड़ा और मुसाफिर जी के एक हथियार की चोट भी न झेल पाया, आखिर चुप होकर बैठ गया, और अगले हथियार

के वार से पहले ही भागकर अपने सुदृढ़ किले अर्थात् महफूज जगह अपने मदरसे सहारनपुर में ही आकर दम लिया, मुसाफिर जी को इसकी भनक लगते ही वह भी उसका पीछा करते–करते सहारनपुर आकर उस किले का घिराव कर दिया, और एक बड़े मैदान में नगर के बाहर अपना डेरा आ ज़माया, इसकी ख़बर मिलते ही विधर्मियों के प्राण पखेरु उड़ने लगें और दो रात प्राण बचाने के विचार से ही व्यतीत कर दी कि मुसाफिर खुद ही इन्तजार करके चला जायेगा, परन्तु मुसाफिर कहां जाने वाला था ? अन्ततः तीसरे दिन विधर्मियों को तंगहाल प्रतिद्वन्दता के लिए मुसाफिर के सामने आना ही पड़ा, और अपने पुराने हथियारों से ही पुनः काम लेना आरम्भ कर दिया। परन्तु जिस समय शेरे सदाकत ललकार कर सामने आया तो पूरे मौहम्मदी दुर्ग में बाबेला मच गया। और न्याय व शान्ति की गुहार होने लगी, चारों तरफ किले में हाहाकार मच गया, तब सभी मौलवी एक साथ मिलकर जिनमें **"श्री मौलवी अब्दुल हक़ साहब"** जो कुरान के भाष्यकार व **"श्री मौलवी अहमद अली साहब"** हैड मास्टर फलसफ़ा व मन्तिकदान, मदरसये–मेरठ तथा **"मौलवी महमूद हसन साहब"** हैड्मास्टर अरबी विद्यालय–देवबन्द व **"मौलवी मौहम्मद हसन साहब"** सक्रेटरी अरबी मदरसा–देवबन्द, व **"मौलवी अब्दुल समद साहब"** व **"मौलवी अब्दुल रहमत साहब"**– मेरठी तथा धर्मोपदेशक **"अब्दुल हक़"** व हकीम **"इरतजा अली साहब"** आदि–आदि, खास–खास मौहम्मदी जनरैल अपनी–अपनी सुलेमानी तलवार उठाकर इस जंगी मैदान में अपने–अपने जौहर दिखलाने के लिए आ खड़े हुए। चारों ओर का समां (वातावरण) देखने लायक था, हर कोई यही सोच रहा था कि– खुदा ही खैर करे देखो अब क्या गुल खिलने वाला है ? त्वारिख अर्थात् इतिहास बतलाता है कि आज तक इतना बड़ा जमघट इस तरह का माहौल न कहीं देखने तथा न ही कहीं सुनने को मिला।

मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) शुरू हुआ और प्रत्येक मौहम्मदी जनरैल ने सामने आ–आकर अपने–अपने जौहर दिखलाये, परन्तु सिपाहे सदाकत से अकेले ही धर्मवीर–मुसाफिर अपनी वीरता व अद्‌भुत योग्यता का लोहा इन सभी मौलवियों से मनवाते रहे। वैदिक वीरता के वो कमाल के हाथ दिखलाये जैसे महाभारत युद्ध में अर्जुन ने कौरव दल को दिखलाये थे, जिसे देखकर प्रत्येक मौहम्मदी जनरैल अपनी बड़ी ही विचित्र व दुर्बल दशा महसूस कर रहा था। वहां पर उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति उस वीर बहादुर–मुसाफिर के मुह की ओर तकता था। और तहे दिल से उसकी योग्यता की दाद दे रहा था। अन्ततः सात दिन तक यह युद्ध का मैदान इस कदर गरम रहा कि देखने व सुनने वाला हर इन्सान हैरान था, आप यकीन मानिये कि उस समय इन अरबी लोगों के लिए आबे ज़मज़म भी जहर बन कर रह गया था। ऐसा माहोल देखकर कुछ ईर्ष्या और द्वेष रखने वाले लोगों का दिल उस अग्नि में जलकर कवाब हो गया, पत्थर जैसे दिल वाले ज़िहादियों का हिन्दुओं की तेज तलवार के सामने हृदय कोमल हो गया। इस शर्म और ज़िल्लत की हालत में उन लज्जित ज़िहादियों में परस्पर शास्त्रार्थ करने की दृढ़ भावना जाग्रत हुई और मियाँ **"अब्दुल मज़ीद"** जनरल मौहम्मदी किसी तरह पुनः हिम्मत करके अपनी सुलेमानी तलवार उठाने को राजी हुए, परन्तु इस दुर्बलता और छिछोरेपन पर जो मौहम्मदियों की हँसी उड़ी और मिट्टी ख़्वार हुई वह उनके लिए मौत का ज़हर बन गई। और अन्त में उन्होंने ताउम्र (जीवन भर) मुसाफिर के सामने न आँने की कसमें खाई, और वे सभी ज़िहादी जिसका जिधर मन हुआ चुपचाप मुह छुपा कर चला गया, आखिरकार विधर्मियों की फौज मैदान छोड़ कर भाग खड़ी हुई, और मौहम्मदी दुर्ग पर वैदिक धर्म का ओ३म् वाला झन्डा लहलहाने लगा। घर–घर में खुशियां मनाई जाने लगी। बाजे बजवाये गये, पूरे नगर में विजय का ढ़ोल बजवाया गया, तथा एक सोलह साल का भृमित हिन्दू युवक अरब वालों के कारावास से छुड़ाया गया, हरेक सच्चाई का दुश्मन जिसे नगीने के बनावटी युद्ध

पर घमण्ड था इस खुली हुई पराजय से हैरान रह गया। हिन्दुओं का एक छोटा सा बच्चा भी अरब के इन नादानों की हँसी उड़ा रहा था।

बस ! वे मौहम्मदी जिन्होंने इस बनावटी युद्ध को नगीने में एक शोरो फसाद के रूप में मचा रक्खा था तथा नफ़रत की आंधी से एक दुनियाँ को सर पर उठाया हुआ था, आज वही मौहम्मदी नगीना निवासी अपनी क़ोम की कायरता व दुर्बलता के कारण मारे लाज के हुजरये तारीक अर्थात् अन्धेरे घरों में रूपोश अर्थात् छुपे हुए खर्राटें ले रहे हैं। तथा खुद शान्त होकर मुसाफिर की वीरता की दाद दे रहे हैं, और कह रहे है कि– हक़ पसन्द, न्याय प्रिय, आस्तिक उस मुसाफिर की वीरता व श्रेष्ठता और सज्जनता पर दिल कुर्बान ! ऐसा आलिम, खुदा का नूर तो कहीं लाखों में एक ही नज़र आता है। ये फ़िजूल की बातें करने वाले मौलवी तो बस खाली दिखावे के व बनावटी रोब झाड़ने के लिए ही हैं। इनमें से किसी की क्या मज़ाल की मुसाफिर का मुकाबला कर सकें। हाँ ! मौलाना सनाउल्ला साहब अमृतसरी की बात कुछ ओर है। अमां मियाँ वह अगर होते तो बात ही कुछ और होती, तब कुछ मुसाफिर के साथ मुबाहिसा में मज़ा आता, उन्होंने तो नगीने[१] में अभी दो साल पहले ही आर्यों के छक्के छुड़ा दिये थे। मजमून भी कमाल का था कि–**"वेद इलहामी हैं या कुरान ?"** सारे इलाके भर में इतनी शोहरत हो गयी थी कि आज भी उस नज़ारे को लोग याद करते हैं।

परन्तु कुछ कमीने, कायर, व ईर्ष्यालू, दुर्बल, निराशावादी, दुखी, और डरपोक जैसे मूर्दों के ढेर में दबे पड़े हों इस तरह के ज़ाहिल तबियत वाले मौहम्मदी उस बेचारे धर्मवीर–मुसाफिर को तरह–तरह की गालियां निकाल रहे हैं। उन्हें खुदा कभी मुआफ नहीं करेगा। वह उस धर्मवीर को कायरों की भांति, खून–खराबे की धमकियां दे देकर मिथ्या और झूठ की लाठी के सहारे खड़ा होना चाहते हैं। जैसे शर्म और हया के मारे पड़े–पड़े बुखार में अपने सिर पर धूल उड़ा रहे हों। अन्धों की तरह कोई कहता है कि अगर तुम्हारे मुसाफिर हाथ आ जायें तो खुदा कसम–बन्दा उसे कच्चा ही चबा जाये, कोई–कोई तो माँ–बहन में भेद न करता हुआ बेहयाई से.........बकता फिर रहा है। कोई पड़ा–पड़ा एक दूसरे का मुंह ताक रहा है, फलस्वरूप चार दिनों तक चारों ओर सुनसान और जबर्दस्त सन्नाटा छाया रहा, कहीं कोई भी मौहम्मदी अपने दुर्ग से बाहर निकल कर चूँ तक नहीं कर पाया, जैसे सभी ज़िहादी लोग कबर में दफन हो गये हों, चारों ओर शान्ति का आलम था, परन्तु हरेक ज़िहादी के मन में यह बात जरूर उठ रही थी कि अब क्या होगा ? कैसे इज्जत बचेगी ? यही हर मौहम्मदी सोच रहा था, क्योंकि शाहे सदाकत के कैम्प में न कोई किसी पर निर्भर होगा और न ही

---

१. **"नगीना"** जो जिला बिजनौर (उत्तर प्रदेश) में हरिद्वार–लखनऊ मुख्य रेल मार्ग पर स्थित है, काफी मशहूर जगह है, जहां पर मुस्लिम सम्प्रदाय का ही बाहुल्य है। वहां पर सन् १६०४ ई० में एक महत्वपूर्ण एतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ था, जो आर्य समाज के प्रकाण्ड पण्डित **"श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी"** तथा मुसलमानों की ओर से प्रसिद्ध मुनाज़िर **"श्री मौलाना सनाउल्ला साहब" के दरम्यान हुआ था, जिसका विषय– "वेद इलहामी है या कुरान ?"** था, यह शास्त्रार्थ सात दिनों तक लगातार हुआ था, जो ५ जून से शुरू होकर ११ जून को समाप्त हुआ था, इस शास्त्रार्थ ने वहां इलाके भर में ही नहीं ब्लकि सारे देश में एक तहलका मचा दिया था। हमने उसं शास्त्रार्थ का पूर्ण विवरण शास्त्रार्थ की इस श्रृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित **"निर्णय के तट पर (भाग–३)"** में (चौवनवें शास्त्रार्थ के रूप में) प्रकाशित किया है। जिज्ञासु सज्जन इस भाग को मंगा कर विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

किमधिकम् लेखेन् !!

विदुषामनुचरः–

"लाजपत राय अग्रवाल"

कोई किसी की मदद ही ले सकेगा, यही सब मसले सोच–सोच कर मिटिंग पर मिटिंग की जा रही थी।

परन्तु आर्यों की ओर से यही दुआ की जा रही थी कि परमेश्वर अपनी दयालुता और कृपा से शहनशाहे अफ़जल बरतानियां के आस्तिकों को सदैव ख़ुश रक्खे, और तमाम दुनियां–ज़हान के तख़्त से अपनी ईर्ष्या व द्वेष और बुराई को सदा–सदा के लिए उठा ले अर्थात् बुराई का खात्मा कर दे। पाठकों ! इस न्यूनतम सारांश के बाद मनोरंजक दिलचस्पी के लिए युद्ध की शक्ल में स्थान "**टोपरी**" जिला सहारनपुर (उ0प्र0) के शास्त्रार्थ का पूर्ण विवरण निम्न प्रकार है जिसके लेखक–"**डॉ0 लक्ष्मी दत्त शर्मा**" थे। मुबाहिसे के लिए पहले से ही मुकर्रर तारीखे–२५ जून सन् १६०६ ई0 सभी की सम्मति से तय की गई थी, अतः एक दिन पहले से अर्थात् २४ जून को ही आर्य समाज के मनाज़िर (शास्त्रार्थकर्त्ता) विद्वान अपने–अपने तीरों को तरकश में जमाये हुए निर्दिष्ट स्थान पर ज़मा हो गये जिनमें से मुख्यतः निम्न प्रकार थे–

१. श्रीमान पण्डित भोजदत्त जी आर्यमुसाफिर (संचालक–मुसाफिर उपदेशक विद्यालय, आगरा, उ.प्र.)

२. श्री पण्डित मुरारीलाल जी शर्मा (संचालक–संस्कृत गुरूकुल महाविद्यालय–"**दनकौर**", जिला बुलन्दशहर (उ0प्र0)

३. श्री मास्टर लक्ष्मणदास जी,

४. श्री मुन्शी दुर्गाप्रसाद जी, (उपप्रधान, आर्य सभा, सहारनपुर (उ0प्र0)

५. श्री मास्टर गंगाप्रसाद जी,

६. श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर

७. श्री ठाकुर उत्तमसिंह जी पठान,[1] ईरान निवासी (विद्यार्थी– मुसाफिर विद्यालय, आगरा)

८. श्री चौधरी नेअमतसिंह जी प्रधान, "**टपरी**" जिला सहारनपुर (उ0प्र0)।

---

१. यह एक ईरानी खानदान में से थे, जो ईरान से आकर "**बीकानेर**" (राजस्थान) में आकर बस गये थे, इनका जन्म का नाम "**मियाँ अकबर अली**" था। बीकानेर में पुलिस सबइन्सपैक्टर के पद पर नियुक्त हो गये थे; इन्होंने महर्षि दयानन्द जी महाराज कृत "**सत्यार्थ प्रकाश का चौदहवाँ सम्मुल्लास**" पढ़कर शुद्ध होने के लिए "**श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर**" के पास आगरा आये।

श्री पण्डित जी ने उनका बृहद् डील डौल तथा सुन्दर शरीर व बहादुराना चेहरा देखकर इनका नाम "**ठाकुर उत्तम सिंह**" रख दिया। पीला यज्ञोपवीत पहन कर जब वह वापिस बीकानेर गया तो उसकी माता केवल फ़ारसी बोलना जानती थी, और कोई भाषा उसे नहीं आती थी। उत्तम सिंह ने अपनी माता के पाँव दोनों हाथों से छुए, और कहा– "**वालदा नमस्ते**"। माता ने ये नया ढंग (पांव छूना) देखकर कहा–"**अकबर तो काफ़िर गश्ती**" अर्थात् अकबर ! तू काफ़िर हो गया ? तो जवाब में उत्तम सिंह जी ने कहा– "**वाल्दा काफ़िर न गश्तुम बल्कि अज़कुफ़्र बराम्दम्**" अर्थात् माता मैं काफ़िर नहीं हुआ ब्लकि कुफ़्र से बाहर निकल आया हूँ। तब माता ने कहा–"**जुन्नार मीदारी काफ़िर गश्ती**" तू जनेऊ रखता है, काफ़िर हो गया है। अन्त में उत्तम सिंह जी ने माता को समझाया, तथा कुछ रूपये देकर आगरा को वापिस आ गये। थानेदारी को इस्तीफा दे दिया। श्री पण्डित भोजदत्तजी ने उनको "**आर्य मुसाफिर**" अखबार का मैनेजर नियुक्त कर दिया। मैं भी तब वहीं उसी विद्यालय में पढ़ता था। इस विषय में अगर विशेष जानकारी चाहिये तो आप लोग "**निर्णय के तट पर (प्रथम भाग)**" के अन्त में मेरा अपना मेरे द्वारा स्वलिखित तथा स्वकथित जीवन परिचय पढ़ें। आपको पुराने समय के अनेकों अद्भुत हालातों की विशेष जानकारी प्राप्त हो जावेगी।

वैदिक धर्म का.........

"**अमर स्वामी सरस्वती**"

ये सभी विद्वान तारीख २५ को सुबह से ही विपक्षियों के आने की प्रतिक्षा करने लगे, तथा प्रतिक्षा करते–करते बारह बज गये, उसके बाद समय बीतता गया, तो अचानक ठीक दो बजे इस्लाम की ओर से निम्नलिखित साहेबान शास्त्रार्थ करने के लिए पधारे जिनके नाम निम्नाकिंत हैं–

१. श्री मौलवी अब्दुलसमद साहब,

२. श्री मौलवी अब्दुलमजीद साहब, (सेक्रेटरी–अन्जुमन हिमायते इस्लामी देहली)

३. श्री मौलाना अब्दुलहादी साहब,

४. श्री मुन्शी अब्दुलअजीज साहब उर्फ श्री जगदम्बा प्रसाद जी,

५. श्री मुन्शी अजीजबेग साहब, आदि–आदि।

श्री चौधरी नेअमत सिंह जी प्रधान–"**टोपरी**" जिला सहारनपुर की चौपाल (शास्त्रार्थ स्थल) पर पधारे। तभी तुरन्त शास्त्रार्थ की तैयारी की गई। सभी वक्ताओं ने पूर्व निर्धारित किये गये अपने–अपने स्थान ग्रहण किये, तथा विपक्षियों के लिए सामने ही लगभग दो सौ गज की दूरी पर दूसरा मंच तैयार कराया गया था, उस पर शास्त्रार्थ कर्त्ता (वादी) के रूप में "**श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब**" दो अन्य मौलवियों की मदद के साथ मंचासीन हुए।

इसी प्रकार बनाये गये दूसरे मन्च पर आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में "**श्रीमान पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर**" तथा अन्य सभी विद्वान साहेबान मंच पर आसीन हुए तथा प्रति पक्ष के लिए पन्द्रह–पन्द्रह मिनट बोलने के लिए जो पूर्व से ही तय किया गया था, सभाध्यक्ष द्वारा आदेश दिया गया, यह शास्त्रार्थ दिन के तीन बजे शुरू होकर सायं पांच बजे समाप्त किया गया।

शास्त्रार्थ की अध्यक्षता के लिए "**श्री चौधरी नेअमत सिंह जी प्रधान**" तथा सैक्रेटरी पद के रूप में "**श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा**" आर्य समाज की ओर से नियुक्त किये गये। अतः शास्त्रार्थ का पूर्ण विवरण आगे विस्तार पूर्वक बयान किया जा रहा है। जिसे हजारों की संख्या में दूर–दराज़ से आये हुए नर–नारियों ने बड़े ही ध्यान पूर्वक और शान्तचित्त से सुना और लाभ उठाया तथा शहन्शाहे सदाकत की जानकारी हासिल की। इस शास्त्रार्थ का असर बहुत ही अच्छा रहा, जो लोग आर्य लोगों के खिलाफ़ नावाक्फियत अर्थात् अज्ञान के कारण, उनकी मुखालफत करते थे वह भी आर्य समाज की प्रशंसा करने लग गये तथा अनेकों हिन्दुओं ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों को अपनाया।

निवेदक–

"डॉक्टर लक्षमीदत्त आर्य मुसाफिर"

(आगरा)

शास्त्रार्थ आरम्भ

(पहला दिन, २५ जून सन् १९०६ ई0)

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

खुदा का शुक्र है कि दूरदराज़ से पधारे, साहेबान! आप लोग यहां सच्चाई जानने की गर्ज से इकट्ठे हुए हो, जो एक अच्छी बात है, पर मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि हम और आर्य लोगों द्वारा जो यह मज़लिस अर्थात् सभा का आयोजन किया गया है वह इस गर्ज़ से नहीं किया गया कि मुसलमान आर्य को और आर्य लोग मुसलमानों को कोई शिकस्त (हार) देने आये हैं, बल्कि दोनों का मकसद अर्थात् उद्देश्य एक ही है कि हम दोनों इस मामले में यह छानबीन करें कि आखिर हमारे और आपके बीच में झगड़ा क्या है ?

जैसे आप आर्य लोग कहते हैं कि हमारे मुसलमानों के अन्दर ये दोष हैं और हमारे मुसलमान भाई कहते हैं कि आर्यों के अन्दर ये दोष हैं। आखिर ये मसला क्या है ? अगर आज यह मसला तय हो गया तो समझो इसका नतीजा हम सभी के लिए बहुत ही मुफ़ीद अर्थात् लाभदायक सिद्ध होगा। हमारा और आपका झगड़ा ऐसा नहीं है जैसा कि आप लोगों का सनातनधर्म के साथ है। मेरा यह दावा है कि न केवल बुद्धि से बल्कि वेद से भी, आर्य समाज में प्रचलित बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनसे खुदा की ज़ात में नुक्स दिखलाई पड़ता है, अर्थात् परमेश्वर के अस्तित्व में दोष प्रतीत होता है। आर्य समाज का दावा है कि– रूह, खुदा और माद्दा अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों अनादिकाल से सम्बन्धित हैं, ये तीनों खुदा की तरह अनादि काल से हैं, मेरा कहना ये है कि खुदा को छोड़कर बाकी दोनों में ईश्वर के गुणों की बराबरी करते हुए उन्हें अनादि पदार्थ सिद्ध करें जबकि ऐसा सिद्ध नहीं होता देखिये–**"सत्यार्थ प्रकाश उर्दू पृष्ठ २३३"** और जो परस्पर आच्छादित है, अतः प्रकृति का सम्बन्ध ईश्वर के साथ पारस्परिक सम्बन्ध का है, इसी प्रकार आत्मा का। तो इस प्रकार ईश्वर तो जन्म नहीं देता है, परन्तु उसके गुण भी ईश्वर के साथ हैं, जीव से ईश्वर और ईश्वर से जीव तीनों अनादिकाल से सम्बन्धित हैं, हमारे आर्य समाजी शास्त्रार्थकर्त्ता भाई इस बात पर विश्वास करते हैं कि– अग्नि, जल, मिट्टी, आदि सभी बुद्धिमान नहीं हैं, जल का स्वाभाविक गुण है–**"ठण्ड"**। अग्नि का स्वाभाविक गुण है **"गर्मी"**। इनके स्वाभाविक गुण को परमेश्वर भी चाहे तो वह भी नहीं बदल सकता ऐसा वेदों से प्रमाणित है या नहीं ? देखिये– **"दूसरी बार का छपा हुआ–सत्यार्थ प्रकाश उर्दू पृष्ठ २४३"** यदि ईश्वर चाहे तो किसी को भी जल में न डूबने दे, जबकि पानी का स्वाभाविक गुण डुबोने का है। क्योंकि आपका ये दावा है कि परमेश्वर इन स्वाभाविक गुणों को नहीं बदल सकता, मेरे विचार से यह बात ईश्वर की श्रेष्ठता में सन्देह पैदा करती है। **"सत्यार्थ प्रकाश उर्दू पृष्ठ–४४४, पंक्ति–४, प्रश्न–१७"** किसी भी कारण के सिवाय ईश्वर को कार्य के साथ नहीं बताया जा सकता है, जैसे कुम्हार बिना मिट्टी के घड़ा नहीं बना सकता, तथा जिस प्रकार सुनार बिना सोने के आभूषण नहीं बना सकता, इसी प्रकार सिद्ध हुआ कि– जो **"नहीं"** है उसका **"है"** होना असम्भव है। और जो **"है"** उसका **"नहीं"** होना भी असम्भव है। **"सत्यार्थ प्रकाश उर्दू पृष्ठ २१८ की लाईन १२ सम्मुल्लास–७ प्रश्न २५०"** ईश्वर तीनों भाषाओं का ज्ञान रखता है, ऐसा कहना अज्ञानता का द्योतक है, क्योंकि परमेश्वर अन्तर्यामी है। इससे यह बात पैदा होती है कि स्वामी (दयानन्द) जी ऐसे शख़्स न थे कि उनकी हर एक बात को मान लिया जाये या हमें सामने बैठे पण्डित

साहेबान जी इस बात की पुष्टी में ऐसे कुछ मन्त्र वेदों में से निकाल कर दिखला दें तो बस ! फैंसला हुआ मानो................चारों तरफ मुसलमानों में...........आमीन.........आमीन.........वल्लाह !............क्या गज़ब का फलसफा है ? ....स्वर गुँजायमान होने लगे। ....तभी मौलवी साहब ने पहले से कहीं अधिक ऊँची आवाज में गर्जना के साथ कहा– यदि वास्तव में वेद के अन्दर ऐसा कोई ज्ञान है कि– **"प्रकृति के गुणों को परमेश्वर नहीं बदल सकता"** तो वह वेद की किताब इलहामी (परमेश्वरीय वाणी) हो ही नहीं सकती। और यदि नहीं है तो वेद इलहामी नहीं है ये नहीं हो सकता देखिये............सूरये आयत बकर कुरआन शरीफ....... **"मा उनज़िला मिन् कबलिका......"** (पढ़कर) ....श्रौताओं में से आवाजें आई.......बहुत खूब ! बहुत खूब !! मेरे मेहरबान दोस्तों इस आयत के कारण हमें वेद भी ईश्वर की ओर से आई हुई किताब मान लेना चाहिये। इस प्रकार जो **"नहीं"** है उसे **"है"** नहीं कर सकता। इस आशय का मन्त्र वेद से दिखलाना होगा खाली अकली दलील देने से काम नहीं चलेगा, वेद का उदाहरण देना ही पड़ेगा, इन बीस हजार मन्त्रों में से निकाल कर दिखलाया जावे कि जो आर्य समाज ईश्वर के अस्तित्व और गुणों को समझते हैं, जबकि ऐसा वेदों के अनुसार नहीं है, इस पर अनेकों दलीले व सत्यार्थ प्रकाश से उदाहरण हमने पेश किये, इसलिए वेद का प्रमाण या उदाहरण पण्डित जी को देना चाहिये, तभी कहीं जाकर पीछा छूटेगा, अन्यथा नहीं यह बात.......... ।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

............सर्वप्रथम वेद मन्त्र से प्रार्थना करने के बाद ....उपस्थित मेरे मुवज्जिज भाईयों ! शास्त्रार्थ में हमारे पूर्व निर्धारित नियमों एवं शर्तों के द्वारा यह स्वीकार किये गये नियमों में सुना होगा कि इस्लाम मुद्दई (वादी) है। और आज हमारे मौहम्मदी भाई भी वादी बन कर ही यहां उपस्थित हुए हैं, आर्य समाज इससे पूर्व के आपकी आलोचना का उत्तर दे, बल्कि उससे पहले ये भी कोई कारण न होगा कि मौलवी साहब **"वादी"** और आलोचक अर्थात् आपत्तिकर्ता में अन्तर नहीं कर सके। आप वादी हैं, परन्तु आपने कहा है कि मैं प्रश्नकर्ता हूँ जबकि दावा तो ये भी है कि– कुरआन शरीफ में आयत मौजूद है कि–**"ज़माने के अधिकार में ईश्वर है"** और इसकी पुष्टी में वहां उदाहरण भी देते हैं, परन्तु दावे से पूर्व हमारे हमपर आलोचना करने वाले हैं, इस समय आपका दावा है कि **"प्रकृति के गुण ईश्वर बदल देते हैं"** आप इसके लिए कुरआन शरीफ से उदाहरण दिखलाते और आयत पेश करते, सिवाय इसके कि आप दावे का प्रमाण प्रस्तुत करते बल्कि उलटा आपने हमारे बाद से पहले ही हम पर ऐतराज ठोक दिये........चारों तरफ हँसी का वातावरण. ....उपस्थित भाईयों में समझता हूँ कि आप लोगों के इस हजारों की भीड़ में कुछेक वकील व कानून के जानकार भी बैठे होंगे, वह अच्छी तरह समझ रहे होंगे कि मेरे खिलाफ़ खड़े हुए मेरे मेहरबान दोस्त श्री मौलाना साहब ने अपना पार्ट कितनी बखूबी से पेश किया है ?

भाइयों ! अब आप समझिये कि हम यदि पहले यह दावा करते कि– **"वेदों में ऐसा लिखा है"** तब उस पर मेरे मेहरबान दोस्त श्री मौलाना अब्दुल मजीद साहब जी की आलोचना ठीक होती। अतः बराये मेहरबानी मेरी मौलाना साहब से गुजारिश है कि आप **"वादी"** हैं आपकी ओर से दावा किया जाना है इसलिए आप अपने दावे का उदाहरण कुरआन शरीफ से पेश करते हुए पेश करें जिसके कि आप दावेदार हैं। कुछ खास जानना हो तो अपने मददगारों (सहायकों) से सलाह–मशवरा कर लीजिये आपको तो अनेकों आलिमों का सहयोग प्राप्त है.......जनता में चारों ओर हँसी का वातावरण............. मैं अपनी पारी का बाकी का समय भी श्री मौलाना साहब को इसलिए देता हूँ कि वह अपना दावा ठीक तरीके से पेश कर सकें, ...एक

बात मैं अपने मौलाना दोस्त को और बतलाये देता हूँ कि अगर दावा ठीक से पेश नहीं किया गया तो मुकदमें की जड़ें कमजोर साबित हो सकती हैं, कृपया इस बात का ख्याल अवश्य रखियेगा......श्रौताओं में हंसी के साथ तालियों की गड़गड़ाहट ऽ ऽ ऽ.................. ।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

भाइयों ! पण्डित जी उलझाना चाहते हैं, आप इनके ज़ाल में न फंसिये, मैने जो पूछा था उसका उत्तर तो इनसे बना नहीं, और उलटा न जाने क्या कह रहे हैं ? जबकि वादी प्रश्न करने वाले और आलोचक में अन्तर नहीं रखते। मैं इसका उत्तर नहीं दूंगा, दावा मेरा ये है कि– **"आर्य समाज ईश्वर के अस्तित्व और गुणों को मानते हैं जो वेदों के अनुसार नहीं है"** यदि है तो जो कुछ मैने इस सम्बन्ध में तर्क दिये हैं तो *उनका जवाब देते हुए बतलाएँ कि यह वेदों की कौन–कौन सी इबारत में मौजूद हैं ? अतः दावा ये है कि–* अगर मुसलमान कुरआन के अनुकूल नहीं हैं तो सर्वप्रथम मैं ये जवाब दूंगा कि मैं कुरआन के पक्ष में नहीं हूँ, इसी प्रकार मेरे काबिल दोस्त पण्डित जी को ये कहना चाहिये था कि– यह बात वेदों में मौजूद है इसलिए आपके द्वारा किया गया दावा झूठा है, बेकार है, बेबुनियाद है। परन्तु आप ऐसा नहीं कर सके, और भाइयों ! मेरा दावा है कि पण्डित जी ताकयामत भी वेदों में से ऐसी इबारत नहीं दिखला सकते जिससे हमारे द्वारा पेश किया गया दावा झूठा साबित हो सके।

आपने ये कह दिया कि कुरआन में ऐसा लिखा है कि–**"अल्ला मियाँ ज़माने के अधिकार में हैं"** मुझे इसके लिए प्रमाण चाहिये, बिना सुबूत के आप कुछ भी कहते रहें ? उसकी हमारे ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं है। अगर कुछ दम है तो इस कहे गये वाक्य की पुष्टि में कोई कुरान की आयत या सफ़ा नं. बताइये अगर *वह आयत जिसमें ऐसा लिखा होगा जैसा कि पण्डित जी ने फ़रमाया है तो बस ! फैंसला हो गया। बराय* मेहरबानी सफा नं. व आयत का पता दीजिये, खाली जुबानी जमा–खर्च से कुछ नहीं होगा। और ये भी सुनिये कि– खुदा आब अर्थात् पानी के गुण को बदल सकता है। हमारा आपका यही तो झगड़ा है कि आप वेदों को सबूत में मानते हुए भी उनके खिलाफ़ चलते हैं, मैं इस बात का पक्का गवाह हूँ कि– **"आर्यसमाज ईश्वर के अस्तित्व और गुणों के समझने में वेद के खिलाफ़ है"** यदि नहीं है तो जो ऐतराजात मैने किये हैं उनका जवाब वेदों के मन्त्रों के हवाले से देवें। मेरा मकसद किसी हार या जीत से नहीं है, मैं खुदा की इबादत में आयत पेश कर रहा हूँ देखिये– **"बिस्मिल्लाहहिर्रहिमानिरहीम....."** देखिये कुरान में सिर्फ एक अल्लाह के सिवाय और किसी की इबादत न करो, कितना स्पष्ट आदेश है ? यह आप वेद के मन्त्रों से साबित कीजिये तभी मैं मानूंगा, ...चारों और सन्नाटा........ ।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

उपस्थित साहेबान और मेरे सम्मुख खड़े प्रतिद्वन्दी के रूप में श्री मौलाना साहब ! सज्जनों, मेरे मेहरबान दोस्त ने केवल समय ही व्यतीत किया, आपके इस फ़न की मुझे दाद देनी चाहिये, जिस विचित्र पैंतरे से आप मेरे असली सवाल को टाल गये, आपको तमीज का अर्थ इस वाक्य में करना था वह तो रहा दरकिनार और उलटा कहने लगे कि मुझे क्यों असभ्यता का आरोप लगाया ? पर मैं अपने दोस्त को बतला *देना चाहता हूँ कि मेरा इस प्रकार का कोई आशय बिल्कुल भी नहीं था,* और न है, आप वादी हैं इसलिए एतराज करने का अधिकार नहीं रखते उस समय तक जब तक कि आप दावा पेश न करें।

मैं एक–एक बात प्रमाण दे देकर वेदों में से दिखलाऊंगा आप इसमें किसी भी तरह का सन्देह मन में न रक्खें। अगर आप दावा पेश नहीं करते तो स्पष्ट शब्दों में कहिये कि मैं एतराज करने वाला हूँ, तब मैं आपके एतराजों का जवाब दूंगा, आपको मालूम होना चाहिये कि वेदों का गवाह मैं हूँ न कि आप ! आप तो केवल कुरान की ओर से दावा प्रस्तुत करने वाले हैं। आपने कहा कि आर्य लोग वेदों के अनुकूल नहीं हैं, यदि ये कहा जाये कि– ये घड़ी झूठी है तो साफ ज़ाहिर है कि इस झूठी घड़ी के सामने रक्खी दूसरी घड़ी सच्ची है। बस ! आप अपने वाद की सच्चाई कुरान से साबित कीजिये, आपके बयान करने की भाषा से साफ़ जाहिर है कि आप वेद मन्त्र तो क्या उन पर किया गया सरल मामूली भाष्य भी नहीं जानते। जबकि आपको वेद मन्त्रों की भाषा का जरा भी ज्ञान नहीं है तो आप किस बूते पर कह सकते हैं कि हम आर्य लोग वेद के अनुसार नहीं है ? भाइयों ! मौलवी साहब आरोप लगाते हैं कि आलोचक को रहने दीजिये, ऐसा क्यों ? जबकि शास्त्रार्थ की शर्तों में यह मौजूद है कि मुद्दई अर्थात् इस्लाम वादी है। इस प्रकार पहले आप वादी की परिभाषा कीजिये तब मैं आपके द्वारा किये गये तमाम एतराजों का जवाब दूंगा। प्रकृति की तीनों दशायें बताई जायेंगी, तथा आपके तमाम सवाल हल किये जायेंगे। मैं बड़ी विनम्रता और सम्मान के साथ पूछना चाहूंगा कि आप ऐतराज करने वाले हैं या प्रश्न पूछने वाले हैं या वादी हैं ? और साथ ही साथ ये भी जवाब दीजिये कि आप अपने घर के वादी हैं या दूसरों के घर के भी हैं।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

मैं ज़नाब पण्डित साहब का तहे दिल से शुक्रिया अदा फरमाते हुए कहना चाहता हूँ कि पण्डित जी ने एतराज का जवाब टाल दिया, भाइयों मैं मुद्दई अर्थात् वादी हूँ इस बात का कि– **"आर्य समाज जिस तरह ईश्वर के अस्तित्व और गुणों को समझते हैं वह वेदों के अनुसार नहीं है"**। देखिये– **"सत्यार्थ प्रकाश उर्दू पृष्ठ २३७"** रूह और माद्दा अर्थात जीवात्मा और प्रकृति अनादि हैं अर्थात् कदीम हैं, आत्मा परवरिश वगैरा करती है जो ईश्वर के अनुसार है। परन्तु जो प्रकृति है उसके स्वाभाविक गुण को परमात्मा नहीं बदल सकता, ईश्वर अन्तर्यामी है इसके लिए वेद मन्त्र दिखलाये जायें, मेरा ये दावा है जिसे मैं बार–बार बयान कर रहा हूँ कि– **"आर्य समाज ईश्वर के अस्तित्व और गुणों के समझने में वेदों के अनुकूल नहीं है,"** मैं कुरान शरीफ की आयतों से साबित कर दूंगा कि– **"यदि खुदा न चाहे तो आग जल नहीं सकती"**।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

भाईयों ! मौलवी साहब ने जो कुछ भी फ़रमाया है अर्थात् बयान किया है उस सम्बन्ध में इतना ही कह देना काफी होगा कि–

तकब्बुरे अज़ाज़ील, शख़्वार न कर्द।
बजिन्दाने लानते, गिरफ्तार कर्द।।

आप कहते हैं कि मैने माफ़ किया, परन्तु तौबा के मसले में, मैं माफी का बड़ा भारी दुश्मन हूँ, मेरे कहने का अर्थ ये है कि आप साईल अर्थात् प्रश्न करने वाले हैं या एतराज करने वाले मुद्दई अर्थात् वादी हैं ? आपने वादी का अर्थ नहीं बतलाया, वादी का अर्थ है कि यदि कोई किसी को हस्तान्तरित न किये गये माल पर अवैधानिक अधिकार कर लेवे तो वास्तविक स्वामी **"वादी"** कहलाता है। परन्तु सबूत देने की जिम्मेवारी वास्तविक स्वामी की न होकर वादी की ही होती है। मैं यहां बैठी हुई तमाम जनता को यह बतला देना चाहता

हूँ कि जो शास्त्रार्थकर्त्ता, शास्त्रार्थ में निर्धारित की गई शर्तों व उसके नियम के विरूद्ध चलता है वो पराजित अर्थात् शास्त्रार्थ में हारा हुआ समझा जाता है। परन्तु मौलवी साहेबान फ़रमाते हैं कि मैं उनके एतराज से भागा हूँ, जबकि ऐसा नहीं हैं, मौलवी साहब बिल्कुल निश्चिन्त रहें, मैं उनके तमाम एतराजों का माकूल जवाब दूंगा, लेकिन मैं आपको पहले ये बतलाना चाहता हूँ कि मौलवी साहब वादी का अर्थ नहीं बतला सके, और न शास्त्रार्थ में तय किये गये नियम पर ही टिक सके, बार–बार पूछने पर बस ! तोते की तरह एक ही रट लगाये हुए हैं जिसे इन्होंने अपनी सुलेमानी तलवार समझ लिया है, तथा उसका उत्तर न मिलने पर ये उसे मेरी कमजोरी महसूस कर रहे हैं, जबकि मैं जानबूझ कर उसका उत्तर नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि अभी इस हालत में मेरे लिए उसका उत्तर देना वाज़िब ही नहीं बनता ! जब वाजिब बनेगा और मैं उत्तर दूंगा तो अर्जुन के गाण्डीव की भांति वार करने पर इनकी यह सुलेमानी तलवार धरी की धरी रह जायेगी।

बस ! यह तय हो गया कि मौलाना साहब तय किये गये नियमों पर नहीं चल रहे हैं, जिससे इनकी इस शास्त्रार्थ में पहली हार समझनी चाहिये।

भाइयों ! मौलवी साहब की उपेक्षा से यह स्पष्ट हो गया कि आपने वेदों पर एतराज किये हैं, इसलिए अब मुझे भी अधिकार होगा कि मैं भी कुरआन शरीफ़ पर दावे के बिना ही मौलवी साहब के ऊपर एतराज करूँगा। लीजिये पहले एतराज का जवाब जो ऋग्वेद के मन्त्र पर है, सुनिये ध्यान देकर सुनिये मौलवी साहब !......दुनियां में तीन चीजे अनादि हैं, आपत्तिकर्त्ता को कम से कम इतना ज्ञान तो होना ही चाहिये था कि एतराज करने से पहले उस पुस्तक को देख तो लेते, पर मौलवी साहब को तो बस ! कहने से मतलब है, देखने, समझने व पढ़ने का ठेका तो हम आर्यो ने जो ले रक्खा है, तब मौलवी साहब ये ज़हमत क्यों उठायें ? भले ही कहीं सभा में नावक्फियत के कारण मिट्टी पलीद हो जाये। सुनिये वहां है–"**ऋग्वेद प्रथम मण्डल, सूक्त १६४, का बीसवाँ मन्त्र**[1] **तथा सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ संख्या २७५**" खोज करना और है और एतराज की निगाह से देखना और बात है, इस ऋग्वेद के मन्त्र में साफ कहा गया है कि तीन वस्तुएं संसार में अजली अर्थात् अनादि हैं, (१) ईश्वर (२) जीव, (३) प्रकृति। प्रमाणित तौर पर जिनकी सच्चाई वेदों से सत्य सिद्ध है।

आपका कर्त्तव्य था कि आप ये दिखलाते कि वेद में ऐसा नहीं है, परन्तु आपने नहीं दिखलाया, अतः वाद सबूत के अभाव में लचर अर्थात् कमजोर साबित हुआ।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

अल्हमदुलिल्लाह !............. अय खुदा !! तू अपने बन्दों की रहनुमाई फ़रमा !! बस, इस मसले का फ़ैसला समझो हो गया, मेरे पण्डित साहेबान किसी बात को तोड़मरोड़ कर पेश करने में काफी माहिर लगते हैं, पर मैं इनको हिलने नहीं दूंगा।

आप बताये कि मुहितो मुहात (व्यापक और व्याप्य) क्या है ? अर्थात् घिरी हुई, तथा उसके साथ घेरने वाले का सम्बन्ध ? जिससे साफ ज़ाहिर है कि जीव और परमेश्वर घेरता है अर्थात् भोगता है और प्रकृति

---

१. इसी आश्य का पाठ मुण्डक उपनिषद में तृतीय मुंडक के प्रथम खण्ड का वाक्य १ देखें !

"लाजपत राय अग्रवाल"

घिरती है अर्थात् भोग की जाती है, देखिये– "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं ...." देखिये आप लोगों के सामने मेरे काबिल दोस्त श्री मुन्शी अब्दुल अजीज उर्फ श्री जगदम्बा प्रसाद जी इसका हिन्दी में अनुवाद पढ़ कर सुनायेगें, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें–

श्री मुंशी अब्दुल अजीज उर्फ जगदम्बा प्रसाद–

इस मंत्र का अर्थ है कि दो पक्षी आपस में मिले हुए एक दूसरे के साथ एक वृक्ष पर बैठे हुए हैं, इनमें से एक पक्षी पीपल के वृक्ष का स्वाद चख रहा है, दूसरा कुछ नहीं खाता, वह केवल उस दूसरे पक्षी को खाते हुए टुकर–टुकर देखता रहता है...........बीच में ही.............,

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

जो मन्त्र आपने पढ़ा है वह भी गलत पढ़ा है तथा उसका जो अनुवाद आप हिन्दी में कर रहे हैं वह भी गलत है, यह आपका अपना मनगढ़न्त अर्थ है........बीच में........।

श्री मुंशी अब्दुल अजीज उर्फ जगदम्बा प्रसाद–

मैं कुछ नहीं कह रहा, ये तो सब स्वामी दयानन्द ने अपनी ओर से सुनाया है, देखो इसमें जो लिखा है उसका भाव यही है............बीच में.........चारों तरफ हो हल्ला.........बैठिये शान्त होकर बैठिये, अभी फैसला

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।।१।।

(मुण्डकोपनिषद, मुण्डक ३, खण्ड १)

शब्दार्थ–

"द्वा"–दो, "सुपर्णा"–अच्छे पंखों वाले, "सयुजा"–साथ–साथ जुडे हुए, मिले हुए अविच्छिन्न, "सखाया"–समान ख्याति, गुण वाले, "समानम्"–एक ही, "वृक्षम्"–शरीर रूप या प्रकृति रूप वृक्ष को, "परिषस्वजाते"– चिपट रहे हैं, में व्याप्त हैं, "तयो"– उन दोनों में से, अन्यः एक (जीवात्मा) "पिप्पलम"–पिम्पली रूप कर्मफल को, भोग को, "स्वादु"– स्वादपूर्वक "अत्ति"–खाता है, भोगता है। "अनश्नन्"–न भोग करता हुआ, (साक्षी रूप में) "अन्यः" दूसरा पक्षी रूपी (परमात्मा), "अभिचाकशीति"– दोनों (जीव और प्रकृति) को देख रहा है।।

भावार्थ–

दो पक्षी हैं, सुन्दर पंखों वाले, साथ–साथ जुड़े हुए, एक दूसरे के सखा। एक ही वृक्ष को सब ओर से घेरे हुए हैं वे। उनमें से एक वृक्ष के फल को बड़े स्वाद से चख रहा है, दूसरा बिना चखे सब कुछ देख रहा है। जीवात्मा तथा परमात्मा ही दो पक्षी हैं, प्रकृति ही वृक्ष है, कर्मफल ही वृक्ष का फल है। जीवात्मा को कर्मफल मिलता है, परमात्मा प्रकृति में सक्त हुए बिना सम्पूर्ण विश्व का दृष्टा है। सब जगह ब्रह्म ही ब्रह्म प्रकट हो रहा है, हर वस्तु में ब्रह्म का महत्व दीख रहा है– यह कह कर ऋषि कहते हैं कि इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सब कुछ ब्रह्म ही है। संसार में एकत्व ही हो, तो द्वित्व या नानात्व हो ही नहीं सकता। क्योंकि संसार में नानात्व है, इसलिए अपने कथन का परिष्कार करते हुए वे उपरोक्त वचन कहते हैं। यह ऋग्वेद (प्रथम मण्डल, १६४ सूक्त, २०वाँ मन्त्र) का मन्त्र है जिसमें एक अलंकार के रूप में सृष्टि की यथार्थता का प्रतिपादन किया गया है। "श्वेताश्वेतर उपनिषद" (४-६) में भी यही भाव व्यक्त किया गया है, वेद तथा उपनिषद की दृष्टि यही है कि– प्रकृति, जीव तथा परमात्मा, इन तीन सत्ताओं के सहारे सृष्टि चल रही है। अगर इनमें से एक भी न हो तो सृष्टि का सारा क्रम ही बन्द हो जाता है। (डा० सत्यव्रत सिधान्तालंकार कृत भाष्य–एकादशोपनिषद तथा उपनिषद प्रकाश से साभार उद्धृत !)

"लाजपतराय अग्रवाल"

हुआ जाता है..............बड़ी मुश्किल से वातावरण को शान्त किया गया तब पुनः बोले............

श्री मुन्शी अब्दुल अजीज उर्फ जगदम्बा प्रसाद–

गुस्से में गर्जना के साथ........हमारे द्वारा किये गये एतराजों का जवाब तो दिया नहीं जाता, बस ! इधर–उधर की खजूरों में गुठली मिलाना ही इन आर्यों का काम है। अगर हम इन्हीं के स्वामी दयानन्द का कौल (कथन) भी पढ़ते हैं तो भी गलत बताये जाते हैं, भाई ! यह बात हम थोड़े ही कह रहे हैं, स्वामी दयानन्द कह रहे हैं, अगर यह गलत है तो हम पर क्यों बरस रहे हो ? स्वामी दयानन्द पर बरसो....... चारों तरफ हँसी व मुस्लिम समुदाय से आवाजें आई.......... वल्लाह......... अल्हमदुल्लिाह..................आदि–२, ...भाइयों आज मैं इनकी तथा इनके स्वामी दयानन्द की भी सारी पोल खोलूंगा, सुनों ! पण्डित जी, ध्यान से सुनों तथा हमारे द्वारा किये गये एतराजों का जवाब दो, कोई ब्राह्मण स्नान करने को जाता होगा, रास्ते में किसी पीपल के पेड़ पर दो खग (पक्षी) बैठे हुए देख लिये होंगे, बस ! बना दी कहानी, भाइयों ! ऐसी कहानियां इनके यहां बहुत मिलेंगी............ जनता में जबर्दस्त हँसी............ समय समाप्त......... अगली बार मौका मिला तो बताऊँगा.........."।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

भाइयों ! बहुत शान्ति से यह मुबाहिसा चल रहा था, श्री जगदम्बा प्रसाद जी ने बीच में आकर आखिर उस सभ्यता की शुरूआत कर ही दी, जो नहीं होनी चाहिये थी......... जनता में चारों ओर हँसी......... चलो, ख़ैर ! कोई बात नहीं.........आप लोग शान्ति बनाये रक्खे......... तो सब कुछ ठीक हो जावेगा, शास्त्रार्थ के कुछ नियम होते हैं, विद्वानों, बुद्धिमानों को यही योग्य होता है कि वे उन नियमों के खिलाफ न चलें तो जिस मकसद से हम लोग यहां इकट्ठे हुए हैं उस मकसद में कामयाब होगें अन्यथा नहीं। मेरे अजीज काबिल दोस्त मौलाना अब्दुल मजीद साहब जो समय अपनी पढ़ाई में लेते हैं, उसकी जगह पर मेरी राय में यदि वह अपने दावे की दलील पेश करने में वो वक्त खर्च करते तो कहीं ज्यादा उम्दा होता। मेरी गुजारिश है कि आप फिर भी समझ लीजिये, आपने सत्यार्थ प्रकाश का उदाहरण दिया था, मैने भी उसी इबारत को पढ़ा था तथा व्याकरण के प्रमाण देकर समझाया गया था, अब फिर आपको बतलाये देता हूँ। देखिये– **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय..............."** आपने इसको वेदमन्त्र कहा जबकि यह मुण्डक उपनिषद का वचन भी है, आप इसका अर्थ सुनिये– प्रकृति नामक वृक्ष पर जीवात्मा नामक पक्षी तथा परमात्मा नामक दूसरा पक्षी बैठा है उसमें से जीवात्मा नामक पक्षी उस वृक्ष के कर्म रूपी फल का स्वाद चख रहा है, परन्तु दूसरा परमात्मा रूपी पक्षी उसे सिर्फ देख रहा है। अतः केवल जीवात्मा को कर्म का फल मिलता है परन्तु परमात्मा प्रकृति में सशक्त हुए बिना सम्पूर्ण प्रकृति रूपी वृक्ष को देख रहा है। अतः ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि होते हुए भी और–और गुणों में भेद रखते हैं। मौलाना साहब सुनिये– प्रकृति है–**"सत"**, जीव है–**"सत् चित्"** तथा ईश्वर है–**"सत् चित् आनन्द"** अर्थात् **"सच्चिदानन्द"** इसलिए तीनों एक नहीं है। तथा ये तीनों खुदा, रूह व माद्दा अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों क़दीम अर्थात् अनादि हैं। हाँ ! अगर आप संस्कृत के मूल पाठ से ऐसा लिखा हुआ दिखला देवें कि केवल **"दुनियाँ खुदा से बनी है"** तो आपका कहना ठीक हो सकता है अन्यथा नहीं, आप ये ख्याल न करें कि उनको ये भी ख़बर नहीं है कि वादी अरबी है या फ़ारसी ? ये मैं आपसे पूछ रहा था, परन्तु आपने कौन सा सुबूत दिया कि जीव अनादि नहीं है, तथा

वेदों में जीव की पैदायश होना लिखा है। इसके अलावा मैं यह भी जानता हूँ कि हमारे भाई साहब मौलवी अब्दुल अजीज ईनाम देते हैं, आप इन दीनी, इस्लामी शाखाओं और दूसरे कार्यों को छोड़कर सिर्फ कुरआन शरीफ में से बतलाइये कि–"**रूह और माद्दा को पैदा किया गया**" तथा सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ–२१० तथा वेद का मन्त्र १६४ मण्डल २० ये दोनों अर्थ सहित अनुवाद के साथ अगली पारी में पढ़ कर सुनाना उसमें मतलब और उद्देश्य भी होना चाहिये, तथा पीपल का वृक्ष भी दिखला देना, ताकि हमें पता चल जावे कि पीपल पर कौन सा फल लगता है जिसे वह पक्षी खा रहा था......... चारों तरफ हँसी का वातावरण व तालियों की गड़गड़ाहट ऽ ऽ ऽ......... हम खूब समझते हैं, जगदम्बा प्रसाद जी ब्राह्मण के साथ पीपल ही जोड़ सकते थे, क्योंकि पीपल के पूजन का ही प्रचलन है ना......... खैर ! कोई बात नहीं आज सभी बातों का खुलासा हो जाना चाहिये।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

मैं पण्डित जी से पूछना चाहता हूँ कि आप उजाले को मानते हैं या अन्धेरे को ? कागज की नाव बहा नहीं करती, ये गलत बात है, भाइयों बात ये थीं कि–

१. मन्त्र के अर्थ गलत किये हैं।

२. आपने अर्थ साफ–साफ नहीं किये।

३. आपने अर्थ नहीं किये हैं।

मैं अब दूसरी तरफ आता हूँ श्रीमान जी ये बात नहीं कि– आप अपना पीछा छुड़ा सकते हो, तीसरा प्रश्न ये था कि "**अनादिकाल**" किस शब्द का अर्थ है ? आपने इन शब्दों को छोड़ दिया, मैं दूसरी ओर नहीं जाऊँगा, मैंने पन्द्रह शब्दों के पन्द्रह अर्थ बताये हैं, आपने अनादिकाल किस शब्द का अर्थ है आज अभी तक नहीं बताया। जबकि जो–जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा हुआ है परन्तु वह वेद में नहीं है, आप मेरे मुल्की अर्थात् देशी भाई हैं, मेरा दावा है कि आर्य समाज जिस तरह ईश्वर के अस्तित्व व गुणों को मानते हैं वह वेद के अनुसार नहीं है।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मौलाना साहब ! इतनी देर में आपने क्या कहा ? वही दोहराया है जो मैंने "**अज़**" का अर्थ समझाया था, अर्थात् उसकी व्याख्या की थी, "**व्याप्य**" और "**व्यापक**" को समझाया था, आपने व्याकरण से नहीं बताया, हमारे भाई अब्दुल अजीज ने दो मन्त्र पेश किये हैं जो आपने भी सुन लिये थे। "**अज़**" का अर्थ यदि आप इस मौके पर प्रमाण देते हुए "**बकरा**" साबित कर दो तो जो ईनाम आपने हमें देने का वायदा किया था, उसे हम वापिस लौटा देगें, यदि आप व्याकरण से इसका खण्डन करते तो आपका अर्थ ठीक हो सकता था, अन्यथा अशुद्ध है। आपने दो अन्य दूसरे मन्त्रों को भी हल नहीं किया, यदि आपको सच्चाई की गहराई तक जाना है तो सबूत दीजिये। आप मुबाहिसा नहीं करते, बल्कि बेकार की लतीफेदार भाषा बोल कर श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। "**अज**"–"**व्याप्य**" **व** "**अनादि**" के अर्थ नहीं किये, देखिये कुरआन शरीफ में लिखा है कि–"**इन्नी जायलुन फ़िल अरजे ख़लीफ़ा............**" **अर्थात् खनखनाते हुए, सड़े हुए ग़ारे से बनाया हमने इन्सान को, और ज़ान को बनाया हमने, इससे पहले अग्नि की लौ से.**

........" अल्ला ताला को यह भी खबर नहीं थी कि एक पदार्थ से कोई वस्तु नहीं बन सकती, गारा पहले मौजूद था या मिट्टी पहले मौजूद थी ? वहां कुरान का भाष्यकार व्याख्या करते हुए लिखता है कि– **"मक्के से मिट्टी लायी गई, चालिस दिन तक अपने हाथ से गूँथी गई। तब खलीफ़ा जी का पुतला अर्थात् ढाँचा तैयार किया गया। फिर उसमें रूह (आत्मा) फूंकी गयी[1]"** । तब बताइये कि ये मिट्टी कहाँ से बनी ? आत्मा कहाँ से बनी ? आत्मा क्या बला है ? अरब वाले कुरान शरीफ में जो आयतें मौजूद हैं, उनमें तो लिखा है कि– **"दो दिन में आसमान और दो दिन में ज़मीन, दो दिन में आग और दो दिन में पानी, ये सब मिलाकर कुल आठ दिन हुए"** । जबकि अल्ला मियाँ फ़रमाते हैं कि ये सब काम छः दिन में पूरा किया गया, कुरान शरीफ़ के अनुसार अल्ला मियाँ के पास ये सब चीजें क्या पहले से ही मौजूद थीं ? यदि आप कुरान जो सीधे अल्ला की ओर से आप लोगों के पास आया है, से यह सब बातें सच्ची साबित कर दें तथा जीवात्मा और प्रकृति नई पैदा होने वाली वस्तु हैं तो आपका जवाब दुरूस्त हो सकता है अन्यथा नहीं। तब मेरा सुबूत दुरूस्त हो जावेगा। आपने कहा कि– मैंने सब कुछ स्वामी दयानन्द जी से ही सीखा है, और आप उन पर आरोप लगाते हो, आश्चर्य ! महान आश्चर्य !! आपकी इस अहसान फ़रामोशी पर !!! इस प्रकार यह पहले दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

(तीन दिन अर्थात् तारीख २६ जून से २८ जून तक का वृतान्त)

नोट–

२६ जून सन् १९०६ ई0 को शास्त्रार्थ सुबह होना भी निश्चित किया गया था। परन्तु प्रातःकाल से दोपहर १२ बजे दिन तक बड़े जोरों की बारिश होती रही। इस्लामी पक्ष की ओर से आने वाले शास्त्रार्थकर्त्ता अपने निश्चित समय पर निर्धारित स्थान श्री नेअमत सिंह जी की चौपाल पर पधार गये थे, परन्तु वर्षा और अन्य–अन्य असुविधाओं तथा खाने–पीने आदि के लिए क्षमा मांग कर कहने लगे कि– यदि सहारनपुर में

टिप्पणी–

१. कुरान में बाकायदा आयत मौजूद है कि–**"इन्नी जायलुन फ़िल अरज़े खलीफ़ा...... आदि–आदि, अर्थात्–उस पुतले में रूह फूंकी गई, और तमाम फरिश्तों को खुदा ने उस पुतले को जिसका नाम ज़नाबे–आदम रक्खा गया था, सिज़दा अर्थात् झुक कर सलाम करने का हुक्म दिया, तब सभी फ़रिश्तों ने अल्ला मियाँ के आदेशानुसार उस जनाबे आला आदम को सिज़दा किया, परन्तु एक फ़रिश्ता जिसका नाम "इबलीश" था जो आग से पैदा हुआ था, उसने जनाबे आदम को सिज़दा करने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि– आदम मिट्टी से बने हैं, और मैं आग से, आग मिट्टी से बुलन्द होती है, लिहाज़ा मेरा दर्जा आदम से ऊँचा हुआ, इसलिए मैं आदम को सिज़दा नहीं करूंगा,"** फलस्वरूप अल्ला ने उसे अपनी हुकूमत से बाहर निकाल देने का आदेश जारी किया, तब इबलीश ने फ़रमाया कि– हुजूर ! मैंने जो चप्पे–चप्पे पर छः हजार बरस तक तुम्हारी इबादत की है उसका क्या होगा ? तब अल्ला मियाँ ने उस इबलीश को जिसे **"शैतान"** का दर्जा दिया जा चुका था, उसके लिए फ़रमाया कि– मांग ले जो कुछ मांगना है। तब उस शैतान ने कहा कि– मुझे क़यामत तक की मोहलत अपनी हुकूमत में रहने की अता फ़रमायें, तब अल्ला की ओर से आवाज आई कि– जा तुझे कयामत तक रहने की मोहलत दी। आज उसी का नतीजा है कि– दुनियां जहान में जो भी बदी अर्थात बुराई का काम होता है वह उसी शैतान इबलीस की बदौलत माना जाता है, अर्थात् शैतान के बरगलाने पर ही हर इन्सान बदी की राह पर चलता है।

विदुषामनुचरः–

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ करना सम्भव हो पाये तो अच्छा हो, फलस्वरूप शर्त ये है कि सहारनपुर पहुंच कर कहीं शास्त्रार्थ करने से इन्कार न करने लगें। क्योंकि आर्य समाज की ओर से टपरी में पूर्ण प्रबन्ध है, परन्तु सहारनपुर में सारा प्रबन्ध, मकान फर्श, शामियाना आदि का दायित्व इस्लाम वालों पर होगा। अतः सर्वसम्मति से सहारनपुर जाना स्वीकार किया गया। अन्ततः मौलवी अब्दुल मजीद साहब ने पीछे बताये गये सभी नियम व प्रबन्ध आदि की अध्यक्षता का दायित्व अपने ऊपर लेते हुए एक अहदनामा अर्थात् प्रतिज्ञापत्र तैयार किया, जिस पर आर्य समाज के शास्त्रार्थकर्त्ता श्री पण्डित भोजदत्त जी ने भी हस्ताक्षर किये। इस प्रकार कार्यवाही करने के बाद सभी मौहम्मदी भाई प्रसन्नता के साथ सहारनपुर वापिस चले गये, परन्तु मौलवी मौहम्मद हुसैन साहब धर्मोपदेशक, देहली ने आम राय के अनुसार आपस में ही भाषण आरम्भ कर दिया, क्योंकि अपने भाषण में आपने पुरानी सत्यता से प्रभावित होकर वेदों की तारीफ़ बहुत कुछ स्पष्ट की, इसका नतीज़ा यह हुआ कि उनके कुछ बिरादरी भाई मौलवी व अन्य मौहम्मदी सख़्त नाराज हो गये तथा आर्य समाज की इस विजय पर मौलाना मौहम्मद हुसैन साहब से बहुत नाराज हुए। परिणामस्वरूप धर्मोपदेशक जी ने अपना बिस्तर गोल कर सीधी दिल्ली की राह ली, और यहां सायंकाल तक श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा व मास्टर लक्षमण दास जी के भाषण होते रहे। परन्तु हमारे वीर मनाज़िर श्रीमान पण्डित भोजदत्त जी उन इस्लामियों का इन्तजार करते हुए, सायंकाल दिन के चार बजे तक सहारनपुर पहुंच गये और आपने अपने पहुंचने की सूचना देकर शास्त्रार्थ करने के लिए प्रबन्ध का तकाज़ा किया। फलस्वरूप प्रथम तो मौलवी अब्दुल मजीद साहब ने अपने टपरी वाले प्रतिज्ञापत्र को भुलाकर लिखा कि– मैं जिस मकान अर्थात् मदरसे में ठहरा हुआ हूँ पण्डित जी वहीं पधारें और शास्त्रार्थ कर लेवें। क्योंकि यह स्थान इस तरह का नहीं था जहां पर इतना विशाल शास्त्रार्थ का आयोजन किया जा सके। इसलिए मौलवी साहब के लेख को व्यर्थ समझते हुए अन्य मौलवी साहेबानों से दूसरा प्रबन्ध करने की प्रार्थना की गई। परन्तु उस दिन कुछ भी परिणाम न निकला, आखिर अगले दिन २७ जून को पूरे दिन लिखित पत्रों के आने–जाने व प्रबन्ध के इन्तजाम में ही सारा दिन बीत गया, परिणाम कुछ भी हासिल न हुआ, और मौलवी साहब ये समझ कर टालमटोल करते रहे कि मुसाफिर परेशान होकर खुद ब खुद वापिस चला जायेगा। पर ये बला कब टलने वाली थी ? –**"जब आंखे चार होती हैं तो लज्जा आ ही जाती है"** की कहावत के अनुसार **"मिसरा रसीदाबूद बलाये दे बख़ैर गुजिस्त........."** मौलवी साहब के पास श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा को भेजा गया। और मौलवी साहब का टपरी वाला वचन याद दिलाया गया, उस पर मौलवी साहब थोड़ा सहमत से हुए और सायंकाल के समय ज़ोर पाकर अर्थात् हिम्मत करके अपने कुछ साथियों के साथ आर्य समाज मन्दिर में तशरीफ़ लाये। यहां वेदों के ऊपर वार्तालाप शुरू होने से पहले मौलवी साहब को विवश होकर शास्त्रार्थ का पूर्ण प्रबन्ध अपने सर पर लेना पड़ा। इसके लिए हम ये अवश्य कहेंगे कि इस्लाम की दुर्बलता अर्थात् कमजोरी के होते हुए भी मौलवी साहब ने बहुत वीरता से काम लिया जो दो दिन खराब करके ही सही परन्तु अपने वचन का पालन किया। तथा अगले दिन २८ जून सन् १६०६ ई० को आपने नगर के धनवान लोगों की सहायता से थियेटर हाल जो एक बड़े मकान की शक्ल में सड़क के किनारे पर नगर से बाहर और निकट पर ही मौजूद था इस आयोजन के लिए निश्चित किया, तत्पश्चात पूर्ण प्रबन्ध और सूचना के बाद नगर अधिक्षक (जिलाधीश) ने आर्य समाज में एक नोटिस भेज दिया कि– २६ तारीख को मुबाहिसा अर्थात् शास्त्रार्थ दो बजे दिन से पांच बजे सायं तक होगा। और आगे से आने वाली तारीखों में अर्थात् ३० तारीख से सुबह साढ़े सात बजे से आरम्भ होकर साढ़े दस बजे दिन तक शास्त्रार्थ हुआ करेगा। फलस्वरूप स्वीकार हुआ और २६ जून इसी सन् १६०६

ई0 को श्री मान पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता तथा अन्य आर्य पुरूषों के साथ समय से पूर्व ही निश्चित किये गये स्थान पर तशरीफ़ ले गये।

यहां का प्रबन्ध इच्छा के अनुसार पाकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ, जिसके लिए हम मुख्य रूप से मौलवी साहब अब्दुल मज़ीद व मौलवी मिर्जा अजीज बेग साहब का तहे दिल से शुक्रिया अदा करते हैं। प्रत्येक–दो प्लेटफार्म आमने–सामने, बीच में कुछ खाली स्थान छोड़कर तथा साईडों में कुछ कुर्सियां तथा बेन्चों के साथ सही तरतीब के साथ सज़ा हुआ पाया। श्रोतागणों की संख्या भी कम से कम दस हजार से कम न होगी, जबकि दूसरी आने वाली तारीखों में तो हाज़रीन की तादाद बढ़ती ही चली गयी थी, जो अन्त तक बीस हजार तक पहुंच गयी थी, जिनमें दो सम्मानित अंग्रेजी पादरी साहब बहादुर, कुछ मिले–जुले दूसरे ईसाई मत के उलमा लोग तथा धनवान लोग, सम्पत्तिवान व सरकारी अफ़सरान और बड़े–बड़े ओहदों पर आसीन अधिकारी लोग अपनी उपस्थिति से प्रसन्न करते रहे और सरकार की ओर से कुछ पुलिस इन्सपैक्टर जो बहुत से कांस्टेबिलान के साथ शान्ति व्यवस्था के लिए प्रतिदिन आते रहे। जिसके लिए हम अपनी न्यायप्रिय सरकार और नगर अधिक्षक जी का सच्चे हृदय से धन्यवाद देते हैं कि जिनके सहयोग से यह एक बहुत बड़ा शास्त्रार्थ का आयोजन शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुआ। फलस्वरूप बताई गयी तारीख २६ को दो बजे दिन के शास्त्रार्थ की कार्यवाही आरम्भ हुई, जिसमें आर्य समाज की ओर से बाबु ज़मना प्रसाद जी प्रेजीडेन्ट, श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा–सैक्रेटरी प्रबन्धक के रूप में, तथा श्रीमान पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में नियुक्त हुए। और इस्लाम की ओर से मौलवी मौहम्मद हुसैन साहब–अध्यक्ष, व सैक्रेटरी, अरबी मदरसा देवबन्द, प्रेजीडेन्ट व मिर्जा अजीज बेग साहब उर्फ जगदम्बा प्रसाद–सैक्रेटरी व मौलवी श्री अब्दुल हक़ साहब, कुरान के भाष्यकार तथा मौलवी अहमद अली साहब हैड मास्टर, मदरसा अरबी–मेरठ ये दोनों मैनेज़र अर्थात् प्रबन्धक के रूप में निश्चित्त किये गये। इसके पश्चात सभी सैक्रेटरी लोगों का भाषण–प्रबन्ध के बारे में कुछ मिनट विचार होकर शास्त्रार्थ की कार्यवाही प्रथम श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब ने इस्लाम की ओर से शुरू की।

(चौथा दिन २६ जून सन् १६०६ ई0)

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

पण्डित साहब जी, जहां तक मेरा अनुमान है आपने जो फैंसला दिया है वो ठीक है परन्तु आप जो ये समझ रहे हैं कि आप शान्ति का कार्य कर रहे हैं ? मैं इस पर बहस नहीं करता, मैं जानता हूँ कि पिछली घटना ही थी कि– शाँकर भाष्य में **"अज़"** का अर्थ **"बकरे"** के है। आनन्द गिरि ने भी अनुमानतः यही अर्थ किया है। देखिये मुण्डकोपनिषद का एक जुमला नीचे का तथा एक ऊपर का पढ़ कर दिखलाइयेगा जो भाष्यकार ने अपनी व्याख्या में दिये हैं, अब मैं फिर ये कह रहा हूँ कि– मुझसे कुछ शब्द रह गये हैं, पन्द्रह शब्दों के पन्द्रह अर्थ हुए, और पण्डित जी ने इतने अर्थ अधिक किये थे, आपने ये फैंसला दिया कि उन्होंने ये गलती की या मैंने ये गलती की ? पण्डित जी सच कहते हैं कि– मेरी गलती है, यदि आप इसी में खुश हैं तो मैं यह लिखकर देने के लिए तैयार हूँ कि मुझसे यह हिस्सा लिखने से रह गया। पण्डित जी ! **"पत्थर की नींव रक्खोगे तो इमारत मजबूत होगी"** । अब मैं फिर कहे देता हूँ अनुवाद–**"वेद मन्त्र आर्य समाज की ओर से लिखा हुआ पढ़ कर सुनाया गया और जगदम्बा प्रसाद का लिखा हुआ अनुवाद पढ़ दिया"**

मुझको वो इलहाम अर्थात् आकाशवाणी हो रही है, तुमको वो आकाशवाणी नहीं हो रही। आप मुक्कमल तौर पर मुझे ये बतला दीजिये कि आपने एक उदाहरण देखा कि– **"एक ब्राह्मण स्नान करने को जा रहा था, उसने दो पखेरू (पक्षी) पेड़ पर बैठे हुए देखे होंगे"** इसकी व्याख्या अलग–अलग तरह से मैं भी तीन चार सूरतों में कर सकता हूँ। आप इसके मुकाबले के केवल दो ही शब्द दिखला दो। यह चारों वेदों में बीस हजार मन्त्र मौजूद हैं, इनमें दिखलाइये कि– जीवात्मा और प्रकृति अनादि काल से सम्बन्धित हैं। ये साफ तौर पर दिखला दीजिये, मैं कबूल (स्वीकार) कर लूंगा। अपनी हठ न कीजिये, अनादि काल अर्थात् अज़ली शब्द बता दीजिये। **"अज़"** का अर्थ यदि शंकराचार्य ने **"बकरे"** के न किये हों तो मुझे दिखला दीजिये या लिख दीजिये मैं उसके लिए उत्तरदायी हूँ।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मेरे मेहरबान ! कदरदान !! काबिल दोस्त !!! मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब ? आपने जो शुरू में ऐतराज़ फ़रमाया है, बावजूद इसके के उस दिन भी मैंने आपको समझाया था, और अब भी समझाया गया है। परन्तु सबसे बड़ी मुश्किल की बात तो यह है कि– आपने एक शब्द **"नहीं"** इस प्रकार से रटा हुआ है कि वो चार दिन तक भी पर्याप्त न होगा। इसके अलावा मैं ये कहने का भी साहस रखता हूँ कि आपको संस्कृत का ज्ञान नहीं है। जो शब्द आपको सिखाये व रटवाये गये हैं उन्हीं को आप बार–बार दोहराते चले आ रहे हैं। और ऊपर से यह कहते हो कि हमको–हमारे मुहावरों के शब्द वेदों में से दिखलाओ ? तो हम मानने के लिए तैयार हैं अन्यथा नहीं। ये अनुमान पर आधारित है, यदि हमारे मुहावरे के शब्द क़ुरान शरीफ में हों तो मैं स्वीकार कर लूंगा, अतः मैं फिर कहता हूँ कि यदि आप जीवात्मा और प्रकृति का शब्द आपके मुहावरे के अनुसार वेद में नहीं है, जैसे क़ुरान में आधुनिक काल के मुहावरे की अरबी मौजूद नहीं है इसी प्रकार आधुनिक काल में संस्कृत और ढंग की है और वेदों की लिपि और ढंग की है, वेदों में नियमानुसार इल्मी नियम मूल रूप में बतलाये गये हैं। जैसे क़ुरान शरीफ़ में आपका दावा है कि– आप व्याख्या पर विचार नहीं करते, हम **"अनादि"** शब्द के लिए **"असम्भूति"** आदि प्रयोग करते हैं। क्योंकि आप संस्कृत से वाकिफ़ नहीं हैं इसलिए इसे आप नहीं समझते आपका दावा ये है कि रूह और माद्दा अर्थात् जीव और प्रकृति क़दीम अर्थात् अनादि नहीं हैं। वादी के लिए पहले यह बात जरूरी है कि वह अपने दावे के सबूत में दलीलें पेश करे अर्थात् उसके लिए प्रमाण दें परन्तु यहां उलटा ही हो रहा है कि मेरे प्यारे दोस्त दावा तो पेश ही नहीं कर रहे बल्कि उस पर एतराज फ़रमा रहे हैं.......... जनता में चारों और हँसी....... मैं फिर समझाये देता हूँ कि आपको दावा नहीं में, नहीं बल्कि हाँ में प्रमाणित करना है कि आत्मा और प्रकृति नवनिर्मित अर्थात् नई बनाई गयी वस्तु हैं, वह अज़ली अर्थात् अनादि से नहीं हैं। यहां पर बड़े–बड़े न्याय के जानकार–अफसरान, व वकील साथी बैठे हुए हैं, जो मेरी बात को अच्छी तरह समझ रहे हैं, पर मुसीबत तो इस बात की है कि मेरे सामने बैठे मेरे काबिल दोस्त तो नहीं समझ पा रहे हैं या जानबूझ कर समय ज़ाया (व्यतीत) कर रहे हैं। पर तारीफ ये है कि– **"मानते जाते भी हैं ज़नाब, पर स्वीकार नहीं करते ?"** आपने हमारे बाकी एतराजों का जवाब भी नहीं दिया, और ना ही **"असम्भूति"** का अर्थ किया, **"अज़"** का अर्थ **"अजन्मा"** व **"प्रकृति"** आदि के हैं, यही दशा अरबी आदि अन्य भाषाओं की भी है। जैसे देखिये– एक शब्द है **"सैन्धव"** इसका अर्थ **"नमक"** भी है तथा **"घोड़ा"** भी है, परन्तु कहां पर क्या अर्थ संगतयुक्त होगा ? यही सोचने की बात है। जैसे कोई खाना खाते समय सैन्धव मांगने लगे तो उसे नमक ही दिया जावेगा, घोड़ा नहीं, इसी प्रकार

बहुत से शब्दों के अर्थ भिन्न–भिन्न हैं जो यथा समय अलग–अलग रूपों में प्रयोग किये जाते हैं। उपनिषद ज्ञान का भण्डार है, आपने उसके भी मनघढ़न्त अर्थ किये है, यदि मैं ये कहूँ कि आपने जो अर्थ पेश किये हैं, उन्हें व्याकरण से साबित कीजिये, तो आप खामोश हैं, आप मुद्दयी अर्थात् वादी नहीं, बल्कि मौहतरिज अर्थात् आपत्तिकर्त्ता हैं, परन्तु क्या वादी के ये अर्थ हैं कि आपने प्रकृति और जीवात्मा के जन्म के बारे में कुछ भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये, यदि आप वेद से साबित नहीं कर सकते हैं तो कुरान मजीद से ही प्रमाणित कर दीजिये कि जीवात्मा और प्रकृति अभी की बनी हुई वस्तु है। जबकि किसी भी आलिम ने ये नहीं माना कि– **"संसार में बिना कारण के कार्य का होना सम्भव है।"** ज़नाबे आदम को मिट्टी से तैयार किया गया था, वो भी सड़ी हुई मिट्टी से ! यह कुरानी मुहावरा है कि– सड़ा हुआ गारा वह भी ठनठनाता हुआ, अर्थात् जैसे आटे में खमीर उठाने के बाद जो स्थिति उसकी होती है वही आप उस सड़े हुए गारे की मान सकते हैं। मैं मानता हूँ कि आप वादी हैं परन्तु जीवात्मा और प्रकृति की पैदायश के हक़ में आप केवल एक आयत ही प्रस्तुत कर दीजियेगा, मैंने माना कि हज़रते आदम से सब वस्तुएं पैदा हुई, नेस्ती अर्थात् कुछ न होने से, हस्ती अर्थात् होने से, अर्थात् आप नेस्ती से हस्ती का सबूत दीजिये, अभाव से भाव की व्याख्या करो, इसकी पुष्टी में कोई दलील कोई तर्क कोई प्रमाण तो दीजिये, और भी कहीं से नहीं दे सकते तो सिर्फ़ कुरान में से ही पेश कीजिये, मैं मान लूंगा। मैं आपको फिर बतलाये देता हूँ कि– **"बिना कारण के कार्य नहीं हुआ करता,"** या यूं भी कह सकते हैं कि– वह वस्तु जिसका कोई कारण है तो उसका कार्य भी अवश्य हुआ करता है।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

हाज़रीन ! ये पन्द्रह मिनट इस बात के लिये थे कि मैंने जो अनुवाद किया है वह मूल ग्रन्थ में नहीं है। आपने कोई शब्द नहीं बतलाया कि इसका अनुवाद शाब्दिक होता है। आपका दूसरा एतराज ये था कि वेद में ऐसा शब्द दिखलाइये कि– **"अनादे"** शब्द पुरानी संस्कृत में नहीं है बल्कि हिन्दी भाषा का है अनादि के अलावा एक शब्द आया है–**"पखेरू उड़ गये"** अज़ के अर्थ बकरी के भी हैं, ये आपको प्रमाणित करना अनिवार्य है कि ये अर्थ अपने स्थान पर उचित है। बहस का नियम ये है कि एक मन्त्र पहले तय हो जावे तब दूसरे मन्त्र के अर्थ लिखने चाहिये। देखिये अब पहला मन्त्र–**"द्वा सुर्पणा सयुजा सखाय......."** इसको पहले तय कर लीजिये, आप जानते ही नहीं, श्री मानजी आप जो समझते हैं, इस प्रकार शास्त्रार्थ नहीं हुआ करता। **"अजली"** का अर्थ फलां शब्द के है, **"अनादि"** आप न प्रमाणित कर सकते हैं न करेंगे। जीवात्मा और प्रकृति सदा से अर्थात् शुरू दुनिया से नहीं हैं, ये मेरा दावा नहीं।

आर्य समाज वेद के विरूद्ध आचरण करता है, इस पर आपकी दलील अर्थात् तर्क क्या है ? आत्मा और माद्दा अनादिकाल से सम्बन्धित हैं, इसका प्रमाण भी वेद में नहीं है। ईश्वर के सम्बन्ध में आपने कहा कि– ईश्वर उपस्थित को अनुपस्थित अर्थात् हां को ना में तबदील कर सकता है, ईश्वर को तीनों भाषाओं का जानने वाला कहना अज्ञानता का कार्य है, ये भी वेद में नहीं है। आप तर्क दीजिये, मेरा ये दावा नहीं है कि जीवात्मा व प्रकृति हादिस अर्थात् नई जन्म लेने वाली वस्तु हैं। ईश्वर **"है"** को **"नहीं"** में नहीं बदल सकता, ऐसा कहना वेद के खिलाफ़ है। आपका विश्वास वेद के विरूद्ध है, आप मेरे तर्कों को हवा में उड़ाते जाते हैं। मैंने जो मन्त्र कहा था कि– **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय"** आपको कहा गया था कि इसके एक–एक शब्द का अनुवाद कीजिये, आपने अनुवाद वगैरा कुछ भी नहीं किया, मैंने तीन तर्क पेश किये थे, उनमें से एक का भी जवाब नहीं मिला। पण्डित जी साहेबान आप मेरे लफ़्ज़ों पर गौर फरमायें– **"ईश्वर किसी के**

पाप क्षमा नहीं कर सकता" ये भी वेद में नहीं है, अर्थात् साबित हुआ कि वह पाप क्षमा कर सकता है। बस ! साबित हो गया और आपकी सारी फिलासफ़ी धरी की धरी रह गयी, ...मुसलमानों में चारों ओर हर्ष का वातावरण.......... मैं ये बात दूसरी दलीलों में पेश करूंगा, यदि मैं यह कह दूँ कि मैंने पूरे हिन्दुस्तान के आर्यों को जीत लिया तो कुछ लोगों को छोड़कर बाकी कोई भी मेरी बात पर यकीन नहीं करेगा और ना ही खुश होगा। मेरे मुवज्जिज़ पण्डित साहेबान मैने आपसे ये अर्ज किया था कि– दो पक्षी आदि–आदि मेरे मुहावरे के अर्थ वेद में से निकालो, ये मेरी आलोचना नहीं थी, आप संस्कृत मुहावरों के अनुसार अर्थ बतलाओ, वादी के लिए जरूरी है कि तर्क दे, मैं खुद कहे देता हूँ कि मैं अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू कुछ भी नहीं जानता, परन्तु बात ठिकाने की कहता हूँ। सुनो–

बात मेरी जो नहीं सुनते अकेले होकर।
ऐसी ढ़बकी सुनाऊं जो सुनो और सुनो।।

मेरी नज़र में पण्डित जी दिल तो आपका अवश्य मान गया, बाहर से आप भले ही मना करते रहें।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मौलाना साहब ! मुग़ालतादेही अर्थात् धोखा देना और बात है और एतराज करना और बात है ? हास्यपूर्ण बातचीत से हँसाना दूसरी बात है। और आप अपने मतानुयायियों को हंसाने के लिए ऐसे–ऐसे शब्द प्रयोग करते हैं ? आपका वाद अर्थात् दावा ये है कि वेदों में आत्मा और प्रकृति की बुराई नहीं है। इसलिए जीवात्मा और प्रकृति नई जन्म लेने वाली वस्तु नहीं है। जैसे ये कहना कि– ये पैन्सिल लोहे की नहीं है, अर्थात् साफ़ ज़ाहिर है कि अन्य किसी धातु की है। या ये कहना कि ये घड़ी झूठी है तो साफ़ जाहिर है कि इसके सामने वाली घड़ी सच्ची है। यही दशा आत्मा और प्रकृति की है। आप कहते हैं कि मैं इसको नई जन्म लेने वाली वस्तु नहीं मानता हूँ और ये भी क्रे क़दीम अर्थात् अत्यन्त पुरानी भी नहीं मानता, आपने ऐसा कभी नहीं सुना होगा, यदि नई या पुरानी नहीं मानते तो फिर क्या मानते हैं ? किसी को वैसे ही अज्ञानी कहने से कोई अज्ञानी नहीं हो सकता, हम आपके कहने मात्र से वेद के खिलाफ़ साबित नहीं हो सकते। आपने बजाय प्रकृति न कहकर पुरकृति कहा। आपने जो उपनिषद का वाक्य पेश किया, सुनिये–"**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय**.........." में समझाया व बतलाया गया है कि "**समानम्**" ये वो शब्द है जिसमें रूपकालंकार निहित है। "**अनादि**" शब्द लौलक (अवैदिक) संस्कृत का है, वैदिक संस्कृत और लौलक संस्कृत में बहुत अन्तर है। मुहीत अर्थात् व्यापकता ईश्वर का एक गुण है, व्यापकता वहां हुआ करती है जहां कोई घिराव अर्थात् व्याप्त होगा, यहां पर स्पष्ट शब्दों में बताया गया है कि वो बाह्य वस्तु का घिराव है। इसके बराबर के दोस्ती और इसके जमाने की, "**समानम्**" और "**सखाय**" ये दो शब्द जीवात्मा और प्रकृति के लिए साबित कर रहे हैं कि ईश्वर के साथ "**अनादि**" शब्द मौजूद है। देखिये मैं एक मन्त्र पेश करता हूँ–"**अन्धंत्मः प्रविशन्ति**..........." स्वामी दयानन्द की व्याख्या के अनुसार "**असम्भूति**" के अर्थ– "**अनादि**" के हैं, बताइये ? अब तो हमने "**अनादि**" भी दिखला दिया, जिस पर आप इतना दबाव डाल रहे थे।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

भाईयों ! अल्ला का शुक्र है, एक दावा तो खत्म हुआ, आपने आधा मन्त्र तो लिया, परन्तु आधा व्याप्य

और व्यापक का बहाव कहाँ से लिया ? ये बतलाईये कि ये मन्त्र के किस शब्द का अनुवाद है ? घेरने वाला और घेरा गया (मुहीत और मुहात) व्यापक और व्याप्त का सम्बन्ध जो आपने बताया ये भी आपके अपने अर्थ हैं, मन्त्र के वास्तविक शब्दार्थ नहीं हैं, स्वामीजी का ये विश्वास वेद के खिलाफ़ है, अगर आपको दिखलाना ही है तो वेद में से निकाल कर दिखलाओ, मैं तो तभी मानूंगा, अन्यथा हर्गिज नहीं। समझाया और सिखाया का अर्थ आपने व्याप्त और व्यापक, सम्भाव के कहां से ले लिये ? यदि मैं अशुद्ध कहता हूँ तो आप इस मसले को प्रमाणित करने के लिए बनारस को भेज दीजिये, देखिये फैंसला किसके हक़ में आता है ? आपने ये शब्द अपनी ओर से बढ़ाये हैं। बाप बन कर फ़ल को भोगता है। जीव से ईश्वर और ईश्वर से जीव तथा इन दोनों से प्रकृति ! ये शब्द इस मन्त्र की व्याख्या नहीं हैं, यही मेरा कहना है। ये सब आपके अपने मन से बनायी गई व्याख्या है। बस ! ये शब्द बनारस को लिखकर भेज दीजिये। संस्कृतदाँ अर्थात् संस्कृत विशेषज्ञ खुद निर्णय कर देंगे। अरे भाई जो बच्चे से भी कम जानता है वो भी आपकी कमी को महसूस कर रहा है। और उलटा आप हमें कहते रहे हैं कि हमें कुछ आता–जाता नहीं, हमें संस्कृत नहीं आती, हमें फलां भाषा नहीं आती, अरे पहले कम से कम अपने गिरहबान में तो झांक कर देखिये आपको कितनी भाषाएं मुक्कमल तौर पर आती हैं ? खुद शीशे के घर में बैठ कर दूसरे पर पत्थर मत फैंको, वरना अन्जाम आप खुद जानते हैं। बस ! यदि कोई संस्कृत का विद्वान इस बात को लिखकर साबित कर देगा कि ये व्याख्या असली मन्त्र की है तो मैं उसे मान लूंगा। मुझे उस पर किसी भी तरह का एतराज नहीं होगा। कृपया करके आप उसी संस्कृत का हूबहू शाब्दिक अनुवाद क्यों नहीं करते ? मैं ये कह रहा हूँ कि ये फ़ालतू शब्द कहां से आये ? देखिये मन्त्र–**"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया..........."** अनुवाद–जगदम्बा प्रसाद द्वारा सुनाते हुए–**"समानम्"** सिखाया का अर्थ ही आपस में मिले हुए........... यहां मूल कापी फटी हुई थी...........इसमें.........मूलकापी में मैटर गायब था.......कहां दिये हैं ? जोकि दयानन्द जी कहते हैं कि वेद में नहीं हैं। वाद अर्थात् दावा ये है कि ये बात वेद के विरूद्ध है। मान लो फर्जी तौर पर मैंने कहा, **"जबकि हकीकत में मैंने कहा नहीं था"**, कि मैनें नहीं कहा कि– माद्दा अर्थात् प्रकृति नई है या पुरानी ? यह मेरा दावा ही नहीं है, ब्लकि मेरा दावा तो यह है कि– **"आर्य समाज की मान्यताएं–ईश्वर के अस्तित्व और उसके गुणों के सम्बन्ध में वेद के विरूद्ध हैं"** देखिये सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार पृष्ठ–२१८ समुल्लास–७, प्रश्न–५२।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

प्रथम वेद मन्त्र–**"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय..........."** के अर्थ और उसकी व्याख्या........... पूर्ण शब्दार्थ सहित व्याख्या करके बतलाई गयी.........। शाब्दिक अर्थ की व्याख्या जो भाष्यकार किया करते हैं, वो ही स्वीकृति के योग्य हुआ करती है। जैसे कि मैंने आपके सामने पेश की। जैसे देखिये कुरान की आयत–**"ज़ालिकल किताबो लारैबा फीह..............."** जिसका अनुवाद कुरान में **"ज़ालिका"**का अर्थ **"ये किताब"** किया है। परन्तु भाष्यकार ने उस पुस्तक (किताब) को माना है जिसको ईश्वर ने उतारने का वायदा किया था। देखिये–सुन्नीयों की व्याख्या–ये लोग इससे लाभ उठाने वाले हैं, आदि। सलात् (नमाज़) शब्द एक वचन है या बहुवचन ? जिसका अर्थ पांचों वक्त नमाज़ पढ़ने के है, ये पांच कहां से आये ? जबकि नमाज़ अर्थात् सलात् तो एक वचन है। जीवात्मा और ईश्वर का सम्बन्ध घेरने वाला और घेरे गये अर्थात् मुहितो–मुहात का है। **"असम्भूति"** और **"सम्भूति"** यहां पर इल्लत और मालूल को कहा गया है, वेद की भाषा में **"अनादि"** शब्द नहीं आया है बल्कि उसकी जगह पर **"असम्भूति"** आया है, अब आपकी पहली आपत्ति

आपके कहने के अनुसार कट गई अर्थात् निरस्त हो गयी, अब आपको यह दिखला दिया गया है कि वेदों में–घेरने वाला और घेरा गया अर्थात् मुहीतो–मुहात का सम्बन्ध भी ईश्वर का गुणात्मक सम्बन्ध है, अब लीजिये दूसरी आपत्ति जो आपने सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास ७ के प्रश्न ५२ पर उठाई है, वहां पर लिखा है कि परमेश्वर तीनों कालों का जानने वाला है इसलिए वह भविष्य की बातें जानता है। जिस प्रकार वो ईश्वर जब विश्वास करेगा उसी प्रकार तब जीव कार्य करेगा। इसीलिए जीव स्वयं स्वतन्त्र नहीं है, वह परतन्त्र है तथा ईश्वर स्वतन्त्र है। और न जीव को ईश्वर दण्ड दे सकता है, क्योंकि जिस प्रकार ईश्वर के ज्ञान से विश्वास होता है उसी प्रकार जीव कार्य (कर्म) करता है, जवाब ये है कि ईश्वर को तीनों कालों का जानने वाला कहना अज्ञानता का काम है क्योंकि भूतकाल वो है जो होकर भी न रहे और भविष्य काल वो है जो न होकर भी होवे और पहले से न हो परन्तु बाद में होवे, क्या ये कभी सम्भव हो सकता है कि–**"ईश्वर को कोई ज्ञान नहीं रहता"** या तो हो के होता है, उत्तम दृष्टि पर परमेश्वर का ज्ञान सदैव एकसा और तीव्र बना रहता है, भूतकाल और भविष्यत् काल, जीव के लिए हैं। ईश्वर ही में जीवों की भक्ति के तीन कालों के ज्ञान का जारी करना (बन्धन मुक्त) है, ना कि अपने लिए है। जिस प्रकार जीव आजादी से कार्य करता है उसी प्रकार पूर्ण ज्ञान होने से ईश्वर जानता है और जिस प्रकार ईश्वर जानता है उसी के अनुरूप जीव कार्य करता है, अर्थात् ईश्वर–भूतकाल, भविष्यत्काल व वर्तमानकाल के ज्ञान में विवेकशक्ति प्रदान करने में स्वयं स्वतन्त्र है और जीव जिस प्रकार वर्तमानकाल और कार्य करने में स्वतन्त्र है। उसी प्रकार ईश्वर का ज्ञान भी अनादिकाल वाला होने के कारण कार्य के ज्ञान की तरह दण्ड देने का ज्ञान कभी नहीं हो सकता, बस ! इसमें कोई दोष पैदा नहीं होता...........यहां पर मूल कापी में पाठ फटा हुआ है............इस इबारत में आपकी आपत्ति पूर्ण रूपेण खारिज़ हो रही है, आप कुछ शब्दों को लेकर मुग़ालता अर्थात् भ्रम पैदा कर रहे हैं, परमात्मा की शान में–**"सर्वशक्तिमान"** शब्द आया है, भूतकाल और भविष्यत्काल मनुष्यों के लिए हैं, ईश्वर के लिए नहीं। वह सदा एकसा रहता है, इसलिए इसको समय के अन्दर या समय का पाबन्द, ये नहीं कह सकते। ये सब अज्ञानता के उदाहरण हैं, वो सब कुछ अपने घेराव में लिए हुए है अर्थात् वो सब जगह व्याप्त है, कोई भी जगह संसार में ऐसी नहीं है कि जहां पर वो न हो अर्थात् वह परमेश्वर सर्वव्यापक है उस पर काल अर्थात् समय की पाबन्दी लगाना अज्ञानता का द्योतक है। अब मैं आशा करता हूँ कि आपकी ये आपत्ति भी ऐसी नहीं रही कि जिसके सम्बन्ध में और व्याख्या करके समय को बरबाद किया जावे।

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

आप सभी साहेबान पण्डित जी की तक़रीर सुन ही रहे थे, पण्डित जी भी क्या खूब हैं ? सारी बातों को तोड़–मरोड़ कर पेश करना खूब जानते हैं, असल मुद्दे को हवा में उड़ाना अगर कोई सीखे तो इन पण्डित जी से ! भाईयो ! बहस इस बात पर हो रही थी कि मन्त्र के अर्थ जो लगाये वो तो ठीक हैं परन्तु व्याख्या ये है कि स्वामी जी से पूर्व कोई ऐसा हुआ है या नहीं ? ये स्वामी जी का वाक्य है वेद का नहीं है। आयत जो पण्डित जी ने कही कि–**"ज़ालेकल किताब.............."** यहां पर **"ज़ालेका"** के अर्थ **"ये किताब"** के हैं, अब ये लुग़त अर्थात् कोश है, इसमें से खोज होगी कि ये कहां तक ठीक है ? आप तो छोड़े ही जाते हैं, एक मन्त्र का निर्णय कर लीजिये, मेरा आशय ये नहीं है कि कहां तक लोग समझ रहे हैं ? आप मेहरबानी करके केवल यह फ़रमा दीजिये कि धोखा देना मेरा कार्य है या आपका ? आप लोग भी स्वयं सोचें या विचार करें। इस व्याख्या को कल पढ़ूंगा, जिसमें स्वामी (दयानन्द) का कहना है कि–परमेश्वर को तीनों कालों का

जानने वाला कहना अज्ञानता का कार्य है। इस प्रकार आज यह चौथे दिन का शास्त्रार्थ २६ जून सन् १६०६ ई0 को समाप्त हुआ।

(पाँचवा दिन, तारीख ३० जून सन् १६०६ ई0)

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

काँटा है हर एक जिगर में अटका तेरा।
हलक है हर एक गोश में लटका तेरा।।

माना नहीं है जिसने तुझे जाना है।
जरूर कहीं दिल में है खटका तेरा।।

ये वही खटका है पण्डित जी जिसके कारण आप अपना–अपना आराम और चैन छोड़कर यहां पर अपने वतन से बहुत दूर आये हैं। इससे पहले ये मुबाहिसे (शास्त्रार्थ) ज़ोश में हुआ करते थे। हर मनाज़िर को अपनी हार और जीत का ख़्याल रहा करता था। अल्ला का फ़ज़ल है अब वो जोश जाता रहा क्योंकि हमने एक विशेष धर्म में पालन पोषण पाया है, जहां से सारे संसार को शान्ति का पैगाम दिया जाता है। हमारे अन्दर आपके प्रति कोई दुर्भावना नहीं है बल्कि हमारी सर्वप्रथम यही इच्छा है कि हम लोग इस्लाम मजहब को मानने वाले तथा आर्य धर्म को मानने वाले सभी बिना किसी ईर्ष्या–द्वेष की भावना रखते हुए पूर्ण सहानुभूतिपूर्वक अर्थात् हमदर्दी के साथ मिलकर कार्य करें, तो इस प्रकार बहुत जल्दी ही हम सत्य की ओर पहुंच जायेंगे। सारा ज़हान इस बात से वाकिफ़ है कि अगर कोई संसार में सच्चा धर्म है तो वो केवल इस्लाम है। उसी का नतीजा है कि आज इस्लाम के मानने वालों की तादाद सबसे ज्यादा है जो इस बात का एक जीता–जागता सबूत मौजूद है। यहां पर भी प्रत्येक धर्म के लोग मौजूद हैं, और सब अपनी–अपनी बात कहें और सारा संसार सुने जो कि सारे संसार में इसकी आज्ञा का पालन हो रहा है, इससे प्रमाणित होता है कि आगे अब वो समय भी दूर नहीं है कि जहां प्रत्येक व्यक्ति, मन्दिर या गिरिज़ा में बन्दगी करेगा और सारे ज़हान से जहालियत दूर होगी, सभी लोगों में धर्म के प्रति जागरूकता आयेगी। लोगों के बीच से नास्तिकता का नामोनिशान मिट जायेगा।

मैं स्वामी दयानन्द जी का तहे दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ क्योंकि उन्होंने सबसे पहले ऐसे कार्य के लिए पांव बढ़ाये जो अन्य किसी ने भी इस काम की पहल नहीं की थीं। पहले हम लोग सुना करते थे कि जो व्यक्ति चमार के यहां जन्मा वो सदा के लिए चमार ही बना रहा करता था, परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने इस बात के मुताल्लिक साफ़ तौर पर निश्चित रूप से बता दिया कि मेरे मिशन में ३५७ व्यक्ति ऐसे (चमार) ही आये हैं, उनके नाम भी हमारे यहां रजिस्टरों में दर्ज हैं। अब आप ही बतलाइये कि ऐसी भाई–चारे की मिसाल अब कहां देखने को मिलेगी ? इसलिए स्वामी दयानन्द के मुताबिक हम सबको आपसी ईर्ष्या–द्वेष दूर करना चाहिये।

मैं अपने उद्देश्य को एक नकल (लिपि) के साथ शुरू करता हूँ, एक व्यक्ति अदालत में मुद्दयी अर्थात् वादी है कि फलाँ मकान बिना किसी दूसरे के सम्मिलित हुए, मेरा है। दूसरे अन्य कोई दो व्यक्ति वहां बैठे हैं, वो इसमें सम्मिलत नहीं हो सकते। हमारा दावा ये है कि न प्रकृति ईश्वर में सम्मलित है और न जीवात्मा ! परन्तु आर्य लोगों का ये दावा उन्ही के मज़हब वेद के खिलाफ़ हैं, आपको इसकी मज़बूती में सबूत पेश करना

चाहिये। मेरे दोस्त ने तीन मन्त्र पढ़े हैं, जिनमें पहला मन्त्र ये था–"**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय**............" इसका अर्थ–शब्दों के अर्थों के अनुसार इस प्रकार है कि– दो पखेरू अर्थात् पक्षी क्योंकि एक वृक्ष पर थे। उनमें पहला भी सदा से है तथा दूसरा पक्षी भी सदा से है इस प्रकार दोनों का सम्मलित होना साबित हो गया, जब तक यह सम्मलित होने का प्रमाण पत्र नहीं दिखलाओगे तब तक मैं नहीं मानूंगा। आपने जो पेश किया था कि दो पक्षी............ यहां मूल कापी से मैटर गायब हैं........... तो यह पेश कैसा ? मानों यदि किसी का दादा और दादा का भाई सम्पत्ति में सम्मिलित हों तो मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या उनका दावा इन हालातों में ज़ारी रह सकता है ? सम्भव है न हो। मेरी बातों का जवाब दो भाई। सुनो जब कोई मकतब (मदरसे) में अबजद अर्थात् क, ख, ग, पढ़ने गया था तब मौलवी साहब ने उससे प्रश्न किया कि–"**इस चित्र की शक्ल कैसी है ?**" तो उसने उत्तर दिया कि–"**मेरे दादा की बन्दूक जैसी है**" तब उस मकतब के मौलवी साहब ने उस व्यक्ति को फ़रमाया कि बस ! इस चित्र के शब्द का नाम "**अलिफ़**" है। इसी तरह मैंने मान लिया कि ये एक पक्षी काल्पनिक रूप से माना हुआ ही सही, एक पक्षी से आत्मा, तथा दूसरे पक्षी का नाम परमात्मा है। परन्तु इसके सबूत में शिरकतनामा अर्थात् प्रतिज्ञापत्र दिखलाओ। और हाँ ! आपने जो अनुवाद पहले किया था उसमें से वह फालतू शब्द आपको बतलाये थे जिनका सम्बन्ध उस मन्त्र से था ही नहीं। इस्तदलाल और यकीन में अन्तर बताऊंगा, इस्तदलाल–दलील कति हुआ करता है अर्थात् पूर्ण तर्क हुआ करता है। जब तक पूर्ण प्रमाण नहीं लाओगे, वेद का मन्त्र उसके सबूत में नहीं दिखलाओगे कि रूह और माद्दा अर्थात् जीव और प्रकृति दोनों अनादि काल से हैं तब तक ये नाटकीय कहानी–किस्सा पूरी नहीं होगी।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

ऐ खालिके ! हर बुलन्दो पस्ती, शिश चीज अलाकुन ज़िहस्ती।
इल्मो अमलो फ़िराख दस्ती, इमानो अमान तन्दुरूस्ती।।

मौलवी साहब को इस समय अपने कहने के अनुसार अपने प्रश्न को वापिस लेना चाहिये था, परन्तु आपने ऐसा नहीं किया, जिससे पता चलता है कि अभी तक उनकी पूर्ण रूप से सन्तुष्टि नहीं हुई। अच्छा मैं भी दुबारा–तिबारा बतलाये जाऊंगा जब तक कि मौलवी साहब ये कहते रहेंगे कि आर्य लोगों की मान्यताएं वेद के खिलाफ़ हैं। क्योंकि रूह और माद्दे की क़दामत अर्थात जीव और प्रकृति का अनादित्व बक़ोल मौलवी साहब के अगर वेद में नहीं है तो मौलवी साहब का फ़र्ज बनता था कि ये वेद से उसे दिखलाते तथा यहां बैठी हुई सारी जनता को दिखलाते कि देखो– जो पण्डित जी कह रहे हैं वो वेद में नहीं है अर्थात् वेदों से प्रमाणित करते कि आत्मा और प्रकृति अनादि नहीं हैं, परन्तु आप ऐसा नहीं कर सके, मैंने तो यहां तक भी आपको छूट दी थी कि अगर वेद में से नहीं दिखला सकते हो तो कुरान में से ही दिखला दो, परन्तु आपने अपने दावे के सबूत में कोई भी प्रमाण पेश नहीं किया, और मेरा दावा है कि आप अन्त तक भी पेश नहीं कर पायेगें, आप अपने मुँह से अपनी बड़ाई कितनी भी करते रहें परन्तु आपकी पोल आज खुल गई, आप बड़ी लच्छेदार भाषा में ईर्ष्या–द्वेष मिटाने की बातें करते हैं। इस्लाम को सर्वोपरि बतलाते हैं। कौन मना करता है आपके इस क़ौल–को ? परन्तु पहले उसका सर्वोपरि होना साबित सिद्ध तो कीजिये। या केवल–"**कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा**" बस कहने से मतलब है, कहे जाओ ! आज सबको आपके इल्म का पता चल गया, मैं फिर चैलेन्ज के साथ कहता हूँ कि आप कोई प्रमाण वेद या कुरान कहीं से भी पेश करें। मैं अपने आपको हारा हुआ मानने को तैयार हूँ............... चारों तरफ सन्नाटा........... कहिये

मौलवी साहब ! आप मेरे समय में से चाहें तो वक्त ले सकते हैं। ...."**मौलवी साहब**"– मुझे उधार लेने की आदत नहीं है............ श्रौताओं में हंसी............. जब मेरी बारी आयेगी तो जवाब दिया जायेगा............. । "**पण्डित जी**"– आप अपनी बारी अभी से समझ लें.......... "**मौलवी साहब**"– नहीं मैं नियम के ख़िलाफ नहीं जाना चाहता............. "**पण्डित जी**"– ठीक है ! ठीक है। आप क्या चाहते हैं ? आपकी नीयत से यह सब समझ गये, हमारा कहना ये है कि आप बात को बढ़ाये चले जा रहे हैं। क्यों नहीं संक्षेप में जवाब देकर बात को खत्म करते अपना सारा समय........."**खोदा पहाड़ तो निकली चूहियाँ वो भी मरी हुई**"..........चारों तरफ तालियों की गड़गड़ाहट............... वैदिक धर्म की जय........... के नारों से वातावरण गुंजायमान हो उठा. .... सभी को शान्त करते हुए............पण्डित जी ने कहना आरम्भ किया– भाईयों ! मैं मौलवी साहब के जवाब देने से पहले ही बतलाये देता हूँ कि ये जवाब में क्या कहेंगे ? क्योंकि "**हमें खूब पता है हकीकत जन्नत की**........" ये सीधे–सीधे चलेंगे ही नहीं, अब कोई और दूसरा मसला उठा लायेंगे, और सारा वक्त इसी तरह ज़ाया करते रहेंगे और बाद में अपनी जीत का डंका भी बजवायेंगे। अब रही बात वेद मन्त्रों की ! जो मन्त्र व व्याख्या मैंने पेश की थी, आपने उनकी तरदीद अर्थात् काट भी नहीं की, न उनके पक्ष में न विपक्ष में कुछ भी नहीं कहा, बस एक ही जुमला रटा हुआ है कि– वेद में दिखलाओ ! वेद में दिखलाओ !! आप चिन्ता न करें आपकी ये इच्छा भी अवश्य पूरी की जायेगी। आपने "**अजामे काम**............" वाले मन्त्र के अर्थ करते हुए ये कहा कि– यदि किसी भाष्यकार ने पहले ऐसा किया हो तो हम मान जायेंगे। फिर आपने कहा कि शांकर भाष्य दिखलायेंगे, पर आपने बजाये शांकर भाष्य दिखलाने के यजुर्वेद पेश कर दिया। अतः आप इसके प्रत्येक पहलू से असमर्थ रहे जबकि ये संस्कृत की पुस्तक में प्रमाणित है। देखिये मन्त्र–"**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय**..........." का अर्थ व्याख्या सहित बतलायें कि हमने कौन से शब्द फ़ालतू जोड़े हैं ? हिन्दी बोलने वाले भी आत्मा को पखेरू कह दिया करते हैं। व्यापक और व्याप्त के मायने मुहितो–मुहात के हैं, वृक्ष के माने शरीर या जिस्म के हैं। "**अन्धनतमा परोसयन्ति यो असम्भूति उपास्ते**............" इस मन्त्र में पूछते हैं कि कोई शब्द वेदों से निकाल दिया जावे कि– जीव और प्रकृति का अनादित्व प्रमाणित करें। इस मन्त्र में–"**असम्भूति**" का शब्द मौजूद है जो अनादि काल की ओर संकेत करके प्रमाणित कर रहा है। "**सत्**".........."**सतचित्**"..............और "**सत्चितानन्द**" अर्थात् "**सच्चिदानन्द**" तुम ये तीनों शब्द बिना आत्मा वाली वस्तु को बता रहे हो।

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

वही पुराने दावे की मिसाल ! मैं पूछता हूँ पण्डित जी ये सिलसिला यूं ही कब तक चलाने का इरादा है ? यहां जो जनता बैठी है वह भी किसी फैंसले की इन्तजार में बैठी हुई है, जरा इस बात पर भी गौर कीजियेगा। अब पण्डित जी जरा आप ही बतलाइये कि बिना शिरकतनामें के ये अवैधानिक बात जो सम्मिलित होने वाला वाक्य कहां से आया ? अकारण ये कहना कि जीव और प्रकृति और परमात्मा, इनमें अनादि होने के गुण एक बराबर हैं, क्या ये स्वीकार करने के योग्य हैं ? अच्छा आप इस मसले को छोड़िये तथा विश्वास और सन्देह का अन्तर बताइये.......... श्रौताओं में हंसी......... "**पण्डित जी**"– भाइयों ! अभी तो देखते जाओ, मेरे काबिल दोस्त क्या–क्या छोड़ते हैं और क्या–क्या पकड़ते हैं ?............फिर जनता में हंसी का वातावरण............"**मौलवी साहब**"– पण्डित जी ! आप बीच–बीच में बोलकर जनता को गुमराह कर रहे हैं। तथा वादा खिलाफ़ी भी कर रहे है। नियम के मुताबिक जब आपकी बारी आयेगी तो खूब जी,

खोलकर बोलना, कौन मना करता है ? परन्तु इस तरह बीच–बीच में बोलना आपको शोभा नहीं देता, तो हाँ ! भाइयों मैं कह रहा था, कि पण्डित जी अगर विश्वास और सन्देह का अन्तर बतला देगें तो मैं अपना दावा वापिस ले लूंगा। यदि मैं यहां पर भाष्य नहीं लायां तो इससे क्या मतलब ? यदि मेरे ऊपर ये फ़र्ज लादा जायेगा कि मैं व्रेद या कुरान से प्रमाण दिखलाऊँ तो मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या पण्डित जी का कोई फर्ज नहीं बनेगा कि वो अपनी बात की पुष्टी में, मजबूरी में कोई प्रमाण वेद से दिखलाये ? अतः आपका भी पण्डित जी ये फ़र्ज बनता है कि– ईश्वर जीव और प्रकृति के अनादित्व वाले पक्ष में वेद से कोई प्रमाण पेश करें। इसका दायित्व मेरे ऊपर नहीं है। इसका तमाम भार आर्य समाज के ऊपर है। दावा है अवैधानिकता से सम्मिलित होने का। जिसनें नाजायज अधिकार ज़माया है उसके ऊपर है भार कि उसके सबूत में कोई प्रमाण पेश करें, वादी के ऊपर उसका कोई दायित्व नहीं है। दोनों बराबर हैं, एक धनवान है दूसरा निर्धन है, परन्तु दुकान में साझेदार नहीं हैं। जिस समय जीव और प्रकृति की बहस छेड़ेंगे तब उनका अनादित्व प्रकट करना और व्यापक तथा व्याप्त अर्थात् मुहितो–मुहात का सम्बन्ध बतलाना, वृक्ष काटा जाना आदि–आदि ये सब भाष्य मौजूद हैं, शाब्दिक अनुवाद वह नहीं, जो आपने बयान किये हैं, बल्कि उनका शाब्दिक अनुवाद तो ये है कि– दो पखेरू.........इत्यादि है, सबसे पहले शाब्दिक अनुवाद को समझिये, वरना ये सब बयान करना बेकार है। मेहरबान थोड़ा रहम खाकर इसे लुग़त (कोश) से साबित कीजिये, या किसी दूसरे भाष्यकार की राय से या ये कह दो कि पहले कोई वेद का जानने वाला नहीं था। दो पखेरूओं की दोस्ती थी, वे मालिक नहीं थे, ज़रा पूछिये कि ये शिरकतनामा कहां से आया ? अतः शिरकतनामा पेश करो। सम्भूति और असम्भूति का अर्थ जीवात्मा और प्रकृति के बताइये ? जो व्यक्ति सम्भूति और असम्भूति की पूजा करता है वह पाप करता है, आगे बन्दगी के नियम बतलाये हैं कि-ईश्वर के अलावा किसी की बन्दगी मत करो। स्वामी जी से पहले की व्याख्या दिखाइये। दूसरी बात ये नहीं कहना कि मौलवी साहब ने कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया। मैं बहुत से प्रमाण दूंगा। विवाद इस बात पर नहीं है कि नई है या पुरानी बल्कि मेरा कहना ये है कि जीवात्मा प्रकृति से पुरानी है। मुहावरों से कभी भी प्रमाणित नहीं हुआ करता। इस बात का ख्याल रखिये, आप इसमें दलायल पेश करें तो मैं भी वेद से ही प्रमाण पेश करूंगा। सम्भूति और असम्भूति का अर्थ जीव और प्रकृति के कहां से आ गये ? लिखिये, मैं उनको संस्कृत के विद्वानों के पास पहुंचाकर निर्णय की प्रतिक्षा करूंगा। मैं इस मन्त्र का अनुवाद कहता हूँ, मन्त्र ये है कि–"**द्वा सुपर्णा सयुजा**..........." दो पखेरू.......... और "**अज़**" का अर्थ "**बकरे**" के है। यदि इस स्थान पर ये अर्थ लागू न हो तो लिख क़र दो, इसको भी मैं संस्कृत के विद्वानों के पास बनारस ही भेजूंगा।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

वहां आप फ़रमाते हैं कि मेरा दावा है, मैं प्रमाण कैसे दूँ ? दावा है अवैधानिक अधिकार का ! परन्तु प्रमाण कैसे दूँ ? मैं प्रमाण नहीं देता। ज़नाबेमन् आपको पता होना चाहिये कि अदालत में जो वादी होता है उस पर ही प्रमाण देने का उत्तरदायित्व भी होता है। जिन्होंने अदालती कार्यवाही सुनी है उनमें से किसी ने ये न सुना होगा कि– वादी पहले अपनी ओर से प्रमाण दे जबकि हम प्रमाण भी दे रहे हैं। अतः मौलवी साहब आपका दावा सबूत के अभाव में अर्थात् बिना सबूत के खारिज़ करने के काबिल है। आप सम्भूति का अर्थ असम्भूति की पूजा बताते हैं, वहां सम्भूति का अर्थ अनादि के हैं, आपने इसको छुआ तक नहीं और उलटा कहते है कि व्याख्या प्रस्तुत कीजिये। मैं शांकर भाष्य में जोकि स्वामी दयानन्द जी से दो हजार वर्ष पूर्व हुए

हैं, प्रस्तुत करता हूँ, यदि "अज़" का अर्थ उन्होंने "प्रकृति" किया होगा तो हमारा और आपका ये झगड़ा समाप्त हो जायेगा, फिर आपको वह मानना पड़ेगा तथा आगे से इस पर कुछ भी कहने का अधिकार आपको नहीं रहेगा। बिना किसी सुबूत के किसी को ये कहना कि–"**तू चोर है**" जबकि अपराधी प्रमाण दे रहा है कि–"**मैं चोर नहीं हूँ**" यह बात काबिले ग़ौर नहीं हो सकती। मैं शांकर भाष्य दिखलाता हूँ, जो मेरे पक्ष की गवाही दे रहा है, यदि इस पर भी आप नहीं माने तो पब्लिक स्वयं निर्णय निकाल लेगी। देखिये– यहां पर "**अज़**" संयुक्त शब्द है, "अ" का अर्थ "**नहीं**" तथा "ज" का अर्थ "**जन्म लेना**".......... बीच में ही.......... सुनिये ! सुनिये !! "**मुन्शी अब्दुल अजीज साहब उर्फ श्री जगदम्बा प्रसाद**"– खड़े होकर कहने लगे.. .... देखिये........ मैं इन आर्यों की पोल खोलता हूँ............ । "**पण्डित जी**"– आप नीचे बैठ जाइये........... । गड़बड़ी मत फैलाइये.......... । "**जगदम्बा प्रसाद**"– आप धोखा दे रहे है.......... मैं इस तरह नहीं बैठूंगा..... ..... इसी शोरोगुल में पण्डित जी की बारी का समय समाप्त हो गया............ ।

श्री मुन्शी अब्दुल अजीज साहब उर्फ जगदम्बा प्रसाद–

भाइयों ! सुनों, "अज़" का अर्थ............. हाथ में पुस्तक लेकर बांचते हुए............ इस टीका में आनन्द गिरि ने किया है, जो भी सज्जन चाहें आकर देख ले, दिखाये जायें तो प्रमाणित हो सकते है........... "**बकरी**" ही अर्थ है...........और कोई अर्थ है ही नहीं।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

"अज" का अर्थ लुग़त (कोश) में "**बकरी**" के हैं, यदि किसी भाष्यकार ने, इसका अर्थ बकरीं के अलावा कुछ और किया होगा तो मैं मा़न लूंगा। और अपने लफ़ज वापिस ले लूंगा।

श्री मुन्शी अब्दुल अज़ीज साहब उर्फ जगदम्बा प्रसाद–

वेद मन्त्र "**अजामे कामः**..............." के अर्थ करते हुए बताया है कि देखिये–"**दयानन्द तिमिर भास्कर जिसके लेखक श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र हैं,**" उन्होंने अज़ के अर्थ बकरी के लिये हैं। और शंकर महाराज ने तो वेदान्त पर व्याख्या की है, इस बीच में न जाने कितने भाष्यकार हो कर गुज़र चुके हैं। जिन्होंने व्याख्या करते हुए अनेकों त्रुटियां कीं। आनन्द गिरि के टीके में भी अज़ का अर्थ वह नहीं है जो पण्डित जी फ़रमा रहे हैं बल्कि बकरी के ही हैं, जो उपनिषद में ईश्वर की पहचान के सम्बन्ध में निहित है। परन्तु दावा जो किया गया है वो आर्य समाज के तालीम की मान्यताओं के सम्बन्ध में है जो कि वेदों के विरूद्ध है। वास्तव में ये प्रश्न साइन्स से ताल्लुक रखता है परन्तु स्वामी जी ने इसके साथ जोड़ दिया, अब केवल विवाद ये है कि वेदों में ऐसा नहीं है। देखिये श्वेताश्वेतर उपनिषद को स्वामी दयानन्द जी ने प्रमाणित नहीं माना है। इसमें प्रकृति और जीवात्मा की चर्चा भी नहीं की। परमेश्वर को प्रकृति ने जन्म नहीं दिया। मैंने इसका प्रमाण नहीं दिया। "**अनादि**" शब्द को वेद में दिखलाऊंगा और ये शब्द भी दिखलाऊंगा कि ब्रह्म को जीव ने पैदा किया है। उपनिषद में जहां ये मन्त्र है, वास्तव में तो यह एक कल्पित बात है, पर फिर भी जब–"**द्वा सुपर्णा सयुजा**............" वाले मन्त्र पर बहस होगी तो इसे मैं उपनिषद से दिखलाऊंगा। आगे पीछे के मन्त्रों को मैं स्वीकार करता हूँ कि ये एक काल्पनिक बात है कि सब कुछ ईश्वर से होने का प्रश्न उपनिषद से निकलता है। इस फिलासफी को उड़ाने के लिए स्वामी दयानन्द जी ने, जीव, ब्रह्म और प्रकृति,

का इस बकरी की मिसाल से अर्थ तो जरूर निकलता है परन्तु यहां पर तो कई का चर्चा है। इसमें ये स्पष्ट किया गया है कि– जीव की क्या दशा है तथा ब्रह्म की क्या है ? जीव तो उसके सुख–दुख को भोगता है, ये ज़ाहिर करने के लिए कि जीव तो सुख दुख को भोगता है और दुनियां के आनन्द पाने में फंसा हुआ है। "**समानम्**" का अर्थ एक बराबर के है। अगला मन्त्र बताता हूँ प्रकृति का अनादित्व इससे नहीं निकलता, शाब्दिक अर्थ अज़ के, मन्त्र में अनादि और अबदी अर्थात् अनन्त नहीं निकलता है, प्रकृति और जीव का अनादिपन कहां से आ गया ? प्रकृति को परमेश्वर ने जन्म नहीं दिया, अगले और पिछले मन्त्र में इसका कुछ भी ज़िकर नहीं है। इस शरीर में दो पखेरू बैठे हुए हैं। जीवात्मा और परमात्मा। क्योंकि इस भाष्य के मानने में विभिन्नता है, इसलिए हम कहते हैं कि इस पर शाब्दिक बहस कीजिये,–"**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय...........**" मन्त्र से अगला मन्त्र ये है कि– "**अजामे काम.........**" ये सब मन्त्र अनुवाद के साथ इस शास्त्रार्थ के परिणाम में लिखे जायेंगे। और उसके शाब्दिक अर्थ भी !

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

"**अज़**" संयुक्त शब्द है मैने पहले भी जिकर किया था कि "अ" का अर्थ "**नहीं**" तथा "**ज़**" का अर्थ जन्म लेना। अर्थात् जिसका जन्म न हो उसको "अज़" अर्थात् अजन्मा कहते हैं। हमने शंकर भाष्य प्रस्तुत किया है। भाईयों ! आर्य समाज सत्य का प्रचारक तथा सत्य का ही पोषक है, बात वो होती है जो तर्क से प्रमाणित हो, बस ! निर्णय तो पहले ही हो चुका था। जबकि आपने शंकर भाष्य में, जो आपका कथन था कि अज़ का अर्थ–प्रकृति के नहीं है यह दिखलाइये ? आप ये भी कहते रहे थे कि– असम्भूति के अर्थ अनादि के दिखलाओ हमने तो–"**अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः**[१]" और "**द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्यो अभिचाकशीति**[२]।। आदि मन्त्रों के अर्थ करते हुए– "**अनादि**" शब्द दिखला दिया। जिससे हमारा दावा सिद्ध हो गया। हमने कल भी बताया था कि यहां पर तीन मन्त्र हैं, पहले में बृह्म का, दूसरे में जीव का और तीसरे में प्रकृति का जिकर किया गया है। लीजिये–"**दयानन्द तिमिर भास्कर**"[३] में भी देखिये इसमें भी काल्पनिक ही माना गया है। यहां पर भी अज़ शब्द को कल्याण कारक शब्द के रूप में ही उदधृत किया गया है। महर्षि व्यास जी ने भी इस "**अज**" शब्द से "**प्रकृति**" प्रमाणित किया है।

श्री मुन्शी अब्दुल अज़ीज साहब उर्फ जगदम्बा प्रसाद–

बहस तो........"**अजामे कामः.............**" वाले मन्त्र की व्याख्या करते हुए............. मैने स्वयं कह दिया था, कि यहां अतिश्योक्ति को इस्तेमाल किया गया है, अर्थात् इस बात को बहुत ही बढ़ा–चढ़ा कर पेश किया गया है। और ये परिणाम मैं भी स्वीकार करता हूँ। जीव और प्रकृति को ब्रह्म ने पैदा किया है, पांचवा मन्त्र–"**अजामे कामः...........**" और छटा मन्त्र–"**द्वा सुपर्णा सयुजा..........**" आदि हैं, यहां पर अज़ के अर्थ

---

१. देखिये– ईशावास्योपनिषद का वाक्य नं.–६,

२. देखिये–मुण्डकोपनिषद (तृतीय मुण्डक) प्रथम खण्ड का वाक्य नं.–१,

३. यह "**दयानन्द तिमिर भास्कर**" नामक ग्रन्थ महर्षि दयानन्द की मान्यताओं के खिलाफ लिखा गया था, जिसका मुहतोड़ जवाब–"**भास्कर प्रकाश**" नामक ग्रन्थ में दिया गया है। ये दोनों ग्रन्थ हमारे पास मौजूद हैं।

"लाजपतराय अग्रवाल"

बकरी के नहीं बल्कि परमात्मा के हैं,–"**द्वा सुपर्णा**........." मन्त्र में दो पखेरूओं (पक्षियों) का वर्णन है, निःसन्देह मौके के हिसाब से ये उदाहरण ठीक हैं। ये शरीर है, जिसमें दो पखेरू–जीवात्मा और परमात्मा इसमें बैठे हुए हैं, एक तो इनमें से प्रेम करता है, और दूसरा नहीं करता। हम स्वीकार करते हैं कि इससे आशय जीव और ब्रह्म से है। "**बाक बोधिनी**..........." इस मन्त्र में कहा है कि हम इसको अपनी इस साधारण बुद्धि से नहीं जान सकते। परमात्मा एक है, और वो एक ही है उसमें अन्य कोई दूसरा सम्मिलित नहीं है। वो परमात्मा सभी जगह फैला हुआ है तथा वह सब कुछ जानता है अर्थात् सर्वज्ञ है। इस खण्ड में अन्त तक परमात्मा के गुणों को ही प्रस्तुत किया गया है। अब आगे चलकर–"**परमात्मा सर्वव्यापक है**" ऐसा स्पष्ट किया गया है। आपने "**सम्भूति**" वाले मन्त्र पर जोर दिया है। भाष्यकार ने भी भाष्य के अनुसार ही लिखा है, यजुर्वेद का उपनिषद ईश उपनिषद है, इसमें लिखा है कि जो "**असम्भूति**" अर्थात् अ+सं+भूति अर्थात् व्यक्तिवाद की उपासना करता है वो गहरे अंधकार में गिरता है। और जो लोग "**सम्भूति**" की अर्थात् समष्टिवाद की उपासना करते हैं वो उससे भी गहरे अन्धकार में गिरते हैं। सम्भूति का अर्थ सम्भव जो भू धातु से बना है, असः, असम्भव, सम्भव, और असम्भव स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से दिखाये जावें। यहां पर कर्म व ज्ञान की चर्चा है। अतः मुमकिन है कि यहां पर ईश्वर से आशय लिया गया हो। आगे इससे अगले मन्त्र में निर्णय किया गया है कि–"**दुनियां को छोड़कर परमात्मा की पूजा करो**" जीवात्मा इधर प्रकृति से और उधर परमात्मा से सम्बन्ध रखता है। अन्तिम मन्त्र में रूह और माद्दे की कयामत अर्थात् जीव और प्रकृति की समाप्ती की चर्चा नहीं, जबकि सम्भूति और विनाश को साथ–साथ बताया गया है। और ये बात मैं भी मानता हूं कि जीव–ईश्वर और प्रकृति दोनों से सम्बन्ध रखता हुआ ! वहां प्रकृति और जीवात्मा की प्राचीनता की चर्चा नहीं है। अतः अब आपको ये पेश करना है कि–"**प्रकृति और जीवात्मा अनादि हैं**" जबकि वेदों में लिखा है कि जीव और प्रकृति, परमेश्वर से जन्म लेते हैं। क्या ये आपस में विरोध प्रकट नहीं कर रहे ? आपको तो वेदों के मुताबिक ही मानना चाहिये।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

उपनिषद में तीनों की चर्चा है, सूफयाना विचार इस्लाम धर्म और हिन्दू धर्म दोनों में मौजूद हैं, यहां पर सूफियाना बहस नहीं हो रही है। आपके कहने के अनुसार मुबाहिसा ख़तम हो चुका था, जबकि शंकर भाष्य में "**अज़**" के मायने "**प्रकृति**" के हमने दिखलाये, अजन्मा और सत्–सत्चित् और सत्चित्आनन्द आदि शब्द आत्मा, परमात्मा और प्रकृति तीनों के लिए आये हैं और वेदों में ऐसे बहुत से शब्द हैं, जो कई अर्थों में प्रयोग हुए हैं। आप लुग़त (शब्दकोश) से उन्हें मिलाते व दिखलाते हुए जीव और प्रकृति का जन्म साबित करते। जबकि हम अजन्मा कहते हैं, तो फिर जन्म कैसा ? जबकि हमने दूसरे भाष्यकार की राय से अज़ का अर्थ प्रकृति ही है, यह दिखलाकर प्रमाणित भी कर दिया तो फिर सम्भूति और असम्भूति से सम्भव और असम्भव या मिटने वाला या अमिट से तुलना क्यों ? प्रकृति को आप साबित कीजिये कि इसे पैदा किया गया है। जब आप मुझे ये प्रमाणित कर देगें कि माद्दा अर्थात् प्रकृति को अवश्य ही पैदा किया गया है तो मैं प्रश्न करूंगा कि कारण का कारण क्या होता है ? अर्थात् इल्लत से इल्लत क्या हुई ? और आपने जो ये कहा है कि सारा समय ईश्वर की पूजा में ही समाप्त कर दें तथा जो ईश्वर को न पूजे वो जहन्नम (नर्क) में चला जाये, तथा प्रत्येक व्यक्ति को खुदा परस्त और दुनिया परस्त दोनों होना चहिये ये शिक्षा हर इन्सान को पथभृष्ट करने वाली है। मस्जिदों की पूजा आप ही के यहां है। देखिये–"**अन्धं तमः**........." वाले मन्त्र के

अर्थ करते हुए बतलाया है कि–"**जो लोग परमेश्वर को छोड़कर शरीर की पूजा करते हैं, वो बड़े भारी नर्क में चले जाते हैं**" ये यजुर्वेद का मन्त्र है पृष्ठ १२७२। तथा "**अजायत**" शब्द के अर्थ "**जिनका जन्म नहीं हुआ**"। जबकि जन्में नहीं तो क्या अर्थ ? ये आपकी मुबारक जुबान से प्रमाणित हो चुका है।

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

भृमात्मक दलील से प्रमाण कभी भी साबित नहीं हुआ करता, विश्वस्त उदाहरण से प्रमाणित कीजिये, सन्देहात्मक उदाहरण कभी भी विश्वसनीय उदाहरण नहीं हुआ करता। मीट खाने से शक्ति नहीं आती, मैं गोश्त नहीं खाता। ये मुबाहिसा तो मैं मुफ्त में दिखा रहा हूँ। परन्तु कुश्ती मुफ्त में नहीं दिखाऊंगा, मेरी और पण्डित जी की बहस साबित नहीं हुई। वेद से प्रमाणित कीजिये, भ्रमात्मक दलील जो अन्तिम प्रमाण के रूप में दी जावे वह हुज्जत अर्थात् झगड़े का कारण भी हो सकती है। जोकि मेरे सामने मुकाबले में पेश नहीं हुई। मैंने एक वृक्ष पर डेढ़ सौ या दो सौ परिन्दे (पक्षी) बैठे हुए देखे, ये सब भ्रमात्मक है, इसी तरह आपने कहा कि माद्दा अर्थात्, प्रकृति परिवर्तनशील है और परिवर्तित होने वाली हादिस अर्थात् नई जन्म लेने वाली वस्तु होती है। अतः मेरा दावा प्रमाणित है। ....बीच में ही शेख अब्दुल अजीज साहब बोले..........।

श्री शेख अब्दुल अज़ीज साहब उर्फ जगदम्बा प्रसाद–

"**अजामे काम**.........." व "**सम्भूति**" और "**द्वा सुपर्णा**..........." इन तीनों मन्त्रों में से पहले मन्त्र से प्रकृति प्रमाणित है, मैंने ये नहीं कहा बल्कि ये कहा कि यदि किसी कारण इसे मान भी लेवें तो ये साबित नहीं होता, आर्यों को ये दिखलाना है कि परमेश्वर ने जीव और प्रकृति को पैदा नहीं किया या ये दिखलावें कि जीवात्मा और प्रकृति अनादि काल से हैं। हमारी आपत्ति स्वामी जी के भाष्य पर ये है कि वह वेदों के खिलाफ़ है। मैंने तो मना किया था कि एक दुनियांपरस्त और दूसरा खुदापरस्त, आपने उसका मज़ाक उड़ाया। वेदों में ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड का जिकर किया गया है। ये इस्लाम पर एतराज है कि– "**मस्जिदों में इबादत**" यहां पर इससे कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड को बताया गया है, उपनिषदों में मुक्ति का विषय है, यदि आप मुझसे कहिये तो मैं गीता में से दिखलाऊंगा कि जो लोग ज्ञानकाण्ड में फंसे हुए हैं और कर्म काण्ड नहीं करते हैं वो अन्धकार में पड़ते हैं, वो बुतपरस्त अर्थात् मूर्तिपूजक हैं, जो सूरज और चाँद की पूजा करते हैं वो और भी गहरे अन्धकार में गिरते हैं। देखिये कर्मकाण्ड क्या है ? सांस लेना और निकालना इसे कर्मकाण्ड कहा जाता है। इसमें प्रकृति की बुराई की चर्चा नहीं है। यदि आ भीजावे तो उसका मतलब ही क्या है ? आप ये प्रमाणित कीजिये कि–"**जीव को बृह्म ने पैदा नहीं किया**" अज़ परमात्मा को बतलाया गया, प्रकृति के पर्यायवाची शब्द दिखलाईये, आप स्पष्ट कहिये कि वेदों के अन्दर उनके जन्म के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है, देखिये–ऋग्वेद मन्त्र ११५, "**प्रकृति और जीवात्मा के अनादित्व के कारण हैं**", और देखिये–ऋग्वेद मन्त्र–७०, ८० इसका अर्थ–"**चाहता तो पैदा करता और न चाहता तो न पैदा करता**" अनुवाद–भृगुवल्ली।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मौलवी साहब ने अपना समय हास्यपूर्ण बातचीत में व्यतीत किया, मौलवी साहब कहते हैं कि–"**वेदों से नहीं दिखाया**"। भई–कमाल है ! हम हैरान हैं ! क्या किया जावे ? जिससे मौलवी साहब जी की तृप्ति हो सके, हम जैसे–जैसे तृप्ति करते जाते हैं, इनकी तो प्यास ही बढ़ती जाती है, अजीब हाल है, ये कैसी

जबर्दस्ती है ? वेद से दिखला रहे हैं, व्याख्यायें दिखला रहे हैं। लुग़त पेश कर रहे हैं कि–अजायत–अज–अजा के बहुत से भिन्न–भिन्न अर्थ हैं, परन्तु कुछ ध्यान नहीं किया जाता, यदि मेरे काबिल दोस्त मौलवी साहब, कल ये भी कह दें कि–"**मुकाबले पर ही नहीं आये**" तो ये दूसरी बात है। "**सच्चिदानन्द**" शब्द परमेश्वर के लिए आया है जो तीन शब्दों से मिला हुआ है। सत्–चित् और आनन्द, इसमें सत्–प्रकृति हैं, चित्–जीवात्मा है तथा सच्चिदानन्द–परमात्मा है, वह आनन्दस्वरूप है। जो केवल परमात्मा के लिए ही प्रयोग होता है। यहां पर सत्–चित् कहने से अर्थ पूरा नहीं हुआ। क्योंकि सत् और सत्चित में दो पदार्थ जीवात्मा और प्रकृति में है और सत् का सम्बन्ध जिसका अर्थ अनादि और हमेशा रहने वाले के हैं, वह तीनों पर लागू होता है। इसलिए सच्चिदानन्द कहा गया। अब इस विषय पर अधिक व्याख्या की जरूरत नहीं है। अब हम ये बतलाये देते हैं कि–"**अजायकाम**..........." से अज़–तम, विशेषता वाली प्रकृति से सम्बन्धित है, ये वेद मन्त्रों से प्रमाणित किया जा चुका है। आपकी शर्त तो ये थी कि शंकर भाष्य में दिखलाया जावे, हमने उसमें भी दिखला दिया। परन्तु आपके पास तो प्रत्येक कार्य अर्थात् प्रत्येक बात का उत्तर ना में ही है। आप रोटी खाने को, सांस लेने को ही कर्मकाण्ड बताते हैं, मैं आपसे बड़े सम्मान के साथ पूछता हूँ कि क्या बन्दगी करना कोई कार्य नहीं है ? पर वाह रे मुस्लिम फिलासफी ! ईश्वर भी हो, दुनियां भी हो, ये बात तो असम्भव ही है बाबा। यह तो वही बात हुई कि–

खुदा भी हो, दुनियां भी हो, ये बात है नामुमकिन बाबा।
खुदा का तालिब ना पकड़े, दुनियां का दामन बाबा।।

ये काम असम्भव है कि दुनियांपरस्त और खुदापरस्त दोनों एक साथ हो सकें। प्रकृति व उसका वजूद नाशवान है, प्रकृति का परिवर्तन कर्त्ता के अधिकार में है, वह स्वयं कोई आकृति धारण नहीं कर सकता, आप इस परिवर्तन का नाम पैदाईश कहते हैं। परिवर्तन की व्यवस्था से उसके जन्म का ध्यान होगा। जो उससे बनाया गया न कि कारण की पैदाईश ! यदि मिट्टी से घड़ा बनाया गया तो पैदाईश घड़े की मानी जायेगी, न कि मिट्टी की। अतः आपने गलती खाई जो अकारण प्रकृति की पैदाईश मान बैठे, क्या आप प्रकृति का कारण नाशवान वस्तु बतला सकते हैं ? या प्रकृति अकारण पैदा हुई ? आप तो कहते थे कि हमारा हुदूस अर्थात् नई बनने वाली वस्तु का दावा ही नहीं जबकि परदा था जो आपने कहा कि–मेरा दावा साबित हुआ। परन्तु अन्तिम समय तक आप पैदायशे माद्दा व रूह साबित न कर सके, इससे साफ हो गया कि आपका दावा प्रमाणित नहीं हो सकता है और हमने रूह व माद्दे का अनादित्व ठीक प्रकार से वेद मन्त्रों के द्वारा दिखला दिया है। इस प्रकार आज यह पाँचवे दिन अर्थात् ३० जून सन् १९०६ ई० का शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुआ।

(छटा दिन, प्रथम जौलाई सन् १९०६ ई०)

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

हस्ती से है तेरी, रंगो बू सबके लिये।
ताअत में है तेरी, आबरू सबके लिये।।

हैं तेरे सिवाय, सारे सहारे कमजोर।
सब अपने लिए, और तू सबके लिये।।

दारमदार यकें, ग़मी बाज़ पुर्स।
सद वाकिया, ऑन दर कमी बाज़ पुर्स।।

साहेबान ! ये एक धार्मिक बहस और धार्मिक भी कैसी उसूली बहस है। आर्य समाज के लोग मानते हैं कि ये वैदिक धर्म अनादि काल से है, इसके अलावा और कोई धर्म अनादिकाल से नहीं है। यदि ये बात वेद के द्वारा साबित हुई तो ठीक, वरना ये लोग न अनादि हैं और न धार्मिक हैं। बस ! किसी प्रकार की छेड़–छाड़ की जरूरत नहीं है। हमारा दावा ये है कि आर्य लोगों का धर्म वेद के खिलाफ़ है, वेद में कहीं पर भी ऐसा लिखा हुआ नहीं है कि जीव, प्रकृति और बृह्म ये तीनों अनादि हैं। कल ये साबित हुआ था कि ये तीनों बतौर एक उदाहरण के रूप में मौजूद हैं। सबसे पहले बात ये तय हुई कि वेदों और उपनिषदों में ये विषय बतौर उदाहरण के लिए लिखे गये हैं। वास्तविक बात तो ये है कि–यहां कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के लिए बात हो रही है, परन्तु उदाहरण में भ्रम पैदा होता है, अतः ये मुक्कमिल दलील नहीं हुआ करती, धार्मिक सिद्धान्त के, मसले को मुक्कमिल दलील से ही साबित करना चाहिये उदाहण से नहीं। चूँके इसके लिए कोई पूर्ण उदाहरण है ही नहीं, अन्यथा पण्डित जी अवश्य पेश करते। भ्रम दो प्रकार का होता है, (१)–विश्वासपूर्ण, (२)–संदिग्धतापूर्ण, ज़न का अर्थ गुमान का होता है, विश्वसनीय भ्रम और संदिग्ध भ्रम की व्याख्या कुछ भी नहीं हुई। चूँकि विवाद सिद्धान्त पर है। अतः बहस भी सैद्धान्तिक ही होनी चाहिये। भ्रम विश्वास से ख़तम किया जाता है। अतः काल्पनिकता को भ्रम, विश्वासित भ्रम या पूर्ण भ्रम से दूर कीजिये। सबसे पहले तो ये देखना चाहिये था कि यह कहां तक प्रमाणित हो सकता है ? अब रही ये बात कि आपके पास इसका कोई जवाब नहीं है।

मेरे क़ासिद से जरा मेरी कहानी सुन तो लो।
अरे चाक करना पीछे, खत जुबानी सुन तो लो।।

जानता हूँ मैं, के हो ग़ैरों के तुम ही राज़दार।
पर करूं जो कुछ बयां, वो कहानी सुन तो लो।।

दाद–मेरी जाँ फ़शानी की नहीं देते तो न दो।
पर करूँ जो कुछ बयाँ वो जांफ़शानी सुन तो लो।।

इसके बाद आप लोगों को नोटिस करता हूँ कि आप कुल माद्दे को तब्दील होना मान चुके हैं। क्योंकि मेरे सैक्रेटरी ने पण्डित मुरारी लाल शर्मा साहब जी से बहस नेस्ती और हस्ती पर की थी, व्याख्या प्रस्तुत करता हूँ। ....टर्न टन टन ऽ ऽ ऽ .... ।

आर्य समाज का पुरस्कार–

बाबु निहाल सिंह की उपस्थिति नहीं थी, और न है। क्योंकि विश्वास से सन्देह का लाभ उठाया जाता है, इसलिए सन्देह का लाभ दावा करने वाले का होता है, ना कि प्रतिवादी का।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

हाज़रीन ! आप सभी ने सुना होगा कि मौलवी साहब ने कितना समय पिछले विवाद के हल करने में ज़ाया अर्थात् बर्बाद किया है ? मैं पूछना चाहता हूँ कि–मौलवी साहब ! ये वाद–विवाद है, मनाज़रा अर्थात्

शास्त्रार्थ है या मुशायरा है या मरसीयाखानी का करबला है ? ....जनता में चारों तरफ हंसी ही हँसी..... ....भाइयों मैं मौलवी साहब को बतलाये देता हूँ कि–मैं भी शायर हूँ, दीवाने आर्यें बनाया है, इसको पढ़कर मैं भी समय बर्बाद कर सकता हूँ, परन्तु मेरे दोस्त ने एक सवाल खतम करने से पहले ही छोड़ दिया, और नया सवाल शुरू कर दिया, जबकि यह बात मौलवी साहब की मुबाहिसे शरायत के खिलाफ़ है, कारण सुनिये–

१.– क्योंकि शास्त्रार्थ की शर्तों व नियमों में ये शर्त निश्चित थी कि इस्लाम वाले वादी होंगे। इसलिए मौलवी साहब वादी की हैसियत से हाज़िर हुए।

२.– मौलवी साहब ने नियम के अनुसार अपना दावा पेश नहीं किया, बल्कि प्रत्येक अनुशासन के खिलाफ़ शास्त्रार्थ में वैदिक दावे की काट अर्थात् मुखालफत करने लगे।

३.– मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ में तय की गई किसी भी शर्त वा नियम का विधिवत पालन नहीं किया, और अपने को वादी कहकर आपत्तिकर्त्ता ही बने रहे, यदि मौलवी साहब से ये पूछा गया कि आपत्तिकर्त्ता और प्रश्नकर्त्ता में क्या अन्तर है ? और आपस में उन तीनों शब्दों में क्या अनुकूलता है ? ऐसी बार–बार प्रार्थना करने पर भी मौलवी साहब ने कुछ भी जवाब नहीं दिया।

४.– मौलवी साहब से बहस की गई कि– आप वादी हैं। आप अपने वाद को प्रमाणों के द्वारा साबित कीजिये, परन्तु इसका उत्तर भी मौलवी साहब ने नहीं में दिया।

५.– मौलवी साहब यद्यपि कई बार अपनी अज्ञानी संस्कृत पर पराजित हो चुके थे, परन्तु ज्ञानी शब्द संस्कृत में शाब्दिक बहस करते रहे, जबकि गलत कहे गये शब्द, भाषा को भी स्वीकार करते रहे।

६.– मौलवी साहब से अनुरोध किया गया कि यदि आप संस्कृत और हिन्दी भाषा से नावाकिफ़ अर्थात् अनभिज्ञ हैं तो कृपया अपने बाद के प्रमाणों में अपनी प्रमाणित पुस्तक कुरान शरीफ़ से ही प्रमाण पेश कीजिये, परन्तु बार–बार प्रार्थना करने पर भी मौलवी साहब ने कोई आयत पढ़ कर नहीं दी।

७.– बहस करने के समय से ही ये प्रमाणित हुआ कि मौलवी साहब का कोई व्यक्तिगत आपत्ति पर दावा नहीं है, बल्कि ये सब एतराज तो हफ़्ये आर्य समाज लेखक शेख अब्दुल अजीज़, नव मुस्लिम से हो रहे हैं। जिनका उत्तर पुस्तक के रूप में दिया जा सकता था। परन्तु आपने नियमों के खिलाफ़ मुबाहिसे के दौरान इसकी कुछ भी चिन्ता न की।

८.– मौलवी साहब को शास्त्रार्थ के अध्यक्ष के पीछे बताये गये मन्त्रों के भाग में और व्याख्या बतलाई गयी, उनकी स्वीकार की गयी पुस्तक शांकर भाष्य से प्रमाण दिया गया, परन्तु मौलवी साहब जी की नासमझी के कारण वे समझने में असफल अर्थात् फेल रहे।

६.– आपने अपनी मदद के लिए, पुस्तक के लेखक श्री अब्दुल अजीज साहब को खड़ा किया, जो कि हमारे बतलाये हुए सभी प्रमाणों को स्वीकार करते हैं। परन्तु "अज़" का अर्थ **"बकरी"** भी बतलाया गया है, जबकि ये शब्द अपने को स्वयं ही बतला रहा है।

१०.– याद रहे कि परसों बहस के दौरान यह निश्चय हुआ था कि, शांकर भाष्य में, अज के अर्थ बकरी के हैं, परन्तु बार–बार मांगने के बावजूद भी अन्त समय तक मौलवी साहेबान शांकर भाष्य को दिखलाने में

नाकामयाब रहे, बस ! केवल दिखलाने का वायदा ही करते रहे।

११.– तथा बीच में उस बात को हज़म करके नया मुद्दा पेश करने लगे। जब आर्य समाज की मान्यता के अनुसार अज का अर्थ बकरी की जगह प्रकृति के निकाल कर दिखलाया तो तब कहने लगे कि इसे छोड़िये, आप आनन्दगिरि की टीका दिखलाइये, हम इसे नहीं मानते।

१२.– आर्य समाज ने पण्डित ज्वालाप्रसाद के द्वारा रचित–"**दयानन्द तिमिर भास्कर**" से साबित किया कि "**अज़**" के मायने "**प्रकृति**" के हैं, क्योंकि उन्होंने अज शब्द लिखा है, इसलिए अन्त तक अज़ शब्द पर ही बहस होती रही।

१३.– आखिर अब इस शब्द के अर्थ का फ़ैसला किसी लुगत (कोश) से ही हो सकता है। यदि कोश में अज़ के अर्थ प्रकृति के भी होंगे तो आपको मानना पड़ेगा। परन्तु मौलवी साहब ने इसको भी त्वज्जो नहीं दी, बल्कि ये कहने लगे कि ये शब्द तो परमात्मा के लिए भी आ सकता है।

१४.– तब आर्य समाज की ओर से कहा गया था कि बेशक ये शब्द परमात्मा के लिए भी प्रयोग होता है, परन्तु यहां पर इसकी जरूरत किस रूप में है ? देखिये ये मन्त्र यहां पर किस भाव को प्रकट कर रहा है ? तथा यहां पर उसकी जरूरत किस रूप में हैं ? परन्तु मौलवी साहब ने इसकी कोई भी परवाह नहीं की।

१५.– मौलवी साहब स्वीकार करते हैं कि– मन्त्रों में जीव, ब्रह्म और प्रकृति की मानवीयकरण के रूप में चर्चा है। अतः अब कोई झगड़ा बाकी नहीं रहा, हाँ ! केवल दिखावटी हठधर्मी जरूर बाकी रह गयी है।

१६.–चूँके इस वाद–विवाद अर्थात् मुबाहिसे का फैंसला जनता को करना है, अर्थात् इस शास्त्रार्थ की जज़ जनता है, इसलिए जनता का ध्यान इस ओर लाया जाता है, कि वादी द्वारा पेश किया गया दावा बिना तर्क व प्रमाण के साबित नहीं हुआ, इसलिए इस दावे को ख़ारिज करें।

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

इन बातों का जवाब देना मेरा काम नहीं। व्यक्तिगत रूप में कहे गये वाक्य से मेरा कोई ताल्लुक नहीं। आपके कुछ कह देने से मेरी शान में कुछ फर्क आने वाला नहीं है। मेरा अनुवाद जो इस वेद मन्त्र का है, किसी भी वेदों के जानने वाले पण्डित के पास भेज दीजिये, यदि यह गलत साबित हो जावे तो बस ! समझना कि मैं हार गया और जो दूसरे विद्वानों के द्वारा किये गये अर्थ हैं, जैसे बकरा–बकरी आदि, हालांकि अज़ का अर्थ अनेक भाष्यकारों ने प्रकृति के भी लिखे हैं, ये सब कुछ ठीक ! परन्तु अन्त में, मैं यही कहूंगा कि ये सब काल्पनिक ही हैं, पर मुझे दुख तो इस बात का है कि आप मेरी आपत्ति पर ठीक से तवज्जो ही नहीं दे रहे हैं, इधर–उधर भागे फिरते हैं, तथा जनता को भी गुमराह कर रहे हैं। मेरी आपत्ति, मेरा एतराज इस मन्त्र पर है ही नहीं, अरे भाई, मेरा एतराज है आप पर, कि आपकी मान्यता जिसे आप वेदानुकूल कहते हो, वह वेद के विरूद्ध है। आप मेरे दावे (एतराज) को पूर्ण दलील पेश करके दूर कीजिये और ये साबित कीजिये कि संदिग्ध भ्रम और विश्वसनीय भ्रम क्या हैं ? आप प्रकृति को नाशवान और परिवर्तनशील होना कह चुके हैं।

श्री शेख अब्दुल अजीज साहब–

आर्य समाज प्रकृति को अनादि नहीं मानता, जबकि वेद कहता है कि अनादि है, जब मैंने इस आशय के मन्त्र पढ़े और उनके अर्थ किये तो आपने उनके खिलाफ़ कुछ नहीं कहा, तब हम यह क्यों न मान लें कि

आप हमारी बात से सहमत थे ? तो भी ये कोई दूसरी समस्या नहीं है, मैं फिर एक मन्त्र और पेश करता हूँ। और पण्डित साहेबान जी से गुजारिश करता हूँ कि इनके जवाब फ़रमायें– देखिये मंन्त्र **"स नो बन्धुर्जनिता. ....वेद भुवनानि विश्वा............धामन्नध्यैरयन्त[1]।।** तथा **"विश्वानि देव[2]..........."** इनसे प्रमाणित होता है कि परमेश्वर एक है, अर्थात् उसमें कोई सम्मिलित नहीं है, और सब कुछ उसी ने पैदा किया। देखिये–**"मापांक" लेने माया वाला परमेश्वर................"** आपने अपने सबूत में कोई भी मन्त्र पेश नहीं किया, मैं जनाबे पण्डित जी साहेबान के जहन में ये बात डाले देता हूँ कि हम लोग खाली कुरानेपाक के ही जानकार नहीं हैं, हम पण्डित जी की तलवार से ही पण्डित जी को फ़ना करने की हिम्मत भी रखते हैं।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मैं मौलाना साहब जी को ये बतला देना चाहता हूँ कि किसी सच्ची कहानी को बयान करना व्यक्तिगत वाक्य नहीं हो सकता, तथा मेरी आपसे कोई व्यक्तिगत दुश्मनी तो है नहीं, जो मैं आपकी शान के खिलाफ कुछ कहने की गुस्ताखी करूँ, बल्कि मैं तो अल्ला–तआला से यही दुआ मांगता हूँ कि वह मेरे काबिल व मुवज्जिज दोस्त मौलवी साहब की शान में और ज्यादा से ज्यादा बरकत लायें।............यह सुनते ही मौलाना साहब मुस्कुरा उठे............. भाइयों ! मौलवी साहब ने इस प्रश्न को जहां का तहां छोड़ कर फिर वही पहला मसला शुरू कर दिया। जो परसों निश्चय होकर समाप्त कर दिया गया था। शांकरभाष्य आप लोगों के सामने पेश किया गया था, और अज के मायने प्रकृति के दिखला भी दिये गये थे। मौलवी साहब अज के मायने–**"अजन्मा"** के हैं और आप ये तसलीम अर्थात् स्वीकार भी कर चुके हैं कि उपनिषदों में ईश्वर, जीव और प्रकृति की चर्चा की गई है। बहुत सी दफ़ा अलग–अलग व्यक्तिगत ढंग से और कभी–कभी तीनों को इकट्ठा करके इसकी चर्चा मौजूद है। अर्थात् कारण की पूजा करो, न कि कार्य की। आपने इसके मायने **"सम्भव"** और **"असम्भव"** बतला दिये। एक व्यक्ति ने मेज बनाई तो इसके ये मायने नहीं हो गये कि उसने वृक्ष भी बनाया, जन्म देने वाला एक है, ये बात हम भी मानते हैं, वहां पर ये बतलाया गया है कि–**"माया वाला परमात्मा है"** यानी ऐसी माया का स्वामी अर्थात् मालिक एक है, पर आप कहते हैं कि–**"अजायतः"** के अर्थ प्रकृति के नहीं हैं, मैं तीन दिन से आपको बतलाता चला आ रहा हूँ और लुगत भी दिखला रहा हूँ तथा अनेकों व्याख्यायें भी पेश करता चला आ रहा हूँ, परन्तु इस बात का मेरे पास कोई इलाज नहीं है कि आप **"मुर्गी की एक ही टांग बतावें"**। आगे देखिये– **"गं मतः.........."** इस मन्त्र में यह प्रकृति के लिए आया है। आपने अब तक कोई मन्त्र संस्कृत का ऐसा नहीं दिखलाया कि जिससे ये साबित हो सके कि जीव और प्रकृति नवनिर्मित्त अर्थात् वर्तमान में नयी बनी हुई वस्तु हैं।

देखिये– [1] **"स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।**
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीय धामन्न ध्यैरन्तः।।"

(यजुर्वेद–३२–१०)

[2] **"विश्वानिदेव सवितुर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।। २।।**

(यजुर्वेद–३०-३)

नोट–

यह दोनों उपरोक्त मन्त्र–ईश्वर स्तुतिप्रार्थनोपासना मन्त्रों में भी आये हैं।

"लाजपतराय अग्रवाल"

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

आपने मुखालफत नहीं की, और न ये बतलाया कि मैंने क्या त्रुटि की ? आपने ये कहा कि प्रकृति परिवर्तनशील है, ये दो बार कहा, परन्तु आपने मेरी काट अर्थात् मुखालफ़त नहीं की। जो मेरा मकसद था वो पूरा हो गया। आपने **"सम्भूति"** और **"असम्भूति"** के अर्थों की व्याख्या भी नहीं की, बढ़ई मेज को जन्म देने वाला अर्थात् ख़ालिक नहीं है, मैंने नहीं सुना कि ख़ालिक, अर्थात् बनाने वाला तू जरूर है, परन्तु जन्म देने वाला नहीं है। मांगा तो ये था कि इस सम्बन्ध में मुक्कमल दलील पेश करो, जो अब तक पेश नहीं की गयी। ईश्वर खालिक तो सबका है, परन्तु जन्म देने वाला नहीं हैं। अस्तित्व व संसार में अन्य गुणों में तेरे जैसा अन्य कोई दूसरा नहीं है, इसलिए उसे बेमिसाल अर्थात् लासानी (अनुपम–अद्वितीय) कहा गया है जो इस कुल जहान में अकेला ही साबित हुआ।

श्री शेख अब्दुल अज़ीज साहब–

वेदों और उपनिषदों में, रूह और मादे की क़दामत अर्थात् जीव और प्रकृति के अनादित्व के मन्त्र मौजूद हैं, देखिये–**"नमस्ते न मतब अयतश्रिव के कला..............."** अर्थात् वो परमात्मा दिन और रात के बन्धन से अलग है, तब न अन्धेरा था न प्रकाश, परन्तु ये मुमकिन नहीं है, अब माद्दा और रूह कहां रह गये ? इसको खुदा कहते हैं, उसी की बन्दगी करनी चाहिये। वो सूरए तूर है, अर्थात् शुरू दुनियां में सबसे पहले पूजा उसी से शुरू हुई, जैसे अग्नि के ढेर से चिन्गारी पैदा हुई, इसी प्रकार से सब वस्तुएं पैदा हुई। केवल एक कण अपने अस्तित्व से अलग नहीं हुआ करता यही ईश्वरीय आदेश है। शंकराचार्य जी महाराज से पूर्व एक मन्त्र वेदों में मौजूद है कि–**"वो एक ही है"** जो कुछ भी पैदा हुआ है, वो इसका मालिक है, अर्थात् पैदा करने वाला है।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मैने एक बात आपके सामने पेश की थी कि माया वाला............परमेश्वर है। परन्तु मौलवी साहब ने मालिक व खालिक का अन्तर नहीं बताया। परमेश्वर मालिक है, और परमेश्वर ही पैदा करने वाला है अर्थात् खालिक है। परमेश्वर प्रकृति का मालिक है, परन्तु सृष्टि की रचना नहीं। जी साहब ! अब आप सृष्टिकर्त्ता और निर्माणकर्त्ता का अन्तर बतलाइये। जब दो वस्तुएं मिला करती हैं तब उसे हस्ती कहते हैं। मेरी हस्ती. ....के अर्थ प्रकृति के हैं, हमः ओस्त के मायने सब कुछ ईश्वर है। आपने कहा कि जिस प्रकार अग्नि के ढ़ेर से चिन्गारी पैदा हो जाती है और फिर अग्नि समाप्त हो जाती है। जब थोड़ा–थोड़ा हिस्सा किसी वस्तु का निकल जाता है, तो क्या वो वस्तु विद्यमान रह जाती है ? आप कहते हैं कि वेदों में ऐसा नहीं है। ये हमारा दावा है, हमारी पुष्टी ने इसको छोड़ दिया। परमात्मा को स्वयंभू तथा एक रस होने वाला...........कहते हैं। **"अज"** के अर्थ **"प्रकृति"** के ही हैं, ऐसा हमने शांकर भाष्य से प्रमाणित किया जो ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व हो चुका है। बुद्धिमानों को इशारा ही काफी होता है।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

मैं वेद से प्रमाण मांगता था, परन्तु आपने सायंस से प्रमाणित किया, हमारी बहस सायंस से नहीं है।

चिन्गारी निकलती है, यह मज़ाक तो उपनिषदों पर है। मेरा प्रश्न ये है कि– आप वेद को सन्देहात्मक मानते हैं, हमको इसका उत्तर देने की जरूरत नहीं।

श्री मौलवी अहमद अली मेरठी–

........मूल कापी से मैटर गायब............ शब्दों का आर्यसमाज की ओर से दावा है। हमारे मौलाना साहब. .... मूल से मैटर गायब......... ये बात है, जब प्रकृति और रूह दोनों अनादि हैं तो वो ईश्वर की सम्पत्ति में आ ही नहीं सकते। देश पर अधिकार नहीं हो सकता, अगर होगा तो वह अवैध माना जावेगा। पण्डित जी साहब की ओर से पेश हुआ कि ईश्वर अद्वितीय है, इससे प्रकृति और आत्मा का अनादित्व समाप्त हो जाता है, परन्तु कहने को ईश्वर की कोई मिसाल नहीं अर्थात् वो अनुपम है, अद्वितीय है। जबकि सृष्टि के आरम्भ से तीनों ही बराबर हैं, पूरा ज़हान जानता है कि इन्सान अपनी बहादुरी के कारण ही शेर कहलाता है, जबकि और दूसरे गुणों में वो अलग है। प्रकृति या तो शाही होगी या ग़ैरशाही। ईश्वर को जब प्रकृतिरूपी सामग्री ही प्राप्त न होगी तो और वस्तुओं के बनाने में असफल रहेगा। परन्तु इस्लाम की मान्यता इसके विरूद्ध है। जितने उदाहरण या प्रमाण आप कहें मैं जिन्दा तूबा या फ़ैशागोरसी या न्याय शास्त्र से पेश करूँ। ये बहस असली मुद्दे से बाहर है। मौलाना साहब असली मुद्दे को छोड़ना नहीं चाहते हैं। जब पूरा सामान अर्थात् प्रकृति रूपी सामग्री इस संसार के बनाने में ही खर्च हो जायेगी तो दूसरा आलम अर्थात् ज़हान कहां से बनेगा ? आप अपने मन्त्रों से प्रमाणित कीजिये। जोकि आर्य समाज का दावा है कि आर्य समाज वेदानुकूल आचरण करता है, अतः ये प्रमाणित करने का भार उनका है। किसी वजूद को किसी हद तक ही बढ़ाइयेगा, वरना उस वजूद की सीमा का ही पता नहीं लग पायेगा और उसको अर्थात् सृष्टि को बनाने के लिए और सामग्री की जरूरत पड़ेगी, मैं जानता हूँ कि आंशिक पदार्थ से कोई वस्तु नहीं बन सकती है। नुक्ते का सम्बन्ध और नुक्ते की अधिकता बढ़ायेगा।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

इस जंगल में सौदा नंगे पाव भी है।

श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा–

नुक्ते का उदाहरण वेद ही के ऊपर लागू होता है उकलीदस मानता है कि खत के दो टुकड़े **"नुक्ते"** होते हैं। नुक्ते से खत और खतों से सतहों को घेरा तो है।

नोट– यहां पर श्री पण्डित भोजदत्त जी की तकरीर नहीं लिखी जा सकी।

श्री मौलवी अहमद हसन साहब–

माद्दे को यह प्रमाणित करें कि इस पर अधिकार किया गया है, जबकि माद्दे को ईज़ाद अर्थात् पैदा नहीं किया तो कब्जा कैसा ? आत्माओं को कब्जे में करना ईश्वर का कौन सा अधिकार था ? कि वो दण्ड देता है, बशर्ते इसके कि माद्दा अपनी हस्ती से स्वयं अनादि है। यदि केवल एक माद्दे से ही दूसरी सृष्टि की रचना करनी पड़े तो दूसरा नया माद्दा कहां से लायेगा ? जबकि उसको नयी दूसरी सृष्टि बनाने की ज़रूरत नहीं। ईश्वर इससे अधिक कार्य नहीं कर सकेगा, माद्दे को अगर न बनाने वाला प्रमाणित करेंगे तो हमारा अस्तित्व

खुद बाकी है। तीनों पदार्थों की अनादि सत्ताएं अपने आपको छुपाती हैं, यदि माद्दा खारिज़ ही न हो। उकलीदस का धर्म है कि वह कभी शब्दों से मिलकर नहीं बनता, क्योंकि शब्दों में खत मिलाकर कोई वस्तु नहीं बना सकते। माद्दा भाग्य के योग्य नहीं, यदि भाग्य के योग्य पायेगा तो उसको मिला हुआ अर्थात् संयुक्त कहना पड़ेगा, जो आपके वाद को कमजोर और अवैध घोषित करेगा।

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

बात मेरी जो नहीं सुनते अकेले होकर।
ऐसी बेढ़ंगी सुनाऊँ के सुनो और सुनों।।

विश्वस्त भ्रम और संदिग्ध भ्रम में क्या अंतर है ? बयान कीजियेगा।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

आप लोगों के भाषण का ढंग कुल मिलाकर ये स्पष्ट हुआ कि एक माद्दा बताया जावे, माद्दा संसार के नवनिर्मित होने पर उसकी सम्पत्ति हुआ, ये पक्का विश्वास है कि अनादि तत्व का मालिक भी अनादि हुआ करता है। नई बनाई गई वस्तु होने की दशा में मानवीय सम्बन्ध मानना पड़ता है। आप ये मानते हैं कि ईश्वर कारण स्वरूप है, तो तब बताईये कि वह बिना कारण के कार्य में परिणित कैसे हो जाता है ? यदि हो जाता है तो ईश्वर को माद्दा के अधिकार से भी नीचे गिरा दिया। फ़लसफा या सायंस ये दूर की बातें हैं, कि कारण का परिणाम कार्य नहीं हुआ करता, मनुष्य और जीव के गुण पृथक–पृथक हैं। बताने में धब्बा नहीं लगता और मुन्शी अब्दुल अजीज साहब ने अर्थ गलत बताये हैं।

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

प्रमाणित करने का जिम्मा वादी का है।

श्री मुन्शी अब्दुल अजीज साहब–

अधिकतर.............से अर्थ प्रकृति या परमात्मा ! परमात्मा से पैदायश निकल आती है। इस प्रकार यह प्रथम जौलाई का अर्थात् छटे दिन का शास्त्रार्थ समाप्त होता है।

(सातवां दिन, २ जौलाई सन् १९०६ ई0)

(विषय–कुरान पर आपत्तियाँ)

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

भाइयों ! आज बड़ी प्रसन्नता का समय है कि आज हम सत्य और असत्य को कसौटी पर कस–कस के सबके सामने प्रकट कर रहे हैं, मैं आज कुरान शरीफ के बारे में कहूंगा, इसी प्रकार कि जिस तरह हमारे सम्मानीय मौलवी लोगों ने पवित्र वेद को आपके सामने प्रकट किया है मेरी सभी मौलवी साहेबानों से प्रार्थना है कि कृपया कुरान शरीफ़ की आयतों से प्रमाणित कीजिये कि–

१. क्या ईश्वर शरीर वाला अर्थात् साकार है या निराकार ?

२. क्या सूर्य एक समुद्री चश्में में डूबता है ?

३. ऊँटनी का पत्थर से जन्म लेना।

४. पत्थर का कपड़े लेकर भागना।

५. लाठी का साँप बनकर भागना, क्या ये बातें कुदरत के कानून के खिलाफ़ नहीं हैं ?

६. जीवात्मा और प्रकृति तथा कारण से कार्य, यह भी कुरान शरीफ से साबित करियेगा और इसके नया जन्म लेने वाले पदार्थ होने का प्रमाण दीजिये।

७. हमारे मुस्लिम भाईयों का ये दावा है कि कुरान शरीफ़ अल्ला तआला की ओर से उतरी हुई एक पुस्तक है, इसका भी सबूत दीजिये।

८. इलहाम अर्थात् परमेश्वरीय ज्ञान की परिभाषा बतलाइये ? मेरी प्रार्थना है कि इन सब सवालों के जवाब कुरानशरीफ़ की आयतों को पेश करते हुए दिये जावें।

श्री मौलवी अहमद अली मेरठी–

ज़नाब पण्डित जी साहब ने जिस प्रकार आपत्ति की, कि–"**पत्थर कपड़े लेकर भागा**" यह किसी आयत से बतलावें, तथा वह आयत पेश करें कि कुरान की किस आयत में यह बात कही गई है ?

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

नियमानुसार पीछे स्वीकार की गयी शर्तों के अनुसार पण्डित जी मुद्दयी अर्थात् वादी हैं, और बात–चीत नियमानुसार ही होनी है, जितनी आपत्तियां पण्डित जी साहब ने की, उनमें से कोई भी आपत्ति नियम के दायरे में नहीं है। मैंने जो एतराजात् वेदों पर आपसे किये थे, उनके लिए आपने फ़रमाया था कि वो आपके एतराज नियम पर थे, जो हमने मन्त्र पेश किये, उन सबके हवाले बताये, इनके प्रमाण बिना सोचने योग्य थे, आपने जितनी भी आपत्तियाँ की वे सब बिना हवाले के पेश की, इसलिए हम नहीं मानते कि ये हमारे सिद्धान्त हैं, जब तक हमारे सिद्धान्त स्वीकार नहीं होते तब तक इन पर आपत्ति करने की क्या जरूरत थी ? हमारा मजहब ऐसा नहीं है। पहले इसे पूर्ण रूप से प्रमाणित कीजिये, कि कुरान शरीफ में ऐसा लिखा हुआ मौजूद है, खाली कह देने से नहीं माना जायेगा, साथ में कुरानशरीफ़ की आयतें भी पेश करनी होंगी।

श्री मौलवी अब्दुल हक़ साहब देहलवी, कुरान के भाष्यकार–

मुझको इस समय केवल ये बात कहनी है कि आपने कुछ सवाल पेश किये, और सवाल भी वो कि–"**जैसा हमारे अब्दुल मजीद साहब ने फरमाया है कि–वो हमारे सिद्धान्त नहीं हैं।**" जो निराधार हैं, कुरान में हैं या नहीं ? साथ इसके कि बहुत से सवाल हैं, और बहुत सी पूछताछ है, तथा बहुत सी आपत्तियां हैं, मैं चाहता हूँ कि ठीक प्रकार से कायदे के अन्दर ही बहस होनी चाहिये। यदि आपत्तिकर्त्ता की गलती साबित करूँ तो मान लेना चाहिये कि मेरी कोई आपत्ति नहीं। बस ! मेरी ये रूचि है कि बहस नियम के दायरे में हो।

श्री सैक्रेटरी मिर्जा अजीज बेग साहब–

पहले सिद्धान्त तय कीजिये।

श्री मौलवी अहमद अली साहब मेरठी–

शास्त्रार्थ की शर्तों एवं उसूलों के मुताबिक बात ये थी कि जब सभी फलसफे को इस्लाम ने फैंक दिया तब आर्य समाज को कहना चाहिये था कि–अब अधिक न बोलिये, कई बड़ी भारी बातें इस्लाम ने प्रमाणित की कि जो इस्लामी सिद्धान्तों के विरूद्ध हैं कुरान को इस्लाम ये कह कर पुकारता है कि........... ।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

हम कुरानशरीफ़ से दिखला देंगे कि ये आपके मान्यता प्राप्त सिद्धान्त हैं। आर्यसमाज के दस नियम आपको मालूम हैं ? यदि आप भी ये बता देवें कि ये अहले **इस्लाम के नियम नहीं हैं तो हम साबित कर देंगे** कि ये आपके उसूल हैं, और ये उसूल आपकी कुरान शरीफ़ के खिलाफ हैं। आपने हम पर आक्षेप लगाया कि आर्य समाज की मान्यता वेद के विरूद्ध है। और हम चिल्लाते ही रह गये कि आप वादी के रूप में हैं, अपने वादी होने का प्रमाण पेश कीजिये, आपने कोई ध्यान नहीं दिया। फिर ये बतलाइये कि **"शक्कुल कमर"** और **"मेराज"** अर्थात् **"रसूले खुदा का आसमान पर खुदा के पास जाना"**, क्या ये इस्लाम के सिद्धान्त नहीं है ? सिद्धान्त वा नियम वही हैं जो कुरानशरीफ में मौजूद हैं। क्रमवारी मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिये, आपने चौथा प्रश्न पकड़ लिया, आप सभी मनाज़िर साहेबान अच्छी तरह कान खोल कर सुन लीजिये कि– **"कुरान शरीफ़ के दावेदार आप लोग हैं, तथा वेद की ओर से दावेदार मैं हूं।"** इसलिए मेरे द्वारा की गयी आपत्तियाँ अपनी जगह पर बिल्कुल ठीक हैं, आप सभी साहेबान मेरे द्वारा पेश की गई सभी आपत्तियों के क्रमशः जवाब दीजिये।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

आज जो कुछ पब्लिक ने सुना है कि मुसलमानों के मूल सिद्धान्त और उनकी मान्यताएं अलग–अलग शाखाओं में विभाजित हैं, क्या आर्य समाज का ये नियम है कि– जीव और प्रकृति अनादि हैं, मैं समझता हूँ कि सिद्धान्त किसे कहते हैं ? वादी बन कर सबूत देना मुश्किल है, मैने मुद्दयी बन कर कहा कि आर्य समाज की विवाह संस्कार वाली पद्यति वेद के विरूद्ध है। और आप इस विषय में ये दावा कर रहे हैं परन्तु स्वीकार नहीं करते, मैं फिर बतलाये देता हूँ कि इस्लाम अपने उसूलों पर चलने वाला मजहब है, मैं सैद्धान्तिक ज्ञान की किताबें आपके पास भेजता हूँ देखिये नियम के अर्थ कानून के हैं या नहीं ? उसूल के नहीं है। किसी ज़ाहिल आदमी ने कहा कि सूर्य गड्ढे में डूबता है, इसको हज़रत ने समझाया कि नहीं ? मैंने कल भी कहा था कि– दावे को ठोस दलील से प्रमाणित कीजिये, आपने सन्देहात्मक दलील से काम लिया। कोई भी ये नहीं मानेगा कि मुसलमानों के यहां उसूल नहीं हैं। मेरा ये दावा है कि– कुरान का एक–एक शब्द उसूल पर है तथा सही है। और इस विश्वास का सम्बन्ध दिल और दिमाग से है।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मुकर जाने का क़ातिल ने, अजब ही ढ़ंग निकाला है।
दुरंगी तेरी बातों ने, हाय ! उठाकर मार डाला है।।

मौलवी साहब ! मैं जानना चाहता हूँ कि क्या चमत्कार पर आपका विश्वास नहीं है ? आप कह चुके हैं कि कुरान शरीफ़ मेरा मूल सिद्धान्त है। ईश्वरीय पुस्तक का प्रथम नियम ये होना चाहिये कि वो ईश्वर

के अस्तित्व पर बहस करे। सभी मजहबों का आधार ये है कि, परमात्मा के अस्तित्व को साबित करे कि वो शरीर रखने वाला अर्थात् स्थूल है या बिना शरीर वाला अर्थात् निराकार है। इस प्रकार समय नष्ट करना व्यर्थ है। आप मेरी आपत्ति को लेकर बतलाइये कि खुदा की हैसियत कुरानी इलम से क्या रह जाती है? यदि इसी प्रकार अनियमित रूप से बहस की जायेगी तो एक भी सवाल हल होने वाला नहीं है। और रही अनुमान की बात? उसके लिए तो पहले ही तीन दिन घोटा लगाया जा चुका है। जो कुछ हुआ वो यहां की पब्लिक से छुपा हुआ नहीं है। वह तय हो गया, जो कुछ आपने कहा उसका आपको उत्तर पे उत्तर दिया गया, प्राचीन भाष्यकारों के हवालों से पेश करके प्रमाणित किया। इस्लाम का सर्वप्रथम मूल सिद्धान्त अद्वैतवाद है। क्या हमारा ये प्रश्न करना कि–ईश्वर साकार है या निराकार? तथा वह ईश्वर क्या शय है और वह क्या करता है? गलत है? मैं जोर देकर अपनी इस बात को कह देना चाहता हूँ ताकि पूरी जनता इस बात को सुन ले। मौलवी साहब आपके मजहब की भलाई इसी बात में है कि ईश्वर के बारे में मैनें जो सवाल किये उनका कुरान के हवालों से सही जवाब दें। जीवात्मा या प्रकृति व कारण या कार्य के सम्बन्ध में हमें उसूल ही दिखला देवें कि–चमत्कार उसूल नहीं, यदि नहीं तो इस्लाम जाता रहेगा। हम तो ये भी जानते हैं कि ईश्वर की वाणी के विरूद्ध कोई जुबान नहीं खोल सकता। आप कहते हैं कि कुरान में वो आयत **फिरओन**[1]– से सम्बन्धित है। आप स्पष्ट कह दीजिये कि–"**कपड़े ले भागना**" यह खुदा का कलाम नहीं है। हम तो इसी खुदा के कलाम पर ही बहस करेंगे, हम खुदा के मानने वाले हैं, और मौलवी साहब अद्वैतवाद अर्थात् इस्लामी तौहीद के मानने वाले हैं। आप स्पष्ट कह दीजिये कि फलाँ–फलाँ चर्चा कुरान शरीफ में दूसरे लोगों के अर्थात् फिरओन आदि के हैं, वह खुदा के नहीं हैं, उन पर हम बहस नहीं करेंगे, बाकी खुदा के कलाम पर बहस करेंगे।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

खुदापरस्ती तो इतनी बड़ी और अन्दर कुछ भी नहीं। ये पण्डित जी के मजहब का हाल है और अहले इस्लाम को देखिये इसमें व्याख्या और उसूलों की पुस्तकें मौजूद हैं। हम पण्डित जी साहेबान को फिर बतलाये देते हैं कि हमने सत्यार्थप्रकाश के ऊपर बहस नहीं की बल्कि वेदों और उपनिषदों पर की थी परन्तु जब तक ऊँट पहाड़ के नीचे को नहीं निकलता उसे अपनी औकात का पता नहीं चलता। अतः अब आप साफ–साफ समझ लीजियें कि ये सब आयतें आफ़आले कुलूब में से हैं, अर्थात् दिली विश्वास पर आधारित हैं, "**पहाड़ों का बोलना**" क्या हैं? आप भी ध्यान दीजिये ये सब......... बीच में...........,

श्री मौलवी अब्दुल हक़ साहब–

भाइयों! पहला सवाल पण्डित जी का ये है कि वह परमेश्वर साकार है या निराकार? दूसरा प्रश्न ये है कि– क्या जीव और प्रकृति कारण और कार्य नहीं हैं? रही बात ऊँट का पत्थर से जन्म लेना!

---

[1] **फिरओन**– यह एक बादशाह था, जो अपने आपको खुदा कहता था, और जनाबे मूसा जो नबी हुए हैं वह इसी फिरओन के दौर में मौजूद थे, जबकि हज़रत मूसा ने उसे बहुत समझाया कि अल्लाह एक है वह जिस्म नहीं रखता, हमें उसी की इबादत करनी चाहिये। परन्तु फिरओन ने उनकी एक न सुनी और वह जगह–जगह पर अल्ला की बराबरी करते हुए अपने आपको खुदा होने का दावा किया करता था, इससे सम्बन्धित विस्तृत जानकारी के लिए कुरआन मजीद में आप देख सकते हैं।

"लाजपतराय अग्रवाल"

आदि–आदि। नहीं, बराये मेहरबानी आप ही बतलाइये कि मुजीब अर्थात् उत्तरदाता को इसका जंवाब देने के लिए पन्द्रह मिनट कैसे पर्याप्त हो सकते हैं ? न्याय की ओर सच्ची बात भी ये है कि तथा नियम भी यही है कि पन्द्रह मिनट में इससे ज्यादा उत्तर दिया ही नहीं जा सकता। आप चश्में के अर्थ क्या समझे हुए है ? हो सकता है इसमें हमारे और आपके बीच भिन्नता हो। ये जिसको अस्वीकार करते हैं मैं उसे कुरान से साबित कर दूंगा। आत्मा और प्रकृति को कारण और कार्य कह देवें कि–शरीर की परिभाषा नहीं दी। शब्दों पर बहस है, कोई कहता है कि–लकड़ी की क्या परिभाषा है ? रेलगाड़ी की क्या परिभाषा है ? मैं खाली लच्छेदार भाषण नहीं चाहता, आप बतलाइये कि हेतु और कारण में क्या अन्तर है ? आप कुरान से बतलाइये कि–सूर्य गन्दे पानी के गड्ढे में, समुद्र में या नाले में, कहां पर डूब जाता है ? लिखी हुई इबारत इस फिलासफी को नहीं फ़रमाती जैसा कि पण्डित जी फ़रमा रहे हैं। **"जुलकरनैन"**[1] ने प्रतिदिन सूर्य को कीचड़ में डूबता हुआ देखा है। यह सन्देहात्मक विचारधारा आपत्तिकर्त्ता की है, आप कुरान शरीफ से बतलाइये कि उसमें उसकी ऐसी कौन सी आयत मौजूद है जिसमें **"ऊँट पत्थर से पैदा हुआ है"** तथा **"पत्थर का कपड़े लेकर भागना"** निहित है। जबकि हम ऐसा नहीं मानते, और न **"लाठी का साँप बन जाना"** आदि–आदि। जनाब पण्डित जी साहब ! हम लोग चमत्कार को तो तसलीम अर्थात् स्वीकार करते हैं परन्तु फ़लसफ़े अर्थात् दार्शनिकता की आड़ लेकर। वैसे ही नहीं.......,

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

आपने प्रश्नों के उत्तर देने शुरू कर दिये हैं। प्रश्न कुदरत के कानून के सम्बन्ध में हैं। व्याख्या–**"सूर्य कीचड़ में डूब गया"** देखिये कुरान शरीफ व तफ़सीरों में मौजूद है कि नहीं........... मूल पाठ दिखलाया गया. ...., मेरा पहला सवाल ये है कि वह परमेश्वर शरीर वाला है या बिना शरीर वाला ? यह आप हमको कुरान शरीफ से बतलाइये। आपने आयत पढ़ी थी, परन्तु व्याख्या नहीं की, आप स्पष्ट शब्दों में कहिये कि–कुरान में ऐसा आया है कि नहीं ? मैं फिर कहता हूँ गौर फरमायें–

१.–आप कहते हैं कि ये **"जुलकरनैन"** का ख्याल था, परन्तु आप देखिये वहां पर स्पष्ट–अल्ला मियाँ और हज़रत मौहम्मद साहब के बीच बातचीत का वर्णन मौजूद है।

२.–**"असहाबे कहफ़"** की बाबत ये बतलाया गया है कि वो आज तक कुएं में पड़े हुए हैं।

३.–आत्मा और ईश्वर का एक ही आदेश है, क्या गिल् का अर्थ कीचड़ के नहीं है ?

४.–क्या आपके सारे ओलुमाये सलफ अर्थात् पीर पैगेम्बरों (विद्वानों) के विचार गलती पर थे ?

इन चारों प्रश्नों के सम्बन्ध में कहूंगा कि आप क्रमवार कुरान के हवालों सहित जवाब दीजिये तथा आगे प्रश्न जारी है कि वह परमेश्वर शरीर वाला है या बिना शरीर.............,

श्री पण्डित मुरारीलाल जी शर्मा–

भाइयों ! आप सभी को इस बात का पता पहले से ही है कि ये शर्तें–**"टोपरी"** में इस चर्चा के आरम्भ

---

[1] **"जुलकरनैन"** सम्राट सिकन्दर की उपाधि, जिसके दोनों कन्धों पर बालों की लटें पड़ी रहती थी, उसे **"जुलकरनैन"** कहते थे।

"लाजपतराय अग्रवाल"

होने से पहले ही तय हो चुकी थी, उसके बावजूद भी मेरे काबिल मेहरबान मौलवी साहेबान श्री अब्दुल मजीद साहब तथा जनाब मौलवी अब्दुल हक़ साहब फ़रमाते हैं कि– साहब ! चार प्रश्नों का उत्तर पन्द्रह मिनट में कैसे दिया जा सकता है ? विचार कीजिये कि एक मन्त्र की व्याख्या में एक घण्टे से कम नहीं लगता। परन्तु हमने चारों प्रश्नों का उत्तर मौलवी साहब को ठीक पन्द्रह मिनट के अन्दर किस खूबी के साथ दिया, तथा अपना मकसद भी किस विशेषता के साथ पूरा किया ? यह किसी से छुपा हुआ नहीं है। अब अपनी बारी आई तो जनाब बगलें झाकते हैं, बहाने मिलाते हैं, मैं साफ लफ़्जों में बयान करता हूँ कि इस तरह बहानेबाजी से पीछा छूटने वाला नहीं है, पर मौलवी साहब भी बेचारे क्या करें, उन्हें इसके सिवा कुछ नज़र भी तो नहीं आ रहा, इनकी हालत भी ऐसी हो गयी कि–

मुसीबत में पड़ा है, सीने वाला सीमें दामां का।
जो यह टांका तो वह उधड़ा, जो वह टांका तो यह उधड़ा।।

...........श्रौताओं में चारों ओर जबर्दस्त हँसी............ मौलवी साहब ! आप कहेंगे कि–ईश्वर शरीर वाला नहीं हैं, परन्तु हम इसको शरीर वाला आपके कुरान शरीफ़ से ही साबित करेंगे। मौलवी साहब ! आप आज देखते जाइये, हम बहस भी करेगें तथा उसका विरोध भी साबित करेंगे। हम आज यह साबित ही करके रहेंगे कि संसार में सच्चा मजहब कौन सा है ? ....श्रौताओं में चारों ओर तालियां ही तालियाँ.............।

श्री मौलवी अब्दुल हक़ साहब–

तीर पर तीर चलाओ, यह सर किसका है।
दिल यह किसका है, मेरी जाँ यह ज़िगर किसका है।।

जनाब शर्मा साहब ! आपने सारा वक्त फिजूल में बर्बाद किया। ये कोई बुद्धिमानी की बहस नहीं है, आप यह चमत्कारी भाषण देकर जनता को गुमराह नहीं कर सकते, यहां कोई इलैक्शन नहीं हो रहा.........जनता में हँसी.......... आप गम्भीरता से सवाल करिये, जवाब भी आपको उसी क़ायदे से दिया जायेगा, पर यह कोई तरीका नहीं है जो आपने अख्तयार किया है, इस तरह आप अपना रौब यहां की जनता पर नहीं डाल सकते। आपसे गुजारिश है कि पहले आप एक–एक बात निश्चित करते जावें, ये बहस विवादी बहस से बाहर है। सिवाय इसके कि वक्त ज़ाया करें, देखिये–"**फतहुल्लाह काशानी का किया हुआ तर्जुमा**" मैं बयान करता हूँ कि– स्वामी दयानन्द ने अन्य भाष्यकारों के खिलाफ़ अर्थ किये हैं। क्या पहले सनातनधर्म वाले इसके सही तात्पर्य को नहीं समझे थे ? ईश्वर शरीर वाला है या बिना शरीर का ? ये एक कसौटी है कि–"**वेद इलहामी हैं या कुरान**", मुसाफिर जी को भी ये कोई हक़ नहीं है कि वे इलहाम पर चोट करें। अपनी इलहामी पुस्तकों में तब्दीली कर दीजिये। सबसे पहले तो मैं कुरान से साबित करूंगा। परन्तु मैंने जो ये प्रश्न किया कि–शरीर किसे कहते हैं ? बतलाइये यदि अदालत में कोई किसी मकान के सम्बन्ध में यह दावा करे तो सबसे पहले अदालत उस मकान का नक्शा मांगती है, ताकी यह पता लगे कि इस झगडे की असली बुनियाद क्या है ? हम नहीं मानते कि–फतहुल्ला काशानी का तर्जुमा ठीक है। मैं इससे भी बेबस नहीं हूँ, परन्तु क्या आप जानते हैं कि–शरीर किसे कहते हैं ? अगर मैं तारीफ़ करूँ तो क्या आप बतला सकते हैं कि तारीफ़ गलत की है या सही ? उस समय तक ! जब तक कि शरीर का ज्ञान न हो शरीर की व्याख्या या प्रशंसा के सम्बन्ध में बड़े–बड़े हकीमों ने एतराज किये हैं। इससे पूर्व कि कुरान के बयानात् दिखाऊँ आप खुद ही शरीर की

परिभाषा कीजिये या इसके बारे में नावाक्फीयत ज़ाहिर कीजिये, जब मुबाहिसे में निचोड़ की स्थिति आयेगी तब मैं आपको इसका उत्तर दूंगा, ईश्वर की प्रजा ईश्वर के अस्तित्व में शामिल नहीं है। शरीर के अस्तित्व के बावजूद–खालिक और मख़लूक अर्थात् पैदा करने वाला तथा पैदा होने वाला दोनों अलग–अलग हैं। ईश्वर उत्पत्तिकर्त्ता है, सब वस्तुओं की उत्पत्ति करने वाला। सबसे पहले आप शरीर की परिभाषा दीजिये तब मैं प्रमाणित करूंगा कि–जो वस्तु बिना शरीर की हो वह अलग–अलग नहीं हो सकती। इल्लते–मालूल अर्थात् कारण और कार्य की भी परिभाषा बतलाइये, भाषण देना और बात है, परन्तु काबलियत का पाना और बात है। मेरे इन सवालों का जवाब दो.............. जनता में...............अल्ला हो अकबर...............के नारे लगाये गये............... ।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

भाइयो ! मौलवी साहब ने मेरे प्रश्न का उत्तर ये दिया कि पण्डित जी ने मेरी पवित्र पुस्तक पर वार किया है। और कहा है कि– मेहमान का कुछ पता नहीं, दयानन्द ने इस अनादित्व को समाप्त किया। ये मेरे सवाल का जवाब है।........... जनता में चारों ओर हँसी.........., हमने पीछे ब्यान किया है, तथा आपने हमारी ज़ुबान भी पकड़ी थी। अब हमारे सवालों का जवाब दीजिये– क्या हमने वेद मन्त्रों की व्याख्यायें पेश नहीं की ? और अब हमको रोका जाता है कि–कुरान शरीफ के अन्दर की कहानियाँ पेश न की जायें !

क्यों जनाब ! हम पूछना चाहते हैं कि जब मौलवी अब्दुल मजीद साहब को समझाते हुए जिस समय प्रमाणित पुस्तकों की चर्चा की गई थी कि क्या हदीसें भी दीने इस्लाम में शामिल हैं ? तब हमारे दयालु–मेहरबान दोस्त मौलवी अब्दुल मजीद साहब ने फ़रमाया था कि–तमाम इस्लामी धर्मशास्त्र और हदीसों की पुस्तकों को प्रमाणिक मानें। मनुस्मृति में जो लिखा है कि जो वेद के अनुकूल मेरी बात न हो, उसको मत मानों, केवल धर्मशास्त्र की किताबों को मानें, परन्तु जो कुरान के ख़िलाफ़ हैं वह स्वीकार करने योग्य नहीं हैं। इस विचार से कि मौलवी सनाउल्ला मान रहे हैं, यह भी मनाज़रे में आ जावें। किसी भी मुसलमान ने आज तक ऐसा नहीं माना कि किसी हक़ की किताब के किसी हिस्से को माने और किसी हिस्से को न माने। आप वादी हैं, सबूत पेश कीजिये, आप वादी के मायने बतलाइये, ताकी यह गलतफ़हमी दूर हो सके। क्या इसका नाम टाल–मटोल करना या हठधर्मी नहीं है ? फतहुल्लाह कासानी का जिक्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करो, क्या ये इन्साफ़ की बात है ? कि आपने दूसरों के मसले से हमें जोड़ दिया ? जहां तक हमारे सनातन धर्मी भाइयों का सवाल है, वो हम और वे जाने, आपके पेट में दर्द क्यों होता है ? आप बतलाइये–फ़रीउद्दीन अत्तार को काफ़िर का फतवा दे दिया गया है। वास्तविक बात यह है कि मैं सच्ची बात को अवश्य बयान करूंगा। इस्लाम को फ़लसफा और सायंस से बड़ी चिढ़ है, बड़ी दुश्मनी है, इसके सिवा मैं आपको यह भी बताऊंगा कि साइल का अर्थ मांगने वाले के हैं। आप मुझको साइल अर्थात् सवाल करने वाला समझ कर जवाब देना, क्या शर्तें होंगी ?..........अब मैं आप पर एतराज करता हूँ देखिये–कुरान शरीफ आपका ही मकान है, आप ही उसका नकशा पेश कीजिये। सवाल आसमान से और जवाब रस्सी से मिला, क्या खूब है ! देखिये आयत नं.–१७ का तर्जुमा, जिससे प्रकृति साबित नहीं हो सकती। खालिक अर्थात् पैदा करने वाला और मखलूक अर्थात् पैदा होने वाला इसकी बहस खतम नहीं हो सकती। हमारा जानना ठीक नहीं है कि आप ऐसे शब्दों से अपना दृढ़ निश्चय साबित कीजिये कि–"**क्या अल्लाह मियाँ कुरान शरीफ़ के अनुसार शरीरी है या अशरीरी ?**" अर्थात् साकार है या निराकार ? तब बात आगे चलेगी.............. ।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

भाइयों ! हमारे भाई मौलाना साहब का थोड़े शब्दों में आशय ये था कि कोई अदालत में दावा करके और ये कहे कि मैं प्रश्नकर्त्ता अर्थात् साईल बन कर आया हूँ और अपने मुहं से साईल की परिभाषा पेश करें, ऐसी फ़ालतू बात केवल ऐसी ही है कि जिससे कुछ हासिल नहीं होना है। अहले इस्लाम वाले बाक़ायदा पूरे विश्वास के द्वारा उस खुदा पाक को, शरीर से पवित्र करते हैं। मौलवी साहब तो एक काँटे का हिस्सा हैं। दलील–फलसफ़े पर है कि प्रत्येक मिश्रित पदार्थ, अन्य पदार्थों से बनी हुई वस्तु नवीनता से खाली नहीं होती, इसके कण, प्रकृति के कारण से होंगे, क्योंकि व्यवस्था में ये बात आवश्यक है कि इसमें नवीनता की अनिवार्यता आती है। चूँके वह सब पदार्थों का उत्पत्तिकर्ता है, इसलिए उस अल्लापाक का कोई शरीर नहीं है, देखिये आयत–"**ला सदरक**.............." इसको सामान्य व्यक्ति अनुभव नहीं कर सकते, और देखिये आयत, "**नुमा सोलत**.............." अर्थात् नतीज़ा ये निकला कि–"**इस्लाम खुदा ए पाक को बेमिस्ल अर्थात अद्वितीय मानता है, और शरीर को मोतेवर मानते हैं**" जीव और प्रकृति का अनादित्व मान कर अनुरूपता आ जाती है–आयत............. अर्थात् वो जो सभी से श्रेष्ठ है, "**यद**" के अर्थ "**हाथ**" के हैं। परन्तु मुरादी अर्थ दूसरे हैं। काशी के पण्डित उनकी गवाही देने को तैयार हैं। खुदाये पाक की शुद्धता जैसी प्रमाणित हुई, वैसा ही बोलेंगे–

वो ये मुफ़र्रिज़ है और कतरा है दरया हमको।
नज़र आता है हमें, जुज़ नहीं तमाशा कुलका।।

अहले इस्लाम ने फ़लसफा और आयतों से यह साबित कर दिया कि–इस्लाम खुदाये पाक को बेमिस्ल अर्थात् अद्वितीय तथा एक मानता है।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मौलवी साहब ने पूर्व में, वादी और प्रतिवादी की बात को दोहराया। मैं ये बात पहले भी कई बार बतला चुका हूँ कि मैं वादी वेदों का हूँ, और आप कुरान शरीफ़ के दावेदार हैं। मैं साईल अर्थात् सवाल करने वाला हूँ। ये ठीक है कि मिश्रित वस्तु के लिए पदार्थों की आवश्यकता हुआ करती है। ये हमारे लिए लाभदायक है न कि हानिकारक ! वो अनिवार्य अस्तित्व वाला है, हमारी आपत्ति "**यद**" आदि शब्दों पर है, ये सब शब्द कुरान शरीफ़ में आये हैं, खुदा कुरान शरीफ़ की तालीम के अनुसार, हाथ–पैर–सर आदि सब रखता है, पर ताज्जुब है कि मेरे मौलाना दोस्त उसे शरीर से अलग मानते हैं। यही तो हमारा एतराज़ है कि कुरान शरीफ़ में ऐसा नहीं है। आप बड़े ज़ोर के साथ कह रहे हैं कि–वह अल्लाहतआला बेमिस्ल अर्थात् उसकी मिसाल वाला कोई नहीं है, वह अद्वितीय है, और फिर शफ़ाअत अर्थात् मुक्ति कैसी ? अल्लाह भी शफीह अर्थात् मुक्तिदाता है और पैग़म्बर भी ! यही मैं ये पूछना चाहता हूँ कि जब दोनों एक जैसे हैं तो फिर बेमिस्लियत कहाँ रही ? क्या ये शिर्क अर्थात् दूसरे का शामिल होना साबित नहीं है ? क्या कमाल है ? ईश्वर को भी सज़दा और नाशवान पदार्थ को भी ! अजीब फिलासफ़ी है ? शिरकत और वस्तु दो हुआ करती हैं, और दोनों में एक ही वस्तु का मौजूद होना और बात है तथा शिरकत अर्थात् सम्मलित होना और बात है।

रहा ये कि स्वामी दयानन्द ने अनुवाद गलत किया, इसकी सत्यता केवल तर्क की कसौटी से हो सकती है। हम भी कह सकते हैं कि कलामे मजीद के भाष्यकारों में मतभेद है। हम खुदावन्दे करीम को पाक़ मानते

है। मौहम्मद अबुल कासिम इसी का वाक्य है, हदीस लिखने वालों का कहना है कि सारे कागजात का सम्मान कीजिये, परन्तु यदि मन्तक अर्थात् तर्कशास्त्र इस पर लिखा हो तो प्रार्थना करनी चाहिये। शाह अब्दुल अज़ीज इसको प्रमाणित करते हैं। इमाम अबू यूसुफ का कहना है कि जो दर्शनशास्त्र पढ़े वो काफ़िर है। जलालुद्दीन ने कहा है कि जैसा मन्तिक अर्थात् तर्कशास्त्र हराम है वैसा ही फलसफा अर्थात् दर्शनशास्त्र हराम है। अफ़सोस ! इस्लाम के इन विद्वानों का ये विचार और मौलवी अहमद अली साहब का ये दावा है कि इस्लाम ने सब फलसफा उड़ा दिया। मौलवी साहब की जिद् भी कुछ इसी प्रकार की है, कि उनका ये कहना कि मेरे फ़लसफ़े को कोई इन्सान नहीं उड़ा सकता। ये आपकी हिम्मत है। हम स्पष्ट तौर पर बतला देगें कि कुरान में खुदा की पिण्डली मौजूद है। हम कुरान से यह भी दिखलायेंगें कि उसकी आवाज भी निकलती है। इसमें अक्षर भी है, जो इस ढंग से उपस्थित होने वाला और देखने वाला आवे तो लाहोल पढ़ो। आपके मुस्लिम विद्वानों ने मैराज़ (जब रसूले इस्लाम अल्लाताला के पास गये) के समय खुदा को ज़िस्म वाला माना है।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

आपने हमारी मूल धर्म पुस्तक कुरान को छोड़ कर हमारे अन्य ग्रन्थों को जो शाखाओं के रूप में हैं उन पर बहुत सी बातें कहीं हैं। मैं भी आपके धर्मग्रन्थों को बीच में घसीट कर नियोग का मुद्दा उछाल सकता हूँ, परन्तु मैं ये नियोग का प्रकरण बहस के बीच में नहीं लाना चाहता। इस तर्क में बुद्धि को पेश किया था। तथा सबूत दिये गये थे। आपने इधर–उधर की बातें कहकर सारा समय बर्बाद किया है। आप प्रमाण के तौर पर आयत पेश कीजिये, आपका ये इधर–उधर के भाष्यकारों को पेश करना, और उनको हमारे खिलाफ़ सिद्ध करना ये सब बातें देख कर हमें यह कहने पर मजबूर होना पड़ता है कि स्वामी दयानन्द जी ने तमाम बनारस के पण्डितों के विरूद्ध भाष्य किया है। आत्मा संयुक्त है, क्योंकि व्यवस्थित करना अनिवार्य है। मुस्लिम विद्वानों ने तर्कशास्त्र को नहीं माना है। जब अपने स्थान से उड़ता है, इसी प्रकार फलसफ़ा इसका उड़ाना अति कठिन है। मैं इसके फ़तवे को स्वीकार नहीं कर सकता, मैं फलसफे को लेकर आना चाहता हूँ। इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी, आप इस पर एतराज कीजिये, आप मेरे तर्क को तोड़ दीजिये मैं दोहराता हूँ और फिर दोहराता हूँ, अपने प्रश्न व तर्क को दोहराता हूँ कि लतीफ़ वस्तु का अस्तित्व होना अनिवार्य नहीं होता। संयुक्त बनी हुई वस्तु नवीनता का उदाहरण है, सीधे शब्दों में कुरान शरीफ़ से प्रमाणित कर देवें।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

आप ही लोग हैं कि जो खुदा को शरीर वाला नहीं मानते। सुनिये मौलवी साहब ! ग़ौर से सुनिये, सौ दलील एक तरफ़ और मेरा एक उदाहरण एक तरफ़ ! मैं कुरान शरीफ़ और हदीस से ही उस खुदा को शरीर वाला साबित कर दूंगा। ....जनता में चारों ओर सन्नाटा........... सुनिये साहेबान सुनिये ! अब मैं पहले उस किताब अर्थात् हदीस से ही पढ़ कर बोलता हूँ जिसको कोई भी मुस्लिम विद्वान मानने से इन्कार नहीं कर सकता, इसमें लिखा है शरीर बोलता है कि–"**मेरे हृदय में ड़ाली**..........." आगे देखिये–"**बातें की अल्लाह ने खुश होकर**" यह सही मुस्लिम है, जिस पर वहीदुज्ज़मा का तर्जुमा मौजूद है। कहिये मौलवी साहब ? इन्हें कहाँ तक छुपाओगे ? इनसे साफ़ ज़ाहिर है कि वह खुदा शरीर वाला है। इस प्रकार यह सातवें दिन अर्थात् दो जौलाई का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

(आठवां दिन, ३ जौलाई सन् १६०६ ई0)

श्री मौलवी अब्दुल हक् साहब–

सही मुस्लिम का हवाला कल पण्डित जी साहब की तरफ से दिखाया गया था, इस अनुवादक की राय के अनुसार तर्क दिया गया है। इस प्रकार कहना कि यदि किसी से भूल चूक रह जावे तो वो क्षमा करने के योग्य है या नहीं ? यदि इस उदाहरण में भूलचूक हो गयी हो तो साफ़ तौर पर फ़रमा दीजियेगा।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

हमारी तरफ़ से कहा गया था कि इस्लाम वालों का विश्वास कुरान शरीफ़ के खिलाफ है। तथा बतलाया व दिखलाया भी गया था। तब आप कृपा करके ये बतलाते और कुरान से प्रमाणित करते कि ईश्वर बिना शरीर वाला है। मेरी राय में ये बात हदीस लिखने वालों की राय पर समाप्त हो गयी। परन्तु ये दूसरी बात है कि वो उनको स्वीकार न करें और इस्लामी विद्वानों की राय ही आपके मुकाबले में अधिक प्रमाणित है। यदि आपकी राय प्रमाण के काबिल है तो आपकी राय भी विश्वास के योग्य नहीं हो सकती। परन्तु मेरे इस्लामी भाइयों ने सुना होगा कि–खुदा के ज़िस्म की बाबत, कुरान शरीफ़ का ज्ञान कहाँ तक कुदरती कानून के पक्ष में हैं ? आपने बड़ी जोर से कहा था कि–कुरान में कहीं नहीं लिखा। मेरी पुरानी तालीम है आदि–आदि। देखिये–**"कसासुल अम्बिया"** में लिखा है कि–**"हज़रत मूसा का हाथ आग में जल गया,"** तथा **"वो छुप कर स्नान करते थे"**। **कलीमुल्लाह के कपड़े पत्थर लेकर भागा और वहाँ जाकर रूका जहां पर लोग इकट्ठे थे, तथा हज़रत मूसा वहां तक उसी अवस्था में अर्थात् नंगे ही आये"** आदि–आदि। इन अर्थों को बदलना और इनका स्पष्टीकरण देना ये आपका काम है। देखिये–**"पत्थर में लकड़ी मारी तो निशान पड़ गये"** आदि–आदि ऐसी बहुत सी आयतें कुरान में आज भी मौजूद हैं जो ऐसे बे सिर–पैर के किस्सों को बयान करती हैं। छः हजार छः सौ छियासठ आयतें कुरान शरीफ़ में मौजूद हैं, इनको मिलाकर केवल सौ आयतें ही इस काबिल हैं कि जो माबूदे हक़ीकी अर्थात् सच्चे ईश्वर से मिलान खाती हैं। अब हम खुदा के चमत्कार–हज़रते सालह आदि की ऊँटनी, इनके प्रमाण में कुरान की बहुत सी आयतें और हदीसे पेश करेंगे और साबित करेंगे कि–बेजान पत्थर से ऊँटनियां पैदा हुई, तथा बहुत से जो बुद्धि और विचार से बहुत दूर, कहानी किस्से हदीसों में और कुरान शरीफ़ में मौजूद हैं। इन सभी को आपके लिए जरूरी होगा कि सायंस व तर्क के साथ साबित करें। हमें कहा जाता है कि इन सबके खिलाफ़ कहना और इस तरह की बातें बयान करना कुफ्र है। अगर आप लोग ऐसा एहसास करते हैं तो क्यों नहीं इस कुफ्र को इन हक़ीक़ी किताबों से निकाल कर बाहर कर देते। फिर न इनमें ये होंगी न हमें कहने का मौका मिलेगा। ये सब बातें छिपने वाली नहीं हैं, अभी तो शुरूआत है, आगे देखिये क्या होता है ?

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

सभा में उपस्थित पण्डित साहब जी का ये कहने का ढंग, और ये इस बात से हटने वाले नहीं हैं। ठीक हैं ! आप अपनी जगह पर हठधर्मी से अड़े रहिये, परन्तु पहले इस बात को तो तय कीजियेगा कि ये पुस्तकें जिनसे आप ये हवाले पेश कर रहें हैं, इन्हें हम प्रमाणित भी मानते हैं या नहीं ? आपने इन अमान्य किताबों से हवाले देकर इस मुबाहिसे अर्थात् शास्त्रार्थ का फैंसला कर दिया। भाइयों ! जो साइल अर्थात् सवाल

करने वाला था, एतराज करने वाला था वही खुद न्यायकर्त्ता अर्थात् जज़ बन बैठा ! यह मुबाहिसा इसी समय समाप्त हो सकता है अगर पण्डित जी इन किताबों को हमारी मान्यता के पक्ष में सिद्ध कर दें। यदि कोई हमारे सामने मिर्जा कादयानी का लेख पेश करे और उस पर हमारा फैंसला लेना चाहे तो वह कभी नहीं मिल सकता, क्योंकि हम उसे प्रमाणिक ही नहीं मानते। और पण्डित जी साहब को ये खबर नहीं है कि मुसलमानों के नज़दीक ये मुमकिन अनुवाद मुस्लिम सही हदीस से जो कि वहिदुज्जमा ने किया है वह तसलीम करने योग्य नहीं है। मैं पण्डित जी साहब को बतला देना चाहता हूँ कि इन्सान कभी भी गुमराही से विजयी नहीं हुआ करता है। जबकि वो मनुष्य जिन्दा मौजूद है, परन्तु हम इसको स्वीकार नहीं करते। हठी मनुष्य दिन को रात कहे जावे, तो कहता रहे, वह उसके कहने से रात नहीं हो जावेगा। जिसने यह राय दी है, उसे हम प्रमाणिक नहीं मानते। जब खुदा ने कलाम किया, तो वह कलाम बिना जुबान के सम्भव नहीं, मैं कहता हूँ कि कलाम बिना जुबान के भी हो सकता है, देखिये–पण्डित दयानन्द साहब फ़रमाते हैं कि–सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २६६, कलाम सुनने से सम्बन्धित था। इस्लाम धोखा नहीं खाता, और न किसी को धोखा ही देना चाहता है। वो बात मैं स्वीकार करता हूँ कि, यह हमें पक्का विश्वास है कि सुनने के लिए कान की जरूरत है। और वो कलाम जुबान से निकला होगा, ये हमें पक्का विश्वास है कि ये किताब इलहामी है तथा पूरे तौर पर विश्वसनीय है। देखिये–"**शिरह अकायद**" सफ़ा ११४, जहां मौजूद है कि–पैदा करने वाले के लिए यह कोई जरूरी नहीं है कि वो स्वयं भी चमत्कार हुआ करे। देखिये–"**शिरह अकायद**" पृष्ठ–६५, वहां मौजूद है कि–शहीदनी मियाँ तोहीद खुदा बन्दे करीम ने मूसा अलैहिवसलम से कलाम किया, अल्ला तआला ने किसी दरख्त् के माध्यम से गुण पैदा किया, दूसरा कानून प्रकृति के विरूद्ध हुआ, मूसा अलैहिस्वसलम से बात होने का ये मतलब है कि उसने आवाज को जन्म दिया।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

भाइयों ! मौलवी साहब ने मेरे प्रश्न को छुआ तक नहीं, बस ! किताब की शाखाओं में ही उलझ कर रह गये, और सारा समय नष्ट कर दिया। मैं फिर अपनी बात को दोहराता हूँ तथा मौलवी साहब जी से विशेष प्रार्थना करता हूँ कि मेरी बात को गौर से सुनें ताकी यथोचित उत्तर दे सकें, मेरा कहना ये है कि–हमारा ये दावा है कि आपकी और मिर्जा गुलाम अहमद की कोई वक़त अर्थात वजूद (अस्तित्व) इस्लामी विद्वानों के मुकाबले में नहीं है। आप "**अज़**" के मायने "**बकरी**" के करते हैं और आनन्दगिरि का हवाला देते हैं, इसी तरह हमारे गौतम व कणाद आदि ऋषियों के सामने आनन्दगिरि का कोई महत्व नहीं है। आप टाल–मटोल और निर्धारित विषय से दूर भागने का प्रयत्न करते हैं, और असली मुद्दे की उपेक्षा करते हैं, परन्तु कुरान शरीफ़ और हदीसों को बहस के नीचे नहीं लाते हैं। उनसे गुरेज़ करते हैं, पुरानी पुस्तकें छोड़कर नई किताबें प्रमाणित नहीं हो सकती। हमारे लिए बन्दिशें लगाई जाती हैं, हमें कहने से रोका जाता है, कही गयी बात को कुफ्र करार दिया जाता है, सर्र सैय्यद अहमद खाँ ने हज़रत और कुरान के बारे में क्या राय कायम की है ? इस प्रकार से आपका ये कहना कि सही मुस्लिम प्रमाणित नहीं है, ये ज़ायज़ नहीं है। आपकी सभी दलीलें हमने तोड़ी हैं, तथा आगे भी तोड़ेगें। शाह रफ़ीऊद्दीन का तर्जुमा भी गलत है ? सायंस और तर्क शास्त्रों में जो कहा गया है, उनमें कही गई बातों का आपने कोई अन्तर पेश नहीं किया। आवाज क्या है जिसे अल्लाताला ने जन्म दिया ? आवाज............इसके हमराह पैदा हो चुकी है। अन्य ये कि यदि एक काबिल और दीनदार मौलवी हक़पसेन्द, हमारे विचार से, होगा तो उसकी बात में अन्तर नहीं आ सकता। हम आपसे

बार–बार कह रहे हैं कि लिख कर दीजिये कि–मौलाना वहिदुज्ज़मा का अनुवाद और बाकी भी पुराने तर्जुमें स्वीकार करने योग्य नहीं हैं। मौलवी वहिदुज्ज़मा साहब ने भी आखिर किसी अरबी मदरसे में ही तालीम हासिल की होगी न कि किसी संस्कृत पाठशाला में ! ....श्रौताओं में हँसी.........., भाइयों ! मेरे काबिल दोस्त मौलवी साहब ! ने सत्यार्थ प्रकाश सफ़ा २६६ का हवाला देकर क़ादिरेमुतलक और व्याप्य और व्यापक की कहानी छेड़ी। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि हज़रत मौहम्मद साहब, मेअराज़ के समय–खुदाबन्दे करीम से दो कमान की दूरी पर रहे थे। क्या यदि आपका खुदा शरीर वाला नहीं है तो ये दूरी कैसी ? बताइये मौलवी साहब–शरीर के अन्दर दूरी पाई जाती है या बिना शरीर के अन्दर ? इस समय आपको सही मुस्लिम को मानने से भी इन्कार है, तथा मेअराज में दो कमान की दूरी भी एक़ मशहूर मामला है, जिसे कोई भी मुसलमान झूठला नहीं सकता, आप वहां पर भी खरे नहीं उतर पाये ? आपको इन सब बातों का जवाब देना है।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

पण्डित जी साहब को मैं ये बतला देना चाहता हूँ कि हमारा विश्वास हमारी मान्यता सही मुस्लिम हदीस पर तो है परन्तु उस पर जो व्याख्या पण्डित जी पेश कर रहे हैं, उस पर नहीं है। वो तर्जुमा मौलवी वहिदुज्ज़मा का है, जिसे हम नहीं मानते। किसी बात को जौहरो अर्ज अर्थात् ऊँची आवाज में या नीची आवाज में कहने पर उस बात में कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारे ऊपर प्रमाण का दायित्व नहीं है, बहस–कलाम की सत्यता में थी, ईश्वर सबको घिराव में लेने वाला अर्थात् सर्वव्यापक होने से ये असुविधा नहीं हो सकती। कलाम को देख लीजिये और शब्दों पर ध्यान दीजिये। सत्यार्थ प्रकाश को हदीस समझ कर पेश किया था, यदि इस दशा में ये बात शामिल हो जावे कि वो पूरे संसार को अपने घेरे में लेने वाला है अर्थात् सर्वव्यापी है, या नहीं ? इस्लाम वाले इसको खुद मानते हैं कि–"**मुहीते कुल**.........." अरब ने कुलजहान को इल्म दिया। कलाम के लिए जुबान की जरूरत नहीं है। हम आपके एतराजों का जवाब देने के लिए तैयार हैं। परन्तु आपने हमारे एतराजों पर कोई ग़ौर नहीं फ़रमाया। यदि चमत्कार को साबित नहीं किया जावे तो आप कहेंगे कि–मौत से पहले शोर मचाने की क्या जरूरत है ? सत्यार्थ प्रकाश ने इसकी काट कर दी है। आपका ये कहना कि क़ुरान शरीफ़ में लिखा है कि–"**पत्थर का कपड़े लेकर भागना**" यह गलत है, क़ुरान में यह कहीं भी नहीं है। हाँ ! एक अरबी भाषा की पुस्तक में है। आप सनातनधर्म को ज़रा ख़्याल फरमाइयेगा, जहां से पण्डित दयानन्द साहब आये और उन्होंने उनके ही खिलाफ़ झण्डा गाड़ दिया। इसी तरह मिर्जा गुलाम अहमद के मुरीद एक लाख के करीब हैं, परन्तु क़ुरान के ज़ोर ने अर्थात् उसकी ताकत ने तमाम दुनियाँ को हिलाकर रख दिया, लाखों सनातनी पण्डित आर्यसमाज के खिलाफ़ है, मैं इसका सुबूत दूंगा। अगर वहिदुज्ज़मा जिसने सही मुस्लिम हदीस का तर्जुमा किया है, उन्हें किसी मौलाना के विद्यार्थी होने का दर्जा दूँ तो उसको एक घमण्ड होगा।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

वहिदुज्ज़मा[१] साहब का तर्जुमा अर्थात् उर्दू अनुवाद भी मुसलमानों ने ही छपवाया है, तथा वही मुसलमान उसकी खरीद फ़रोख्त भी कर रहे हैं, मेरे विचार से ये एक फ़जूल सी बात है। जो तर्जुमा कहते

[१] यह सही मुस्लिम नामक हदीस के भाष्यकार थे।

हैं कि सही है, वह जरूर स्वीकार करने के काबिल है। और ये बहस मुस्तनद और ग़ैरमुस्तनद अर्थात् प्रमाणिक या अप्रमाणिक की छेड़ दी, मैं इसको ज्यादा तूल अर्थात् बढ़ावा नहीं देना चाहता। मैं बार–बार शब्दों को दोहराना पसन्द नहीं करता। मैंने मिसाल के तौर पर कहा था कि हमारे इस्लामी प्रेजीडेन्ट साहब ने ये नहीं कहा था कि, अब ऐसा नहीं है। मेरा तो कहना ये था कि आवाज गुण है या आप प्रकृति की पैदायश के सम्बन्ध में कोई आयत दिखलायें। आप सत्यार्थप्रकाश के हवाले से, आवाज का सबूत देना चाहते थे। परन्तु ज़रा विचार कीजिये कि आपने लेखक को उसकी इच्छा के खिलाफ़ किस क़दर बयान किया है ? क्या ये उस लेखक के साथ ग़ैरइन्साफी नहीं है ? लेखक तो इन लोगों की ओर से एतराज करता है कि जो परमात्मा को साकार मानते हैं। वेदों को इस्लाम वालों की ओर से आर्यसमाज कलामुल्लाह अर्थात् अल्लाह का कलाम नहीं मानता, बल्कि वो ईश्वरीयप्रदत्त ज्ञान है। जो प्रत्येक हृदय और संसार के ज़र्रे–जर्रे में मौजूद है, इसीलिए उसे सर्वव्यापक कहा गया है। जो इस्लाम वालों से हज़ार बरस पहले मौजूद हैं। वो........... ही आर्य लोग परमात्मा को निराकार मानते हैं ना कि साकार ! सत्यार्थप्रकाश से निराकार तथा सर्वव्यापक की आवाज साबित है। आपने मौज़िजों अर्थात् चमत्कारों की बाबत कोई जवाब नहीं दिया ? आपको आयत का जवाब पेश करना चाहिये था, परन्तु केवल ये कह कर टाल दिया कि–इसका जवाब कल दूंगा, इतना कह देना काफी नहीं होगा। अरबी भाषा से मेरा ये मतलब था कि कुरानशरीफ़ में जो कुछ अरबी पाठ मौजूद है इसमें दिखलाइये। हमको इससे कुछ मतलब नहीं है कि–कादयानी[१] ने किस कदर अपने इतने मुरीद अर्थात् अनुयायी बना लिये ? वो बात तब होगी जब हम मिर्जा साहब से बहस करेंगे, तथा उनके सिद्धान्तों पर बहस करेंगे; वो हनफी[२] समझे जाते हैं, परन्तु वहिदुज्जमा तो अहले इस्लाम का ही शार्गिद है, ये तर्जुमा इस्लाम की ओर से ही स्वामी दयानन्द जी के पक्ष में बहुत सी राय प्रस्तुत कर सकता है। राय का खिलाफ़ होना सच्चाई का सबूत नहीं है। देवबन्द के मौलवी साहेबान, अपनी हक़ परस्ती, व ईमानदारी एवं भरोसे व विश्वास के लिए सारी दुनियाँ में मशहूर हैं, यदि वो लोग इस पर दस्तख़्त कर दें तथा यह कह देवें कि वहिदुज्ज़मा के इलहामी विचार स्वीकार करने के काबिल नहीं हैं तो हम भी मान लेंगे। वादी और प्रतिवादी दोनों के गवाहों को झूठा कहा जाता है। मौलवी साहब अपने मतलब के लिए झूठ को सच तथा सच को झूठ कहते हैं जिससे उनकी कमजोरी ज़ाहिर होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि आपमें और मिर्जा साहब में आखिर कोई न कोई तो कमजोर जरूर है; जिसका नतीजा है कि मिर्जा साहब ने अपने मुरीदों का इस क़दर गिरोह तैयार कर लिया। आपने मेरे एक शब्द की भी तरदीद अर्थात् काट नहीं की। **"हज़रत का खुदा से दो कमान की दूरी पर रहना"** तथा **"पत्थर का कपड़े लेकर भागना"** आदि–आदि सब सवाल ज्यों के त्यों जवाब के इन्तजार में आपके पाले में मौजूद हैं।

श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहब–

जो कुछ सही मुस्लिम में दर्ज है वो बिल्कुल सही है, मैं कहता हूँ कि परमेश्वर के हज़ार चेहरे हैं। ऐसा यजुर्वेद में साफ दर्ज है, सही हो या गलत ? मुझे इससे कोई मतलब नहीं।

---

[१] यह मिर्जा अहमद साहब जो **"कादियाँ"** (पंजाब) के निवासी थे, जिन्होंने अपना अलग फिरका मुसलमानों में कायम किया था।

[२] यह भी मुसलमानों में एक अलग फिरका है जिसे **"हनफी मजहब"** के नाम से पुकारा जाता है।

"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

आर्य पण्डित साहेबान कह देवें कि **"वेद खुदा का कलाम नहीं,"** तथा मेरी मांग है कि वो इस बात को लिख कर देवें। तब मैं उनके जो सवाल कानूने कुदरत के खिलाफ़ हैं, उन सबका जवाब दूंगा। कलाम बेजुबान हुआ करता है या नहीं ? जवाब दें, आज मैं आपका सारा गरूर तोड़ कर छोड़ूंगा। आप ही कहिये कि ये कलाम जो समाधि अवस्था में हुआ करते हैं, क्या वो कहीं से लिख कर आया करते हैं ? या बिना हरूफ़ के ही उतरा करते हैं ? पण्डित साहब ? आपको मालूम होना चाहिये कि ये इलहाम की शिक्षा भरी बातें, पढ़ने–लिखने की नहीं, बल्कि आरम्भ में महसूस करने की हैं। जिन्हें पैगम्बरों ने तथा ऋषियों ने बाद में तमाम दुनियां के सामने ज़ाहिर किया। ये सब मामला बेजुबान ही हुआ करता है। देखिये स्वामी दयानन्द का कलाम इसकी गवाही दे रहा है। तथा इस्लाम वालों ने भी बहुत से दफ़्तर तैयार कर लिये हैं। बस ! मैं चाहता हूँ कि पण्डित जी मुझे इसकी व्याख्या बयान कर दें, ताकी सभा में सभी मौजूद हाज़रीन यह जान जायें कि आवाज एक महल के कबीले से सम्बन्ध रखती है, वह सार्वजनिक नहीं है। हृदय इसकी गवाही के लिए पर्याप्त है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या इस काम के लिए शुरू दुनियां में वो चार ऋषि ही अधिक पसन्दीदा थे ? और उन्हीं का हृदय इस कलाम को उतारने के लिए उपयुक्त समझा गया ? और कमाल तो इस बात का है कि कलाम भी कबीले से कहां गया ? मैं ये भी अच्छी तरह जानता हूँ कि आप इन सब बातों का जवाब नहीं देगें। मैं ये बात तसलीम करता हूँ कि इल्म के एतबार से मैं हार गया यदि आप ये बतला देंगे कि सूरत अर्थात् आकृति किससे अनुकरणीय है ? अर्थात् किस कथन से साबित है ? इसमें आप वेद की सहायता लीजिये, तथा इसका खुलासा करके इसे प्रमाणित करियेगा।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

परमेश्वर के हजार हाथ हैं, मेरे काबिल दोस्त मौलवी अब्दुल मजीद साहब ने बेसाख्ता कह दिया है। और कृपा करके मौलवी साहब यह साबित कीजिये कि इसके अर्थ ये निकलते हैं, चूंकि उनका ईश्वर भी साकार है, तो इस्लाम वालों का खुदा भी उनकी तरह शरीर वाला ही होगा। सत्यार्थ प्रकाश ये और जुबान से शब्दों का उच्चारण अपने से जुदा आदमी के जतलाने के लिए कहा जाता है। मैंने बतलाया था कि वह परमेश्वर सर्वव्यापक है, उसको इसकी जरूरत नहीं, परन्तु इस्लाम वाले लोगों का विश्वास है कि **"हज़रत–खुदाबन्देकरीम से मेअराज़ के वक्त दो कमान के फाँसले पर थे"** यदि वह परमेश्वर उपस्थित तथा दिखने वाला होता तो दो कमान का फ़ासला न होता, बल्कि मेअराज़ की भी कोई जरूरत नहीं थी। सवारी आई........... जिसकी जरूरत से ज्यादा प्रशंसा मेअराज का गर्व था, कि उन्होंने मेअराज पर खुदा को दो कमान की दूरी से देखा, आप इसको निकाल बाहर किये देते हैं, परन्तु आप इस बात का ध्यान रखियेगा कि हम इसे साबित करेगें तथा इसके सम्बन्ध में अनेकों भाष्यकारों की राय पेश करेंगे कि हज़रत मौहम्मद साहब ने खुदा से बातें की। और उन्होंने खुदा को आखों से देखा। हजार दलील एक ओर तथा हदीस एक तरफ ! क्या खूब मन्तिक निकाला है कि सारी बहस से मुंह मोड़कर अर्थात् गुरेज़ करके, बहस भी शुरू की तो, वह भी आवाज पर ! जिकर तो ये हुआ करता है कि चलायमान, परिवर्तनशील, पदार्थ की आवाज हुआ करती है, आपको बतलाना चाहिये था कि–वह गुण है या गौणिक ? आवाज के लिए जरूरी है कि कोई निश्चित स्थान नियत हुआ करता है। आपने ये नहीं बतलाया कि–आपके यहां ये जो असम्भवतः में से है, वो कहां तक इज्जत देने के लायक है ? जबकि कुरान शरीफ़ में आवाज का आना साफ लिखा है, वहां लिखा

है कि–"**बेरी के पेड़ पर सफेद आग थी, वह आग पूछती है कि–ऐ मूसा ! तेरे हाथ में क्या है ? उसने जवाब दिया कि–मेरे हाथ में लाठी है, तब खुदाबन्देकरीम ने कहा–इसे फैंक दो, तब मूसा के फैंकने पर वह लाठी साँप बन गयी**[1] आदि–आदि।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

मैं टाल मटोल करता था, ये बात सही है, बक़ौल आपके। अच्छा अब बतलाइये कि खुदायेपाक ने इल्हाम किस प्रकार उतारा ? अन्दर आने वाली खबर घिरी हुई होती है न कि सब पर घेरी हुई अर्थात् छायी हुई। आपके चारों ऋषि खुदा से जुदा थे, इसलिए आवाज की जरूरत हुई, कानूने कुदरत की ओर से जो अध्ययन मनन आपकी ओर से है। पण्डित साहब ! अब आप अपने द्वारा कहे गये शब्दों की ख़ैर करें, जब तक मेरी दलीलों को रद्द नहीं किया जायेगा तब तक मैं कुछ नहीं कहूंगा।

मैं वहिदुज्ज़मा की राय को नहीं मानूंगा। मैं भरे जलसे में कहता हूँ कि आपको जवाब दिया जायेगा। हज़रत मौलाना का मतलब आपको इल्ज़ाम देता है, उच्चारण या कलाम के लफ़ज शरीर से मुराद लेना है। अर्थात् खुदा को इल्ज़ाम लगाना है, वरना मुसलमान वेद को मानते। आप जवाब दीजिये कि कलाम करने के लिए जुबान की जरूरत होती है या नहीं ? देखिये सत्यार्थ प्रकाश........... "**आवाज खुदा का बयान है**", अधिक बढ़ाने की कोई बात नहीं है, टाल मटोल खुद करते हैं, इल्ज़ाम दूसरों के सिर मढ़ते हैं। हमें वैदिक खुदा पर इल्ज़ाम लगाने से रोका जाता है, जहां पर हजार चेहरे वैदिक खुदा के मौजूद हैं, चाहे वो चेहरे किसी अगोचर वस्तु को साकार मान कर ही किये गये हों। आपने कहा कि–वहिदुज्ज़मा के तर्जुमे को मुसलमान ही छापते, खरीदते तथा बेचते हैं, अरे भाई, जब तक खरीदकर पढ़ेंगे नहीं तो खोज कहां से करेंगे अच्छे–बुरे का पता कैसे लगेगा ? आप देखिये, मुन्शी इन्द्रमणी की किताबें हमारे पास मौजूद हैं, ये तो हमने नहीं छापी, अन्ततः ये कोई लाभदायक मामला नहीं है। इस किताब में, जो भी तर्क मौजूद हैं वे सभी चमत्कारों के बारे में सायंस और कुदरत के खिलाफ हैं, मैं बहस में ये सब लेकर आऊंगा और इनके जवाब दूंगा। इधर–उधर की बातें करके टलना नहीं, मैंने बड़ी सरलता से कहा था, कहा किसी महल से नहीं जाता है, मैंने जो बात कही थी, वह सिद्ध हो गयी कि पण्डित जी मेरे इन सवालों का जवाब नहीं देगें, और देख लो वही हुआ, हमें यही थोड़ा सा इलहाम होता है।...........जनता में हँसी...........वेद चूंकि ज्ञान का समुद्र कहा जाता है, केवल चार ही ऋषियों का हृदय इस कार्य के लायक उपयुक्त समझा गया, मेरा पण्डित जी से ज़ोरदार तकाज़ा है कि वो इस ओर आयें, इन पर ध्यान दें, और मेरे कल के एतराजातों को तोड़ें, उनका वेदों से जवाब दें। प्रशंसित व्यक्ति के गुणों की आवाज को ऋषि का हृदय बताया गया है। अतः वह जिस मौके के साथ कायम होगी वही ऋषि का हृदय है जो इलहाम उतारने के लिए सक्षम है। अर्ज ये है कि गर्ज और मौसूफ का मसला यहीं तय हो गया। मिर्जा गुलामअहमद ने इसे तसलीम नहीं किया, पण्डित जी साहब ने मेरे द्वारा दी गई दो दलील वो नहीं तोड़ी। बरायेमेहरबानी करके मेरी दलील का तो इलाज कर दीजियेगा, पूर्णरूप से फलसफ़ा तोड़िये, नकली दलील से नहीं मानूंगा।

---

१. इससे सम्बन्धित असल आयत इसी मुबाहिसे के आखिर में–"**नतीजा ए–मुनाज़रा**" के अन्दर उद्धृत की गई हैं, पाठकगण वहां देख सकते हैं।

"**लाजपत राय अग्रवाल**"

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मौलवी साहब से चमत्कार के बारे में पूछा जाता है। परन्तु वो जवाब देते हैं कि वेद को इलहामी अर्थात् परमेश्वरीय वाणी सिद्ध करिये।............**"पूछो हावड़ा ब्रिज बतावें जयपुर के चौबारे"** ....जनता में हँसी. ....भाइयों ! मौलवी साहब ने तो इलहाम का दावा पेश किया था। लीजिये मौलवी साहब तीसरे हम हुए, कल आपको **"वही"** नाज़िल हुई थी, अब फ़रमाइये कि आप उपेक्षा करते हैं कि नहीं ? आप हर बार क्या खूब बहस किया करते हैं ? आप हर बार इन्हीं शब्दों को दोहराया करते हैं, आवाज एक सिफ़त अर्थात् गुण है, और ऋषियों का हृदय मौसूफ़ अर्थात् गुणवाला है, आपको पता होना चाहिये कि गुण–गौणिक के सहारे पर हुआ करता है। फूल की खुशबु हमारे दिमाग पर पहुचती है तो हमारा दिमाग मौसूफ हुआ, रहा ये कि मौलवी साहब ने इल्जामी जवाब दिये, कोई हमको चोर बतावे, और हम अपने को चोर साबित न करके उलटा उसे ही चोर कहें कि तू चोर है। क्या खूब सफाई है ? मौलवी साहब मैं आपको बतलाये देता हूँ कि जब तक आप अपने को बेगुनाह साबित न करेंगे तब तक अदालत आपको रिहाई नहीं देगी। आपने ज्ञान के इशारों को किस खूबी के साथ इल्जामी जवाब में पेश किया है ? आप कहते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि–**"बिना आवाज के भी शब्द या उसके मायने निकला करते हैं"**। इसमें मुहीत अर्थात् घेरने वाला, व्यापक तथा मुहात अर्थात् घिरा हुआ–व्याप्य का सम्बन्ध, जो आप जिक्र करते हैं, अर्थात् उनमें निकटता का सम्बन्ध है, जैसे शरीर के अन्दर खून का, तथा माँ–बाप का, इस सबसे पता चलता है कि आप बड़े भारी तर्कशास्त्री हैं। आप वेद की बाबत चार दिनों में भी एतराज नहीं कर सके। हम आगे आपके सारे एतराजों को रद्द करेंगे, आप वहिदुज्ज़मा को नाकाबिल और ज़ाहिल अर्थात् अयोग्य और बेवकूफ बता रहे हैं। आपने कोई ऐसा नोटिस निकाला कि इनके तर्जुमें को मत खरीदना ये हमारे लिए अमान्य हैं। परन्तु आपने ये कह दिया कि खरीद–फरोक्त, जानकारी व खोज के लिए हुआ करती है, जब तक नहीं खरीदेंगे तो पता कैसे लगेगा ? ये भी आपका क्या खूब तर्क है ? पर मैं आपको बतलाये देता हूँ कि आपकी ये दलील भी हमारे ही अनुकूल है क्योंकि आपने खरीद भी की और उस पर जानकारी व खोज भी की, परन्तु चुप रहे, कोई नोटिस नहीं निकाला, इसका मतलब है कि आप उससे सहमत हैं। अब आप कुरानशरीफ़ से साबित कीजिये कि–**"हजरत मूसा ने बेरी के पेड़ से बात की तथा हज़रत मौहम्मदसाहब ने मेराज़ के वक्त अल्लाताला से बातचीत की"**। ये सब बातें शरीरधारी से की या बिना शरीर वाले से ? आप हमें कहते हैं कि हमारी दलील को तोड़िये ! पर जनाब मौलाना साहब आप कहां घूम रहे हैं ? जरा सोचो तो सही, हजूर ये तोड़ने का, रद्द करने का, बेकार करने का, काम हमारा नहीं बल्कि आपकी हदीस और कुरानशरीफ़ का है कि वो आपकी दलीलों को रद्द करें। परन्तु ये बेचारे वहिदुज्ज़मा पर इल्ज़ाम है क्योंकि वो जब हज़रत मूसा के पास आये तो वहां खुदा न था। चलना, आना, देखना, रहना, फिरना आदि–आदि। इनसे क्या मतलब ? मेअराज का घमण्ड क्यों उड़ाये देते हो ? उपस्थित रहने और खुदा को देख लेने भर से ही यह सारा घमण्ड ख़तम हो जाता है। और फिर ये कि **"दो कमान का फासला"** अर्थात् दूरी....................ये सब क्या है ? आप बेकार में ही अपने तर्क शास्त्री होने का रौब ज़माते फिरते हो, पर आपका सिक्का, नाजानकार लोगों पर ही चल सकता है। हम झूठा मीठा बोलना, या भ्रमित बातें कहना, इस तरह की बातें कह कर लोगों को गफ़लत में डालना ये हमारे वश की बात नहीं। इसे तो आप ही कर सकते हैं, मौलवी साहब ! एक तो **"वही"** जो खुदा ने................।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

पण्डित जी ! मेरा पीछा आप देहली तक ना करें, मुझे यहीं पछाड़ देवें, मैं यहां दस हजार से ज्यादा इन आदमियों के सामने मौजूद हूँ। पर इस बात का ख़्याल जरूर रखियेगा कि बहस इस समय ऐसे नाजुक दौर में चल रही है कि मैं उनको झूठी आदत वाला साबित कर दूंगा, और कहीं ऐसा न हो जावे कि मुझे पछाड़ने के बजाय आप खुद ही पछड़ जावें। आपने मेरे ऊपर बहुत इल्जाम लगाये हैं, मैं मेअराज वाली तथा अपनी बात से पलटने वाली इन सभी बातों का जवाब दूंगा कि ये कानूने कुदरत के खिलाफ़ नहीं हैं। आपने एक किताब को पेश किया है। मैं अब काबाकोसैन अर्थात् दो हाथ के फ़ासले का जुमला पेश करता हूँ आप किसी दूसरी हदीस या कुरान से साबित कर देवें कि ये खुदा के साथ है। मुझे भी तर्जुमा करना पड़ेगा, जबकि ये मेरा काम नहीं है काबाकोसैन के मानी तो आप पर छोड़ता हूँ, करीब और दूर होने से खुदा नहीं मिलता, करीब होने का मतलब खुदा के करीब होना नहीं है। इसके अनुवाद को देखिये और किसी मोतेब्बर अर्थात् प्रमाणित बात से साबित कीजिये, शदीदुलकवि अर्थात् शख़्त ताकत वाला हुजूर की खिदमत में आता है, तो इसका अर्थ है कि वो खुदा के फरिश्ते हुजूर की खिदमत में आते हैं, न कि खुदा इसी का नाम काबाकोसैन है, यदि इसका सम्बन्ध किसी भी भाष्यकार की राय से आप खुदा के साथ साबित कर देंगे तो मैं मान लूंगा। परन्तु यदि किसी भी मुस्लिम विद्वान ने इसका भाष्य इसके खिलाफ़ किया तो आप दिखलाइये, बस ! जो कुछ होना था सौ हो गया। ये फासला दो कोस का या इससे नजदीक का करने वाला खुदा के फरिश्ते हैं। यदि फिर भी आपको कोई सन्देह हो तो बुखारी किताब अव्वल हिस्सा प्रमाणित पाई जाती है। देख लीजिये, वहां करीब से मतलब खुदा से करीब होने के नहीं हैं, बल्कि हज़रत जिब्राईल से है। आप चिन्ता न करें मैं इन सबका खुलासा हदीस व तफ़सीर से साबित करूंगा।

श्री मौलवी अब्दुल अजीज साहब–

मौलवी साहेबान खुदा की जिस्मानियत अर्थात् शरीरधारी होने के सम्बन्ध में दलीलें पेश कर रहे हैं। परन्तु सनातनधर्मियों और आर्यसमाज में झगड़ा हो रहा है, क्योंकि वो ईश्वर को साकार मान रहे हैं और ये हमारे आर्य साहेबान भाई उसे निराकार मान रहे हैं। देखिये वेद में कहा गया है कि–"**ब्राह्मणोस्य मुखमासीत बाहु राजन्य**.........." अर्थात् उस परमेश्वर के मुख–बाहु आदि सब कुछ हैं, यह साकार नहीं है तो और क्या है ? पण्डित जी पहले अपने घर में तो टटोलिये, आपको सभी सवालों के जवाब मिल जायेंगे।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

भाइयों ! हमने ईश्वर की राय सही मुस्लिम हदीस से बताई थी, जिसके लिए कहा गया था कि मौलाना वहीदुज्ज़मा के अनुवाद की राय गलत है। अब लीजिये ये मिश्कात शरीफ़ मौजूद है जिसका तर्जुमा अर्थात् अनुवाद मौलाना मौहम्मद कुतबुद्दीन खाँन साहब देहलवी मरहूम ने किया है, यहां लिखा है देखिये– "**हज़रत ने मेअराज की रात में खुदा को देखा**" आंख, माद्दी से बनी चीज अर्थात् स्थूल पदार्थ को ही देख सकती है, यदि वह स्थूल चीज़ नहीं होगी तो आँख उसे कदापि नहीं देख सकती।.......ये जनाबेमन् उस मौके की आयत है जब अल्लाताला ने "...........हज़रत **मूसा**..........**फिर जब पहुँचे आग के पास, तो आवाज आई**...........**कि मूसा मैं हूँ तेरा रब, तू अपनी जूती उतार**............." यह कुरान शरीफ़ की अतिश्योक्ति नहीं थी

.............मौलवी साहेबान की राय के अनुसार वहिदुज्ज़मा का अनुवाद सही मुस्लिम पुस्तक के अनुवादक मौलवी वहिदुज्जमा साहब का इस हदीसे मुस्लिम के लिए जिसको आर्यों ने पेश किया है, वो उनका विचार अर्थात् भाष्य स्वीकार करने योग्य नहीं है, और ये कह कर खारिज़ कर दिया गया। गलत राय बिना भेद भाव के अहले सुन्नत ज़माअते इस्लामी की ओर से है।..........यहां दोनों पक्षों के हस्ताक्षर लिये गये............ जिस पर काफी हंगामा हुआ।

मेरा कहना है कि यदि यह बात आपको स्वीकार करने योग्य नहीं है तो दस्तख़्त करने ही होंगे, तथा हम भी वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, ऐसा मान कर दस्तख़्त करेंगे। हमने हालांकि दूसरी प्रमाणिक किताबों से अपनी बात को साबित कर दिया, तो भी वहिदुज्ज़मा का मसला बाकी है। यह भी निपट जाये तो अच्छा हो।

– दस्तख़्त –

१. "अबु मौहम्मद"

२. "हब्दुल हक़"

३. "अहमद अली मेरठी"
"मेरे अनुसार भी वहिदुज्जमा की राय तसलीम करने लायक नहीं है"

४. "मौलवी अब्दुल मजीद"–देहलवी
(तारीख–३ जुलाई सन् १६०६ ई0)

आर्य समाज की राय "वेद मुक्कद्दस" के बारे में–

हम वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, ईश्वर का कलाम नहीं मानते।

– दस्तख़्त –

१. मास्टर लक्ष्मणदास, रामनगरी

२. पण्डित मुरारीलाल शर्मा, सिकन्द्राबाद (उ0प्र0)

३. पण्डित भोजदत्त आर्यमुसाफिर (आगरा)

४. डाक्टर लक्षमीदत्त आर्यमुसाफिर

नोट–

इसी के साथ यह आज आठवें दिन का तारीख तीन जौलाई वाला मुबाहिसा समाप्त होता है।

(नौवां अन्तिम दिन, ४ जौलाई सन् १६०६ ई0)

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

जहां तक मेरा विचार है कि इन दोनों में क्या–क्या जवाब मौलवी साहेबान की ओर से आर्य समाज को मिले ? इनसे कुछ भी मसला हल होने वाला नहीं है। मैं विपक्ष के शास्त्रार्थ कर्त्ताओं से अनुरोध करता हूँ कि आज शास्त्रार्थ का अन्तिम दिन है, कम से कम एक मसले को तो हल फरमा ही दें। हाज़रीन आप लोगों के सामने खुदा का ज़िस्म होना तो कुरान से साबित हो ही गया है। हदीस बयान करने वाले तथा भाष्यकार व अनेकों दिग्गज़ मुस्लिम विद्वानों की राय भी प्रकट हो गयी। परन्तु चमत्कारों के सम्बन्ध में जो ज़नाब की राय है, विचार है, मेहरबानी करके अपने विश्वास को साफ तौर से बयान कीजिये, ये कहने के

बजाये कि दिखलाऊंगा, बतलाऊंगा, और फिर न दिखलाया और न ही बतलाया, मौलवी साहब ! मैं आपको बतलाये देता हूँ कि मैंने भी इस्लामी लोगों के बीच में रहकर ही, अरबी व फ़ारसी की शिक्षा प्राप्त की है, मैं यह बात अच्छी तरह से जानता हूँ कि सभी मुसलमान इन पुस्तकों को प्रमाणित मानते हैं।

हमने जब भी उन पुस्तकों को पेश किया तभी उन्हें अप्रमाणित बतला दिया गया। इस पर मेरा कहना है कि, केवल इनके मना कर देने से वह अप्रमाणित साबित नहीं हो सकती, जब तक कि कसौटी के इम्तहान पर उन्हें न लाया जावे, मामला फिर वैसा ही है क्योंकि आप और मौलाना वहिदुज्ज़मा दोनों ही अप्रमाणित रहे। वो वास्तव में अब तक प्रमाणित माना गया है। और माना जावेगा। मुझे ये भी उम्मीद है कि भविष्य में जो भी अनुवाद पेश किये जावेंगे, यदि वो भी अप्रमाणित हो जावें तो क्या बहस समाप्त हो जावेगी ? ये शाखाओं की बातें छोड़कर असली मुद्दे पर आता हूँ। मौलवी साहब मेरे सवालों के जवाब देवें, चमत्कारों एवं खुदाबन्द के अस्तित्व के बारे में सफाई दीजिये। आप बतलाइये कि इलहाम किसको कहते हैं, ? और ये कहाँ होना चाहिये ? यदि ये भी एक मामला हल हो गया तो मैं उम्मीद करता हूँ कि शेष जो इससे सम्बन्धित बातें हैं वो सब हल हो जावेंगी। परन्तु जब मौलवी साहब ने अपना सारा वक़्त अरबी व फ़ारसी के शब्दों की अदा को व्यक्त करने में ही गवां दिया तो मसला कहां से हल हो ? भाइयों मैं जानना चाहता हूँ कि क्या यहां कोई अरबी–फ़ारसी के मत्तल्लक कोई परिक्षा चल रही है ? नहीं, नहीं, हर्गिज नहीं। बल्कि हम लोग अपने–अपने विचारों को जनता के सामने सत्य के निर्णयार्थ पेश करने आये हैं, इसलिए मेहरबानी करके कुरान शरीफ़ की सफाई पेश कीजिये, और अपने सिद्धान्तों की सत्यता साबित कीजिये।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

आप फ़रमाते हैं कि तमाम इन किस्सों को रहने दो। बस ! इलहाम की ओर ध्यान दो, तथा उसे चमत्कारों से प्रमाणित मत करो, भला कोई इन पण्डित जी साहब को समझाये तो सही कि यह इलहाम का मामला है, यह इतनी जल्दी कुछ ही मिनटों में कैसे समझाया जा सकता है ? कल मैंने ये कहा था कि चमत्कारों के सम्बन्ध में, मैं आप लोगों को प्रमाण दूंगा। मैं बिना सबूत के नहीं मानूंगा। आप इसे हर बार अनदेखा किये जाते हैं, जबकि यहां मौजूद बुद्धिमान लोग ये सब आपकी हरकतों को समझ रहे हैं। और ये जनता का विश्वास ऐसा होगा जो आपको हारा हुआ साबित कर देगा, मैं पण्डित जी साहब को तर्क दे रहा हूँ, जबकि पण्डित जी साहब ने लिखवा कर भी ले लिया कि **"वहिदुज्ज़मा का तर्जुमा स्वीकार करने योग्य नहीं है"**, परन्तु वो इसके बावजूद भी उसे ही बयान किये जाते हैं, भला क्या ये भी कोई इन्साफ़ की बात है ? हम कहते हैं कि खुदा इस दुनियां के जर्रे–जर्रे में मौजूद है, इसके लिए संसार के किसी भी विद्वान के बयान की जरूरत नहीं है, न किसी की गवाही की जरूरत है। एक बात मुझे ये भी कहना है कि आप सबकी कहाँ तक पैरवी कराते रहेंगे ? हम कहते हैं कि वेद मीठा ज्ञान है, परन्तु ईश्वर का कलाम नहीं, संक्षेप में आप इस बात को स्वामी दयानन्द के लेख से साबित कर दीजिये। स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि वेद कलाम है, यदि सभा में उपस्थित होने वाले लोगों की समझ में नहीं आयेगा तो फिर मैं कुछ नहीं कह सकता। जिस पुस्तक में चाल चलन के खिलाफ कोई बात न हो तो वो ईश्वर का कलाम है। ईश्वर का कलाम पवित्र है, चूंकि इसका ज्ञान भी पवित्र है, आपने कलाम और ज्ञान में कुछ फर्क सोचा होगा? मैं आपको बतला देना चाहता हूँ कि विषय दो प्रकार के होते हैं। १. नादिरल वोकूअ अर्थात् अद्भुत घटना, २. कसीरूल वोकूअ अर्थात् सामान्य घटना जो रोजाना घटती रहती हो। ......चमत्कार का मसला तो मुसलमानों ने ही क्या

अन्य दूसरी कौमों ने भी माना है, इस प्रकार सायंस अजीबोगरीब घटित होने वाली बात नादिरूल वोकूअ है, नहीं साबित होगा। देखिये सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २६४ पर लेख है कि–**"सैकड़ों इन्सान बिना माँ–बाप के ही पैदा हो गये"**। इसी तरह चमत्कारों का प्रकट होना है। जैसा चमत्कार स्वामी दयानन्द ने लिखा है, कि बिना माँ–बाप की सोहबत के औलाद पैदा हो गयी। आपके यहां ये बात दुनियां की निगाह में नाजायज है, असम्भव है, परन्तु इस्लामी लोगों ने चमत्कारों को सम्भव की अवस्था में माना है, और सभी बुद्धिमानों का इसीलिए इस पर विश्वास कायम है। परन्तु आपकी असम्भव बातों पर किसी का भी विश्वास कायम नहीं है। किसी विशेष समय पर किसी विशेष घटना का घटित होना ही चमत्कार है, जिस पर सायंस की बहस नहीं चल सकती। खुदा की हद कहाँ तक है ? खुदा की कुदरत बहुत बड़ी है। पहले आप उसे सत्यार्थ प्रकाश से सिद्ध कीजिये।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

पहले आपने ये फरमाया कि पण्डित जी ने नई बात की। दो रोज तक आपने कुछ नहीं कहा, कल भी आखिरी वक्त में आपने एक मसला छोड़ा था, असली भविष्यवाणी हमारी है। चूँके आप इलहाम पर तैयार होकर नहीं आये, इस वास्ते ये आनाकानी हो रही है। इलहाम कोई नई बात नहीं है। हमारे सवालों का नम्बर है, आपको ये मालूम नहीं कि सृष्टिरचना और चमत्कार एक ही चीज हैं या अलग–अलग ? चमत्कार और अप्राकृतिक कार्य और हैं तथा कुदरत का कानून और बात है। ऊँटनी जो एक जानदार शय है वह किस तरह एक निर्जीव पत्थर से पैदा हो सकती है ? छोटे–छोटे देशी इलहाम विलायती कैसे बन सकते हैं ? आर्य लोग ये ख़्याल नहीं करते हैं कि वो ईश्वरीय ज्ञान है, जिस तरह से आप अल्ला का कलाम मानते हैं। हम आपको बतलायेंगे कि सर्वशक्तिमान किसे कहते हैं ? आपने शायद नादिया बैल देखे होंगे, वो मौलवी साहब कोई चमत्कार नहीं है, अकलमन्द इसको नहीं मानेगा।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

चमत्कार, सम्भावना के दायरे में नहीं है यह कहना गलत है, वह सम्भावना के दायरे में ही है जिसे खुदा ने इस ज़हान की पैदायश के मजमून के लिये नकल किया है। अर्थात् चमत्कार खुदायेपाक का है, नबी का नहीं। अगर वो पत्थर या तिनके में से ऊँटनी निकाले तो ये उसकी कुदरत ही मानी जावेगी। ये काम इस जिस्म से सम्भव नहीं था, परन्तु आप इस बात को तरोड़–मरोड़ कर पेश कर रहे हैं, ये काम खुदा का है, हमारा नहीं। तथा शरह अकायद हमारी बड़ी किताबें हैं, इस विचार से चमत्कार नबी का काम नहीं माना गया। कुरान की आयत है............. बेशक, निसन्देह ! इस प्रकार चमत्कार सम्भावना के दायरे में शामिल है। आपसे फलसफे की दलील मागूंगा, यदि आप उस पर तर्क मागेंगे तो यही कहूंगा कि यह सम्भावना के दायरे में आ सकती है। बुद्धि में न आने वाली चीज दायरये वजूद के दायरे में आ सकती है। थोड़े दिन के बाद कयामत होगी तो मनुष्यों का लालन पालन कहां से होगा ? खुदायेपाक बिना माँ बाप के पैदा होने वालों के खिलाफ कानूने कुदरत पैदा करेगा। साबित कीजिये कि चमत्कार सम्भावना के दायरे में निहित है। आप जो बार–बार कहते चले आ रहे है कि **"पत्थर हजरत मूसा के कपड़े लेकर भागा"** मैं कहता हूँ कि ऐसा कुछ कुरान शरीफ में कहीं पर भी नहीं आया है। अव्वल दर्जे में जो लोगों की पैदायश का जिक्र है वो सम्भावना के दायरे में है जो खुदा की कुदरत का एक नमूना है। उसमें किसी को भी कोई हक़ नहीं है कि

इसको रोकने में शामिल करे। **"दर हकीकत खुईबद रा बहा न बीसयार"** मैंने इस भाषण को चमत्कारों की हैसियत से पेश नहीं किया। ये वस्तुएं तो सम्भावित दशा में ही घटित होने वाली हैं। हमने ऐसा कभी नहीं देखा कि असम्भव वाले दायरे में आने वाली चीज सम्भव हो सके। शास्त्रार्थ का नियम ये है कि यदि जवाब देने वाला कोई दलील पेश करे, और यदि वह न तोड़ी जाये तो दलील कायम रहती है। सच्चाई का मानना बरायेकलाम हुआ करता है। चमत्कार खुदायेपाक का है, जो खुदायेपाक की ओर से नबी की मार्फत पहुँचाने वाला हुआ करता है। मूसा अलैहिस्सलाम ने छड़ी फैंकी, खुदा ने उस छड़ी को साँप बना दिया। किसी ने आपके कान में कह दिया कि पर्देवाली तथा बेपर्दा वस्तुओं का अनुभव अलग–अलग है। आपको इल्म होना चाहिये कि लोहे को जो मखनातीसी असर हुआ करता है, इसको कोई साबित नहीं कर सकता।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

दोस्तों मौलवी साहब की सारी तकरीर का उद्देश्य ये है कि चमत्कार अल्लाहताला की ओर से हुआ करते हैं, परन्तु इसका कहीं कोई जिकर नहीं कि वह चमत्कार अल्लाहताला की जानिब से होता है या नहीं ? आप कहते हैं कि चमत्कारों का दायरा निषेध से निकाला हुआ होता है। अल्लाह मियाँ के यहां ये काम निषेध का नहीं है। वह जो चाहे वो काम कर सकता है। वह चाहे तो एक मिट्टी के खिलौने में जान डाल दे। यह अल्ला की कैसी बड़ी भारी करामात है ? यह उसकी कैसी अजीबोगरीब फिलासफी है, जिससे ईश्वर के अस्तित्व पर धब्बा लगता है। और खुले शब्दों में ये बताया जाता है कि इसका कोई कानून नहीं। दलीलों की कितनी किस्में हैं देखिये–

१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. प्रमाण, ४. शब्द। आप अपनी तकरीर को किसी भी दलील की कसौटी पर कसने के लिए रखिये, आप अपनी बात को साबित करने के लिए खुदाई कमजोरी बतलाते हैं। औलाद, औरत और मर्द की सोहबत अर्थात् सम्भोग से ही पैदा हुआ करती है। कभी भी गधे से हाथी पैदा नहीं होता। इल्मी–अमल से बात कभी भी साबित नहीं हो सकती। दलील ही खुद अपने आपमें एक सबूत है जो वास्तव में खुद ही साबित हुआ करती है। क्योंकि ये मसला इस समय बहस में चालू है, कि–**"मूसा ने छड़ी को फैंका"**............ये इन्सान का फेल अर्थात् कार्य है, जिसे कुरानशरीफ ने बयान किया कि–**"ये चमत्कार है"**। आजकल आप लोगों ने भी अक्सर देखा होगा कि सैकड़ों जादूगर चमड़ा फैंक कर साँप पैदा कर देते हैं। मैं पूछता हूँ कि आखिर कानूने कुदरत क्या बला है ? क्या उस कानूने कुदरत के अन्दर ऊँट से हाथी पैदा हो सकता है। जन्म से आज तक हमारे देखने में तो आया नहीं कि जो वो कानून तोड़ने वाले को तोड़कर सामने आते, इनकी क्या ताकत होती ? शास्त्रार्थ के नियम में कोई भी बहस, विषय से बाहर नहीं हो सकती। बस ! आप साबित कीजिये कि क्या आजकल भी ऐसा होता है कि गधे से हाथी पैदा हो गया हो। आप जानदार और बेजान की परिभाषा भी दीजिये। जानदार का बिना जानदार से कोई सम्बन्ध नहीं है, कोई सबूते दलील जब तक आप नहीं देगें तो पब्लिक खुद ही परिणाम निकाल लेगी। आप टाल–मटोल कर रहे हैं, **"पत्थर का कपड़े लेकर भागना"** कुरान में साफ मौजूद है, देख लीजिये...........।

श्री मौलवी अहमद अली साहब–

बहुत अच्छी तरह प्रत्येक को साबित कर सकता हूँ।

श्री मौलवी अब्दुल हक साहब (कुरान के भाष्यकार)–

मैं फिर वही शब्द दोहराता हूँ कि मुबाहिसे में कोई भी बात बहस से बाहर की नही होनी चाहिये अन्यथा मुबाहिसा एक सब्जीमण्डी का बाजार बनकर रह जाता है। मुझे चमत्कारों के बारे में बयान करना है तथा थोड़ी सी बहस जनाब पण्डित जी की तकरीर पर करनी है। पण्डित भोजदत्त जी ने अपनी तकरीर में कहा था कि खुदा की इस इबारत से साकार होना साबित होता है, यदि कोई साकार वस्तु होती है तो सामने लाकर खड़ी कर दी जाती है। हमें वहिदुज्जमा के अनुवाद के बारे में डर दिखलाया जा रहा है। जबकि वह पुस्तक कभी भी प्रमाणित सिद्ध नहीं हो सकती। क्यों साहब ! मौलवी वहीदुज़्ज़मा के खिलाफ़ बड़ा मलाल चला आता है। लड़कपन में हमने जो नियम सीखे थे, हम अब उनके खिलाफ़ कह सकते हैं, कि यह एकतरफा डिग्री नहीं है। सनातनधर्मी बड़े बड़े भाष्यकार अब भी स्वामी दयानन्द के खिलाफ हैं। विभिन्न स्थानों पर सनातनधर्मियों से शास्त्रार्थ होते हैं, उनका ख्याल है कि स्वामी दयानन्द ने वेद मन्त्रों के अर्थ गलत किये हैं, आप भी यदि उन सनातनधर्मी पुस्तकों को परीक्षा की कसौटी पर रखते हैं तो उन्हें बहस से बाहर यह कहकर अलग कर देते हैं कि ये अप्रमाणिक हैं, हम इन्हें नहीं मानते। पण्डित जी ने इस्लाम की किसी भी पुस्तक को नहीं देखा, यदि पण्डितजी साहब नाचीज की उर्दू की किताब ही को पढ़ लेते तो ऐसे एतराज़ नहीं करते। महाराज ने शुरू से ही ना कहा था कि इस्लाम के विश्वास व मजहब, सायंस व फलसफा के खिलाफ़ हैं। ये प्रश्न स्वामी दयानन्द जी का है। स्वामी दयानन्द जी ने पुस्तकों को बदल डाला, इसकी वजह फिर बतलाऊंगा। स्वामी दयानन्दजी ने सायंस आदि के मामले अंग्रेजी विद्वानों को खुश करने के लिए निकाले हैं। प्रकृति और जीव जब ईश्वर ही की तरह अनादि हैं तो खुदा का कौन दावा है कि जो उन पर सल्तनत कर सके।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

भाइयों ! मौलवी साहब ने मुझे नसीहत अर्थात् उपदेश दिया है कि मुझे शास्त्रार्थ के नियमों के विरूद्ध नहीं जाना चाहिये। आप लोगों को ये तो ज्ञात ही है कि चमत्कारों के विषय का प्रश्न बहस में चल रहा है, परन्तु अफसोस ! कि मौलवी साहब ने इसका उत्तर नहीं दिया, मतलब क्या था कि पन्द्रह मिनट यों ही बेकार गुजार दिये। हमें नसीहत दी जाती है तथा खुद नियम के खिलाफ चले जा रहे हैं। खुदा का साकार होना कुरान शरीफ से साबित हो चुका। मौलवी अहमद अली साहब का शुक्र है कि कम से कम चमत्कारों का जिकर तो आरम्भ कर दिया था।

हम तो समझे थे मिसले पिस्ते के।
पोस्त बर पोस्त निकला मिस्ले प्याज।।

हमने पब्लिक को दिखला दिया कि हमारे मौहम्मदी भाइयों के विश्वासों की कुरान शरीफ़ से कहाँ तक बू आती है ? क्या बिना परीक्षा के किसी पुस्तक का विश्वसनीय या अविश्वसनीय होना सम्भव है ? प्रत्येक वस्तु के लिए परीक्षा की कसौटी निश्चित की गई है। बस ! फैंसला आपकी जुबान पर हुआ अगर अकायदे इस्लाम किताब जो लिखी जा चुकी है उसे विश्वस्त मान लेना चाहिये बशर्ते कि वह परिक्षा की कसौटी पर खरी उतरे। अपने मुकाबले पर विद्वानों का अपमान करना शास्त्रार्थ के विरूद्ध है। हमने अज के मायने शंकर भाष्य से अपने पक्ष में दिखलाये, क्या आपको ये जानकारी थी कि अज के अर्थ बकरी इसलिए कर दिये जावें

कि अरबी के फ़ाजिल आर्यसमाज में नहीं हैं ? मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैंने अरबी व फ़ारसी नियम से पढ़ी है। परन्तु मैं ये बात दावे के साथ कह सकता हूँ कि मौलवी साहब ने संस्कृत नहीं पढ़ी, इसीलिए मूल पाठ का ऊट पटांग अर्थ करके बयान कर रहे हैं। परन्तु जनाब मौलाना साहब यहां पर भाषा के ज्ञान की परीक्षा नहीं हो रही है। ये मुबाहिसा है, जहां हमारी और आपकी मान्यताओं का सत्य–असत्य का फैंसला होना है, हालांकि आपने महर्षि दयानन्द पर व्यक्तिक तौर पर भी हमले किये, परन्तु हम चुप रहे। और हमारे काबिल दोस्त मौलवी अब्दुल अजीज का ये कहना कि–सर्टीफिकेट दिखलाओ ? मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या यहां सर्टीफिकेट दिखलाने से नौकरी मिलेगी ? ....जनता में हंसी..........आपका ये कहना कि चमत्कारों का सर्टीफिकेट दिखलाओ, यह हमारा सर्टीफिकेट दिखाने का कर्त्तव्य नहीं है। हमारा कहना है कि चमत्कार बुद्धि के खिलाफ़ की बातें हैं। सर्र सैय्यद अहमद खाँ के कालिज के लड़के मौजूद हैं वो आकाश की बाबत क्या विचार रखते हैं ? इस समय उनसे ज्यादा फलसफेदान आप लोगों में नहीं हैं, इनसे पूछ लो सातवाँ आसमान कहां पर स्थित है ? जिसे आप मानते हैं। इस विषय में जो कुछ इन लड़कों की मान्यता है वही मान लीजियेगा, ये सायंस व फलसफे के आधार पर आपको सब बतला देंगे ! मौलवी साहब ! ये विज्ञान का युग है, अब आप बहुत सोच समझ कर बोला कीजिये, हर विद्यार्थी इन सब बातों को जान चुका है। वह अब अनजान नहीं रहा अब हजरते मूसा का जमाना खतम हो गया,...........जनता में जबर्दस्त हँसी...........आप हमसे प्रकृति और जीव के बारे में पूछते हैं, वहां तो ईश्वर की आज्ञा को माना गया है, इस समय हमारा अधिकार पूछने का हैं, आप बहस से बाहर की बातें करके समय नष्ट कर रहे हैं। आप चमत्कारों के सबूत देने में असमर्थ और मजबूर हो गये। आत्मा "**कारण**" है या "**परिणाम**" ? इसके लिए आपने कौन सी दलीले पेश की हैं ? जरा फ़रमा तो दीजियेगा।

श्री मौलवी अब्दुल हक साहब–

हमारे ऊपर इलज़ाम लगाया जा रहा है कि हमने कोई दलीले पेश नही कीं, ऐसी नगरी जिसका कोई राजा न हो क्या ऐसा हो सकता है ? अभी तक मेरे शुरू में किये गये सवाल ज्यों के त्यों पड़े हुए हैं, उनका पण्डित जी ने कोई जवाब नहीं दिया। आनन्दगिरि और शंकराचार्य के भाष्य यह कह कर खारिज कर दिये गये कि ये प्रमाणित नहीं हैं। जबकि सही मुस्लिम तो बहस से बाहर थी, फिर भी उसी को कहते चले जा रहे हैं। हमारे शेख अब्दुल अजीज साहब के द्वारा दी गई दलीलें नकली बता रहे हैं, क्यों साहब ! जो आर्य मुनि जी महाराज ने गीता के भाष्य में लिखा है कि–समुद्र को सुखा देना योगियों के अधिकार में था, क्या ये कहानी कानूने कुदरत के खिलाफ़ नहीं है ? ये आर्यों का विचार है कि आग में हाथ डाल दिया जावे तो नहीं जलेगा। देखिये–"**तमसै**........" केन उपनिषद में कहा है। आर्य लोग चौथे नियम पर कायम नहीं हैं, बीच–बीच में अपने विचार बदले चले जाते हैं। अब जीव की प्राचीनता के सम्बन्ध में कुछ और ही विचार बदल गया। हिन्दू और मुसलमान की बातें जो कुछ हैं वो मान रहे हैं। चमत्कारों को अनुमानित दलीलों से कोई सम्बन्ध नहीं है और इसको कानूने कुदरत के खिलाफ़ कहना एक खरी गलती है। मैं पूछता हूँ कि सायंस के अनुसार आत्मा का अस्तित्व ही कब है ? सायंस की सत्यता जो आज से दस बरस पहले थी, वह आज सब भिन्न हैं, जिस मजहब का दारोमदार अर्थात् बुनियाद ही सायंस पर टिकी हो उसकी कोई हैसियत नहीं। क्योंकि सायंस तबदील होती रहती है। कुदरत का कानून तीन शब्द हैं, एक शब्द कानून, दूसरा कुदरत, तीसरा कुदरत का कानून, के क्या अर्थ हैं ? कुदरत है तो किसकी कुदरत ? क्या खुदाई कुदरत या बन्दे

की कुदरत ? कौन सी कुदरत ! कानून बनाने वाला मुकन्निन–कुदरत का कानून वो है जो जन्म के आरम्भ से अब तक जारी हो।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मैं अव्वल तो मौलवी साहब जी को ये बतला देना चाहता हूँ कि सायंस अर्थात् विज्ञान कभी नहीं बदलता, बल्कि उसमें प्रतिदिन नया–नया ज्ञान प्राप्त होता जाता है, कुरान शरीफ़ में लिखा है कि–**"खुदा का कलाम कभी नहीं बदलता"**, इसलिए इसका कानून भी कभी नहीं बदल सकता।

श्री मौलवी अब्दुल हक़ साहब–

पण्डित जी साहब ने मेरे द्वारा पेश किये गये केन उपनिषद के मन्त्र को बिल्कुल नहीं छुआ। खैर ! अब आप कृपा करके सायंस और फलसफे का अन्तर समझाइये, मैं दो बरस की मोहलत देता हूँ बताइये क्या वस्तु है ? कानून किसकी कुदरत के लिए माना जाता है, ये मैं अहसान फरामोश लोगों को क्यों बताऊँ ? सृष्टि के शुरू में जो कुछ होना आरम्भ होता है, वही अन्त तक रहता है। ज़रा घर में तो फैसला कर लो। आपके परमेश्वर ने तो एक चींटी की टांग भी नहीं तोड़ी। कारण के द्वारा परिणाम क्योंकर पैदा हो जाता है ? जो सृष्टि के आरम्भ से सदैव होता रहे वो ही कानूने कुदरत अर्थात् कुदरत का कानून है। हमारे फ़ाजिल मौलाना अहमद अली साहब ने जो कहा था कि कानूने कुदरत और चीज है, खरके आदत और चीज है। इसका अर्थ जहाँ तक लोग नबी का मौजिजा अर्थात् चमत्कार बयान करते हैं, वो ये हैं कि जो वस्तु स्वाभाविक रूप में जारी है वो नहीं बदली बल्कि वो वहीं की वहीं मौजूद है। मान लिया जावे कि सारे संसार को ईश्वर नहीं बनाता, खुदा परस्ती दूसरी वस्तु है। शुक्र है कि जन्म से ही ईश्वर को माना। कुदरती कानून के विरूद्ध और नबी के चमत्कार दोनों को समझने में भूल है। ईश्वर अपने जैसा कभी नहीं पैदा कर सकता। सारा संसार ईश्वर का पैदा किया हुआ है। कानून क्या है कि–बेरी से बेर और आम से आम पैदा होता है। मिट्टी से हमेशा मेंढ़के बनते हैं, ऊँटनी को उसने पैदा कर दिया तो क्या ताज्जुब है ? खुदा के अस्तित्व में दोष अर्थात् कमी पैदा करना बुद्धि के खिलाफ़ है।

श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर–

मौलवी साहब ने आखिर टूटी–फूटी बातें करके समय समाप्त कर ही दिया। चमत्कार और योग में कोई अन्तर नहीं ? चमत्कार योग नहीं हो सकता, योगी हर कोई हो सकता है, परन्तु कानूने कुदरत तथा नबी के चमत्कारों ने प्रत्येक को नहीं बताया। कानूने कुदरत को नबी के चमत्कारों या कानूने कुदरत के खिलाफ़ अनोखी बात में ले आये। क्योंकि बहस अल्लाह के ज्ञान की बाबत है, आदत पर बोझ डालना खुदा बन्दे करीम की आदत भी बदल सकती है। अल्लाह के कलाम कुराने शरीफ में अगर परिवर्तन हो जाये तो खुदा की आदत बदल जाये, अन्धेर आ जाये, कितना गज़ब है कि खुदा की ज़ात पर धब्बा लग जाये। बूढ़े बादशाह की तरह आपको अल्ला मियाँ के गिरने का डर है ? आप खुदा बन्दे करीम की ज़ात पर हमला किये जायें। हमें इससे कुछ मतलब नहीं है कि आप फिक: (इस्लामी धर्मशास्त्र) और हदीसों से इन्कार करते हैं। इलहाम के बारे में कोई जवाब नहीं दिया, और न प्रकृति और जीव के बारे में ही कुछ जवाब दिया, परन्तु कानूने कुदरत के लिए सारे शब्दों को रट रहे हैं, आपने कुरान शरीफ के हवाले से कुछ भी साबित नहीं किया। हर रोज कहते तो रहे परन्तु आपने अपनी किताबों से कोई दलील नहीं दी, कि क्यों कर हज़रत नूह ने हाथी

की पूँछ पर हाथ धर दिया तो वह गन्दगी खाने वाला (सूअर) जानवर हो गया। मिश्कात शरीफ़ में लिखा है कि खुदा ने आदम को अपनी सूरत पर बनाया है। ये अनुमान प्रमाण है। और बाबुलहस्र में लिखा है कि खुदा को कयामत के दिन आठ फरिश्ते लेकर आयेंगे...............आदि–आदि, यहां साक के मायने पिण्डली के हैं, ऐसे खुदा के सम्बन्ध में ये विचार करना कि सारे संसार पर उसका अधिकार है, ये असम्भव है। जिसके लिए मेराज़ प्राप्त की गई, नमाज़ में झगड़े हुए, कार्य आमाल से बनाया गया। हज़रत आयशा का कहना है कि मेराज आत्मा की है। अल्लाह मियाँ का बोझ इतना है कि तख़्त चूँ–चूँ कर रहा है। शाह रफीउद्दीन और वलीयुल्लाह शाह का अनुवाद है कि छः दिन के बाद ज़मीनो–आसमान बना, तब आकाश पर चढ़ना बतलाया गया। आकाश सात हैं, प्रत्येक आसमान पर एक चपरासी है। क्या मौलवी साहब ये बताने का कष्ट करेंगे कि ये चपरासी ज़िस्म वाले हैं या बिना जिस्म के !

श्री मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब–

नालये बुल–बुल शैदां तू सुना हँस–हँस कर।
अब ज़िगर थाम के बैठो, मेरी बारी आई।।

हज़रात ! परसों से कानूने कुदरत पर बहस हो रही है। हम ये खूब जानते हैं कि शास्त्रार्थ में सहारनपुर निवासी श्री मौलवी अहमद अली साहब ने जिनका कि मैं हृदय से शुक्रगुज़ार हूँ इस मुबाहिसे की शर्तों में जिन्होंने साफ लफज़ों में यह बात रक्खी हुई है कि–बातचीत अनुशासन व नियम में होगी, वो भी पहले कलाम का ज्ञान हो तो बात ठीक है। एक ये भी बात है कि वेद किस समय दिखलाये गये ? खुदा की कुदरत का कानून, हम बनाने वाले और वो भी कानून वेद बनाने वाला। जब एक ही मन्त्र में पेश किया गया तो वेद रद्दी और यदि कुरान से नहीं दिखाया तो कुरान रद्दी। दोनों और से सायंस और फलसफे पर बहस हो रही है, जो बहस के विषय से बाहर है। जबकि वेद का खुदा, बिना माद्दे के एक मक्खी भी नहीं पैदा कर सकता। वेद इसके खिलाफ़ है। वेद के अनुसार ईश्वर सब कुछ जानने वाला है, उसे त्रिकालदर्शी या ऋषि कहना कानूने कुदरत के खिलाफ है। मैं पूछता हूँ कि आखिर वेद किस पर नाज़िल अर्थात् प्रकट हुए ? जवाब दिया जाता है कि ऋषियों पर.............पण्डित जी जरा बताइये तो सही अथर्ववेद का लेखक कौन है ? व्यास जी का हाल ये है कि–माँ के पेट से जवान बेटा होकर जंगल को चले गये। राजा मान्धाता इन्द्र की कृपा से जवान पैदा हुआ। युधिष्ठिर जी महाराज का रथ बालिश्त भर जमीन से ऊपर चला करता था, भाइयों ! ये इनका करोड़ बरस से भी ज्यादा का पुराना कानून है, जिसे आज आप इसे तोड़ने चले हैं। इन्ही लफ़जों के साथ मैं अपना मज़मून समाप्त करता हूँ।

इस प्रकार यह चार जौलाई वाला अन्तिम धार्मिक जलसा भी आज शान्तीपूर्वक समाप्त होता है। आगे आप इस मुबाहिसे का नतीजा ग़ौर फ़रमायें।

———————— : 0 : ————————

मुबाहिसे का नतीज़ा

सम्मानीय पाठक गण ! ये कार्य कि ये मुबाहिसा अर्थात् शास्त्रार्थ किस तरह और किसके द्वारा तथा किस स्थान पर, किन–किन परिस्थितियों में सम्पन्न हुआ ? यह सब इस शास्त्रार्थ के आरम्भ में **"शास्त्रार्थ से पहले"** वाले लेख में पूर्ण विस्तारपूर्वक बताया जा चुका है। और ये भी बताया जा चुका है कि इस्लाम की ओर से ग्यारह दिग्गज औलुमाये मौहम्मदी शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में चुने गये और आर्यसमाज की ओर से दो सहायक और अकेले पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर ही थे। इस शास्त्रार्थ की शुरूआत ग्राम **"टोपरी"** में हुई जहां मात्र एक दिन ही शास्त्रार्थ हो पाया, तत्पश्चात सहारनपुर में आकर यह शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ, वहां सहारनपुर में इस शास्त्रार्थ के दौरान क्या–क्या दशा गुजरी, उसका सारा विवरण संक्षिप्त रूप से नीचे दिया जाता है।

२६ जून सन् १६०६ ई0 को सहारनपुर में श्री बाबु जमनादासजी प्रधान, आर्य समाज–सहारनपुर व मौलवी अनवर अहमद साहब ठेकेदार की अध्यक्षता में प्रारम्भ होकर ४ जुलाई सन् १६०६ ई0 में समाप्त हुआ, मगर हमें अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि सहारनपुर में आर्यसमाज की कमजोरी के कारण प्रधान साहब व लाला उग्रसैन, खलफुर्रशीद, बाबु हरकिशन लाल साहब, वकील स्वर्गवासी आर्य समाज के पूर्व प्रधान व पण्डित मुरारी लाल शर्मा, मास्टर लक्षमण दास व मुन्शी कूड़ा मल्ल साहब इत्यादि चार–पाँच लोगों के अलावा आर्य समाज की ओर से अन्य किसी ने भी साथ न दिया, सभी आर्य लोग किनारा काट गये, जबकि उधर चुनिन्दा मौहम्मदी मनाज़रकर्त्ताओं के साथ ग्यारह दिग्गज़ औलुमाये इस्लाम अपनी–अपनी तलवारों पर तेज धार लगायें हुए तैयार बैठे थे। शहर के बाहर एक थियेटरहाल में जो खुले मैदान के साथ था, शास्त्रार्थ शुरू हुआ तथा वहीं पर शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। जहां पर वह हाल तथा मैदान लगभग बारह या पन्द्रह हजार लोगों की भीड़ से खचाखच भर जाता था, मुसाफिर के साथियों के होश उड़े हुए थे, ऐसा समां बन्धा हुआ था, तिस पर उनकी ओर से उन पांच–सात लोगों के अलावा कोई साथ नहीं था, परन्तु उस मुसाफिर की हिम्मत की दाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता जो अकेले ही शेरे गुर्रां की तरह एक हफ्ते तक निर्भीक होकर उस शास्त्रार्थ के मैदान में गुर्राता रहा, उस ओर दो–दो लेखक इस शास्त्रार्थ को लिखने के लिए बैठे थे, परन्तु इधर आर्य समाज की ओर एक लेखक भी नज़र नहीं आया, विवश होकर मास्टर गंगा प्रसाद जी को इस बड़े भार के लिए तैयार किया गया था। जिनका सच्चे हृदय से हम आभार प्रकट करते हैं, कि जिन्होंने बिना तरतीब, कम–अधिक, गलत या सही कुछ मसाला इकट्ठा करके इस पुस्तक के लिए दिया। अतः इस्लामियों की ओर से हम इस छपे हुए मुबाहसे को देख कर यही कह सकते हैं कि– दो लेखकों के होते हुए भी सही भाषणों का मिलना अति कठिन है, इसके अलावा ये कि हम गनीमत समझते हैं कि हमें भी कुछ नोट मिल गये, जिनके कारण ये नुस्खा भली भांती तैयार हो गया, परन्तु हम अपने इस्लामी भाइयों का तहे दिल से शुक्रिया अदा करते हैं कि काफी हद तक उन्होंने अपनी ईमानदारी का सबूत दिया, हाँ ! यदि हमको दोनों ओर के भाषण सही विस्तार रूप में प्राप्त हो जाते तो हमारा इरादा था कि हम इस शास्त्रार्थ के परिणाम को कदापि न लिखते, चूँकि इस मुबाहिसे का अभी मतलब साफ नहीं होता इसलिए हम इस परिणाम को संक्षिप्त रूप में लिखने पर मजबूर हुए। हम संक्षिप्त रूप में केवल ये बतला देना चाहते हैं कि इस्लाम वालों की ओर से मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब सैक्रेटरी अन्जुमन हिमायते इस्लाम, देहली। जो शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में विराजमान थे, उन्होंने निम्नलिखित चार एतराज आर्य समाज पर किये, देखिये–

१. आत्मा और प्रकृति की प्राचीनता वेद में नहीं है ।

२. क्या कानूने कुदरत के खिलाफ़ खुदा अमल नहीं करा सकता ?

३. क्या बिना कारण के कार्य का इज़हार नहीं हो सकता ?

४. खुदा को त्रिकालदर्शी कहना ज़हालत है।

इस्लाम वालों ने इन चार आपत्तियों का सबूत वेदों से मांगा है। अतः इनके जवाब भी निम्न रूप में दिये गये–

१. रूह और मादे की क़दामत अर्थात् जीव और प्रकृति के अनादित्व के बारे में मुसाफिर जी ने ऋग्वेद मण्डल–१, सूक्त १६४ का २०वाँ मन्त्र–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्म नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

शाब्दिक अर्थ के साथ, श्वेताश्वेतर उपनिषद के अध्याय–४ का वाक्य–६ व्याख्या सहित प्रस्तुत किया। और बताया कि ऋग्वेद में यह मन्त्र उपमालंकार के रूप में मौजूद है। जिसमें परमात्मा ने उपमालंकार के रूप में बताया है कि प्रकृति रूपी वृक्ष पर जीवात्मा तथा परमात्मा रूपी दो पक्षी अनादिकाल से बैठे हुए हैं, जिसमें जीवात्मा रूपी पक्षी प्रकृति रूपी वृक्ष के फलों को भोगता है, तथा परमात्मा रूपी पक्षी मात्र उसे देखता है, वह भोगता नहीं है। अतः इस उपनिषद वाक्य से स्पष्ट है कि प्रकृति, जीव तथा परमेश्वर ये तीनों अनादि हैं, इसके अलावा कई एक मंत्र पेश करके सम्भूति तथा असम्भूति अर्थात् व्याप्य और व्यापक की व्याख्या प्रस्तुत की गई, जैसा कि शास्त्रार्थ के मध्य आया भी है, तथा इसके बाद कुरान शरीफ से प्रकृति और जीव नई बनी हुई वस्तु होने का सबूत भी मांगा गया था, परन्तु इस सम्बन्ध में एक भी आयत या अक्षर प्रस्तुत न हुआ।

प्रश्न–२, ३ व ४ का उत्तर भी दिया गया और समझाया गया कि परमात्मा का कानून पूर्ण तथा परिवर्तनशील नहीं है। इसके खिलाफ जबकि परमात्मा स्वयं परिवर्तन करे, दूसरा भी इसके खिलाफ अमल करने से मुजरिम ठहरता है, इसके अलावा बिना कारण के कार्य नहीं कह सकते, बल्कि कार्य वही है जिसका कोई कारण न हो तो, एक तरफ संसार को कार्य कहना फिर उसके कारण को न मानना सरासर नादानी अर्थात् अज्ञानता है। भाईयों ये भी गलतफहमी है कि सत्यार्थप्रकाश की इबारत जहां सवाल व जवाब के रूप में लिखी हुई है, कि परमेश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता है वहां साफ ज़ाहिर है तथा स्वामी दयानन्द जी का वहां साफ मतलब कहने का यह है कि परमात्मा संसार की क़ैद अर्थात् बन्धन से मुक्त है अर्थात् वह स्वतन्त्र है। भूतकाल, भविष्यत काल, और वर्तमान काल ये दायरे मनुष्यों के लिए हैं न कि परमात्मा के लिए ! वह तो असीम तथा सर्वशक्तिमान है। जबकि उसके ज्ञान में हर समय एक जैसा है, तो उसको आजकल, परसो का जानने वाला कहना सरासर नादानी ही है, उस पर समय का बन्धन लगाना एक लज्जा की बात है, यह समय का बन्धन जीव के लिए है न कि उस असीम, सर्वव्यापक ईश्वर के लिए ! अतः चार दिन इस्लाम को एतराज करने के लिए दिये गये थे। इस प्रकार चार दिन तक मौलवी अब्दुल मज़ीद साहब जो इस्लाम की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में मुख्य रूप से विराजमान थे, अन्य दूसरे एतराजातों, से नज़र हटा कर केवल जीव व प्रकृति के अनादित्व पर ही शाब्दिक वाचालता से उन्हें बार–बार दोहरा कर ही अपना समय

पूरा करते रहे। और प्रत्येक सभा में यही कहते रहे कि प्रकृति अनादि नहीं है और अपनी आदत के अनुसार इस्लामी शास्त्रार्थकर्त्ता दो पखेरू वाले मन्त्र पर उसे शाब्दिक वाचालता से तोड़–मरोड़ कर जनता के सामने पेश कर–करके मज़ाक उड़ाते रहे तथा सभा में बैठे श्रौताओं को हँसाते रहे। आपको ध्यान रहे कि इस्लाम की ओर से ग्यारह इस्लामी दिग्गज विद्वान कहलाने वाले उनके प्लेटफार्म पर मंचाशीन थे, परन्तु मुसाफिर के बार–बार अनुरोध और तकरीर करने पर भी उनमें से किसी एक की भी ये हिम्मत न हुई कि कुरान शरीफ से एक आयत भी प्रकृति या जीव को नया पैदा होने वाली वस्तु साबित कर सकें। बस ! खामोश टक–टकी लगाये बैठे देखते रहे। और अगर बोलने को खड़े भी हुए तो दो–चार मजाक इधर उधर के उड़ा गये, कुछ शेर पढ़ कर लोगों को खुश करने का प्रयास करते रहे, परन्तु तत्व की एक भी बात नहीं कहते थे। अन्ततः वेद मन्त्र से व्याख्या करके व्याकरण के साथ साबित किया गया कि **"अज"** शब्द जो पेश किये गये मन्त्र में आया है और व्याप्य तथा व्यापक के अर्थों में असम्भूति आदि शब्द आये हैं, मुसाफिर के जवाब की पुष्टि में बतला रहा है कि ये प्रत्येक पदार्थ अनादि हैं। परन्तु मौलाना साहब संस्कृत के ज्ञान से बिल्कुल कोरे होते हुए भी संस्कृत शब्दों की बहस में पड़ गये, नतीजा ये हुआ कि–इधर बीन बजती रही और उधर रीं–रीं होती रही। वहां पढ़ी लिखी पब्लिक पर ही न्याय का दारमदार था, नतीजा ये हुआ कि सारी पब्लिक के आगे इस्लाम की कमजोरी सामने आ गयी, आखिर इस अज्ञानता की कमजोरी को चुटकलों व शैरों को बोल–बोल कर कहां तक छुपाया जा सकता था ? अन्तिम समय में आप अब्दुल अजीज उर्फ जगदम्बा प्रसाद के सिखलाने से बोले कि फलां उपनिषद के मन्त्र के भाष्य में **"अज"** के अर्थ **"बकरे"** के हैं। और ये बकरा–बकरी की कहानी लिखी है। इस प्रकार दूसरे दिन जिसका पीछे जिकर हुआ है वह मंगाकर दिखलाया गया, जो हमारे अनुसार निकला, और दूसरे अर्थ ज्वालाप्रसाद मुरादाबादी के भी दिखलाये गये, जिनसे साबित हुआ कि यहां **"अज"** के अर्थ **"अजन्मा प्रकृति"** के हैं। फिर क्या था जिसके लिए संस्कृत भाषा ही काला अक्षर भैंस बराबर हो तो वो ऐसी संस्कृत की बहस में कहां तक चल सकते थे ? परिणाम स्वरूप टाय–टाय फिश करके ही रह गये। यहां तक कि शास्त्रार्थकर्त्ता मुसाफिर ने दुनियां की पैदायश के सम्बन्ध में दो–तीन आयतें जैसे–**"लकद ख़लक़्वल इन्साना........"** आदि पेश कीं और बतलाया कि देखो अल्लाह मियाँ ने खनखनाते हुए ग़ारे से आदम को बनाया, पानी से जमीन तथा धुवें से आसमान पैदा किया। आप बतलायें कि वो कौन सी आयत है जो प्रकृति और जीव की पैदायश बतलाती है। अतः जहाँ तक सम्भव था, चार दिन तक प्रत्येक प्रकार का अकली व नकली सबूत पेश हुआ, जिसके खिलाफ़ सिवाय एतराज दोहराने के मौलाना साहब ने एक भी उचित उत्तर न दिया, अन्ततः पांचवा दिन हमारे द्वारा एतराज पेश करने का आया, जिसमें हमने आर्य समाज की ओर से बहुत ही गम्भीरता व शान्ति के साथ चार प्रश्न पेश किये, जो इस प्रकार थे–

१. अल्लाह साकार है या निराकार ?

२. कुरान शरीफ में वर्णित मौज़िजे अर्थात् चमत्कार कानूने कुदरत व फितरत के खिलाफ हैं या मुवाफ़िक हैं ?

३. प्रकृति और जीव के नई पैदा होने वाली वस्तु का सबूत कुरान शरीफ से दीजिये।

४. कुरान शरीफ के इलहामी होने का दावा प्रमाणित कीजिये।

अलावा इसके बहुत ही अफसोस के साथ लिखा जाता है कि अपने समय के प्रसिद्ध कुरानी भाष्यकार

व तर्कशास्त्री तथा अरबी मदरसों के मुस्लिम ग्यारह औलूमाये अर्थात् विद्वानों को चुने जाने के बावजूद भी तीन दिन तक एक भी फ़ाजिल मौलवी सच्चाई प्रकट करने के लिए कुरानशरीफ़ के खिलाफ़ कुछ भी कहने का साहस न कर सका, कि अल्लाहमियाँ का साकार या निराकार होना खुले शब्दों में ज़ाहिर करें। उपनिषदों आदि पर बहुत कुछ मजाक भी उड़ायी गई, तथा फलसफे में भी टाँग अड़ायी गई, इसके बावजूद भी किसी से एक आयत भी पेश न हो सकी, जो सवाल का सही जवाब दे सके। यहां तक कि प्रतिक्षा की घड़ियाँ बहुत बढ़ गयी, तथा जब भी कोई हदीस या आयत पेश की जाती थी तो यह कहकर इन्कार कर दिया जाता था कि हम इसके अनुवादक को तसलीम अर्थात् स्वीकार नहीं करते। तब फिर उन बिंमारों की दुर्बल दशा देखकर पहले सवालों को छोड़कर दूसरे सवाल पूछे जाते थे, कि चलो अच्छा तुम इसी का उत्तर दो, जैसे कुरान के चमत्कारों को ही सिद्ध करो, परन्तु वही ढ़ाक के तीन पात ! परन्तु कहना ये कि–

बन्द तोहमत से हुआ मुंह काला अय्यार का।
पड़ गया फन्दा गले में हल्कये दसतार का।।

इन्कार के सिवाय और कुछ भी नहीं सूझता था, मौलाना मौहम्मद अली साहब मन्तिक के विद्वान कहते हैं कि कुरान शरीफ में–"**मूसा के कपड़े पत्थर लेकर फ़रार हो गया**" कहीं नहीं लिखा। इनके साथ ही दूसरे मुस्लिम विद्वान मनाज़रकर्त्ता भी कभी इन्कार कभी इकरार करते हुए समय गँवाते रहे। यहां तक कि डूबते को तिनके का सहारा, पूरा होगा या नाव का सहारा, कभी ऐसी मजाक से गुजारा करने लगे, आखिर चूँके ये मुबाहिसा असूलन चार दिन तक जारी रहना था, मगर मौहम्मदी भाइयों की कमजोरी ने मजबूर कर दिया कि यह मुबाहिसा तीसरे दिन ही समाप्त हो जावे, क्योंकि–"**उनकी इस कमजोरी का नतीजा यहां तक आ पहुंचा था कि वे मौहम्मदी मनाज़रकर्त्ता अपनी विवशता व कमजोरी को महसूस कर–करके आपस में ही लड़ने लग गये, तथा आपस में ही एक दूसरे पर अज्ञानी होने की तोहमत लगाने लग गये। मनाज़रकर्त्ता मौलवी अब्दुल मज़ीद ने मेज पर पुस्तक दे मारी तथा अपने साथियों को अपशब्द कहते हुए बोले कि–तुम सबने इस्लाम की लुटिया डूबो दी है। मैं बार–बार कहता था कि इधर उध र की बातें न करके किसी खास मुद्दे पर अकली बहस करो जिससे कुछ अच्छा नतीजा सामने आवे, पर मेरी सुनता ही कौन है। अब कहीं पानी मिले तो उसमें डूब मरो, उधर अकेले मुसाफिर ने हम ग्यारह को चारो खाने चित्त कर दिया, और तुम सब तमाशा देखते ही रह गये। दूसरा मौलवी कहने लगा कि तुमने ही सबकी इज्जत खो दी है। उनमें से एक मौलवी यह कह कर चलने लगा कि तुम्हे अल्लाह मियाँ कभी मुआफ़ नहीं करेगा**" आदि–आदि, जब काफी शोरेगुल हो गया तो सभी ने मिल कर उन सभी को शान्त किया, और चूंकि काफी तौर पर ऐतराज नम्बर–१ पर और सरसरी नज़र डाल कर नम्बर–२ पर, तीन दिन इन्ही दो आपत्तियों पर व्यतीत हो चुके थे, अन्त में ये सब मसले छोड़कर अन्तिम तकरीर में पब्लिक को बतला दिया कि–सुरतुल अहजाब पारा–२२ रूकूअ–६ की आयत–"**या अय्युहल्लज़ीन आमनु ला तकूनू कल्लजी....न आज़ौ मूसा फ–बर्र–अ–हुल्लाह........**" इत्यादि की तफ़सीर मौज़ूहुल कुरान में साफ लिखा हुआ है कि–"**हज़रत मूसा पत्थर पर कपड़े रख कर गुस्ल करने लगे, पत्थर कपड़े लेकर भागा तो हज़रत उसके पीछे छड़ी लेकर दौड़े, और पत्थर को पकड़ लिया, और उस छड़ी से वार किया, तो पत्थर पर नक्स अर्थात् निशान पड़ गये और हदीस बुखारी तथा सही मुस्लिम से भी यही प्रमाणित होता है, और ये कि हज़रत पत्थर के पीछे ये कहते हुए भागे कि–ऐ पत्थर मेरे कपड़े**

दे ! ऐ पत्थर मेरे कपड़े दे !!" शायद ये हमारे श्रीकृष्ण जी की देखा–देखी चीर हरण वाली लीला हो, इसके पश्चात ईश्वर के साकार और निराकार होने में कुछ आयतें पेश की गई जैसे–सूरये कसस में देखिये सूरये–**"मिनश्शजरति अय्यामूसा इन्नी अनल्लाहु रब्बुल आलमीन्"** यानी आवाज आई कि–**"ऐ मूसा मैं हूँ रब्ब जहाँ का"।**

देखिये सूरये ताहा में–**"इज़रआ नारन फका–ला लिअहिल हिम्कुसू आनस्तु नारल्ल–अल्ली आती कुम"** इत्यादि अर्थात् **"मूसा ने आग की शक्ल में अल्लाह को कोहेतूर (पहाड़) पर देखा और खुदा ने मूसा से बातें कीं।**

देखिये सूरये सजदा में–**"सुम्मस्तवा अललअर्श............"** अर्थात्–**"फिर आकाश पर चढ़ेगा"।**

देखिये सूरये हिज्र में– **"कयामत के दिन अल्लाह मियाँ के पास फरिश्ते लाईन बनाकर आयेंगे और कयामत के ही दिन अल्लाह मियाँ पिण्डली खोल कर दिखलायेंगे,"** इत्यादि इबारत बिल्कुल साफ लफ़्जो में मौजूद है।

देखिये सही मुस्लिम में–**"ऐ आदम के बेटे ! मैं बीमार पड़ा रहा और तूने मुझको आकर न पूछा"।**

देखिये मिश्कात में–**"अल्लाह अपना क़दम क़यामत के दिन दोज़ख अर्थात् नरक में रक्खेगा"।**

देखिये कीमियाये सआदत में–**"इन्नल्लाहा खलाक़ा आदमा अला सूरत"** अर्थात् **अल्लाह ने आदम को अपनी सूरत पर पैदा किया"।**

देखिये मिश्कात में–**"अल्लाह तआला ने आदम को अपनी सूरत पर पैदा किया, लम्बाई उसकी साठ गज़ की थी"।**

देखिये तिरमिजी में–**"अल्लाह ने आदम को पैदा किया कि बस ! उसकी पीठ पर अपना दाहिना हाथ फेरा"।**

देखिये मिश्कात में–**"हज़रत मौहम्मद साहब ने फ़रमाया कि परवरदिगार (अल्लाह तआला) ने अपने आपको बेहतरीन (बहुत ही अच्छी) शक्ल अर्थात् सूरत के साथ ख्वाब में देखा" इत्यादि।**

इस प्रकार अनेकों आयतें पेश की तथा अनेकों हदीसे भी सामने रक्खी, तथा उन्हें उनमें से खोल–खोल कर पाठ भी दिखलाया गया।

इन कुरानी व मुसलमानी आयतों की झड़ी से मौहम्मदी कैम्प में सन्नाटे का आलम छा गया, सभा में मौजूद हाज़रीन मुसाफिर के मुंह को देखते रह गये, एक ऐसा समाँ सा बन्ध गया था कि जैसे उतने समय के लिए सारे जहान की क़ायनात ही जहां की तहां रूक गयी हो। और पब्लिक को इस्लाम का अन्दरूनी व बाहरी नक्शा साफ नजर आने लग गया, इस बीस पच्चीस मिनट की आखिरी जौशीली अकली तकरीर ने वो रंग जमाया कि मौहम्मदियों के दिल हिल गये, और कयामत तक ये कयामत से भरा हुआ दृश्य वे लोग कभी भूल न पायेंगे ! चारों ओर वाह ! वाह !! की आवाजें आ रही थीं तथा...........आफ़रीन ! आफ़रीन !! ....क्या कहने ! ....गजब कर दिया...........आदि–आदि शब्दों ने मौहम्मदियों के दिलों को तोड़कर चकनाचूर कर दिया। जिसको शायद ही ताकयामत तक वे जोड़ पायें।

मुबाहिसा शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ और आर्यमुसाफिर के साथ उनकी फतह का नारा लगाते हुए

असंख्य हाजरीन जिनमें सभी सम्प्रदायों के लोग मौजूद थे, नारे लगाते हुए आर्य समाज मन्दिर में पधारे। हाँ ! इस अवसर पर ये कहना भी आनन्द से खाली न होगा कि हमारे काबिल दोस्त मौलवी अब्दुल मजीद साहब मनाज़रीन बहुत ही हल्कापन और दिल को भारी करते हुए आंखों में आंसू ले आये, मुसाफिर के साथ हाथ मिलाने लगे तो मुसाफिर ने उनको गले से लगा लिया, और कुछ कदम मुसाफिर जी के साथ चल कर अपनी खुश इख्लाकी व असीम मौहब्बत का सबूत दिया। जिसके लिये हम आपको दुआएं खैर से याद करते हैं। अतः समाज मन्दिर में पहुंचते ही मुसाफिर को एक नौजवान जो बहुत दिनों अर्थात् सोलह–सतरह बरसों से मुसलमान बना हुआ था, उसने अपनी शुद्धि की दरख्वास्त दी, जिसकी सूचना उसी समय शहर में मनादी द्वारा दे दी गयी। और शाम के समय उसी दिन बहुत बड़ी भीड़ के सामने उस नौजवान की शुद्धि का कार्य समापन किया गया जिस पर हमारे मौहम्मदी भाइयों ने बहुत हो–हल्ला मचाया, कोई पुलिस में दौड़ा जा रहा है कि–अरे ! कोई तो इन्हें मना कीजिये ! देखो तो ये आर्य क्या अनर्थ करते जा रहे हैं ? हमारी तो लज्जा के मारे नाक ही कटी जाती है, कोई तो अल्लाह के लिए इनको रोको ! इस मनादी से हमारी तो छाती ही फटी जाती है। अतः जितने मुंह उतनी बोलियां बोली जा रही थी, और प्रत्येक मौहम्मदी अपने–अपने दिल के घाव टटोल रहा था, और इस शुद्धि में वो लोग शामिल हुए जिन्होंने सपने में भी कभी आर्य समाज का मन्दिर न देखा होगा। आखिर विजय और मदद के साथ ये कार्य भी बड़ी ही सफलता के साथ पूर्णरूपेण समाप्त हो गया। दूसरे दिन रवानगी अर्थात् चलते समय सुना गया कि हमारे विपक्षियों ने भी ये अफ़वाह उड़ायी कि हमने भी आर्यों की दो–तीन भेड़ भून खाई। अर्थात् दो–तीन को मुसलमान बना लिया, परन्तु ये अफ़वाह महज़ निराधार और झूठ निकली, आखिरकार मुसाफिर ने लोगों से कहा कि–**"दिल के बहलाने को गालिब ये ख्याल अच्छा है"**..........ऐसे नहीं तो झूठ–मूठ ही कुछ कहें जिससे कुछ तो सिर उठाने लायक बन सकें। और बेचारे अब कर भी क्या सकते हैं ?

आखिरकार ये सभी लोग मुसाफिर जी सहित अपने स्थान आगरा को वापिस चले गये। इस सबके अलावा हम अन्त में ये भी लिखे बग़ैर नहीं रह सकते कि आर्यसमाज सहारनपुर के लोगों ने जिनकी मदद पर हमें बहुत नाज़ था, उन्होंने इस मौके पर बहुत ही बुझदिली व कायरता का परिचय दिया, उनमें केवल लाला उग्रसैन जी, पण्डित मुरारी लाल शर्मा, मास्टर लक्षमण दास, व मास्टर गंगा प्रसाद जी, व लाला कूड़ा मल्ल जी ही डटकर सीना ताने मुसाफिर के साथ लगे रहे। जिनका हम सच्चे हृदय से धन्यवाद अदा करते हैं। क्योंकि आप ज़मकर पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर जी को हर प्रकार की मदद पहुंचाते रहे। और सहारनपुर के पुलिस अधिकारीगण भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके अधिकाराना रौब से (इसके बावजूद कि हमारी आर्यों की तरफ से कुछ लोग ही तशरीफ़ ले जाया करते थे, और हमारी अन्जुमन कमेटी के अध्यक्ष श्री जमना प्रसाद जी तो केवल नाम मात्र ही के प्रधान थे, क्योंकि वे कभी भी अपनी अध्यक्षता की कुर्सी पर पूरे समय तक जमकर न बैठे और उधर मौहम्मदियों की तरफ से हजारों की तादाद में मौहम्मदी जमा होते थे) एक पत्ता भी खड़कने न पाया, हाँ ! हम अपने दूर–दराज से आये ग्रामीण भाइयों की दाद दिये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने बड़ी हिम्मत व हौंसले का परिचय दिया। सारा प्रबन्ध बहुत ही प्रशंसा के योग्य रहा। जिसकी बिनाह अर्थात् आधार पर हम कह सकते हैं कि हम अपनी इंग्लिश्तानी सरकार की सलतनत पर जितना भी नाज़ोफखर करें उतना थोड़ा ही है। बस ! अदलेशाही अर्थात् सरकार के न्याय के नाम पर इस पुस्तक को संक्षेप में **"नतीज़ा ए मनाज़रा"** अर्थात् शास्त्रार्थ के परिणाम को समाप्त करते हैं।

"डॉक्टर लक्षमीदत्त कश्यप"

उपसंहार

इसकी समाप्ति पर एक इस जिल्द के मुबाहिसे की छपी हुई पुस्तक जो इस्लाम वालों की ओर से छपी हुई थी, हमारे पास पहुंची, जिसे देखने से पता चला कि–

१. तकरीरों में काफी कमी–बेसी की गई है। मुबाहिसे के मौहम्मदी लेखक ने आर्य मनाज़रों की ज़ात पर ईर्ष्या व द्वेष के कारण गलत नोट अपनी ओर से बढ़ाकर दे दिये हैं। गलती से लिखे गये वाक्य लिखकर ये ईमानदारी के नाम पर धब्बा है। जैसे आप लिखते हैं कि–स्वामी दयानन्द ने अनुवाद में असली शब्दों से अधिक जो कुछ भी उनके द्वारा लिखकर छापा गया है वो उनका अपना है, ये वाक्य केवल शर्म और हया से खाली है, क्योंकि संस्कृत से तो आप बिल्कुल कोरे हैं, और स्वामी जी के अनुवाद में गलती निकालते हैं। दूसरे ये कि जो तफसीरें अर्थात् व्याख्यायें कुरान में शाब्दिक अनुवाद के अलावा कुरान के भाष्यकार ने बहुत कुछ हाशिया अर्थात् टिप्पणी रूप में काफी बढ़ा–चढ़ा कर आयतों का मतलब प्रकट किया है, इस बेहूदा नुक्ता–चीनी से तमाम तफसीरों पर आपने पानी फेर कर रख दिया है।

२. आप फ़रमाते हैं कि इस्लाम की ओर से जो आपत्तियाँ की गई हैं, वो किताब **"तोहफ़ाये आर्य समाज"** के लेखक जगदम्बा प्रसाद जो नये बनाये गये मुस्लिम के थे, जिसके जवाब के लिए हजार–नौ सौ रूपये इनाम के लिए तय हैं, इस स्थिति में आर्य मनाज़िर उनकी आपत्तियों का जवाब किस प्रकार दे सकता था ? हमें लगता है इस कलयुग में एक झूठ ही सहारे के लिए बचा है। क्योंकि इस शर्त बाजी–जुवारीपन और अपने मनाज़िरकर्त्ता की बुझदिली पर उन्हें ऐसा लिखते बिल्कुल भी लज्जा न आई। और जवाब देने के प्रतिकार में एक कौड़ी भी न दिलवाई। हम कहते हैं कि अगर अभी भी कुछ शर्मोहया अपनी जुबान पर या अपने कलाम पर बाकी है तो उस तोहफ़ाये आर्य समाज का जवाब लिखने वाले श्री लाला सालिगराम इलाहाबादी को ही कुछ दिलवा दीजिये, अन्यथा झूठे को जहन्नुम में भिजवायें।

३. आपने आर्य शास्त्रार्थकर्त्ता के प्रश्न दो को जिसमें चमत्कार की बाबत व्याख्या करके बतलाया था कि–**"ऊँटनी से पत्थर का पैदा होना"** तथा **"पत्थर का कपड़े लेकर फरार होना"** इत्यादि चमत्कार क्या कानूने कुदरत व फितरत हैं ? ऐसे ही सवाल चार नम्बर की व्याख्या में पूछा था कि–**"इल्हाम की परिभाषा जरूरत के समय बयान करें"** इस पर आप मुंह को आते हैं कि हम पर बजाये चार सवालों के हजारों सवाल किये, जबकि तीन दिन में एक सवाल, अल्लाह के साकार वाला हल न हो सका, तब ऐसा कौन ना समझ होगा जो ऐसे कमजोरों पर दस सवाल भी करे, जहां एक भी सवाल का जवाब देना मुश्किल हो, हजार सवालों की तो बात ही छोड़िये।

४. आप मुक्कद्दस वेद के बारे में ये–**"वेद जैसी पुराणान्तिक किताब"** के शब्दों का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि एक सफेद दाढ़ी वाले इस्लाम के उपदेशक ने जो आर्यवृत्त पुत्र कहकर पुकारता था। अब भला आप ही देखिये तथा इनसे कोई पूछे कि क्या आर्यवृत्त के पुत्र नहीं हैं, बस ! विद्वता का घमण्ड इतना है कि भाषा के मुहावरे से भी अनजान हैं। आर्यवृत्त पुत्रों के बजाय आर्यवृत्त के पुत्रों ऐसा होना चाहिये। और वेदों के अनुवाद वैदिक मसलों पर जिनका सोचना और समझना कोरा है, उन पर नुकता–चीनी करते हैं ? अफसोस ! बेहद अफसोस !!

५. क्योंकि शास्त्रार्थ के बीच में इस्लामी शास्त्रार्थकर्त्ताओं ने कहा था कि–"**क्या वेद खुदा का कलाम नहीं है ? इस पर आर्य मुसाफिर ने फरमाया था कि–खुदा का कलाम कुरान है क्योंकि खुदा साकार है, वेद निराकार परमात्मा का ज्ञान है न कि किसी साकार खुदा का कलाम"!** अतः वेद शब्द स्वयं अपने अर्थ से इस बात को प्रकट कर रहा है। इस पर इस्लामी मनाज़रीन बहुत उछले कि–"**लो जी अब तो आर्य भी वेद को कलामे इलाही होने से इन्कार करते हैं** वे इस वाक्य की वैज्ञानिकता को समझे ही नहीं और बड़े जोशो–खरोश के साथ मुसाफिर से बोले कि अगर आप ऐसा मानते हैं तो लिखकर दो, इस पर मुसाफिर ने लिख कर दे दिया। बस ! फिर क्या था, उन मौहम्मदी भाइयों ने अपनी कमअकली से ये समझ कर कि–अब तो हमने मैदान मार लिया, और ऐसा समझ कर कि अब तो हमें ये एक ऐसा उम्दा गण्ड़ा–तावीज मिल गया कि जिससे आर्य चारों खाने चित्त हो जावेंगे, ये सोच कर जगह–जगह इस बात को कह कर मजाक उड़ाते फिरने लगे। परन्तु जो बुद्धिमान थे, वो इस्लाम की इस कमजोरी को ताड़ गये, तथा एक सम्मानीय काबिल बंगाली सज्जन ने मौहम्मदियों को बहुत फटकारा तथा नसीहत दी कि तुम लोग बड़े आलिम–फाज़िल बने फिरते हो, तुम्हे इतनी भी तमीज नहीं है कि तुम लोग क्या कह रहे हो ? अरे अगर मुसाफ़िर उसे खुदा का कलाम कहता तो खुदा साकार साबित हो जाता ज्ञान महसूस किया जाता है, जिससे खुदा निराकार साबित होता है। यह ताबीज जिसे आप अपने लिए उम्दा समझ कर लिये हुए फिरते हो, ये तो मुसाफिर के लिए उम्दा साबित हो रहा है। आप लोग आज तक खुदा के कलाम और ईश्वरीय ज्ञान के भेद को भी न समझ सके, तुम्हें अपनी नादानी पर शर्म आनी चाहिये।

६. आपके शास्त्रार्थकर्त्ताओं ने मौलवी वहिदुज्जमा द्वारा सही मुस्लिम का अनुवाद पेश करने पर ये झगड़ा उठाया था कि ये अनुवाद प्रमाणित नहीं है। परन्तु जब तर्क से पूछा गया तो आप लोग बौखला गये, और बस ! इतना ही कहा कि हमें इस मत्तलक कोई बात नहीं करनी है, सिर्फ इतना ही कहा कि–आप इसे बहस में न लावें यह हमारे लिए मान्य नहीं है। बजाये इसके कि उसका शाब्दिक अर्थ करके बतलाते या और कोई कारण पेश करते कि हम इसलिए नहीं मानते, कुछ भी न कहकर जवाब दे दिया कि हम वहिदुज्जमा को विश्वास के योग्य नहीं मानते, यदि इस पर कहा गया कि–ठीक है अगर नहीं मानते तो आप ही इस हदीस का जिसमें अल्लाह को साकार बताया गया है कोई सही अनुवाद कर पेश कीजिये, परन्तु कौन करे और कहां से करे ? आखिरकार आप लोग शोर मचाकर ठण्डे होकर बैठ गये, और अब भी फिर वही रट लगाते हो कि हनफियों के विरोधी वहिदुज्जमा की राय पेश की। वो बहस क्या ख़ाक करेगा ? जबकि वहिदुज्जमा की राय फिर दोबारा पेश नहीं की गई थी, जबकि वह अनुवाद बिल्कुल सही था, जो आज इस्लामी दुनियां में हाथों हाथ पढ़ने और पढ़ाने के लिए बिक रहा है, हमने पेश किया था। बल्कि इसके अलावा इसको इस्लाम के शास्त्रार्थकर्त्ताओं ने "**अज़**" के अर्थों पर बहस करते हुए आर्य शास्त्रार्थकर्त्ताओं को शंकर भाष्य के पेश करने पर जो आर्य समाज के लिए प्रमाणित नहीं है, विवश किया। और इस भाष्य को पेश करने पर भी कामयाब न हो सके। तथा वहां पर "**अज़**" के अर्थ "**प्रकृति**" के ही पाये गये और अन्दर–अन्दर आपकी ये बिल–बिलाहट भी फिजूल है।

७. आपने नये मुस्लिम "**रामचन्द्र**" की शुद्धि पर जो ये मुबाहिसा खतम होने के बाद उसकी अपनी खुद की दिली ख्वाहिश पर लिखी गई दरख्वास्त अर्थात् अर्जी पर आर्य समाज मन्दिर में हुई थी, उस पर आप लोगों ने जो उलटा–सीधा ज़हर उगला था, क्या वह आपके जबर्दस्त ईर्ष्या–द्वेष का परिचायक न था,

हम उसका ज़िकर पहले ही कर चुके हैं। और ये कहानी किसी से भी छुपी हुई नहीं है। हाँ ! यदि नेत्रहीन दृष्टि वाला व्यक्ति अपने सर पर धूल उड़ा दे तो परमेश्वर से प्रार्थना है कि, परमेश्वर उसको नेत्र दृष्टि दे दे, ताकि ये पवित्र दिन उसको भी देखना नसीब हो सके ! आमीन.........................

अब हम इन श्रेष्ठ वाक्यों की समाप्ति पर इस मुबाहिसे के सम्मानीय काबिल न्याय पसन्द व सत्य के खोजकर्त्ता, मनाज़रों से आशा करते हैं कि इन सब विवादित बातों को छोड़कर **"नीर–क्षीर–विवेक"** के आधार पर ही एक अच्छा परिणाम एकत्रित कर हमको मशकूर फरमायेंगे !

"व्यवस्थापक"
डॉ0 लक्ष्मीदत्त–**"कश्यप"** असिस्टैण्ट आडिटर
अखबार–मुसाफिर **"आगरा"** (उ0प्र0)

नोट–

इस उर्दू में छपी पुस्तक– **"मुबाहिसा–सहारनपुर"** के अन्त में कुछ विज्ञापन भी छपे हुए थे, जिनका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है।

(१)– **"नारये हैदरी"**

यह हज़रत अली का नारा दो भागों में छप कर तैयार है, जो कि हाथों–हाथ बिक रहा है, शीघ्र मंगाइये, थोड़ी जिल्दें शेष रह गयी हैं। मूल्य प्रत्येक जिल्द–एक रूपया, डाक खर्च के अलावा !

"मैनेजर"
मुसाफिर–**आगरा** (उ0प्र0)

(२)– **"नाहन का जबर्दस्त मुबाहिसा[१]"**

ये अजीबोगरीब मुबाहिसा अर्थात् यह शास्त्रार्थ हजारों की संख्या में छापा गया है, और अब थोड़ी सी जिल्दें बाकी रह गयी हैं, तुरन्त प्राप्त करिये, कीमत–एक रूपया, डाक महसूल के अलावा।

"मैनेजर"
मुसाफिर–**आगरा**

टिप्पणी–

१. यह शास्त्रार्थ हमारे पास ईसाईयों की ओर से उर्दू में छपा हुआ मौजूद है जो वास्तविकता से बहुत दूर है। परन्तु इसका जिकर पहले भी बहुत बार आया हुआ हैं। श्री अमर स्वामी जी महाराज शास्त्रार्थ महारथी–इसी मुसाफिर विद्यालय आगरा में पढ़े थे, उन्होंने अपने जीवनकाल में भी इस शास्त्रार्थ की चर्चा अनेकों बार की थी, कि आगरा से यह शास्त्रार्थ गुरूजी ने छपवाया था, उसकी प्रति अलग कहीं मिल जावे तो उत्तम होगा ! ताकी यथार्थता स्पष्ट हो सके। अतः हमारा अनुरोध है कि अगर ये–**"मुबाहिसा–नाहन"** किसी भी सज्जन की जानकारी में आवे तो तुरन्त हमसे सम्पर्क करें– हम उन्हीं सज्जन के नाम का उल्लेख करते हुए इस अदभुत शास्त्रार्थ सामग्री को अगले भाग में प्रकाशित करा देंगे।

विदुषामनुचरः–
"लाजपत राय अग्रवाल"

"शहीद"

इस लाजवाब पुस्तक के लेखक पण्डित भोजदत्त आर्य मुसाफिर हैं, जिसमें बाईबिल के सम्बन्ध में वो अजीबोगरीब खोज की हुई बातें लिखी हुई हैं कि आज तक उर्दू भाषा में आपने ऐसी बातें कभी न देखी होंगी। ईसाई मत के सम्बन्ध में इस जबर्दस्त पुस्तक को पढ़कर फिर आपको क़िसी दूसरी किताब के पढ़ने की जरूरत न रहेगी। कीमत फ़ी जिल्द–चार रूपया, डाक खर्च अलग।

छापने वाले–
"मैनेजर"
अखबार–मुसाफिर, **आगरा**

"अफ़शाये राज़"

मशहूर पुस्तक छप कर तैयार हो गयी है, बहुत जल्द मंगवाये, फिर खतम होने पर किताब न मिलने की शिकायत न करें। कीमत डाक खर्च के अलावा–सिर्फ, एक आना–"**मैनेजर**"

इसके अलावा हमारे यहां बहुत सी प्रकार की पुस्तकें हर समय मौजूद रहती हैं जैसे–इस्लामी दुनियाँ, निकाहे कुरानी, इस्लामी तौहीद, पैग़ामे जिन्दगानी, कौडियों का हार, दावाये इस्लाम,[1] आदि–आदि।।

"व्यवस्थापक"
मैनेजर–मुसाफिर अखबार
मुसाफिर विद्यालय–**आगरा**

———— : 0 : ————

१. इन उपरोक्त पुस्तकों में से कुछ पुस्तकें पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के पुस्तकालय में उर्दू में छपी हुई मौजूद थी, परन्तु उनके देहावसान के बाद वह पुस्तकालय कुछ ऐसे स्वार्थी तत्वों के हाथों में पड़ गया था, जहां पर उसमें से काफी अमूल्य साहित्य प्रायः लुप्त हो गया, जिनमें मुख्यतः आर्यसमाज के महान कहे जाने वाले धर्मोपदेशक प्रो० रतन सिंह जी भी शामिल थे। इनके द्वारा जो क्षति आर्यसमाज को हुई है, उसकी पूर्ति शायद ही हो सके। हाँ ! अब एक समाज के अधिकारी के प्रयास से बची खुची शेष पुस्तकें सुरक्षित एक समाज में रखवा दी गई हैं। वे अधिकारी इस कार्य के लिए प्रशंसा के पात्र हैं।

मेरी प्रार्थना है कि इस तरह का पुराना साहित्य अगर किन्हीं सज्जन को प्राप्त हो तो वह प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित करे, प्रकाशन उन सज्जनों की हर सम्भव सहायता कर उस अप्राप्य सामग्री को प्रकाश में लाने का प्रयास करेगा ! "**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया**............"

निवेदक–
विदुषामनुचरः
"लाजपत राय अग्रवाल"

प्रस्तुत ग्रन्थ पर प्राप्त सम्मतियाँ

श्री पं० जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती–

पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, (दिल्ली)

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप पूज्य अमर स्वामी परिव्राजक जी के समस्त शास्त्रार्थों को अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं। आप इस अत्यन्त आवश्यक बहुमूल्य पुस्तक को प्रकाशित कर रहे हैं। मेरी सम्मति में यह शास्त्रार्थों का संग्रह आर्य जगत में अपना उच्च कोटि का स्थान प्राप्त करेगा। इस पवित्र कार्य के लिए आप यश प्राप्त करेंगे, परमेश्वर आपको इस प्रयोजन के लिए सामर्थ्य देवे।

"जगदेव सिंह सिद्धान्ती" (सांसद)

प्रा० श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु–

दयानन्द कॉलिज–अबोहर, (पंजाब)

आर्य समाज के पहली व दूसरी पीढ़ी के सब प्रमुख नेता सिद्धान्तों के जानने वाले, विद्वान व शास्त्री थे। यथा–महात्मा मुन्शीराम, पं० लेखराम, पं० कृपाराम, पं० गुरुदत्त, मास्टर आत्माराम, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, महात्मा नारायण स्वामी आदि, महात्मा मुन्शीराम आर्य शास्त्रार्थी थे, जिनका जन्म ब्राह्मण कुल में नहीं हुआ था। परन्तु अपने तपोबल से ब्राह्मण बने, तब यह एक विचित्र सी घटना थी कि क्षत्रिय कुलोत्पन्न विद्वान् शास्त्रार्थ करता है। इसी परम्परा में श्रीमान् अमर स्वामी जी ने अपनी ज्ञान प्रसूता वाणी व लेखनी से जीवन में अवैदिक मतों के विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ करके एक इतिहास बनाया है। उनके गहन अध्ययन प्रतिभा व सूझ की अपनों, बेगानों सभी पर अमिट छाप पड़ी, सिंह समान चुनौती स्वीकार करके किरानी, कुरानी, जैनी, पुराणी, मिर्जाई लोगों से लोहा लेने वाले इस महाविद्वान के शास्त्रार्थों का यह संग्रह सबके लिए पठनीय है।

"राजेन्द्र जिज्ञासु"

श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री (संसद सदस्य)–

केनिंग लेन–नई दिल्ली

श्रीमान् लाजपत राय जी, !

आप आर्य समाज के उद्‌भट विद्वान और शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमर सिंह जी वर्तमान (महात्मा अमर स्वामी जी) व अन्य सभी शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थों का संकलन प्रकाशित कर रहे हैं। यह जानकर प्रसन्नता हुई, यह संकलन अगली पीढ़ियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। इस महत्वपूर्ण योजना को हाथों में लेने के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

"प्रकाशवीर शास्त्री" (संसद सदस्य)

३-४-१९७६

श्री ओम प्रकाश जी त्यागी (संसद सदस्य)

(नई दिल्ली)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महात्मा अमर स्वामी जी द्वारा किये गये शास्त्रार्थों का संकलन एक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित होने वाला है। यह आयोजन वरेण्य है।

प्रभु से इसकी सफलता की कामना करता हूँ।

ओमप्रकाश त्यागी "पुरुषार्थी" (संसद सदस्य)

श्री डॉ० गोविन्द सहाय जी गुप्त–

६६७, लक्ष्मीबाई नगर,
नई दिल्ली–२४

आप यह एक बड़ा ही पुण्य एवं यश का कार्य कर रहे हैं, जो समाज के अनेकों उद्‌भट विद्वानों के विचारों को संकलित करके एक ग्रन्थ के रूप में संसार के सामने ला रहे हो, इस ग्रन्थ से संसार में अज्ञान का नाश होगा, हर आदमी को सत्यासत्य की परख करने हेतु एक उच्च कोटि की कसौटी मिल जायेगी, तथा यह ग्रन्थ **"निर्णय के तट पर"** संसार में एक पारसमणि का कार्य करेगा यह जिस भी अज्ञान रूपी गड्ढे में पड़े हुए लोहेरूप सज्जन को छुएगा वही ज्ञान रूपी स्वर्ण के समान हो जावेगा। एवं भविष्य में यह ग्रन्थ एक उत्तोलक का कार्य करेगा, जिसके द्वारा भारी से भारी अज्ञान रूपी भार को भी उठाकर जीवन से दूर किया जा सकेगा। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, इस पुस्तक के प्रकाशन पर मैं प्रकाशक को हार्दिक बधाई देता हूँ, परमेश्वर आपको सफलता प्रदान करें।

वैदिक धर्म का सेवक–
"डॉ० गोविन्द सहाय गुप्त"

श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती–

आचार्य, गुरुकुल झज्जर
जि० रोहतक (हरियाणा)

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि, पूज्य अमर स्वामी जी महाराज व अन्य शास्त्रार्थ महारथियो के शास्त्रार्थों का यह संकलन प्रकाशित हो रहा है पूज्य स्वामी जी के प्रति, मेरी क्या सम्पूर्ण आर्य जगत की अपार श्रद्धा है। स्वामी जी महाराज जैसा शास्त्रार्थ में निपुण, विद्वान तार्किक सन्यासी आर्य जगत में अन्य कोई नहीं है, स्वामी जी महाराज की शास्त्रार्थ शैली कमाल की है, इसके प्रकाशन पर मैं श्री लाजपत राय जी को बधाई देता हूँ, जिन्होंने ऐसा पुण्य कार्य हाथ में लिया। **"ओमानन्द सरस्वती"**

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज–

महात्मा अमर स्वामी जी से मेरा चिरकाल से घनिष्ठ सम्बन्ध चला आ रहा है आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, लाहौर के चोटी के विद्वानों में से ठाकुर अमर सिंह जी एक थे। जो कि अब **"अमर स्वामी परिव्राजक"** बन गये हैं, उनकी विद्या, उनकी स्मरणशक्ति और शास्त्रार्थ शैली के गुण वो लोग भी

गाते हैं, जो कि उनके सामने विपक्ष के रूप में शास्त्रार्थ के लिए खड़े होते थे। महात्मा अमर स्वामी जी ने सन्यास लेकर भ्रमण नहीं छोड़ा, निरन्तर प्रचार कार्य में लगे हुए हैं, मेरे हृदय में उनके लिए अगाद्य प्यार है। बेटे, लाजपत राय को भी मैं उनके परिवार सहित जानता हूं, उन्हें इस कार्य को संभालने के लिए आशीर्वाद देता हूँ।

"आनन्द स्वामी सरस्वती"

श्री प्रेम चन्द जी शर्मा–

पूर्व प्रधान–आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश (लखनऊ)

तथा

(पूर्व स्वास्थ्य मन्त्री–उत्तर प्रदेश सरकार)

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि, श्री लाजपत राय जी अमर स्वामी प्रकाशन विभाग की ओर से पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज के जीवन के समस्त शास्त्रार्थों का संकलन **"निर्णय के तट पर"** नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। मैं स्वामी जी महाराज के जीवन से पूर्ण परिचित हूं, तथा उनके अनेकों शास्त्रार्थ भी पढ़े हैं। आर्य जगत में ऐसी प्रतिभा के धनी एवं वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ शास्त्रार्थ महारथी कम ही हैं, मैं भगवान से उनकी दीर्घायु होने की प्रार्थना करता हूँ।

"प्रेमचन्द शर्मा"

श्री डॉ0 स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती–

(इलाहाबाद)

मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि आर्य समाज के वयोवृद्ध, तपस्वी सन्यासी पूज्यपाद श्री अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संकलित विवरण प्रकाशित होने जा रहा है, श्री अमर स्वामी जी के इन शास्त्रार्थों का आर्य समाज के इतिहास में गौरव पूर्ण स्थान है, पं0 लेखराम जी, स्वामी दर्शनानन्द जी और पण्डित श्री रामचन्द्र जी देहलवी की परम्परा में अपनी अलग विशेषता रखते हुए अमर स्वामी जी महाराज के ये शास्त्रार्थ हैं। श्री अमर स्वामी जी के पास जो प्राचीन उद्धरणों और प्रमाणों की सामग्री है, वह अन्यत्र कम ही मिलेगी, वे चलते फिरते इस विषय के विश्वकोष हैं, मुझे उनका स्नेह प्राप्त है, यह मेरे लिये बड़े काम की वस्तु है। मैं सदा उनके आशीर्वाद का आकांक्षी हूँ।

सस्नेह–

"स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती"

श्री डॉ0 भवानीलाल जी भारतीय एम0ए0–

मन्त्री–आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, अजमेर,

व

सम्पादक– **"परोपकारी"** मासिक (अजमेर)

"निर्णय के तट पर" आर्य जगत के सुप्रसिद्ध, शास्त्रार्थ महारथी विद्वान महात्मा अमर स्वामी सरस्वती व समाज के अन्य उद्भट शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थों का अद्वितीय संग्रह आर्य समाज के स्वाध

यायशील पुरूषों के लिए अतीव रूचिकर होगा, अमर स्वामी जी ने अपने सुदीर्घ कालीन, उपदेशक जीवन में पौराणिकों तथा अन्य मतावलम्बियों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये हैं। उन्होंने वैदिक धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों की पुष्टी में **"आर्य सिद्धान्त सागर"**[1] जैसा अद्वितीय ग्रन्थ भी लिखा था, स्वसिद्धान्त पोषण में अमर स्वामी जी एक सिद्धहस्त तार्किक एवं शास्त्रार्थकर्त्ता विद्वान हैं। आशा है आर्य जनता इस ग्रन्थ को अपना कर लाभ उठाएगी।

"डॉ0 भवानीलाल भारतीय"

पं0 प्रकाश चन्द्र जी "कविरत्न"–

पहाड़गंज, अजमेर (राजस्थान)

प्रिय लाजपत राय जी !

अतीव हर्ष है कि आर्य जगत के सुप्रसिद्ध, महोपदेशक, शास्त्रार्थ महारथी परिव्राजक अज्ञेय अमर स्वामी जी महाराज के जिन प्रभावोत्पादक, मनोरंजक शास्त्रार्थों के संग्रहीत ग्रन्थ की आर्य जनता बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी, वह आपने अपने अथक परिश्रम से प्रकाशित करा दिया, एतदर्थ आप धन्यवाद के भाजन हैं। जब मैं स्वस्थ था, तब मुझे अनेकों आर्य समाजों के उत्सवों में स्वामी जी महाराज के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त होता था, उनकी आर्य समाज की सेवा की अमिट लग्न, वैदिक सिद्धान्त तथा अन्य मत मतान्तरों के गहन अध्ययन, अनुशीलन एवम् चतुर्मुखी परम प्रभावशाली प्रखर प्रतिभा के क्या कहने ?

महोपदेशक कहूँ उन्हें या शास्त्रार्थ निष्णात कहूँ में,
कवि, लेखक, गायक या वैदिक विद्वद्वर विख्यात कहूँ मैं।
या स्नेही अलिदल हित उनको मधुदानी जल जात कहूँ मैं,
पूज्य अमरस्वामी परिव्राजक कहूँ या कि गुरू तात कहूँ मैं।।१।।

वेद संस्कृति की रक्षा हित वे अति कष्ट उठाते देखे,
ब्रिटिश, निजाम क्रूर शासन की जेलों में वे जाते देखे।
शास्त्रार्थ जब कभी हुए तब स्मरणीय जय पाते देखे,
विपक्षियों के हृदयों पर पर्याप्त प्रभाव जमाते देखे।।२।।

उनके अनुपम शास्त्रार्थों का संग्रहशुचि "निर्णय के तट पर",
किया प्रकाशित अथक परिश्रम से है, ग्रन्थसत्य, शिव, सुन्दर।
पहुँचे यह सब आर्य समाजों, आर्य बन्धुओं के शुभ घर–घर,
आग्रह है यह लाभ उठावें सब आबाल वृद्ध नारी नर।।३।।

प्रकाश चन्द्र "कविरत्न"
(अजमेर)

---

[1] इस महान ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना भी चल रही है, जो शीघ्र ही क्रियान्वित होने की आशा है।

"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री रविकान्त जी शास्त्री, एम०ए०–

राजकीय इण्टर कॉलेज,
शाहजहांपुर–उ०प्र०

विविधविद्या विलासोल्लसितान्ता, गीवार्णवाणी बन्दनविधान विदग्धा, स हृदयदयानुरञ्जन क्षमा, वैदिक धर्म प्रचार विचार सरणी समारोहण चतुराः विद्वासः गुरुवर पूज्यामर स्वामि महात्मनः महान्तोऽयम् प्रयासः। यत् तैः पाण्डित्यप्रवरै सकला शास्त्र प्रमाणै अज्ञान सरोवरे निमज्जतानां नराणां हृदय पटलेनिर्णय तटे विज्ञानदीपं प्रकाशितम्।

अयं महात्मप्रवर गुरूवर पूज्यामरस्वामि परिव्राजकरूपेण सहर्ष सप्रत्ययं नक्षत्रमध्ये शिशिरांशुरिव विद्वन्मण्डले भासमानानाम ज्ञान रूपविषवृक्षारोहणावलोकिताशान्तानाँ शास्त्र विद्याजल प्रक्षालित मानसोत्तरीयाणां जनानां प्रकाशाभावं दूरी करोति। महात्मप्रवर श्री अमरस्वामि विश्व विदुषांमध्येमणिरिव स्वकीयं वैशिष्टयं विभर्ति भारत वर्षेऽस्मिन् न कोऽपि एवं विद्योऽस्ति मन्दभाग्यः पुमान् यो पूज्यामर गुरुवरं नैव वेत्ति। असंख्याता हि अन्तेवासिनः ऐतेषां सकाशात् शास्त्रमधीत्य सुविज्ञायन्तः एतेषां पाण्डित्यं प्रकटयन्तः सर्वत्र कीर्ति प्रसारयन्ति, यत्रापि भवान् गमत् यस्यामपि सभायाम्भवान्भाषत् तत्संस्थानं सा सभा तजत्याश्च जना प्रतिष्ठापितभवत्प्रभावा अजायन्तः। भवन्ति ये पुण्यकर्माणों वस्तुतस्तेषां वस्तुतस्तेषां रसनामधिवसतीदृशी सरस्वती। शास्त्रार्थ न सुसाध्यं कार्यम्। शास्त्रार्थः कः ? शास्त्राणां य सम्यगर्थः स शास्त्रार्थः। द्वयोः पक्षयोः यस्य पक्षे निर्णयो भवतिः सैव मानव जीवनस्य नौकाया पथ प्रदर्शकः भवति। न केवलं शास्त्राणि वांगमयस्य वेद–शास्त्र–पुराण–स्मृति–आयुर्वेद–काव्यालंकारादि विषयिणी विद्वता च काङक्ष्यते। नीति शास्त्रार्थ शास्त्रादि सम्बन्धिनी अभिज्ञता च वाञ्छयते। अथ च लोकानुभवः काम्यते, जनता भवतः शास्त्रार्थमाकर्ण्य कथा सुधां च निपीय सर्वथैव स्वां कृतार्थां मन्यते। भजनोपदेश कथावाचन माधुर्यन्तु जनान् मोहति एव। श्री अमर स्वामी प्रकाशन विभागस्य पधान प्रबन्धककस्यापि महत् परिश्रमः, य एतादृशं ग्रन्थं प्रकाश्यमानवा जीवनोन्नति प्रकाशनोन्नतिञ्च वर्द्धयति। अतः **"निर्णय के तट पर"** नाम्नाग्रन्थेन सर्वे जना सदसत्मार्गविचार्य, अज्ञान पथं च विहाय ज्ञानमार्गे ब्रजन्तः अवश्वमेव स्वात्यामंसफली करिषयन्ति इति में निश्चयः।

"रविकान्त शास्त्री"
एम०ए०, बी०एड०

महापण्डित जी पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक–

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़
सोनीपत (हरियाणा)

श्री माननीय अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का संकलन **"निर्णय के तट पर"** नाम से छाप रहे हैं, यह कार्य आर्य समाज के इतिहास में अमर रहेगा। श्री माननीय अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व श्री पण्डित अमर सिंह जी) महोपदेशक एवं शास्त्रार्थ महारथी हैं। आपका स्वाध्याय अत्यन्त गम्भीर है, विशेष कर पुराणों के सम्बन्ध में आपके शास्त्रार्थों के संकलन माध्यम से शास्त्रार्थ सम्बन्धी अनेक स्थितियां व प्रमाण संग्रहीत हो जावेंगे, जो आर्य समाज के भावी विद्वानों शास्त्रार्थियों के मार्गदर्शक बनेंगे। प्रिय लाजपत राय जी इस कार्य के बधाई के पात्र हैं।

"युधिष्ठिर मीमांसक"

श्री आचार्य पण्डित महेन्द्र प्रताप सिंह जी शास्त्री (एम0ए0)–

कन्या गुरुकुल हाथरस (उ0प्र0)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आदरणीय श्री अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह **"निर्णय के तट पर"** नाम से प्रकाशित किया जा रहा हैं, श्री स्वामी जी का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत व गहन है। उनकी युक्तियां, विरोध पक्ष को भी स्वीकार्य होती हैं, वे विरोधी पक्ष का खण्डन बड़ी प्रबलता से करते हैं। उनके ये सब गुण उनके शास्त्रार्थों में स्पष्टतया झलकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी इन विशेषताओं के कारण उनके शास्त्रार्थों का संग्रह सब दृष्टियों से उपादेय होगा, वह रुचिकर होने के साथ–साथ ज्ञानवर्धक भी होगा, मैं इस स्तुत्य प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ।

"महेन्द्र प्रताप शास्त्री"

श्री पण्डित शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी–

सुभाष नगर–गुड़गांवा कैण्ट (हरियाणा)

माननीय श्री अमर स्वामी जी महाराज आर्य समाज के शास्त्रार्थी, विद्वान्, अद्‌भुत वक्ता, सिद्धान्तनिष्ठ अन्वेषक (रिसर्च स्कालर) तथा महर्षि दयानन्द जी के अनन्य भक्त, मनीषी, कवि, धर्मोपदेष्टा हैं। इनका समस्त जीवन वैदिक धर्म प्रचार में व्यतीत हुआ है। हो रहा है और होगा। मेरा इनके साथ शास्त्रार्थों, उत्सवों एवं कथाओं में यदा–कदा मेल होता रहता है। परमेश्वर की कृपा से वह चिरन्जीव रहकर वैदिक नांद गुंजाते रहें।

"शान्ति प्रकाश"

श्री पण्डित आचार्य रामानन्द जी शास्त्री–

बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना (बिहार)

मान्यवर, श्री लाजपत राय जी !

मुझको यह जानकर परम प्रसन्नता हुई है, कि आप अमर स्वामी जी के जीवन सम्बन्धी शास्त्रार्थों का संकलन प्रकाशित करने जा रहे हैं, यह पुस्तक वैदिक धर्म के लिए अजेय दुर्ग (किला) सिद्ध होगी। तथा महर्षि स्वामी दयानन्द जी की कल्याणमयी वाणी के प्रचारकों के लिए वर्म (कवच) बनेगी। आर्य उपदेशक उसे साथ लेकर अकुतोभय होकर विचरेंगे। मैं शीघ्र उसका प्रकाशन तथा घर–घर में उसका प्रसारण चाहता हूँ।

"रामानन्द शास्त्री"

श्री पण्डित जयप्रकाश जी शास्त्री, एम0ए0–

आर्य समाज, सिकन्द्राबाद (बुलन्दशहर)–उ0प्र0

सरस्वती तुल्य आर्य समाज के कर्मठ, कार्यशील, विनयशील, सुविख्यात, पूज्यपाद, गुरुवर श्री अमर स्वामी जी महाराज द्वारा प्रणीत **"निर्णय के तट पर"** शास्त्रार्थ संग्रह अति उच्च कोटि का संग्रह है, जिसके स्वाध्याय से प्रत्येक मनुष्य का भविष्य उज्जवल होगा, श्री लाजपत राय जी को भी मैं धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने ऐसा अत्यावश्यक कार्य हाथों में लिया।

"जयप्रकाश शास्त्री"

श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती एम०ए०–

(भूतपूर्व ब्रह्मचारी जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी)

पूज्य अमर स्वामी जी शास्त्रार्थ संग्राम के योद्धा हैं। उन्होंने जब–जब भी शास्त्रार्थ किये विपक्षी को चारों खाने चित्त गिराया है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि, आप उनके शास्त्रार्थों का संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं, इस प्रकाशन पर लेखक और प्रकाशक दोनों को हार्दिक बधाई। यह ग्रन्थरत्न प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति के लिए उपादेय है। ऐसा इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि के अवलोकन से निःसंकोच कह सकता हूँ।

"जगदीश्वरानन्द सरस्वती"

शास्त्रार्थ महारथी पण्डित ओमप्रकाश जी शास्त्री विद्याभास्कर–

खतौली (मुजफ्फरनगर) उ०प्र०

आदरणीय अमर स्वामी जी महाराज द्वारा अपने जीवन में किये गये शास्त्रार्थों का संग्रह **"निर्णय के तट पर"** नाम से आप प्रकाशित कर रहे हैं। ये जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, स्वामी जी महाराज आर्य जगत के उन उद्भट्ट विद्वानों में से हैं, जिन्होंने वैदिक सिद्धान्तों के मण्डनात्मक, गहन अध्ययन तथा वेद विरोधी मतमतान्तरों के खण्डन की दृष्टि से असंख्य ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन किया है। उनकी शास्त्रार्थ शैली, वाक्पटुता, गम्भीर ओजस्वी वाणी तथा साथ ही प्रमाणों की भरमार देखकर जहां आश्चर्य होता है, वहां गौरव की अनुभूति भी होती है। उनके इस ग्रन्थ से आर्य जगत के विद्वानों को विशेषकर शास्त्रार्थ कर्त्ताओं को अत्याधिक लाभ होगा ऐसा मेरा विश्वास है। उनका मुझ पर स्नेह है, ये मेरे लिए कम गौरव की बात नहीं !

"ओमप्रकाश शास्त्री"

श्री आचार्य उमाकान्त जी उपाध्याय–

१६, विधान सरणी, कलकत्ता–७

आर्य समाज के इतिहास में शास्त्रार्थ का एक यशस्वी युग रहा है। किन्तु अब वह समाप्त सा ही है। परम श्रद्धेय अमर स्वामी जी महाराज शास्त्रार्थ युग के दिग्गज शास्त्रार्थ महारथी हैं, आपकी शास्त्रार्थ शैली आपका उत्तर प्रत्युत्तर प्रकार आपकी प्रत्युत्पन्नमति, सब निराली है, आपके शास्त्रार्थों के दांव–पेंच एवं शास्त्रार्थों की नोंक–झोंक में आपकी ऊर्जस्विता निखर पड़ती है। आपके तीखे पैने किन्तु हृदयग्राही तर्क श्रोताओं पर अद्भुत प्रभावकारी होते हैं। आदरणीय स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह प्रत्येक आर्य समाज के भक्तों के लिए सैद्धान्तिक रूप से अति रोचक एवं प्रमाणों से भरपूर प्रमाण महासागर की तरह ही होगा, हमारे जैसे पण्डित सेवकों के लिये तो यह अनिवार्यतः पठनीय एवं संग्रहणीय ग्रन्थ होगा, ऐसा ग्रन्थ रत्न प्रत्येक पण्डित उपदेशक के पास तथा प्रत्येक आर्य समाज के पुस्तकालय में अवश्य होना चाहिए।

स्वामी जी ने वृद्धावस्था में भी यह अविस्मरणीय सेवा की है। आपकी इस अविचल प्रचार निष्ठा पर हम श्रद्धावत् है। माननीय श्री लाजपतराय जी अग्रवाल के अथक प्रयास से इस एक महान अभाव की पूर्ति हो गई। बड़ी उत्कण्ठा से इस ग्रन्थरत्न की प्रतीक्षा हो रही थी।

"उमाकान्त उपाध्याय"

श्री राय बहादुर चौ० प्रताप सिंह जी–
माडल टाउन, करनाल (हरियाणा)

श्री अमर स्वामी जी को सारा आर्य जगत जानता है। बतोर शास्त्रार्थ महारथी और बतौर लेखक के उनकी पुस्तकें अमूल्य हैं। स्वामी जी तो (ENCYCLOPAEDIA) हैं। उनका सारा साहित्य छपना चाहिए, ताकि नवयुवकों व आने वाले विद्वानों को सामग्री मिल सके। "प्रताप सिंह चौधरी"

श्री ओमप्रकाश जी वर्मा "संगीताचार्य"–
यमुना नगर अम्बाला (हरियाणा)

मान्यवर पूज्य अमर स्वामी जी महाराज को कौन नहीं जानता ? अर्थात् "ठाकुर अमर सिंह" यह तो वो हस्ती है जिसने अपने जीवन में सहस्रों शास्त्रार्थ अनेकों मतावलम्बियों से किये हैं स्वामी जी अपने आप में एक चलती फिरती लायब्रेरी हैं, विकट आर्य समाज के शत्रु तो स्वामी जी के नाम से ही भाग जाते हैं। पुराने शास्त्रार्थ मैंने स्वामी जी के देखे, जैसे डेराबसी के पास "**पतरेड़ी**" करनाल में "**फरल**" आदि शास्त्रार्थों में आर्य समाज की बड़ी जीत हुई, यह सब स्वामी जी के प्रमाण, युक्ति, दलील और मन्तकों का ही प्रभाव हैं। प्रकाशक महोदय धन्यवाद एवं साधुवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अथक परिश्रम करके यह ग्रन्थ छपवाकर, एक अच्छा कार्य किया।

"ओमप्रकाश वर्मा"

श्री पण्डित दीनानाथ जी शास्त्री–
अध्यक्ष सनातन धर्मालोक महाविद्यालय बी–१६, लाजपत नगर,
नई दिल्ली–२४,

स्वामी श्री अमर स्वामी जी ने आर्य समाज की अच्छी सेवा की है। अब आपके शास्त्रार्थों का संग्रह छप रहा हैं। यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। आपने कई नये शिष्यों को इस विषय में दीक्षित किया है। भगवान आपको चिरायु करे।

"दीनानाथ शास्त्री सारस्वत"

श्री स्वामी इन्द्रवेश जी महाराज–
महर्षि दयानन्द साधु आश्रम, गुरुकुल सिंहपुरा,
सुन्दरपुर, जिला रोहतक (हरियाणा)

मान्यवर श्री लाजपतराय जी !

आप अमर स्वामी जी महाराज के द्वारा किये गये शास्त्रार्थों का संग्रह "**निर्णय के तट पर**" नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। पूज्य अमर स्वामी जी शास्त्रार्थ युग के महान योद्धा एवं विजेता रहे हैं। वैदिक धर्म के लिए की गयी उनकी सेवाओं के लिए समस्त आर्य जगत श्रद्धान्वित है। आपके इस प्रकाशन से युवा पीढ़ी को आर्य समाज के भूतकालिक संघर्ष का परिचय मिल सकेगा। तथा आर्य सिद्धान्तों में आस्था पैदा हो सकेगी। इस सम्भावना के साथ मैं आपके इस पवित्र प्रयास का अभिनन्दन करता हूँ।

"इन्द्रवेश"

परम् विदुषी, बहन प्रज्ञा देवी–

व्याकरणाचार्या, पी.एच.डी., वाराणसी ५,

पूज्यपाद अमर स्वामी जी सरस्वती जी की गहरी विद्वत्ता एवं वाक्पाटव की धाक उनके अनुयायियों पर ही नहीं उनके विरोधी विभिन्न मतावलम्बियों पर भी है यह उनके गहरे पाण्डित्य की खरी कसौटी है। इस वार्धक्यावस्था में भी वैदिक धर्म की सेवार्थ आपकी लेखनी तथा वाणी इतने उत्साह एवं निर्बाध गति से चलती है कि किसी नवयुवक को भी लज्जित होना पड़ेगा–इस समय आपका उत्तम ग्रन्थ **"निर्णय के तट पर"** छपकर लगभग तैयार है जिसमें पुष्कल प्रमाणों के संगत के साथ–साथ विधर्मियों को परास्त करने के लिये शास्त्रार्थ व्यूह रचना कला का भी निर्देशन पाठकों को मिलेगा, जो स्वाध्याय–प्रिय लोगों के लिये परम उपयोगी सिद्ध होगा अतः मेरा सभी आर्य बन्धुओं से आग्रह है कि वे इस उत्तम ग्रन्थ को अवश्य अपने–अपने घरों में रख कर उनका स्वाध्याय कर उससे लाभान्वित हों। **"प्रज्ञा देवी"**

माननीय श्री चन्द्रभानु जी गुप्त–

(कोषाध्यक्ष–जनता पार्टी)

(लखनऊ) उ0प्र0

प्रिय लाजपत राय जी !

आपके प्रयास द्वारा माननीय महात्मा अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह **"निर्णय के तट पर"** नाम से प्रकाशित हो रहा है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आशा है इससे जन मानस को मार्गदर्शन मिलेगा। शुभकामनाओं सहित।

आपका–

"चन्द्रभानु गुप्त"

शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित रामदयालु जी शास्त्री–

३ कृष्णा टोला, अलीगढ़–उ0प्र0

आदरणीय अमर स्वामी जी महाराज आर्य समाज के उन उज्जवल रत्नों में से एक हैं। जिन्होंने अपनी प्रतिभा के द्वारा आर्य समाज के गौरव की रक्षा की है, आप श्री ठाकुर अमर सिंह जी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के उन मूर्धन्य विद्वानों में से गिने जाते थे, जिनके कार्य व योग्यता एवं भाषणों की धूम थी। मैं उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर में उपदेशक था पंजाब की कुछ आर्य समाजें दोनों सभाओं के योग्य उपदेशकों को उत्सवों पर बुलाती थी। प्रायः हम दोनों वहां मिलते थे। हमारे अति स्नेह का कारण अलीगढ़–बुलन्दशहर का सम्बन्ध भी था। उन दिनों शास्त्रार्थों की धूम थी पौराणिकों से शास्त्रार्थ करने के लिये पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार श्री बुद्धदेव जी मीरपुरी, पण्डित लोकनाथ जी, पण्डित मनसाराम जी, ठाकुर अमर सिंह जी, की युक्ति, धारा प्रवाह प्रमाणों की झड़ी, सूझ–बूझ और वाणी की कड़क के आगे विपक्षियों के होश उड़ जाते थे।

श्री अमर स्वामी बनकर आपके गौरव में और भी चार चांद लग गये हैं। यह संकलन आने वाले उपदेशकों के लिये अनोखा रत्न होगा।

"राम दयालु शास्त्री"

श्री पण्डित गंगाधर जी शास्त्री (व्याकरणाचार्य)–

महोपदेशक, आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना (बिहार)

मुझे बड़ी प्रसन्नता हैं कि पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों के संग्रह को पुस्तकाकार निकाल रहे हैं। पूज्य स्वामी जी ने अपने जीवन में हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाइयों से दक्षतापूर्ण शास्त्रार्थ कर वैदिक धर्म की मर्यादा की रक्षा की है। वह वैदिक धर्मावलम्बियों के लिए प्रस्तुत हैं। आशा है इस पुस्तक द्वारा आर्य बन्धुओं को महान लाभ होगा।

पूज्योयतिवरोधीमान सर्व शास्त्र विशारदः। विजेता सर्व शास्त्रार्थे वाग्मी नम्रो यशोधरः।।१।।
आबालाज्जीवनं येन दत्तं धर्मस्य रक्षणे। वने ग्रामे नगर्यावा प्रचारं चरितंमुदा।।२।।
आर्यधर्मस्य रक्षार्थ दुखं सोढुं महामुनिः। अद्यापि ह्यमर स्वामी तिष्ठति स दिवा निशम्।।३।।
लेखेन वचसा नित्यं पाखण्डस्य च खण्डनम्। सत्यस्य दर्शनं स्वामी कारयन परिराजते।।४।।
शशि दिवाकरौ यावत् स्थास्यति गगने विभौ। कीर्तिस्तु स्वामिनस्तावत् स्थास्यति धरणीतले।।५।।
निर्णय के तट परम् (नाम) पुस्तकं सर्व बोधकम्। सत्यासत्य विचाराय मानवानां भविष्यति।।६।।
इतिमहेश्वरं याचे सर्व लोकस्य पालकम्। आयुश्च स्वामिनो भूमौ बर्धयेत्स जगत्पतिः।।७।।

"गंगाधर शास्त्री"

श्री आचार्य ओंकार मिश्र "प्रणव" जी शास्त्री, एम०ए०–

उपाचार्य–डी०ए०वी० कॉलिज–फीरोजाबाद (उ०प्र०)

आप पूज्य अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं, यह जान कर अत्यन्त हर्ष हुआ, वस्तुतः पूज्य स्वामी जी महाराज अपनी अप्रतिम, वाग्मिता, विद्वत्ता, एवं तर्क शालीनता से शास्त्रार्थ रणांगन के विख्यात् विजेता रहे हैं। उनकी पावन प्रतिभा ने वैदिक सिद्धान्तों का जय केतु धरातल पर सदैव लहराया है। महर्षि दयानन्द के प्रति उनकी असीम श्रद्धा है। निश्चित ही उनके शास्त्रार्थों का संग्रह–"**निर्णय के तट पर**" आर्य जनिधि की अनुपम निधि सिद्ध होगा। मेरी मंगल कामनाएं, सदैव आपके साथ हैं।

"ओंकारमिश्र "प्रणव" शास्त्री एम०ए०"

श्री श्रद्धेय स्वामी अभेदानन्द जी सरस्वती–

प्रधान–आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार (पटना)

मैं राजधनवार (बिहार) के दोनों शास्त्रार्थों में उपस्थित था, श्री पण्डित अमर सिंह जी (अमर स्वामी सरस्वती) की शास्त्रार्थ शैली मुझको बहुत अच्छी लगी, उनकी योग्यता एवं उनके पास प्रमाणों की प्रचुरता और उनका प्रबल तर्क, प्रशंसा के ही योग्य है। उनके धैर्य और उनकी शान्ति की भी मैं प्रशंसा करता हूं। सनातन धर्मी कहलाने वाले दोनों पण्डितों ने उत्तेजना उत्पन्न करने वाले पर्याप्त शब्दों का प्रयोग किया, पण्डित अखिलानन्द जी तो सभ्यता की सीमाओं का भी उल्लंघन ही करते रहे, पर पण्डित अमर सिंह जी आर्य पथिक ने सभ्यता, शिष्टाचार और शान्ति के साथ ही अपनी प्रबल युक्तियों और अपने प्रचुर पुष्ट प्रमाणों से ही पौराणिक मत को पराजय और आर्य समाज को प्रबल विजय प्राप्त कराई। मैं पण्डित जी को बधाई और अनेक साधुवाद देता हूँ।

"अभेदानन्द सरस्वती"

श्री के0 नरेन्द्र जी (सम्पादक)–

दैनिक वीर अर्जुन, प्रताप भवन
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली–१

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का एक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। मैं इस प्रयास में आपकी सफलता का इच्छुक हूं। स्वामी जी की निःस्वार्थ भावना और वैदिक सिद्धान्तों के प्रति उनकी निष्ठा एक ऐसी बात है, जिस पर उनकी जितनी प्रशंसा की जाये कम हैं। गलत न होगा अगर यह कहा जाये कि, उन्होंने तन, मन और धन से आर्य समाज के कार्यों को सफल बनाना अपने जीवन का लक्ष्य बना रक्खा है। ऐसे त्यागी, तपस्वी सन्त हमें कहीं–कहीं ही देखने को मिलते हैं।

"के0 नरेन्द्र"

श्री लाला राम गोपाल जी शालवाले–

(भू0 पू0 संसद सदस्य)
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
रामलीला मैदान, दयानन्द भवन, नई दिल्ली–२

प्रिय लाजपत राय जी !

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि, अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का संग्रह "**निर्णय के तट पर**" नाम से प्रकाशित करने का आयोजन हो रहा है। स्वामी जी महाराज का वैदिक एवं अवैदिक सभी ग्रन्थों का गहन अध्ययन है। उन्हीं से चुन–चुन कर जो संग्रह उन्होंने तैयार किये हैं, वे "**निर्णय के तट पर**" नामक पुस्तकाकार में छप कर आर्य समाज के प्रचारकों व उपदेशकों के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध होगी–ऐसी आशा करता हूं।

मैं इस संग्रह के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूं।

"**स्वामी आनन्द बोध सरस्वती**"
(पूर्व–रामगोपाल शालवाले)

श्री महामहिम ब0 दा0 जत्ती–

उपराष्ट्रपति–भारत सरकार
(नई दिल्ली)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आप अमर स्वामी प्रकाशन विभाग की ओर से महात्मा अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का एक संकलन "**निर्णय के तट पर**" नाम से प्रकाशित करने जा रहे हैं, मैं इस संकलन की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं भेजता हूं।

आपका–

"ब0 दा0 जत्ती"

श्री बिन्दा प्रसाद जी–

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
मुनीश्वरानन्द भवन–पटना–४

हमें यह जानकर हार्दिक आनन्द हुआ कि आप महात्मा अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संकलन "**निर्णय के तट पर**" नाम से प्रकाशित कर रहे हैं। वस्तुतः उनके शास्त्रार्थ प्रेरणाप्रद रहे हैं, और आशा है कि यह पुस्तक भी लोगों को सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित करेगी, हमारी सभा पुस्तक की सफलता की कामना करती है।

भवदीय–
"**बिन्दा प्रसाद**"
कृते (विद्या भूषण प्रसाद) पटना (बिहार)

श्री पण्डित शिवराज सिंह जी शास्त्री, अरबी फाजिल–

(बम्बई)

संसार में सर्वप्रथम मानव सृष्टी भारत में हुई, यह अब निर्विवाद सत्य संसार के सभी देशी विदेशी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया हैं धर्म व धर्मशास्त्र की कल्पना व रचना भी भारत में हुई, लाखों वर्ष तक मनुष्य, मात्र एक ही धर्म के अनुयायी रहे। कालान्तर में व्यक्तिगत हितों को लेकर धर्म, सम्प्रदायों के रूप में विभाजित हो गया, और आज यह अवस्था है कि जहां ईंट उखाड़ो नीचे कोई न कोई धर्म सम्प्रदाय उससे लिपटा हुआ मिलेगा, परिणाम स्वरूप वास्तविक धर्म को छोड़ मनुष्य अरबों की संख्या में मनमाने धार्मिक सम्प्रदायों में विभक्त हैं। मानव मात्र को एकता का मार्ग दिखाते हुये ऋषि दयानन्द ने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की, अधिक मिथ्या मत मतान्तरों पर प्रहार भी किये। आर्य समाज का गत १०० वर्ष से अधिक का इतिहास अनेक शास्त्रार्थों व शास्त्रार्थ महारथियों के महाकौशल का इतिहास है। धर्मवीर पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर को तो इस महाभारत में अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़ी। आर्य मुसाफिर जी की इस महान परम्परा के श्रेष्ठतम् उत्तराधिकारी महामुनि महात्मा अमर स्वामी जी का सारा ही जीवन शास्त्रार्थों में बीता है। वे आर्य समाज के अजेय महारथी रहे हैं, उनके अकाट्य तर्क प्रत्युत्पन्न मतित्व व प्रगाढ़ पांडित्य ने आर्य समाज की ध्वजा पताका सर्वत्र लहराई है। राजनीति के क्षणिक प्रवाहों में आर्य समाज के विपथगामी होने से पुनः नये–नये सम्प्रदायों तथा नये–नये भगवानों की नवीनतम् रचनाएं हो रही हैं। इधर स्वामी जी जीवन के अन्तिम चरण में प्रवेश कर चुके हैं। काश ! कि जो संग्रह श्री लाजपत राय जी प्रकाशित कर रहे हैं। उसे शिरोमणि सार्वदेशिक सभा प्रकाशित करती ! फिर भी लग्नशील, महान परिश्रमी "**श्री लाजपत राय जी के इस स्तुत्य प्रयास को जितना भी सराहा जाये कम है।**" अगर महर्षि के साहित्य को आर्य समाज के अन्दर से निकाल दें तो आर्य समाज में रक्खा ही क्या है, ? आर्य समाज मन्दिरों से तो मूल्यवान मस्जिदें, गिरजाघर एवं अन्य मन्दिर हैं, काश ! कि आर्य समाज इस स्थाई सत्य को समझने की क्षमता वाला होता ? पर क्या किया जाये। "**तेरी महफिल भी गई, चाहने वाले भी गये**" परम श्रद्धेय श्री स्वामी जी तो प्रशंसा–सराहना के व्यक्तिगत भावों से परे एक महानात्मा के रूप में हैं। प्रभु उन्हें हमारे बीच बनाये रक्खे जिससे उनकी प्रतिभा का अधिक से अधिक लाभ मानव मात्र को प्राप्त हो सके।

"**शिवराज शास्त्री**"

श्री शिवकुमार जी शास्त्री–

(संसद सदस्य)

सी–२ (३५-३) मलकागंज–दिल्ली

पूज्य अमर स्वामी जी महाराज आर्य समाज के शास्त्रार्थ समर के उन अद्वितीय सेनानियों में से हैं जिनकी अदभुत प्रतिभा का सिक्का प्रतिपक्षी विद्वानों ने भी सदा स्वीकार किया है। यद्यपि वे पादरी, मौलवी और सनातनधर्मी विद्वानों से, सभी से शास्त्रार्थ करते रहे हैं किन्तु विशेष रूप से पौराणिक विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ में तो सरस्वती उनकी जिह्वा पर आ विराजती है। शास्त्रकारों ने उस वाणी को सभा के योग्य बताया है जिसका प्रभाव अपने पराये, विद्वान और मूर्ख पर जादू का सा होता चला जाये। **"तास्तुवाचः सभायोग्या याश्चित्ताकर्षणक्षमाः। स्वेषां परेषां विदुषां द्विषामविदुषामपि"।।** यह उक्ति पूज्य स्वामी जी के शास्त्रार्थ में उन पर अक्षरशः घटती रही। सनातनधर्मी शास्त्रार्थी विद्वान श्री पण्डित माध्वाचार्य जी ने जो पूज्य स्वामी जी के प्रति उद्‌गार प्रकट किये हैं वे सूचित करते हैं कि उनके हृदय में श्री स्वामी जी की योग्यता का क्या स्थान हैं ? मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि पूज्य स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह प्रकाशित होने जा रहा है। निश्चित रूप से यह सामग्री स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिये बड़े काम की होगी और शास्त्रार्थ के अखाड़े में उतरने वालों के लिए एक शिक्षक का काम करेगी। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक आर्य समाज इस उपयोगी महत्वपूर्ण संग्रह को अपने पुस्तकालयों की श्रीवृद्धि के लिये क्रय करके रक्खेगी।

"शिव कुमार शास्त्री"
(संसद सदस्य)

श्री डा० पुरुषोत्तम दत्त जी गिरिधर–

अद्वितीय नेत्र चिकित्सक, नेत्र चिकित्सालय, भिवानी
(हरियाणा)

पूज्य श्री अमर स्वामी जी महाराज की अमर पुस्तक **"निर्णय के तट पर"** स्मरण होते ही मस्तिष्क में आर्य समाज का वह समय चित्रवत् उभर आया, जब मैं लाहौर में १६२१ ई० से १६२५ ई० तक पढ़ता था, वह दिन आर्य समाज के जोश और जीवन के थे, नित्य ही चारों और शास्त्रार्थों की धूम रहती थी, कभी सनातनधर्मी भाइयों से तो कभी ईसाइयों से ! और मुसलमानों से तो नित्य ही मुबाहिसे होते रहते थे। उन दिनों की स्मृति मन में ताजा हो गयी। उन्हीं दिनों ही तो महाशय राजपाल जी शहीद हो गये थे, उन दिनों जुबानी ही नहीं प्रत्युत लिखित मुबाहिसे मुसलमानों एवं अन्य मतावलम्बियों के साथ होते थे, दैनिक पत्र दोनों ओर से निकलते थे, जिनमें तर्क, दलीलें–उत्तर–प्रत्युत्तर दिये जाते थे। बल्कि मुझे स्मरण आ रहा है, कई बार तो दिन में दो–दो बार दोनों ओर से जोशीले नौजवान पत्रांक छाप–छाप कर जनता में बांटते। और जनता भी चाह और शौक से उनके छपने की प्रतीक्षा में रहती थी। बड़ी रोचक और अकाट्य दलीलें और तर्क दोनों ओर से दैनिक छपती थीं, जनता बड़ी उत्सुकता और उत्साह से उनको पढ़ती थी, और धार्मिक जोश से बावली हो उठती थी। हमारे आर्य समाज के नौजवान **"गुरुघण्टाल"** और **"शैतान"** नामक दैनिक पत्र निकालते थे। उधर मुसलमानों की ओर से भी बदले में ऐसे ही पत्र निकाले जाते थे, आशय कहने का यह है कि उन दिनों हर व्यक्ति बच्चा, बूढ़ा, नवयुवक शास्त्रार्थी समझा जाता था। हर आदमी स्वाध्याय करता

था। इसी का परिणाम था कि उन दिनों आर्य समाज का इतना प्रचार बढ़ सका था, परन्तु वर्तमान युग में शास्त्रार्थ बन्द होने से वह समय केवल एक यादगार सा बन कर रह गया है। आज स्वार्थी लोग सिद्धान्तों पर पर्दा डाल कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं जिसके कारण समाज की यह दशा बन गई है, अगर हम उस युग को देखना चाहते हैं तो सिद्धान्तों को सामने लाना होगा, जब तक सत्य असत्य पर विचार विमर्श नहीं होगा तब तक सत्य का पता संसार को नहीं लग सकता, उसकी कसौटी केवल **"शास्त्रार्थ"** ही है, अंग्रेजी में कहावत है कि–"OFFENCE IN THE BEST DEFENCE" (अपनी सत्यता की रक्षा के लिए दूसरों की असत्यता पर प्रहार करो) और यह तभी सम्भव है जब शास्त्रार्थ हो। श्री पूज्य अमर स्वामी जी की इस पुस्तक से कुछ दिनों के शास्त्रार्थों का दिल में स्वाद ताजा हो जाता है, और हृदय गर्व से भर जाता है, छाती फूल उठती है, और जी कहता है कि काश ! वह दिन फिर भी आ सकें। वह भी क्या समय था ? जब हर आर्य समाज के स्कूल, कन्या पाठशालाओं एवं कालिजों में धर्म शिक्षा तथा सिद्धान्तों का ज्ञान कराया जाता था, परन्तु आज तो वह सब स्वप्नवत् सा लगता है, आज जिस रफ्तार से आर्य समाज के कर्णधार चल रहे हैं, उससे तो पता चलता है, कि डी.ए.वी. के नाम पर केवल डी.वी. अर्थात् राष्ट्र, **"वैदिक"** शब्द ही आर्य संस्थाओं के नाम से हटा दिया जायेगा, और अब भी यह केवल नाम मात्र के डी.ए.वी. हैं। प्रैक्टीकल में केवल शून्य हैं, **"कृणवन्तो विश्वमार्यम्"** आर्य समाज का यह स्वप्न केवल स्वप्नवत् ही रह जायेगा, जब तक कि वह शास्त्रार्थों वाला युग, उत्साह जनक समय फिर नहीं आ जाता, श्री पूज्य अमर स्वामी जी की यह पुस्तक पिछले शास्त्रार्थों की स्मृति ताजा करती है, हृदय में जोश भरती है, जो वातावरण अनुकूल न होने के कारण अन्दर ही घुट कर रह जाता है, पर फिर भी इस पुस्तक की आवश्यकता है, और इसको केवल सजावट की दृष्टि से रखने की नहीं बल्कि उसे पढ़ने की आवश्यकता है, जिससे यदि गुड़ खाने को नहीं मिलेगा तो गुड़ का नाम लेने से ही मन में गुड़ का सा स्वाद तो आ ही जावेगा। श्री स्वामी जी की इस पुस्तक को प्रत्येक युवक एवं वृद्ध नर एवं नारियों को पढ़ना चाहिए, ताकि समय पड़ने पर हम विरोधियों को मुंह तोड़ जवाब दे सकें। वह समय दूर नहीं है, जब यह पुस्तक संसार में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेगी। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। श्री लाजपत राय जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस महान ज्ञानयज्ञ की शुरूआत की।

"डॉ० पुरुषोत्तम दत्त गिरिधर"

श्री पण्डित आचार्य सत्यप्रिय जी शास्त्री, एम०ए०–

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय (हिसार) हरियाणा,

आज के तथा कथित वैज्ञानिक कहते हैं, कि सृष्टि के आदि काल में सूर्य तीव्र गति से घूमता था, कालान्तर में उसके कुछ टुकड़े उससे पृथक् हुए, जो कि चन्द्र पृथ्वी एवं नक्षत्रों के रूप में विद्यमान हैं। तत्त्वज्ञों की दृष्टि से उनके इस कथन को आलंकारिक मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है, इसे हम यों कह सकते हैं, कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इस भारत भूमि पर देव दयानन्द के रूप में वेद ज्ञान के एक सूर्य का उदय हुआ, जो बड़ी तीव्र गति से घूमा। उसी सूर्य का ज्ञान (प्रकाश) लेकर–लेखराम, दर्शनानन्द, गणपति शर्मा, धर्म भिक्षु, स्वामी योगेन्द्र पाल, रामचन्द्र जी देहलवी, भोजदत्त आर्य मुसाफिर, बुद्धदेव मीरपुरी, ठाकुर अमर सिंह जी, बुद्धदेव विद्यालंकार, मनसाराम वैदिक तोप, पण्डित व्यास देव, देवेन्द्रनाथ शास्त्री इत्यादि नक्षत्रों ने देव दयानन्द रूपी सूर्य के अस्त होने के पश्चात् वैदिक धर्म के अन्तरिक्ष को प्रकाशित किया। इनमें सभी एक से एक बढ़कर रहे, इस इन्द्र वृत्तासुर संग्राम में सभी इन्द्र सदृश पराक्रमी सिद्ध हुए इनमें सभी की

अपनी–अपनी विशेषतायें थीं। इन महारथियों के उस शास्त्रार्थ युग के अपूर्व पराक्रमों को सुनकर आज की पीढ़ी आश्चर्य चकित एवं गौरवान्वित हो जाती है। वैदिक संस्कृति के भव्य भवन के निर्माण में अपने को उसकी नीव में खपा देने वाली इन दिव्य विभूतियों के दर्शनों को आज का आर्य युवक उत्कण्ठित हो उठता है, सौभाग्य से उस युग की स्मृतियों में से श्री श्रद्धेय अमर स्वामी जी महाराज (पूर्व श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केसरी) हमारे मध्य में विराजमान हैं। श्री श्रद्धेय स्वामी जी की अपनी कुछ निराली ही विशेषताएं रही हैं। प्रमाणों के तो आप सागर ही हैं। किसी भी विषय पर हजारों प्रमाणों की झड़ी लगा देते हैं। यदि आपको चलता–फिरता पुस्तकालय कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं है, शास्त्रार्थ काल में, आपके मुख से असंख्य प्रमाण प्रवाह को देख कर श्रोता चकित रह जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि, आपका चहुमुखी ज्ञान है। शास्त्रार्थ समर मे आप चतुर्दिक लड़ने की योग्यता रखते हैं। जब कि हमारे अन्य महारथी एक–एक मोर्चे के विशेषज्ञ रहे हैं। जैसे पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप, पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी पुराणों के विशेषज्ञ थे। देहलवी जी तथा धर्म भिक्षु यवनों का मुंह तोड़ उत्तर देने में सफल एवं सक्षम थे। इसी प्रकार कोई क्रिश्चियनों का विशेषज्ञ था, और कोई जैनियों का ! परन्तु आज किसी भी मोर्चे पर आवश्यकता पड़े तो आर्य जगत बड़े विश्वास के साथ पूज्य स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिए भेज देता है। और स्वामी जी भी चुटकी बजाते–बजाते विजय प्राप्त कर लेते हैं, तीसरी विशेषता वैदिक धर्म के प्रचार में प्रगाढ़ निष्ठा है, मुझे याद आता है कि, शायद आपके गांव में ही जब थोथेश्वर माधवाचार्य ने शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की तब आप १०४ डिग्री ज्वर में पड़े हुए थे, यह सुनते ही, हितैषी जनों के मना करने पर भी और अपनी मृत्यु की परवाह न करते हुए आपको चारपाई पर लिटाकर चार आदमी उठाकर शास्त्रार्थ करने को लाये थे। और उस अवस्था में भी आपने दम्भी दुश्मन को नाकों चने चबवा दिये थे। आज लगभग ८५ वर्ष की आयु में भी जबकि चलने फिरने तथा देखने में भी असमर्थ हो गये हैं। तो भी आप प्रचार कार्य में व्यस्त हैं। अभी–अभी पीछे ही आपने दिल्ली सब्जी मण्डी आर्य पुरा समाज में शास्त्रार्थ किए, जिसमें विरोधी छोकरे के छल–कपट करने के बावजूद भी उस बेचारे को पराजित तथा लज्जित होना पड़ा, अभी दो मास भी नहीं हुए थे कि, मेरठ के समीपस्थ ग्राम (बदरखा) में आपकी अपने पुराने प्रतिद्वन्दी माधवाचार्य से जोरदार टक्कर हुई, और लोगों ने देखा कि, इस बूढ़े शेर की गर्जना से वह युद्ध के बहाने से दक्षिणा प्राप्त कर भागा जा रहा है। जहां आप वाणी द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे हैं। वहां आपने आर्य जगत को मौलिक साहित्य भी दिया है। जिसमें–"**आर्य सिद्धान्त सागर**" एक अनुपम कृति है। इसी प्रकार जीवित पितर, हनुमानादि बानर बन्दर थे या मनुष्य ?, कौन कहता है द्रोपदी के पांच पति थे ?, क्या रावण वध विजय दशमी को हुआ था[1] ? इत्यादि ग्रन्थ आपके मौलिक ज्ञान, गम्भीर पाण्डित्य तथा विस्तृत स्वाध्याय एवं गहन चिन्तन के परिचायक हैं। अंग्रेजी राज्य में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए आपने अनेक बार जेल यात्राएँ की, हैदराबाद सत्याग्रह, हिन्दी रक्षा आन्दोलन, तथा गौरक्षा सत्याग्रह में भी आपने जेल यात्रायें की, वैदिक धर्म के प्रचारक तैयार करने के लिए मोहन आश्रम हरिद्वार में संचालित उपदेशक विद्यालय के आप आचार्य रहे, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय में भी आपने अध्यापन कार्य किया है। स्वामी जी के प्रिय एवं योग्य शिष्य, "**श्री लाजपत राय जी**" ने पूज्य स्वामी जी के नाम से प्रकाशन विभाग आरम्भ किया है। जिसके माध्यम से उत्तमोत्तम ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। आर्य जगत् की नई युवा पीढ़ी की यह इच्छा रही कि शास्त्रार्थ युग के रोचक संस्मरण प्रकाश में आने

[1]यह सभी पुस्तकें छप कर तैयार हैं, आप प्रकाशन से सम्पर्क कर मंगवा सकते हैं।

"लाजपत राय अग्रवाल"

चाहिए, जिससे कि वर्तमान पीढ़ी प्रेरणा प्राप्त कर सके, मुझे यह जानकर अतीव हर्ष है कि, प्रिय लाजपतराय जी–अमर स्वामी प्रकाशन विभाग के अन्तर्गत पूज्य अमर स्वामी जी महाराज के शास्त्रार्थों का संग्रह **"निर्णय के तट पर"** नाम से एक विशाल प्रकाशन करने जा रहे हैं। मैं इनके इस शुभ कार्य का अभिनन्दन करता हुआ उनकी सफलता का प्रार्थी हूँ।

तथा साथ ही अन्तर्यामी जगदीश्वर से श्री श्रद्धेय अमर स्वामी जी महाराज के उत्तम स्वास्थ्य दीर्घायुष्यनैरोग्य एवं सबलता की याचना करता हूँ। जिससे कि वे हमारे मध्य में रहते हुए हमें उचित दिशा का संकेत करते रहे। **भूयश्च शरदः शतात्,.........**

"सत्यप्रिय शास्त्री, एम०ए०"

श्री प्रो० रामप्रसाद जी वेदालंकार–

उपकुलपति–गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार)

प्रियवर, श्री लाजपत राय जी !

यह सुखद वृतान्त जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि शास्त्रार्थ समर के योद्धाओं द्वारा विभिन्न अवसरों पर किये गये ऐतिहासिक शास्त्रार्थों का विस्तृत एवं प्रमाणिक इतिवृत्त आप प्रकाशित करने जा रहे हैं, आपका यह कार्य निःसन्देह स्पृहणीय एव स्तुत्य है, युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द से लेकर शास्त्रार्थ केशरी महात्मा अमर स्वामी जी तक विद्वत्ता एवं तर्कपूर्ण शास्त्रार्थों की इस सुदीर्घ परम्परा का सत्य की गवेषणा में धर्म की प्रतिष्ठापना में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रकाशयमान यह ग्रन्थ **"निर्णय के तट पर"** भविष्य में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार में आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रकाश स्तम्भ सिद्ध होगा। इस शुभ कार्य के लिए मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभकामनायें।

"रामप्रसाद वेदालंकार"

श्री बालक राम जी कमल–

(बम्बई)

गये सप्ताह आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक **"निर्णय के तट पर"** (प्रथम भाग) प्राप्त हुई, थी मैं तो उसे घोट कर पी गया, बहुत ही स्वादिष्ट लगी, वास्तव में ज्ञान का भण्डार है।

"बालक राम कमल"

श्री शम्भूमल्ल मित्तल आर्य–

तालड़ा (मुजफ्फरनगर) उ०प्र०

आपके द्वारा प्रकाशित **"निर्णय के तट पर"** (प्राचीन शास्त्रार्थों का संग्रह) पढ़ा, परन्तु मन ये चाहता है कि इसे बार–बार पढ़ता ही रहूं, आपकी कर्मठता एवं ओजिस्वता ने आर्य समाज में जान डाल दी है। ग्रन्थ विद्वत्तापूर्ण एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"शम्भूमल्ल मित्तल आर्य"

श्री राजवीर जी शास्त्री–

सम्पादक–दयानन्द सन्देश (दिल्ली)

श्री युत् लाजपत राय जी अग्रवाल !

आपके द्वारा प्रेषित "**निर्णय के तट पर**" ग्रन्थ का (द्वितीय भाग) प्राप्त हुआ तदर्थ अतिशय धन्यवाद। और समाचार यह है कि पुस्तक का यह भाग मुझे तो प्रत्यु प्रयुक्तालय आर्य, पुरूषों को एक तरह से एक संग्रहीत प्रमाण संग्रह ही मिल गया है जिसके आश्रय से विपक्ष की पोल तथा स्व पक्ष का मण्डन आर्य पुरूष स्वयं भी कर सकते हैं।

"राजवीर शास्त्री"

श्री श्यामलाल जी आर्य–

अमौली (फतेहपुर) उ0प्र0

मान्यवर, महोदय ! "**निर्णय के तट पर**" ग्रन्थ के सभी खण्ड निःसन्देह उत्तम हैं। और जो आपका अथक–प्रयास रहा है वह निश्चय ही सराहनीय है, मैं समझता हूं इस प्रकार के ठोस कार्यों पर ही समाज की सेवा, सुरक्षा और उन्नति सम्भव है।

"श्यामलाल आर्य"

श्री उत्थान मुनि जी–

(दिल्ली)

आप द्वारा प्रेषित "**निर्णय के तट पर**" पुस्तक को मैं बड़े मनोयोग से पढ़ रहा हूं, आपने यह पुस्तक प्रकाशित कर आर्य समाज के १०० वर्षों के बुलन्द इतिहास को अमर बना दिया है जिससे अनेक पीढ़ियाँ आपकी ऋणी रहेंगी एवं आपके इस पुरुषार्थ से मार्ग दर्शन प्राप्त कर सकेंगी। इस पुस्तक के माध्यम से आपने भावी शास्त्रार्थ महारथियों का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

"उत्थान मुनि"

श्री वैद्य कुन्दन लाल जी आर्य–

(अवकाश प्राप्त चिकित्सा अधिकारी) लखनऊ

आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तक "**निर्णय के तट पर**" को शीघ्रता में पढ़ना आरम्भ कर दिया, ज्यों–ज्यों इस ग्रन्थ को पढ़ता जाता, त्यों–त्यों नित्य नयास्वाध्याय योग्य मसाला विवरण सहित मिलता रहा, एक बार पूर्ण पढ़ चुका हूं, परन्तु मन नहीं भरा पुनः आरम्भ कर दिया है। "**पुस्तक क्या है ? वास्तव में ज्ञान का भण्डार है**" यह ग्रन्थ प्रकाशित कर वास्तव में आपने आर्य जगत पर महान उपकार किया है। आने वाली स्वाध्यायशील पीढ़ी के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त मार्ग दर्शक सिद्ध होगा।

"वैद्य कुन्दन लाल आर्य"

श्री ज्ञानेन्द्र जी शर्मा (आर्योपदेशक)–

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

"**निर्णय के तट पर**" (भाग–२) की प्रति मिली, ग्रन्थ अवलोकन कर अत्यन्त हर्ष हुआ, आपने जो इसके संकलन एवं प्रकाशन में घोर परिश्रम इस अल्प आयु में किया वह वास्तव में आश्चर्यजनक है, प्रभु आपको सदा साहस व स्वास्थ्य प्रदान करे। यह ग्रन्थ प्रत्येक आर्य समाजी के लिए एक अमूल्य निधि तो है ही, परन्तु हम उपदेशकों के लिए तो वास्तव में यह ग्रन्थ एक अमूल्य शस्त्र एवं अमर कृति, समाज के लिए आपकी देन है, आपका यह उपकार समाज के ऊपर हमेशा रहेगा।

"ज्ञानेन्द्र शर्मा आर्योपदेशक"

श्री डॉ० ओ३म् प्रकाश जी– (M.B.B.S.)–

भू० पू० मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा (बर्मा)

प्रिय श्री लाजपत राय जी नमस्ते !

"**निर्णय के तट पर**" मिलते ही मैं उन्हीं दिनों २५० पृष्ठ पढ़ गया ग्रन्थ बहुत ही अच्छा बना है, पढ़ने में अत्यन्त रोचक है, सिद्धान्तों का विवेचन जिस प्रकार शास्त्रार्थों के माध्यम से हुआ है वह विद्वत्ता पूर्ण है, में आपको बहुत ही साधुवाद देता हूं कि ऐसा ग्रन्थ आपने प्रकाशित करा दिया, यह साहित्य अमर रहेगा, और भविष्य में **Reference "सन्दर्भ ग्रन्थ"** का स्थान ग्रहण करेगा। प्रत्येक उपदेशक एवं प्रचारक को इसका अध्ययन करना अत्यावश्यक है।

"डॉ० ओ३म् प्रकाश (M.B.B.S.)"

श्री कृष्ण लाल आर्य (प्रधान)–

आर्य प्रतिनिधि सभा–हिमाचल प्रदेश

सुन्दर नगर (हि० प्र०)

श्री अमर स्वामी जी के शास्त्रार्थों का संग्रह आर्य समाज के साहित्य का एक अमूल्य अंग है, यह उनके दीर्घकालीन, स्वाध्याय, उनकी विद्वत्ता तथा उनके घोर तप और त्याग के परिणाम स्वरूप हैं, जो उनकी पावन स्मृति को सदैव के लिए बनाये रक्खेगा।

"कृष्णलाल आर्य"

श्री महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी–

आर्य कुटिया, धूरी (पंजाब)

आप द्वारा प्रकाशित "**निर्णय के तट पर**" (शास्त्रार्थ संग्रह भाग–२) मिला, पढ़ कर सेर भर खून बढ़ गया, तथा ऐसे लगा जैसे पुनः विश्व में आर्य समाज की जय–जयकार हो रही है, मुझे तो यह पुस्तक नहीं अपितु एक ऐसा अवैतनिक आर्य समाज का पुरोहित लगता है, जो वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों, गीता, सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अर्थात् भारत भर में कही जाने वाली सभी धर्म पुस्तकों का विद्वान हो तथा

तुलनात्मक और वैज्ञानिक ढंग से वैदिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है, मैं इसी रूप में इस ग्रन्थ को देख रहा हूं, मैं चाहूंगा कि सभी आर्य समाजों के सत्संगों में इस पुस्तक की कथा अवश्य हुआ करे जिससे हम सबको सिद्धान्तों की जानकारी हो सके। आपके इस पवित्र प्रयास का फल तब तक विद्वानों को अपेक्षित रहेगा जब तक सूर्य व चाँद जगमगाते रहेंगे।

"महात्मा प्रेम प्रकाश" (वानप्रस्थी)

श्री नरेन्द्र जी आर्य–

ओ३म् भण्डार (मैनपुरी)

"एक शास्त्रार्थ महारथी महात्मा का अवसान"

खिदमते धर्म में जो कि मर जायेंगे। नाम दुनियां में अपना अमर कर जायेंगे।।

उपर्युक्त पंक्तियां आर्य जगत के प्रसिद्ध एवं स्वर्गीय भजनोपदेशक श्री कुंवर सुखलाल जी **"आर्य मुसाफिर"** के एक गीत की है। कुंवर सुखलाल जी, स्वर्गीय श्री अमर स्वामी जी महाराज जिनका पूर्व नाम ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी था इनके तायरे भाई थे। ये उपर्युक्त शब्द स्वामी जी के ऊपर शतप्रतिशत घटित होते हैं, जिनका सारा जीवन केवल वैदिक धर्म की सेवा करने में ही व्यतीत हुआ और अपने नाम के अनुरूप वास्तव में अमर हो गये। आर्य जगत में आपका एक विशिष्ट स्थान था और जिन शीर्षस्थ विद्वानों पर आर्य समाज को गर्व है उनमें महात्मा अमर स्वामी जी का नाम भी सर्वदा स्मरण किया जावेगा। यद्यपि आज भी शास्त्रार्थ महारथी, तर्क शिरोमणि वा तर्क वाचस्पति बोले जाने वाले विद्वान किन्हीं अंशों में उपलब्ध हैं, पर यह कहना कुछ भी अतिश्योक्ति न होगी कि स्वामी जी महाराज शास्त्रार्थ महारथियों की परम्परा में अन्तिम कड़ी थे।

स्वामी जी में तर्क और प्रमाणों का प्राकट्य करने की अपूर्व क्षमता थी और जिन ग्रन्थों का आधार उनको प्राप्त था उनका निजी भण्डार भी विपुल मात्रा में उनके पास था। स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी ने आर्य जगत को यह परामर्श दिया था कि–**"आर्य समाज में तहरीरी व तकरीरी अर्थात् (लेखन व भाषण) का कार्य वा शास्त्रार्थ कार्य बन्द नहीं होने चाहियें"** इस परामर्श का पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने जीवन भर निर्वहन किया। जिसके लिए प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने स्वयं भी बहुत कुछ लिखा और जीवन भर प्रवचन व शास्त्रार्थ करते रहे, साथ ही अमर स्वामी प्रकाशन विभाग के माध्यम से प्रयाप्त साहित्य सर्व साधारण तक पहुंचाते रहे और अब उनकी मृत्योपरान्त उनके योग्य शिष्य श्री लाजपत राय जी अग्रवाल इस कार्य को पहले की ही भांति पूर्ण मनोयोग से संभाले हुए हैं। एवं उन्होंने जीवन पर्यन्त इस प्रकाशन को चलाने का संकल्प लिया है। स्वामी जी चिन्तित थे कि नई पीढ़ी में स्वाध्याय करने का तथा योग्य उपदेशक बनने का अभाव बढ़ता ही जा रहा है और आर्य समाज के कार्य में दिनानुदिन शैथिल्य आता जा रहा है। अतः अब तक आर्य समाज की ओर से हुए सभी न सही पर जितने भी उपलब्ध हो सके उन सबको अधिक से अधिक शास्त्रार्थों का संग्रह सुरक्षित किया जाये। इस कार्य के लिए **"निर्णय के तट पर"** शीर्षक से प्राचीन शास्त्रार्थों के तीन भाग तो प्रकाशित हो चुके हैं, चौथा भाग भी लगभग पूरा हो चुका है। एवं तीन आगे के भाग भी छपाने का पूर्ण निश्चय श्री लाजपत राय जी कर चुके हैं। इन चारों भागों में एक सौ से अधिक शास्त्रार्थ संग्रहीत हो चुके हैं। शेष शास्त्रार्थ अगले भागों में आ जायेंगे।

स्वामी जी महाराज ने गाजियाबाद के कवि नगर प्रभाग में रेलवे लाइन के निकट "**वेद मन्दिर**" की भी स्थापना की थी, और उनकी योजना थी कि यहां योग्य उपदेशक तैयार किये जायें। अब वेद मन्दिर का दायित्व जिन सज्जनों को स्वामीजी महाराज सौंप गये हैं वह उसे कितना पूरा करते हैं ? यह उन पर निर्भर है। पूज्य स्वामी जी महाराज के देहावसान पर मैंने एक छोटा सा छन्द लिखा है जो प्रस्तुत है–

हा ! अमर स्वामी जी !!

हारे न कभी श्रीमान खड़े रहे सीना तान, अमर हुए धीमान विरोधी के मारे मान।
मनीषी तुम्हारे ज्ञान पै था हमें अभिमान, रसना पै गुणगान सभी के ही हैं समान।। १।।

स्वल्प था न स्वाभिमान, कभी न था अभिमान,
वाणी पै रहा प्रधान वेद धर्म का ही ज्ञान।
मीत "नरेन्द्र" महान आर्य जगत के प्राण,
जी में भरा यशगान धन्य धन्य थे महान।। २।।

"नरेन्द्रार्य" (मैनपुरी)

पौराणिक पण्डित श्री माधवाचार्य जी शास्त्री (शास्त्रार्थ महारथी)–

धर्मधाम कमला नगर (दिल्ली)

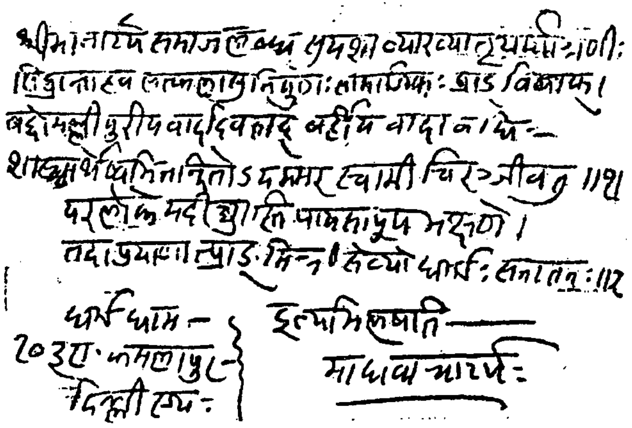
श्रीमानार्य समाजे लब्ध सुयशो व्याख्यातृषु अग्रणीः
सिद्धान्तास्त्र [illegible] निपुणः सामाजिकः प्राड्विवाकः।
बद्दोमल्ली पुरीय वाद दिवसाद् अद्यावधि वादा [illegible]
शास्त्रार्थे अभिनन्दितो ऽसौ अमर स्वामी चिरंजीवतु ॥१॥
परलोके यदीच्छास्ति पायसापूप भक्षणे।
तदा [illegible] भवतु धार्मिकः सनातनः ॥२॥
धर्मधाम– १०३ कमलानगर दिल्ली स्थः
इत्यभिलषति— माधवाचार्यः

उपरोक्त संस्कृत के मूल पत्र का हिन्दी अनुवाद–

अमर स्वामी जी दीर्घायु हों, श्रीमान (अमर स्वामी) जो आर्य समाज में बहुत सुयश प्राप्त, व्याख्यान दाताओं में अग्रणी, सिद्धान्तों के शास्त्रार्थ युद्ध की शत कलाओं में निपुण, आर्य समाज के प्राड़विवाक (वकील) हैं। बद्दोमल्ली नगर के शास्त्रार्थ वाले दिन से अब तक शास्त्रार्थों में अभिनन्दन प्राप्त करने वाले "**अमर स्वामी**" लम्बी आयु तक जीवित रहें। परलोक में यदि खीर पुड़ी खाने की इच्छा हो तो मृत्यु से पहले सनातन धर्मी हो जाइये।

धर्मधाम
१०३, कमला नगर (दिल्ली)

ऐसी अभिलाषा करने वाला–
"माधवाचार्य"

श्री पन्नालाल जी आर्य–

(जौनपुर)

"**निर्णय के तट पर**" ग्रन्थ क्या है ? एक "**हीरा**" है, जिसकी जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। प्रकाशक एवं सम्पादक का प्रयास सराहनीय है।

"पन्नालाल आर्य"
(जौनपुर)

श्री राजर्षि कुंवर रणञ्जय सिंह जी (महाराजा–अमेठी)–

भूपति भवन, अमेठी
जनपद–सुलतानपुर (उ0प्र0) २२७४०५

प्रिय लाजपत राय जी !

"**निर्णय के तट पर**" ग्रन्थ का तृतीय भाग प्राप्त हुआ, तदर्थ बहुत–बहुत धन्यवाद। परम पूजनीय अमर स्वामी सरस्वती महाराज जी का सेवा भाव हम लोगों के हृदय में हैं, तदनुसार आप सराहनीय कार्य कर रहे हैं, शास्त्रार्थ महारथी स्वामी जी महाराज के रचित ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

वैदिक धर्म के ग्रन्थों में उनके ग्रन्थ मेरे विचार से महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के उपरान्त सर्वाधिक स्थान रखते हैं, श्री स्वामी जी के बारे में क्या लिखा जाये ? वे आदर्श सन्यासी थे, उनके अनुपम गुणों की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखलाने के समान हैं। आप उनके नाम पर खोले गये इस प्रकाशन को दत्तचित्त होकर चला रहे हो, यह बहुत हर्ष की बात हैं जिसके निमित्त मेरी शुभ कामनाएं हमेशा आपके साथ हैं।

भवदीय–
"रणञ्जय सिंह"
(अमेठी)

नोट – "**निर्णय के तट पर**" ग्रन्थ हेतु वैसे तो अनेकों पत्र इसकी प्रशंसा में देश व विदेशों से प्राप्त हुए, परन्तु हमने मुख्य–मुख्य सम्मतियां उद्धृत कर दी हैं, इन्हीं से आप अनुमान लगा सकते हैं। वैसे तो पकते हुए चावलों में से एक चावल के मसलने पर सारे चावलों की स्थिति का पता चल जाता है कि वह किस स्थिति में हैं ? तो भी हमने यहां कुछ सम्मतियां छपवा दी हैं। जिन सज्जनों के इस ग्रन्थ से सम्बन्धित "**सम्मति रूप**" पत्र हमें मिले उनके न छपने पर हम उनसे क्षमा चाहते हैं। धन्यवाद।

उपरोक्त सम्मतियाँ प्रस्तुत ग्रन्थ के आरम्भिक काल में प्राप्त हुई थी, जिसमें केवल अमर स्वामी जी महाराज के द्वारा किये गये शास्त्रार्थों के संकलन करने की ही योजना थी, परन्तु बाद में पूज्य स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा यही हुई कि–"**हमारे समस्त पूर्वज शास्त्रार्थकत्ताओं के शास्त्रार्थ जितने भी उपलब्ध हो जायें उन सबका छपना अनिवार्य है**" मैंने उनको यह आश्वासन दिया था कि मैं अपने जीवन काल में आपकी इस अन्तिम इच्छा को अवश्य पूर्ण करूँगा, उनका आशीर्वाद एवं प्रभु की कृपा ऐसी रही कि मैं इस कार्य को करने में यहां तक सफल हो पाया, आगे भी शेष शास्त्रार्थ अगले भाग में पूर्ण किये जा रहे हैं।

विदुषामनुचरः
"लाजपत राय अग्रवाल"

अमर स्वामी जी महाराज के अमर सूत्र

१. पुराने आर्य नेताओं ने अपने घरों को उजाड़कर आर्य समाज को बनाया था, नये आर्य समाजी नेता, आर्य समाज को उजाड़ कर अपने घरों को बना रहे हैं।
२. पौराणिकों में पुरोहित अपने यज्ञमान को ठगता है, आर्य समाजी यज्ञमान अपने पुरोहित को ठगता है।
३. पौराणिकों में ज्ञानी अज्ञानियों को अपनी आज्ञा में चलाते हैं। आर्य समाजी अज्ञानी-ज्ञानियों को अपनी आज्ञा में चलाते हैं।
४. पौराणिकों में अपूज्यों की पूजा होती है, आर्य समाज में पूज्यों का अनादर होता है।
५. पौराणिकों में सन्यासी सबसे बड़ा माना जाता है, आर्य समाज में सन्यासी का कोई महत्व नहीं है।
६. पौराणिकों में सन्यासी जीवन निर्वाह के लिए निश्चिन्त होता है, आर्य समाजी सन्यासी को जीवन निर्वाह की चिन्ता तो निरन्तर रहती ही है, मरने के लिए भी चिन्ता रहती है कि कहाँ मरूँ ?
७. आर्य समाज में एक ओर यज्ञ और योग के नाम पर पाखण्ड प्रबल वेग से बढ़ रहा है, दूसरी ओर राजनीति का राक्षस आर्य समाज को जिन्दा ही खा जाना चाहता है।
८. पहले आर्य समाजों के भवन कच्चे होते थे, मगर आर्य समाजी पक्के होते थे। अब आर्य समाजों के भवन पक्के और विशाल होते हैं परन्तु आर्य समाजी कच्चे और बेकार मिलते हैं।
६. आर्य समाज को क्षति पहुँचाने वाला आर्य समाजी ही हो सकता है।
१०. आर्य समाज वह अस्पताल है, जिसमें मरीज आदमी भर्ती होते हैं, तथा फिर इसमें से पारसमणि बनकर बिल्कुल स्वस्थ निकलते हैं।
११. आर्य समाजी अगर खुश हो जाये तो धन्यवाद कर देता है। अगर नाराज हो जाये तो जीना भी हराम कर देता है।
१२. आर्य समाजी वही है, जो न खुद चैन से बैठे और न किसी को बैठने दे।
१३. आर्य समाजी वही है, जो खुद ही अपनी बात को न माने तथा दूसरों से मनवाना चाहे।
१४. दुनिया के बिगड़े हुओं का सुधार आर्य समाज करता है। परन्तु बिगड़े हुए आर्य समाजी का सुधार कोई नहीं कर सकता।
१५. आर्य समाज मन्दिरों में "स्कूल" नामक वह "अमर बेल" है जो आर्य समाज मन्दिर को जिन्दा ही खा जाती है, जिसकी अपनी कोई जड़ नहीं होती।

कहा बातिल को बातिल और सच को सच कहा हमने।
जो इतने पर भी न समझे तो उन्हें परमात्मा समझें।।

नोट—उपरोक्त आधुनिक आर्य समाजियों के लक्षणों से आर्य समाज के सिद्धान्तों पर कोई भी प्रतिकूल असर पड़ने वाला नहीं है, वह पहले भी अकाट्य थे, आज भी अकाट्य व सत्य सिद्ध हैं !

वैदिक धर्म का सेवक—
"अमर स्वामी सरस्वती"

हमारे कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

क्र० सं०	पुस्तकों के नाम	लेखक	मूल्य रू० पैसे
	प्राचीन शास्त्रार्थों का संग्रह-		
१.	निर्णय के तट पर (प्रथम भाग)	संग्रहकर्त्ता-अमरस्वामी सरस्वती तथा लाजपतराय अग्रवाल	३००.००
२.	निर्णय के तट पर (द्वितीय भाग)	"	४००.००
३.	निर्णय के तट पर (तृतीय भाग)	"	३००.००
४.	निर्णय के तट पर (चतुर्थ भाग)	"	३००.००
५.	निर्णय के तट पर (पंचम भाग)	"	४००.००
६.	दयानन्द गौरव गाथा महर्षि दयानन्द का पद्यात्मक (राधेश्याम की तर्ज पर आधारित) जीवन-चरित्र	अभयराम शर्मा-"दयानन्दी"	२००.००
७.	गांधी हत्या क्यों और कैसे ?	नत्थुराम गौडसे सम्पादक-लाजपत राय अग्रवाल	१५०.००
८.	स्वास्थ्य ही जीवन है (Health is Life)	श्रीमति निशा त्यागी	१००.००
९.	वास्तु शास्त्र (Science of Architecture)	"	१२५.००
१०.	मानसिक तनाव ! (कारण एवं निवारण) (Mental Tension, Reasons and Remedies)	"	१५०.००
११.	चिन्ता छोड़ो, खुश रहो (Don't worry be Happy)	"	१५०.००
१२.	भारतीय शिक्षा का दार्शनिक आधार	श्रीमती सेठ	१००.००
१३.	कौन कहता है द्रोपदी के पाँच पति थे ?	अमर स्वामी सरस्वती	२५.००
१४.	केसरिया कफ़न (क्रान्तिकारी उपन्यास)	नवीन गुप्ता-"र्निमोही"	२५.००
१५.	अठारह सौ सत्तावन का सैनानी "फिरोजशाह"	रामेश्वर उपाध्याय	२५.००
१६.	शिवलिंग पूजा क्यों ?	डॉ० श्रीराम आर्य	२५.००
१७.	सन्त वचन संग्रह	स्वामी विवेकानन्द	२०.००
१८.	काला पहाड़ (काला चन्द राय) (रक्त रंजित इतिहास)	इं० थियोडोर किंग	१२.००

नोट- विशेष जानकारी हेतु प्रकाशन से बृहद सूचीपत्र मंगायें !

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
प्रतिग्रहण क्रमांक 5504
दयानन्द महिला म

निवेदक-
"लाजपत राय अग्रवाल"
(प्रतिष्ठाता
अमर स्वामी प्रकाशन विभा
१०५८, विवेकानन्द नगर गाजियाबाद-२०१००१ (उ०प्र०
फोन : ०१२०-४७०१०६